लोक साहित्य विज्ञान

डॉ० सत्येन्द्र, डी० लिट्०
आचार्य, हिन्दी विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी
पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता : आगरा-३

प्रधान कार्यालय
अस   रोड, आगरा-३

शाखाएं
चौड़ा रास्ता, जयपुर ● खजूरी बाजार, इन्दौर

द्वितीय संशोधित संस्करण १९७१

मूल्य बीस रुपये

पोरवाल प्रिंटिंग प्रेस, आगरा-३

दूसरे सस्करण की भूमिका

इस पुस्तक का अच्छा स्वागत हुआ है। लोक-साहित्य और उसके साथ लोक-वार्ता का वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन के लिए इस ग्रन्थ को पाठको ने अद्वितीय माना है और कितने ही विश्वविद्यालयो ने अपने यहाँ पाठ्यक्रम मे इसे स्थान दिया है। यही कारण है कि इसका दूसरा सस्करण हो रहा है। इस सस्करण मे कुछ ऐसे परिशिष्ट हटा दिये गये हैं, जो इतने आवश्यक प्रतीत नही हुए।

लोक-साहित्य विज्ञान मे निरन्तर प्रगति हो रही है। इस प्रगति के अनुकूल बनाने के लिए इसमे कुछ पृष्ठ बढाये भी गये हैं। इस प्रकार इसमे अद्यतन बातें मिल जायँगी।

यह पुस्तक बी० ए०, एम० ए० के लोक-साहित्य के विद्यार्थियो, लोक-साहित्य के अनुसन्धानकर्ताओ के लिए तो पाठ्य-ग्रन्थ का और अनुसन्धान प्रक्रिया के दिग्दर्शक का काम दे रहा है और देता रहेगा। साथ ही, लोक-साहित्य प्रेमियो को भी ज्ञानवर्द्धक सिद्ध होगा।

जयपुर
१५-३-७१

—सत्येन्द्र

भूमिका

यह 'लोक साहित्य विज्ञान' पाठको की सेवा मे आज प्रस्तुत है। वस्तुत इसका सूत्रपात कलकत्ते मे हुआ था। सन् १९५५ मे मैं कलकत्ता विश्वविद्यालय में रीडर पद और हिन्दी विभाग के अध्यक्ष पद पर नियुक्त हुआ।

वहाँ स्नातकोत्तरीय कक्षाएँ ही होती हैं और उनके पाठ्यक्रम मे मैंने देखा कि विकल्प मे लोक-साहित्य (Folk Literature) भी है। किन्तु उसकी न तो विस्तृत रूपरेखा ही थी, न उसकी पढाई का ही प्रबन्ध था। मैंने एक विस्तृत रूपरेखा बनाकर उसका अध्यापन भी आरम्भ कर दिया। इसी प्रसग मे यह विदित हुआ कि ऐसी पुस्तक का अभाव है जो इस सम्बन्ध मे पूरी-पूरी सहायक हो सके। तभी यह ग्रन्थ लिखने का सकल्प किया गया।

लोक-साहित्य मेरी दृष्टि में लोकवार्ता का एक अग है। लोकवार्ता ने आज ठीक-ठीक एक विज्ञान का रूप ग्रहण कर लिया है। इसे लोकवार्ता तत्त्व या लोकवार्ता विज्ञान और अग्रेजी मे 'फोकलोरिस्टिक्स' कहते हैं। इसी क्रम मे लोक-साहित्य भी विज्ञान है और इस पुस्तक मे यही दृष्टि परिपुष्ट की गयी है। लोक साहित्य मानव के चेतन प्रयत्न से सम्बन्धित होता हुआ भी भाषा की भाँति ही उसके अपने चेतन प्रयत्न से हुए निर्माण के अन्तर्गत नही आता। इसीलिए इसका भाषाविज्ञान की भाँति का विज्ञान अपेक्षित है। लोकवार्ता मे पाश्चात्य क्षेत्र मे जब से रुचि हुई है प्राय तभी से इसे विज्ञान मानने की ओर झुकाव रहा है। गोम्मे महोदय ने उन्नीसवी शती मे ही यह प्रबल आग्रह किया था कि लोकवार्ता भी वैज्ञानिक महत्त्व का माना जाना चाहिए। उस समय से आज तक कितने ही अध्ययन इसी दृष्टि से किये गये है। इनका वृत्त आगे इसी ग्रन्थ मे दिया गया है। इन अध्ययनो में से लोकवार्ता की वैज्ञानिकता तो सिद्ध होती है किन्तु वैज्ञानिक सिद्धान्त का निरूपण करने के अभाव की पूर्ति नही हो सकी है। फिर भी कुछ ग्रन्थ इस सम्बन्ध मे बहुत महत्त्वपूर्ण माने जाने चाहिए—एक है गोल्डन बाउ (Golden Bough)। फ्रेजर का यह ग्रन्थ विश्व लोकवार्ता का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। किन्तु इस समस्त ग्रन्थ की वैज्ञानिकता और विश्व से सकलित विश्व की सामग्री एक विशेष सिद्धान्त के प्रतिपादन के काम मे लायी गयी है और उसका स्वरूप एन्थ्रापालाजिकल विशेष हो गया है।

दूसरा है 'द फोकटेल' जिसके लेखक हैं स्टिथ थामसन। इसमे लोक-कहानी को ही लिया गया है।

तीसरा है 'मोटिफ इडैक्स' इसके लेखक भी वही स्टिथ थामसन महोदय है। यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमे विश्वभर की लोककथाओ के अभिप्रायो की अनुक्रमणिका है। यह भी केवल कथा साहित्य से सम्बन्धित है।

स्टिथ थामसन द्वारा सपादित 'फोर सिम्पोजिया' भी लोक साहित्य विज्ञान के लिए उपयोगी है। इसमे प्राय सभी विषयो की चर्चा है। सिम्पोजिया होने के कारण विविध मतो का सग्रह तो अच्छा है, किन्तु उन्हे इतना वैज्ञानिक विधान नही मिल सका है।

'द स्टैण्डर्ड डिक्शनरी ऑव फोकलोर', 'माइथालाजी' (ऐटसैट्रा), नामक लोकवार्ता विषयक कोश इस क्षेत्र मे अत्यन्त अभिनन्दनीय ग्रन्थ है।

यह स्पष्ट है कि श्रीमती बर्न की पुस्तक 'हैण्ड बुक ऑव फोकलोर' एक ऐसी पुस्तक थी जो इस विषय की प्रवेशिका के रूप मे अत्यन्त लाभप्रद थी। यह तो अब एक प्रकार से अप्राप्य है और अब लोकवार्ता की स्थिति भी वह नही रही, अत एक नयी प्रवेशिका की भी आवश्यकता है।

इन सबमे भी हमे उस रूप मे व्यवस्थित सामग्री नही मिली जिस रूप मे कि वैज्ञानिक परिपुष्टि के लिए अपेक्षित है।

हिन्दी मे 'ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन' नामक ग्रन्थ मे लोकवार्ता के शास्त्रीय पक्ष को पूरा-पूरा महत्त्व मिला था, तथा ऑल इण्डिया रेडियो से इस ग्रन्थ की समीक्षा करते हुए बाबू गुलाबराय जी ने बताया था कि इसमें लोकवार्ता का शास्त्र ही प्रस्तुत कर दिया गया है। अनेक विद्यार्थी और अनुसधित्सु इस ग्रन्थ का उपयोग लोकवार्ता के शास्त्र को जानने के लिए भी करते रहे हैं।

डा० श्याम परमार का 'भारतीय लोक-साहित्य' भी सैद्धान्तिक पक्ष की अच्छी चर्चा करता है पर वह डा० परमार के समय-समय पर लिखे विविध निबन्धो का सग्रह बनकर रह गया हैं फिर भी उसमें काफी उपयोगी सामग्री है। अन्त में दी हुई पुस्तक सूची ने उसकी उपयोगिता और भी बढा दी है।

डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने 'लोक-साहित्य की भूमिका' पुस्तक इसी सिद्धान्त पक्ष को पुष्ट करने के लिए लिखी। इस ग्रन्थ का अपना निजी महत्त्व है।

किन्तु कलकत्ते मे लोकवार्ता का अध्यापन कराते-कराते मेरे मन मे लोकवार्ता की वैज्ञानिकता का जो स्वरूप खडा हो रहा था, उसको मैं इनमे से किसी ग्रन्थ मे नही पा सका। मैंने ऐसी एक लोकवार्ता विज्ञान प्रवेशिका लिखने का विचार कलकत्ते मे ही स्थिर कर लिया था और वाराणसी तथा कलकत्ता के एक बडे प्रकाशक 'हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय' के अत्यन्त उत्साही तथा कर्मठ अध्यक्ष श्री कृष्णचन्द्र बेरी ने मुझसे कुछ लिखने का आग्रह किया तो उन्हें लोकवार्ता विज्ञान प्रवेशिका के छापने का ही सुझाव मैंने दिया था। उन्होने उस पुस्तक को छापना स्वीकार किया, शर्तनामा लिखा गया। उस पुस्तक के सम्भवत एक-दो अध्याय उनके पास पहुँच भी गये। वे छापने के सम्बन्ध मे आज-कल करते गये। वे चाहते थे कि मैं सम्पूर्ण ग्रन्थ एक साथ

तैयार करके उन्हे दे दूँ, उनका कहना था कि तब वे उसे कुछ सप्ताहो मे ही प्रकाशित कर देंगे। मेरी कमजोरी यह है कि मैं पूरी पाडुलिपि एक साथ नही दे सका, तब भी यही हुआ था। फलत वह प्रवेशिका अभी तक नही निकल सकी। यद्यपि इसका विज्ञापन वे 'हिन्दी प्रचारक' मे तभी से करते रहे। वह यदि समय से निकल गयी होती तो 'भारतीय लोक साहित्य' तथा 'लोक साहित्य की भूमिका' पहले ही बाजार मे आती। मैं इस प्रवेशिका के लिए अब भी 'हिन्दी प्रचार पुस्तकालय' से बँधा हुआ हूँ।

पर एक ग्रन्थ की महती आवश्यकता मुझे प्रतीत हो रही थी।

आगरे आकर क० मु० हिन्दी विद्यापीठ मे भी लोकवार्ता विज्ञान की कक्षाएँ आरम्भ की गयी। फलत एक उच्चस्तरीय ग्रन्थ को अब अधिक काल तक के लिए नहीं टाला जा सकता था।

आगरे के प्रसिद्ध प्रकाशक सर्वश्री शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी से मेरा सम्बन्ध काफी पहले हो चुका था। मेरा 'प्रायश्चित्त' नामक एकाकी सग्रह तथा 'सूर की झाँकी' का प्रकाशन उन्होने ही किया है। अब उन्होने इस ग्रन्थ को हाथ मे लिया। उनके यहाँ भी इसका प्रकाशन टलता रहा, टलता रहा, अन्तत गत वर्ष से उन्होने विशेष गति दिखायी और इसी के परिणामस्वरूप आज यह ग्रन्थ पाठको की सेवा मे पहुँच रहा है।

इस ग्रन्थ मे कई विचारोत्तेजक तथा मननीय स्थापनाएँ हैं। एक है 'लोक मानस' का सिद्धान्त। लोक मनोविज्ञान पर पाश्चात्य विद्वानो ने बहुत काम किया है, पर इस ग्रन्थ मे लोक मानस की स्थापना का स्वरूप कुछ भिन्न है।

लोकवार्ता तत्त्व की विद्यमानता के क्षेत्र मे एक विशेष विस्तार उक्त 'लोक-मानस' की मान्यता के कारण हुआ है। जिसका निष्कर्ष है कि लोकवार्ता तत्त्व मानवीय सत्ता के लिए ही अनिवार्य है, वह जन्मजात दाय मे प्राप्त होता है। अत सभ्य से सभ्य और समाज के उच्च से उच्च स्तर पर भी उसका अनुसन्धान अपेक्षित है।

इस दृष्टि से इस ग्रन्थ मे लोकवार्ता विज्ञान का विविध अन्य विज्ञानो से सम्बन्ध का विवेचन भी किया गया है।

लोक साहित्य तथा लोकवार्ता के विविध सम्प्रदायो का ऐतिहासिक परिचय भी दिया गया है। तब लोक-साहित्य के प्राय सभी रूपो का सागोपाग विवेचन है। किन्तु लोक-साहित्य का सम्बन्ध क्षेत्रीय अनुसन्धान से विशेष है, अत एक विशेप तथा विशद् अध्याय इसमे 'क्षेत्रीय अनुसन्धान विपयक है। यह मेरे तुच्छ सम्मति मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अध्याय है। क्षेत्रीय अभ्यास लोकवार्ता के विद्यार्थी से अवश्य कराया जाना चाहिए और उसकी समस्त वैज्ञानिक प्रक्रिया भी समझायी जानी चाहिए। इसमे भी कुछ नये प्रयोगो की रूपरेखा दी गयी है। क्षेत्रीय अभ्यास के कुछ उदाहरण तथा प्रश्नावलियाँ भी दी गयी है। ये केवल सुझाव मात्र हैं। ये विद्यार्थियो

की प्रायोगिक पुस्तिकाओ (Practical fieldwork exercise note books) से प्राय ज्यो के त्यो दे दिये हैं, अत इनमे सशोधनो की पर्याप्त गुजाइश है। विज्ञ पाठक इस तथ्य को ध्यान मे रखकर ही इनका उपयोग करेंगे।

मेरा सुझाव यह है कि लोकवार्ता के अध्ययन के लिए ऐसे क्षेत्रीय अनुसन्धान के अभ्यास कम से कम चार तो अवश्य ही कराये जाने चाहिए। ये चार इस रूप मे होने चाहिए—

१ किसी ग्राम की लोकवार्ता के सामान्य सर्वेक्षण का अभ्यास
२ भूत-प्रेत या ऐनीमिस्टिक स्थितियो से सम्बन्धित अभ्यास
३ लोक-गायक या लोककथा के कहानीकार विषयक अन्वेषण
४ व्रतानुष्ठान और लोक-कलाओ विषयक अन्वेषण

और भी इसमे आवश्यकतानुसार विषयो को घटाया-बढाया जा सकता है।

लोक-साहित्य के विविध रूपो के विवेचन मे परिभाषा, महत्त्व और वर्गीकरण आदि का स्थूल उल्लेख तो है ही, उन रूपो के अध्ययन की विभिन्न परिपाटियो का भी उल्लेख हुआ है। कई मौलिक अध्ययन उदाहरण रूप मे दिये गये हैं। जिनसे ऐसे अध्ययनो के विविध सैद्धान्तिक चरणो का भी साथ-साथ स्पष्टीकरण होता गया है।

कथा साहित्य विषयक मानक रूप (Tale type) तथा अभिप्रायो की प्रणाली को भी पर्याप्त स्थान मिला है। इन पर अभी तक हिन्दी मे विशेष प्रकाश नही डाला गया था।

समस्त ग्रन्थ के पारायण मे स्पष्ट होगा कि इसमे ऐतिहासिक-भौगोलिक प्रणाली का उपयोग तो किया गया है, पर उसे कई प्रकार मे सशोधित करके काम मे लाया गया है। इस प्रणाली मे आवर्तन (frequency) पद्धति का उपयोग आवश्यक है। भौगोलिक क्षेत्र मे किसी रूप की आवृत्ति का क्रमागत जब तक पूर्ण उल्लेख प्राप्त न हो तब तक इस प्रणाली को पूर्ण नहीं माना जा सकता। खेद है कि भारत मे सकलन सग्रह मे यह भौगोलिक वैज्ञानिक पद्धति महत्त्व नही पा सकी। हमने इसके कुछ उपयोग साहित्य ग्रन्थो के आवर्तनो से लेकर दिखाये हैं।

यह वस्तुत दुर्भाग्य है कि भारत मे लोकवार्ता विज्ञान को वह महत्त्व नही मिल पाया है जो विदेशो मे मिला हुआ है। भाषा विज्ञान की भाँति ही भारत ने लोकवार्ता विज्ञान के उद्भव और विकास को प्रेरित किया है। इस ग्रन्थ से तथा अन्यन्त्र से भी यह अत्यन्त स्पष्ट रूपेण प्रकट होता है, और इस लोकवार्ता विज्ञान का प्रथम सम्प्रदाय ही भारतीय सम्प्रदाय (Indian School) कहलाता है। आज भी भारतीय लोकवार्ता का महत्त्व विश्व लोकवार्ता मे माना जाता है। मैं यह समझता हूँ कि विश्व मे लोकवार्ता विज्ञान को परिपूर्णता तब तक नही प्राप्त हो सकती जब तक भारत म ही भारतीय विद्वानो द्वारा भारतीय सामग्री को केन्द्र बनाकर विश्व की लोकवार्ता का विशद् अध्ययन प्रस्तुत नही होता। यह कार्य वस्तुत विश्वविद्यालयो के द्वारा ही सम्पन्न हो सकता है। भारत के प्रत्येक विश्वविद्यालय मे एक लोकवार्ता

पीठ (Chair for folkloristics) की स्थापना होनी चाहिए, उनमे क्षेत्रीय अनुसधान की विधिवत व्यवस्था की जानी चाहिए और विशद् लोकवार्ता सग्रहालय (folkloristic Museums) स्थापित किये जाने चाहिए। इनमे उच्च से उच्च स्तर के अध्ययन, अध्यापन और अनुसन्धान से अखिल भारतीय लोकवार्ता विषयक प्रबन्ध और सग्रह प्रकाशित होने चाहिए। हेलसिंकी तथा इण्डियाना विश्वविद्यालयो की भाँति भारत मे भी एक क्या कई लोकवार्ता के तीर्थ बन सकते हैं और ऐसा हो जाने पर वह दिन दूर नही रहेगा जब देश-विदेश के विद्वानो को इस विज्ञान के सम्यक् ज्ञान के लिए एक भारतीय आचार्य के पास किसी विश्वविद्यालय मे आना पडेगा।

आज की स्थिति यह है कि हमे भारत की लोकवार्ता को समझने के लिए भी विदेशो की ओर ताकना पडता है। यह सारस्वत दृष्टि से बुरा नही, और मैं सारस्वत दृष्टि से ही यह लिख रहा हूँ कि लोकवार्ता विज्ञान की दृष्टि से यह बुरा नही बहुत बुरा है। क्योकि लोकवार्ता विज्ञान की शुद्ध प्रक्रिया के लिए जिस भारतीय सामग्री की अपेक्षा होती है, वह वहाँ ठीक रूप मे कहाँ उपलब्ध हो पाती है? प्राय बहुत कम और अधूरी सामग्री पर बडे-बडे सारस्वत (Academic) अनुसन्धानो के गढ खडे किये जाते हैं।[१] ऐसे अधूरे ज्ञानों से सारस्वत क्षेत्र को ही नही मानव विषयक ज्ञान को बहुत धक्का लगता है, नही, बहुत हानि होती है। आज लोकवार्ता तथा नृविज्ञान (एन्थ्रापालाजी) के क्षेत्र मे ऐसे कितने ही सिद्धान्तो को अमान्य ठहरा

---

[१] इस सम्बन्ध मे हूले यूनीवर्सिटी के आर्क्यालाजी इस्टीट्यूट के डाइरेक्टर तथा ओरियण्टल आर्क्यालाजी के प्रोफेसर डा० हीन्ज मोडे (Dr Heinz Mode) के लेख का एक उदाहरण यहाँ देना समीचीन प्रतीत होता है। उनका यह लेख १९५८ मे प्रकाशित "द ओरल टेल्स ऑव इडिया" नामक उस पुस्तक के सम्बन्ध मे है जिसे स्टिथ थामसन तथा जोनास बेलीज ने प्रस्तुत किया है और इडियाना यूनीवर्सिटी (यू० एस० ए०) ने प्रकाशित किया है। डा० मोडे ने लिखा है कि

"The ever growing body of traditional narrative materials has justified a collection of this kind and ever since no serious scholar in the field of folk-literature can afford to neglect the references given in Stith Thompson's Motif-Index But in the introduction the author himself has pointed out the inadequate documentative, as it was quite impossible to assume responsibility for bibliographical completeness for so many thousands of motifs The question, therefore, arises in how for such publication can be utilised for the work in an individual field of folk-literature as reliable reference

By now it should have become clear that a large number of important motifs, individual and new motifs as well as repetitions, are that mentioned in the Motif-Index of oral folk-tales of Index the fact remains that the value of the motif-index is considerably lessened by such omissions

(Folklore July-August, 1961, vol 11, No 4, pp 201-205)

दिया गया है जो ऐसे अधूरे ज्ञानो पर बने थे। उनके आधार पर खडे किये गये अध्ययनो से जो धारणाएँ बनी थी वे आज मानव का कितना हित कर सकती है। तात्पर्य यह है कि अब इस दिशा की अधिक उपेक्षा नही होनी चाहिए और भारत मे शीघ्रातिशीघ्र विश्वविद्यालयो मे इस विषय को स्थान मिलना चाहिए तथा अन्य सस्थाओ तथा व्यक्तियो को भी इस दिशा मे विशेष प्रयत्न करना चाहिए। हिन्दी-क्षेत्र मे प्रयाग तथा आगरा विश्वविद्यालय मे इसके अनुसन्धान, अध्ययन-अध्यापन का कुछ विकल्प से प्रबन्ध किया गया है और प्राय यह हिन्दी मे स्नातकोत्तरीय पाठ्यक्रम मे स्थान पाये हुए हैं। यहाँ भी इसका एक पृथक् विभाग बनना चाहिए। इस पुस्तक से सम्भवत इस विषय की विश्वविद्यालयीय अध्यापन स्तर की सामर्थ्य का कुछ ज्ञान हो सके तो यह ग्रन्थ-लेखन और भी अधिक सफल समझा जायगा।

जो भी हो, अभी इस ग्रन्थ मे पूर्ण वैज्ञानिक विधि की आवर्तन पद्धति का उदाहरण नही दिया जा सका। फिर भी जो दिया गया है, मुझे आशा है वह पाठको को उपयोगी सिद्ध होगा। उसके आधार पर नवीन प्रेरणाओ से और नवीन दृष्टियो से किसी और उपयोगी पद्धति की सिद्धि सम्भव हो सकेगी, ऐसा विश्वास है।

इस पुस्तक मे इसी प्रकार और भी बहुत-सी मननीय सामग्री उपलब्ध हो सकेगी। इस पुस्तक के कुछ अश ऐसे है जो पहले अन्यत्र भी मेरे किसी ग्रन्थ मे स्थान पा चुके है। कुछ अश ऐसे भी है जो किसी विशिष्ट पत्रिका मे भी छपे हैं। वे सभी मूलत इस ग्रन्थ की प्राकल्पना के ही थे। समय-समय पर लिखे गये और जहाँ उपयुक्त समझा गया इनका उपयोग भी किया गया। कुछ अश 'व्रजलोक साहित्य का अध्ययन' नामक ग्रन्थ से भी कुछ सशोधनपूर्वक ले लिये गये हैं।

व्रज के कथा-अभिप्रायो पर एक मौलिक अनुसन्धान डा० सावित्री सरीन ने कलकत्ता विश्वविद्यालय की डी० फिल० उपाधि के लिए प्रस्तुत किया था। उसमे स्टिथ थामसन प्रणाली का प्रथम वैज्ञानिक उपयोग हिन्दी क्षेत्र मे किया गया। यह एक महत्त्वपूर्ण कृति है। इसमे से एक अध्याय हमने इस ग्रन्थ मे उद्धृत किया है। इसकी अनुमति लेखिका ने हमे दी, इसके लिए हम उनके बहुत कृतज्ञ हैं। 'टेपरिकार्डर' विषयक परिशिष्ट हमारे एक विद्यार्थी एस० एल० भट्ट द्वारा लिखा गया है। इटौरा का सर्वेक्षण तथा विट्ठु मेला का विवरण हमारे एक विद्यार्थी श्री परेशचन्द्रदेव शर्मा की 'प्रायोगिक पुस्तिका' से लिये गये हैं। भगत विषयक प्रश्नावली श्री अरविन्द कुलश्रेष्ठ द्वारा प्रस्तुत की गयी है। श्री नारायण पाण्डे का 'डाकनाम' विषयक लेख दिया गया है। इन सबको मैं क्या धन्यवाद दूँ।

कथामानक रूपो और कथा-अभिप्रायो के लिए स्टिथ थामसन की कृतियो का पूरा-पूरा सहारा लिया गया है। बिना उनके ग्रथो के उपयोग के इन अध्यायो को लिखा ही नही जा सकता था। उनको किन शब्दो मे कितना धन्यवाद दिया जाय। मेरे पास उसके लिए शब्द नही। इसी प्रकार और भी कई विद्वानो के उद्धरण इस

ग्रथ मे उपयोग मे आये हैं। उनका सबका यथास्थान उल्लेख हुआ है। मैं उन सबको अपनी हार्दिक कृतज्ञता अर्पित करता हूँ।

इसी सम्बन्ध मे केन्द्रीय सरकार के प्रकाशन 'सस्कृति' का भी उल्लेख करना समीचीन होगा। परिशिष्ट मे एक निवन्ध उसमे से लिया गया है, वह लिखा हुआ तो इन्ही पक्तियो के लेखक का है।

जाने अनजाने और भी अनेको का सहयोग इस ग्रथ को प्रस्तुत करने मे मुझे मिला है किसी ने कोई सामग्री दी है, किसी ने कुछ अशो को टाइप किया है, किसी ने कही-कही अनुवाद मे सहायता दी है, किसी ने कोई ग्रथ बताया है। किसी ने चित्र बनाये हैं, आदि आदि।

क० मु० हिन्दी तथा भाषा विज्ञान विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा का तो मैं एक अग ही हूँ, उसके सचालक विद्वद्वर डा० विश्वनाथप्रसाद का प्रेम और कृपा मुझे सदा प्राप्त होती रही है। वहाँ के प्राध्यापक, विद्यार्थी, तथा अन्य कर्मचारी सभी सदा मेरी कृतज्ञता के पात्र हैं। इसी विद्यापीठ के मुख पत्र 'भारतीय साहित्य' मे इस ग्रथ के कई अश स्वतन्त्र निवन्ध के रूप में प्रकाशित हुए है।

सूर्य नगर, आगरा
जनवरी १, १९६२

—सत्येन्द्र

दिया गया है जो ऐसे अधूरे ज्ञानो पर बने थे। उनके आधार पर खड़े किये गये अध्ययनो से जो धारणाएँ बनी थीं वे आज मानव का कितना हित कर सकती हैं। तात्पर्य यह है कि अब इस दिशा की अधिक उपेक्षा नही होनी चाहिए और भारत मे शीघ्रातिशीघ्र विश्वविद्यालयो मे इस विषय को स्थान मिलना चाहिए तथा अन्य सस्थाओ तथा व्यक्तियो को भी इस दिशा मे विशेष प्रयत्न करना चाहिए। हिन्दी-क्षेत्र मे प्रयाग तथा आगरा विश्वविद्यालय मे इसके अनुसन्धान, अध्ययन-अध्यापन का कुछ विकल्प से प्रबन्ध किया गया है और प्राय यह हिन्दी मे स्नातकोत्तरीय पाठ्यक्रम मे स्थान पाये हुए है। यहाँ भी इसका एक पृथक् विभाग बनना चाहिए। इस पुस्तक से सम्भवत इस विषय की विश्वविद्यालयीय अध्यापन स्तर की सामर्थ्य का कुछ ज्ञान हो सके तो यह ग्रन्थ-लेखन और भी अधिक सफल समझा जायगा।

जो भी हो, अभी इस ग्रन्थ मे पूर्ण वैज्ञानिक विधि की आवर्तन पद्धति का उदाहरण नहीं दिया जा सका। फिर भी जो दिया गया है, मुझे आशा है वह पाठको को उपयोगी सिद्ध होगा। उसके आधार पर नवीन प्रेरणाओ से और नवीन दृष्टियो से किसी और उपयोगी पद्धति की सिद्धि सम्भव हो सकेगी, ऐसा विश्वास है।

इस पुस्तक मे इसी प्रकार और भी बहुत-सी मननीय सामग्री उपलब्ध हो सकेगी। इस पुस्तक के कुछ अश ऐसे हैं जो पहले अन्यत्र भी मेरे किसी ग्रन्थ मे स्थान पा चुके है। कुछ अश ऐसे भी हैं जो किसी विशिष्ट पत्रिका मे भी छपे हैं। वे सभी मूलत इस ग्रन्थ की प्राकल्पना के ही थे। समय-समय पर लिखे गये और जहाँ उपयुक्त समझा गया इनका उपयोग भी किया गया। कुछ अश 'ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन' नामक ग्रन्थ से भी कुछ सशोधनपूर्वक ले लिये गये हैं।

ब्रज के कथा-अभिप्रायो पर एक मौलिक अनुसन्धान डा० सावित्री सरीन ने कलकत्ता विश्वविद्यालय की डी० फिल० उपाधि के लिए प्रस्तुत किया था। उसमे स्टिथ थामसन प्रणाली का प्रथम वैज्ञानिक उपयोग हिन्दी क्षेत्र मे किया गया। यह एक महत्त्वपूर्ण कृति है। इसमे से एक अध्याय हमने इस ग्रन्थ मे उद्धृत किया है। इसकी अनुमति लेखिका ने हमे दी, इसके लिए हम उनके बहुत कृतज्ञ हैं। 'टेपरिकार्डर' विषयक परिशिष्ट हमारे एक विद्यार्थी एस० एल० भट्ट द्वारा लिखा गया है। इटौरा का सर्वेक्षण तथा विहु मेला का विवरण हमारे एक विद्यार्थी श्री परेशचन्द्रदेव शर्मा की 'प्रायोगिक पुस्तिका' से लिये गये है। भगत विषयक प्रश्नावली श्री अरविन्द कुलश्रेष्ठ द्वारा प्रस्तुत की गयी है। श्री नारायण पाण्डे का 'डाकनाम' विषयक लेख दिया गया है। इन सबको मैं क्या धन्यवाद दूं।

कथामानक रूपो और कथा-अभिप्रायो के लिए स्टिथ थामसन की कृतियो का पूरा-पूरा सहारा लिया गया ह। बिना उनके ग्रथो के उपयोग के इन अध्यायो को लिखा ही नही जा सकता था। उनको किन शब्दों मे कितना धन्यवाद दिया जाय। मेरे पास उसके लिए शब्द नही। इसी प्रकार और भी कई विद्वानो के उद्धरण इस

ग्रथ में उपयोग मे आये हैं। उनका सबका यथास्थान उल्लेख हुआ है। मैं उन सबको अपनी हार्दिक कृतज्ञता अर्पित करता हूँ।

इसी सम्बन्ध मे केन्द्रीय सरकार के प्रकाशन 'सस्कृति' का भी उल्लेख करना समीचीन होगा। परिशिष्ट मे एक निबन्ध उसमे से लिया गया है, वह लिखा हुआ तो इन्ही पक्तियो के लेखक का है।

जाने अनजाने और भी अनेको का सहयोग इस ग्रथ को प्रस्तुत करने मे मुझे मिला है किसी ने कोई सामग्री दी है, किसी ने कुछ अशो को टाइप किया है, किसी ने कही-कही अनुवाद मे सहायता दी है, किसी ने कोई ग्रथ बताया है। किसी ने चित्र बनाये हैं, आदि आदि।

क० मु० हिन्दी तथा भाषा विज्ञान विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा का तो मै एक अग ही हूँ, उसके सचालक विद्वद्वर डा० विश्वनाथप्रसाद का प्रेम और कृपा मुझे सदा प्राप्त होती रही है। वहाँ के प्राध्यापक, विद्यार्थी, तथा अन्य कर्मचारी सभी सदा मेरी कृतज्ञता के पात्र हैं। इसी विद्यापीठ के मुख पत्र 'भारतीय साहित्य' मे इस ग्रथ के कई अश स्वतन्त्र निबन्ध के रूप मे प्रकाशित हुए है।

सूर्य नगर, आगरा
जनवरी १, १९६२

—सत्येन्द्र

विषय-सूची

अध्याय पृष्ठ-संख्या

प्रथम अध्याय

लोक-साहित्य

परिभाषा

लोकवार्ता शब्द हिन्दी मे अग्रेजी के 'फोकलोर' शब्द का पर्याय मान लिया गया है। 'फोकलोर' शब्द का निर्माण एक अग्रेज पुरातत्वविद् विलियम जोह्न थाम्स (Thoms) ने सन् १८४६ मे किया था। पहले 'पॉपूलर एण्टीक्विटीज' शब्द प्रयोग मे आता था। पॉपूलर ऐण्टीक्विटीज का अर्थ लोकप्रिय अथवा 'लोकव्याप्त पुरातत्व' था। अव 'फोकलोर' शब्द सर्वत्र ग्राह्य हो गया है।

इसके सम्बन्ध मे अलेक्जेण्डर एच० क्रैप्प (Alexander H Krappe) ने लिखा है कि इस शब्द का दो अर्थो मे प्रयोग किया जाता है (१) लोगो की अलिखित परम्पराओ की सामग्री जो लोकव्यापी (अर्थात् अ-साहित्यिक) कथा-कहानी, रिवाज और विश्वास, जादू-टोना, तथा अनुष्ठान मे मिलती है, एव (२) वह विज्ञान जो इन सामग्रियो का अध्ययन करना चाहता है।

इनके विचार में लोकवार्ता का विज्ञान ऐतिहासिक विज्ञान है। ऐतिहासिक इसलिए कि यह मनुष्य के अतीत पर प्रकाश डालने की चेष्टा करता है और विज्ञान इसलिए कि यह अपना उक्त उद्देश्य अनुमान और कल्पना से अथवा किसी स्वयसिद्ध सिद्धान्त से आगमन करके नही सिद्ध करना चाहता, वरन् उस निगमन (Inductive) प्रणाली से सिद्ध करना चाहता है, जिसका प्रत्येक वैज्ञानिक अनुसधान मे उपयोग किया जाता है।[1]

इससे यह स्पष्ट है कि इस लोकवार्ता या फोकलोर का क्षेत्र वहुत विस्तृत है। 'लोक-साहित्य' शब्द हिन्दी मे मराठी की भाँति लोकवार्ता या फोकलोर का पर्यायवाची नही। श्रीमती दुर्गा भागवत ने लोक-साहित्य का 'फोकलोर' के पर्याय के रूप मे ही उपयोग किया है। वस्तुत लोकवार्ता मे लोक-कलाएँ, लोक-अनुष्ठान, लोक-मार्ग, तथा लोक-साहित्य (Folk Arts, Folk Practices, Folk Rituals, Folk Ways, and Folk Literature) सभी आते हैं। यहाँ यह बात भी समझ लेने योग्य है कि लोक-साहित्य लोक-जीवन की अभिव्यक्ति है, वह जीवन से घनिष्ठ-

---

[1] स्टैण्डर्ड डिक्शनरी ऑफ फोक्लोर आदि, भाग १, पृ० ४०३ निबध 'फोकलोर एण्ड माइथालाजी'।

रूपेण सम्बन्धित है, अत 'लोक-साहित्य' कभी लोकवार्ताओ के अन्य अगो से पृथक नही। विविध लोकगीत तथा विविध लोक-कहानियाँ कुछ अनुष्ठानो से सम्वन्धित रहती हैं। जैसे विशेष व्रतो पर गीत और कहानियाँ अनिवार्यत कही जाती है, उन व्रतो पर भित्ति चित्र भी बनाये जाते हैं, मिट्टी की गौर भी रखकर पूजी जाती है, चन्द्रमा को अर्घ्य भी दिया जाता है, कुछ चीजें द्वार के पास रखकर कूटी भी जाती हैं, और कूटते हुए गीत भी गाये जाते हैं—आदि। इस प्रकार साहित्य लोक-कला (चित्र-मूर्ति), लोकानुष्ठान (पूजन, अर्घ्य) आदि के साथ चलता है। लोकवार्ता के अन्तर्गत ये सभी बातें आयेंगी। लोक-साहित्य लोकवार्ता का एक अग माना जा सकता है। हिन्दी मे 'लोक-साहित्य' के स्वरूप पर यहाँ प्रकाश डाला जा रहा है। इसे हृदयगम कर लेने पर लोकवार्ता से इसका अन्तर भी स्पष्ट हो जायगा।

लोक-साहित्य आज एक पारिभापिक शब्द हो गया है। यह स्पष्टत दो शब्दो का बना है 'लोक' और 'साहित्य'।

वास्तव मे साहित्य को 'लोक' एक नया विशेषण मिला है। भाषा की दृष्टि से साहित्य का भेद हमे विदित है। हम हिन्दी-साहित्य, बँगला-साहित्य, अग्रेजी-साहित्य कहने और समझने के अभ्यस्त हैं। वैसे ही स्थल-भेद से भी साहित्य हमारे लिए अपरिचित नही, भारतीय साहित्य, यूरोपीय साहित्य आदि। भाषा और स्थल के भेद भौगोलिक हैं किन्तु यह लोक-साहित्य किस प्रकार का साहित्य है? 'लोक' विशेषण किसी अन्य प्रकार के साहित्य की सम्भावना मानता है? ये प्रश्न हैं। भारतीय साहित्य मे तो हमे परम्परा से 'लोक' और 'वेद' का कुछ विभेद विदित होता है। लोक-परिपाटी और वेद-परिपाटी, जैसे, दो पृथक परिपाटियाँ हो। महाभाष्य मे लोक-वेद विधि के विरोध को बताने वाले कई स्थल मिलते है, 'वेदान्नो वैदिका शब्दा, सिद्धा लोकाच्च लौकिका, प्रिय तद्धिताच दाक्षिणात्या यथा लोके वेदे चेति प्रयोक्तव्ये यथा लौकिके वैदिके षिति प्रयुजते'। भगवद्गीता मे अतोस्मि लोके-वेदे च प्रथित पुरुषोत्तम [1] आदि।

लोक-वेद का यह पुराना अन्तर यह बताता था कि जो वेद मे स्पष्टत नही है, वह यदि लोक मे हो, अथवा जो वेद मे है उसके अतिरिक्त लोक मे हो वह लौकिक है। 'लोक' अथवा 'लौकिक' शब्द साहित्य मे किसी अवहेलना अथवा उपेक्षा के भाव प्रकट नही करते। किन्तु लोक-साहित्य का 'लोक' वेद से इस भिन्नता को प्रकट करता हुआ भी उस अर्थ को प्रकट नहीं करता जो वह 'लोक-साहित्य' मे करता है, क्योकि वहाँ वैदिक से भिन्न शेष समस्त बातें लौकिक कहलायेंगी। अत वाल्मीकि की रामायण, कालिदास का शकुन्तला नाटक, भारवि, माघ, भवभूति की रचनाएँ सभी लौकिक कोटि की होगी।

---

१ देखिए आप्टे की सस्कृत-अग्रेजी की डिक्शनरी।

वस्तुत इस 'लोक' के अर्थ के लिए हमे अन्यत्र देखना होगा। क्योकि लोक-साहित्य शब्द अग्रेजी का अनुवाद है। यह अग्रेजी के जिस शब्द का अनुवाद है वह है 'फोक लिटरेचर'। 'फोक' का पर्याय 'लोक' है और 'लिटरेचर' का 'साहित्य'।

इस 'फोक' के विषय मे 'ऐनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका' ने बताया है कि 'आदिम समाज में तो उसके समस्त सदस्य ही लोक-'फोक' होते हैं और विस्तृत अर्थ मे तो इस शब्द से सभ्य से सभ्य राष्ट्र की समस्त जनसख्या को भी अभिहित किया जा सकता है। किन्तु सामान्य प्रयोग मे पाश्चात्य प्रणाली की सभ्यता के लिए ऐमे सयुक्त शब्दो मे जैसे 'लोकवार्ता' (फोकलोर), 'लोकसगीत' (फोक म्यूजिक) आदि मे इसका अर्थ सकुचित होकर केवल उन्ही का ज्ञान कराता है जो नागरिक सस्कृति और सविधि शिक्षा की धाराओ से मुख्यत परे हैं, जो निरक्षर भट्टाचार्य हैं अथवा जिन्हे मामूली-सा अक्षर-ज्ञान है—ग्रामीण और गँवार।

हम अपनी दृष्टि से यह कह सकते हैं कि 'लोक' मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो आभिजात्य सस्कार, शास्त्रीयता और पाडित्य की चेतना अथवा अहकार से शून्य है और जो एक परम्परा के प्रवाह मे जीवित रहता है। ऐसे लोक की अभिव्यक्ति मे जो तत्त्व मिलते हैं वे लोक-तत्त्व कहलाते हैं।

लोक-साहित्य—ऐसे लोक का साहित्य ही लोक-साहित्य है। 'साहित्य' शब्द भी कुछ जटिल ही है। सस्कृत मे इसका अर्थ वह नही था जो आज लिया जाता है। वहाँ पहले इसका अर्थ 'काव्य-शास्त्र' किया जाता था। आज यह शब्द अग्रेजी लिटरेचर का पर्याय है। लिटरेचर का सम्बन्ध 'लैटर्स' से है। फलत लिटरेचर के पर्यायवाची 'साहित्य' शब्द के अन्तर्गत ऐसी कृतियाँ ही आ सकेंगी जिन्हें लिखा-पढा जा सके। किन्तु सभी जानते हैं कि लिटरेचर अथवा साहित्य की आत्मा वर्णमाला से बँधी हुई नही है। साहित्य की कोटि की कोई भी सार्थक शब्दावली साहित्य का माध्यम हो सकती है—एक गीत महादेवी वर्मा लिखती या गाती है, एक गीत गाँव की एक बुढिया केवल गाती है। दोनो गीत हैं। आज की साहित्य की परिभाषा मे दोनो को ही स्थान देना होगा। अत साहित्य का अर्थ विस्तृत हो गया है। साहित्य के इस विस्तृत अर्थ मे आज मनुष्य की वह समस्त सार्थक अभिव्यक्ति सम्मिलित मानी जायगी जो लिखित हो या मौखिक हो, किन्तु जो व्यवसाय-क्षेत्र की न हो। ऐसी समस्त लोक-अभिव्यक्ति 'लोक-साहित्य' के अन्तर्गत होगी।

अत लोक-साहित्य की परिभापा यह हो सकती है

परिभाषा—'लोक-साहित्य' के अन्तर्गत वह समस्त बोली या भाषागत अभिव्यक्ति आती हैं जिसमे

(अ) आदिम मानस के अवशेष उपलब्ध हो,[१]

---

[१] वाइ० एम० सोकोलोव ने 'रशन फोकलोर' (अग्रेजी अनुवाद, १९५० न्यूयार्क, अनुवादक कैथराइन रूथ स्मिथ) नामक पुस्तक मे लोकवार्ता की प्रवृत्ति पर विचार करते हुए लिखा है कि "लोकवार्ता की वस्तु और रूप में प्राचीन सस्कृतियो

(आ) परम्परागत मौखिक क्रम से उपलब्ध बोली या भाषागत अभिव्यक्ति हो जिसे किसी की कृति न कहा जा सके, जिसे श्रुति ही माना जाता हो,[१] और जो लोक मानस की प्रवृत्ति मे समायी हुई हो।

(इ) कृतित्व हो किन्तु वह लोक-मानस के सामान्य तत्त्वो से युक्त हो कि उसके किसी व्यक्तित्व के साथ सम्बद्ध रहते हुए भी, लोक उसे अपने ही व्यक्तित्व की कृति स्वीकार करे।

के अवशेषो की उपस्थिति न मानना असम्भव है।" दूसरे शब्दो मे सोकोलोव यह स्वीकार करते हैं कि लोकवार्ता मे पूर्वकालीन 'संस्कृतियो के अवशेष' अवश्य होते हैं। अत लोक-साहित्य मे प्राचीन सस्कृतियो का अवशेष पहला तत्त्व है। हमने यहाँ सस्कृति के स्थान पर 'मानस' शब्द का प्रयोग किया है, क्योकि लोक-साहित्य वाणीगत अभिव्यक्ति है। वाणीगत अभिव्यक्ति मे सस्कृति की छाप को सुरक्षित रखने वाला स्थूल तत्त्व प्राय नही होता। हाँ, उस सस्कृति से जिस मानस का तादात्म्य रहता है वह मानस वाणी मे अवश्य प्रकट होता है। उसी मानस के अनुकूल लोक-साहित्य की वस्तु और उसके रूप प्रकट होते हैं। इसीलिए आदिम मानस विशेष उपयुक्त है। आदिम शब्द भी निजी अर्थ रखता है। वह अग्रेजी के 'प्रिमिटिव' शब्द का स्थानापन्न है। इस आदिम का अभिप्राय केवल ऐतिहासिक दृष्टि से आदिम अथवा आदिम मानव नही वरन् यह शब्द केवल उन गुणो और विशेषताओ तथा धर्मो का द्योतक है जो ऐतिहासिक दृष्टि से 'आदि मानव' मे होगे और जो आज भी आदिम जातियो मे प्रत्यक्षत तथा सभ्य से सभ्य जातियो मे अप्रत्यक्षत मिलते हैं। किसी अग्रेजी कहावत मे बताया गया है कि आदमी को जरा खुरचिए तो आपको पशु दिखायी पड जायगा। किन्तु इससे भी अधिक सत्य यह है कि आज का सभ्य से सभ्य मनुष्य भी अपने आदिम सस्कारो के बीजो को नष्ट नही कर सका है। आदिम मानस से फोकलोर का घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह ओरेलियो एम० एसपिनोजा ने एक ही वाक्य मे स्पष्टता से प्रकट कर दिया है

"Folklore may be said to be true and direct expression of the mind of primitive man"

१ "As it approaches the level of the illiterate and subliteracy, Folklore constitutes a part of our oral culture in the proverbial folk-say and accumulated mother wit of generations that bind man to man and people to people with traditional phrases Folklore derives its integrity and service value from a direct response to and participation in group experience and the passion of the individual and the common sense" B A Batkin (p 399—F Dic)

राल्फ स्टीले वौग्गस ने भी लिखा है कि—

"But fundamentally to the Folklore, their currency must be or have been in the memory of man bequeathed from generation to generation by word of mouth and imitative action rather than by the printed page."

लोक-साहित्य का क्षेत्र

इस दृष्टि से लोक-साहित्य का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो जाता है। आभिजात्य साहित्य तो आज प्राय समस्त ही लिपिबद्ध हो चुका है, और अब तक वही आदर की वस्तु माना जाता था। यह समस्त साहित्य भी विशाल विश्व और उसकी परम्परा को देखते हुए बहुत थोडा है और इसका क्षेत्र बहुत सीमित है। यह बात लोक-साहित्य के सम्बन्ध मे नही।

लोकाभिव्यक्ति के भेद

लोक-साहित्य मे लोकाभिव्यक्ति होती है। इस लोकाभिव्यक्ति के तीन भेद हमे स्पष्ट दिखायी पडते हैं

पहली, शरीर-तोषिणी व्यवसाय प्रधान—ऐसी अभिव्यक्ति जो जीवन की आवश्यकताओ की पूर्ति मात्र के उपयोग मे आती है भोजन, आच्छादन, शरण और भोग सम्बन्धी।

दूसरी, मनस्तोषिणी—ऐसी अभिव्यक्ति जो मन को तोष प्रदान करे। आदिम व्यवस्था मे मन के तोष की अभिव्यक्ति भी व्यावसायिक कोटि की होती थी। मन मे दो भाव मौलिक हैं—आश्चर्य का और भय का। ये प्रवृत्तियाँ सम्पर्क-जात हैं पर-प्रकृति-विषयक। इनसे भिन्न एक मौलिक भाव सहज होता है—यह है 'रति' का। प्रकृति-सम्पर्क-जात दो भावो मे से आश्चर्य का परिणाम था 'ज्ञान' और साधन था 'उत्साह' अथवा वीर-भाव। भय का आधार था अज्ञान। इसी भय के निवारण के लिए जो अभिव्यक्ति का स्वरूप हुआ वह मनस्तोषी ही कहा जायगा। इसने अनुष्ठान का रूप धारण किया। आज के भी टोटके-टमन्ने, लोक-विधि आदि इसी मनस्तोषिणी अभिव्यक्ति के रूप हैं।

तीसरी अभिव्यक्ति मनस्तोषिणी से आगे 'मनोमोदिनी' भी होती है। यह वह अभिव्यक्ति है जिसका मनुष्य की 'मोद' वृत्ति से सम्बन्ध है, 'तोषण' से नही। मानव की तीन ही प्रधान वृत्तियाँ दिखायी पडती हैं—पोषण की, तोषण की तथा मोदन की। पोषण, तोषण और मोदन की लोक-अभिव्यक्तियो का वाणी-रूप लोक-साहित्य के अन्तर्गत आता है।[1]

इस साहित्य की ऊपरी सीमा आभिजात्य[2] साहित्य को स्पर्श करती है और निचली सीमा घोर जगली अभिव्यक्ति मे समायी रहती है।

[1] आदिम काल मे शारीरिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए भी कुछ ऐसी शाब्दिक अभिव्यक्तियाँ होती थी जिनके उच्चारण से यह विश्वास किया जाता था कि वाछित वस्तु प्राप्त हो सकती है। इसी मूल से जादू-टोने और आगे तत्र-मत्र का विकास हुआ, जो आज भी विद्यमान हैं और समाज मे एक विशेष स्तर पर अपना आतक जमाये हुए हैं। ऐसा साहित्य लोक-साहित्य तो है ही, पर विशेषत लोकवार्ता साहित्य है।

[2] आभिजात्य साहित्य को हम मात्र 'साहित्य' भी कह सकते हैं। अग्रेजी-साहित्य, हिन्दी-साहित्य आदि मे 'साहित्य' शब्द से एक विशेष स्तर के साहित्य का बोध

आज का मानव-समाज केवल ऐतिहासिक दृष्टि से ही भूत से सुसम्बद्ध नही, उसका आज का विश्वरूप भी भूत को वर्तमान किये हुए है। मनुष्य का इतिहास उसके स्थापत्य तथा शिल्प-तत्त्वो मे ही निहित नही, जगली मानवो से शिष्ट मानवो तक मे विद्यमान मौखिक अभिव्यक्तियो की परम्पराओ मे भी है। जहाँ इस परम्परा के प्रवाह को छोडकर पूर्ण अहृचैतन्य[1] से युक्त होकर कोई साहित्य निर्मित किया जाता है, वही लोक-साहित्य से भिन्न कोटि का होता है।[2]

इस प्रकार लोक-साहित्य का क्षेत्र बहुत विशद है। अत्यन्त आदिम जगली अभिव्यक्तियो से लेकर शिष्ट साहित्य की सीमा तक पहुँचने वाली समस्त अभिव्यक्ति लोक-साहित्य के अन्तर्गत है।

लोक-साहित्य के रूप और अहृचैतन्य

निर्माता मे 'अहृचैतन्य' का आकस्मिक ही उदय नही होता। अहृचैतन्य का एक क्रम समाज मे विद्यमान है। जगली अवस्था मे अहृचैतन्य नितान्त शून्य होता है। आत्यन्तिक सभ्य अवस्था मे यह चैतन्य पराकाष्ठा पर होता है। इस चैतन्य का कुछ सम्बन्ध जीविका-साधन से है, ऐसा विदित होता है। यह सिद्धान्त नितान्त निराधार तो नही माना जा सकता कि सभ्यता का विकास उत्पादन के साधनो के विकास से सम्बद्ध है। इस सिद्धान्त के आधार पर प्रत्येक ऐसा वर्ग जो किसी विशिष्ट साधन से जीविकोपार्जन करता है एक विशिष्ट अहृचैतन्य का प्रतिनिधि माना जायगा। आज भी ऐसे वर्ग हैं जो किसी ऐतिहासिक साधन को जीविका का आधार बनाये हुए हैं। इतिहास में मानव विकास के क्रम मे हमे विदित होता है कि मनुष्य आरम्भ मे शिकार पर निर्भर रहता था, फल और घास मिलते थे पर इन्हे उद्योग नही कहा जा सकता था। शिकार के उपरान्त पशुपालन, तब कृषि[3] और तब मशीन-उद्योग।

होता है। इस स्तर के कारण ही साहित्यकारो का एक वर्ग बन जाता है। इस वर्ग की कृतियाँ ही साहित्य है। यह सीमितार्थी साहित्य 'आभिजात्य' या 'शिष्ट' भी कहा जा सकता है। इस विशेषण से अभिहित स्तर से भिन्न स्तरो पर भी वाणी-विलास मिलता है। उसे भी हम केवल 'साहित्य' शब्द से द्योतित नही कर सकते हैं। इसी क्षेत्र के वाणी-विलास मे लोक-साहित्य भी आता है। किन्तु जो साहित्य आभिजात्य या शिष्ट स्तर का नही है, उसे 'अशिष्ट' नही कहा जा सकता।

१ 'अहृचैतन्य' व्याख्या चाहता है। निर्माता मे निर्माण के अहृ का चैतन्य जब जाग्रत रहता है तब ही वह साहित्य 'आभिजात्य साहित्य' की सीमा मे आता है।

२ हीन मेधा द्वारा लिखे गये अहृचैतन्य से निर्मित रचनाएँ लोक-साहित्य मे परिगणित नहीं होगी जैसे 'चन्द्रकान्ता' उपन्यास के अनुकरण पर लिखे गये सूर्य-कान्ता आदि।

3 यद्यपि फ्रान्ज बोआज ने लिखा है कि "With this we are led to a question of fundamental importance for the theory of a unilinear evolution what is the chronological relation between agriculture and trading When we approach this question from a psycho-

आज शिकार करने वाली जातियाँ भी हैं। ये बहुधा जगलो मे हैं। पशुपालन और कृषि का सम्बन्ध गाँवो से है, मशीन उद्योग मे नगर स्थित हैं। फलत मोटे रूप मे 'अहचैतन्य' की तीन अवस्थाएँ ही होती है—जगली, ग्रामीण तथा नागरिक। अह-चैतन्य की इस क्रमस्थिति मे कितनी ही अन्य स्थितियाँ होना स्वाभाविक है।
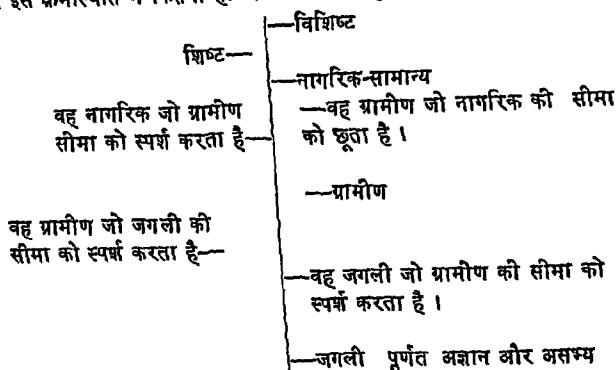
logical view-point the difficulty arises that we are no longer dealing with one single type of occupation carried on by the same group but that we have two occupations distinct in technique and carried on by distinct groups The activities leading to the domestication of animals have nothing in common with those leading to the cultivation of plants There is no bond that makes plausible a connection between the chronological development of these two occupations It is missing because the persons involved are not the same and because the occupations are quite distinct From a psychological point of view there is nothing that would help us to establish a fine sequence for agriculture and trading"

किन्तु लेखक एक बात पर ध्यान देना भूल गया है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि-कोण का सर्वथा अभाव कभी नही हो सकता। पशुपालन और कृषि के ऐतिहासिक क्रम को समझने के लिए आज हमे कोई इतिहास या पुरातत्त्व के पदार्थ नहीं मिल सकते पर मनोस्थिति को हम आज भी समझ सकते हैं। कृषि के लिए स्थायी निवास और प्रतीक्षा तथा धैर्य की अपेक्षा है। जैसा बोआज ने बताया है कि कृषि का सम्बन्ध स्त्रियो से होना चाहिए पशुपालन का पुरुषो से, यह आशिक सत्य है, पूर्ण सत्य नही। कृषि की आदिम अवस्था फल-सग्रह (Fruit gathering) से स्त्रियाँ सम्बन्धित मानी जा सकती हैं पर कृषि से नही। कृषि एक कठिन कर्म है और जटिल भी। पशुपालन एक साधारण सरल व्यापार है जिसमें पशु स्वय भी पालक को सहायता पहुँचाता है। कृषि ऐसा नही। इसके लिए स्थायी निवास और धैर्य तथा जटिल साधनो का उपयोग तथा अधिक समय अपेक्षित है। अत यह पशुपालन से सस्कृति के विकास-क्रम मे आगे की सीढ़ी के रूप मे ही उपस्थित हो सकता है।

ये सभी स्थितियाँ आज के जटिल समाज मे किसी न किसी रूप मे पृथक-पृथक वर्गो मे ही नही, एक ही वर्ग मे एक साथ ही स्थित मिल जाती हैं।[१] पृथक-पृथक वर्गों की वात तो सहज मान्य है। शिकारी जगली जातियाँ आज भी पहाडो और घने जगलो मे हैं। पशुपालन के लिए घूमने वाले अथवा पशुपालन मे ही दक्ष जातियो के वर्ग शहरो और गाँवो के छोरो पर मिल जाते है। इसके अतिरिक्त भी अन्य कितनी ही घुमक्कड जातियाँ आज यहाँ विद्यमान हैं। अत आज का समाज यो ही जटिल है। किन्तु सवसे अधिक जटिलता वहाँ दिखायी पडती है, जहाँ एक ही वर्ग मे विभिन्न स्थितियाँ एक साथ चलती दिखायी पडती हैं। भारत के किसी घर मे प्रवेश करके उसमे होने वाले प्रत्येक कृत्य और सस्कार पर ध्यान दीजिए तो एक अनोखा वैविध्य दिखायी पडेगा।

भारतीय घर और समाज

किन्तु भारतीय घर और समाज मे एक अनोखे वैपम्य अथवा वैविध्य मे भी सामजस्य मिलता है। उसमे प्रत्येक अनुष्ठान मे कितने ही तत्त्वो का सयोजन मिलता है। एक सामान्य भारतीय घर का अध्ययन करके ही एक प्रकार से भारत की सस्कृति के पर्तों का अनुमान लगाया जा सकता है। भारतीय घर की ही भाँति समस्त समाज का रूप वनता है। भारतीय घर के इन पर्तो पर दृष्टि डालें तो पहला स्तर टोने-टोटको का मिलेगा। किसी भी प्रकार का अनुष्ठान हो, कोई सस्कार हो, कोई उत्सव हो, एक न एक टोना या टोटका उसके साथ लगा हुआ होगा।[२] दूसरे स्तर

---

१ लेवी व्रुह्ल नाम के विद्वान ने आदिम मनोवृत्ति विपयक पुस्तक मे आदिम विकार के दो तत्त्वो को स्वीकार किया था। उसने माना था कि आदिम मानस विवेक-पूर्वीय होता है और रहस्यशील होता है। विवेकपूर्वीय वह इसलिए होता है कि वह विपमीकरण के नियम (law of contradiction) से अवोध रहता है, फलत वह दो विपम विचारो या भावो को एक साथ स्वीकार करने मे भी हिचकता नही और उनमे उसे कोई असम्भावना नही प्रतीत होती। वह रहस्य-शील इसलिए होता है कि अनुभव की वातो की व्याख्या वह अधिकाशत परा-प्राकृत के द्वारा करता है, प्राकृतिक कारणो से नही। फ्रेजर ने 'गार्नर्ड शीव्स' मे लेवी व्रुह्ल की इस मान्यता को स्वीकार कर लिया है कि आदिम मानव की विशेपता है कि वह विवेकपूर्वीय और रहस्यशील होता है किन्तु उसके साथ ही यह टिप्पणी दी है कि इसके अर्थ यह नही हैं कि शिष्ट मानस इन दोनो से मुक्त होता है। आदिम मानस और शिष्ट मानस मे केवल कोटि-क्रम (degree) का ही अन्तर है, प्रकार का अन्तर नही।

२ किसी भी त्यौहार को लिया जा सकता है। उसका वह आनुष्ठानिक अश जो स्त्रियो द्वारा सम्पादित होता है, रीढ होगा और उसमे आदिम भावना का वीज होगा। दिवाली को चित्रित करना, स्याहू पूजा, गौर पूजा और दौज की कहानी दिवाली के त्यौहार की रीढ हैं। इसी प्रकार प्रत्येक हिन्दू त्यौहार मे यह रीढ दिखायी पडेगी। (विशेप विस्तार के लिए दिवाली की लोकवार्ता इसी अध्याय के परिशिष्ट मे पढिए।)

पर दई-देवताओ की भावना। इन दई-देवताओ मे पितरो की मृतात्माओ, भूत-प्रेत-हवाएँ, सन्त, फकीरो की मृतात्माएँ, मसान, विविध देवियाँ, तथा अनेक अन्य देवता सम्मिलित हैं। इनमे से एक पर्त पर देवताओ को निवारण करने के लिए टोटके रहते हैं। दूसरे पर्त पर उनकी पूजा रहती है। इनके ऊपर सामान्य धार्मिकता का वातावरण रहता है, तब शास्त्रीय धार्मिक आनुष्ठानिकता का सत्कार होता है। उसके ऊपर एक ही घर मे वह जागरूक धार्मिक मतवाद मिलेगा जो दार्शनिक सिद्धान्तो को ग्रहण करता है। इसी से सवप करता हुआ सुधारवृत्ति का संस्कार भी दिखायी पडेगा, जो प्राचीन मान्यताओ और विश्वासो के मूल तात्पर्य और रूप की तो रक्षा करेगा, पर उसे पोशाक समय की प्रवृत्ति के अनुकूल पहना देगा। इसी घर मे आप को एक घोर वैज्ञानिक विचारशील और विवेकशील स्तर भी मिल सकता है।

भारतीय घर मे प्रत्येक स्तर के अनुकूल चित्र-रचना, मूर्तिविधान, कथा-कहानी, सगीत तथा नृत्य, पूजा-पाठ, भोजन-व्यवस्था, शरीर तथा गृह की सज्जा आदि तत्त्व भी मिलेंगे। यों प्रत्येक अनुष्ठान के साथ जीवन की अभिव्यक्ति के प्रत्येक रूप की किसी न किसी विधि से प्रतिष्ठा होगी और उसमे प्रत्येक स्तर के स्वरूप का अपना अलग इतिहास झाँकता दिखायी पडेगा।

यही जीवन शोधन की नयी प्रणालियाँ भी साथ-साथ मिलेंगी। घोर पदार्थ-वादी दर्शन और बौद्धिकता मे विश्वास, नये से नये विचारक के ग्रन्थ, चाय पार्टियाँ और सिनेमा-दर्शन, टेविल, कुर्सी आदि सब कुछ, यह सब एक ही घर मे मिलेगा।

निष्कर्ष—इस विवरण से यह स्पष्ट है कि भारत मे विस्तार-व्यापी दृष्टि से भी वैविध्य और वैपम्य है, आदिम कही जाने वाली जातियाँ जगलो और पहाडो मे हैं, ग्रामीण कही जाने वाली गाँवो मे और अत्यन्त सभ्य तथा सुसस्कृत नगरो तथा शहरो में। और एक ही घर को देखा जाय, सभ्य और सुसस्कृत घर को भी तो उस एक घर मे भी विचित्र वैविध्य और वैपम्य मिलेगा। यह वैविध्य और वैपम्य सास्कृतिक है, जिसमे लोक-तत्त्व अनिवार्यत विद्यमान मिलता है। अत लोक-तत्त्व के अध्ययन के लिए हमे विस्तार व्यापी अथवा क्षितिजीय (Horizontal) अनुसन्धान ही नही करना, गहरा अर्थात् तलगामी (Perpendicular) अध्ययन भी करना होगा। (देखिए इसी अध्याय का परिशिष्ट २)

लोक-साहित्य का कोटिक्रम—जब यह सिद्ध हो गया कि लोक जीवन की अभिव्यक्तियो का अध्ययन क्षितिजीय (horizontal) ही नही होना चाहिए, वरन् तलगामी (perpendicular) भी होना चाहिए तो एक दृष्टि मे हम देखेंगे कि लोका-भिव्यक्ति के वाणी-रूप 'साहित्य' का प्रत्येक समाज मे क्रमश कुछ वह कोटि-क्रम होगा जो पृष्ठ १० के चित्र मे दिया गया है।

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि आज भी हमे आदिम से लेकर शिष्टतम मनोवृत्ति तक से निसृत साहित्य एक साथ प्राप्त है। तब किस साहित्य को क्यो लोक-साहित्य कहा जाय, यह जान लेना आवश्यक है। साहित्य मे अहचैतन्य के

पूर्ण अहंचैतन्य
उच्च शिष्ट साहित्य
काव्योक्तियाँ
रसोक्तियाँ
आत्मनिवेदिनी गीतियाँ-
भक्ति समर्पण के गीत
आत्म प्रबोधिनी गीतियाँ-
ज्ञान- वैराग्य के गीत
प्रतियोगी गीतियाँ-
ख्याल
भिक्षार्थ गीतियाँ-
सरमन, भैरो,
मोदिनी गीति गोष्ठियाँ-
रसिया
उद्योग और श्रम सहवर्ती
गीत-ध्वनियाँ- पुरहे के गीत
मोदिनी वार्ताएँ-
नानी की कहानियाँ
उपयोगी वार्ताएँ
चुटकुले
आनुष्ठानिक
गीत कहानियाँ-
संस्कारों और त्यौहारों
के गीतादि
प्रकृति-प्राधान्य = संकीर्णमन = व्यावसायिक
अहं चैतन्य
हृदय-प्रकृति-प्राधान्य = तादात्म्यानुभूतिक मन = सामूहिक
अहं चैतन्य
जड़ चैतन्य प्रकृति-प्राधान्य = सहजानुभूतिक मन =
सहज अहं चैतन्य
मानव-प्रकृति-प्राधान्य = सामाजिक मन
= सामान्य अहं चैतन्य
मानवेतर प्रकृति-प्राधान्य = आदिम मन =
शून्य अहं चैतन्य

इस कोटिक्रम पर दृष्टि डालने से एक आंशिक अहृचैतन्य की अवस्थिति का पता चलता है। इस अहृचैतन्य मे चैतन्य का कोई न कोई प्रकार रहता है। किन्तु वह पूर्ण अहृचैतन्य तक अवैज्ञानिक रहता है। अवैज्ञानिक अहृचैतन्य मे लोक-तत्त्व किसी न किसी रूप मे अवश्य ममाविष्ट हो जाता है। लोक-तत्त्व जहाँ-जहाँ प्रधानता से विद्यमान है वहाँ लोक-साहित्य स्वीकार करना होगा। यो भी देखा जाय तो लोक-तत्त्व किसी न किसी मात्रा मे प्रत्येक युग के उच्च साहित्य मे भी मिलता ही है। भारत में तो इसकी और भी प्रवलता है। किन्तु ऐसे उच्च साहित्य मे लोक-तत्त्व प्रेरणा अथवा आधार का काम देता है, प्रधानता ग्रहण नही करता। क्योकि यदि साहित्य की अभिव्यक्ति के समस्त अगो का विश्लेषण करके देखा जाय तो विदित होगा कि कुछ विशिष्ट अग ही अहृचैतन्य से सपृक्त होते हैं।

अभिव्यक्ति के अग—किसी भी अभिव्यक्ति के निम्नलिखित अग होते हैं

(१) सामग्री (२) सामग्री का विन्यास (३) विन्यास-शिल्प (४) अभिप्राय-ग्रथन (५) अर्थ-द्योतन (६) कथन-शैली (प्रतिपादन शैली, भाषा शैली) (७) व्याप्त मनोस्थिति।

उदाहरणार्थ (१) राम चरित्र सामग्री है, (२) उस चरित्र का ढाँचा कैसा हो यह विन्यास है, (३) उस ढाँचे मे सौष्ठव कैसे लाया जाय यह विन्यास-शिल्प है, (४) उस ढाँचे मे किन घटनाओ, तत्त्वो तथा अभिप्रायो (motifs) को किस प्रकार कहाँ रखा जाय यह अभिप्राय-ग्रथन है, (५) इसके द्वारा क्या अथ प्रकट करना है यह अर्थ-द्योतन है, (६) समस्त सामग्री और अर्थ को किस विधि से अधिकाधिक उत्कर्प-युक्त प्रेषणीयता प्रदान की जाय यह कथन-शैली का धर्म है। अभिव्यक्ति के इस समस्त क्रम मे एक मनोस्थिति का व्याप्त रहना अनिवार्य है।

वस्तुत यह व्याप्त मनोस्थिति ही सबसे प्रमुख तत्त्व है। इससे कला का रूप तो नहीं निर्धारित होता, साहित्य का प्रकार निर्धारित हो सकता है। साधारणत इस व्याप्त मनोस्थिति से ही शेष समस्त अग प्रभावित हो जाते हैं। फिर भी किसी अन्य साहित्यिक रचना मे, विन्यास-शिल्प, अर्थ-द्योतन और कथन-शैली मे ही लोक-साहित्य से भिन्नता दीख पडती है। इन्ही मे अहृचैतन्य की परिपूर्णता दिखायी पडती है, शेष मे अर्थात् सामग्री, सामग्री का विन्यास, अभिप्राय-ग्रथन मे तो उसे लोकप्रियता की दृष्टि से लोक-साहित्य की सामग्री का उपयोग करना आकर्षक प्रतीत होता है।

इस प्रकार साहित्य के प्रकार को निर्धारित करने के लिए हमे इस व्याप्त मनोस्थिति को देखना होगा। लोक-साहित्य मे व्याप्त मनोस्थिति को लोक-मानस कहा जा सकता है।

अत हमे लोक-साहित्य के यथार्थ स्वरूप के ज्ञान के लिए इन सभी अगो मे व्याप्त मानस को भी समझना आवश्यक है। लोक-साहित्य लोक-वार्ता का एक अश है। लोकवार्ता मे भी लोक-मानस की ही व्याप्ति रहती है।

प्रथम अध्याय का परिशिष्ट

दिवाली और लोकवार्ता

दिवाली के त्यौहार का समारोह कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी से ही आरम्भ हो जाता है और कार्तिक शुक्ल द्वितीया तक चलता है। प्रत्येक दिन एक विशेष निमित्त लिये रहता है। **धन तेरस** को कोई नया वर्तन खरीदा जाना चाहिए। दूसरे दिन **नरक चौदस** को तैल-मर्दन करके स्नान करना अनिवार्य है, अन्यथा नरक मिलेगा। इसे **छोटी दिवाली** भी कहते हैं। तीसरा दिन ही दिवाली का दिन है। यह दिन दीपदान का है। इस दिन अमावस्या होती है। प्रतिपदा को गाय-वैलो के साथ **गोवर्द्धन पूजा** होगी और दौज को वहिन द्वारा भाई का तिलक और सत्कार होता है।

यो तो प्रत्येक दिन का त्यौहार एक अलग त्यौहार है, फिर उनमे परस्पर एक सगति भी है। इनमे मुख्य अनुष्ठान तो दीपमालिका के दिन का लक्ष्मी-पूजन ही ठहरता है। पहला दिन त्रयोदशी अनुष्ठान के लिए पात्र तथा आवश्यक सामग्री खरीदने के लिए है। चतुर्दशी अनुष्ठान-पूर्व के स्नान और शुचि के लिए। तव अमावस्या को इष्ट पूजन, अनन्तर गो-पूजन तथा आयुध-पूजन प्रतिपदा को, और तव अन्तिम दिन भोजन तथा भेट आदि।

मुख्य उत्सव तथा अनुष्ठान का प्रधान अग दीपदान है, लोकवार्ता मे दीपदान का वहुत महत्त्व है।

नटेश शास्त्री ने दक्षिणी भारत की एक वार्ता मे वताया है कि प्रकाश से समृद्धि आती है। उन्होने जो कहानी दी है उसका सार यह है

गरुड पक्षी किसी राजा की अँगूठी उडा लाया। वह अँगूठी उसने एक सगुनी के घर मे डाल दी। वह उसे लेकर राजा के पास गया। राजा अँगूठी पाकर वहुत प्रसन्न हुआ। उसने कहा—कुछ माँग। राजा का हठ देखकर उस व्यक्ति ने विचित्र माँग रखी कि प्रति शुक्र को सव घरो मे अँधेरा रहे केवल मुझे ही अपना घर प्रकाशित करने दिया जाय। राजा ने स्वीकार कर लिया। शुक्रवार को समस्त राज्य मे अँधेरा देखकर लक्ष्मी उस सगुनी के घर मे ही आयी। इस प्रकार उसकी दरिद्रता सदा के लिए दूर हो गयी।

ऐसी ही एक वार्ता व्रज मे भी प्रचलित है।

एक राजा ने यह आदेश प्रचारित किया कि कार्तिक की अमावस्या को किसी के घर मे रोशनी नही की जायेगी। सवने राजाज्ञा का पालन किया। किन्तु एक

भटियारिन थी, उसने छिपा के अपने घर मे दीपक जलाया। रात मे लक्ष्मी सर्वत्र अँधेरा देखकर भटियारिन के घर मे ही आयी। भटियारिन ने अपने किवाड तब खोले जब लक्ष्मी से वचन ले लिया कि वह कभी उसके घर को छोडकर नही जायगी। लक्ष्मी प्रकाश मे ही रह सकती थी। उसे वचन देने पडे। इस प्रकार दरिद्रता भाग गयी।

कहानी का नटेश शास्त्री वाला रूप बहुत प्रचलित है। उसमे केवल थोडा हेर-फेर स्थान-स्थान पर मिलता है। यथा बगाल मे लक्ष्मी-पूजा की एक कहानी मे राजपुत्री ने वरदान माँगा कि उसके घर को छोड कार्तिकी अमावस्या को और किसी के घर प्रकाश न हो। राजपुत्री का राजा ने एक बहुत दरिद्र से विवाह कर दिया था। राजपुत्री ने अपने पति से कहा था कि तुम्हे मार्ग मे जो वस्तु मिले ले आना। उसे एक मरा हुआ साँप मिला। राजपुत्र बीमार हुआ और वैद्यो ने बताया कि मरे साँप के सिर से यह अच्छा हो सकता है। राजपुत्री मरे साँप का सिर ले गयी, राज-पुत्र अच्छा हो गया, और तब राजपुत्री ने वह वरदान माँगा। राजपुत्री के लक्ष्मी आ गयी। बगाली कहानी इससे आगे बढकर यह बताती है कि राजा दरिद्र हो गया और पुत्री के यहाँ भिक्षार्थ पहुँचा। उसने पिता को पहचाना और लक्ष्मी-पूजा की विधि बतायी, आदि। अवध मे दिवाली की कहानी की भूमिका मे एक ऐसा घर है जिसमे सात लडके और छ बहुएँ थी, सबके अलग-अलग चूल्हे थे। सब लडते थे। सातवी बहू आयी तो उसने एक चूल्हा किया। पहली छ मायके चली गयी। वह अकेली सब भाइयो को खिलाती। उसने कहा सभी भाई कमा-कमाकर लाओ, जिसे कमाई न मिले, वह कोई चीज ही लाये। एक दिन सबसे बडे भाई को काम नही मिला तो वह रास्ते मे पडे साँप की केंचुली ही उठा लाया। बहू ने वह छप्पर पर रख दी, एक चील रानी का हार लेकर उडी, और बहू के घर पर केंचुली देख, हार छोड गयी, केंचुली ले गयी। बहू ने हार राजा को लौटाया और वह वरदान माँगा। अवध की बहू चतुर थी। उसने उस अमावस्या को खूब रोशनी की, घर के कोने-कोने मे। कोने-कोने को मूसल से पीटा। दरिद्र भाग गया। प्रकाश देखकर लक्ष्मी आ गयी। दोनो से बहू ने वचन ले लिया कि सात पीढी तक दरिद्र इधर झाँकेगा नही और लक्ष्मी घर छोडकर नही जायेगी। अत यही प्रकाश और लक्ष्मी का सम्बन्ध दिखाने वाली लक्ष्मी की वास्तविक कहानी बडे क्षेत्र मे प्रचलित है।

मिस्र मे ईसा पूर्व के तीस वर्ष से भी पूर्व एक दीपदान महोत्सव हुआ करता था। यह महोत्सव ओसिरिस के लिए किया जाता था। इसका वर्णन हेरोडोटस तथा प्लूटार्क ने किया है। प्लूटार्क ने जिस प्रकार से इसका वर्णन किया है उससे विदित होता है कि यह उत्सव चार दिन तक लगातार होता था और इसकी तारीखें १३, १४, १५, १६ नवम्बर होती थी। यह उत्सव उस समय होता था जब नील नदी मे पानी घटने लगता था, उत्तरी हवाएँ शिथिल पड जाती थी, रातें बडी होने लगती थीं, और पेडो से पत्ते झडने लगते थे। ओसिरिस के इस महोत्सव का महत्त्वपूर्ण अग

था—रात्रि मे दीपमालिका। लोग तेल के दीपो की माला अपने मकानो के बाहरी भाग मे प्रज्ज्वलित करते थे, और ये दीप रात भर जलते थे। यह दीपमालिका इस दिन मिस्र भर मे होती थी।

फ्रेजर महोदय ने हेरोडोटस, प्लूटार्क, लक्टण्टियस के कथनो तथा डेण्डेरा के भित्ति-लेख से यह सिद्ध किया है कि यह उत्सव तीन पहलू रखता था—ओसिरिस की मृत्यु, उसका अगच्छेदन, और पुनरुज्जीवन। इस समस्त व्यापार का प्रतीक होता था—जौ बोना। भूमि मे जौ बोना जैसे मृत ओसिरिस को दफनाने के समान था। जल आदि देकर जौ का फूटना दूसरी स्थिति थी, और जौ के अकुरित होने की अवस्था पुनरुज्जीवन की द्योतक थी। इस प्राचीन उत्सव मे दीपदान का सम्बन्ध स्पष्टत पुनरुज्जीवन से प्रतीत होता है, पुनरुज्जीवन कृषि-देवता का अथवा स्वय कृषि का। भारत मे लक्ष्मी के पूजन मे खील-बतासो का उपयोग अनिवार्य है।

ओसिरिस की पत्नी का नाम 'ईसिस' है, जिसे हरी वस्तुओ का निर्माता, रोटी की देवी, सुरा की देवी, समृद्धि की देवी कहा गया है। ईसिस ही ओसिरिस को पुनरुज्जीवित कराके पुन प्राप्त करती है। ईसिस लक्ष्मी के स्थान पर है और ओसिरिस शस्य या शस्य-देवता अथवा उर्वरता का देवता है। उस दीप-दान को ईसिस की पूजा मे भी समझा जा सकता है, क्योकि वही ओसिरिस को खोजकर प्राप्त करती है। ईसिस को गायें वहुत प्रिय हैं। अत गाय उसका प्रतीक हो गयी है। इस उत्सव मे ईसिस को लकडी की गाय के रूप मे दिखाया जाता था। यह ईसिस भारतीय अदिति प्रतीत होती है।

१ द्यौर्वं पिता पृथिवी माता (ऋ० १ १६१ ६)=Osiris and Isis, Brother and sister, children of Geb, the earth God and Nut the sky Goddess (Folklore Dictionary, p 835)।

२ ऋग्वेद मे अदिति को धेनु कहा गया है (१,१५३,३) "अदितिर्हि गौ (श १४, २, १, ७, २, ३, ४, ३४) "The cow no doubt represented Isis Herself, for cows were sacred to her and she was regularly depicted with the horns of a cow on her head, or even as a woman with the head of a cow" (Golden Bough, p 373)—कही अदिति को गाय ही न समझ लिया जाय, इसलिए ऋग्वेद ने कहा "वचोविद वाचमुदीरयन्ती विश्वाभिर्धी भिरुपतिष्ठयानाम्। देवी देवेभ्य पर्येयुषी। गामा मावृक्त मर्त्ये दभ्रचेता।" "अदिति गौ मात्र नही वह देवी है, वाक् विद है।" ऋग्वेद ६,७४-५ मे कहा गया है—"दधाति गर्भमदितेरुपस्थे आ येन तोक च तनय च धामहे।" यह सोम के द्वारा होता है। सोम कौन? सोमा भ्रातादिति स्वहा—सोम भाई अदिति वहिन। "Osiris and Isis Brother and sister . . lived together in happy Marriage (Folklore Dictionary, p 835)। लोकवार्ता के मर्म पर दृष्टि डालने से विदित होता है कि

ईसिस की पूजा और लक्ष्मी की पूजा वस्तुत अदिति की पूजा है, पृथ्वी माता की पूजा है। उसके उस रूप की पूजा है जिसका उर्वरत्व से और समृद्धि से सम्बन्ध है। समृद्धि पुन प्राप्त हो, दारिद्रय नष्ट हो, यही इस पूजा के तन्त्र का मूल है। महाराष्ट्र मे स्त्रियाँ बलि की मूर्तियाँ चावल के आटे अथवा गोबर से बनाती हैं, उसे पूजती हैं और यह कहती हैं—"सब बुराइयाँ दूर हो और राजा बलि का साम्राज्य पुन प्राप्त हो।"[१] मिस्र मे हजारो वर्ष पूर्व वनस्पतियो के गूदे मे ओसिरिस की मूर्ति चन्द्रमा के रूप की बनायी जाती थी, उसे वस्त्राभूषण पहनाये जाते थे। यह ओसिरिस की पुन प्राप्ति का प्रतीक थी।

यह शश्यदेव, यह शश्य देवी, यह गाय, और यह रात्रि पर्यन्त दीपमाला, शरद ऋतु मे जबकि रातें बडी होने लगती हैं अत्यन्त प्राचीनकाल मे भी दीपमालिका का महत्त्व सिद्ध करते हैं।

फ्रेजर महोदय ने इसी दीपमाला के सम्बन्ध मे लिखा है कि

"वर्ष मे एक रात को घरो को ऐसा सार्वजनीन रूप से प्रकाशपूर्ण करने की प्रथा से यह सकेत मिलता है कि यह उत्सव केवल मृत ओसिरिस के ही स्मरण से नही होता होगा, वरन् मृत मात्र के लिए होता होगा, दूसरे शब्दो मे यह समस्त आत्माओ की रात होती होगी। क्योंकि यह एक अत्यन्त व्यापक विश्वास है कि मृत की आत्माएँ वर्ष मे एक रात को अपने पुराने घर को देखने आती हैं, और ऐसे अवसर पर लोग इन आत्माओ के स्वागत की तैयारी मे, उनके लिए भोजन तैयार करते थे तथा दीपदान करते थे, जिससे उन्हें मजारो से घर तक के मार्ग का निर्देश मिल सके।"[२]

दिवाली के इस चार दिन व्यापी त्यौहार के अन्तिम दिन पर जब ध्यान जाता है तो विदित होता है कि एक भइया दौज अथवा यम द्वितीया है और इस दिन भाई-बहिन का यमुना स्नान करना अत्यन्त शुभ माना जाता है। मथुरा मे इस यमद्वितीया को लाखो भाई-बहिन स्नान करने के लिए देश भर से आते हैं। इस भाई-बहिन के स्नान के साथ एक बात और जुडी हुई है कि इस दिन भाई-बहिन गाँठ जोडकर स्नान करते हैं। एक बात की ओर और ध्यान जाता है। ब्रज मे चौदस या छोटी दिवाली के दिन जो दीपक आटे का बनाकर द्वार के बाहर रखा जाता है वह जमदीप या यम का दीपक कहलाता है। चौदस को यम का दीपक रखना प्रतिपदा को गोवर्धन अथवा गाय बैल की पूजा, दौज को भाई-बहिन का यमुना स्नान और बहिन का भाई को तिलक और स्त्रियो द्वारा गौर-पूजा इस बात की ओर सकेत करते हैं कि इसकी जड मे यम-पूजन का भाव भी अवश्य है। यम मृत्यु के देवता हैं। ओसिरिस भी

---

१ रायबहादुर बी० ए० गुप्ते हिन्दू होलीडेज एण्ड सेरीमोनियल्स, पृ० ३६।

२ देखिए फ्रेजर गोल्डनबाउ (सक्षिप्त सस्करण) मेकमिलन एण्ड क० लि० सैण्ट-मार्टिन्स स्ट्रीट, लन्दन, १९५०, पृ० ३३७-७४।

मृत्यु के देवता हैं।[1] मिस्र के ओसिरिस भारत के यम हैं—ऐसा प्रतीत होता है। सूर-सागर के एक पद मे आया है

दीपमालिका रचि-रचि
पुहुप माल मडली विराजत
× ×
घर घर देति जुवति जम हाथा[2]
पूजा देखि हँसत ब्रजनाथा।

इससे दिवाली और यम-पूजा का भी घनिष्ठ सम्बन्ध दिखायी पडता है। यदि मिस्री लोकवार्ता की दृष्टि से समझा जाय तो ओसिरिस यम भी है और कृषि देवता भी है। ईसिस गौ-प्रेमी ही नही स्वय गौ मान ली जाती है। ईसिस को अदिति माना जाय तो वेदो मे भी अदिति को गौ माना गया है। प्रतिपदा के दिन गौ-पूजा दिवाली के दिन की पूजा की ही गोवर्द्धन के रूप मे विवृत्ति है। द्वितीया के दिन भाई-वहिन का मिलन ईसिस और ओसिरिस के मिलन के समान है, उस समय के मिलन के समान है जिस समय कि ईसिस ओसिरिस के अशो को जोडकर उसे पुनरुज्जीवित रूप मे प्राप्त करती है।

इस विवेचन से इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि दीपमालिका की लोक-वार्ता के मूल तन्तु बहुत प्राचीन हैं और बहुत बडे क्षेत्र मे व्याप्त हैं। ओसिरिस, ईसिस, अदिति, यम की पूजा के प्राचीन तन्तुओ पर इन्द्र-पूजा का पर्त चढा। साहित्यिक साक्षी से विदित होता है कि गोवर्द्धन-पूजा से पहले इन्द्र-पूजा प्रचलित थी। इसके ऊपर कृष्ण ने गोवर्द्धन पूजा चलायी। ऊपर जो सकेत हमे मिले हैं उनसे यह कहा जा सकता है कि ओसिरिस, ईसिस आदि का जिस प्रकार कृषि-सवर्द्धन से सम्बन्ध था उसी प्रकार गौ सवर्द्धन से भी था। अत गौ-पूजा और गौ सम्बन्धी अन्य अनुष्ठान अत्यन्त प्राचीन परम्परा के हैं। ऐसी स्थिति मे इन्द्र-पूजा ही बाद मे उक्त अनुष्ठान से जुड गयी होगी। इसीलिए कृष्ण ने उसे मूल परम्परा की जाति से भिन्न जाति की पूजा समझकर उसका निवारण कर दिया होगा और गोवर्द्धन-पूजा को पुन महत्त्व दिया होगा। इस समस्त लोकवार्ता मे एक तत्त्व ऐसा है जो सुलझा हुआ नही है। प्रतिपदा के प्रात ब्रज मे सूर्योदय के पूर्व से लेकर सूर्योदय तक घर की स्त्रियाँ स्याहू पूजती हैं। इसमे वे बीच मे गोवर का एक पिण्ड स्थापित करती हैं और सूप मे सीकें, रुई, हल्दी और खील, दो पूडियाँ, लड्डू आदि लाती है। सीको को वे उस पिण्ड मे लगाती हैं और उसके ऊपर हल्दी मे भिगोकर उसके सिरे पर रुई लगाती हैं। देवी-देवताओ के वहुत

---

१ Osiris, The king and Judge of the dead of ancient Egyptian religion chief deity of the cult of the dead, and thus the great cult God of Egypt (Folklore Dictionary, Vol II, p 835)

२ काशी वाली प्रति मे सम्पादको ने 'जम' को 'जन' लिखा है। यह पाठ-भेद मुझे ठीक नही प्रतीत होता।

से गीत गाये जाते हैं। यह स्याहू क्या है ? और इसका क्या अभिप्राय है ? यह अभी तक स्पष्ट नही। व्रज-लोक साहित्य का अध्ययन करते समय स्याहू के सम्बन्ध मे ये पक्तियाँ लिखी गयी थी

"स्याहू के सम्बन्ध मे व्रज के गाँवो मे एक प्रचलित मत है कि यह एक स्याँपिन है। भाषा-विज्ञान की दृष्टि से भी यह असम्भव नही। सर्प से साँप—स्याँपु—स्याउ—स्याऊ—स्याउ—स्याहू यह व्युत्पत्ति हो सकती है। अहोई आठें को जो भित्ति-चित्र स्त्रियाँ पूजने के लिए बनाती हैं उनमे भी सर्प-आकृतियाँ बनायी जाती हैं। दिवाली के उपरान्त प्रतिपदा को सूर्योदय से पूर्व ही स्याहू का पूजन स्त्रियो के द्वारा किया जाता है। गोबर का एक गोल चोथ बीच मे रख लिया जाता है। सीको के सिरो पर रुई के फूल (फाहे) लगाकर उन सीको को उस गोबर मे चारो ओर गाड देते हैं। इस पर एक दीपक जला दिया जाता है। स्याहू को यदि सर्प ही माना जाय तो यह उसके मणिधर फण का प्रतीक हो सकता है। यह भी हो सकता है कि यह "स्याहू" स्यावढ हो, सर्प नही। दीपावली 'शश्य' त्यौहार है। शश्य की जो ढेरियाँ 'भूमि-गणेश' के निमित्त बनायी जाती हैं वे उजरी या स्यावढ कहलाती हैं।[1] कुछ भी हो अहोई आठें की कहानी की स्याहू स्याँपिन ही है। उसे स्याहो माता भी कहा गया है। एक स्त्री से मिट्टी खोदते समय फावडे से अनजाने ही अण्डे-बच्चे कट गये।[2] उनकी माँ अब प्रतिवर्ष उस स्त्री के बच्चे ले जाया करती, इस प्रकार प्रति अहोई आठें को उसे रोना पीटना पडता। उसकी ननद, दौरानी, जिठानी ने उसका नाम "सदरोमनी" रख लिया। उसके इस दुख से करुणा-कातर हो एक बुढिया[3] ने उपाय बताया कि आने वाली अहोई आठें को तू किसी नाँद मे कढी, किसी मे कुछ, किसी मे कुछ पका के रख लेना।[4] विटौरा मे पुत्र जनना। आधी रात को स्याहू माता आयेगी, उसके जूँएँ देखना, उससे कानो की तुरपती या तरकी माँग लेना। तेरे

---

[1] देखिए—सर हेनरी एम० ईलियट की "मेमोयर्स आन दी हिस्ट्री, फोकलोर एण्ड डिस्ट्रीव्यूशन ऑव दि रेसेज ऑव दि नार्थ प्राविन्सेज ऑव इण्डिया", भाग १, पृ० ३११ की पाद-टिप्पणी।

[2] ये अण्डे-बच्चे स्याहो के ही थे। अकबरपुर से पातीराम जी ने जो कहानी सग्रह की है उसमे ये चकोल-चकवा के लिखे गये हैं। लोहवन की कहानी मे भी स्याँपिन के लिखे गये हैं। अकबरपुर की कहानी मे किसी भ्रम से ही ये चकोल-चकवा के बच्चे हो गये हैं। आगे उसमे भी स्याहो द्वारा प्रतिकार की बात कही गयी है।

[3] किसी-किसी कहानी मे बुढिया ने तो केवल इतना बताया है कि पडोस की गाय की स्याहू से मैत्री है। उसकी सेवा कर। उस स्त्री ने मन लगाकर सेवा की। प्रसन्न होकर गाय ने स्याहू को प्रसन्न करने का उपाय बताया।

[4] लोहवन वाली कहानी मे दो नाँदो मे दूध भरकर रखने की बात है। एक मे मीठा दूध, दूसरी मे नमकीन, कहीं-कहीं इस अभिप्राय का उल्लेख ही नही किया गया।

वच्चे जी उठेंगे। उसने ऐसे ही किया और उसके वच्चे उसे मिल गये। ब्रज मे इस स्याहू का जो थापा वनता है उसका रूप मराठी के दिवाली के थापे मे शेप और वट-सावित्री के थापे मे शेषाचपलग से मिलता-जुलता होता है। इस साक्षी से भी स्याहू का सर्प से सम्वन्ध विदित होता है। ऊपर जो कहानी दी गयी है उसमे स्याहू और गाय की मित्रता का उल्लेख है। यह स्याहू को प्रसन्न करने का उपाय वताती है। इस सम्वन्ध से लोकवार्ता का रूप कुछ और खुलता है। गाय अदिति है, ईसिस है, कृषि देवी है अथवा लक्ष्मी है। यह शेष नाग से सम्बन्धित है। शेप नाग विष्णु अथवा नारायण के लक्ष्मी सहित शैया का काम करते है। किन्तु यहाँ पर प्रश्न उपस्थित होता है कि स्याहू का वह गोवर रूप क्या है और उसमे लगी हुई सीके और लगी हुई रुई के फाहे क्या अर्थ रखते हैं। विलियम टाइलर आलकाट ने 'सनलोर ऑफ औल एजेज' मे पृ० १३६ पर लिखा है—

"As we have seen Osiris, the sun god the Egyptians triumphing over the demon of darkness, so in India we find Indra, the great solar deity of Hindus, successful in his combat with Vratra, the Serpent of Night"

वृत्र की कहानी मे हमे यह उल्लेख मिलता है कि इसने स्वर्ग के भण्डार, स्त्रियो, आदि को वन्दी वना लिया था। ब्रज की कहानी मे स्याहू वच्चो को ले गयी है और उसने उन्हे अपने कान मे रख लिया है। वृत्र ने उन्हे एक खोह मे वन्द कर दिया था। स्याहू अथवा वृत्र से स्वर्गिक समृद्धि और सूर्य के पहिये तथा स्त्रियो की मुक्ति की प्रसन्नता मे गोबर के पिण्ड मे सीकें लगाकर और रुई के फाहे लगाकर सम्भवत सूर्य रूप मे इन्द्र अथवा विष्णु की पूजा की जाती है। गोवर का पिण्ड सूर्य का प्रतीक है और सीकें सूर्य की किरणें और रुई के फाहे प्रकाश है। सूर्योदय के पूर्व से लेकर सूर्योदय तक इस अनुष्ठान का विधान भी यही सिद्ध करता है कि यह अहिवृत्र से मुक्त करने वाले और होने वाले सूर्य की और समृद्धि की ही पूजा है। इस दृष्टि से यदि समीकरण करके देखा जाय तो सूर्य=ओसिरिस=यम=इन्द्र=गोवर्द्धन=आदित्य=विष्णु=नारायण आदि एक ही हैं, इसी प्रकार अदिति=ईसिस=यमी=गौ=पृथ्वी=लक्ष्मी भी एक हैं। अत सूर्य और कृषि के सम्मिलित मूल पूजा-विधान से सम्वन्ध रखने वाले जितने भी तत्त्व हो सकते हैं इतिहास-क्रम मे समय-समय पर वे इस दीपावली के साथ जुड गये हैं। इसके अन्तरग मे वह नाग-पूजा भी है जो भादो मे प्रवल रहती है क्वार मे कम हो जाती है और कार्तिक में केवल प्रतीक-सकेतो से प्रकट होती है।

दिवाली के अनुष्ठान का रूप

धनतेरस—धनतेरस के अवसर पर साधारणत यह आवश्यक समझा जाता है कि इस दिन कोई धातु की वस्तु क्रय करके घर मे अवश्य लायी जानी चाहिए। इससे वर्षभर सम्पत्ति की वृद्धि होती है। फलत इस दिन वर्तनो की वहुत विक्री
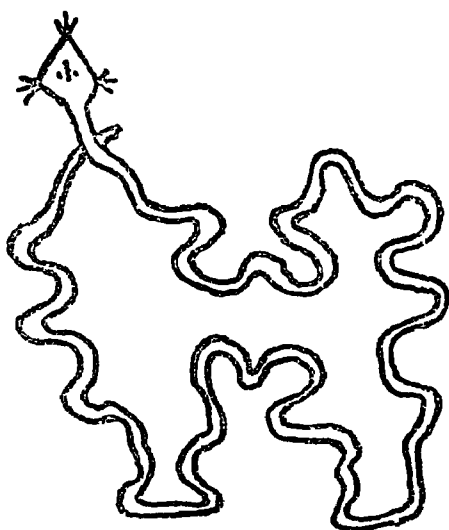
Plate No. 5.

शेष
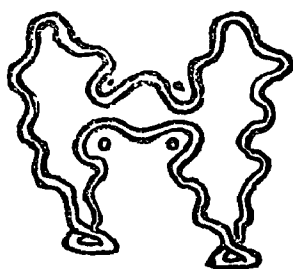
Plate No 15

शेषाच-पलंग

स्याहू

पूजा अच्छी मूर्तियो की स्थानापन्न नही वरन् यह पूजा वैदिक आर्यो के आगमन से भी पूर्व की सिद्ध होती है। मोहनजोदडो की खुदाई मे मिली मृण्मूर्तियो से यह वात सिद्ध हो चुकी है। लोक मे इतनी पुरानी परम्परा आज तक जीवित है। इनमे दीपक रखने का दीपस्तभ, चडोल जिसमे मिट्टी के चार छोटे पात्र जुडे रहते है। गूजरी, जिसके सिर पर एक खाली घडा रहता है और मिट्टी की छोटी कोठी भी होती है। रात्रि मे यहाँ पूजा के समय दीपक रखा जाता है। यह रात भर जलता है। कही-कही पहले यह दीपक घी से भरकर जलाया जाता है। फिर तेल डालते रहते हैं। यह श्यौरती का दीपक कहलाता है। रात्रि-पर्यन्त दीपक जलते रहने की एक रोचक कहानी प्राय भारत भर मे प्रचलित है। उसका मुख्य अभिप्राय यह है कि किसी राजा के भाट ने राजा से यह वरदान माँग लिया कि दिवाली की रात को केवल उसी के यहाँ दीपक रात भर जलेगा कोई दूसरा नही जला सकेगा। दिवाली को ऐसा ही हुआ। सारा नगर अधकार-मग्न था। केवल भाट के यहाँ दीपक जल रहा था। दिवाली की रात को लक्ष्मी आती है। नगर मे लक्ष्मी आयी। राजा के यहाँ अन्धकार देखकर लौट पडी। घर-घर मे अन्धकार था। प्रकाश केवल भाट के यहाँ था। लक्ष्मी ने उसके घर मे प्रवेश करना चाहा। भाट ने कहा यदि सदा के लिए आओ, स्थिर होकर आओ तो आ जाओ। लक्ष्मी को वचन देना पडा, उसके लिए और चारा ही नही था। वह अन्धकार मे जा नही सकती थी। उस दिन से भाट के यहाँ श्री-वृद्धि होने लगी। तव से रात्रि-पर्यन्त दीपक जलाना आवश्यक हो गया।

पूजा के समय कही-कही थालो मे रुपये रखकर पूजे जाते हैं। पूजा खील वतासो से होती है। कही-कही लक्ष्मी-पूजन के लिए धनराशि न रखकर केवल एक रुपया ही रख लिया जाता है। कोई-कोई लक्ष्मी-पूजा के साथ सरस्वती-पूजन अथवा शस्त्र-पूजन भी करते हैं।

दरिद्र भगाना—यहाँ तक के अनुष्ठान मे प्राय पुरुषो का ही हाथ विशेष है। स्त्री तो उस अनुष्ठान के लिए आवश्यक भित्ति-चित्र ही अकित करती हैं। पर इस पूजा के उपरान्त अनुष्ठान का कार्य स्त्री के हाथ मे आ जाता है। रात्रि के पिछले प्रहर ब्राह्म मुहूर्त मे उठकर एक पुराने सूप को एक लकडी से पीटती हुई घर भर मे और घर के कोने-कोने मे ले जाती है और मन मे कहती है कि दरिद्र दूर हो, लक्ष्मी आवे। समस्त घर मे से दरिद्र को इस प्रकार भगाकर वह मुख्य द्वार से वाहर जाकर कुछ दूर और दरिद्र को खदेड आती है और वही वह पुराना सूप फेंक आती है।

स्याहू—तव वह एक नये सूप मे उवले चावलो का एक लड्डू व स्यौरती का दीपक, चार खीखरी, एक सरवे मे हल्दी, कुछ सीकें तथा रुई लेकर नये वस्त्र पहनकर सूर्योदय से पूर्व अपने कुटुम्व के केन्द्र-गृह की किसी पौरी मे जाती है, कुटुम्व की अन्य स्त्रियाँ भी आ जाती हैं। वहाँ गोवर का एक चोथ रख लिया जाता है। वहाँ पहुँचकर प्रत्येक स्त्री दो-दो सीकें गोवर मे गाढ देती है। उनमे सीक की वनी दो वालियाँ

लटका देती हैं। ऊपर रुई की फुरफुती लगा देती हैं। पाँच सीकें सर्प गति रूप टेढी-मेढी तोड के उसमे लगा देती हैं। इसके उपरान्त सूँडा-भसूँडा किया जाता है। सूँडा-भसूँडा एक प्रक्रिया है। प्रत्येक स्त्री अपने चावल के लड्डू को लेकर अपने आँचल मे अपने हाथ को छिपाकर हिलाती हुई कहती है—लडुआ ले, ललुआ दे। तब वह उसे दूसरी स्त्री को दे देती है। इस प्रकार प्रत्येक स्त्री का यह लडुआ पाँच बार घूम जाता है। फिर ब्राह्मण को दे दिया जाता है। फिर सबकी सीकें एकत्र करके बुहारी बना ली जाती है। यह झाडू बायें हाथ से पीठ पीछे ले जायी जाती है और पीठ पीछे दोनो हाथो से इस झाडू से जमीन साफ करने का अभिनय किया जाता है, तब पडोसिन को दे दी जाती है। वह भी ऐसा ही करती है। इस प्रकार पाँच बार यह बुहारी भी घूमती है।

इस समस्त तान्त्रिक से अनुष्ठान मे स्याहू की कहानी का ही प्रतिविधान है। स्याहू के अण्डे-बच्चे इसी प्रतिपदा के दिन एक गरीब स्त्री ने भूल से काट डाले थे। अब तो स्याहू प्रति वर्ष उस स्त्री के बच्चे को ले जाने लगी। वह बडी दुःखी रहने लगी। तब एक बुढिया ने उसे गाय की सेवा करने का परामर्श दिया। गाय की स्याहू से मैत्री थी, वह स्त्री प्रतिदिन अँधेरे मे अज्ञात ही गाय का स्थान झाड आती थी। सीको से सम्भवत इसीलिए झाडने का अनुष्ठान किया जाता है। गाय प्रसन्न हुई उसने उसे बताया कि जिस दिन स्याहू आवे उस दिन खूब बेसन-भात बनाना, पक्का भोजन भी बनाना, नाँद भरकर दूध रख देना—चावल के लड्डू से सूँडा-भसूँडा करना स्याहू को खिलाने का रूपक है। गाय ने बताया कि जब वह खा चुके तो उसके सिर के जूएँ देखने लग जाना। गोद मे अपना बच्चा ले लेना। बीच-बीच मे उसे नोच देना। वह रोयेगा। जब स्याहू पूछे क्यो रोता है तब कहना अपने भाइयो को माँगता है, रहे कैसे? उसने ऐसा ही किया और स्याहू ने प्रसन्न होकर कान की तुरपुती से उसके सातो बच्चे निकाल के दे दिए। बालियाँ बनाकर लगाने से कान का बोध कराया जाता है। रुई की फुरफुती तुरपुती या तरकी का स्थान लिये हुए है। पाँच सर्पाकृत सीको के टुकडे स्याहो के अण्डे-बच्चो के स्थान पर हैं। इस प्रकार अहोई आठें पर जो कहानी कही जाती है वही यहाँ भौतिक और पृथुल रूप ग्रहण कर लेती है। पुत्रो की कल्याण-कामना का यह आज एक धार्मिक तन्त्र बन गया है।

गोवर्द्धन—दोपहर को आँगन मे गोवर्द्धन बनाया जाता है, यह गोबर से बनाया जाता है। इसमे एक ओर मुख, चौडा पेट, दोनो ओर हाथ और पैर बनाये जाते हैं। पैरो की ओर द्वार होता है। वहाँ एक गोबर का कुत्ता बनाया जाता है, पेट मे बरोसी, दूध की हाँडी, मठा चलाने की मथानी आदि गोपालन और दूध-मक्खन से सम्बन्ध रखने वाली चीजें बनायी जाती हैं। रात्रि में पुरुषो द्वारा इसकी पूजा होती है और परिक्रमा की जाती है। विविध स्थानीय देवताओ की जय बोली जाती है। इस परिक्रमा मे गोवर्द्धन पर्वत और अन्य तीर्थो का उल्लेख होता है। 'गोरधन की परिकम्मा देउ, मानसी गगा श्री बलदेव पूँछरी के लौठा की भी जय बोली जाती है।

कही-कही जैसे इन्दौर मे गोवर से राजा वलि की रचना की जाती है, गोवरधन की नही। गोवर्द्धन की पूजा के अवसर पर गौ-पूजा भी होती है। आटे के दीवले घी मे सेककर पूजा में सम्मिलित होने वालो को वाँटे जाते है।

भैया दूज—भैया दूज इस त्यौहार का अन्तिम उपसहार का दिन है। इस दिन गोवर्द्धन उठा लिया जाता है। उस स्थान पर हल्दी और आटे का चौक पूरा जाता है, इस चौक मे भीतर गोवर का घर वनाया जाता है। इसमे गोवर की एक गौर वनायी जाती है। गोवर को सूच्याकार करके रख लेते है। उस दिन की गौर की विशेपता यह होती है कि उसके मुंह आदि नही वनाया जाता है। उसे ओढनी भी नही ओढाई जाती है, नगी रहती है। गौर की पूजा खीलो से करके गीत गाते हुए आव वनायी जाती है। ये रुई और कपास की वनायी जाती है, गोल अँगूठी जैसी। उन्हे हल्दी से रँगते जाते हैं। गीत यह गाया जाता है—

जुहार मच्यौ है दिवारी की राति, को हारै को जीतिए।
रामपरसाद (क्रमश सव भाईयो का नाम) जीते सव ससुरारि,
बहुरिया हारीं सव प्यौसार।

अव गौर हटा दी जाती है। गोवर का घर भी समेट लिया जाता है। उस स्थान पर कटेरी के पत्ते रख लिये जाते हैं उन पर लोटा रहता है। सीधे हाथ की पीठ पर हल्दी से सांतिए बनाये जाते हैं। उलटे हाथ की छिगुनी उँगली मे वनी हुई आव पहन ली जाती है, क्वारी दो आव वनाती है। व्याही चार आव पहनकर उसी उँगली से लोटा स्पर्श कर हिलाती जाती हैं और यह गीत गाया जाता है—

आज दौज कौ दौसरौ भैया न्योतौ भैन कें
एक रे भैया दूजी भावजी तीजे भवजिया कौ
लागौ नगीना मैलौ न होय
हीरालाल भइया (सब भइयो का क्रमश नाम लिया जाता है) की
आव अहो नैंक वेगि जुरि जाइयो
भवजिया कौ लाल नगीना मैलौ न होय

आव की कितनी ही कहानियाँ हैं। उनमे से सब या कुछ कहानियाँ इस अवसर पर कही जाती हैं। सभी कहानियो मे वहिन का भाई के प्रति प्रेम और उसके लिए सब कुछ करने का भाव प्रकट होता है।

एक कहानी कुछ ऐसे है

एक राजा के रानी थी, रानी ने एक साँप मारकर उसके जहर को दीपक मे डाल दिया, हड्डियाँ खाट के चारो पायो के नीचे गाड दी, झिल्ली की अँगिया वना के पहन ली, राजा के आने पर उसने कहा—राजा एक पहेली का अर्थ वताओ।

पिय वांयत पिय बाँयत पिय कौ जोरूं दीवला पी की पहरूं
अँगिया सो हियरा बसे समाय

जब किसी विद्वान से भी अर्थ नही वता, तव वहिन के यहाँ गया। वहिन बैठी भैया की आव जोड रही थी, वह टूट-टूट जाती थी पर राजा जव उसके पास पहुँच गया तो आव जुड गयी, वहिन ने पीछे देखा तो भाई खडा है। भाई ने अपना कष्ट बताया, वहिन ने कहा मैं जानती तो नही पर लौटकर चलो भेद शायद मिल जाय। उसने बरोसी मे औटता दूध छोडा, पालने मे वच्चा छोडा, घर द्वार यो ही छोड भाई के साथ चल पडी। बीच मे एक जगह रात को ठहरे। वहाँ दीपक की माँ रहती थी। दीपक आया, माँ ने पूछा वडा परेशान रहता है, वडी देर से आता है। दीपक ने कहा—एक राजा की रानी ने साँप का विप मेरे तेल मे डाल दिया है जिससे जला जाता हूँ। उसने और सव वात भी वता दी। वहिन जग रही थी। समस्त वात सुन ली, घर पहुँचकर भाभी की चोली फाडकर फेंक दी और समस्त वात वता दी। इस प्रकार बहिन ने भाई को कष्ट से उवारा।

एक दूसरी कहानी यो है—

राजा की रानी राजा को भुसी की रोटी देती थी। कनक की स्वय खाती थी। राजा पूछता तो कह देती थी—

परली पार तेरी भैन बसै
वाके पादे कनक उडे।

राजा वडा दुखी था। वह बहिन के गया, वहिन आव जोड रही थी। भाई के पहुँचने पर ही आव जुडी। वहिन ने भाई से पूछा—क्यो पीला पड रहा है। बात सुनकर उमने पाँच कठपुतलियाँ राजा को दी, राजा ने वे कठपुतलियाँ वहिन के परामर्श के अनुसार चारो कोनो और देहरी मे गाड दी। स्वय कुठीला मे छिप गया, रानी ने भुसी की रोटियाँ राजा के लिए बनायी, अपने लिए कनक का अगा वनाया। अगा दूध मे मीडकर उसने रख दिया।

एक पुतली ने कहा क्या करती
स्त्री ने कहा नित करती सो अब करती
चारों पुतलियो ने ऐसे ही कहा
पाँचवीं ने कहा नित करती
तो खसमा पूता क्यो डरती ?
रानी शौच के लिए चली।

राजा कुठीले मे से निकलकर आया और अगा खा गया, उसकी जगह चाकी का झन्ना (चाकी साफ करने का कपडा) पानी मे डालकर रख दिया।

रानी आकर खाने वैंठी और झन्ना खा गयी। पहली से चौथी कठपुतली तक ने तो वही कहा और पूछा जो पहले पूछा था। पाँचवी ने कहा—

अनखाती धनियाँ
लीलि गयी खसम की तनियाँ

राजा वाहर आया, उसने रानी को बुरा-भला कहा।

इस अवसर पर कही जाने वाली कहानियो मे सवसे अधिक प्रचलित वह कहानी है जो 'कोसी को पूत अनकोसी को भइया नाम से विख्यात है। इसमें वहिन को भाई पर आने वाले सकटो का पता चल गया तो वह पागल-सी वनकर भाई को कोसती-कोसती गयी और उसे सकटो से वचा लिया।

स्पष्ट है कि इन सभी कहानियो मे भाई-वहिन के प्रेम का दृढ रूप दिखाया है। वहिन ने त्यागपूर्वक कष्ट सहकर भी भाई को कष्टो से उवारा है। ऐसी कहानियाँ ही तो वहिन-भाई के प्रेम को वनाये रखने मे सहायक होती रहती हैं। इसके द्वारा ही दूर-दूर होते हुए भी दोनो को एक-दूसरे की हितचिंतना का ध्यान रहा है।

इन कहानियो के उपरान्त गणेश जी की एक अद्‌भुत कहानी और कही जाती है। गणेश जी एक चिमटी या चुटकी मे चावल लेकर आये और एक कुल्हिया मे दूध। घर-घर मे जाकर पूछते फिरे कि कोई मेरी खीर वना देगी। सवने असमर्थता प्रकट की। एक वुढिया ने कहा—ला भय्या, वना दूंगी, गणेश जी ने कहा तो ला, सवसे वडा पात्र ला। चावलो और दूध से सव पात्र भर गये। खीर वनायी गयी। गणेश जी कुछ समय उपरान्त लौटने का वचन देकर स्नान करने चले गये। उस वुढिया ने चावल-दूध खूव पास-पडोस मे वाँटा। वह कम ही न होता था। खीर पक गयी, वुढिया की वहू को खूव भूख लगी। गणेश जी को आने मे देर हो गयी। उसने गणेश के नाम से खीर निकाल दी और कहा—गणेश जी महाराज जहाँ भी हो स्वीकार करें। उसने तव स्वय खीर खायी। तभी गणेश जी आये। वुढिया ने कहा—खीर खाओ, पक गयी। गणेश जी ने कहा—मुझे तो तेरी वहू ने पहले ही खिला दी। तव गणेश जी के आदेश से वह खीर वुढिया ने सभी को वाँटी।

पूजा हो जाने के उपरान्त आव उतारकर गौर के सिर पर रख दी जाती है। मूसल पर हल्दी के पाँच फेरे लगा दिये जाते हैं। फिर कटेरी, खील, गोवर, वतासे आदि-आदि वहाँ से उठाकर घर के वाहर उल्टे हाथ के कोने के नीचे ये चीजें डालकर मूसल से कूटी जाती हैं और यह गीत गाया जाता है।

बैरीयरा जे सव दल मारे हो आज

अपने कुटुम्व के मव व्यक्तियो के नाते-रिश्तेदारो के नाम क्रमश लिये जाते हैं।

बैरीयरा जे सब दल मारे हो आज
घर कूटे घरि मारे बैरीयरा जे सव दल मारे हो आज

सवका नाम ले चुकने पर हल्दी की चिडियाँ दोनो कोनो पर वनायी जाती हैं। दोनो कोनो पर पानी डालकर कोने को सिराया जाता है।

घर मे लौटते समय यह गीत गाया जाता है।

आज की घडिन भरे आनन्द बधाये जी राज
शुभ की घडिन भरे आनन्द वधाये जी राज
साहव घर आये जी राज

ससुर बियाही हमारी सास कहामें जी राज
जेठ बियाही हमारी जिठानी कहाई जी राज
जिठानी के जाये जेठौत कहाये जी राज
देवर बियाही दौरानी कहायी जी राज
दौरानी के जाये दौरौत कहाये जी राज
ननद बियाहे हमारे नन्दोई कहाये जी राज
नन्द जाये भानेज कहाये जी राज
साहिब बियाही हमारी सौत कहायी जो राज
सौत के जाये सौतेला कहाये जी राज

इस वार्ता मे चित्रकला (भीत पर), मूर्तिकला (गौर और मृण्मूर्तियो मे), सगीत, कहानी, देवी-देवता-पूजा, अन्न-पूजा, पशु-पूजा, वृक्ष-पूजा, दीप-पूजा, धन-पूजा, शस्त्र-पूजा, साधन-पूजा का समावेश है, और समस्त अनुष्ठान कई प्रकार के जादू-टोने की क्रियाओ से युक्त हैं। समस्त वार्ता को गहराई से देखा जाय तो लोक-मानस अथवा लोक-सस्कृति के सभी पर्तो का पता चल सकता है, और उन्हे एक क्रम मे भी बिठाया जा सकता है। समस्त त्यौहार प्रत्यक्षत समझ मे न आने वाली, बुद्धि-बाह्य बातो से परिपूर्ण है, वैसा ही तद्विषयक लोक-साहित्य भी है।

दूसरा अध्याय
लोकवार्ता के तत्त्व तथा लोक-मानस

लोकवार्ता

जैसा प्रथम अध्याय के आरम्भ मे कहा जा चुका है, लोकवार्ता[1] के अन्तर्गत वह समस्त अभिव्यक्ति आती है जिसमे आदिम मानस के अवशेष आज भी दिखायी

---

[1] (अ) मैरेट ने गोम्मे के एक उद्धरण के द्वारा फोकलोर के क्षेत्र का स्वरूप बहुत ही स्पष्टत प्रस्तुत किया है, वह उद्धरण यो है —"Folklore may be said to include all the culture of the people which has not been worked into the official religion and history, but which is and has always been of self growth"—**Psychology and Folklore by** R R Marett, p 76

(आ) बर्न महोदय ने "हैंडबुक आव फोकलोर" मे लोकवार्ता के अन्तर्गत आने वाले विपयो का निर्देश करके उसके क्षेत्र को स्पष्ट किया है। उनके अनुसार लोकवार्ता के विपयो को तीन प्रधान समूहो मे बाँटा जा सकता है। प्रत्येक समूह मे निम्नलिखित बातें हो सकती हैं

१—वे विश्वास और आचरण-अभ्यास जो सम्बन्धित हैं—

१—पृथ्वी और आकाश से, २—वनस्पति जगत से, ३—पशु जगत से, ४—मानव से, ५—मनुष्य निर्मित वस्तुओ से, ६—आत्मा तथा दूसरे जीवन से, ७—परा-मानवी व्यक्तियो से (जैसे देवताओ, देवियो तथा ऐसे ही अन्यो से) ८—शकुनो-अपशकुनो, भविष्यवाणियो, आकाशवाणियो से, ९—जादू टोनो से, १०—रोगो तथा स्यानो की कला से।

२—रीति-रिवाज—

१—सामाजिक तथा राजनीतिक सस्थाएँ, २—व्यक्तिगत जीवन के उद्गार, ३—व्यवसाय-धन्धे तथा उद्योग, ४—तिथियाँ, व्रत तथा त्यौहार, ५—खेल-कूद तथा मनोरजन।

३—कहानियाँ, गीत तथा कहावतें—

१—कहानियाँ (अ) जो सच्ची मानकर कही जाती हैं। (आ) जो मनोरजन के लिए होती हैं, २—गीत, सभी प्रकार के, ३—कहावतें तथा पहेलियाँ, ४—पद्यबद्ध कहावतें तथा स्थानीय कहावतें।

अत यह स्पष्ट है कि दुर्गा भागवत अथवा एनसाइक्लोपीडिया ऑव सोशल साइसेज के 'फोकलोर' निवन्ध के अनुसार लोर को लिटरेचर या साहित्य का पर्याय मानकर केवल मौखिक अभिव्यक्ति को ही लोकवार्ता नही माना जा सकता।

पड़ते हैं।[1] आज की वैज्ञानिक दृष्टि यह मानती है कि विश्व की प्रत्येक मानव-जाति ने अपनी यात्रा का आरम्भ आदिम वर्बर अवस्था से किया है। मनुष्य की दैवी उद्भावना और दिव्य महत्तायुक्त आरम्भ मे विश्वास करना आज मूर्खता समझी जाती है।[2] वर्बरावस्था से विकसित होकर मनुष्य ने आज की सभ्यता उपार्जित की है। जैसे विकसित होने पर भी मनुष्य आदिम मनुष्य का ही रूपान्तर है उसी प्रकार मनुष्य की अभिव्यक्तियो मे भी आदिम अभिव्यक्ति के अवशेष रह ही जाते हैं। वे अवशेष लोकवार्ता हैं और लोकवार्ताशास्त्र के अध्ययन की वस्तु है। किन्तु लोकवार्ता जिन अवशेपो का अध्ययन करती है, वे अवशेप केवल मूल आदिम मनुष्य के हैं। इस बात को निश्चयपूर्वक आज किसी भी शास्त्र अथवा विज्ञान को कहने का अधिकार

---

१ (1) Modern researches into the early history of man, conducted on different lines have converged with almost irresistible force on the conclusion, that all civilized races have at some period or other emerged from a state of savagery resembling more or less closely the state in which many backward races have continued to the present time, and that long after the majority of man in a community have ceased to think and act like savages, not a few traces of the old ruder modes of life and thought survive in the habits and institution of the people Such survivals are included under the head of folklore which, in the broadest sense of the word, may be said to embrace the whole body of a peoples traditionary beliefs and customs, so far as these appear to be due to the collective action of 'the multitude' and cannot be traced to the individual of great men —Frazer *Man, God and Immortality* (1927), p 42

तथा

(2) "Myth arose in savage condition prevalent in remote ages among the whole human race, it remains comparatively unchanged among the modern rude tribes who have departed least from these primitive conditions, while even higher and later grades of civilization, partly by retaining its actual principles partly by carrying on its imperfect results in the form of ancestral tradition have continued it not merely in toleration but in honour "—Tylor, *Primitive Culture*, Vol I, p 283 quoted in Poetry and Myth Prescott at p 13

(3) Folklore means the study of survival of early custom, belief, narrative and art—*An Introduction to Mythology* by Lewis Spence, p 11

Indeed the notion that man began with pure moral and religious ideas and a sensible language but gradually became possessed by a licentious imagination and so formed untrue and unlovely conceptions, has been quite given up, and we see instead that he began with the crudest dreams and fancies, which were by a long, natural and (in general) healthy growth gradually elevated and refined —*Poetry and Myth* by Prescott, p 101,

नही है। क्योकि आरम्भिक आदिम मनुष्य इतना प्राग्-ऐतिहासिक है और मनुष्य के अनुमान के भी इतने परे हैं कि उसके सम्बन्ध मे निश्चित रूप मे कुछ भी कहना अवैज्ञानिक माना जायगा। वस्तुत लोकवार्ता के अवशेपो के अध्ययन का अर्थ है कि उस आदिम लोक-प्रवृत्ति को समझा जाय जिसके परिणामस्वरूप लोकवार्ता प्रस्तुत होती है—यह लोक-प्रवृत्ति जब-जब जहाँ-जहाँ जिस मात्रा मे विद्यमान मिलेगी, वहाँ तब उसी परिमाण मे लोकवार्ता भी मिलेगी। विश्वामित्र और वशिष्ठ, राम और कृष्ण, विक्रमादित्य तथा गोरखनाथ के सम्बन्ध मे हमे एकानेक लोकवार्ताएँ मिलती है। ऐतिहासिक दृष्टि से ये व्यक्ति और इनके विपय की ये लोकवार्ताएँ आदिम मनुष्य के द्वारा उद्भावित नही। विश्वामित्र तथा वशिष्ठ की लोकवार्ताएँ वैदिक काल की देन हैं, राम और कृष्ण की वार्ताएँ पौराणिक काल की। विक्रम की कहानियाँ डेढ-दो हजार वर्प पूर्व आरम्भ हुई होगी और गोरख की सात सौ आठ सौ वर्प पूर्व। ये सभी लोकवार्ताएँ हैं, आज इनका इसी रूप मे लोकवार्ता के अध्येता उपयोग करते हैं। क्योकि विश्वामित्र, वशिष्ठ, राम-कृष्ण, गोरख के नाम किसी विशेप ऐतिहासिक काल के हो सकते हैं, पर उनकी वार्ताएँ उन तत्त्वो से युक्त है जो लोक-प्रवृत्ति के है। ऐतिहासिक काल की इनकी वस्तु लोक मे पहुँचते ही लोक-प्रवृत्ति के अनुकूल ढल गयी। फलत लोकवार्ता की वस्तु की नही, लोकवार्ता की प्रवृत्ति की विशेपताएँ समझने की आवश्यकता है, और इसी प्रवृत्ति मे हमे आदिम मानव की प्रवृत्ति के अवशेष देखने को मिलेंगे। प्रत्येक वार्ता मे दो बातें स्पष्टत मिलती हैं[१] एक कोई न कोई आधारतथ्य, दूसरे इसका स्वरूप। तथ्य तो तथ्य है, सूर्य तो सूर्य है, पर उसका स्वरूप क्या है? प्राकृतिक विज्ञानवेत्ता के लिए वह एक अग्निर्पिड है और उसका मात्र भौतिक स्वरूप ही उसे मान्य है। पर लोकवार्ताकार के लिए यह सूर्य एक मनुष्य की भाँति है, उसके माँ है, उसके स्त्री है, स्त्री फूहड है आदि। तय है कि गोरखनाथ एक योगी हुए हैं, और उन्होंने एक प्रबल सम्प्रदाय भारत मे चलाया। किन्तु गोरखनाथ के उस ऐतिहासिक तथ्य को लोकवार्ता ने एक अद्भुत स्वरूप दिया है। लोकवार्ता का मूल रहस्य इस स्वरूप मे ही है, यह स्वरूप ही उस प्रवृत्ति का परिमाण है, जिसे लोक-प्रवृत्ति कहते हैं। इस लोक-प्रवृत्ति मे ही हमे आदिम मानव की प्रवृत्ति के अवशेप मिलते हैं, इन्हीं अवशेषो के परिणामो का अध्ययन लोकवार्ता के अध्ययन का विषय

---

१ "Every tradition myth or story contains two perfectly independent elements—The fact upon which it is founded and the interpretation of the fact which its founders have attempted Gomme *Folklore as An Historical Sciences*, p 10

यह प्रत्येक कला के सम्बन्ध मे ही कहा जा मकता है, Thomas Craven ने Famous Artists Their Models नामक अपनी पुस्तक की भूमिका मे लिखा है —"It needs to be said again that the art business has two sides to it First the subject and second the way in which the subject is treated" p X

होता है। आधुनिक लोकवार्तावित्ता इस लोकवार्ता-प्रवृत्ति का ही अध्ययन विशेषत करते हैं। लोकवार्ता को जन्म देने वाली लोक-प्रवृत्ति को लोक-मानस से सम्बन्धित माना जा सकता है। यह लोकमानस उस प्रवृत्ति से बिलकुल भिन्न और अद्भुत होता है, जो सभ्य तथा सस्कृत मनीषिता को प्रकट करती है, और जिसे मुनि-मानस से सम्बन्धित माना जा सकता है। इस दृष्टि से समस्त मानव समुदाय के मानसिक स्वरूप को तीन भागो मे बाँट सकते हैं। प्रथम लोक-मानस, द्वितीय जन-मानस, तृतीय मुनि-मानस। लोक-मानस वह मानसिक स्थिति है जो आज आदिम मानस की परम्परा में है, उसी का अवशेष है। आज के सभ्य समाज के मानसिक स्वरूप मे इसे सबसे नीचे का धरातल माना जा सकता है। मुनि-मानस वह मानसिक स्थिति है जो मानव-समाज ने सभ्यता के विकास के साथ-साथ उपार्जित की है। यह आज के समाज के मानसिक स्वरूप का सबसे ऊँचा धरातल माना जा सकता है। मध्य की स्थिति जन-मानस की है। लोक-मानस से लोकवार्ता का जन्म होता है। मुनि-मानस से दर्शनशास्त्र तथा विज्ञान और उच्च कलाओ का। जन-मानस साधारण व्यवसायात्मक बुद्धि से सम्बन्ध रखता है। यह केवल व्यवहार मे ही परिणति पाता है, और व्यवहार मे ही विलीन हो जाता है, कोई अन्य मूर्त अभिव्यक्ति इससे नही होती। फलत यदि हम लोक-मानस को समझ लें तो हम लोकवार्ता की विशेषताओ को भी समझ लेंगे[१]।

लोक-मानस

लोक-मानस लोक-साहित्य के निर्धारण मे सबसे प्रमुख तत्त्व है। अभी कुछ समय पूर्व तक मनोविज्ञान केवल चेतन मानस को ही स्वीकार करके चलता था। फ्रायड ने अपने अनुसन्धान से अवचेतन मानस का अनुसन्धान अथवा उद्घाटन किया। यद्यपि फ्रायड के मत मे अनेको सशोधन हुए हैं फिर भी अवचेतन मानस की सत्ता मे अब सन्देह नहीं रह गया। फ्रायड ने अवचेतन मानस के निर्माण के कारण-स्वरूप कुण्ठा को स्वीकार किया था। किन्तु 'प्राणिशास्त्र' उत्तराधिकरण को असिद्ध नही कर सका है। हमारे पूर्वजो का दाय हमे हमारे जन्म के साथ मिला है। हमारी प्रवृत्तियाँ उस दाय का परिणाम हैं। वे प्रवृत्तियाँ उस दाय का परिणाम हैं जो हमारे निर्माण के मूल स्वरूप का आधार हैं। इन प्रवृत्तियो का स्थान भी तो मानस मे ही होगा। चेतन-मानस मे तो ये विद्यमान मिलती नही, ये तो अवचेतन मानस की भाँति मनुष्य के समस्त व्यक्तित्व को ही प्रेरित और निर्माण करने वाली हैं। फलत दाय मे प्राप्त मानस का स्थान अवचेतन मानस मे ही हो सकता है। इस

---

[१] फोकलोर तथा साइकालोजी पर विचार करते हुए R R Marett ने *Psychology and Folklore* मे लिखा था The business of this society (अभिप्राय है Folklore Society) is to seek to know the folk in and through their lore so that what is outwardly perceived as a body of custom may at the same time be inwardly apprehended as a phase of mind p 12

नही है। क्योकि आरम्भिक आदिम मनुष्य इतना प्राग्-ऐतिहासिक है और मनुष्य के अनुमान के भी इतने परे है कि उसके सम्बन्ध मे निश्चित रूप मे कुछ भी कहना अवैज्ञानिक माना जायगा। वस्तुत लोकवार्ता के अवशेपो के अध्ययन का अर्थ है कि उस आदिम लोक-प्रवृत्ति को समझा जाय जिसके परिणामस्वरूप लोकवार्ता प्रस्तुत होती है—यह लोक-प्रवृत्ति जव-जव जहाँ-जहाँ जिम मात्रा मे विद्यमान मिलेगी, वहाँ तव उसी परिमाण मे लोकवार्ता भी मिलेगी। विश्वामित्र और वशिष्ठ, राम और कृष्ण, विक्रमादित्य तथा गोरखनाथ के सम्बन्ध मे हमे एकानेक लोकवार्ताएँ मिलती है। ऐतिहासिक दृष्टि से ये व्यक्ति और इनके विपय की ये लोकवार्ताएँ आदिम मनुष्य के द्वारा उद्भावित नही। विश्वामित्र तथा वशिष्ठ की लोकवार्ताएँ वैदिक काल की देन हैं, राम और कृष्ण की वार्ताएँ पौराणिक काल की। विक्रम की कहानियाँ डेढ-दो हजार वर्ष पूर्व आरम्भ हुई होगी और गोरख की सात सौ आठ मी वर्ष पूर्व। ये सभी लोकवार्ताएँ हैं, आज इनका इसी रूप मे लोकवार्ता के अध्येता उपयोग करते हैं। क्योकि विश्वामित्र, वशिष्ठ, राम-कृष्ण, गोरख के नाम किसी विशेप ऐतिहासिक काल के हो सकते हैं, पर उनकी वार्ताएँ उन तत्त्वो से युक्त है जो लोक-प्रवृत्ति के हैं। ऐतिहासिक काल की इनकी वस्तु लोक मे पहुँचते ही लोक-प्रवृत्ति के अनुकूल ढल गयी। फलत लोकवार्ता की वस्तु की नही, लोकवार्ता की प्रवृत्ति की विशेपताएँ समझने की आवश्यकता है, और इसी प्रवृत्ति में हमे आदिम मानव की प्रवृत्ति के अवशेष देखने को मिलेंगे। प्रत्येक वार्ता मे दो बातें स्पष्टत मिलती हैं [१] एक कोई न कोई आधारतथ्य, दूसरे इसका स्वरूप। तथ्य तो तथ्य है, सूर्य तो सूर्य है, पर उसका स्वरूप क्या है? प्राकृतिक विज्ञानवेत्ता के लिए वह एक अग्निपिंड है और उसका मात्र भौतिक स्वरूप ही उसे मान्य है। पर लोकवार्ताकार के लिए यह सूर्य एक मनुष्य की भाँति है, उसके माँ है, उसके स्त्री है, स्त्री फूहड है आदि। तय है कि गोरखनाथ एक योगी हुए हैं, और उन्होंने एक प्रवल सम्प्रदाय भारत मे चलाया। किन्तु गोरखनाथ के उस ऐतिहासिक तथ्य को लोकवार्ता ने एक अद्भुत स्वरूप दिया है। लोकवार्ता का मूल रहस्य इस स्वरूप मे ही है, यह स्वरूप ही उस प्रवृत्ति का परिमाण है, जिसे लोक-प्रवृत्ति कहते हैं। इस लोक-प्रवृत्ति मे ही हमे आदिम मानव की प्रवृत्ति के अवशेप मिलते हैं, इन्ही अवशेपो के परिणामो का अध्ययन लोकवार्ता के अध्ययन का विषय

---

१ "Every tradition myth or story contains two perfectly independent elements—The fact upon which it is founded and the interpretation of the fact which its founders have attempted Gomme *Folklore as An Historical Sciences*, p 10

यह प्रत्येक कला के सम्बन्ध मे ही कहा जा सकता है, Thomas Craven ने Famous Artists Their Models नामक अपनी पुस्तक की भूमिका में लिखा है —"It needs to be said again that the art business has two sides to it First the subject and second the way in which the subject is treated" p X

होता है। आधुनिक लोकवार्तवित्ता इस लोकवार्ता-प्रवृत्ति का ही अध्ययन विशेषत करते हैं। लोकवार्ता को जन्म देने वाली लोक-प्रवृत्ति को लोक-मानस से सम्बन्धित माना जा सकता है। यह लोकमानस उस प्रवृत्ति से बिलकुल भिन्न और अद्भुत होता है, जो सभ्य तथा सस्कृत मनीषिता को प्रकट करती है, और जिसे मुनि-मानस से सम्बन्धित माना जा सकता है। इस दृष्टि से समस्त मानव समुदाय के मानसिक स्वरूप को तीन भागो मे बाँट सकते हैं। प्रथम लोक-मानस, द्वितीय जन-मानस, तृतीय मुनि-मानस। लोक-मानस वह मानसिक स्थिति है जो आज आदिम मानस की परम्परा मे है, उसी का अवशेष है। आज के सभ्य समाज के मानसिक स्वरूप मे इसे सबसे नीचे का धरातल माना जा सकता है। मुनि-मानस वह मानसिक स्थिति है जो मानव-समाज ने सभ्यता के विकास के साथ-साथ उपार्जित की है। यह आज के समाज के मानसिक स्वरूप का सबसे ऊँचा धरातल माना जा सकता है। मध्य की स्थिति जन-मानस की है। लोक-मानस से लोकवार्ता का जन्म होता है। मुनि-मानस से दर्शनशास्त्र तथा विज्ञान और उच्च कलाओ का। जन-मानस साधारण व्यवसायात्मक बुद्धि से सम्बन्ध रखता है। यह केवल व्यवहार मे ही परिणति पाता है, और व्यवहार मे ही विलीन हो जाता है, कोई अन्य मूर्त अभिव्यक्ति इससे नही होती। फलत यदि हम लोक-मानस को समझ लें तो हम लोकवार्ता की विशेषताओ को भी समझ लेंगे[१]।

लोक-मानस

लोक-मानस लोक-साहित्य के निर्धारण मे सबसे प्रमुख तत्त्व है। अभी कुछ समय पूर्व तक मनोविज्ञान केवल चेतन मानस को ही स्वीकार करके चलता था। फ्रायड ने अपने अनुसन्धान से अवचेतन मानस का अनुसन्धान अथवा उद्घाटन किया। यद्यपि फ्रायड के मत मे अनेको सशोधन हुए हैं फिर भी अवचेतन मानस की सत्ता में अब सन्देह नही रह गया। फ्रायड ने अवचेतन मानस के निर्माण के कारण-स्वरूप कुण्ठा को स्वीकार किया था। किन्तु 'प्राणिशास्त्र' उत्तराधिकरण को असिद्ध नही कर सका है। हमारे पूर्वजो का दाय हमे हमारे जन्म के साथ मिला है। हमारी प्रवृत्तियाँ उस दाय का परिणाम हैं। वे प्रवृत्तियाँ उस दाय का परिणाम हैं जो हमारे निर्माण के मूल स्वरूप का आधार हैं। इन प्रवृत्तियो का स्थान भी तो मानस मे ही होगा। चेतन-मानस मे तो ये विद्यमान मिलती नही, ये तो अवचेतन मानस की भाँति मनुष्य के समस्त व्यक्तित्व को ही प्रेरित और निर्माण करने वाली हैं। फलत दाय मे प्राप्त मानस का स्थान अवचेतन मानस मे ही हो सकता है। इस

---

१ फोकलोर तथा साइकालोजी पर विचार करते हुए R R Marett ने *Psychology and Folklore* में लिखा था The business of this society (अभिप्राय है Folklore Society) is to seek to know the folk in and through their lore so that what is outwardly perceived as a body of custom may at the same time be inwardly apprehended as a phase of mind p 12

प्रकार अवचेतन मानस के दो भेद स्वीकार करने होगे। एक सहज अवचेतन, दूसरा उपार्जितावचेतन। यह सहज अवचेतन ही लोक-मानस है। हम नही कह सकते कि इस मानस के सम्बन्ध मे मनोविश्लेपक अवचेतनवादियो ने कितना विचार किया है, किन्तु इस मानस की सत्ता मे सन्देह नही किया जा सकता। आज के मानव को आदिम मानवीय बातो से क्यो रुचि है? क्यो आज का महान वैज्ञानिक और घोर बुद्धिवादी भी असम्भव तथा अद्भुत लोक कहानियो मे आकर्पण अनुभव करता है। क्यो आज भी हम किसी न किसी रूप मे, किसी न किसी प्रकार के ऐसे विश्वासो को प्रचलित पाते हैं जिनकी वैज्ञानिक व्याख्या नही हो सकती, जो बौद्धिकता के लिए सहज ही अमान्य हैं। आज बीसवी सदी के उत्कृष्टतम मनुष्य मे भी हम जब वह रगत देख पाते हैं जो स्पष्ट ही आदिम मानव की वृत्ति का अवशेप ही कहा जा सकता है, तो लोक-मानस की उपस्थिति स्वीकार ही करनी पडती है। श्री हर्वर्ट रीड जैसे साहित्यशास्त्री ने भी ऐसे मानस की सत्ता की ओर सकेत किया है। यद्यपि उन्होने उसे यह नाम नही दिया है। रीड महोदय का कहना है कि

Such lights come, of course, from the latent memory of verbal images in what Freud calls the pre-conscious state of mind or from still obscurer state of the unconscious in which are hidden not only the neural traces of repressed sensations but also those inherited patterns which determine our instinct [*Form in Modern Poetry*, p 36-37]

यह इनहैरिटैड पैटर्न ही हमारा लोक-मानस है।

इस लोक-मानस की सत्ता का उद्घाटन करने का श्रेय लोकवार्तीविदो को देना पडेगा। मैरेट महोदय ने लिखा है

"ठीक जिस प्रकार भीड (क्राउड) का मनोविज्ञान होता है उसी प्रकार उस समूह का भी मनोविज्ञान हो सकता है जिसे सर जेम्स फ्रेजर 'मानव-राशि' (Multitude) अथवा कम प्रिय शब्दो मे 'लोक' (फोक) कहेंगे।" इन शब्दो से प्रकट होता है कि १९२० के लगभग इस लोक-मनोविज्ञान की सम्भावना की ओर सकेत ही किया जा रहा था। इस लोक-मानस की स्थिति के विषय मे मैरेट ने आगे कहा

"भीड तो मनुष्यो के अस्थायी और अनियमित सघ को कहते हैं। ऐसी दशा मे यह कुछ विशिष्ट प्रकार के कार्यों और आवेशो को प्रदर्शित करती है, इनकी व्याख्या और विश्लेषण काफी सफलता से किया जा चुका है। अत इसी प्रकार मनुष्य-राशि तो मानो एक स्थायी भीड है और एक ऐसी भीड है जो अपनी सामूहिक प्रवृत्तियो को परम्परा के रूप मे चिरगामी कर सकती है, और इस परम्परा में वह विशेष प्रकार के आचरण को प्रकट करती है जो निश्चय ही पृथक रूप से अध्ययन करने योग्य है" • आदि।

मैरेट ने यही बताया है कि इस दिशा मे कुछ प्रयत्न हुए हैं। उसने एम० लैवी ब्रुह्ल का नाम लिया है जिसने 'सामूहिक मानस' अथवा 'असभ्य जाति' की

मनोवृत्ति पर लिखा है। दूसरा नाम मि० ग्रैहम वैलेस का लिया है, उन्होंने उसी दृष्टि से आधुनिक राष्ट्र के जन-मानस का वर्णन किया है। किन्तु साथ ही उन्होंने इस बात पर खेद प्रकट किया है कि—

हमारे पास बहुत-सी विस्तार-व्यापी सामग्री के रहते हुए भी लोक के मनो-जीवन के विशद् चित्रण का ही किंचित उद्योग नहीं हुआ है, फिर उसको उस सामान्य विश्लेषण के लिए कैसे कहा जाय जिसके द्वारा यह स्पष्ट किया जाता है कि अपनी स्पष्ट अभिव्यक्तियो मे वह प्रत्यक्षत इतनी सामाजिक सघटनाशील (grega-rious) कैसे और क्यो है। [पृ० १२४]

अत १६२० के लगभग से इधर विद्वानो का ध्यान आकर्षित हुआ। लोक-वार्ताविदों ने लोक-मानस की सत्ता को स्थापित किया। आज 'लोक मनोविज्ञान' (फोक साइकोलॉजी) एक महत्त्वपूर्ण मानस-विज्ञान है, जिसकी परिभाषा 'कोष' मे इस प्रकार मिलती है—

लोक मनोविज्ञान—जनो का मनोविज्ञान जिसको लोगो (पीपिल्स) के विशेषत आदिमो के विश्वासो, रिवाजो, रूढियो आदि के अध्ययन मे काम मे लाया जाता है, तुलनात्मक अध्ययन भी इसमें आ जाता है।[१]

लोक-मानस की सत्ता का यह उद्घाटन वैज्ञानिक अथवा ज्ञान के क्षेत्र मे एक महत्त्वपूर्ण घटना है, और उसने इस समय तक की विविध घातक सामूहिक मनो-विज्ञान विषयक अवैज्ञानिक मान्यताओ और सिद्धान्तो को हटाकर एक शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रदान किया है। यह बात फ्रान्ज बोआज (Franz Boas) की पुस्तक **'दि माइण्ड ऑफ प्रिमिटिव मैन'** में दिये गये तद्विषयक इतिहास से भली प्रकार समझी जा सकती है। उसे यहाँ सक्षेप मे दिया जाता है।

सामूहिक मनोविज्ञान मे जातीय मनोविज्ञान (Racial Psychology) का बहुत जोर रहा है। लिन्ने ने 'जातीय रूढ रूपों' (Racial Types) का वर्णन करते हुए प्रत्येक जाति के विशेष मानसिक लक्षणो का उल्लेख किया। ऐसे मनोवैज्ञानिक उद्योगो के मूल मे यही स्थापना काम कर रही थी कि उच्च मानसिक उपलब्धियो के लिए उच्च वश परम्परा होती है। बूलेन विलियर्स (१७२७), जोह्न वेड्डो, तथा ए० प्लूज ने भी विविध जातियो के मानसिक लक्षणों का निर्धारण किया है।

गोबीन्यू ने इसी सिद्धान्त को पुष्ट करते हुए शरीराकार और मानसिक क्षमता का सम्बन्ध स्थापित किया। प्रत्येक जाति (Race) की शारीरिक विशेषता होती है, और उसी के अनुसार मानसिक सस्थान का निर्माण होता है।

---

१ Folk psychology—psychology of peoples applied to the psychological study of the belief, customs, convention etc, of peoples, especially primitive, inclusive of comparative study —A Dictionary of Psychology by James Drever, p, 98,

गोवीन्यू ने 'जातीय मानस' के सिद्धान्त को सर्वप्रथम ठोस वैज्ञानिक प्रणाली का आधार प्रदान किया। इस सिद्धान्त ने प्रभाव भी बहुत डाला। इसके समस्त वैज्ञानिक अध्ययन के चार निष्कर्ष थे

१—जगली जातियो की जो स्थिति आज है वही सदा से रही है और ऐसी ही रहेगी, भले ही वे कितनी ही ऊँची सस्कृतियो के सम्पर्क मे क्यो न आयी हो।

२—जगली जातियाँ जीवन के किसी सभ्य ढर्रे मे रहती चली जा सकती हैं, यदि वे जन जिन्होने जीवन के उस ढर्रे को निर्मित किया उसी जाति की श्रेष्ठतर शाखा के है।

३—ऐसी ही अवस्थाओ की तव आवश्यकता है जब दो सभ्यताएँ एक-दूसरे से आदान-प्रदान करती हैं, और अपने तत्वो से मिलाकर एक नयी सभ्यता का निर्माण करती हैं, दो सभ्यताओ का सम्मिश्रण कभी नही हो सकता।

४—उन सभ्यताओ के पारस्परिक सम्पर्क बहुत ऊपरी होते है, वे एक-दूसरे मे कभी भिद नही सकती, और सदा परस्पर अलग-अलग रहेगी, जो सभ्यताएँ ऐसी जातियो में उद्भूत हुई हैं जो एक दूसरो के लिए विजातीय हैं।

क्लैम्म (१८४३) ने मानव-जाति के दो भेद स्वीकार किये हैं। एक कर्तृत्व-शील या 'पुरुष अर्द्ध' और 'रम्य' (पैसिव) या 'स्त्री अर्द्ध'। यह विभाजन सास्कृतिक आधार पर किया गया है। पारसी, अरब, यूनानी, रोमन, जर्मन जातियाँ, तुर्क, तारतार, क्षोर कैसस, पेरू के इन्का और पॉलीनीसिया निवासी—'पुरुष' पक्ष वाली जातियाँ हैं—मगोल, नीग्रो, पापुअन, मलायी, अमरीकन, इण्डियन, आदि 'स्त्री' पक्ष वाली जातियाँ हैं। पुरुष जातियो का पोषण हिमालय प्रदेश मे हुआ, वही से विश्व मे फैली। इनकी मानसिक विशेषताएँ हैं—प्रबल सकल्प शक्ति, शासन की इच्छा, स्वाधीनता, स्वच्छन्दता, क्रियाशीलता, चचलता, विस्तार की भावना, तथा यात्रा-प्रियता, हर क्षेत्र मे विकास, खोज और परीक्षा की ओर स्वाभाविक रुचि, घोर हठ तथा सन्देह। वुत्के ने भी क्लैम्म के मत को स्वीकार किया।

कार्ल गुस्तव केरस (१८४६) ने बताया कि इस पृथ्वी की जातियो मे अपने ग्रह (planet) के ही लक्षण प्रतिविम्बित होने चाहिए—अपने ग्रह पृथ्वी पर रात होती है, दिन होते हैं, प्रात होता है और साय भी। इसी प्रकार यहाँ चार जातियाँ हो सकती हैं। दिवस जाति—यूरोप निवासी तथा पश्चिमी एशिया निवासी, रात्रि जाति—नीग्रो लोग। प्रात जातियाँ—मगोल। साय जातियाँ—अमरीकन, इण्डियन। दिवस जातियो की खोपडी बडी होती है। रात्रि जातियो की छोटी। प्रात-साय वाली मध्यम। केरस विविध जातियो का आकृति-निदान भी करता है। केरस ने समस्त जातियो मे तीन को विशेष महत्त्व दिया है सत्य के निर्माता हिन्दू, सौन्दर्य-निर्माता मिस्री, मानवीय प्रेम के निर्माता यहूदी। अमरीकन लेखको मे सैम्युल जी० मोर्टन का नाम उल्लेखनीय है। इस लेखक ने विविध जातियो के अध्ययन के बाद यह मत स्थापित किया कि मानव समूह का जन्म एक से नही अनेक स्रोतो से हुआ है और प्रत्येक जाति

की जातीय विशेषताएँ उनकी शारीरिक गठन से घनिष्ठ सम्बन्ध रखती है। इस सिद्धान्त को जे० सी० नौट्ट तथा जार्ज आर० ग्लिडन ने नीग्रो लोगो की गुलामी को पुष्ट करने के लिए काम मे लिया। उन्होने इस बात पर जोर दिया कि नीग्रो जाति का उद्भव ही गुलामी के लिए हुआ है।

हाउस्टन स्टीवार्ट चैम्बरलेन ने बताया कि जातियो के मूल उद्भव तक जाने की आवश्यकता नही। आज तो जातियो के भेद विद्यमान हैं। इस यथार्थ की उपेक्षा नही की जा सकती। हमे तो केवल यह जानना है कि यह जाति-गत भेद क्यो है और कैसे है ? तब वह इगलिश जाति को यूरोप मे सबसे बलवान जाति बताता है और उसके कारणो पर भी प्रकाश डालता है, गोवीन्यू और चैम्बरलेन का प्रभाव मैडिसन ग्राण्ट पर भी पडा। उसने विश्व की महान विभूतियो को नौर्दिक रक्त का परिणाम बताया है, और कहा है कि विश्व मे मनुष्य मे विकार नीग्रो तथा काली आँखो वाली जातियों से होगा।

लोथ्रप स्टोड्डार्ड ने स्थापित किया कि जब दो जातियो से मिश्रित सन्तति होती है तो उत्तम विशिष्टताओ का ह्रास ही होता है।

ई० वान ईक्स्टेट (E Von Eickstedt) ने जातीय मनोविज्ञान (Race Psychology) की नीव डालने की चेष्टा की। वह आधुनिक गेस्टाल्ट-मनोविज्ञान से प्रभावित है, और यही मानकर चलता है कि जब जातीय भेद प्रत्यक्ष है तो उनके मनोविज्ञान के तत्त्व भी स्पष्ट ही दिखायी पडते हैं। इन तत्त्वो का शारीरिक गठन से सम्बन्ध होगा ही, क्योकि शारीरिक गठन और मानसिक आचार से मिलकर ही जातीय इकाई बनती है।[१]

आधुनिक काल मे मनोवैज्ञानिको के कई सम्प्रदाय मिलते हैं

१—वह सम्प्रदाय जो यह मानता है कि जाति ही मानसिक आचार और सस्कृति का स्वरूप निर्धारित करती है। यह दृष्टिकोण प्रबल भावनामूलक मूल्यो के कारण है। इस युग मे राष्ट्रीय भावना के स्थान मे जातीय भावना को महत्त्व मिल रहा है।

२—वह सम्प्रदाय है जिसे शारीरिक मनोविज्ञान मे विश्वास है। यह मानता है कि शरीर के विन्यास के अनुरूप ही मानसिक स्वरूप होता है। इसका परिणाम यह है कि आज यह विश्वास किया जाता है कि मनोवैज्ञानिक परीक्षण से मनुष्य की सहज बुद्धिमत्ता, भावना-प्रवणता, सकल्प शक्ति के रूप को जाना जा सकता है।

---

१ "To a great extent the form of mental life as we meet it in various social groups is determined by environment Historical events and conditions of nature further impede the development of innate characteristics Nevertheless, we may certainly claim that there are racially hereditary differences Certain traits of the mind of the mongol, the negro, the melanesian and of other races are different from our own and differ among themselves"

—*The Mind of Primitive Man*, p 21

३—वह सम्प्रदाय है, जो उत्तराधिकरण (heredity) को मान्यता देता है। इसका सिद्धान्त है सस्कार नही, प्रकृति (Nature, not nurture)। दूसरे और तीसरे सम्प्रदाय का परिणाम यह हुआ है कि लोग परिस्थितियो के प्रभाव को नगण्य समझते हैं, समस्त मानसिक निर्माण का मूल उत्तराधिकरण मानते हैं।

४—वह सम्प्रदाय है जो परिस्थितियो के प्रभाव को भी स्वीकार करता है, फिर भी यूजेन फिशर की भाँति यह मानता है, कि उत्तराधिकरण से प्राप्त जातीय भेद भी उन परिस्थितियो के विकारो मे व्याप्त रहते है।

५—वह सम्प्रदाय है जो हर्डर के साथ यह मानता है कि इन समस्त प्राणि-शास्त्रीय (biological) सास्कृतिक अन्तरो का मूल कारण प्राकृतिक परिस्थितियाँ ही हैं।

कार्ल रिट्टर ने भौगोलिक प्रभाव को और भी अधिक पुष्ट किया।

६—वह सम्प्रदाय जो न जातिवाद को मानता है, न परिस्थितियो को वरन् जो विश्व भर मे मानव की समान स्थिति को स्वीकार करता है और केवल 'ऐतिहासिक सास्कृतिक' भेद स्वीकार करता है। यह दृष्टिकोण हर्वर्ट स्पेंसर, ई० वी० टेलर, एडाल्फ वास्टिअन, लीविस मोर्गन, सर जेम्स जार्ज फ्रेजर के उद्योगो का परिणाम है, जिन्हे आधुनिक काल मे डारखीम तथा लेवी ब्रुह्ल ने और परिपुष्ट किया है। वुण्ट ने फोक-साइकालोजी मे भी ऐसे ही दृष्टिकोण को वल दिया है। इस मत से विश्व-भर मे मानव-मानस की मौलिक समतन्त्रता (sameness) सिद्ध होती है, वह चाहे किसी जाति का क्यो न हो। इस प्रकार विश्व-व्यापी एक मानव-मानस की स्थिति मे विश्वास इस 'लोक-मानस' के सिद्धान्त के द्वारा पुष्ट हुआ है।

[यहाँ तक ब्रोआज की पुस्तक के आधार पर]

इस ऐतिहासिक दृष्टि-बिन्दु से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह 'लोक-मानस' की उद्भावना सामूहिक लोक मनोविज्ञान के क्षेत्र मे एक यथार्थवादी वैज्ञानिक और सबसे महत्त्वपूर्ण स्थापना है जो ऐतिहासिक क्रम मे आज उपलब्ध हुई है।

यहाँ हमे यह भी समझ लेना चाहिए कि जब हम मानव-मानस मे आज 'लोक-मानस' की स्थिति का उल्लेख करते हैं तो हमारा अभिप्राय उस उत्तराधिकरण के सिद्धान्त से नही जो जातीय दृष्टि से उसे ग्राह्य मानते हैं। मानव ने जन्म लेते ही अपनी आदिम अवस्था मे जो मानसिक उपलब्धियाँ प्राप्त की वे उसकी सहज मानवीय प्रकृति बन गयी। वे ही निरन्तर मानस की परम्परा मे मानव को मानव बनाने के लिए सूत्र रूप मे उत्तराधिकरण के रूप मे, युग-युग मे मानव-मानव मे अवतरित होती चली जाती हैं। और आदिम दाय के रूप मे कही अवचेतन के अन्तर्गत मूल मानसिक प्रकृति के रूप मे सभ्यातिसभ्य मानव मे भी विद्यमान रहती हैं।

लोक-   के तत्त्व

फ्रेजर ने यह स्थापित किया था कि 'लोक-मानस' के दो प्रधान लक्षण हैं—

१ लोक-मानस विवेकपूर्वी (Prelogical) होता है। उसने प्रिलाजिकल कहा है।

लौजिक अथवा कार्य-कारण के यथार्थ क्रम को समझ सकने वाले मानस के उद्घाटित होने से पूर्व की स्थिति से सम्बन्ध रखने वाली मन की प्रकृति। किन्तु जैसा कि 'बिफोर फिलासफी' नाम की पुस्तक मे कहा गया है, "Scholars who have proved at length that primitive man has a prelogical mode of thinking are likely to refer to magic or religious practice, thus forgetting that they apply the Kantian categories, not to pure reasoning but to highly emotional acts" p 19। क्योकि वस्तुत वे तर्क तो कर सकते थे। कार्य-कारण क्रम की आवश्यकता वे समझते थे। पर सम्भवत किसी भी क्रम को ही वे कार्य-कारण समझ सकते थे। कार्य-कारण मे व्याप्त यथार्थ कारणत्व और कार्यत्व उनके लिए महत्त्व नही रखते थे। अत 'लोक-मानस' को 'विवेक पूर्वी' नही कहा जा सकता। फ्रेजर महोदय ने तो प्रिलाजीकल उसे इसलिए माना है कि उनकी व्याख्या मे विरोधी तत्त्वो (contradictions) का समीकरण रहता है।

२ फ्रेजर ने दूसरा लक्षण स्थापित किया कि वह मिस्टिक अथवा रहस्यशील होता है। क्योकि वे अपने अनुभवो की व्याख्या मे पराप्राकृतिक शक्तियो का आश्रय लेते हैं। पर यह पराप्राकृतिक शक्तियो की शरण लेना वस्तुत उनके मानस की मूल विशेषता नहीं। यह तो उनकी एक विशेष मूल मनोस्थिति का परिणाम है। वे क्यो पराप्राकृतिक शक्तियो की कल्पना करते हैं यह जानने की चेष्टा करने से ही हम मूल 'लोक-मानस' के तथ्य से परिचित हो सकेंगे।

वस्तुत मूल सृष्टिकालीन मनुष्य मे विद्यमान सबसे प्रथम अपने जन्म की सहज प्रतिक्रियाओ का प्रतिफल है—'लोक-मानस'। आज फ्रायड के सिद्धान्तो से इतना तो अवश्य ही सिद्ध होता है कि उत्पन्न होते समय भी बालक मे मूल काम-भाव व्याप्त रहता है, जिसे हम रति कह सकते हैं। रति विस्तार चाहती है। बाह्य से आनन्दमय सम्पर्क। किन्तु बाह्य से अपनी रक्षा का भाव भी उसमे सहज है। इसका प्रतिरूप है भय। रति और भय के दो मूल सहज भाव आदिम मानव मे जन्म से आये। रति ने 'रिचुअल' अथवा अनुष्ठानो (विधि) के रूप खडे किये, भय ने टैबू अथवा निषेध और वर्जन के रूप। उस 'विधि-निषेध' के कर्म मे हम आदिम मानव में जिस मनोस्थिति को विद्यमान देखते हैं वह सबसे पहले अभेद द्योतक बुद्धि प्रतीत होती है। 'लोक-मानस' 'निज' और जड 'पर' के स्वरूप को भिन्न-भिन्न नही देख-समझ सकता। उसके लिए समस्त सृष्टि उसी के समान सत्ता रखती है। वह व्यक्ति-विशेषी (subjective) और वस्तु-विशेषी (objective) भेद करने की सामर्थ्य नही रखता। वह किसी वस्तु को वस्तु के रूप मे नही देख पाता। उसे प्रत्येक वस्तु अपने समान धर्मवाली ही विदित होती है। वह सूरज को निकलते देखता है, आकाश मे चढते देखता है और डूबते देखता है। तो वह उसे अपनी तरह ही आते और जाते देखता है और समझता है, और अपने इस ज्ञान को वह यथार्थ ज्ञान मानता है। यह ज्ञान रूपक की भाँति नही, न यह ज्ञान उसके अपने व्यक्तित्व का विस्तार है कि जिसे अपने

से इतर सृष्टि को समझने या जानने या अभिव्यक्ति की सुविधा के लिए अपने ही रूप का प्रतिरूप मानता है।

इस यथार्थ का भाव उसमे वहुत प्रवल है। उसके लिए ऐसी समस्त वातें यथार्थ सत्ताशील हैं जो उसे प्रभावित कर सकें, जो उसके हृदय और मस्तिष्क पर एक छाप छोड सकें। इस मानसिक स्थिति मे स्वप्न भी उतने ही यथार्थ हैं जितने कि जाग्रत अवस्था के दृश्य। ऐसे ही कितने ही ऐतिहासिक कथानक मिल जाते हैं जिनमे स्वप्न की वातो को पूर्ण आस्था के साथ स्वीकार किया गया है। हरिश्चन्द्र ने स्वप्न मे महर्षि विश्वामित्र को पृथ्वी दान मे दे दी और जगकर भी उस सत्य का पालन किया। वहुत-से लोग स्वप्नो से अपने लिए मार्ग-दर्शन की प्रेरणा ग्रहण करते हैं। फारहो[1] ने तो यह वात लेखवद्ध भी कर दी है कि उन्होंने कितने ही कार्य स्वप्नो की प्रेरणा से किये। इसी प्रकार भ्रम-दृश्य (hallucinations) भी आदिम मन के लिए मिथ्या नही सत्य थे। जमीरिया के अस्सढद्दन के सरकारी विवरणो मे यह उल्लेख किया गया है कि उनकी सेना जव सिनाई रेगिस्तान मे होकर जा रही थी और वहुत थकी-माँदी थी तो उन्हें दो सिरो वाले हरे उडने वाले साँप दिखायी पडे थे। तात्पर्य यह है कि भ्रमदृश्य जैसी वस्तु भ्रम के रूप मे उनके लिए अस्तित्व नही रखती थी। जो उन्हें दिखायी पडा, भले ही वह भ्रम हो, पर जिसने उनके हृदय अथवा मस्तिष्क को प्रभावित किया, उसे वे अस्वीकार नही कर सकते थे, उसकी सत्ता उन्हें यथार्थंत माननी पडती थी।

इसी प्रकार, तीसरे, वे जीवित और मृतक मे भी कोई विशेप भेद नही कर सकते थे, स्वप्न मे अथवा जाग्रत स्मृति मे मर जाने वाले सजीव मानस चित्रो के आवर्तन से उसे मृतक भी जीवित की भाँति सत्तावान ज्ञात होते थे। वस्तुत तो उनसे भी अधिक।

चौथे, अश और समग्र वस्तु मे भी वे कोई भेद नही कर सकते थे। शरीर का एक अश भी, सिर का एक वाल ही क्यो न हो, उसके सम्पूर्ण शरीर के ही तुल्य ग्रहण किया जाता था। कहानियो मे मिलने वाले अभिप्रायो मे हमे ऐसे वहुत-से अभिप्राय मिल जायेंगे, जिनमें किसी व्यक्ति के वाल को आग मे तपाने से उस व्यक्ति को वुलाया जा सकता है। इस 'अभेदवाद' मे ही यह मान्यता भी आती है कि नाम भी व्यक्ति से अभिन्न है। अनेक क्षेत्रो मे अपने से वडो के नाम भूमि पर लिखने का घोर निपेध है, इस निपेध के पीछे यही भावना काम करती है कि नाम पर पैर पडेंगे, और यह ऐसा ही है जैसे स्वय नामधारी पर पैर पडे हो। इसी विश्वास का एक रूप हमें माध्यमिक राज्यो के मिस्र राजाओ की एक रिवाज में मिलता है। ये लोग प्यालो पर अपने शत्रुओ के नाम खुदवा देते थे, और उन्हें एक विशेप सस्कार के साथ फोड डालते थे, इससे वे विश्वास करते थे कि अव उनके शत्रुओ का नाश हो गया। आज

१　मिस्र का प्राचीन सम्राट

भी ब्रज के गाँवों में स्त्रियाँ दिवाली और होली पर वैरियरा को कूटती हैं, वे अपने कुटुम्ब के प्रत्येक व्यक्ति का नाम लेकर उसके वैरियरा का उल्लेख करके पृथ्वी पर मूसल कूटती हैं। वे यथार्थ मे विश्वास करती हैं कि इससे शत्रु कुचल जायेंगे।[१] वे यह भेद भी नही कर सकते थे कि कार्य कोई और वस्तु है और सस्कारानुष्ठान कोई और। एक किसान अपनी सफल फसल को देखकर यह नही कह सकता था कि यह सफलता उसकी मेहनत का फल था या उसके द्वारा किये गये अनुष्ठान का। उसके लिए दोनो ही एक तत्त्व बनकर उपस्थित होते हैं।

इसी प्रकार उसके लिए भावाश (concept) भी मूर्त स्वरूप वाले होते थे। उदाहरण के लिए 'प्राण' उसके लिए मूर्त वस्तु है जिसे वह ले-दे सकता है, अथवा बाँट भी सकता है। सत्यवान के शरीर से यम प्राण नाम का पदार्थ निकाल ले गये, और सावित्री को वह पदार्थ लौटा भी दिया। मृत्यु भी मूर्त वस्तु की भाँति परि-कल्पित है। यम भी मृत्यु का मूर्त रूप है।

यह बात भी यथार्थ है कि आदिम मानस 'कार्य कारण' के भ्रम पर तो विश्वास करता था, पर वह उसे एक व्यक्तित्व हीन प्राकृतिक व्यापार मानने को तैयार नही था। वह प्रत्येक कार्य का कारण चेतना और 'इच्छा' से सयुक्त किसी पदार्थ को मानता था, इसलिए जैसा हेनरी फ्रैंकफट आदि ने लिखा है, कार्य-कारण की स्थापक प्रश्न-प्रणाली से वे 'कैसे' और 'क्यो' का उत्तर नही ढूँढते थे, वे 'कौन' की कल्पना करते थे। वे यह तो मानते थे कि यह जो वर्षा होती है अथवा रात-दिन होते हैं उनका कारण अवश्य है, पर वह कारण कोई सिद्धान्त विशेष नही हो सकता, कोई व्यक्तित्व ही हो सकता है। कोई व्यक्ति है जो बादलो को भेजता है और वर्षा कराता है। सूर्य एक व्यक्ति है, वह आता है और जाता है। इसी प्रकार प्रत्येक व्यापार के लिए वे कारणो की कल्पना करते थे।

कारण और कार्य मे इस मूर्त चेतन व्यक्तित्व की स्थापना के ही साथ वे उनमे इच्छा के भी दर्शन करते थे। मृत्यु या जीवन पदार्थ रूप तो है ही, उनके आदान-प्रदान मे इच्छा का भी तत्त्व है। इस इच्छा तत्त्व और मूर्तत्व से सम्पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण होता है, तब गुणो और दोपो के रूपों की कल्पना आदिम मानस करने लगता है। इसी स्तर पर देवताओ और असुरो का जन्म होता है।

---

[१] इसी मनोस्थिति का एक परिणाम यह है कि तुल्य आकार की वस्तु अथवा पदार्थ मे और तुलनीय मे भी कोई अन्तर नही। टोने और टोटके इसी मनोस्थिति का फल हैं। किसी आदमी का पुतला बनाकर उसे काट डालने से वह आदमी स्वय कट जायगा। मिस्र मे नूत स्वर्ग की वत्सला देवी मानी जाती है। मिस्र के लोग मृतक पुरुष को स्वर्ग भेजने के लिए कफन मे मनुष्य के कद का नूत का चित्र अकित कर देते थे और उसमें मुर्दे को बन्द कर देते थे। इस विधान से उनका मृत पुरुष स्वर्ग मे पहुँच जाता था।

कार्य और कारण की कल्पना मे वे किसी भी निकटस्थ तत्त्व को कारण स्वीकार कर सकेंगे, भले ही वह यथार्थ कारण न हो। केवल दो की सम्बद्धता ही कारण रूप मे पर्याप्त है। मिस्र मे यह माना जाता रहा है कि आकाश स्त्री है, और पृथ्वी पिता। आकाश पृथ्वी के ऊपर लेटा हुआ था किन्तु वायु के देवता शू ने दोनो को पृथक कर दिया और आकाश को ऊपर उठा दिया। शू को उस रूप मे मानने का कारण केवल यही है कि उन्हे आकाश और पृथ्वी के बीच मे वायु का सचार दिखायी देता था। द्यावा-पृथ्वी को भारतीय परिकल्पना मे भी माता-पिता स्वीकार किया जाता है।

वह विविध तत्त्वो और व्यापारो मे सघर्ष भी देखता है, और इच्छा-व्यापार-युक्त उसे मूर्त रूप देता है।

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो सका है कि आदिम मानव की मनोवैज्ञानिक स्थिति मे निम्नलिखित तत्त्व होते हैं

१—समस्त सृष्टि मनुष्य के ही तुल्य है। यदि इस सृष्टि मे वह स्वय 'मैं' है तो सृष्टि का प्रत्येक अन्य अग उसके लिए 'तू' है।

२—प्रत्येक व्यापार, गुण आदि उसके लिए मूर्त अथवा पदार्थवत सत्ता रखता है, मृत्यु, जीवन, प्राण आदि उसके लिए पदार्थ रूप ही है जिनका आदान-प्रदान हो सकता है।

३—तुल्य और तुलनीय, अश और अशी, चिह्न-प्रतीक और प्रदाता अथवा लक्ष्य मे अभेद होता है।

४—देश काल के भेद से होने वाली आवृत्ति मे भी मूल विद्यमान रहता है।

५—प्रत्येक व्यापार अथवा तत्त्व 'इच्छा' से भी सयुक्त होता है।

६—व्यापारो मे कार्य-कारण परम्परा होती है पर कोई भी कारण निकटता, सम्बद्धता, पूर्वकालिकता के तत्त्व से युक्त होने पर कारण हो सकता है।

७—वह विविध प्राकृतिक तत्त्वो मे सघर्ष भी लक्षित करता है। सूर्य और रात्रि मे सघर्ष होता है। सूर्य परास्त होता है आदि।

इन तत्त्वो के साथ ही यह बात परिलक्षणीय है कि आदिम मानव समस्त सृष्टि से अपने व्यक्तित्व को तटस्थ नही रख सकता था। वह मनत और कर्मत मानसत और भावत सृष्टि के समस्त व्यापारो का अग होता। अत तुल्य-मूर्त विधान की मान्यता के साथ वह अपने लिए उपयोगी-अनुपयोगी तत्त्वो को अपने द्वारा प्रस्तुत करता था। इस प्रस्तुत को अनुष्ठान अथवा रिचुअल कहा जा सकता है। इसके द्वारा वह प्रकृति के विविध तत्त्वो के सघर्ष व्यापार मे सहयोग देता था।

प्रकृति से वह सहयोग भाव से चलता था। प्रत्येक प्रकृति के व्यापार मे वह अपने लिए किसी प्रकार का अर्थ भी ग्रहण करता था। शकुनो की उद्भावना इसी स्थिति का परिणाम है।

ऊपर लोक-मानस के जो तत्त्व प्रस्तुत किये गये है, उन्हे सक्षेप मे हम केवल चार कोटियो मे विभाजित कर सकते हैं। वे हैं

१—यथार्थ और कल्पना मे भेद करने की असमर्थता।

प्राकल्पना (फैंटेसी थिंकिंग)

२—प्राणि-अप्राणि, 'जड-चेतन' को आत्मा से युक्त जानना।

आत्मशीलता (ऐनिमिस्टिक थिंकिंग)

३—यह विश्वास होना कि तुल्य से तुल्य पैदा होता है।

टोना विचारणा (मैंजिकल थिंकिंग)

४—यह विश्वास होना कि विशेष विधि से कार्य करने से इच्छित फल अथवा अभीष्ट प्राप्त होगा।

आनुष्ठानिक विचारणा (रिचुअल थिंकिंग)

इन मानसिक तत्त्वो के परिणाम निम्नलिखित होगे

१—सत्य और स्वप्न मे अभेद—इससे वह इस निष्कर्ष पर पहुँचेगा कि उसके दो अस्तित्व हैं—एक वह जो शरीर से सम्बद्ध है, दूसरा वह जो शरीर छोडकर 'स्वप्न' मे घूमता फिरता है।

२—शरीर और छाया मे अभेद—छाया को भी उतना ही महत्त्वपूर्ण मानना और अपना स्वरूप मानना, जितना शरीर को।

३—मृतक को भी सोया हुआ मानना, और यह समझना कि उसका दूसरा व्यक्तित्व 'आत्मा' कही भटक गया है, वह सभवत फिर कभी लौटेगा। अत उसके शव को सुरक्षित करके उसके साथ भोजन आदि की वस्तुएँ रखने की व्यवस्था की गयी।

४—भूत-प्रेतो मे विश्वास इसी वृत्ति का परिणाम है। कितनी ही ऐसी आदिम अथवा असभ्य जगली जातियाँ हैं जो पशुओ, पेडो और पत्थर तक के भूतो अथवा प्रेतो को मानती हैं।

५—अचरो, जडो अथवा अप्राण पदार्थों को आत्मतत्त्व से युक्त देखना जिससे वृक्ष, पहाड, नदी, नाले चेतन मानवो की भाँति काम करते माने जाते हैं।

६—क्रम के सयोग से वस्तुओ मे कार्य-कारण की कल्पना जिसे काकतालीय भी कह सकते हैं। उदाहरणार्थ, कभी कई दिनो से मेह पड रहा है, और बद नही होता, तभी किसी से तवा उल्टा होकर आँगन मे गिर पडा, इसके बाद ही सयोग से मेह बन्द हो गया, तो आँगन मे उल्टा तवा रखना मेह बन्द होने का कारण मान लिया गया।

७—तुल्य से तुल्य को प्रभावित करना—पुतलो मे सुई चुभोकर मनुष्य की मृत्यु मे विश्वास करना।

८—अश से अशी को प्रभावित करना—किसी के नाम, वस्त्र, शरीर के अश, बाल, नाखून, आदि से उसे प्रभावित करना।

९—इसी विश्वास से टोने करने वाले भोपो अथवा जादूगरो अथवा स्यानो का प्रादुर्भाव।

१०—विशेष विधि से अनुष्ठान करने से वलात् अभीष्ट की सिद्धि—इसी के फलस्वरूप मन्त्र से अथवा अनुष्ठान से फल-सिद्धि मानी जाती है। 'पुत्रेष्टियज्ञ' इसी वृत्ति का परिणाम है।

११—सतान-धारण और सभोग-क्रिया मे कार्य-कारण की स्थिति का अज्ञान—ऐसी आदिम जातियाँ आज भी हैं जो यह नही समझती कि पिता के कारण पुत्र पैदा होता है। आज भी स्त्रियाँ और पुरुप देवी-देवताओ और पीरो-पैगम्बरो से सतान की याचना करती मिलती हैं, वह इमी मूल आदिम विश्वास का ही अवशेष है।

१२—आदिम मानव व्यक्ति के अस्तित्व को नही मानता, वह तो 'दल' के अस्तित्व को ही मानता है। इसी के परिणामस्वरूप ऐसे समाजो मे यह स्थिति मिलेगी कि एक लडका अपने दल के समस्त वयोवृद्ध व्यक्तियो को पिता या पिता-तुल्य मानता मिलेगा।

इसी मनोवृत्ति का परिणाम यह भी है कि किसी-किसी आदिम जाति मे एक दल की समस्त समवयस्क स्त्रियाँ, पुरुप की वहिनें मानी जाती हैं। और उस दल की समस्त समवयस्क स्त्रियाँ उसकी पत्नी के समकक्ष, जिसमे उसका विवाह हुआ है।

इस सम्वन्ध मे डी आर० आर० मैरेट ने "साइकौलौजी एण्ड फोकलोर" (१९२०) नाम के निवन्ध सग्रह मे लिखा है "यह कथन जोडना और है कि यद्यपि लोकवार्ताविद का धर्म, मेरी दृष्टि मे, यही है कि वह अपनी विपय वस्तु को स्थिर न मानकर परिवर्तनशील ही माने, जीवित माने, मृत नही, फिर भी इसके यह अर्थ नही कि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ऐसे कोई स्थायी छाया के समूह होगे ही नही जो चित्रकला (Kinematographic) की प्रणाली से देखने पर प्रतिफलित होगे, ऐसा कुछ भी नही मिलेगा जिसे अपेक्षाकृत स्थिरशील मानकर उस परिवर्तन की नाप-जोख का साधन वनाया जा सके। उलटे मनुष्य की आन्तरिक प्रकृति के अध्ययन से तो यही घोषित करने की ललक होती है कि "plus ca Change plus 1' est to me'me Chose" यह मानना न्याय सगत ही होगा कि मानव जाति (स्पीसीज) ने वनमनुष्यो (एप्स) से किसी विधि से अपना सम्पूर्ण विच्छेद तो सदा के लिए कर लिया पर तव से अव तक वह अपने रूप को प्रत्यक्षत वैसा ही वनाये रख सकी। (पृष्ठ १९)

यही विद्वान आगे लिखता है

"किन्तु सभ्य मानस के क्षेत्र मे प्राचीन पाखड छिपे पडे हैं। एक क्षण के लिए भी किंचित विवेक चेतन (रेशनल) का प्रयत्न शिथिल होते ही मानस क्षेत्र मे ये सामने आकर उपस्थित हो जाते हैं। (पृ० २२)

यही लेखक आगे लिखता है कि

"यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि लोकवार्ता मे अवशेषो के अवशिष्ट रहने पर विचार किया जाता है तो ये अवशेप क्यो वच रहते हैं ? ये भी अन्य वातो की

तरह समाप्त क्यो नही हो जाते ।" लेखक कहता है, "इसका ठीक उत्तर यह है कि ये इसीलिए बचे रहते हैं कि ये लोक के उस जीवन के वे उपलक्षण हैं जिनकी निरन्तर पुनरावृत्ति होती रहती है और जिनमे ही केवल दीर्घकाल मे यह अवशिष्ट रहने की आन्तरिक क्षमता रहती है।" इससे स्पष्ट है कि लोक जीवन मे जो परम्परागत अवशेष रहता है, उस अवशेप के साथ वह मानस भी अवशेप के साथ रहता है जिसका उस अवशेष के साथ सम्बन्ध है। वस्तुत जब तक मानस मे उस अवशेप के लिए आग्रह नही हो तव तक कोई वस्तु अवशेष की भाँति परम्परा से परम्परा मे जा नही सकती। मूलत ये मानस की मूल वृत्तियाँ है जो मानव के आदिम से आदिम रूप को अपने अन्दर बचाये हुए हैं।

समस्त मानसिक सस्थान मे अब हम 'लोक मानस' की स्थिति को और भी भली प्रकार समझ सकते हैं। (देखिए पृ० ४४ का चित्र)

पहले समस्त मानस के दो वडे भेद किये जा सकते है १—चेतन तथा २—अवचेतन। तीसरा भेद अर्द्धचेतन का भी मानना होगा। यह अवचेतन और चेतन के वीच का अवकाश नही, यह चेतन की परिधि के रूप मे है, चेतन की आवश्यक सीमा। अवचेतन के दो वडे भेद होगे —उपार्जित अवचेतन, जो मनोविश्लेपणवादियो के अनुरूप स्थिति रखता है और कुण्ठाओ तथा दमित वासनाओ का बना हुआ है।
२ उत्तराधिकारेय मानस। यही लोक-मानस है। इसके निर्माण मे दो तत्त्व हैं
१ आदिम उत्तराधिकरण—यह मानव के मन की गति का प्राकृतिक दाय है।
२ ऐतिहासिक उत्तराधिकरण—आदिम काल से चलकर आज तक उस प्राकृतिक आदिम मानसिक सस्थान के सूत्रो से सलग्न होकर इतिहास क्रम मे विविध सस्कारो और सस्कृतियो के विकास से उपलब्ध मानसिक सस्कार जो आज हमारी रुचि और प्रवृत्ति के मूल मे अलक्षित विद्यमान मिलते हैं।

प्रश्न यह है कि लोक-मानस की यह स्थिति 'व्यक्तिगत' है या सामूहिक। ऊपर से यह प्रश्न कुछ हास्यास्पद प्रतीत होता है। मानस का सम्बन्ध मस्तिष्क से है। मस्तिष्क किसी शरीर का ही अश हो सकता है। अत मानस तो किसी व्यक्ति में ही हो सकता है। किन्तु वात इतनी सरल नही। मानव का मनुष्य से सम्बन्ध है। मनुष्य का शरीर से। शरीर व्यक्तिपरक होता है। इसके होते हुए भी हम 'मानव' की एक ऐसी स्थिति भी मानने को वाध्य होते हैं जो मात्र व्यक्तिगत' नही। यह मानव क्या है ? क्या इसके शरीर नही है ? है। पर वह व्यक्तिरूप में नही मिलेगा। व्यक्ति-व्यक्ति में व्याप्त जो शरीर धर्म है वस्तुत मानव का वही शरीर है। क्या यह नही पूछा जा सकता कि सृष्टि मे जो अरबो मनुष्य हैं, उनमे से प्रत्येक को हम मनुष्य ही क्यो मानते हैं ? जातिवादियो 'रेसथ्योरी' मानने वालो ने छोटे मस्तिष्क[१] या सिर वाले

[१] कार्ल गुस्तव केरस ने 'सिस्टम आव फिजियोलॉजी' मे बताया है कि यूरोपियनो के मस्तिष्क का आकार वडा होता है। ये दिवस जातियाँ हैं और नीग्रो जाति का मस्तिष्क छोटा होता है यह रात्रि जाति है।

नीग्रो और विशाल मस्तिष्क वाले यूरोपियनो मे भेद माना है, उनकी विविध शक्तियो मे अन्तर माना है, उनके द्वारा होने वाले हानि-लाभ को भी आँकने की चेष्टा की है।[1]
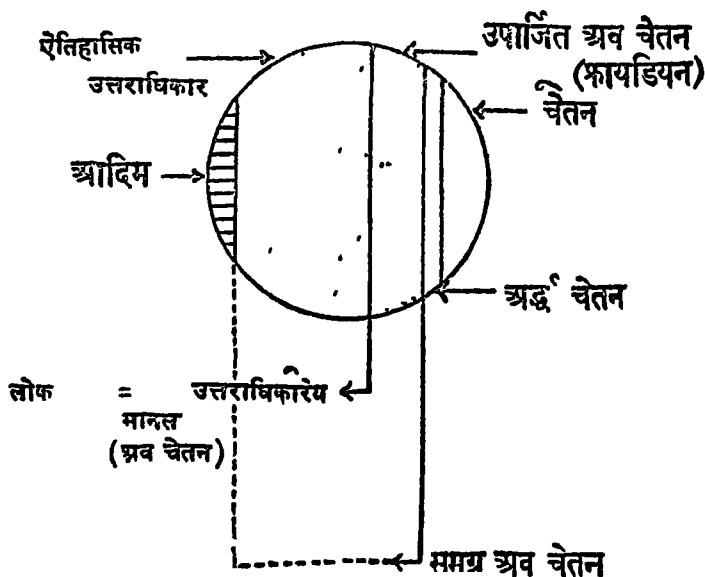
पर उन्हे 'मनुष्य' सभी ने माना है। यही नही सबसे आदिम जगली मानव से लेकर आज के सभ्यातिसभ्य मनुष्य को भी मानव कहा जाता है। ऐसा क्यो ? कोई ऐसा धर्म अथवा लक्षण अवश्य है जो समान रूप से सबमे व्याप्त है। वह प्रत्येक शरीर मे प्रकट होता है, किन्तु सबमे समानता है। यही मानव है जिसमे ससार मे फैले हुए प्रत्येक मनुष्य का रूप समाया हुआ है। इस मानव की सत्ता ही उसमें मानस की सत्ता की स्थिति की भी सूचना देती है। जब 'मानव' है तो उसका मानस भी होगा। यह मानस वह मानस होगा जो ऐतिहासिक कालक्रम से आदिम मे लेकर आज तक और भौगोलिक क्रम से समस्त विश्व मे प्रत्येक मस्तिष्क मे 'सामान्य मानस-धर्म' के रूप मे विद्यमान है। इस अर्थ मे 'लोक-मानस' मात्र व्यक्तिगत नही। व्यक्तिगत रूप मे स्थित भी वह सामान्य मानस है जिसके कारण प्रत्येक व्यक्ति का मानस मानस कहलाता है, और जिसके कारण ही मानव मानव के लिए प्रेषणीय हो पाता है। इसी

---

[1] मेडीसन ग्राण्ट ने इसे स्पष्ट किया है, Franz Boas ने बताया है कि His (i e , Madeson Grant's) book is a dithyrambic praise of the blond blue eyed long headed white and his achievements and he prophesies all the ills that will befall mankind because of the presence of negroes and dark-eyed races (The Mind of Primitive Man, p 25)

अर्थ मे यह सामूहिक भी है क्योकि समस्त मानव समूह मे अपनी सामान्यता के कारण यह धर्म के रूप मे विद्यमान प्रतीत होता है। जैसा ऊपर बताया जा चुका है आज यह लोकवार्ताविदो के द्वारा सिद्ध हो चुका है कि मानव-मात्र समान मानस धर्म रखता है।[१]

लोक-मानस उस मानव-मानस का ही एक अश और अग है। इस लोक-मानस का प्रत्यक्षीकरण किसी व्यक्ति के द्वारा नही होता। व्यक्ति मे विद्यमान रहते हुए भी मनोवैज्ञानिक इस मानस की झाँकी अभिव्यक्ति के माध्यम से ही कर पाते हैं। अनादिकाल से आज तक और सृष्टि मे ओर से छोर तक मनुष्य मात्र की जितनी भी अभिव्यक्तियाँ हैं, उनके विश्लेषण से ही लोक-मानस की स्थिति और उसके स्वरूप का ज्ञान होता है।

लोक-मानस और मानव-प्रकृति

उक्त विवरण से कुछ ऐसा आभास मिलता है कि लोक-मानस और मानव-प्रकृति को अभिन्न मान लिया गया है। वस्तुत मानव-प्रकृति तो मनुष्य के स्वरूप का मूल है और मानस उसका एक अग मात्र। मानव-प्रकृति मानस की दिशा निर्धारक प्रकृति है। मानव प्रकृति के, रूढ मूल स्वरूप के अनुसार जो मानस ढला, वह जिस प्रकार से ऐतिहासिक-भौगोलिक क्रम मे प्रतिक्रियावान अथवा क्रियावान होकर विकसित होता हुआ, पर अपने रूढ मूल की सीमाओ अथवा तत्त्वो को न त्यागता हुआ, चला आया है, वही लोक-मानस है। यह आदिम मानस 'प्रिमिटिव माइड' भी नही है, और 'जन-मानस' भी नही है। यह तो मात्र वह प्राकृतिक आदिम रूढ मूल मानस है जो ऐतिहासिक अथवा भौगोलिक स्थितियों के परिणाम को किसी भी रूप मे ग्रहण नही करता। इस आदिम शब्द का प्रयोग आज विद्यमान आदिम जातियो के लिए भी होता है। अत आज आदिम मानस से आदिम जातियो की मानसिक विशेषताओ का ही ज्ञान होता है। निश्चय ही यह लोक-मानस नही। लोक-मानस का किसी वर्ग अथवा जाति विशेष से सम्बन्ध नही। वह तो सर्वत्र मानस के मूल मे विद्यमान तत्त्व है। यह जगल मे भी और शहर मे भी मिलेगा।

लोक-मानस क्यो हमे आज जन-मानस से भी भिन्न मानना होगा। जन को यदि जाति 'रेस' का पर्याय माना जाय तो वस्तुत लोक-मानस उसका विरोधी है। लोक-मानस की अवस्थिति ऐसे जन-मानस के सिद्धान्त को भ्रामक सिद्ध करती है। किन्तु आज 'जन' शब्द रेस अथवा जाति के अर्थ मे नही आता। आज 'जन' शब्द से जनता का भी अर्थ ग्रहण किया जाता है। 'जनता' शब्द भी विश्व भर के सामान्य

---

[१] The Psychological basis of cultural traits is identical among all races, and similar forms develop among all of them (p 33) तथा The similarities of culture the world over justify this assumption of a fundamental sameness of the human mind regardless of race (p 34)

मनुष्य का वाचक है। अत जन-मानस उस सामूहिक 'कलैक्टिव' मनोविज्ञान का एक रूप है, जो वस्तुत मानस के चेतन पक्ष पर वल देता है। जन-मानस किसी युग का वह साधारणीकृत मानस होता है, जिसमे चेतन रूप मे सामाजिक सस्कार-वद्धता के साथ युग के विधि-विषेधो के परिणाम से उद्भूत चेतन वृत्तियाँ फलित होती है। इसका सम्बन्ध चेतन-ग्राह्य वृत्तियो से है। इन मानसिक वृत्तियो की पृष्ठभूमि सामाजिक सस्कारो की चेतना और युग-चेतना के साधारणीकरण से प्रस्तुत होती है। इसी कारण यह लोक-मानस से भिन्न है।

लोकतत्त्व और लोक-मानस

सग्रहीत मानस (Collective Mind) के सम्बन्ध मे एक और दृष्टि से विचार करना भी आवश्यक है। लोकवार्ता के विविध पर्तों का उल्लेख करके सग्रहीत मानस से लोक-मानस के अन्तर को और अधिक वैज्ञानिक आधार पर प्रकट करने की आवश्यकता है, इसे सप्रमाण मनोवैज्ञानिक अथवा मनोविश्लेषक प्रयोग से और यथार्थ परीक्षणपूर्वक करना होगा। इसे हम यो प्रस्तुत करते हैं·

> और जिस शाब्दिक अभिव्यक्ति अथवा वाणी मे जितना यह लोक-मानस अधिक मात्रा मे मिलेगा, उतनी ही वह लोक-साहित्य के अन्तर्गत आ सकेगी। मैरेट महोदय ने लिखा है कि ऐतिहासिक परिस्थितियाँ बदलती हैं, जबकि मनोवैज्ञानिक स्थितियाँ अपेक्षाकृत स्थायी होती हैं। लोक-साहित्य के विद्यार्थी को दोनो के साथ ही न्याय करना चाहिए। "Psychology and Folklore (p 121)" क्योकि आज लोक-वार्ता मात्र अवशेषो का ही अध्ययन नहीं है, लोक-मानस के साथ लोक आज मानव मे जीवित है। लोक-साहित्य के द्वारा हम उसे आज उसके इतिहास के साथ विद्यमान रूप मे अध्ययन करते हैं। वस्तुत लोक-साहित्य के अध्ययन का अभिप्राय इसी लोक-मानस का उद्घाटन करना है।

लोकतत्त्व

लोकतत्त्व की एक चर्चा यो की जाती है (अ) "अत हमे यह मानना ही चाहिए कि इन रूमानी वैदिक सवादो (उर्वशी-पुरुरवा तथा यम-यमी सवादो) मे उस साहित्यिक शैली का अवशेष हमे मिलता है जो अनिवार्यत लोक-कविता (folk-poetry) के स्वभाव की थी, और जो सहिताओ की कट्टर धर्मानुष्ठानिक कविता से भिन्न थी, किन्तु जो परवर्ती वैदिक युग मे मर गयी थी।"[१] (आ) "जायसी सच्चे पृथिवी पुत्र थे। वे भारतीय जनमानस के कितने सन्निकट थे, इसकी पूरी कल्पना करना कठिन है। गाँव मे रहने वाली जनता का जो मानसिक धरातल है, उसके ज्ञान की जो उपकरण सामग्री है, उसके परिचय का जो क्षितिज है, उसी सीमा के भीतर हर्षित

---

१ डॉ० एस०के० डे० एनशेण्ट एरॉटिक्स एण्ड एरॉटिक लिटरेचर, पृ० ६, १०।

स्वर से कवि ने अपने गान का स्वर ऊँचा किया है। जनता की उक्तियाँ, भावनाएँ और मान्यताएँ मानो स्वय छन्द मे बँधकर उनके काव्य मे गुँथ गयी है।"[१]

इस प्रकार हम देखते है कि लोकतत्त्व के त्रिविध पर्त प्रतीत होते है। ऐसा होना स्वाभाविक है क्योकि लोकतत्त्व जीवनव्यापी हैं, और प्रत्येक मानव मे उसके जन्म से ही बद्धमूल है। ये उसकी प्रकृति के ही अग हो गये हैं। हमने लोक-मानस पर प्रकाश डालते हुए यह स्थापना की थी कि मानवी मानस पहले तो दो विभागो मे बाँटा जा सकता है जिन्हें आज का मनोविज्ञान चेतन तथा अवचेतन मानस कहता है। चेतन मानस की क्रिया-प्रक्रियाओ का विचार शुद्ध मनोविज्ञान का विपय रहा है। अवचेतन की क्रिया-प्रक्रिया का अनुसन्धान करने वाला नया विज्ञान मनोविश्लेपण-विज्ञान कहलाता है। फ्रायड-जुग-एडलर के त्रिगुट ने इस अवचेतन के विविध पहलुओ को स्पष्ट किया है, किन्तु वास्तविक बात यह है कि यह अवचेतन मानस भी दो स्तर वाला है (क) इसका चेतना-सम्पर्कित अवचेतन मानस ऊपरी पर्त है। इसे ऐतिहासिक या उपार्जित अवचेतन कह सकते हैं। मनोविश्लेपण का अब तक का पक्ष वस्तुत इसी स्तर से सम्बन्धित था। यह दमित और कुण्ठित भावना का वह कोश है जो चेतना के अत्याचार से क्षुब्ध हो पीछे छिप गया है, और घायल सर्प की भाँति बदला लेने के लिए कटिबद्ध अवसर की ताक मे फुकारता रहता है।

(ख) इस अवचेतन का निचला स्तर उत्तराधिकारावतरित सहज मानस का है। मानव ने जिस दिन पहले-पहल आँख खोली उस दिन उसे जो दिव्या-दिव्य अनुभूति हुई वह उसके समस्त अस्तित्व मे समा गयी। उसके शरीर का रोम-रोम और अणु-अणु उस प्रकृति से अभिभूत हो गया। इसे कोई चाहे तो आदिम मानस (primitive mind) कह सकता है। यह आदिम मानस प्रत्येक मानव को आज भी उत्तराधिकार मे प्राप्त हुआ है। इस पर हम अन्यत्र भली प्रकार विचार कर चुके हैं।[२] यही लोक-मानस है।

(१) यहाँ हम इस बात की ओर सकेत करना चाहते हैं कि यह मानस दमित या कुण्ठित चेतन का रूप नही बल्कि यह हमारे सहज मानस की तरह या हमारे समस्त मानवीय मानस के लिए बीज की तरह सहजात है। यह विश्व के समस्त मानव मात्र मे विद्यमान है और वस्तुत इसी की मौलिक अवस्थिति के कारण विश्व भर के मानव सामान्य प्रक्रियाओ मे समान प्रतीत होते हैं। यह मानस देशव्यापी भी हैं और कालव्यापी भी हैं।

(२) इसकी देश-व्याप्ति स्थिति भौगोलिक सीमाओ मे इसे विश्व भर मे व्याप्त सिद्ध करती है। यह लोक-मानस का भौगोलिक पक्ष है। इस मूल या आदिम लोक-मानस मे वे तत्त्व भी विद्यमान हैं जो भौगोलिक पृष्ठभूमि से सामग्री ग्रहण कर सकते

---

१ डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल पद्मावत-सजीवनी टीका, पृ० ७।
२ देखिए, मध्ययुगीन साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन।

है, और अपने प्रवृत्ति-मूल को अक्षुण्ण रखते हुए भी क्षेत्रीय मानव के स्वरूप को भौगोलिक वातावरण मे पनपने योग्य बना सकते है। इसी के कारण स्थानीय सस्कृतियो का निर्माण होता है।

(३) इसकी कालव्यापी स्थिति ऐतिहासिक पक्ष को प्रकट करती है। मूल उद्भव के काल से लेकर आज पर्यन्त यह मानस मानव-मानव मे अवतरित होता चला आया है। इसके सहज आदिम मूल मे ऐसे तत्त्व भी विद्यमान है जो काल की गति से होने वाले सघातो से प्राप्त विषयो और सामग्रियो को ग्रहण कर सकें, और उन्हे अपने अनुकूल रखते हुए भी, मानव के स्वरूप को विविध ऐतिहासिक युगो के अनुकूल ढालते रहे।

(४) यह मानस ही मूलत लोकतत्त्व का निर्धारक है। यह मनुष्य की प्रत्येक अभिव्यक्ति मे किसी न किसी प्रकार मे विद्यमान अवश्य रहता है। यह न तो सग्रहीत मानस (collective mind) है, और न उपार्जित ही। उपार्जित की चर्चा तो ऊपर की जा चुकी है। सग्रहीत मानस मे भी इसका भेद समझ लेना आवश्यक है।

लोक-मानस तथा सग्रहीत मानस—वैसे तो सी० जी० जुग ने लिखा है कि "आधुनिक मनोविज्ञान अवचेतन कल्पना की उद्भावनाओ को अवचेतन मे घटित होते रहने वाले व्यापारो को आत्म-छवियो के रूप मे, अथवा अवचेतन मानस-मूल (unconscious psyche) के निज विषयक कथन के रूप मे मानता है। ये दो कोटियो मे रखे जाते हैं। प्रथमत ऊहाएँ (स्वप्नो को मिलाकर) जो निजत्व के गुणो से युक्त होने के कारण निर्विवादेन विगत निजी अनुभवो से विस्मृत या दमित बातों से सम्बन्धित होती हैं, और इनको व्यक्तिगत विस्मृति (amnasis) से पूरी तरह समझाया जा सकता है। दूसरे, वे ऊहाएँ (स्वप्नो को मिलाकर) जो निर्वैयक्तिक प्रकृति की होती है, जिन्हें व्यक्ति के अपने विगतकालीन अनुभवो के रूप मे नही परिणत किया जा सकता, और ऐसे ही जिन्हे व्यक्तिश उपार्जित किसी वस्तु के रूप में नही समझाया जा सकता। ये ऊहा-चित्र निर्विवादेन धर्मगाथिक मानको (type) से अपना निकटतम साम्य रखते हैं। अत हमे यह मानना पडेगा कि ये सामान्य मानव मूल मानसिकता के किसी सगृहीत (और निजी नही) निर्माण तत्त्वो के समवायी हैं, और मानव शरीर के निर्मायक तत्त्वो की भाँति उत्तराधिकारागत (inherited)। इसी को जुग महोदय ने 'सग्रहीत अवचेतन' (collective unconscious) का नाम दिया है।[1] जुग महोदय ने जिस रूप मे 'सग्रहीत मानस' की परिभाषा दी है, वह एक प्रकार से प्राय वही है जो हमारे लोक-मानस की है। केवल एक महत्त्वपूर्ण अन्तर प्रतीत होता है, वे उसे निर्माणतत्त्वो के समवायी मानते हैं। हमने उसे आरम्भिक आदिम मूल मानसिकता के रूप मे ग्रहण किया है, यद्यपि हमने भी उसकी प्रवृत्ति मे निरन्तर निर्मायक तत्त्वो का शील परिलक्षित किया है। ऐसा लगता है जैसे जुग

---

1 इण्ट्रोडक्शन टू दि साइंस ऑफ मॅथालाजी, पृ० १०२, १०३।

उस मानम को पूर्णत अवचेतनारूपी समझते हो, और मानते हो कि चेतन प्रक्रियाओ के क्षीण होने पर ही इनका दमित भावनाओ की तरह उद्धरण होता है। हमने यह माना है कि यह मानव मे अवचेतनस्थ होते हुए भी मानव की प्रत्येक अभिव्यक्ति को किसी न किसी रूप मे वेधित करता है। चेतन मे भी एक विशिष्ट व्यापार रहता है जिसे मनोविज्ञान की व्याख्या से नही समझाया जा सकता।

वस्तुत यह अन्तर मार्गो का ही अन्तर प्रतीत होता है। हम मानवीय अभिव्यक्तियो की प्रकृति मे लोक-मानसिकता की परम्परागत व्याप्ति देखकर लोक-मानस की सत्ता का साक्षात्कार कर चुके थे। जुग महोदय ने अपने मनोविश्लेपण के अनुसन्धान मे, सगृहीत तत्त्वो के इस आक्षेप को भी अवचेतन मे स्फुरित होते पाया है। हमे यही यह सन्देह होता है कि क्या निर्माण-मूलक अनुभव अवचेतन को उत्तराधिकार मे मिल सकते हैं? इसलिए हमारा लोक-मानस आदिमतम मानस की प्रथम मानसिकता का परिणाम ही सिद्ध होता है। अस्तु जुग का यह सगृहीत मानस तो प्राय हमारे लोक-मानस का ही प्रतिरूप है, किन्तु 'सगृहीत मानम' की एक और परिभाषा भी हो सकती है। मानव की समष्टि मे मानवता-विशेषित जो सामान्य चेतन-प्रक्रिया मिलती है, वह भी 'सगृहीत मानस' (collective mind) कहा जा सकता है। यह सगृहीत मानस तो निष्कर्ष प्राप्त मानस है, अथवा व्यष्टि-व्याप्त चेतना प्रक्रियाओ का समष्टि-रूपेण गृहीत मानस का अमूत (abstract) प्रतिपादन मात्रा।

किन्तु यह समस्त ऊहापोह हमने यहाँ इसलिए की है कि हम लोक-मानस की सत्ता को वैज्ञानिक धरातल पर और भी अच्छी तरह समझ सकें। इसी लोक-मानस की अभिव्यक्ति जहाँ जिस परिमाण मे मिलती है, वहाँ उसी मात्रा मे लोकतत्त्व विद्यमान रहता है। इस दृष्टि से लोकतात्विक अध्ययन का मूल लक्ष्य भौगोलिक और ऐतिहासिक दोनो पक्षो मे लोकतत्त्व का अनुसधान करना होगा।

लोकतत्त्व की विद्यमानता की मान्यता में प्रगति

लोकतत्त्व की तात्त्विकता को लेकर आज हमने जिस लोक-मानस का प्रत्यक्षीकरण किया है, उससे लोकतत्त्व के क्षेत्र मे एकदम क्रान्ति प्रस्तुत प्रतीत होती है। इसे क्रान्ति न भी कहें तो विकास कह सकते हैं और इस विकास की ये सीढियाँ हो सकती हैं लोकतत्त्व के अध्ययन की सीढियाँ क्रमश

(अ) सभ्यता विरहित प्रगतिरुद्ध आदिम प्राणियो मे, अर्थात प्रिमिटिव या जगली जातियो मे,

(आ) सभ्यता विरहित अनपढ ग्रामीण समाज मे,

(इ) सभ्यता विरहित निरक्षर नगर-समाज मे,

(ई) अर्द्धसभ्य अर्द्ध-शिक्षित नगर-समाज मे,

(उ) सभ्य समाज मे।

इससे यह स्पष्ट है कि धीरे-धीरे लोकतत्त्व की सत्ता का विस्तार होता गया है, और आज सम्पूर्ण मानव-समाज मे उच्च से उच्च स्तर पर भी स्वीकार किया

जाने लगा है। इसी का यह परिणाम है कि अब जगली लोगो के लोक-साहित्य को ही अध्ययन का विषय नही बनाया जाता, नगरो के नागरिको से भी लोक-साहित्य के
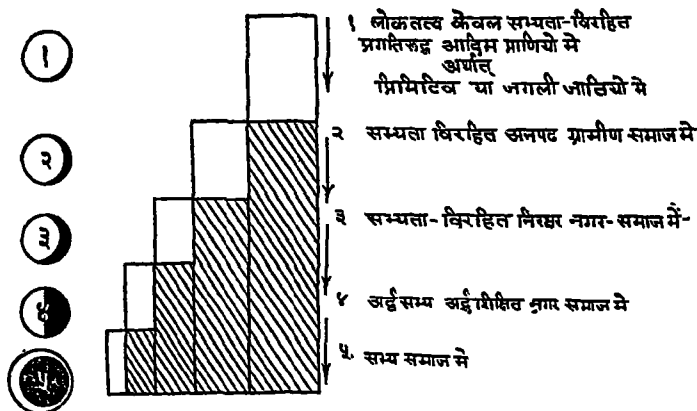
सकलन की प्रथा आरम्भ हो गयी है। इसी को ऐतिहासिक दृष्टि से देखने के लिए अब साहित्य मे भी लोकतत्त्व के अनुसधान के प्रयत्न होने लगे हैं।

किन्तु लोकतत्त्व और लोक-मानस के क्षेत्र को आज और भी विस्तृत रूप दे दिया गया है। उसमे इतने 'पारिभाषिक लोक-मानस' की प्रत्यक्ष व्याप्ति की आवश्यकता नही। सामान्य अर्थ मे सामान्य लोक से सम्बन्धित बातें भी लोकतत्त्व-युक्त मानी जाती हैं। उदाहरण के लिए, किसी साहित्यिक अभिव्यक्ति को लें तो उसमे ये तन्तु मिलेंगे—

(क) भाषा वर्ग में—

(अ) लोक-प्रचलित सामान्य लोकभाषा या जनपदीय भाषा,
(आ) इसमे लोक-प्रचलित मुहावरे,
(इ) इसमे ठेठ ग्राम्य या जनपदीय शब्द,
(ई) इसमे प्रयुक्त लोकोक्तियाँ,
(उ) लोक ज्ञान-विज्ञान विषयक ठेठ किन्तु पारिभाषिक शब्दावली,
(ऊ) विविध ज्ञान-विज्ञान से लिये गये पारिभाषिक शब्दो की लोकतात्त्विक परिणति।[1]

---

[1] जैसे सिद्धो के 'ख-सम' (=शून्य) को परमतत्त्व के अर्थ मे सन्तो ने भी ग्रहण किया पर उसमे लोक-क्षेत्र मे प्रचलित अर्थ (खसम=पति) भी, स्वीकार कर लिया। इस प्रकार विशिष्ट पारिभाषिक शब्द को लोक-भूमि पर लाकर उसे अपने लिए पुन: पारिभाषिक बना लिया।

(ख) छन्द वर्ग में—
(अ) वे छन्द जिनको शास्त्रो ने स्वीकार नही किया,
(आ) वे गीत जो किसी लोकाचार का आवश्यक अग रहे हैं,
(इ) वे गीत और छन्द जो अत्यधिक लोक-प्रचलित होने के कारण उच्च साहित्य द्वारा परित्यक्त हो गये हैं,
(ई) वे छन्द जिनके निर्माण का आधार अशास्त्रीय पद्धति हो,
(उ) तुकें या टेकें।

(ग) प्रतिपादक वर्ग में—
(अ) ऐसे उपमान या अवर्ण्य जो लोक-क्षेत्रीय हो,
(आ) सदर्भित कथाश या नाम जो लोक-प्रचलित हो या लोक-वार्ता परक हों,
(इ) विविध रीति-रिवाज, लोक-विश्वास, लोक ज्ञान-विज्ञान, देवी-देवता, पूजा-अनुष्ठानादि,
(ई) धर्म गाथा विषयक प्रसग।

(घ) प्रतिपाद्य वर्ग में—
(i) (अ) कथावस्तु मे लोक-कथा या पुराण-कथा का कथानक,
(आ) उस कथानक के कथा-मानक रूप (tale type),
(इ) कथा-मानक रूपो मे अभिप्राय (motif),
(ई) अभिप्रायों मे मूल मानक।
(ii) (अ) प्रतिपाद्य दर्शन और सिद्धान्त,
(आ) चेतन पक्ष तथा अवचेतन पक्ष,
(इ) मूल मानक की दार्शनिक और सैद्धान्तिक प्रणालियाँ।

ऊपर जो विश्लेषित विस्तृति साहित्यिक अभिव्यक्ति के तन्तुओ की दी गयी है, उसमे उन तन्तुओ के लोकतात्विक पक्ष की ओर सकेत साथ ही दिया गया है, इससे यह प्रकट हो सकता है कि लोकतत्त्व का क्षेत्र अब समग्र अभिव्यक्तिपरक हो गया है।

लोकतत्त्व के अध्ययन

इस समग्र लोकतत्त्व के अध्ययन के लिए अब तक जो प्रयत्न किये गये हैं उनके प्रकारो का सक्षेप मे यहाँ अवलोकन करना समीचीन होगा। इस दिशा में सबसे प्रथम प्रयत्न 'लोक-क्षेत्रीय वर्तमान लोकवार्ता के सकलन' का दृष्टिगत होता है। यह सकलन आदिम या जगली-जातियो से पूरी-पूरी तरह किया जाना चाहिए। विश्व भर के प्रिमिटिव कहे जाने वाले लोगों की वार्ता का सकलन होकर उसका कोश प्रस्तुत होना चाहिए। (क) दूसरा प्रयत्न इसी प्रकार ऐतिहासिक लोकवार्ता का सक-लन—अर्थात विश्व-साहित्य मे उपलब्ध उसी सामग्री का सकलन जिनमे लोक-क्षेत्रीय लोकवार्ता के तत्त्व विद्यमान हो। उदाहरणार्थ, लोक-सेत्र के सकलन मे एक 'चोर

शिरोमणि' की कथा मिलती है। यह चोर राजा और राज्य के समस्त अधिकारियो को मूर्ख वनाता है और उन्हें छलता है। यह तो वर्तमानकालिक वार्ता है। यही वार्ता ऐतिहासिक अस्तित्व भी रखती है। (१) कई हजार वर्ष पूर्व मिस्र मे चौथे राजकुल का आरम्भकर्ता खूफू महान था। उसका युग पिरेमिडो का युग है। यूनान के प्रसिद्ध इतिहासकार हेरोडोटस को एक पुजारी ने खूफू महान् से पूर्व के एक सम्राट रहम्पिसनिटस विषयक एक लोक-कहानी सुनायी। इस सम्राट ने अपने खजाने का पक्का भवन वनवाया। कारीगर ने उसकी दीवाल मे एक ऐसा पत्थर लगाया जो वाहर से निकाल लिया जा सकता था और उससे खजाने मे घुसा जा सकता था। इस कारीगर ने यह रहस्य अपने दो लडको को वताया। कारीगर की मृत्यु के वाद दोनो भाई पत्थर हटाकर खजाने से खजाना चुराने लगे। इसमे ये अभिप्राय आये हैं—राजा ने इस चोर को पकडने के उपाय किये। खजाने की चोरी करते समय एक भाई जाल मे फँस गया। उसके कहने से दूसरा भाई उसका सिर काट ले गया। वह भाई अपने भाई के धड को उस धड के रक्षको को धोखा देकर चुरा ले गया। राजा ने अपनी लडकी को चोर को पकडने भेजा। चोर उससे मिला और भाई का सिर काटने और उसका धड चुरा ले जाने की वात उसे वतायी। लडकी जव उसे पकडने लगी तो वह उसके हाथ में एक कटा हाथ देकर चम्पत हो गया। राजा ने मुनादी कराके उसे क्षमा किया और अपनी लडकी से उसकी शादी कर दी। आज भारत मे लोक क्षेत्र से सकलित 'चोर शिरोमणि' की कथा का और इस मिस्र के चोर-शिरोमणि के कथा-विधान का साम्य अत्यन्त स्पष्ट है। अत ऐसी सामग्री को साहित्य और वार्ता से एकत्र करके उन्हें इतिहास-क्रम मे प्रस्तुत करना तथा इनका भी कोश वनाना चाहिए। (ख) तब ऐसी सामग्री मे से तुलनाएँ प्रस्तुत करना। इन तुलनाओं से साम्य-वैपम्य के युगो और क्षेत्रो का निर्वाचन करना। (ग) कथा-सामग्री की इस तुलना के द्वारा—(१) 'मूल-कहानियो' का रूप निर्धारण करना, (२) मूल कहानियो मे से 'कथा-मानको' (tale type) का निरूपण करना, (३) कथा मानको से अभिप्रायो का सकलन, (४) अभिप्रायो मे से आदि मूलक अभिप्रायो की स्थापना, (५) अभिप्रायो के धर्मगाथा और लोककथा मे प्रयोग। (घ) इस रूप मे प्रस्तुत मूल कहानियो, कथा-मानको और अभिप्रायो का जातिगत-क्षेत्र, भौगोलिक क्षेत्र, ऐतिहासिक परिवर्तन-सवर्द्धन, इनकी यात्राएँ तथा आदान-प्रदान आदि पर विचार। (ङ) अन्य लोक-साहित्यिक रूपो का भी इस प्रकार सकलन-विश्लेपण-अध्ययन। (च) इसी के साथ अभिप्राय के आदिमूल मानक (arch type) पर विचार, उदाहरणार्थ—'वालक अभिप्राय' (child motif) लिया जा सकता है।

वालक अभिप्राय

पहले 'वालक अभिप्राय' के विविध रूपो को विश्व सकलित वार्ता-कोशो से तुलनात्मक दृष्टि से प्रस्तुत किया जा सकता है, यथा—मिस्र की पुराण-कथा मे-'होरस' की ऐसी ही अवस्था है। होरस का पिता ओसिरिस उसके भाई सेत द्वारा एक कफन

मे जिन्दा बन्द कर समुद्र मे बहा दिया जाता है। सेत राजा हो जाता है। ओसिरिस की स्त्री आइसिस मारी-मारी फिरती है। तभी होरस का जन्म होता है। सेत को पता लग जाता है। वह माँ-बेटे को एक मकान मे बन्दी बना देता है। सेत होरस को मार डालना चाहता है कि कही वह अपने पिता के राज्य का दावेदार न बने। किन्तु थोक आइसिस को इस सकट की सूचना दे देता है। आइसिस होरस को लेकर भागकर बूटो (Buto) पहुँचती है। वहाँ होरस को नगर की कुमारी देवी उआजीत (Uazit) को सौप वह ओसिरिस की खोज मे निकल जाती है।[1] यह देवी सर्पिणी थी। इस कथा मे होरस के पिता नही, माता मारी-मारी फिरती है, बन्दी हो जाती है, फिर वह होरस से बिछुड भी जाती है, उसका पालन-पोषण सर्पिणी (देवी) करती है। यूनान मे जियस का पिता क्रोनस तो स्वय ही अपने पुत्र का शत्रु है, क्योकि भविष्यवक्ता ने बताया है कि उसका पुत्र ही उसे मारेगा। अत जियस को जन्म लेते ही या तो क्रीट की एक गुफा मे ले जाकर छिपाया गया, या वह गुफा मे ही पैदा हुआ, और वहाँ गुप्त रूप से उसका पालन-पोषण डिक्टोअन देवियो ने और क्यूरेटोज ने किया। डायोनीसियस जब गर्भ मे छ महीने का था, उसकी माँ सेमेले (Semele) की मृत्यु हो गयी। सेमेले की भस्म से डायोनीसियस को उसका पिता उठा लाया। तीन महीने अपनी जाँघ को काटकर उसमें रखा। पूरे नौ महीने हो जाने पर जिअस ने उसे हर्मीज को सौंप दिया, उसने इनो और अथमस को सौंप दिया। उसकी विमाता हेरा उसके प्राणो की ग्राहक थी। उसे और भी कई दिव्य व्यक्तियो के पास पालन-पोषण के लिए रहना पडा। अपोलो की माँ लीटो को पुत्र के साथ मारे-मारे फिरना पडा है। बालक अपोलो ने माँ को पाशविक ट्रियोस के अत्याचारो से रक्षा करनी पडी है—लीटो को हेरा के भय से मारे-मारे फिरना पडा है और एक गुप्त स्थान पर अपोलो को जन्म देना पडा है।

भारत मे तो बाल-देव के वर्णन वैदिक काल से ही मिल जाते हैं। इन्द्र के बालपन का जो वृत्त वेदो मे दिया गया है, वह भी ऐसे ही बाल-देवो के समकक्ष है। पैदा होते ही उसे माँ से पृथक होना पडा है, तथा दूसरो के हाथो ही उसका पालन-पोषण हुआ है। कुमार जो मूलत बाल-देव ही हैं, उनकी स्थिति भी कुछ विचित्र है। उनकी कथा मे मूलरूप मे माता पिता-हीनता का तत्त्व विद्यमान है, क्योकि विविध वृत्तो पर ध्यान दिया जाय तो विदित होगा कि पार्वती ने इन्हें गर्भ मे धारण नही किया। उन्हें अग्नि ने धारण किया, इस भय से अग्नि कुछ काल तक भागती-छिपती फिरी थी तो अगिरा ने धारण किया, तब अग्नि ने। वह भी उस तेज को धारण किये न रह सकी, गगाजी को दिया, गगाजी ने कृत्तिकाओ (षड्मातृकाओ) को दिया। उन्होंने उसका पालन-पोषण किया। सर-भू भी कुमार का नाम है, उन्हे सरपत से उत्पन्न माना है। इस प्रकार जब माँ ही नही तो, पिता कहाँ ? पिता तो सदैव ही

---

[1] ईजिप्शियन मिथ एण्ड लीजेण्ड डानाल्ड ए० मेकेंजी, पृ० १८-१६।

विकल्पित होता है।[1] फिर भी यदि पितृत्व स्वीकार भी किया जाय तो मातृहीन तो मानना ही पडेगा। ऐसे वालको की कथा मे यही होता है कि वह कई स्थानो पर पलता है। यहाँ पहले तो गर्भ ही कई स्थानो पर गया है, फिर 'षड्मातृकाओ' का विश्लेषण कर दें तो छ माताओ ने पालन किया।

उधर गणेश जी वाल-देव के रूप मे आते हैं, उनकी स्थिति कुमार से उल्टी है। कुमार की माता नही थी, गणेश के पिता नही। विना पिता के जन्म हुआ है—अर्थात पिता नही। एक जगल मे एकात गुफा मे वह त्याज्य-माता के साथ रहता है। यह सव लोक-कथा के अनुरूप हैं।

जैन वृत्तान्तो मे हनुमान-जन्म भी माँ की असहायावस्था मे हुआ है। उनकी माँ अन्जना को सास-ससुर ने चरित्र-दोष के सन्देह मे निकाल दिया था। ऐसी असहायावस्था मे ही हनुमान जी का जन्म हुआ था। जैन क्षेत्र के 'प्रद्युम्न चरित्र' मे प्रद्युम्न जन्म के समय ही माँ-वाप से पृथक कर दिया गया। उसे एक दैत्य पूर्व-जन्म की शत्रुता के कारण उडा ले गया और एक पत्थर के नीचे दवा दिया। वहाँ से उसे विद्याधर कालभँवर और उसकी पत्नी ले गये, और उसका पालन-पोषण किया। उसने वाल्यावस्था मे ही अनेक अद्भुत पराक्रम दिखाये।

धर्मगाथा के क्षेत्र मे ऐसे कितने ही वालको का उल्लेख है जिन्हें असहायावस्था मे दिखाया गया है। प्रह्लाद को भी धर्मगाथा मे ऐसी असहायावस्था मे दिखाया गया है जैसे उसके माता-पिता या अभिभावक हैं ही नही। स्वय उसका पिता ही उसका शत्रु बन गया है। प्रह्लाद वालक को अनेक घातक कष्टो मे से होकर निकलना पडा है। प्रह्लाद को पहाड से नदी मे गिराया गया, जेल मे भूखो मारा गया, आग मे जलाया गया, उत्तप्त स्तम्भ से वाँधा गया, किन्तु सव सकटो से वह वच गया।[2]

---

[1] प्राचीन आरमीनियनो के आनुष्ठानिक गीतो मे दैवी वालक के जन्म का यह वर्णन है—"आकाश प्रसव पीडा से पीडित था, पृथ्वी भी पीडित थी। और वैंजनी समुद्र प्रसव पीडा से पीडित था। रक्ताक्त समुद्र-सरपत जनितवेदना ग्रस्त था। पोली समुद्री सरपत के नरकुल ने धुआँ निकाला। पोली समुद्री सरपत के नरकुल ने अग्नि की लपटें निकाली और उन अग्नि-शिखाओं से एक छोटा वालक पैदा हुआ।"

कुमार के अग्नि गर्भ से और सरपत से जन्म लेने से यह वर्णन कितना साम्य रखता है। 'माधवानल कामकन्दला' के एक सस्करण मे राजपुरोहित को शिव रेत के सरपत-आधान से उत्पन्न माधव नदी के किनारे प्राप्त हुआ है।

[2] प्रह्लाद की इस वाल-कथा को 'कुल्लेर्वो' की कथा से मिलाइए। फिनिश (फिनलैण्ड की) पुराकालीन 'कुल्लेर्वो' नामक वीर की गाथा 'कलेवल' मे दी गयी है। उस्टेमो नामक एक वीर ने अपने भाई कलेर्वो के समस्त वर्ग को नेस्तनावूद कर दिया, केवल उसकी जवान पत्नी ही वच रही, वह गर्भवती थी। उसके पुत्र हुआ, जिसका नाम कुल्लेर्वो रखा गया। यह वालक तीसरे दिन ही पालने से

इसी प्रकार भारत मे अनेक लोक-कथाएँ हैं जिनमे बालवीर का जन्म असहाया-वस्था में होता है, या जन्म के उपरान्त ही वह असहायावस्था या अनाथावस्था में पड जाता है। यह असहायावस्था या अनाथावस्था वाला बालक या तो बाल्यकाल में ही चमत्कार दिखाता है, या बाद मे आकर अत्यन्त प्रबल दिखायी पडता है। (१) उदयन-कथा मे मृगावती को गरुड उडा ले गया। पिता-रहित स्थिति मे उसका जन्म हुआ। साधुओ के आश्रम मे पालन-पोषण हुआ। (२) शकुन्तला को अप्सरा उडा ले गयी। पति से वियुक्तावस्था मे भरत का जन्म हुआ। यह भरत सिंहो से खेलता था। (३) राजा नल के जन्म के समय उसकी माँ मझा को राजा प्रथम ने महल से निष्कासित कर दिया था। उसे चाण्डालो को सौप दिया कि इसे मार डालो। पर चाण्डालो ने दया कर उसे छोड दिया। वह जगलो मे भटकती फिरी, ऐसे ही बियावान मे हीस के लता-गुल्म मे नल उत्पन्न हुआ। नाल काटने के लिए और जन्म के गीत गाने के लिए देवी आयी थी। तब मझा और नल को एक सेठ साथ ले गया। उसके यहाँ दोनो का पालन-पोषण हुआ। बाल्यावस्था मे ही नल ने दानव को मारकर मोतिनी से विवाह किया था।

अब इन समस्त रूपो की तुलना से यह स्पष्ट विदित होता है कि इनमे चार तत्त्व हैं—(१) परित्यक्तावस्था, (२) अजेयतत्त्व, (३) द्वियौनत्व, (४) आदि-अन्तैक्य। इनसे कथा के चार रूप प्रस्तुत होते हैं—(१) बाल-कथा, (२) वीर-कथा, (३) काम-कथा, तथा (४) धर्म-कथा या मोक्ष-कथा। इन चारो तत्त्वो के योगायोग से भारत, यूनान तथा अन्य देशो की धर्मगाथाएँ तथा लोक-गाथाएँ पल्लवित हुई हैं—धर्मगाथाओ मे यह बालक 'देवता' बन गया है, बाल-कथाओ मे विलक्षण बालक। यह बाल-रूप वैयक्तिक मनोमूल का भी उतना ही परिणाम है जितना कि सगृहीत मनोमूल का। सगृहीत मनोमूल सृष्टि-आदि-मूल बालक का वाहन बना है। वैयक्तिक मनोमूल का आधार 'प्रथम मानव' है। इस समस्त सारिणी को पृष्ठ ५६ पर दिये गये चित्र से समझा जा सकता है।

इस प्रकार इन लोक-तत्त्वो के सूत्रो का विवरण और इतिहास प्रस्तुत किया जा सकता है। (ज) तब इन तत्त्वो का साहित्य उसकी ऊँची से ऊँची अभिव्यक्ति मे

उतर पडा और जब केवल तीन महीने का ही था और केवल घुटने तक ऊँचा था, तभी अपने पिता के शत्रु से बदला लेने का विचार करने लगा। अण्टेमो को पता चला तो उसने उसे मरवा डालने के कई यत्न किये—पहले एक बोतल मे बन्द कर लहरो मे फेंक दिया गया। दो रातें बीत जाने पर देखा तो वह बोतल से बाहर निकल आया था और लहरों पर बैठा ताँबे के दण्ड को लिए, उसके रेशमी डोरे को पानी मे डालकर मछली का शिकार कर रहा था। तब बहुत-सी सूखी लकडी की भारी आग मे डाल दिया गया, तीन दिन तक यह आग धधकती रही, तीसरे दिन भी वह उसमे जीवित था, बाल तक बाँका नही हुआ था। अब उसे पेड से बाँध दिया गया। यहाँ भी वह जीवित रहा—पेड पर बैठा चित्र बना रहा था।

खोजना अपेक्षित होगा, क्योंकि जिस प्रकार साहित्यकार जानबूझकर अलकार, रीति, वृत्ति, छन्द, रस आदि का उपयोग करता है और अपनी अनुभूति उसके द्वारा प्रकट करता है वैसे ही अनजान और जान मे वह इन लोकतत्त्वो का भी उपयोग अपनी अनुभूति को अभिव्यक्त करने के लिए करता है। इन अनुभूतियो के इस माध्यम का किस कवि ने साहित्यिक सौन्दर्याभिवृद्धि के लिए किस प्रकार उपयोग किया है, यह
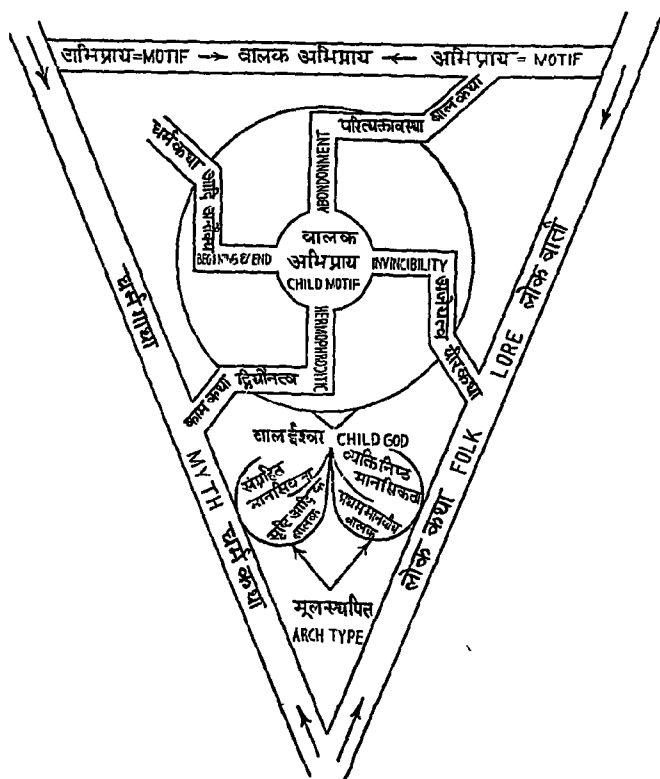
चित्र की व्याख्या

[इस चित्र मे बालक-अभिप्राय के मूल तथा विकास को समझाया गया है। नीचे का बिन्दु मूल-स्थपित (Arch type) का द्योतक है। यह स्थपित दो सम्भावनाओ से जन्म ले सकता है (१) 'सृष्टि आदिक बाल' की लोक मानसिक स्मृति से। (२) प्रथम मानव की अपनी बाल स्थिति की मनोमूलक या लोक मानसिक स्मृति से। यह बाल अभिप्राय स्वस्तिक की भाँति चार भुजाओ मे बँटकर चार तत्त्वो की प्रतिष्ठा करता है और चार प्रकार की कथाओ को जन्म देता है। ये कथाएँ धर्म और लोक मे एक बिन्दु की दो भुजाओ की भाँति साथ-साथ चलती मिलती हैं।]

जानना आज आवश्यक हो गया है, क्योकि साहित्य-शास्त्र मे जिन जड तत्त्वो के उपयोग से काव्य सृष्टि के अध्ययन का उल्लेख हुआ है, उनका जीवन की गहराइयो से उतना सम्वन्ध नही। ऐसा ही अध्ययन धर्म और आस्थाओ का भी करना होगा। उनसे लोक-विकास के साहित्य को और मानवीय सभ्यता को क्या मिला है, यह अनुसन्धान भी अपेक्षित होगा।

वस्तुत मानव का समस्त प्रयत्न अपने स्वरूप की समग्र उपलब्धि के लिए है। इस उपलब्धि की सफलता के लिए लोकतात्विक अध्ययन आज अनिवार्य-सा प्रतीत होता है।

तीसरा अध्याय

लोक-साहित्य तथा अन्य समाज-वि न

प्रासगिक

लोक-साहित्य के विस्तृत क्षेत्र को हम देख चुके हैं। लोकवार्ता के शास्त्रीय क्षेत्र का जहाँ तक सम्बन्ध है, वहाँ तक लोक-साहित्य का सम्बन्ध स्पष्टत पुरातत्त्व, इतिहास, धर्मतत्त्व, गाथा, भाषा-विज्ञान, मनोविज्ञान, नृविज्ञान, दर्शन से बहुत घनिष्ठ विदित होता है।

पुरातत्त्व

पुरातत्त्व लोक-वार्ता से प्रभावित भी होता है, और लोक-वार्ता स्वय पुरातत्त्व का एक अग मानी जा सकती है, क्योकि पुरातत्त्व के अनेक अन्वेषणो की आधार-शिला और प्रेरणा लोकवार्ता ही होती है।[1] कितने ही स्थानो की खुदाई का कार्य प्रवल लोक-वार्ता से प्रभावित होकर किया गया और परिणामत अनेक ऐतिहासिक रहस्यो का उद्‌घाटन हुआ। 'मोहनजोदडो' का उदाहरण लिया जा सकता है। ऐसे ही अनेक उदाहरण आर्क्यालौजी और ऐण्टीक्विटीज के विश्वविख्यात विवरणो से मिल सकते हैं। ऐसे उदाहरणो से भी अधिक वे उदाहरण हैं जिनमे किसी पुरातत्त्व के अनुसधान मे मिली वस्तु या तत्त्व से कोई लोक-वार्ता जो मात्र गप्प या कहानी मानी जाती थी, ऐतिहासिक रूप ग्रहण कर लेती है, और पुरातत्त्व-अनुसधित्सु को अनुसधान की कडियो को विठाने मे सहायक होती हैं।[2] लोकवार्ता मे यह बात

१ विलियम जोह्न थॉम्स ने १८४६ मे 'फोकलोर' शब्द का निर्माण या उपयोग किया, उससे पहले इस विद्या के लिए अग्रेजी मे 'पापूलर एण्टीक्विटीज' शब्द प्रचलित था। स्पष्ट है कि उस समय भी इसे पुरातत्त्व का लोक-प्रचलित स्वरूप माना जाता था।

२ लोकवार्ता मे यह प्रचलित था कि भारत के समस्त ऋषि, मुनि हिमालय मे चले गये हैं और वहाँ अभी तक विद्यमान हैं। इस लोकवार्ता मे ऐतिहासिक सत्य की सूचना है। चौरासी सिद्ध नालन्दा से उत्तर तिव्वत मे गये थे और अपना साहित्य भी ले गये थे, जिसका उद्‌घाटन अव हुआ है। इसी प्रकार वामनवीर लोकवार्ता साहित्य मे जीवित हैं। उनकी गणना पृथ्वीराजरासो मे है और वे वीर से पीर होकर पचपीर अथवा पचवीर भी हो सकते हैं। तव किसी काल की ऐतिहासिक यक्ष पूजा का स्वरूप स्पष्ट हो सकता है, और भारत भर मे विखरे हीन-श्री यक्षमन्दिरो और वीर-डीहो का महत्त्व खुल सकता है। देखिए जनपद १ ३ वीर ब्रह्म डा० वासुदेव शरण अग्रवाल।

प्रचलित थी कि पृथ्वीराज ने मुहम्मद गोरी को कई बार हराया पर बहुत समय पूर्व तक इतिहास इसे स्वीकार नही करता था, तब आधुनिक ऐतिहासिक शोधो से लोक-वार्ता विषयक तत्त्व की पुष्टि हुई, और लोकवार्ता की सामग्री ने इतिहास के अनुसधान से प्राप्त बिन्दुओ की कड़ी को जोड़ने मे सहायता प्रदान की। इसका यह अर्थ कदापि नही कि लोकवार्ता मे जो कुछ प्रचलित है वह सब ज्यो का त्यो पुरातत्त्व मे ग्रहणीय होता है। नही, लोकवार्ता मे विविध ऐतिहासिक-अनैतिहासिक सूत्रो का ऐसा लोकतात्त्विक गुम्फन होता है कि पुरातत्त्व को उसमे सकेत लेकर प्रवृत्त होने की प्रेरणा मिल सकती है और समय पाकर उपलब्ध सामग्री से ऐतिहासिक सन्धि बिठाकर वह लोकवार्ता की सामग्री मे से आवश्यक तन्तु निकालकर कड़ी जोड सकता है। इतिहास के वृत्तो के लिए ही नही, सास्कृतिक गवेषणा और अनुसधान मे भी लोक-वार्ता और लोक-साहित्य सहायक होता है।

इस प्रकार लोकवार्ता पुरातत्त्व-विज्ञान के लिए आरम्भ मे तो प्रेरणा देने का काम करती है। बाद मे घटनाओ के तारतम्य बिठाने और विविध कड़ियो को बिठाने मे व्याख्या मे काम आता है। इस दृष्टि से लोकवार्ता भी पुरातत्त्व-विज्ञान का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सहायक तत्त्व माना जाता है।

इतिहास

जो सम्बन्ध पुरातत्त्व और लोकवार्ता का है, उससे अधिक गहरा सम्बन्ध लोकवार्ता और इतिहास का है। जब तक पुरातत्त्व से प्राप्त प्रमाणो से पुष्ट इतिहास उपलब्ध नही होता तब तक लोकवार्ता से प्राप्त सामग्री को ही इतिहास का रूप देने की चेष्टा की जाती है, और जैसे-जैसे प्रमाण उपलब्ध होते जाते हैं, लोकवार्ता से प्राप्त तत्त्वो की परीक्षा होती जाती है, और उन्हे प्रामाणिक रूप प्रदान किया जाता है। एक ऐसे ही उद्योग का आधुनिक उदाहरण कर्नल टाड का 'एनाल्स आफ राजस्थान' है।[1] टाड महोदय ने राजस्थान का यह इतिहास लोकवार्ताओ के आधार पर लिखा। अब इन्ही वार्ताओ को ऐतिहासिक प्रमाणो से परखकर इतिहास प्रस्तुत किया जा रहा है। इतिहासकार लोकवार्ता का दो रूपो मे उपयोग करता है—एक तो जैसा ऊपर उल्लेख किया गया, इतिहास के कच्चे मसाले के रूप मे, जिसमे ऐतिहासिक तथ्य के दाने निहित हो सकते है। दूसरे लोकवार्ता से लोक-जीवन के ऐतिहासिक स्वरूप को आँकने के लिए। क्योकि लोकवार्ता का सम्बन्ध लोक-जीवन से बहुत घनिष्ठ होता है। उसमे लोक-रुचि-अरुचि और उसके सस्कार प्रतिविम्बित रहते हैं। इतिहास के विकास मे एक ऐसी स्थिति भी होती है जब इतिहास और लोकवार्ता मे भेद करना कठिन हो जाता है, अत बहुत-से इतिहासो मे लोकवार्ता के

---

[1] भारत मे पुराणो को भी ऐसा ही सकलन माना जा सकता है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाय तो वेद भी ऐसी ही लोकवार्ता के सग्रह हैं, जिनमे ऐतिहासिक तथ्य भी सन्निहित हैं।

अच्छे सग्रह मिल जाते हैं। ऐसा भी माना जाता है कि लोकवार्ता, उसमे भी मुख्यत लोक-गाथा या लोक-कहानी का आधार किसी सत्य घटना पर निर्भर करता है। वह सत्य घटना ऐतिहासिक महत्त्व की भी हो सकती है।

उधर लोकवार्ता के अध्ययन के लिए भी पुरातत्त्व और इतिहास बहुत बड़े सहायक हैं। लोकवार्ता मे अनेक नाम और अनेक घटनाएँ होती हैं, अनेक तथ्य तथा अनेक सूचनाएँ होती है। उसमे अनेक निर्माण-स्तर होते है। इन सबका उद्घाटन पुरातत्त्व और इतिहास के द्वारा ही हो सकता है।

धर्म-तत्त्व-गाथा, शास्त्र (दर्शन)

धर्म-तत्त्व का लोकवार्ता से बहुत गहरा सम्बन्ध है। धर्म की नीव लोक-विश्वास है। यह लोकवार्ता से गुँथा हुआ ही विकास पाता है। धर्म का वास्तविक मूल लोक-वार्ता मे सन्निहित आदिम मूल विश्वास ही होता है। ये आदिम मूल विश्वास ऐनीमिज्म, मैजिक तथा पूर्वज-पूजा (एन्सेस्टर वरशिप) प्राय इन तीन तत्त्वो से निर्मित होते है। ये तीनो लोक-तत्त्व आगे धर्म नाम की महान् प्रवृत्ति मे परिणति पाते हैं। अत किसी भी धर्म के ऐतिहासिक विकास को समझने के लिए लोकवार्ता की शरण आवश्यक है।[१] आज धर्म मे प्रचलित विधियो का मूल रूप

[१] धर्म-तत्त्व का लोकवार्ता से घनिष्ठ सम्बन्ध है, इसमे सन्देह नही। अभी तक विविध धर्म-तत्त्वविदो और लोकवार्ताविदो ने धर्म के मूल पर जो विचार किया है उसे सक्षेप मे यहाँ नीचे दिया जा रहा है। नीचे दिये हुए वर्णनो से स्पष्ट है कि धर्मतत्त्व के मूल को और विकास को बिना लोकतत्त्व के नही समझा जा सकता।

धर्म के सम्बन्ध मे कई सिद्धान्त हैं

पहला ऐनीमिज्म (एक पहलू से ही सम्बन्धित) का सिद्धान्त—इसके प्रवर्तक हैं हर्बर्ट स्पेन्सर, पोषक हैं आधुनिक काल मे ह्यूगो ऐलार्ड मेयेर, प्रो॰ रिजवे तथा एस॰ ईट्रेम आदि।

सिद्धान्त है कि मृत की आत्माओ के प्रति सम्मान और आदर के प्रदर्शन मे से ही समस्त धर्म उपजे हैं। इससे सिद्ध होता है कि प्रकृति-व्यापारो मे सशक्त आत्माएँ हैं। यही प्रकृति-पूजा का मूल है।

दूसरा नृवैज्ञानिक सिद्धान्त—प्रवर्तक हैं लैंग महोदय।

इनका कहना है कि धर्म मे मृत की आत्माओ को जो सम्मान प्रदर्शित किया जाता है उससे भी कुछ अधिक तत्त्व होता है। यह धर्म उस भावना का परिणाम है जो यह मानती है कि प्रकृति मे मानवी-जैसी शक्तियाँ है, पर हैं उससे भी बढकर।

तीसरा ऐनीमिज्म-पूर्व का सिद्धान्त—इसका प्रतिपादन मैरेट महोदय ने किया है। इनका कहना है कि एक ऐसी स्थिति (stage) भी होती है जिसे सम्भवत ऐनीमिज्म से पूर्व की स्थिति माना जा सकता है, नही तो कम से कम ऐनीमिज्म से यह स्वतन्त्र तो अवश्य ही है। इस स्थिति को ऐनीमिस्टिक पूर्व की

लोकवार्ता के द्वारा ही ठीक-ठीक समझा जा सकता है, क्योंकि लोकवार्ता मे मूल

अथवा ऐनीमेटिस्टिक अथवा नेचुरेलिस्टिक (प्रकृतिवादिक) कह मकते हैं। इस स्थिति मे मनुष्य प्राकृतिक पदार्थों को उन पदार्थों मे भिन्न तथा अतिरिक्त किन्ही आत्माओ से निवसित नही वरन् प्रत्येक प्राकृतिक पदार्थ को स्वयमेव ही एक सजीवित शक्ति मानते हैं।

चौथा मन (Mana) का सिद्धान्त—वैन गैन्नेप (Van Gennep) ने इस सिद्धान्त को पुष्ट किया है कि 'मन' की सार्वभौमिक सत्ता का विश्वास आदिम है। मन नामक एक सार्वभौम सत्ता है, यह सत्ता सभी मे व्याप्त है, और उस पदार्थ मे भी व्याप्त है जिसकी आदिम मानव पूजा करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार पदार्थ (मैटर) मनसायुक्त होता है और समस्त पदार्थ की यह मनसा एक है, यह कोई आत्मा की भाँति की वस्तु नही जो अनात्म पदार्थों में घर बनाकर निवास कर रही है।

पाँचवाँ दानवी आत्माओ का सिद्धान्त—वुट (Wundt) ने बताया है कि धर्म का मूल है प्रकृतिवाद और आत्मवाद से उद्भूत दानव-आत्माओ मे। ये दानवी आत्माएँ (Spirits of demons) पाँच प्रकार की होती हैं

दानवी आत्माएँ

- १ प्रेत या वैताल (किसी विशेष पदार्थ से कोई सम्बन्ध नही, अत मृत की आत्माओ के सदृश)
- २ प्रकृति के छलने वाले या भयावह पहलू जो मकान मे, हवा, जगल, पानी, खाली गदी जगहो मे पाये जाते हैं, बौने या दैत्य
- ३ वानस्पतिक आत्माएँ
    - (सरल) किसी पेड या पौधे को प्राणित (animate) करने वाली
    - (जटिल)
        - जगल की आत्माएँ वनस्पतियो के जीवन की आत्माएँ (प्रकृति की आत्माएँ)
        - कभी-कभी ये आत्माएँ मृत से व्युत्पन्न होती हैं, श्मशान या समाधि स्थानो से इनका सबध रहता है (मृत की आत्माएँ)
    - आकाश, हवा, बादल, समुद्र, पृथ्वी की आत्माएँ, वाह्य वानस्पतिक दानव।
- ४ वे आत्माएँ जो विविध कार्य व्यापारो की अधिष्ठात्री होती हैं यथा आखेट का देवता, समुद्र यात्रा का देवता, गृह-निर्माण का देवता, युद्ध का देवता, व्यवसाय का देवता आदि।
- ५ रोग तथा पागलपन की आत्माएँ

[टिप्पणी—वाह्य वानस्पतिक दानवो से, जो अभिप्राय वुट ने लिया है उनसे तथा विविध व्यापारो के विभागों पर अधिकार रखने वाली आत्माओ मे हमे उस भाव के दर्शन होते हैं जो 'देवताओ' के जैसा प्रतीत होता है और साथ ही यह ध्यान मे रखने पर कि मृत की आत्माएँ प्रकृति के किसी निश्चित पहलू से सम्बन्धित होने से अनुबंधित नही यह माना जा सकता है कि इनसे एक देवता का भाव सहज ही पैदा हो सकते हैं। ऐसे देवता का जो केवल परापुरुष ही नही पराप्राकृतिक भी है।

आदिम काल के अवशेप किसी न किसी रूप मे सुरक्षित चले ही आते हैं। धर्म-गाथा को मैक्समूलर ने 'भाषा का विकार' वताया था। आदिम मानव के दिए विविध व्यापारो के नाम किस प्रकार आगे पौराणिक गाथा के निर्माण में सहायक हुए, इसे मैक्समूलर तथा उसके अनुयायी पुराणगाथावादी लेखको (माइथालाजीकल स्कूल) ने सिद्ध करने की पूरी चेष्टा की है, अत धर्म के मुख्य आधार धर्मगाथाओ के वास्तविक ज्ञान के लिए भी लोकवार्ता और लोक-साहित्य का उपयोग आज अनिवार्य हो गया है। प्रत्येक धर्म की एक विशद 'धर्मगाथा' पुराण कथा अथवा 'माइथालाजी' अवश्य होती है। इसी प्रकार धर्मगाथा के द्वारा लोकवार्ता और लोक-साहित्य के स्वरूप का भी ज्ञान होता है। लोक-साहित्य के अनेक अभिप्रायो का स्वरूप धर्मगाथा से स्पष्ट हो पाता है। धर्म-तत्त्व के सम्वन्ध मे यह भी समझ लेना आवश्यक है कि केवल

छठवाँ यूसेनेर का सिद्धान्त—यूसेनेर ने ईश्वर के विकास की ये स्थितियाँ मानी,

प्रथम—निमिप देवता (Augensblick-Gotter) किसी विशेष व्यापार पर उसके घटित होने के क्षण पर ही अधिकार रखने वाले देवता। इन देवताओं की सत्ता केवल उसी कालावधि के लिए होती है जिसमें वह व्यापार घटित होता है और केवल उसके लिए होती है जो उसका आह्वान करता है। यह भाव सबसे पहले था।

द्वितीय—इससे विकास हुआ 'एक देव' का, कि एक-जैसे समस्त व्यापारो का एक ही देवता है।

तृतीय—अन्तिम विकास हुआ 'भाषा' के द्वारा। एक व्यापार के देवता में देवता भाव तो वना रहा पर भाषा अथवा ध्वनि विकार (Phonetic change) के कारण वह शब्द अपने अर्थ का विस्तार कर गया। अत जो केवल एक व्यापार का ही देवता था वह समस्त व्यापारो का देवता हो गया।

• वीर पूजा का सिद्धान्त—इसका प्रतिपादक भी वुट को माना जाता है कि वीर-पूजा के भाव ने इष्ट देवता (Personal God) को जन्म दिया।

• श्रोदेर का सिद्धान्त

वॉन श्रोदेर (Von Schroeder) का मत है कि प्रकृति और आत्म (spirit) पूजा ही ईश्वर या धर्म को जन्म देने के लिए पर्याप्त नही। इससे भी ऊपर एक ऐसी शक्ति मे विश्वास करने की आवश्यकता है जो 'परम' (highest being) और जिसका स्वभाव मगलकारी (Goodness) हो। "धर्म मे अनिवार्यत यह मान्यता है कि एक ऐसे (परम) की सत्ता है, कि मनुष्य की उस पर निर्भरता होती है, तथा उस (परम) से सम्वन्ध वनाने की उस (मनुष्य) की इच्छा होती है।"

नवाँ (अ) टाटेम का सिद्धान्त—इसके प्रतिपादक एस रीनैक (S Reinach) यह मानते हैं कि

१ किसी समय 'पशु' देवता था।

गाथा ही नही धर्म-शास्त्र और दर्शन के ऐतिहासिक स्वरूप और मूल को समझने के लिए भी लोकवार्ता विज्ञान 'फोकलोरिस्टिक्स' की आवश्यकता है, चाहे वह धर्म का कोई अनुष्ठान अथवा आचार हो, उसकी शास्त्रीय पद्धति के साथ सलग्न कोई न कोई वार्ता भी अवश्य होगी। इसी प्रकार दर्शन के सिद्धान्तो के मूल मे भी लोक-बीज

---

२ कुछ समय उपरान्त उस पशु-देवता को मानने वाले समुदाय (class) ने उस पशु को खा लिया, क्योकि इस विधि से उस समुदाय ने उस पशु से अपना सम्बन्ध पुन घनिष्ठ करने की सम्भावना मानी।

३ तब पशु देवगण विलुप्त हो गये और anthropomorphic देवताओ की श्रेणी मे या ऐसे देवताओ के शत्रुओ की श्रेणी मे हो गये।

(आ) इसी सिद्धान्त से मिलता-जुलता यह भाव है कि देवता सचमुच 'पशु' का रूप ही ग्रहण कर लेता है या पशु में आ जाता है। विशेपत तब जब कि पशु को उसके लिए बलि देने के लिए प्रस्तुत किया जाता है।

दसवाँ टोना-तान्त्रिक सिद्धान्त—इस सिद्धान्त के प्रतिपादक मन्नहार्ट (Mannhardt) तथा सर जे० फ्रेजर हैं। ये मानते हैं कि बलिदान मूलत उस टोने (Magic) से सम्बन्धित है जो शस्य, मनुष्य और पशु की आयु वृद्धि के लिए किया जाता है। अत सभी धर्मों का उदय 'टोने' से ही हुआ है क्योकि

१ आदिम हब्शी यह समझता था कि प्रकृति के सवहन पर वही सर्व-शक्तिमान की भाँति शासक है। वह टोने के द्वारा अपनी उस शक्ति का उपयोग कर प्रकृति से मनचाहा काम कराता था।

२ जब वह ऐसे प्रयत्न मे असफल होता तो उसे भान होता कि कोई ऐसी अहश्य सत्ताएँ हैं जिनमे वे शक्तियाँ हैं, जो उसे नही मिली।

३ इन शक्तियो को रिझाने की वह चेष्टा करता है।

ग्यारहवाँ स्यानावाद—गिलबर्ट मरे (Gilbert Murray) ने प्रतिपादित किया कि पहला देवता स्वय 'स्याना' था, जो पृथ्वी की उत्पादिका शक्ति पर शासन करता था तथा अन्य परा-पुरुषार्थिक शक्तियो से युक्त था। इस स्याने ने अन्य देवताओं को बनाया और स्वय उनका उद्‌गता या माध्यम बना। इसी व्यक्ति-देव से पशुदेव का विकास हुआ। मारे हुए पशु के चर्म ओढकर नृत्य करने से पशु-देव का उदय असभव नही।

बारहवाँ एक सिद्धान्त यह मानता है कि ईश्वर या देवता का जन्य राजाओ या प्रसिद्ध मनुष्यों से हुआ।

कीथ महोदय ने बताया है कि धर्म एक जटिल वस्तु है। उसका उद्‌भव किसी एक मार्ग से नही माना जा सकता।

कुछ भी हो, हम तो यह देखते हैं कि धर्म का वास्तविक स्वरूप लोक-वार्ता से घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है और बिना उसके धर्म का वैज्ञानिक अध्ययन नही हो सकता। अत लोकवार्ता तथा लोक-साहित्य का धर्म-तत्त्व से घनिष्ठ सम्बन्ध निर्विवाद सिद्ध होता है।

मिलेगा। चाहे वह ईश्वर की अद्वैत[1] सत्ता हो, पुनर्जन्म अथवा आवागमन का सिद्धान्त हो, अथवा परलोक का, आत्मा का अथवा परमात्मा का, साकार का अथवा निराकार का, मूर्तिकला का, यज्ञ का, बलि का, धर्म के समस्त सस्थान का मूल आदिम स्थिति के विश्वासो मे दिखायी पडेगा जो आज भी हमे लोक-साहित्य और लोकवार्ता मे किसी न किसी रूप मे अवशिष्ट दिखायी पडते हैं।

भाषा-विज्ञान

धर्मगाथा के साथ भाषा-विज्ञान का प्रश्न जुडा हुआ है। मैक्समूलर ने धर्म-गाथा को भाषा का विकार (मैलेडी आव लैंग्वेज) बताया था। ग्रिम से आरम्भ होने वाले वैज्ञानिक शोध मे प्रवृत्त लोकवार्ताविदो का वह दल जो माइथालोजीकल थ्यौरी का प्रतिपादक था, भाषाविद (लिंग्विस्ट) भी था। लोकवार्ता के अध्ययन से भाषा के अर्थ-विकार के उस रूप का पता चला जो किसी एक ही अभिज्ञान को विविध रूपो मे प्रस्तुत करता है। इतना ही नही भाषा, भाषा के रूप और अर्थ दोनो तत्त्वो के विषय मे कभी-कभी ठीक-ठीक परिज्ञान कराने मे लोकवार्ता-साहित्य बहुत सहायक होता है। अनेक शब्द लोकवार्ता साहित्य मे ऐसे सजीवित पाये जाते हैं जो भाषा-विज्ञान के लिए भी लाभप्रद होते है और इतिहास तथा धर्म के लिए भी। उदाहर-णार्थ, हिन्दी मे 'अलाइ-बलाइ' का प्रयोग है। यह आलिगी-बालिगी का अवशेष है। इससे इतिहास और धर्म तथा भाषा-विज्ञान तत्त्वो को नयी दृष्टि मिली। इस प्रकार लोकवार्ता को भाषा-विज्ञान का आश्रय लेना होता है, और भाषा-विज्ञान को लोक-वार्ता का। शब्द के यथार्थ अर्थ के लिए जिन परिस्थितियो का ज्ञान आवश्यक है वे भाषा-विज्ञान को लोकवार्ता से ही तो मिलती है। वे पीछे इतिहास से सिद्ध होती है। जैसे ब्रज मे जखैया की पूजा होती है। यह 'जखैया' क्या है ? इसके लिए भाषा-विज्ञान को एक ओर लोकवार्ता का आश्रय लेना पडेगा कि लोकवार्ता 'जखैया देव' के सम्बन्ध मे क्या सूचना प्रदान करती है, दूसरी ओर उसे धर्म की शरण मे भी जाना होगा, और धार्मिक साहित्य की शरण मे भी, तब इतिहास की शरण मे। इसी प्रकार लोकवार्ता के जखैया को भाषा-विज्ञान से ज्ञान होगा कि यक्ष का थान ही जखैया है, जो जैन ग्रन्थो मे महावीर के ठहरने के स्थान 'जक्ख-चेइय' या 'जक्खायतन' से उद्भूत है। इस प्रकार भाषा-विज्ञान और लोकवार्ता का परस्पर अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है।

पाठानुसधान—लोकवार्ता पाठानुसधान मे भी सहायक है। पाठानुसधान मे तथा पाठ-व्याख्या (Textual Interpretation) मे कितने ही प्रकार मे यह सहायक

---

१ भारत के दर्शन के मूलाधार 'अद्वैत' का मूल 'मन' नामक लोकवार्ता के विश्वास मे मिल सकता है। इससे दर्शन का कितना ऊँचा धरातल हो सका है। यहाँ यह कह देना समीचीन है कि यद्यपि कीथ जैसे पण्डित ने आदिम 'मन' मे अद्वैत की दार्शनिक सभावना का खडन किया है, पर सभावना तब भी निर्बल नही हुई।

होती है। ऊपर भाषा-विज्ञान के लिए जिस रूप मे यह उपयोग मे आती है, उससे भी पाठानुसधान मे सहायता मिलती है। अनेक शब्द जो किसी युग मे प्रचलित थे एक विशेष युग मे साहित्यिक प्रयोग से वहिष्कृत हो जाते हैं, किन्तु लोकवार्ता मे और लोकभाषा में जीवित रहते है। उनसे वीते युग के पाठ के शब्दो का उद्धार हो सकता है। अनेक लोकवृत्त जो किसी ग्रन्थ अथवा कोश मे नही मिलते लोकवार्ता मे मिल जाते हैं। जायसी तथा अन्य कवियो ने जगदेव के नाम का एक विशेष प्रसग मे उल्लेख किया है। इस जगदेव को लोकवार्ता से ही प्राप्त किया जा सका था।

मनोविज्ञान

लोकवार्ता साहित्य की व्याख्या के लिए जर्मन विद्वान विलहल्म वुट ने 'मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय' ही स्थापित किया था, और राष्ट्रो के मनोविज्ञान (National Psychology) मे लोकवार्ता के मनोवैज्ञानिक स्रोत पर बल दिया था। फ्रायड ने भी मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से काम प्रकृति से लोकवार्ता के मूल की व्याख्या की थी। इन कारणो से मनोविज्ञान और लोकवार्ता का घनिष्ठ सम्बन्ध सिद्ध होता है पर आज लोकवार्ता के मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय का इतना महत्त्व नही रहा। फिर भी मनोविज्ञान के लिए तो लोकवार्ता साहित्य के पास विचारार्थ इतनी सामग्री है कि वह समाज के व्यष्टि और समष्टि विषयक मनोविज्ञान के स्वरूप के अकन के लिए अनिवार्य है। जातीय मनोविज्ञान, लोक मनोविज्ञान, आदिम मनोविज्ञान केवल लोकवार्ता के अध्ययन पर ही खडे होते हैं। लोकवार्ता जन-जीवन के सचित विश्वासो का स्वरूप प्रस्तुत करती है, और विश्वासो की व्याख्या मनोविज्ञान की सामग्री है। विश्वास कितने प्रकार से मूर्त होते हैं, उन मानसिक मूर्तरूपो के क्या मनोवैज्ञानिक पहलू हैं, यह मनोविज्ञान की शोध का विषय है। लोकवार्ता मनोविज्ञान की सहायता से लोक-मानस को और उसके ऐतिहासिक स्तरों को समझने की चेष्टा करता है। इस प्रकार मनोविज्ञान भी लोकवार्ता का घनिष्ठ सहायक है।

नृविज्ञान तथा जाति विज्ञान

नृविज्ञान तथा मानव-विज्ञान तो लोकवार्ता से और भी घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं। पहले तो लोकवार्ता को ऐन्थ्रापालाजी का एक सहायक अग ही स्वीकार किया जाता था, जब लोकवार्ता साहित्य की व्याख्या के लिए फ्रेजर टेलर आदि द्वारा प्रवर्तित 'ऐन्थ्रापालाजीकल सम्प्रदाय' खडा हुआ, तब लोकवार्ता की व्याख्या के लिए 'ऐन्थ्रापालाजी' सहायक बनकर खडी हुई। फलत न तो नृविज्ञान एक कदम बिना लोकवार्ता के चल सकता है, न लोकवार्ता नृविज्ञान के विना। नृविज्ञान शरीर और रक्त की परम्परा का अध्ययन है तो लोकवार्ता उस शरीर की वाणी का। लोकवार्ता मे लोक-तत्त्वो के वर्गों को समझने और उनके ऐतिहासिक कालाकन के लिए ऐन्थ्रापालाजी या नृविज्ञान के विना काम नही चल सकता। लोकतत्त्वो मे जातीय लोक-मानस व्याप्त रहता है।

जीवन और लोकवार्ता

वस्तुत लोकवार्ता साहित्य का जीवन के आस्थामय पहलू से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है अत जीवनव्यापी समस्त कला, शास्त्र और विज्ञान लोकवार्ता से लेते भी हैं और लोकवार्ता को देते भी हैं। सभी का अध्ययन अपेक्षित होता है।

चिकित्सा-विज्ञान

इस विज्ञान का वास्तविक मूल लोकवार्ता मे ही है। प्रत्येक क्षेत्र मे विविध रोगो को दूर करने की एक लोकवार्ता तो होती ही है जिसमे झाड-फूंक, टोने-टमने, टोटके सम्मिलित हैं, वरन् वैद्य और डाक्टर जिन औषधियो आदि का उपयोग करते हैं, उनकी भी एक वार्ता खडी हो जाती है। वस्तुत लोकवार्ता चिकित्सा-विज्ञान की पूर्वज मानी जा सकती है।

इस प्रकार आज सामाजिक, शास्त्रीय और वैज्ञानिक अध्ययन के लिए लोक-वार्ता और लोक-साहित्य एक प्रकार से अनिवार्य हो चले हैं। पर लोक-साहित्य का साहित्यिक दृष्टि से भी पूरा महत्त्व है।

साहित्य और लोक-तत्त्व

इसमे तो कोई सन्देह ही नही कि साहित्य एक अभिव्यक्ति है, और यह मानवीय अभिव्यक्ति है। मनुष्य के पास अभिव्यक्ति के कितने ही साधन हैं, उनमे से 'वाणी' का माध्यम अत्यन्त प्रबल है, किन्तु जब यह लिपिबद्ध हो जाती है, तब प्रबल ही नही रहती, शाश्वतत्त्व से भी युक्त होने लगती है। 'वाणी' को एक तो क्षण भगुर-कण्ठ मिला हुआ है जिसके द्वारा उत्पन्न होते ही वाणी मृत हो जाती है—मुख से निस्रत हो, कानो से टकराती हुई शून्य मे सदा के लिए विलीन हो जाती है। दूसरा परम्पराश्रित कण्ठ उपलब्ध है—जिस प्रकार एक दीपक से दूसरा दीपक उसी प्रकाश से युक्त हो उठता है, उसी प्रकार 'वाणी' के शब्द कानो मे प्रवेश कर दूसरे की वाणी के द्वारा अपनी जीवन-परम्परा को स्थिर रखते हैं। पिता से पुत्र अथवा गुरू से शिष्य के पास उतरती हुई वाणी की सरिता अपने प्रवाह को अक्षुण्ण रखती है। इस प्रकार स्वय वाणी मे 'मृतत्व' और 'अमृतत्व' दोनो समाविष्ट हैं, जिससे वैदिक ऋषि के उन मन्त्रो का मर्म सिद्ध होता है, जिसमे कहा गया है .

> 'य आत्मदा	यस्य विश्व
> उपास्यते प्रशिश यस्य देवा ।
> यस्यच्छायाऽमृत यस्य मत्यु
> कस्मै देवाय हविषा विधेम् ॥

'अक्षर' का ब्रह्मत्व भी यही सिद्ध होता है। मनुष्य-परम्परा के अमृतत्व के साथ वाणी का अमृतत्व घनिष्ठ रूपेण सम्बद्ध है। किन्तु विचारणीय यह है कि क्या यह समस्त अभिव्यक्ति ही एक साथ 'मृतत्व' और 'अमृतत्व' से सयुक्त है—निश्चय ही

ऊपर जिस प्रकार 'वाणी' का उल्लेख किया गया है, उससे तो दोनो का एक साथ होना सिद्ध होता है, फिर भी यह समझ लेने की बात है कि मनुष्य की परम्परा की भाँति वाणी की परम्परा भी 'मृत्यु और जन्म' के आवागमन मे ग्रथित है। शब्द उत्पन्न होता है, और मरता है, मरते-मरते पुन जीवित होता है। इस प्रक्रिया मे मनुष्य की यह सचेत चेष्टा रहते हुए भी कि वह पूर्व शब्द का यथातथ्य पुनरावतरण कर सके, वह सफल नही होता, और वही शब्द, वही वाणी पुन नही सुनी जा सकती, उसके कुछ तत्त्व मृत होकर झड जाते हैं, कुछ ज्यो के त्यो बने रहते हैं, कुछ नए तत्त्व प्रत्येक अवतारणा मे प्रस्तुत हो जाते हैं। यदि प्रथम उच्चारण मे एक शब्द अथवा 'वाणी' स्फोट, नाद, ध्वन्यावतरण, ध्वनि गौरव, लय, भावस्पर्श से एक ओर शब्द के रूप पक्ष मे, और अर्थ, भाव, रस, ज्ञान-वस्तु, बोध-क्रिया आदि से नाम पक्ष मे सयुक्त हो तो इनमे से रूप पक्ष मे स्फोट जीवित रहेगा और नाम पक्ष मे ज्ञानवस्तु का सार-भाग, भाव का सामयिकता-रूप, परक, सशोधित प्रकार और रस पुनरावतरण मे अपना अस्तित्व बनाये रख सकते हैं। इन्ही के कारण किसी भी युग मे हमको प्राचीन से प्राचीन वाणी का मर्म व्याप्त मिल सकता है। विशेषत उन क्षेत्रो मे जिनमे कि वाणी यथार्थत वाणी होती है,—जिन क्षेत्रो मे कि वाणी को लिपिबद्ध नही किया जाता है। लिपिबद्ध होने की योग्यता पाते ही वाणी की आत्मनिर्भरता समाप्त हो जाती है और तब वह साहित्य का नाम पाकर विशेष सस्कारो से युक्त होते-होते अपने मूल स्रोत से पृथक होती चली जाती है, लिपिबद्धता उसके ऐतिहासिक स्वरूप की रक्षा करती है, और उसी ऐतिहासिक सत्ता को शाश्वत कर देती है। लिपिबद्ध होने पर वाणी का तात्कालिक स्वरूप स्थिर होकर अमृतत्व प्राप्त करता है—इसी को बडे गौरव से 'साहित्य' कहा जाता है।

वाणी का यथार्थ मूल-स्रोत लोकोद्गार का साधारण क्षेत्र है। फलत किसी भी महान साहित्य के मर्म को समझने के लिए हमे लोक-तत्त्व का ज्ञान प्राप्त कर लेना अनिवार्य है। यह कहा जा सकता है कि अध्ययन की दृष्टि से 'लोक-तत्त्व' को आप भले ही समझने की चेष्टा करें, पर किसी काव्य को समझने के लिए उसे अनिवार्य नही कहा जा सकता। जायसी, सूर अथवा तुलसी के काव्य को समझने, उसके यथार्थ आनन्द को प्राप्त करने के लिए अथवा उसके मर्म को ग्रहण करने के लिए लोक-तत्त्व को हृदयगम करने की आज तक आवश्यकता नही समझी गयी है, और जिस प्रकार बिना इसे हृदयगम किये ही इन तथा अन्य महान कवियो की कविता का आनन्द प्राप्त किया जाता रहा है, अब भी किया जा सकता है। किन्तु इस युक्ति को हम तभी मान्यता दे सकते हैं जबकि हम यह स्वीकार कर लें कि पहले दिन हमने जिस वस्तु का ज्ञान प्राप्त किया, वह पूर्ण था, अब उसमे किसी सशोधन अथवा परिवर्द्धन का स्थान नही। उसमे न तो हमसे ऐसा कुछ छूट गया है, जो आज उद्घाटित हो सकता है, और न उसमे स्वय ऐसी सम्भावनाएँ हैं जो नयी भूमिकाओ मे नयी चेतना प्रदान कर सकती हैं। यह दृष्टिकोण ही अवैज्ञानिक है। यह प्रश्न भी कोई

साधारण प्रश्न नही है कि हमे कविता से आनन्द क्यो प्राप्त होता है ? यह प्रश्न भी असाधारण ही है कि कवि कविता क्यो लिखता है ? और यह प्रश्न तो सबसे अधिक उद्वेगजनक है कि वह क्या लिखता है ? कारण यह है कि आनन्द 'वस्तु' और 'व्यक्ति' से सम्बन्धित इकाई है, जिसको तीन स्तरो पर देखा जा सकता है पहला स्थूल स्तर 'सार्मयिक' है—शुद्ध उपयोगितावादी, वाच्य और भौतिक विज्ञान की सीमा मे—जिसे प्रगतिवाद मार्क्सवाद सबसे अधिक महत्त्व देता है। दूसरा 'भूतात्म' समन्वय-कारी स्तर है 'मानसिक'—'व्यक्ति' और 'वस्तु' की जो ऐतिहासिक रसायन बनती है वही इसके अन्तर्गत आती है। 'व्यक्ति' और 'वस्तु' केवल वर्तमान मे ही नही रहते, वे भूत-परम्परा से घनिष्ठ-रूपेण सम्बद्ध हैं। वे रहते हैं हमारे रक्त मे जिससे स्वभाव, प्रकृति, प्रवृत्ति मे उतरते हैं वे रहते हैं हमारी रुचि मे, हमारे मानस मे जिससे विचार और विश्वास मे उतरते हैं और कर्म मे भी, तथा वे रहते हैं हमारी सामयिक भूमि मे जिससे हमारे गर्व, दृष्टिकोण और साधन मे प्रतिफलित होते है। प्राणि-विद्या, दर्शन तथा तत्त्व-शोध से हमारे प्राचीनतम ही नही आदिम से आदिम पूर्वज पुरुष और प्रकृति की देन को उद्‌घाटित किया जाता है। इसी दूसरे स्तर के कारण किसी रचना को ऐतिहासिक अमृतत्त्व प्राप्त होता है, और इसी को हृदयगम करने के लिए लोक-तत्त्व का अध्ययन अनिवार्य हो जाता है। हम तुलसी का अध्ययन करके यदि केवल इतना ही समझ पायें कि—

> एक राम हतो, एक रामन्ना
> वानें वाकी सिया हरी
> अरु वानें वाको
> जाई बात को तोतन्ना
> अरु पडित बांचे पोथन्ना।

यानी राम-सीता की स्थूल कहानी मात्र ही हम उससे ग्रहण करें तो हम उससे यथार्थ आनन्द नही पा सकते। हम पहले उसके अलकार-रस आदि की ओर आकर्पित होते हैं, फिर धार्मिक अभिप्राय की ओर, उसमे वर्णित मानवीय चरित्र-विकास हमे विशेप प्रभावित करता है, उनके दार्शनिक ज्ञान और भक्ति के प्रतिपादन पर हम मुग्ध होते हैं। इन सबसे हम तुलसी के मानस और व्यक्ति-वस्तु-रसायन का बहुत अधूरा और स्थूल अर्थ ग्रहण कर पाते हैं। विना लोक-तत्त्व का अध्ययन किये न तो समस्त सम-स्याएँ ही पूर्णत हम समझ पाते हैं न मानव-मानस का ऐतिहासिक-विकास का परम्परा मे रामचरित का स्पष्टीकरण कर पाते हैं, और न तुलसी की यथार्थ महा-नता के साथ, उसके साथ लगे 'क्यो' और 'क्या' की व्याख्या पर पाते हैं। लोक-तत्त्व का अध्ययन ही हमे कवि की व्यक्ति-रसायन का रहस्य वता सकता है। पर लोक-तत्त्व का अध्ययन आनन्द विपयक तृतीय स्तर से भी उसका कम सम्बन्ध सिद्ध नही करता। तीसरा स्तर होता है आध्यात्मिक अनुभूति का। जहाँ वस्तु अथवा प्रकृति मात्र प्रेरणा का काम करके पीछे रह जाती है, और पुरुप का शुद्ध चेतन आत्मा

'अनादि-अनन्त' स्वरूप मे अपनी आध्यात्मिक अनुभूति से निर्विकार आनन्द मे मग्न प्रतीत होता है, जिस आनन्द मे ही उसे 'ब्रह्मानन्द' मिलता है, और जिस अवस्था के लिए ही कहा गया है कि—

'सिन्धु समानौ बुन्द में'

जिसमे ही किसी काव्य की सार्थकता है और जो काव्य की चरम परिणति है, जो इस विशाल शरीर मे—'काव्य-शरीर' मे वैदिक ऋषि की अनुभूति के अनुरूप गुह्य से गुह्य गुहा मे अगुष्ठ-परिमाण स्थित है—यह तत्त्व साहित्य मे वैयक्तिक तपस्या, साधना अथवा प्रतिभा से स्वय प्रादुर्भूत नही होता। यह लोक-अभिव्यक्ति से उसी प्रकार साहित्यकार मे पुनर्जन्म पाता है, जैसे बौद्धधर्मानुयायियो मे मनुष्य पुनर्जन्म पाता है। इसी के कारण वाणी को यथार्थ अमृतत्त्व प्राप्त होता है।

लोक-साहित्य का शास्त्र और विज्ञान

फलत लोक-साहित्य का एक ओर तो अभिव्यक्ति के रूप (form) के आधार पर, और मानवीय भाव सम्पत्ति और अनुभूतियो से लहराते होने के कारण साहित्य-शास्त्र की दृष्टि से भी अध्ययन हो सकता है, और उसका शास्त्र वैसा ही प्रस्तुत किया जा सकता है। रस, अलकार, आदि इसमे भी देखे जा सकते हैं। पर पिंगल के साथ-साथ लोक-सगीत की भी शास्त्र और कसौटी तैयार करनी पडेगी। इसी प्रकार कोई भी लोक-साहित्य ध्वनि से शून्य नही होती। उसके प्रतीक अपना निजत्व रखते हैं। इसी प्रकार उसके अलकारो और रसो, नायक-नायिकाओ, आलबनो और उद्दीपनो मे एक विशेषता होती है, जिससे लोक-साहित्य का शास्त्र शिष्ट या मनीषी साहित्य के अनुरूप होते हुए भी उससे भिन्न हो जायेगा।

पर लोक-साहित्य में जीवन का पहलू बहुत प्रबल होता है, जीवन का बहुधा एक अकृत्रिम स्वरूप ही उसमे अवतरित होता है अत लोक-साहित्य का एक विज्ञान भी प्रस्तुत होता है। यह विज्ञान लोक-साहित्य के वर्ण्य और अवर्ण्य, विषय, वस्तु और शैली सभी को लोकवार्ता विज्ञान की दृष्टि से ग्रहण करता है। यह विज्ञान लोक-साहित्य मे से साहित्य-तत्त्वो को और लोक-तत्त्वो को पृथक करता है। तदनन्तर साहित्य-तत्त्वो मे भी लोकमूल का उद्घाटन करता है।

इसके लिए उसे 'वर्णनात्मक विज्ञान' की प्रणाली का उपयोग करना पडता है। पहले वह आज जो लोक-साहित्य है उसका विवरण वैज्ञानिक प्रणाली से प्राप्त करता है। उसका वैज्ञानिक प्रणाली से ही वर्गीकरण करता है। तब वह क्षेत्रगत (भौगोलिक) तथा कालगत तुलना और इतिहास-क्रम का उपयोग करके लोक-साहित्य की सामग्री को लोकवार्ता के क्षेत्र मे पहुँचा देता है। इस क्षेत्र मे पहुँचकर लोक-साहित्य की यह सामग्री लोक-सामान्य भूमि पर खडी होकर विविध लोक-उपादानो की दृष्टि से परखी जाती है।

जैसे भाषा-विज्ञान के दो पहलू हैं एक ऐतिहासिक और दूसरा वर्णनात्मक (descriptive) वैसे ही लोकवार्ता विज्ञान के हैं। जैसे शब्द और भाषा-तत्त्व यात्रा

करते हैं, वैसे ही लोकवार्ता, लोक-तत्त्व भी यात्रा करते हैं। जैसे भाषा-विज्ञान भाषा के विकारो और विकास का पता लगाता है वैसे ही लोकवार्ता विज्ञान भी, जैसे भाषा-विज्ञान व्युत्पत्ति पर दृष्टि रखता है, वैसे ही लोकवार्ता भी विविध तत्त्वो और अभिप्रायो (motifs) की व्युत्पत्तियो पर विचार करता है। जैसे भाषा के वश-वृक्ष देखे जाते हैं, और विन्यास-तत्त्व भी वैसे ही लोकवार्ता और उसके साहित्य के भी वश-क्रम को देखा जाता है और उसके विन्यासतत्त्वो को भी परखा जाता है।

अत आज लोकवार्ता अथवा लोक-साहित्य का विज्ञान एक उन्नत समाज विज्ञान मे स्थान पा चुका है, अतएव हमे इस दृष्टि को भी लोक-साहित्य के किसी भी प्रकार के व्यापार मे प्रवृत्त होते समय भूल नही जाना चाहिए।

चौथा अध्याय

लोक-साहित्य के प्रद

लोक-साहित्य विषयक सम्प्रदाय

प्रासंगिक

लोकवार्ता तथा लोक-साहित्य पर कितनी ही दृष्टियो से आज तक कार्य हुआ है और हो रहा है। दृष्टिकोणो के भेद के कारण ही इस क्षेत्र मे कई सम्प्रदाय खडे हो गये हैं जिनमे से प्रमुख तीन सम्प्रदाय हैं।[1]

भारतीय

उपरोक्त में से एक को भारतीय सम्प्रदाय नाम दिया जा सकता है। इस सम्प्रदाय की स्थापना यह रही कि धर्मगाथाओ का जन्म भारत मे हुआ, और वे भारत से चतुर्दिक फैली। धर्मगाथाओ और लोक-कथाओ के जन्म लेने और रूपान्तरित होने का कारण है शब्द-विकार अथवा मैक्समूलर के शब्दो मे 'मैलैडी ऑव वर्ड्स'। इस युग के प्राय समस्त लोक-तत्त्व-मर्मज्ञ आरियेन्टेलिस्ट, भारतीय ताव के पण्डित तथा भाषा-विज्ञान विशारद थे। भारतीय-तत्त्व और भाषा-विज्ञान के सहारे ही उन्होने लोक-तत्त्व को भी समझने की चेष्टा की थी। इसके लिए ऐतिहासिक तुलनात्मक प्रणाली का प्रयोग किया जाता था जिसे *'व्युत्पत्ति शोधक प्रणाली'* भी कह सकते हैं।

किसी विज्ञान के इतिहास को सम्प्रदायो के रूप मे बाँटकर प्रस्तुत किया जाता है। लोकवार्ता तत्त्व का इतिहास भी इसी दृष्टि से किया जाता है। किसी विज्ञान के इतिहास के अध्ययन की भाँति लोकवार्ता-तत्त्व के इतिहास के अध्ययन के महत्त्व के विषय मे सोकोलोव ने लिखा है कि—

(१) बिना इतिहास-परक अध्ययन के इस क्षेत्र के आधुनिक उद्योगों का यथार्थ मूल्याकन नही किया जा सकता क्योंकि उन उद्योगों की एक परम्परा है, उस परम्परा मे ही ठीक-ठीक समझा जा सकता है।

(२) लोकवार्ता-तत्त्व विषयक विविध समस्याओ के क्या, और कैसे और क्यो को समझने और इस निमित्त किये गये विविध समाधानो को जानने का मार्ग भी इतिहास से ही मिलता है।

(३) इस क्षेत्र मे क्या उपलब्धि हुई है, यह भी इतिहास ही बतायेगा।

(४) वैज्ञानिक विचार विकास मे क्या बाधाएँ और त्रुटियाँ रही हैं इसे इतिहास से ही जाना जा सकता है।

१-सम्प्रदाय तथा भाषा-वैज्ञानिक सम्

भारतीय सम्प्रदाय का आरम्भ पहले भाषा-विज्ञानवादी या धर्मगाथा-वादी सम्प्रदाय से ही हुआ। इस दिशा मे सबसे पहला प्रयत्न विलहेल्म ग्रिम

---

(५) इस लोकवार्ता की पृष्ठभूमि क्या है यह भी इसी (ऐतिहासिक अध्ययन) से ज्ञात होगा। और जहाँ तक लोकवार्ता-तत्त्व के विकास का प्रश्न है उसे भी सम्प्रदायो मे बाँटकर ही किंचित व्यवस्थित रूप से समझा जा सकता है।

लोकवार्ता-तत्त्व का शास्त्रीय अध्ययन उन्नीसवी शताब्दी की प्रथम दशाब्दी से माना जाता है। सोकोलोव का मत है कि यह उस विचार-क्रान्ति का परिणाम है जिसे रोमाण्टिसिज्म का नाम दिया जाता है। यही मत श्रीमती दुर्गा भागवत का है। रोमाण्टिसिज्म की विचार-क्रान्ति का मूल था 'क्लासिकल' या उदात्त से उन्मुक्ति। शब्दार्थ की दृष्टि से यह उस प्राचीन फ्रासीसी भाषा के शब्द 'रोमाज' से निकला है जिसका अर्थ होता है गँवारी बोली, लैटिन नही। फलत लैटिन जिस आभिजात्य सस्कारो और शीलबन्धनो की प्रतीक थी रोमाण्टिसिज्म उन सबके प्रति विद्रोह की भावना द्योतक थी। इस बीज से इस विचार-क्रान्ति ने विविध क्षेत्रो मे विविध रूप ग्रहण किये। हिन्दी मे आचार्य शुक्ल ने इसे स्वच्छन्दतावाद का जो नाम दिया है वह रोमाण्टिसिज्म की आत्मा को प्रकट करता है। शब्दार्थ से जो प्रवृत्ति अभिहित होती है, उसके अनुसार अथवा रोमाण्टिसिज्म के बहुत विस्तृत और वैविध्ययुक्त अर्थ के अनुसार लोकवार्ता-विज्ञान को रोमाण्टिसिज्म का परिणाम भले ही मान लिया जाय। पर रोमाण्टि-सिज्म की विविध व्याख्याओ पर दृष्टि डाली जाय तो विदित होगा कि कला-सृष्टि के सिद्धान्त से ही इसका वास्तविक सम्बन्ध है। वैज्ञानिक प्रवृत्तियो के विकास की कार्य-योजनाओ का सीधा सम्बन्ध या तो रेनेसाँ से लगाना होगा, या उपनिवेशवाद से उद्भूत प्रवृत्तियो के विविध परिणामो का फल मानना होगा, जिससे सस्कृत भाषा पाश्चात्य क्षेत्रो मे पहुँची और भाषा-वैज्ञानिक प्रवृत्तियो को उभार सकी। और भी विचार किया जाय तो प्रतीत होगा कि वस्तुत तो यह लोकवार्ता-विषयक प्रवृत्ति फ्रासीसी राज्य-क्रान्ति का सीधा परिणाम थी जिसने राष्ट्रीयवाद (नेशनलिज्म) को जन्म दिया। सामन्तो के अत्याचारो से पीडित जन-समूह मे चेतना उत्पन्न हुई और तब जनवादियो ने स्थापित यह किया कि राष्ट्र सामन्त वर्ग से नही बनता, वह जन-साधारण के समूह से अथवा लोक-समूह से बनता है। इस स्थापना के उपरान्त लोक-सस्कृति अथवा लोकवार्ता का सकलन और अध्ययन आरम्भ हो गया। स्वय सोकोलोव ने माना है कि "लोक-वार्ता के प्रथम रोमाण्टिस्ट सस्करण के प्रकाशन मे राजनीतिक उद्देश्य स्पष्टत और उग्र रूप मे प्रकट किये गये हैं।" उनको समझने के लिए केवल यह स्मरण रखना आवश्यक है कि इन प्रथम प्रकाशनो का समय वही है जो नेपोलियन के युद्धो का है। इस प्रकार राष्ट्रवादी भावना से शोध-अध्ययन की प्रवृत्ति ने लोक-साहित्य के सग्रह प्रदान किये उधर पाश्चात्य जगत के समक्ष सस्कृत भाषा के उद्घाटित होने पर इस लोकवार्ता तथा भाषा-अध्ययन-प्रवृत्ति को तुलनामूलक वैज्ञानिक रूप प्राप्त हुआ। यह सस्कृत के सम्पर्क से उदित होने वाली विचार-क्रान्ति मूल मे फ्रास की राज्य-क्रान्ति के राष्ट्रवाद के विरोध मे थी। राष्ट्रवाद

(१७८६-१८५९) तथा जेकब ग्रिम (१७८५-१८६३) का था।[1] ग्रिम बन्धुओ ने लोक-तत्त्व के अध्ययन की दृष्टि से विशेष ध्यान धर्मगाथा (माइथालाजी) पर दिया था। इसी कारण इसे 'माइथालौजीकल सम्प्रदाय' कहा जाता है। इस सम्प्रदाय के प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ताओ मे प्रमुख हैं जर्मनी का अदालवर्त कुन्ह (१८१२-१८८१), स्क्वार्ज (Schwarz), मनहाट (Mannhardt), मैक्समूलर, पिक्टेत (फ्रेंच), एफ० आई० बुस्लमेव, ए० एन० अफनास्यैव (रूस) तथा ओ० एफ० मिलर। इस सम्प्रदाय की मान्यता यह थी कि

(१) समान गाथाओ का उद्गम एक स्थान से हुआ।

(२) समान गाथाओ का जहाँ-तहाँ प्रचलन और मान्यता है वहाँ की जातियो का भी उद्गम स्थान एक था। वे एक परिवार की जातियाँ है जिन्हे यूरोपीय आर्य परिवार भी माना जा सकता है।

(३) गाथाएँ भाषा-विकार के कारण उत्पन्न हुई।[2]

भौगोलिक और ऐतिहासिक सीमाओ मे मानव वर्ग को बाँटकर विश्व मे सकुचित क्षेत्रीयता पैदा कर रहा था। तभी सस्कृत-सम्पर्क से उत्पन्न विद्वानो ने यह विचार प्रस्तुत किया कि आर्य-जाति इन राष्ट्रीय सीमाओ का उल्लघन करके एक हैं। फलत राष्ट्रवाद ने लोक-सामग्री प्रदान की और सस्कृत-सम्पर्क से उत्पन्न मनीषिता ने तुलनात्मक वैज्ञानिक दृष्टि। इस प्रकार लोक-विज्ञान की वैज्ञानिकता में भारत की विचारधारा का गहरा प्रभाव है। इसी कारण इस आरम्भिक वैज्ञानिक धारा के लोकवार्ता-तत्त्व के अध्ययन को भारतीय सम्प्रदाय कहा जाता है। अधिक वैज्ञानिक दृष्टि से इसे 'माइथोलोजीकल स्कूल' कहा जाता है। इसके प्रवतन का श्रेय ग्रिम बन्धुओ को है।

1. जेकब कार्ल ग्रिम तथा विल्हेल्म कार्ल ग्रिम दोनो भाइयो ने कई ग्रथ मिलकर लिखे थे जैसे 'किंडर-अण्डहाउसमाशीन या हाउस होल्ड टेनस,' जिसका प्रथम भाग १८१२ मे और दूसरा १८१५ मे निकला। १८३५ मे जेकब ग्रिम की पुस्तक 'दि उरश्चे माइथालाजी' प्रकाशित हुई। इसी के कारण ये लोकवार्ता विज्ञान के पिता या प्रवतक कहलाये। ये ग्रिम केवल लोकवार्ता विज्ञान के ही पिता नही, ये तुलनात्मक भाषा-विज्ञान के भी प्रवर्त्तक हैं। जेकब ग्रिम की कुछ रचनाएँ हैं 'टेल्स फौर दि चिल्ड्रन एण्ड दि फैमिली' (१८१२-१५), 'जर्मन ग्रैमर' (१८१९), 'ऐण्टिक्विटीज ऑव जर्मन' (१८२८), 'जर्मन माइथालाजी' (१८३५), 'हिस्ट्री ऑव दि जर्मन लैंग्वेज' (१८४८), 'क्लीयनयेर स्क्रिफ्टन' (दोनो भाइयो के छोटे प्रवन्धो का सग्रह) (१८८१)। १८५६ मे विल्हेल्म ग्रिम ने ग्रिम बन्धुओ के लोकवार्ता के सिद्धान्तो को अन्तिम रूप देकर प्रकाशित कराया। जिन दो सिद्धान्तो पर इन्होंने जोर दिया था वे हैं (१) समान लगने वाली कहानियो का मूल यूरोपीय स्रोत मे है। (२) लोककथाएँ धमगाथाओ के ध्वसावशेष हैं, धमगाथाओ के अध्ययन से ही उन्हें समझा जा सकता है।

2. मैक्समूलर ने गाथाओ के उद्भव की दृष्टि से मानवीय सस्कृति के विकास को चार सीढियाँ या युग माने हैं—पहले थीमेटिक-शाब्दिक धातुओ और व्याकरण

(४) उनका मूल है कोई प्राकृतिक व्यापार जैसे स्ववार्ज की स्टार्म थ्योरी,[१] मैक्समूलर की सोलर थ्योरी[१] को महत्त्व देने वाला माना जाता है।

(५) इस सम्प्रदाय की प्रणाली तुलनामूलक थी, गाथाओ, अभिप्रायो तथा नामो और शब्दो की तुलना।

इस धर्मगाथावादी सम्प्रदाय की त्रुटियाँ, कमी और दोष इसके अनुयायियो को ही प्रकट होने लगे थे, किन्तु फिर भी यह प्रवृत्ति १८५९ तक प्रमुख रही।

प्रसारवादी सम्प्रदाय

लोकवार्ता की लोककहानी (फोकटेल) विषयक अध्ययन की एक दृष्टि 'प्रसार' की प्रकृति, रूप आदि को समझने से सम्बन्धित है। विविध देशो मे एकसी ही कहानियाँ या धर्मगाथाएँ मिलती हैं। इस समानता का एक कारण 'प्रसार' माना गया है। एक स्थान से ये कहानियाँ दूसरे क्षेत्रो मे प्रसारित हुई हैं या फैली हैं। भारतीय सम्प्रदाय मे बेन्फे का सिद्धान्त विशेष महत्त्व रखता है।

बेन्फे-सिद्धान्त

१८५९ मे थ्योडोर बेन्फे[२] (Theodor Benfey) का पचतन्त्र जर्मनी मे प्रकाशित हुआ। इससे 'थ्योरी ऑव बोरोइग' या उधारवादी सम्प्रदाय की स्थापना हुई। बेन्फे की स्थापना अत्यन्त क्रान्तिकारी थी। बेन्फे ने यह स्थापित किया कि ये गाथाएँ अथवा लोक-कथाएँ एक स्थान पर उत्पन्न हुईं और वहाँ से दूसरे क्षेत्रो मे फैलती चली गयी। इससे बेन्फे ने धर्मगाथावादी सम्प्रदाय की इस धारणा का निराकरण किया कि समान धर्मगाथाओ वाली जातियाँ एक ही परिवार की हैं, वे जातियाँ अलग-अलग परिवार की हो सकती हैं, उनमे समान धर्मकथाएँ इसलिए हैं कि उन्होने एक मूल स्रोत से इन्हे उधार लिया है।

के तत्त्वो का जन्म, दूसरी डायलेक्टिक बोलियो के रूप ग्रहण की अथवा भाषिक विविध कुलो की भाषाओ के मूलस्वरूप का जन्म हुआ। तीसरी माइथालाजीकल गाथाएँ, इस युग मे गाथाएँ बनी, और चौथी पौपूलर इस युग मे लौकिक राष्ट्र भाषाएँ खडी हुईं।

१ 'स्टार्म थ्योरी' मे विविध देवी-देवताओ का मूल स्टार्म या तूफान के प्राकृतिक व्यापार से माना जाता है और सोलर थ्योरी अथवा सौर-सिद्धान्त से देवी-देवताओ का प्रादुर्भाव सूर्य से।

२ थियोडोर बेन्फे (१८०९-१८८१) जर्मनी के इस सस्कृत-विद्वान का जन्म नॉएर-लैन, हनोवर मे हुआ। १८४८ से यह गौटिंगेन मे प्राध्यापक हुए। १८६२ से सस्कृत तथा तुलनात्मक भाषा-विज्ञान के विभाग के अध्यक्ष नियुक्त हुए और अपनी मृत्युपर्यन्त इसी पद पर रहे। पचतन्त्र के अतिरिक्त इन्होने ये पुस्तकें और लिखी—

(१) यूनानी धातुओ का कोश (१८३९-४२)
(२) सस्कृत भाषा का पूर्ण व्याकरण (१८५२)
(३) सस्कृत-इगलिश डिक्शनरी (१८५०)

बेन्फे का विश्वास था कि इन गाथाओ का मूल उद्‌गम क्षेत्र भारत है। भारत से ही ये कथाएँ चली और चारो ओर फैली। बेन्फे ने उन युगो का भी निर्देश किया है जिनमे इन कथाओ का सक्रमण एक स्थान से दूसरे मे विशेषत हुआ।

उदाहरणार्थ, एक युग है सिकन्दर के आक्रमणो का, दूसरा है अरबो के आक्रमण का तथा धर्म-युद्धो का।

बेन्फे ने उन मार्गो को भी ढूंढ निकाला जिनसे होकर ये गाथाएँ एक स्थान से दूसरे स्थान को यात्रा करती रही। पचतन्त्र की कहानियो के आधार पर बेन्फे ने ये सब स्थापनाएँ सिद्ध की।

इस उधारवादी सम्प्रदाय के प्रमुख तत्त्ववेत्ताओ मे हैं, फास के गेस्टन पेरिस (Gaston Paris), ऐमेन्युअल कासक्विन (Emmanual Cosquin), अग्रेजी के क्लोस्टज, जर्मन के लनडउ आदि।

इस उधारवादी सम्प्रदाय को भी 'भारतीय सम्प्रदाय' के अन्तर्गत स्थान दिया जायगा क्योकि 'माइथालाजिस्ट' या धर्मगाथावादी की भाँति यह सम्प्रदाय भी भारतीय तत्त्व को प्रधानता देता है क्योकि यह लोक-कहानियो का मूल उदय भारत से मानता था। यद्यपि इसी सम्प्रदाय के अन्तर्गत ही वे छुटपुट प्रयत्न भी आयेंगे जो लोकगाथाओ के उत्पत्ति स्थान और उसके अभिप्रायो की यात्रा का अनुसन्धान करते हैं, भले ही वे उनका मूल भारत को न मानें, फिर भी ऐसे प्रयत्न विशेष महत्त्व नही पा सके हैं। बेन्फे द्वारा प्रवर्तित इस सम्प्रदाय के प्रयत्नो के परिणाम से भारत ही कहानियो का मूल सिद्ध होता था।

इस सम्प्रदाय का विरोध नृविज्ञान तत्वज्ञो ने तो किया ही एफ० जोसफ बेडियर (Joseph Bedier) ने भी किया। इनका कहना है कि कुछ ऐसी भी कहानियाँ हो सकती हैं जो विविध क्षेत्रो मे स्वतन्त्र रूप से अलग-अलग पैदा हुई हो, पर हो एकसी। इन्होंने एक सिद्धान्त यह भी प्रतिपादित किया कि भिन्न धर्म और सस्कृति वाली जातियाँ अपने से भिन्न विश्वास वाली कहानियाँ नही अपना पाती। यह सिद्धान्त अमान्य हो चुका है क्योकि इसके विरोध मे पर्याप्त प्रमाण हैं।

लिखित या मौखिक

बेन्फे के सिद्धान्त का मूलाधार 'पचतन्त्र' नामक सस्कृत कथा-पुस्तक थी। इस सस्कृत की पुस्तक की कहानियो के प्रसरण के युगो और मार्गो को निर्धारित करने और भारत से लोक कहानियो के प्रसरण या उधार लिये जाने के सिद्धान्त को विविध देशो की जिन कहानियो के प्रमाणो से प्रतिपादित किया था वे सभी लिखित कहानियाँ थी।

बेन्फे के समय तक तो इस सम्बन्ध में कोई विवाद नही उठा पर ऐतिहासिक-भौगोलिक प्रणाली के प्रवर्तक कार्ल क्रोह्न (Kaarle Krohn) (१८६३-१९३३) के साथ यह विवाद आ खडा हुआ कि मौखिक कहानियो का विशेष महत्त्व है या ऐतिहासिक अथवा लिखित का। कार्ल क्रोह्न मौखिक रूपान्तरो के महत्त्व को मानने

वाले थे, 'कलेवल' की फिनीशी धर्मगाथा पर उनके अध्ययन का मुख्य आधार मौखिक साहित्य ही था।

पर वोहीमियन विद्वान ऐल्वर्ट वेस्सेल्स्की (Albert Wesselski) का मत था कि "ऐतिहासिक या लिखित कहानियो का मूल्य अधिक है, यानी लिखित साहित्य की कहानियाँ मौखिक को प्रभावित करती हैं।" अत जब मौखिक कहानियाँ लिखित से प्रभावित हैं तो उनका स्वतन्त्र मूल्य नही माना जा सकता।

लिखित के आधार पर बेन्फे की यह आलोचना की गयी है कि समस्त कहानियो का मूल भारत मे इस आधार पर मानना समीचीन नही कि भारत मे ही उनके प्राचीनतम लिखित रूप मिलते हैं। लोकवार्ता कहानी किसी अन्य क्षेत्र मे जनमी और वह प्रसारित हुई। अन्य क्षेत्रो मे वह मौखिक ही चलती रही। दूसरे क्षेत्र मे जैसे भारत मे लिपिबद्ध कर ली गयी। आगे चलकर अन्य क्षेत्रो मे वह लिपिबद्ध हुई, तो इससे लिखित कहानी ही मूल कहानी है और वह वही पैदा हुई है जहाँ लिखित मिलती है, सिद्ध नही होता। समस्त मौखिक रूपान्तरो को लेकर जो निष्कर्ष प्रस्तुत किये जायेंगे, वे अधिक विश्वसनीय होंगे, क्योकि उनमे शुद्ध कहानी का मूलरूप कही न कही से परम्परा मे सुरक्षित मिल सकता है। लिखित कहानी ऐतिहासिक प्रमाण का काम दे सकती है।

फरातवादी सम्प्रदाय

इन उधारवादी या प्रसारवादी सम्प्रदायो मे से इस फरातवादी सम्प्रदाय की स्थापना थी कि समस्त धर्मगाथाओ का जन्म फरात (यूफ्रेटीज) के देश मे हुआ। पर पर्याप्त प्रमाणाभाव मे यह सम्प्रदाय सफलता नही पा सका।

ऐन्थ्रापोलाजीकल सम्प्रदाय

किन्तु इस प्रसार या उधारवादी सम्प्रदाय की कमियाँ धीरे-धीरे सामने आने लगी थी। इगलैण्ड, फ्रास आदि-आदि देशो के साम्राज्य अफ्रीका, अमरीका, एशिया आदि मे फैले, वहाँ से लोकवार्ता विपयक सामग्री का सग्रह विद्वानो के समक्ष आया। इस सामग्री को इस उधारवादी-सिद्धान्त के आधार पर सिद्ध नही किया जा सकता था। तब 'ऐन्थ्रापोलाजिकल' सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ। अंग्रेज विद्वान टेलर[1] ने

---

१ टेलर (१८३२-१९१०)—टॉटिघम के ग्रोव हाउस के फ्रेण्ड्स स्कूल मे इन्हे शिक्षा मिली। अनुकूल स्वास्थ्य के कारण इन्होने दूर-दूर की यात्राएँ की। इनकी कृतियाँ ये हैं

(1) Anahuac or Mexico and the Mexican, Ancient and Modern (1861)

(2) Researches into the Early History of Mankind (1864)

(3) Primitive Culture (2 vols) (1871)

(4) Anthropology (1881)

१८८८ मे ऐवरडीन विश्वविद्यालय मे 'प्राकृतिक धर्म' के गिपफर्ड व्याख्याता २ साल रहे। १८९६ मे ऑक्सफर्ड के ऐन्थ्रापोलाजी के प्रथम प्रोफेसर हुए।

सर्वप्रथम 'प्रिमिटिव कल्चर' (१८७१) नामक पुस्तक मे उधारवादी सम्प्रदाय के विरुद्ध 'ऐन्थ्रापोलाजिकल' सिद्धान्त की रूपरेखा प्रस्तुत की। वृहत् सामग्री का अध्ययन करके टेलर ने स्थापित किया कि

(१) सभी जातियो के लोको की जीवन-प्रणाली, रीति-रिवाजो और धार्मिक वृत्तियों और काव्य-रचना-प्रणाली मे अद्‌भुत साम्य दिखायी पड़ता है। इसका कारण एक स्थान से ही इन सबका प्रसरण नही हो सकता। प्रसरण भी होता है, पर सभी साम्य प्रसरण के ही कारण नही होते।

(२) यह मानवीय स्वभाव, 'मानस', विचार-पद्धति और विकास-क्रम के स्वाभाविक साम्य के कारण है। इसका परिणाम यह है कि प्रत्येक जाति ने अपने लोकवार्ता-तत्त्वो का निर्माण अपने क्षेत्रो मे स्वतन्त्र रूप मे किया है, किसी से उधार नहीं लिया और न किसी एक मूल से ही उदय होकर वे आये है। इस धारणा के कारण इस सम्प्रदाय को 'विपयो के स्वोद्‌भावन का सिद्धान्त' भी कहा जाता है।

(३) आदिम मानव ने ही हमारी समस्त सस्कृति के मूल बीज का निर्माण किया। उनके उन मूल स्वरूपो का अवशेष आज भी हमे विद्यमान मिलता है। विशेपत पिछडे हुए वर्ग मे इसी सम्प्रदाय ने एनीमिज्म (पदार्थात्मवाद) अथवा भूतात्मवाद को आदिम धर्म का मूल बताया था। इस नृवैज्ञानिक सम्प्रदाय के प्रवर्तक टेलर का साथ दिया है लैंग महोदय ने।

ऐंड्रू लैंग महोदय ने लोककहानी या धर्मगाथा के विकास की सामान्यत ये सीढियाँ निर्धारित की—(१) मूलकथा कई अभिप्रायो या तन्तुओ (Motif) से युक्त हब्शियो (Savages) मे बनी। यही विकसित होकर (२) किसानो की लोक प्रचलित कहानी बनी, अव यह कहानी अगले विकास मे दो रूपो मे से एक या दोनो ग्रहण करती है। अर्थात् यह कहानी (३) अर्द्ध वास्तविक वीर (जैसे परसियस) की कहानी बन जाती है, या (४) कोई साहित्यिक रूप ग्रहण कर लेती है।

इस सम्प्रदाय ने धर्मगाथावादी और उधारवादी सम्प्रदायो की अपेक्षा वैज्ञानिक दृष्टि से अधिक ठोस धरातल स्वीकार किया और इस प्रकार लोकवार्ता-तत्त्व के विपय मे एक बहुत लम्बा डग आगे बढाया, फिर भी यह विचार परम्परा यही समाप्त नहीं हो सकती थी। इस सम्प्रदाय ने मनुष्य और उसके स्वभाव को एक निरपेक्ष तत्त्व के रूप में स्वीकार कर उसकी सर्वत्र सम्भावना स्थापित की थी। यह सस्कृतियों के भेदो और उनके प्रभावों की उपेक्षा कर गया। यह उन तत्त्वो तक नहीं पहुँचा था जो मानव स्वभाव के निर्माता माने जा सकते हैं।

मनोविज्ञानवादी—इसी सम्प्रदाय के अन्तर्गत 'लोक-मानस' को विशेषत अध्ययन का विपय भी बनाया गया। जर्मन विद्वान विलहेल्म वुण्ट[1] इसका अगुआ

[1] विल्हेल्म वुट—जर्मन विद्वान। इसने 'साइकालाजी ऑफ नेशन्स' राष्ट्रो का मनोविज्ञान लिखा। यह समाज-विज्ञान के क्षेत्र मे मनोविज्ञानवाद का स्थापक है।

वाले थे, 'कलेवल' की फिनीशी धर्मगाथा पर उनके अध्ययन का मुख्य आधार मौखिक साहित्य ही था।

पर वोहीमियन विद्वान ऐल्वर्ट वेस्सेल्स्की (Albert Wesselski) का मत था कि "ऐतिहासिक या लिखित कहानियो का मूल्य अधिक है, यानी लिखित साहित्य की कहानियाँ मौखिक को प्रभावित करती हैं।" अत जव मौखिक कहानियाँ लिखित से प्रभावित हैं तो उनका स्वतन्त्र मूल्य नही माना जा सकता।

लिखित के आधार पर वेन्फे की यह आलोचना की गयी है कि समस्त कहानियो का मूल भारत मे इस आधार पर मानना समीचीन नही कि भारत मे ही उनके प्राचीनतम लिखित रूप मिलते हैं। लोकवार्ता कहानी किसी अन्य क्षेत्र मे जनमी और वह प्रसारित हुई। अन्य क्षेत्रो मे वह मौखिक ही चलती रही। दूसरे क्षेत्र मे जैसे भारत मे लिपिबद्ध कर ली गयी। आगे चलकर अन्य क्षेत्रो मे वह लिपिवद्ध हुई, तो इससे लिखित कहानी ही मूल कहानी है और वह वही पैदा हुई है जहाँ लिखित मिलती है, सिद्ध नही होता। समस्त मौखिक रूपान्तरो को लेकर जो निष्कर्ष प्रस्तुत किये जायेंगे, वे अधिक विश्वसनीय होगे, क्योकि उनमे शुद्ध कहानी का मूलरूप कही न कही से परम्परा मे सुरक्षित मिल सकता है। लिखित कहानी ऐतिहासिक प्रमाण का काम दे सकती है।

फरातवादी सम्प्रदाय

इन उधारवादी या प्रसारवादी सम्प्रदायो मे से इस फरातवादी सम्प्रदाय की स्थापना थी कि समस्त धर्मगाथाओ का जन्म फरात (यूफ्रेटीज) के देश मे हुआ। पर पर्याप्त प्रमाणाभाव मे यह सम्प्रदाय सफलता नही पा सका।

ऐन्थ्रापोलाजीकल सम्प्रदाय

किन्तु इस प्रसार या उधारवादी सम्प्रदाय की कमियाँ धीरे-धीरे सामने आने लगी थी। इगलैण्ड, फ्रास आदि-आदि देशो के साम्राज्य अफ्रीका, अमरीका, एशिया आदि मे फैले, वहाँ से लोकवार्ता विपयक सामग्री का सग्रह विद्वानो के समक्ष आया। इस सामग्री को इस उधारवादी-सिद्धान्त के आधार पर सिद्ध नही किया जा सकता था। तब 'ऐन्थ्रापोलाजिकल' सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ। अग्रेज विद्वान टेलर[1] ने

---

१ टेलर (१८३२-१९१०)—टॉटिंघम के ग्रोव हाउस के फ्रेण्ड्स स्कूल मे इन्हे शिक्षा मिली। अनुकूल स्वास्थ्य के कारण इन्होने दूर-दूर की यात्राएँ की। इनकी कृतियाँ ये है

(1) Anahuac or Mexico and the Mexican, Ancient and Modern (1861)
(2) Researches into the Early History of Mankind (1864)
(3) Primitive Culture (2 vols) (1871)
(4) Anthropology (1881)

१८८८ मे ऐवरडीन विश्वविद्यालय मे 'प्राकृतिक धर्म' के गिपफर्ड व्याख्याता २ साल रहे। १८९६ मे ऑक्सफर्ड के ऐन्थ्रापोलाजी के प्रथम प्रोफेसर हुए।

इस प्रकार लोकवार्ता साहित्य विषयक यह नृवैज्ञानिक सम्प्रदाय दूसरा प्रधान सम्प्रदाय है। इस सम्प्रदाय के विविध देशो मे अपने-अपने अनुकूल रूप ढले।

लोक-साहित्यवादी—इन दोनो सम्प्रदायो के अतिरिक्त एक सम्प्रदाय और माना जा सकता है। यह लोक-साहित्यवादी सम्प्रदाय है और अमरीकी लोकवार्ता क्षेत्रो मे आर्ने[1] टामसन सम्प्रदाय कहलाता है। इस सम्प्रदाय का दृष्टिकोण न तो लोक-साहित्य के साथ धर्म के प्रश्न को ग्रहण करता है, न मानव के आदिम मानस और स्वभाव को, वह लोक-साहित्य के रूप, अभिप्राय, उसके साम्य, पारस्परिक आदान-प्रदान आदि का अध्ययन करता है। यह उनके अतीत आदि मे प्रवेश करने

---

1 आर्ने, एट्टी—Antti Aarne (१८६७-१९२५) ये फिनलैण्ड के विद्वान थे। कार्ले क्रोह्न (Krohn) ने सबसे पहले जिस 'भौगोलिक-ऐतिहासिक लोकवार्तावाद' का आरम्भ किया था, उसमे ये भी उनके साथ नेतृत्व करने लगे थे। इन्होने 'टाइप्स ऑव दि फोकटेल्स इन वर्ल्ड लिटरेचर' नाम से कहानी विषयक जो अध्ययन प्रस्तुत किया वह आगे स्टिथ टामसन के सहयोग के साथ प्रस्तुत हुआ तो विश्व मे लोककहानी और वार्ता के अध्ययन की नयी नीव के रूप मे सर्वत्र गृहीत हुआ। लोक कथाओ के टाइप्स (मानक रूप) निर्धारित कर उनको विशेष सख्या दे दी गयी, इससे न केवल मानक-कथा रूपो का एक पूर्ण कोश ही प्रस्तुत हुआ वरन् ऐसी प्रतीक सख्याएँ भी निश्चित हो गयी जिनसे अध्ययन मे सन्दर्भ देना अत्यन्त सुविधाजनक हो गया। सन् १९१० के उपरान्त इसी आर्ने-प्रणाली मे विविध जातियो की कहानियो के मानक रूपो की सूचियाँ प्रकाशित हुईं। आर्ने के गुरु कार्ले क्रोह्न ने ऐंटी आर्ने की इस देन पर अपना अभिमत यो प्रकट किया है—

"आर्ने ने जो अलग-अलग कहानियो का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया है, उनसे यह सिद्ध हो गया है कि किसी लोक कथा के स्थायी अशो को ही पृथक अभिप्राय (motif) मानना भूल है, इन अध्ययनो से आर्ने ने यह दिखा दिया है कि प्रत्येक पृथक कथा का अपना निजी कथानक (Plot) होता है और उसकी अपनी एकतानिष्ठ (Unified) रचना होती है जहाँ तक बहुत-सी लोककहानियो का सम्बन्ध है, यही पहला व्यक्ति है जो विस्तारपूर्वक यह सिद्ध करने मे समर्थ हुआ है कि उनके भारतीय मूल के सम्बन्ध मे बेन्फे का जो सिद्धान्त था वह सही था। किन्तु साथ ही उसने यह भी दिखा दिया है कि उसी सामान्य समूह (Group) की अन्य कहानियाँ भी हैं जिनका असदिग्ध मूल पश्चिमी यूरोप और मध्ययुग है। इसने पूर्व से पश्चिम की ओर लोक-कहानियो की यात्रा पर भी बहुत प्रकाश डाला है तथा स्थानीय रूपों के विकास पर भी बहुत प्रकाश डाला है। उसने लोक-कहानियो के रचना-काल को अनिश्चित अनन्त मे से निकालकर निश्चित ऐतिहासिक काल मे पहुँचा दिया है।"

स्टिथ थामसन अमरीकी विद्वान हैं, इन्होंने आर्ने की प्रणाली को और आगे विकसित किया है। आर्ने के टेलटाइपो की ओर भी अधिक परिपूर्ण बनाया। पर, अन्त में वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि 'टेलटाइप' अथवा कथामानक भी मूल तन्तु अथवा तत्त्व नहीं, मूल तन्तु तो अभिप्राय या मोटिफ है, अत इन्होंने 'अभिप्राय-अनुक्रमणिका' (Motif Index) प्रस्तुत की। अभी तक तो पाश्चात्य

था, 'साइकालाजी ऑफ नेशन्स' मे इसने यह निष्कर्ष निकाला कि धर्म तथा काव्य के विविध विचार-विन्दु विशेष परिस्थितियो मे मनुष्य के मानस मे स्वप्न अथवा भ्रम दृश्यो (Hallucination) मे उत्पन्न हुए है।

ऐंथ्रापोलाजिकल सम्प्रदाय के इस मनोवैज्ञानिकवाद मे फ्रायड को भी स्थान दिया जायगा, जिसने अपने साइको-ऐनेलिसिस (मनोविश्लेपण) प्रणाली से यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि लोककथा के अभिप्रायो (motifs) का निर्माण दमित काम-भाव का ही परिणाम है। मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय सर्वत ग्राह्य नही हो सकता।

टोनावाद—इस नृवैज्ञानिक सम्प्रदाय मे जेम्स फ्रेजर[1] का नाम सबसे अधिक उल्लेखनीय है। 'गोल्डन वाउ' मे उसने टेलर-लैंग की भाति नृवैज्ञानिक मानवीय समानता का प्रतिपादन करके ऐनीमिज्म (भूतात्मतत्त्व) को भी माना है, पर उसने यह भी स्थापना की कि उससे पूर्व भी लोक-सस्कृति की एक स्थिति होती है जिसमें 'मैजिक' या टोनावाद का विशेष महत्त्व होता है, और इस मूल मैजिक भाव के साथ धार्मिक भाव भी सम्वद्ध रहता है।

ऐतिहासिक सम्प्रदाय—रूस मे इसी नृवैज्ञानिकवाद के साथ वी०ए० मिलर[2] (१८४८-१९१३) के उद्योगो मे से ऐतिहासिक सम्प्रदाय का जन्म हुआ। इस सम्प्रदाय ने रूसी लोक-साहित्य को उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से सम्वद्ध दिखाया और इतिहास और लोक-साहित्य के घनिष्ठ सम्बन्ध के सिद्धान्त को स्पष्ट किया। इस सम्प्रदाय के अध्ययन मे निम्न बातो पर ध्यान दिया जाता था कि लोकवार्ता साहित्य

१ कहाँ,
२ कव,
३ किन ऐतिहासिक तथ्यो पर,
४ किन काव्य स्रोतो के सहयोग से निर्मित हुआ है।

---

१ फ्रायड—सिगमण्ड फ्रायड ने मनोविश्लेषण विज्ञान (साइको एनालैसिस) की स्थापना की।

२ जेम्स फ्रेजर—सर जेम्स जार्ज फ्रेजर (१८५४-१९४१) स्कॉटिश नृविज्ञानी थे। ग्लासगो मे इनका जन्म हुआ था। १९०७ मे लिवरपूल विश्वविद्यालय मे नृविज्ञान अथवा ऐन्थ्रापोलाजी के प्रोफेसर नियुक्त हुए। १९१५ मे सर की उपाधि मिली। १८९७ मे इनका महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'दि गोल्डन वाउ' प्रकाशित हुआ। यह १२ खडो मे १९११-१९१५ मे परिवर्द्धन के साथ पुन प्रकाशित हुआ। इनके अन्य ग्रन्थ हैं—टॉटेमिज्म (१८८७), क्वश्चन्स ऑव दि कस्टम्स एण्ड विलीफ्स एण्ड लैंग्वेजेज ऑव सैवेजेज (१९०७)। टॉटेमिज्म एण्ड एक्सोगैमी (१९१०), दि विलिफ्स इन इमोर्टेलिटी एण्ड वरशिप ऑव डैड, तीन खड १९१३, १९२०, १९२४। फोकलोर इन ओल्ड टेस्टामेण्ट (१९१८), दि वरशिप ऑव नेचर (१९२६), मिथ्स ऑव दि आरिजिन ऑव फाइर (१९३०), दि फीयर ऑव दि डैड इन प्रिमीटिव रिलीजन (३ खड, १९३३, १९३४, १९३६)।

इस प्रकार लोकवार्ता साहित्य विषयक यह नृवैज्ञानिक सम्प्रदाय दूसरा प्रधान सम्प्रदाय है। इस सम्प्रदाय के विविध देशो मे अपने-अपने अनुकूल रूप ढले।

लोक-साहित्यवादी—इन दोनो सम्प्रदायो के अतिरिक्त एक सम्प्रदाय और माना जा सकता है। यह लोक-साहित्यवादी सम्प्रदाय है और अमरीकी लोकवार्ता क्षेत्रो मे आर्ने[1] टामसन सम्प्रदाय कहलाता है। इस सम्प्रदाय का दृष्टिकोण न तो लोक-साहित्य के साथ धर्म के प्रश्न को ग्रहण करता है, न मानव के आदिम मानस और स्वभाव को, वह लोक-साहित्य के रूप, अभिप्राय, उसके साम्य, पारस्परिक आदान-प्रदान आदि का अध्ययन करता है। यह उनके अतीत आदि मे प्रवेश करने

---

१ आर्ने, एट्टी—Antti Aarne (१८६७-१९२५) ये फिनलैण्ड के विद्वान थे। कार्ले क्रोह्न (Krohn) ने सबसे पहले जिस 'भौगोलिक-ऐतिहासिक लोकवार्तावाद' का आरम्भ किया था, उसमे ये भी उनके साथ नेतृत्व करने लगे थे। इन्होने 'टाइप्स ऑव दि फोकटेल्स इन वर्ल्ड लिटरेचर' नाम से कहानी विषयक जो अध्ययन प्रस्तुत किया वह आगे स्टिथ टामसन के सहयोग के साथ प्रस्तुत हुआ तो विश्व मे लोककहानी और वार्ता के अध्ययन की नयी नीव के रूप मे सर्वत्र गृहीत हुआ। लोक कथाओ के टाइप्स (मानक रूप) निर्धारित कर उनको विशेष सख्या दे दी गयी, इससे न केवल मानक-कथा रूपो का एक पूर्ण कोश ही प्रस्तुत हुआ वरन् ऐसी प्रतीक सख्याएँ भी निश्चित हो गयी जिनसे अध्ययन मे सन्दर्भ देना अत्यन्त सुविधाजनक हो गया। सन् १९१० के उपरान्त इसी आर्ने-प्रणाली मे विविध जातियो की कहानियो के मानक रूपो की सूचियाँ प्रकाशित हुई। आर्ने के गुरु कार्ले क्रोह्न ने ऐंटी आर्ने की इस देन पर अपना अभिमत यो प्रकट किया है—

"आर्ने ने जो अलग-अलग कहानियो का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया है, उनसे यह सिद्ध हो गया है कि किसी लोक कथा के स्थायी अशो को ही पृथक अभिप्राय (motif) मानना भूल है, इन अध्ययनो से आर्ने ने यह दिखा दिया है कि प्रत्येक पृथक कथा का अपना निजी कथानक (Plot) होता है और उसकी अपनी एकतानिष्ठ (Unified) रचना होती है जहाँ तक बहुत-सी लोककहानियो का सम्ब ध है, यही पहला व्यक्ति है जो विस्तारपूर्वक यह सिद्ध करने मे समर्थ हुआ है कि उनके भारतीय मूल के सम्बन्ध में बेन्फे का जो सिद्धान्त था वह सही था। किन्तु साथ ही उसने यह भी दिखा दिया है कि उसी सामान्य समूह (Group) की अन्य कहानियाँ भी हैं जिनका असदिग्ध मूल पश्चिमी यूरोप और मध्ययुग है। इसने पूर्व से पश्चिम की ओर लोक-कहानियो की यात्रा पर भी बहुत प्रकाश डाला है तथा स्थानीय रूपो के विकास पर भी बहुत प्रकाश डाला है। उसने लोक-कहानियो के रचना-काल को अनिश्चित अनन्त मे से निकालकर निश्चित ऐतिहासिक काल मे पहुँचा दिया है।"

स्टिथ थामसन अमरीकी विद्वान हैं, इन्होंने आर्ने की प्रणाली को और आगे विकसित किया है। आर्ने के टेलटाइपो की ओर भी अधिक परिपूर्ण बनाया। पर, अन्त में वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि 'टेलटाइप' अथवा कथामानक भी मूल तन्तु अथवा तत्त्व नही, मूल तन्तु तो अभिप्राय या मोटिफ हैं, अत इन्होंने 'अभिप्राय-अनुक्रमणिका' (Motif Index) प्रस्तुत की। अभी तक तो पाश्चात्य

की चेष्टा नही करता। इसकी स्थापना है कि प्रत्येक वार्ता का निजी इतिहास और विस्तार क्षेत्र होता है, अत प्रत्येक वार्ता का स्वतन्त्र रूप से पूर्णातिपूर्ण अध्ययन किया जाना चाहिए, उसके उपरान्त धर्म गाथा आदि मे उसका उपयोग किया जा सकता है।

ऐतिहासिक-भौगोलिक मार्ग या पद्धति

लोक-साहित्यवादी सम्प्रदाय को ऐतिहासिक-भौगोलिक मार्ग के अन्तर्गत रखा जा सकता है। इसे फिनीशियन स्कूल भी कहा जाता है। क्योंकि इसका आरम्भ पहले-पहल फिनलैण्ड मे ही हुआ था। बाद मे बाहर के देशो में विद्वानो ने भी इस पर लिखा है। पहले-पहल प्रोफेसर जूलियस[1] क्रोह्न (Juliuse Krohn) (१८६३-१९३३) ने इसका प्रतिपादन किया था। इन्होने इमी सिलसिले मे स्वीडिस साइडॉक्स तथा डेनिस ऐक्सेल आर्लिविक की सहायता से एक "इण्टरनेशनल फीडरेशन ऑव फोकलोरिस्ट्स (International federation of folklorists) की भी स्थापना की थी। इस सस्था के कार्य के बारे मे रशन फोकलोर (Russian folklore) मे इस प्रकार लिखा है—

"One of the main task of the federation was the study of the subjects of tales, and the determination of the starting point of the origin and geographic routes of their enffusion"

(इस सघ का मुख्य कार्य था कहानियो के विषयो का अध्ययन, उनके मूल के आरम्भिक स्थान का निर्णय तथा उनके फैलाव के भौगोलिक मार्गों का अनुसधान।)

क्षेत्र के कथा अभिप्रायो से विशेषत यह अनुक्रमणिका प्रस्तुत की गयी थी, अब आपने भारतीय अभिप्रायो पर भी विशेष कार्य प्रस्तुत किया है। इडियाना विश्वविद्यालय मे ये आज भी लोकवार्ता-गुरु के रूप मे निरन्तर काम कर रहे हैं। 'मोटिफ इडैक्स' इनका लोकवार्ता विज्ञान के अध्ययन मे दिशादर्शक प्रकाश स्तम्भ है।

१ जूलियस क्रोह्न (१८३५-१८८८) १८६२ मे ये हेलसिंकी विश्वविद्यालय से फिनीशियन भाषा और साहित्य के डोसेन्ट नियुक्त हुए। इन्होंने ही ऐतिहासिक भौगोलिक प्रणाली को चलाया। 'कलेवल' (Kalevala) नामक लोकगीत के अध्ययन मे इसी प्रणाली का उपयोग किया। कार्ल क्रोह्न (१८६३-१९३३) ये जूलियस क्रोह्न के पुत्र थे। १८८८ मे हेलसिंकी विश्वविद्यालय में फिनीशियन तथा तुलनात्मक लोकवार्ता के डोमेंट नियुक्त हुए। १८८१ मे विद्यार्थी जीवन मे ही इन्होंने लोक-कहानियाँ एकत्र की। १८८४-८५ मे इन्होंने आलोनेज और वार्मलैण्ड की यात्रा की जिसमे ये १८,००० लोकवार्ताएँ एकत्र कर लाये। इनमें ८००० तो लोक-कहानियाँ ही थी। इन्होने कहानियो के अध्ययन से ही अपनी विद्वत्तापूर्ण रचनाओ का आरम्भ किया। पिता के उपरान्त इन्होने भी 'कलेवल' महागीत पर पूर्ण अध्ययन किया। ऐतिहासिक-भौगोलिक पद्धति का इन्होंने और अधिक विकास किया। इन्होने अन्तर्राष्ट्रीय फोकलोर फैलोज (FF) नामक सस्था की स्थापना की। इनके प्रयत्न से हेलसिंकी लोकवार्ताविदो का तीर्थ बन गया।

इस सिद्धान्त का विशेष रूप से प्रतिपादन प्रोफेसर वी० एण्डरसन (V Anderson) तथा प्रोफेसर एल० पी० एण्ड्रयेव (L P Andreyev) ने किया। १९१३ में के० क्रोह्न (K Krohn) के शिष्य ऐंटी आर्ने (Antti-Arne) (१८६७-१९२५) ने कहानियो के तुलनात्मक अध्ययन के निर्देशक सिद्धान्तो (Guiding principles of the comparative study of tales) पर लिखा तथा के० क्रोह्न (Krohn) ने लोकवार्ता विज्ञान की कार्य प्रणाली (A working method of folkloristics) मे भी इस पर विस्तार से काम किया है। इस प्रणाली का उपयोग अवदानो (Legends), खेलो (games), बुझौवलो (Riddles) तथा गाथा गीतो (Ballads) आदि पर भी किया जाता है किन्तु विशेष रूप से लोक-कहानियो (Folk tales) के लिए ही यह प्रचलित है। इस स्कूल ने धर्मगाथा (Mythological) स्कूल का विरोध किया था। इनके मत से लोक-कहानियो (folk tales) का अपना इतिहास है उसके ही सन्दर्भ मे उसका अध्ययन होना चाहिए। कहानियो के अध्ययन के लिए इन्होने कई तरीके अपनाये—

(१) विभिन्न रूपान्तरो (Versions) का सग्रह करके उनके आधार पर सभावित मूल रूप का पता लगाना। (२) उन रूपान्तरो का विश्लेषण कर उनके उस रूप मे आने के और उनके विविध तत्वो के जन्म के समय और स्थान का पता लगाना। (३) समय और स्थानो के सहारे इनकी यात्रा तथा इनके प्रसार का पता लगाना और यह भी देखना कि इनमे कौन-से अभिप्राय (Motif) कब अस्तित्व मे आये, और कौन-से परिवर्तन, सवर्द्धन कब और कैसे हुए।

इस प्रणाली मे विभिन्न स्थानो पर पायी जाने वाली कहानियो के विभिन्न सस्करणो अथवा रूपान्तरो के द्वारा उनमे भौगोलिक स्थान का पता लगाकर उन्हे ऐतिहासिक क्रम में सजाकर उनका अध्ययन किया जाता है।

किन्तु इसमे दोष भी है कि इसने अनेक अगों का स्पर्श नही किया है जैसे शैलीगत अध्ययन (stylistic study), सामाजिक पृष्ठभूमि (Social background), व्यक्तिगत रूपान्तरो (Individual Versions) के साथ सम्बन्ध। इसमे केवल स्थानीय एव जनपदीय स्रोतो (Regional Sources) तक ही जाने की चेष्टा की गयी है।

इस प्रणाली मे यह आवश्यक है कि किसी कहानी के

(१) समस्त मौखिक रूपान्तरो को एकत्र करके उनको भौगोलिक क्रम मे लगा दिया जाये। इसके लिए अधिकाधिक रूपान्तर एकत्र करने की आवश्यकता है जिससे विविध रूपान्तरो के भौगोलिक वितरण या प्रसार का पूरा और यथार्थ चित्र प्रस्तुत हो सके।

(२) उस कहानी के जितने भी लिखित रूप मिलते हैं उन सबको ऐतिहासिक कालक्रम से लगा लिया जाय। इसके लिए भी यह अपेक्षित है कि यथासम्भव समस्त उपलब्ध लिखित प्रतियाँ सकलित कर ली गयी हों।

(३) अव वह उन तन्तुओ को छाँट लेता है जो काल और स्थान भेद से रूपान्तरो मे रूपान्तरित मिलते हैं, तथा उनको भी छाँट लेता है जो कुछ मे मिलते है और कुछ मे बिलकुल ही नही मिलते। स्पष्ट है कि इस विश्लेपण मे ऐसे तन्तु भी अलग हो जायेंगे जो सभी मे प्राय समान रूप से मिल जाते हो। ऐसे सभी विश्लेपित तन्तुओ की गणना कर पारस्परिक सम्वन्ध मे प्रतिशत भी विठा लेता है।

(४) इस विश्लेषण से प्राप्त अत्यन्त ही प्रमुख तत्त्वो को वह अलग कर लेता है और वह समझता है कि वे मूल कहानी की रूपरेखा से सम्वन्धित हैं।

(५) जो गौण तन्तु हैं उन्हे विश्लेपित और वर्गीकृत करके ऐसे उपरूपो (Subtypes) को वह वना लेता है जो भौगोलिक दृष्टि से विविध क्षेत्रो के कहे जा सकते हैं।

(६) उक्त क्षेत्रीय उपरूपो के सहारे तथा प्रमुख तन्तुओ को लेकर वह अव मूलस्थपित (Archtype) अथवा मूलकथा की रचना करता है।

(७) इस प्रकार उपरूपो और मूलस्थपित की कल्पना करके वह सग्रह मे प्राप्त रूपान्तरो से उनका सम्वन्ध दिखाता है। इस प्रक्रिया मे उसे ऐतिहासिक और भौगोलिक सामग्री का अधिकाधिक उपयोग करना पडता है, तभी यह विदित हो सकता है कि मूलस्थपित में कौन-से विकार कव हुए कि उपरूप खडे हो सके, और वे उपरूप जव अपने-अपने क्षेत्रो मे पहली वार पहुँचे तो कौन-कौन से विकार कव-कव उनमे हुए कि जिनसे ये विविध रूपान्तर वने।

(८) निश्चय ही उक्त प्रक्रिया मे इतिहास भूगोल की पूरी सहायता लेकर उसे विविध रूपो के प्रसार और यात्रा मार्ग का भी निर्देश करना पडता है, उन परम्पराओ और परिस्थितियो तथा पृष्ठभूमि को भी देखना होता है जिनसे वे विकार आये।

यहाँ तक उन सम्प्रदायो का उल्लेख किया गया है, जो विविध लोकवार्ताओ के स्रोतो पर प्रकाश डालते हैं। लोकवार्ता विज्ञान के कुछ सम्प्रदाय लोकवार्ता, विशेषत लोक-कहानियो की रचना के मूल पर प्रकाश डालने के प्रयत्न के कारण खडे हुए। लोक-कहानियाँ कैसे अस्तित्व मे आयी इसके कई सिद्धान्त इन सम्प्रदायो ने रखे। इस सम्वन्ध मे दो सम्प्रदाय विशेष उल्लेखनीय हैं रूपकतत्त्वीय सम्प्रदाय (Allegorical School) और है दूसरा इह्य ुमैरीय।

रूपकतत्त्वीय सम्प्रदाय

रूपकतत्त्वीय सम्प्रदाय ने वताया कि धर्मगाथाओ और सस्कृतियो मे आने वाले देवता गण किसी प्राकृतिक या दिव्य तत्त्व के रूपक मात्र हैं। इसी के अन्तर्गत प्रकृति प्रतीकवादी भी आते हैं। इस सम्प्रदाय के लोग मानते हैं कि पाश्चात्य धर्मगाथा मे पोसिडिन रूपक है जल का, हेरा वायु का, वलकन अग्नि का। भारत मे ऐसे ही विष्णु या राम सूर्य हैं, हनुमान वायु हैं आदि। लोक-कहानियो के विविध व्यापारों को भी प्रकृति के व्यापारो का प्रतीक माना जा सकता है। इन कहानियो मे नायक मर कर जी उठता है, यह जाडे और ग्रीष्म ऋतु के नाश और पुनरागमन का प्रतीक है।

लोक-कहानियो मे भावी श्वसुर जामाता को कई कठिन कार्य सौंपता है, उन्हे कर लेने के उपरान्त ही वह लडकी का विवाह करता है। यह धर्मगाथा मे सूर्य को पाताल यात्रा में आने वाले विविध सकटो का ही रूपक है। लोक-कहानियो के मूल को इस रूपक या प्रतीक सम्प्रदायवादियो ने सूर्य के व्यापार, चन्द्र के व्यापार, या आँधी-तूफान के व्यापारो के रूप मे दिखाने की चेष्टा की है। ऐह्रेनरीक (Ehrenreich), सेलेर (Seler), प्रिअस (Preuss) आदि ने सूर्य व्यापार के रूपको से कहानियो और धर्म-गाथाओ को बना माना, इसी प्रकार लाइस्टनर (Laistner) तथा सिईओक (Sieoke) प्रकृति के कुहरे या आंधी-तूफान के रूपको से उन्हें निर्मित माना है।

इह्य्मरीय (Euhemrist)

यह सम्प्रदाय इह्यूमरेस नामक व्यक्ति के नाम से चला। इस सम्प्रदाय के लोग यह मानते हैं कि प्रत्येक धर्मगाथा तथा लोककथा मे किसी न किसी ऐतिहासिक तथ्य को कल्पना मे लपेटकर तथा तोड-मरोडकर रखा जाता है। देवता किसी मृतराजा के स्थानापन्न हैं। बेनियर (Banier) तथा लेम्प्रीअर (Lempriere) इस सम्प्रदाय के प्रमुख पोषक हैं।

ये दोनो सम्प्रदाय फोकलोर विज्ञान की स्थापना से भी कितनी शताब्दियो पूर्व चल चुके थे, इस युग में बस इन्हे कुछ नया रूप दे दिया गया है।

इन दो प्रमुख सम्प्रदायो के अतिरिक्त भी अन्य सम्प्रदाय हैं, इनमे से **धर्म-गाथावादी सम्प्रदाय** पर प्रकाश ऊपर डाला जा चुका है। इनकी दृष्टि मे लोक कहानी का जन्म भाषा विकार से हुआ। मूलत यह सम्प्रदाय प्रतीकवादी सम्प्रदाय का ही सुधरा हुआ रूप है। नृवैज्ञानिको के सम्प्रदाय को **अवशेषवादी** (Survivalist) कहा जाता है। इनके अनुसार मूल लोककथा या धर्मगाथा आदिम मानवो मे बनी और उसके अवशेष इन कहानियो मे आज मिलते हैं। क्रोनस के लडको को खा जाने की धर्मगाथा आदिमो के किसी समय के उस व्यापार का अवशेष हैं जब पिता अपने पुत्रो को खा जाता था। आदि।

मनोविश्लेषणवादी भी रूपकतत्त्ववादी है। ये विविध लोककथाओ में धर्मगाथाओ को मनोविश्लेषण से दमित प्रवृत्तियों का रूपक मानते हैं, इसके लिए विविध तरीको को इन्होने निर्धारित कर लिया है जैसे अग्नि कुछ नही यौन प्रक्रिया का प्रतीक है, जल है जन्म का द्योतक, चाकू, सप आदि पुरुष लिंग का। इनकी दृष्टि में स्वप्नों से भी लोककथाओं का जन्म होता है।

मूल मानसवादी

लोकवार्ता, धर्मगाथा और लोककथा के अभिप्रायो के जन्म को मूलस्थापत (Archtype) के द्वारा आदि सृष्टि मूलक (Primordial) अथवा आदि मानव मूलक (Primal) प्रथम अनुभूतियो से उत्पन्न यह मूल मानसवादी मानते हैं। यह अवचेतन मानसवादियो के अनुसधान की नयी स्थापना है। विविध जातियो की धर्मगाथाओ मे लोककथाओ मे तथा लोकवार्ताओ में कुछ समान बातें बार-बार आती हैं, वे भौगो-

लिक विस्तार के सर्वेक्षण मे तथा प्राग् ऐतिहासिक काल से आज तक के ऐतिहासिक अध्ययन मे प्राय बार-बार मिलती हैं। वे इस प्रकार क्यो बार-बार मानव मन मे उभरकर उनको साहित्य तथा कला विषयक विविध कृतियो मे अभिव्यक्त होती हैं इसका समाधान दमित, उपार्जित, ऐतिहासिक मनोविश्लेषण से नही मिलता। स्पष्ट है कि उनका समाधान अवचेतन के बहुत निचले गहरे भाग मे है, और यह महत भाग प्रत्येक मानव के पास समान है, अत वह आदि सृष्टि या आदि मानव की प्रथम अनुभूतियो का ही दाय हो सकता है। जुग ने इस सिद्धान्त का भली प्रकार प्रतिपादन किया है। ऊपर एक अध्याय मे लोक-मानस के इस पहलू पर प्रकाश डाला जा चुका है।

हेतुकथावादी (Aetiological School)

यह सम्प्रदाय मानता है कि लोककथाएँ और धर्मकथाएँ मूलत हेतुकथाएँ हैं। किसी व्यापार की व्याख्या करने के लिए हेतुकथाओ का जन्म हुआ है। मनुष्य ने इस पदार्थ जगत को देखा और उसने उसके व्यापारो को मनुष्यो और पशु के व्यापारो मे ढालकर समझना-समझाना चाहा, इसी प्रयत्न मे उसे उन व्यास्याओ को कथा का जैसा रूप देना पडा। इस सम्प्रदाय की दृष्टि से बहुत-सी लोक कथाओ मे हेतु-व्याख्या वाला अश रहता है और वही सबसे महत्त्वपूर्ण अश होता है। दह्नहार्ट (Dahnhardt) ने लोककथाओ का हेतुवाद के लिए उपयोग किया, राइबर्स (Ribers) इसका प्रबल पोषक था, उसने यह भी बताया कि हेतुवादी अश से हम तत्कालीन सास्कृतिक मानसिकता को भी समझ सकते हैं। यह सिद्धान्त वाटरमैन के विरोध से दुर्बल हो गया।

व्यक्तिवादी तथा लोकवादी

पर सबसे प्रधान प्रश्न तो यह था कि इन वार्ताओ का निर्माण किसने किया? किसी प्रतिभावान व्यक्ति ने अथवा लोक ने। इस सम्बन्ध मे भी दो सम्प्रदाय खडे हो गये। एक का कहना था कि सामान्य लोक मे कुछ भी निर्माण करने की क्षमता नही होती। लोक तो उतरनो को ही ग्रहण करके अपना कार्य पूरा करता है। सामान्य लोक मे किसी समय जो पोशाकें अथवा फेशनें या अन्य रिवाज प्रचलित होते हैं, वे उन्हे उनसे पूर्व के आभिजात्य वर्ग के प्रचलित सस्कारो से मिलते है। लोक उन पुरानी चीजो से चिपका रह जाता है, आभिजात्यवर्ग नव-नव प्रतिभा से नयी-नयी उद्भावनाएँ करता है और उन्नति करता चला जाता है। इस वाद का प्रमुख पोषक हैन्स नउमन्न (Hane Naumann) हैं। इनके मत मे साधारण लोक नवनिर्माण नही कर सकता, पुनर्निर्माण (re-create) कर सकता है। उच्चवर्ग द्वारा निर्मित तत्त्वो को वे अपने अनुकूल ढाल सकते हैं, और दीर्घकाल तक उससे चिपके रह सकते हैं। निर्माता वर्ग पुरानी चीजों को छोडकर नये निर्माण करता चला जाता है। उधर जे०जी० हरडर जैसे व्यक्ति लोक की उद्भाविनी शक्ति मे विश्वास करते हैं। इसी लोक मे से उद्भावनाओ को ग्रहण कर व्यक्तिनिष्ठ प्रतिभाएँ कला में नव-नव चमत्कार दिखाती चलती हैं। लोक की प्रतिभा सहज निर्माणशील होती है, यही कारण है कि लोकवार्ता की परम्परा दृढ रखते हुए भी नव-नव उन्भेपो से सदा युक्त रही है।

पाँचवाँ अध्याय

लोक-साहित्य के भेद

विश्व लोकवार्ता के भेद

विश्व लोकवार्ता के अन्तर्गत वह समस्त लोकाभिव्यक्ति आती है, जिसमे लोक-मानस अपने मौलिक प्रयोगो के साथ अपने उत्तराधिकरण को भी प्रस्तुत करता है इसी कारण लोकवार्ता के अध्ययन की दो प्रमुख दिशाएँ हो जाती हैं एक लोक-वार्ता का ऐतिहासिक अध्ययन और दूसरा वतमान लोकवार्ता का विवरणात्मक अध्ययन। ऐतिहासिक लोकवार्ता के अन्तर्गत लोकाभिव्यक्ति की वह समस्त सम्पत्ति आती है जो साहित्य-कला-कौशल मे इतिहास की साक्षी के रूप मे बिखरी हुई है, जैसे प्राचीन से प्राचीन चित्र[1] विशेषत मिट्टी की मूर्तियाँ (teracottas),[2] प्राचीन लिखित अथवा मौखिक लोक-मानस का परम्परा-साहित्य[3], स्थापत्य, स्थापत्यो मे उत्कीण

---

[1] प्राचीन चित्र फ्रास तथा स्पेन की गुफाओ मे दीवारो पर उत्कीर्ण मिले हैं। इन चित्रो का लोकवार्ता से गम्भीर सम्बन्ध है, क्योकि श्री डब्ल्यू० जे० पैरी के मतानुसार, "It seems probable that this art was concerned with the food supply, that the representation of an animal desired for food helped in some way, in its capture, (The Growth of Civilization, p 27, 1937) अधिक सम्भावना यह है कि मूल कला का सम्बन्ध भोजन-उपलब्धि से था, कि भोजन के लिए इच्छित पशु का रेखाकन उसके पकडने मे किसी न किसी प्रकार से सहायक था।

[2] "These people (of the Aurigracian stage of culture) also practised sculpture depicting boars and other animals that they chased, but in addition, they made sculpture of feminine form, with the material parts grossly exaggerated" (वही पृष्ठ २८) स्त्रियो के अगो का यह विशदीकरण निश्चय ही किसी टोने से सम्बन्ध रखता है, केवल कला सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिए नही हो सकता।

[3] प्राचीन साहित्य मे अधिकाश लोकवार्ता ही होती है, क्योकि वह लोक-मानस के स्तर से उत्पन्न भावो को ही व्यक्त करता है।

अभिप्राय, उनके प्रसग[1] (Motif) प्राचीन आभूषण, अस्त्र-शस्त्र, अन्तर की वस्तुएँ कौडियाँ, सीपें[2] परम्परानुगत नाट्य तथा नृत्य आदि।

वर्तमान लोकवार्ता के अन्तर्गत इसी प्रकार की वह समस्त अभिव्यक्ति आती है जो आज उक्त रूपो मे विविध क्षेत्रो मे विद्यमान मिलती है, फलत इसे हम निम्न फलक से समझ सकते हैं।
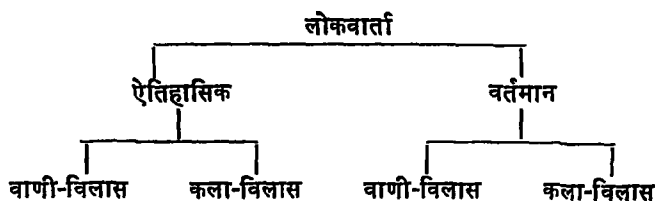
यहाँ यह बात ध्यान मे अवश्य रहनी चाहिए कि लोकवार्ता की अभिव्यक्ति मे कला केवल किसी सौन्दर्यानुभूति मात्र का प्रकाशन नही, लोकवार्ता की कला का जन-जीवन और उसके विश्वासो से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। लोकवार्ता सम्बन्धी कोई भी चित्र मनोरजन के लिए अथवा शोभा-सज्जा के लिए नही अकित किया जाता, वह समस्त अनुष्ठान का एक अग होता है, जिसमे धर्म, तन्त्र, मन्त्र और टोने का अद्भुत मेल रहता है। प्राचीनतम चित्राकन मे जो अभिप्राय आज हमारे अनुसधान से सिद्ध होता है, वैसा ही अभिप्राय आज के लोकवार्ता के चित्राकनो मे मिलता है। यद्यपि इनमे व्याप्त भाव उतने वस्तु-परक नही रहे जितने भाव-परक हो गये हैं, भाव भी अत्यन्त स्थूल, जैसे कल्याण-सकट से रक्षा, समृद्धि आदि। पुरातन गुफा निवासी पशुओ के चित्र बनाकर चित्र के टोने से उन पशुओ को हस्तगत करने की युक्ति रचता था। आधुनिक लोक परम्परा मे जब कोई चित्र प्रस्तुत किया जाता है तो वह सम्पूर्ण अनुष्ठान का अग होता है और समस्त अनुष्ठान के अभिप्राय के अनुकूल होता।[3] लोकवार्ता के कला-विलास का क्षेत्र तो बहुत व्यापक है। वाणी की

---

१ प्रत्येक स्थापत्य और उसमे उत्कीर्ण अभिप्राय तथा प्रसग मे लोक-मानस का कोई न कोई विश्वास सलग्न अवश्य रहता है।

२ मेनटोन के निकट एक गुफा में Cassis rufa shells प्राप्त हुए यह निश्चय ही हिन्द महासागर से लायी गयी होगी। इस पर यह टिप्पणी ठीक ही प्रतीत होती है —"These shells are eloquent witnesses to intercourse of some sort or other in those far off days between widely separated parts of the earth, Elliot Smith has shown, in his work on the Evolution of Dragon, why shells were so valued in such remote ages, they were supposed to have life giving powers" इससे इनका ऐतिहासिक ही नही लोकवार्ता सम्बन्धी महत्त्व स्पष्ट हो जाता है।

3 इसका एक उदाहरण ऊपर दीपावली के विवरण मे आ चुका है। दीपावली पर जो भित्ति-चित्र बनाया जाता है, उसमे वे सभी अभिप्राय अकित रहते हैं जो

अभिव्यक्ति के रूपो के अतिरिक्त शेष समस्त लोकोद्योग इसी के अन्तर्गत आते हैं जिन्हें यो विभाजित किया जा सकता है
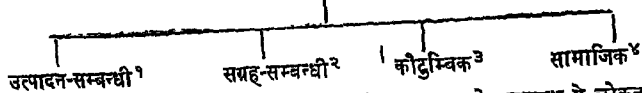
लोक-जीवन मे प्रत्येक कार्य और प्रत्येक आचार के सम्बन्ध मे लोकवार्ता मिलती है। उत्पादन विषयक लोकवार्ताएँ तो अत्यधिक मिलती है। वस्तुत तो मनुष्य के समस्त उद्योगो की दो ही दिशाएँ होती हैं। उत्पादन और उपभोग। सग्रह भी मूलत उत्पादन का ही अग है। आधुनिक अर्थशास्त्र मे तो यह निर्विवाद उत्पादन के ही अन्तर्गत है। उत्पादन का उपभोग एक महान कर्म है। लोक-जीवन मे उसे आवश्यक महानता प्रदान की गयी है। उपभोग को सदा उत्सव से सलग्न कर दिया गया है।

सग्रह करते समय उसकी सुरक्षा और उसकी दीर्घकालीन उपयोगिता का दृष्टिकोण साथ रहता है। किन्तु उससे पूर्व भी सग्रह मे लायी जाने वाली वस्तुओ के प्रति भी एक विशेष आदिम-भाव रहता है, जो ऐनीमिज्म, ऐनीमेटिज्म अथवा 'मन' जैसे विश्वासों से सयुक्त रहता है, अथवा टाटेम (तत्वम) अथवा टैबू (वर्जना) के क्षेत्रो से सम्बन्ध रखता है। या इनमे से किसी का अवशेष ही होता है, और इन सबके उचित समाधान के लिए कुछ विशेष प्रक्रियाएँ तथा अनुष्ठान आवश्यक हो जाते हैं। ये सभी बातें सग्रह सम्बन्धी लोकवार्ता मे आती हैं।

अनुष्ठान के अन्तर्गत सम्मिलित रहते हैं। वह चित्र दीपावली के समस्त अनुष्ठान का एक आवश्यक अग है।

१ खेती करने से पूर्व हल, बैल तथा भूमि की पूजा तो आज भी इस लोकवार्ता का अग है। प्राचीनकाल मे मनुष्य की बलि तक दी जाती थी। सतान प्राप्त करने के लिए न जाने कितने टोने-टमन्ने किये जाते हैं। ये सभी उत्पादन विषयक कला विलास के अन्तर्गत आयेंगे। हल पूजने का अनुष्ठान हरपूजी कहलाता है और सावन तथा कार्तिक मे होता है।

२ सग्रह सम्बन्धी अनुष्ठान तो पहली कटाई से ही आरम्भ हो जाता है, इसे 'अर्वन' कहते हैं। इसी के अन्तर्गत बढावन, चौंक या छत्तुर भी कहते हैं। बढावन के सम्बन्ध मे हेनरी एम० ईलियट महोदय ने लिखा है कि
"A round cake of cowdung placed on the top of a heap of corn to prevent the effects of an evil eye and for good luck"

३ कौटुम्बिक कला विलास तो प्रत्यक्ष दिखायी पडते हैं। पुत्र जन्म पर विविध चीतने, नृत्य, गीत, पूजन। इसी प्रकार विवाह, मृत्यु आदि पर।

४ सामाजिक का सम्बन्ध सामूहिक उत्सव मेलो से ही नही उन सामूहिक आनुष्ठानिक कला कौशलो से भी है जो पशुओ या खेतो मे किसी छूत के रोग के समय किये जाते हैं, त्यौहारो पर भी सामूहिक नृत्य होते हैं जैसे होली पर।

इसी प्रकार सग्रहीत वस्तु के उपयोग के साथ भी अनेक प्रकार के अनुष्ठान किये जाते हैं। इन अनुष्ठानो मे से कुछ तो सामान्यत निजी रूप मे सपादित किये जाते हैं, और कुछ सामूहिक हो जाते हैं। सामूहिक अनुष्ठानो मे ही उत्सवो का मूल होता है।

उत्पादन का कार्य भी विशेष अनुष्ठानो से युक्त रहता है। यहाँ भय और आशकाएँ बहुत रहती हैं। उत्पादन के लिए कोई श्रम या प्रक्रिया करना एक बात है, उसका फल प्राप्त होना दूसरी बात है। फल किसी अन्य के द्वारा मिलता है, इस भाव से उत्पादन की समस्त प्रक्रिया ही एक प्रकार से टोने की प्रक्रिया का रूप ले लेती है।

उत्पादन और सग्रह तो वस्तु-पदार्थ विषयक होता है। ये जैसे मनुष्य के विधेय हैं। किन्तु इनके अतिरिक्त मनुष्य का सम्बन्ध जहाँ खडा होता है, वहाँ भी विशिष्ट लोकवार्ता जन्म लेती है। ऐसे सम्बन्ध का पहला रूप कौटुम्बिक है। पुरुष-स्त्री > यौन-आकर्षण पति-पत्नित्व>यौन-सयोग>सह-वास-सहकार>सतान-जन्म> मातृत्व-पितृत्व>पोषण-रक्षण=कुटुम्ब। इस कुटुम्ब में प्रत्येक प्रक्रिया और स्थिति के लिए कुछ विशेष आनुष्ठानिक प्रक्रियाएँ होने लगती हैं। कुटुम्ब-कुटुम्ब मिलते हैं, अथवा मानव-समूह मिलकर विविध सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करते हैं तो सामाजिक सस्कृति का जन्म होता है। इस सामूहिक स्थिति का अपनी एक विशेष प्रकार की जीवन-यात्रा होती है, जिसे परिस्थितियो से, प्रकृति से, अपने ही कौटुम्बिक अवयवो से, वाहरी दलो से सघर्ष करना पडता है। इन सब के साथ एक लोकवार्ता और अनुष्ठान प्रस्तुत हो जाता है।

इन विषयो से सम्बन्धित लोकवार्ता-अनुष्ठानो का रूप त्रिविध हो सकता है।
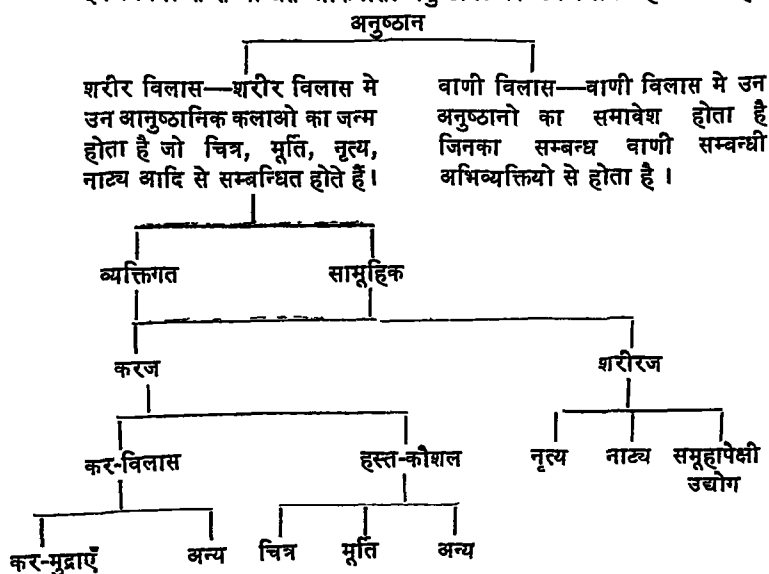
वाणी-विलास भी जीवन से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है और उत्पादन तथा उपभोग से और कुटुम्ब तथा समाज से निरन्तर लिपटा रहता है, फिर भी इसके कई रूप मिलते हैं, वे इस प्रकार हैं—

---
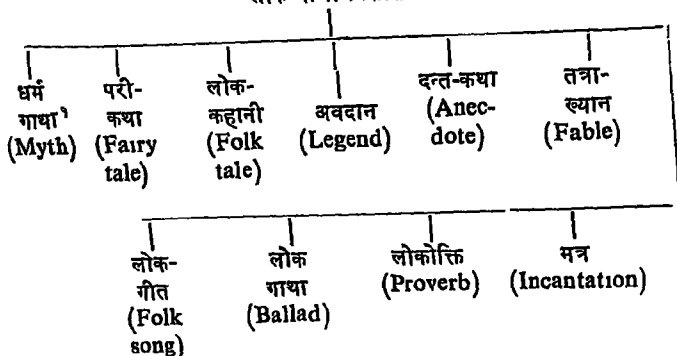
१ लेवीज स्पेन्स (Lewes Spence) ने इनमे से कुछ रूपो की व्याख्या की है जिनमे से लोकगाथा पर सक्षेप मे यहाँ दिया जाता है

धमगाथा—यह किसी देवता अथवा पराप्राकृत सत्ता का एक विवरण होता है, इसे साधारणत आदिम-विचारो की शैली मे लाक्षणिकता से अभिव्यक्त किया जाता है, यह वह प्रयत्न है जिसके द्वारा मनुष्य का विश्व से सम्बन्ध समझाया जाता है, और जो इसे दुहराते हैं, उनके लिए मुख्यत धार्मिक महत्त्व रखता है, अथवा इसका जन्म किसी सामाजिक सस्था, रीति-रिवाज, अथवा परिस्थितियो की किसी विशेपता की व्याख्या करने के निमित्त होता है, इस परिभाषा के अनुसार धर्मगाथा मे

१ देवता अथवा पराप्राकृतिक शक्ति का विवरण होता है।

२ इसमे आदिम-मानस विद्यमान रहता है।

३ इसका धार्मिक महत्त्व होता है। इसे जो दुहराता है या पढता है वह किसी धर्म लाभ की आकाक्षा रखता है।

४. इसके निर्माण के दो प्रमुख कारण हो सकते हैं।

(१) मनुष्य की सृष्टि के साथ के विविध सम्बन्ध की व्याख्या करने के लिए, अथवा (२) किसी सामाजिक सस्था, प्रथा आदि की व्याख्या करने के लिए। इसे और स्पष्ट करते हुए कहा जा सकता है कि धर्मगाथा यह बताती है कि आदम नाम के मनुष्य की पसली से हव्वा का जन्म हुआ। पशु अथवा पदार्थ कैसे उत्पन्न हुए? किसी प्राणी मे विशेपताएँ क्यो हैं? कौवे के एक आँख क्यो हैं? विशेप प्राकृतिक व्यापार क्यो होता है? चन्द्र को राहु ग्रसता है, अत चन्द्र ग्रहण होता है। [देखिए स्टैंडर्ड डिक्सनरी ऑव फोकलोर आदि]

लोक-वाणी विलास के इन रूपो को पहले हम तीन प्रकार का मान सकते हैं।
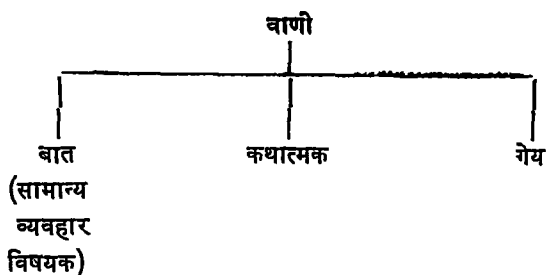
सामान्य व्यावहारिक वार्तालाप की कला के आदिम विकास मे विविध अन्य तत्वो के समावेश से वाणी-विलास मे कई विशिष्ट प्रकारो का जन्म हुआ।
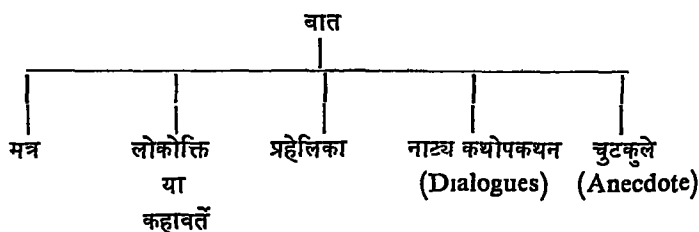
थोडा गम्भीरतापूर्वक देखा जाय तो प्रहेलिका और चुटकुलो को भी लोकोक्तियो के अन्तर्गत रख सकते हैं। 'मत्र' के वर्गीकरण का प्रश्न भी कुछ जटिल है। उसे गेय नही कहा जा सकता। कथा वह है नही। बात के सामान्य व्यवहार के क्षेत्र मे वह नही आ सकता।

कथात्मक वाणी विलास का जन्म अलग-अलग प्रेरणाओ से पृथक-पृथक रूप मे हुआ।
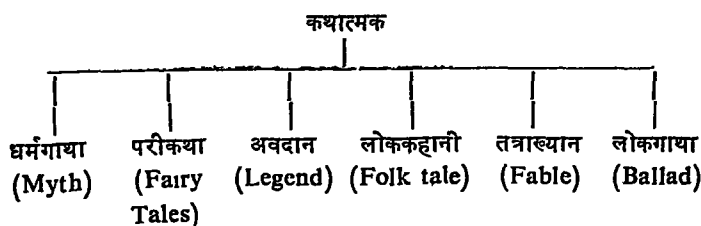
वार्तालाप तथा कथात्मक प्रकार सामाजिक-मूल से सम्बन्धित है। 'गेय' का सम्बन्ध द्विविध प्रवृत्ति से है। यह वैयक्तिक भी होती है और सामाजिक भी।

इसी प्रवृत्ति के अन्तर्गत अर्द्धगेय अथवा 'पाठ्य' रूप का विकास भी होता है।

गेय

गेय का हमें कई प्रकार से विभाजन करना होगा
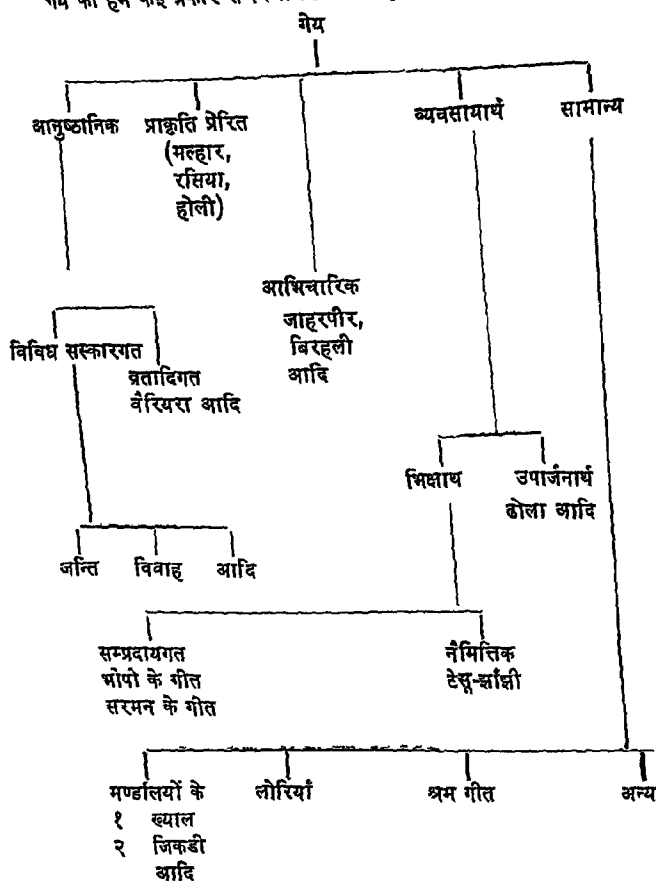
आनुष्ठानिक गीत (रिचुअल) अनुष्ठानो से सम्बन्धित रहते हैं। किसी विशेष अनुष्ठान पर इनका गाना अनिवार्य माना जाता है।

प्रकृति प्रेरित गीतो का सम्बन्ध ऋतुओ और महीनो तथा विशेष उत्सव-त्यौहारो की उमग और उल्लास के गीतो से होता है।

आभिचारिक गीतो का सम्बन्ध किसी बडे देवी-देवता या सर्प आदि को बुलाने तथा खोरादि उतारने के उपक्रम से होता है।

व्यवसायार्थ गीत पैसा कमाने के लिए गाये जाते हैं।

शेष गीतो को सामान्य का शीर्षक दिया गया है।

इन गीतो मे से कुछ केवल स्त्रियो द्वारा गाये जाते हैं, कुछ पुरुषो द्वारा, कुछ दोनो द्वारा मिलकर। कुछ गीत बालक-बालिकाओ के होते हैं, कुछ गीत एक व्यक्ति के द्वारा ही गाये जाते हैं, कुछ सामान्य समूह द्वारा, कुछ आयोजित मडलियो द्वारा, कुछ विशेष सम्प्रदाय के भिक्षार्थियो द्वारा, कुछ विशिष्ट वर्गो द्वारा या जातियो द्वारा। कुछ गीत टोने के अभिप्राय से युक्त रहते है, कुछ मन्त्रो का भी काम करते हैं, कुछ गीत कथा-कहानी युक्त होते हैं, कुछ सामान्य विवरणात्मक।

पाठ्य

अर्द्धगेय या पाठ्य लोक साहित्य का एक भेद और किया जा सकता है। इनका विभाजन इस प्रकार हो सकता है—
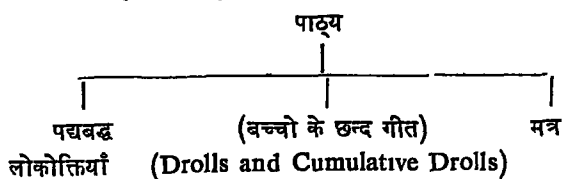
लोक-साहित्य ही हमारे अध्ययन का विषय है। उसी के शास्त्र और विज्ञान पर हम विचार कर रहे है। उसके जो सामान्य भेद ऊपर बताये गये हैं, उन पर सैद्धान्तिक दृष्टि से आगे विस्तृत प्रकाश डाला जायेगा।

छठा अध्याय

लोक-साहित्य संकलन

अब यह स्पष्ट हो जाता है कि (१) क्षितिजीय तथा (२) तलगामी दोनो प्रकार से सामग्री सकलन और अध्ययन के लिए क्षेत्रीय कार्य करना होगा।

क्षितिजीय कार्य मे भौगोलिक सीमाओ मे होकर जाना होगा। तलगामी मे एक ही क्षेत्र तथा एक ही समुदाय मे मिलने वाली विविध अभिव्यक्तियो को सम्पूर्ण-रूपेण एकत्रित कर उनको स्तर-स्तर क्रम से प्रस्तुत करना होगा।

आज लोक-साहित्य के क्षेत्र के सम्बन्ध मे केवल यह धारणा अपूर्ण है कि वह उन जातियो से ही सम्बन्धित है जिन्हें किसी कारण आदिम जातियाँ कहा जाता है। लोक-साहित्य के लिए सभ्य से सभ्य नगर भी एक अनुसधान का क्षेत्र हो सकता है। वस्तुत अब तो नगरों मे लोक-साहित्य सम्बन्धी अध्ययन और अनुसधान विशेष आवश्यक हो गया है क्योकि नगरो मे विद्यमान लोकवार्ता-परम्परा मे ही जल्दी-जल्दी परिवर्तन की आशका रहती है। अत नगरो की उपेक्षा से भी लोकवार्ता की बहुत महत्त्वपूर्ण सामग्री लुप्त हो सकती है। यो अब गाँवो मे रेडियो के प्रचार से वहाँ भी जल्दी-जल्दी परिवर्तनो की आशका उत्पन्न हो गयी है।

लोक-साहित्य को यदि लोक-साहित्य के महत्त्व के कारण ही लेना हो तब भी सभ्य नागरिक क्षेत्र मे ऐसे साहित्य की सत्ता स्वय ही एक अध्ययन की चीज है। निश्चय ही उसमे आदिम जातियो के तत्त्वो की कुछ अनुकूलता भी होगी और कुछ लोक-मानस के स्रोत से उद्भूत होने के कारण तत्त्व उनसे भिन्न होते हुए भी उनकी कोटि से बाहर नही हो सकेंगे।

लोकवार्ता की दृष्टि से भी विकसित समाज मे लोक-साहित्य की सत्ता नृवैज्ञानिक और समाजशास्त्रीय महत्त्व रखती है। लोक-मानस, जन-मानस और मनीषी-मानस के पारस्परिक सम्बन्ध, क्रिया-प्रतिक्रिया और सघर्ष का स्वरूप इनमे प्रतिनिधित्व मिल सकता है। एक ही समुदाय मे विविध मानस-स्तरो की अभिव्यक्ति क्यो और कैसी है, यह साहित्यिक रसास्वाद और सौन्दर्य-दर्शन के लिए भी आवश्यक है, जितनी कि यह सामाजिक जटिलताओ को समझने के लिए है।

अत यह निर्विवाद है कि लोक-साहित्य का क्षेत्र प्रत्येक समाज और समुदाय मे है, और प्रत्येक क्षेत्र से उसका सग्रह-सकलन होना चाहिए।

क्षेत्रीय कार्य का महत्त्व

लोकवार्ता से जो किंचित भी परिचित है, वह यह भली प्रकार जानता है कि यह विषय अपनी वैज्ञानिकता की दृष्टि से समस्त विश्व की वार्ता से घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है, और आज प्राय विश्व के सभी देशो मे लोकवार्ता सग्रह, सकलन, अध्ययन तथा अध्यापन हो रहा है। अत लोकवार्ता के सकलन सग्रह मे प्राप्त सामग्री का उपयोग विश्वभर के लोकवार्ताविद् कर सकते है, पर यह तभी हो सकता है जब ऐसी विधियो का उपयोग किया जाय जिससे वह सबके काम आ सके। इसलिए सकलन-सग्रह के कार्य मे सावधानी और विधियों का बहुत महत्त्व हो जाता है।

लोक-साहित्य   न में कठिनाइयाँ

लोक-साहित्य सकलन का कार्य आसान नही। कुछ तो यह कार्य स्वभावत ही कठिन है, क्योकि लोक-साहित्य के सकलन का कार्य जिस क्षेत्र से करना है वह मानवीय क्षेत्र है। हस्तलिखित ग्रथो की खोज भी कठिन है पर ग्रथ पा जाने पर उसकी सामग्री को ग्रहण, अपनी सुविधा से किया जा सकता है किन्तु लोक-साहित्य के लिए हमे उस मनुष्य की सुविधा देखनी पडेगी जो हमे वह साहित्य सुनाने वाला है, यो वह मनुष्य भी लगातार बहुत समय तक आपको अपनी याद की हुई वस्तु नही सुनाता रह सकता। उसे बहुत-से काम करने हो सकते हैं, वह सुनाते-सुनाते थक सकता है और ऊब सकता है। हस्तलिखित ग्रन्थ की सामग्री पन्ने पलटने से मिलती जाती है, पर लोक-साहित्य पाने के लिए गायक या वक्ता की प्रसन्नता का हर समय ध्यान रखना पडता है, वह यदि असन्तुष्ट भी हो गया तो यह साहित्य नही प्राप्त हो सकेगा। फिर गीत और कहानी सुनाते चले जाने मे तो गायक और वक्ता को विशेष परेशानी नही होती पर उसे आप लिखते नही जा सकते, यदि आप गायक को धीरे-धीरे लिखाते चलने के लिए कहेंगे तो वह जिस रूप मे उसे लिखायेगा उससे उसके प्राण तो निकल ही जायेंगे। यह भी हो सकता है कि धीरे-धीरे लिखाने मे वह बीच-बीच मे भूल भी जाये।[1] इन आन्तरिक कठिनाइयो के साथ और भी कितनी ही कठिनाइयाँ हैं।

इनका कुछ परिचय भुक्तभोगियो के विवरणो से पाया जा सकता है। प० रामनरेश त्रिपाठी जी ने लिखा है—

"गीत सग्रह करने मे मुझे जो-जो तकलीफें भोगनी पडी है, मेरा शरीर और मन उनके लिए असमर्थ था। केवल गीतो के लिए सच्ची लगन ही मुझे उन तकलीफो से पार लगाने मे समर्थ हुई है।

---

१ श्री रामनरेश त्रिपाठी जी ने बताया है कि "स्त्रियाँ गीत बोलकर लिखा ही नही सकती। बोलकर लिखाते समय उनको गीत याद ही नही आते। • • कभी-कभी तो एक-एक गीत के लिए पूरा एक दिन लग गया है, फिर भी शाम होने तक उसकी एक-दो कडियाँ सदिग्ध ही थी।"

जरा ध्यान मे यह दृश्य देखिए तो—सावन का महीना है। घटा घिरी हुई है। कभी झीसे पड रहे हैं। कभी लहरे पर लहरे आ रहे हैं। पुरवा हवा के झोके चल रहे हैं। धान के खेत मे घुटने तक पानी मे खडी चमारिनें खेत मे लगे हुए घास-पात को खोटकर-नोचकर निकाल रही हैं। वे गा भी रही है। शरीर तो उनका धान के खेत मे काम कर रहा है, और मन गीत की दुनिया मे है। मै धान के मेड पर बैठा गीत सुनता जाता हूँ और लिखता जाता हूँ। जिन्होने धान के मेड देखे होगे, वे समझ सकते हैं कि धान के मेड पर बैठना तलवार की धार पर बैठने के समान है। किसानो की अजीब आदत होती है—वे हर साल मेड को काटते रहते है। काटते-काटते मेड इतने पतले हो जाते हैं कि उन पर पैर रखकर चलना कठिन हो जाता है। बैठना तो असम्भव ही समझिए। धान के मेडो से तो ईश्वर ही बचावे। क्योकि तलवार की धार की तरह पतलें मेड के दोनो ओर के खेत लबालब पानी से भरे रहते हैं। जरा-सी दृष्टि चूकी, या ध्यान बटा कि धडाम से पानी और कीचड के अन्दर। कितनी ही बार मैं इस विपत्ति को भोग चुका हूँ।

कई बार सुबह से लेकर दोपहर तक बरसते हुए पानी मे, छाते के नीचे खडे-खडे मैंने चमारिनो के गीत सुने और लिखे हैं। कही बैठने की जगह ही नही मिली।

जो गीत मैंने चमारिनो के घर जाकर लिखे हैं, उनके लिखने मे मुझे अपने मन को बडी कडी परीक्षा मे बैठाना पडा है। ध्यान से देखिए—गाँव से बिलकुल बाहर चमार का घर है, जिसकी दीवारें लोनी से गल गयी हैं। दीवारो के अन्दर ककड खीस काढे हैं। दीवारो में सैकडो दरारें, छेद, बिल और गुफाएँ है, जिनमे छिपकलियो, मकडियो, चींटियो, चूहो, झीगुरों के सैकडो परिवार निवास कर रहे हैं। दीवारो पर बीसो स्थान से फटा हुआ, सहस्रों नेत्रो वाला एक सडा-गला छप्पर रखा है। एक ही घर है। उसी मे खाना भी पकता है, उसी मे चक्की भी है, उसी मे सैकडो स्थानो पर सिले हुए मैले-कुचैले कपडे भी पडे हैं। घर में छोटा बच्चा है तो एक किनारे उसका पाखाना भी पडा है। चमार-चमारिन को पेट के धन्धे ही से फ़ुरसत नही मिलती, पाखाना कौन उठाता ? एक किनारे महुवा, सावा या धान पडा हुआ है। यही उनका आहार है। एक तरफ़ घास की चटाई लपेटी रखी है, जिसे घर के लोग जाडे मे ओढते हैं और बरसात मे बिछाते हैं। गरमी मे ओढने-बिछाने की ज्यादा जरूरत ही नही पडती। जमीन पर सो गये, आसमान ओढ लिया किसी तरह रात कट गयी। झोपडी के आसपास सूअर और उनके छौने घूम रहे हैं। छौने कभी-कभी घर के अन्दर भी घुस जाते हैं। घर के आसपास खेत हैं, जो सूअर के गू से भरे हुए हैं। पानी बरस जाने से गू सडकर जमीन पर फैल रहा है। उसकी बू से लवेंडर सूँघने वाली शहर की नाक फटी जा रही है। एक किनारे चूल्हे पर मरी हुई गाय का माँस पक रहा है। मैं उसी झोपडे के द्वार पर दीवार से पीठ टेके, रूमाल पर बैठा हुआ, एक साठ बरस की बुड्ढी चमारिन से गीत लिख रहा हूँ। बुड्ढी की धोती मे जुलाहे से अधिक सीने वाले को मेहनत करनी पडी है। वह उसी धोती को कई बरस से पहन रही है

और एक ही धोती होने के कारण वह धोती धो भी नही सकती और नहाती भी कम है। इससे उसके शरीर और धोती की वदवू नाक-भौ को सिकोडने के लिए काफी है। बताइये, ऐसे स्थानो से गीतसग्रह का काम वडे साहस का है या नही ? एक तो, ब्राह्मण-वश मे पैदा होने का अभिमान ही मुझमे क्या कम ? दूसरे, चमारो के लिए वश परम्परा से चली आती हुई घृणा भी भरपूर। तीसरे, खाओ-पीओ और मौज करो वाली विलायती शिक्षा वहाँ से उठ चलने के लिए नोच-कोच रही है। चौथे, शहर की साफ-सुथरी सडको पर, वगुले के पख जैसा सफेद धुला हुआ कपडा पहनकर निकलने की आदत वहाँ से भाग चलने को फुसला रही है। पाँचवें, तेल-साबुन से चमकीले तथा मुस्कुराते हुए शहर के चेहरो के अन्दर मे निकली हुई मुहावरेदार तथा रस और अलकारो से अलकृत भाषा कान पकडकर खीच रही है। इन सबके मुकाबले मे केवल—गीतो का प्रेम। अव आप मेरी मानसिक दशा का अन्दाज लगा सकते है कि मुझे प्रतिदिन मन की किन-किन भयानक घाटियो के अन्दर से निकलना पडता रहा होगा।

शारीरिक कष्ट का यह हाल, कि गाँव मे न धर्मशालाएँ है, न सरायें। वाहर से जाने वाले लोग ठहरें तो कहाँ ठहरे ? मैं दोपहर-दोपहर तक धान की मेडो पर या चमारो के घरो पर बैठा गीत लिखा करता था। दोपहर को खेत मे काम करने वालो या वालियो को छुट्टी मिलती, तो मैं भी वहाँ से उठकर गाँव के किसी ब्राह्मण या ठाकुर के द्वार पर डेरा डालता। चना-चवैना और गुड ही पर दिन विताना पडता था। कभी-कभी तो आलस्य और रसोई बनाने की असुविधा से कारण रात भी लाई चने की शरण मे वितानी पडती थी। गुड तो मेरा खास साथी ही था। उसे तो मैंने गत गीत-यात्रा के चार वर्षो मे इतना खाया कि आज वह डायाविटीज के नाम से स्वास्थ्य का शत्रु बन बैठा है और उसका अन्त ही नही दिखायी पडता।"

ये तो वे कठिनाइयाँ हैं जो एक व्यक्ति को अपने निजी स्वभाव के कारण भोगनी पडती हैं। ये कठिनाइयाँ व्यक्ति-व्यक्ति के लिए अलग प्रकार की ही होती है। कुछ और कठिनाइयाँ भी स्वय त्रिपाठी जी ने ही गिनायी हैं। उनको इन्होंने "सामाजिक कठिनाई" नाम दिया है। इन्हें यो गिना सकते है

१ परस्पर मेल न मिलना—वे मैली धोती मे, मैं सफेद धोती कुरता टोपी पहनकर। यह स्तर भेद वहुत स्पष्ट था।[1]

२ मेरे काम को महत्त्व नहीं—गीत-सग्रह पढ़े-लिखो की दृष्टि मे पागलपन, और गाँव वालो की दृष्टि मे मजाक की चीज।

---

१ मिस करपैलेस (Miss Karpeles) ने कहा है "If you go to the people with any idea that you are a superior person, well of course, the result are poor"

गाँव मे ऐसे आदमी के सम्वन्ध मे जो कल्पनाएँ होती उन्हे त्रिपाठी जी ने यो बताया है

"कोई कहता—बावूजी किसी और मतलव से देहात मे आये है। कोई कहता—अरे, यह खुफिया पुलिस का कोई दरोगा है। किसी वदमाश का टोह लेने आया है। कोई कहता—वावू माहव औरत की तलाश मे आये हैं। कोई खूवसूरत लडकी या औरत देखेंगे तो ले भागेंगे। कोई कहता—अरे! ये शहर मे कोई कसूर करके भागे हैं। देहात मे हजरत छिपे-छिपे फिर रहे हैं। इसी प्रकार के तीरो का निशाना बनकर मैं गाँवो मे रहता था।"[१]

इन कुछ उद्धरणो से स्पष्ट है कि क्षेत्रीय-अभ्यास की दृष्टि के सकलनकर्ता को कई प्रकार की कठिनाइयाँ उठानी पडती हैं। इन कठिनाइयो का यो उल्लेख किया जा मकता है—

१ सकलनकर्ता और गायक-कथाकार मे स्तर भेद, या अहकार।

जैसे—भारत मे छूतछात का भेद, अथवा गरीव-अमीर, पढे-वेपढे का भेद।

२ सकलनकर्ता पर सन्देह—(१) खुफिया पुलिस
(२) कोई क्रान्तिकारी
(३) कोई हानि पहुँचाने वाला

---

[१] Four Symposia on Folklore मे पाकिस्तान के प्रतिनिधि श्री जसीमुद्दीन ने ऐसी ही बातें बतायी—

Sometimes it so happens that people take me for a detective or for a member of the police They say "What is this man about? Why these songs? He is a gentleman and perhaps he is a man of the town Why does he come? What is his intention of noting down these songs? He comes as a police detective and will he doing something against us In one village I was received by the village chief and he prepared good dishes for me and gave me a good bed to sleep in, but in the night they began to have suspicions in their minds and asked themselves, "why has this gentleman come to our village? He must be a detective, or, he must be an anarchist or something like that" And they consulted among themselves and one of them said, "we must inform the police station" And some of them went to the police-station and informed them about me And the police officer told them that they should watch me In the night I was astonished to see how many people were roaming around and I asked them, "Why aren't you sleeping to night! Go on and go to sleep" And they answered, "No, you are a guest here we must guard you We always keep late hours" My requesting them to sleep made their suspicion even greater On the following morning the kind officer came and saw me and then he was satisfied and went but I couldn't work in that village because the people were all suspicious,

३ सकलनकर्ता के कार्य (सकलन) पर अश्रद्धा, उसके महत्त्व को न समझना।

४ गायक-कथाकार का मिजाज।

५ गायक-कथाकार की व्यावसायिक वृत्ति।

६ सकलनकर्ता की निजी शारीरिक असुविधाएँ।

७ गायक-कथाकार को आवश्यक तथा उचित वातावरण न मिलना है। जैसा त्रिपाठी जी ने बताया है कि अकेली स्त्री गीत को भूल जा सकती है, क्योकि वह तो अन्य सखी सहेलियो के साथ मिलकर गाती है। इसी प्रकार कहानीकार यह कहता मिलेगा—"It is pleasant to tell stories when many people are listening and I must tell you a story for an hour It does not pay for the trouble" (Four Symposiam Dr Balys Statement, p 70)

८ क्षेत्र का भाषा-विषयक अज्ञान।

९ क्षेत्र की सस्कृति का अज्ञान।

१० क्षेत्र मे किसी वार्ता के सम्बन्ध मे कोई वर्णनात्मक विशेप विश्वास होना—भारत मे ही कही-कही ऐसा विश्वास है कि कठस्थ गीत को लिखाने से अनिष्ट होता है।

११ जहाँ वार्ता का अनुष्ठान हो रहा है, और गीत या कथा हो रही है वहाँ जाना वर्जित होना। अथवा किसी वार्ता का अत्यन्त गोपनीय होना।

१२ किसी वार्ता का अनुष्ठान के अवसर को छोड अन्यत्र न कहने का वर्जन।

१३ कुछ व्यवसायियो का प्रतिद्वन्द्विता विषयक भय।[1]

१४ ठीक वार्ता-वक्ता का न मिलना।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि इस कार्य मे बहुत कठिनाइयाँ हैं। लोकवार्ता के विद्यार्थी अथवा अनुसधित्सु को इन कठिनाइयो को दृष्टि मे रखकर लोक-साहित्य के अनुसधान मे प्रवृत्त होना चाहिए।

अनुसधान अथवा सकलन-सग्रह की व्यवस्था के प्रकार

इस सग्रह अथवा सकलन के लिए कितने ढगो से काम किया जा सकता है, यह एक प्रश्न सामने आता है। सामान्यत यह व्यवस्थाएँ दिखायी पडती हैं

---

[1] ऐसे भय की एक घटना का उल्लेख Miss Gulmor ने किया है
"The feeling of mistrust that I had to get over is on the part of my maestros who are afraid that I am going to start up a dance group Now in a way, the maestros are professionals, for when they teach a new dance group their particular play—the Moors and Christians that I have been collecting—they go to a new village and get a certain payment for it Well, they don't want me to set up as a rival professional"

(Four Symposia, p 87)

(१) शौकिया संग्रहकर्ता
(२) व्यक्ति-अनुसंधानकर्ता
(३) संगठित अनुसंधान तथा संग्रहकर्ता (अ) विश्वविद्यालयों के संगठन
(आ) संस्थाओं के संगठन

शौकिया संग्रहकर्ता अपने शौक के लिए संग्रह करता है, संग्रह करना एक प्रकार से उसका व्यसन है। ऐसा शौकिया संग्रहकर्ता व्यवसायी या लेखक हो सकता है। व्यवसायी व्यक्ति ऐसे गीतों का या कहानियों का संग्रह करके उन्हें पुस्तक रूप में प्रकाशित करायेगा। लेखक संग्रहकर्ता लेख लिखने के लिए, सामग्री प्राप्त करने के लिए अथवा व्यवसायी पत्रकार बनने के लिए संग्रह करता है, और संग्रहीत सामग्री से विविध निबन्ध तैयार करके विविध पत्र-पत्रिकाओं में भेजता है। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य शौकिया लोग ऐसे हो सकते हैं जो जिज्ञासा-पूर्ति या अनुसन्धानार्थ ही कुछ संग्रह करते हैं।

भारत में प्रायः ऐसे ही संकलनकर्ताओं का अस्तित्व आरम्भ से आज तक मिलता है। अलग-अलग व्यक्तियों ने अपनी रुचि या सुविधा से कुछ संकलन किये हैं। हमारे विश्वविद्यालयों में लोक-साहित्य अनुसंधान का विषय तो है पर सामान्य अध्ययन-अध्यापन का विषय केवल प्रयाग, कलकत्ता तथा आगरा विश्वविद्यालय में ही है, लखनऊ में आरम्भ होने की सूचना मिली है। जिन विद्यालयों में लोक-साहित्य विषय पर अनुसन्धान हुए हैं उनमें विश्वविद्यालयों की ओर से तद्विषयक कोई प्रबन्ध नहीं किये गये, अनुसंधित्सु ने संग्रह-संकलन का कार्य स्वयं ही शौकिया व्यक्तियों की भाँति सम्पन्न किया है—वस्तुतः तो उसका वह संग्रह कभी प्रकाशनार्थ नहीं प्रस्तुत किया गया, उसके आधार पर बस एक प्रबन्ध लिखकर काम समाप्त समझ लिया गया है।[1] इन अनुसंधानों के लिए प्रयत्न भी बिना अच्छी शिक्षा पाये किया गया है। जिन विश्वविद्यालयों में बी० ए० तथा एम० ए० में यह एक विषय रहा है वहाँ भी क्षेत्रीय-अभ्यास नहीं कराया जाता और यह स्पष्ट है कि बिना क्षेत्रीय-अभ्यास कराये लोक-वार्ता के संग्रह संकलन को वह स्तर नहीं मिल सकता जो एक वैज्ञानिक उपयोग के लिए अपेक्षित है।

विदेशों में विश्वविद्यालयों के द्वारा भी केन्द्रीय संगठन के रूप में संग्रह कार्य कराया जाता है और उसके लिए विधिवत् अभ्यास भी कराया जाता है।

शौकिया संग्रह-कार्य से कहीं अधिक महत्त्व का संग्रह-कार्य संगठित केन्द्रीय-व्यवस्था से होता है।

---

[1] आगरा विश्वविद्यालय से ब्रज लोक-साहित्य, गढ़वाली लोक-साहित्य, कुमाऊँनी लोक-साहित्य, बघेली लोक-साहित्य, कन्नौजी लोक-साहित्य, मेरठ जनपदीय लोक-साहित्य, बुलन्दशहर का लोक-साहित्य आदि कई विषयों पर प्रबन्ध तो लिखे गये हैं पर संग्रह नहीं सामने आये। इसी प्रकार प्रयाग से भोजपुरी, अवधी आदि पर प्रबन्ध लिखे गये हैं संग्रह सामने नहीं आये।

सकलन किस माध्यम से किया जाय इस सम्बन्ध मे 'फोग सिपोजिया' नामक पुस्तक मे विविध देशो के लोकवार्ताविदो ने वहुत अच्छा प्रकाश डाला है। 'सगठित सग्रहीकरण' विपय के अन्तर्गत जो विविध विचारणीय वातें दी गयी थी, वे ये है

सगठित सग्रहीकरण—(अ) सग्रह के लिए क्षेत्रो का चित्रावधारण (mapping) (१) अव तक के सग्रहो की पुस्तक सूची, (२) सग्रह की दृष्टि से अच्छे क्षेत्रो के चित्र (maps) (आ) केन्द्र-निष्ठ सग्रहीकरण (१) सग्रहालय के कर्मचारियो द्वारा, (२) नियमित वेतन-भोगी क्षेत्रीय कार्यकर्ताओ द्वारा, (३) विश्वविद्यालयो के सकायो तथा विद्यार्थियो द्वारा (विश्वविद्यालयो के निरीक्षण मे, (४) केन्द्र के निर्देशन मे शौकिया लोगो के द्वारा, (५) स्कूल के वालको द्वारा।

शौकिया लोगो द्वारा सग्रहीकरण—(अ) शौकियो के प्रशिक्षण के साधन (आ) प्रश्नावलियो और निर्देशिका-पुस्तको का उपयोग (इ) इन निर्देशिकाओ का निर्माण।

रिकार्ड करने की विधियाँ—(अ) नोट लेने की पुस्तकें तथा नोट की विधियाँ, (आ) त्वरालेखन (Shorthand) तथा ध्वनि (Phonetic) लेखन, (इ) ध्वनि का रिकार्ड करना—(१) तश्त (Disc), (२) तार (Wire), (३) फीता (Tape), (४) ध्वनि-फिल्म।

इसमे सामग्री सकलन तथा सग्रह की दो स्थितियाँ मानी गयी है, एक केन्द्रीय सगठन या सस्था द्वारा, दूसरे शौकिया लोगो के द्वारा। शौकिया लोगो के द्वारा जो सग्रह कराने की वात है, वह भी सम्भवत केन्द्रीय द्वारा उपयोग मे लाने की दृष्टि से है, वस्तुत आज की स्थिति मे शौकिया लोगो को भी उस विधि की जानकारी करा देना अपेक्षित है जिससे वे भी अन्तरराष्ट्रीय वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार सामग्री प्रस्तुत कर सकें।

केन्द्रीय सगठन की उपयोगिता

लोकवार्ता और लाक-साहित्य के सग्रह और सर्वेक्षण का कार्य कितने ही प्रकार के तात्विक ज्ञान और जटिल प्रक्रियाओ की अपेक्षा करता है, कोई भी शौकिया व्यक्ति अकेला उन सबसे युक्त नही हो सकता। लोकवार्ता का सग्रह वैज्ञानिक दृष्टि से तभी हो सकता है जब उसके लिए (१) विधिवत् प्रशिक्षण का प्रबन्ध हो, (२) विविध अपेक्षित बातो के ज्ञान सयुक्त एक टोली हो जिसमे (१) लोकवार्ताविद, (२) नृविज्ञानविद, (३) मूर्तिकार, (४) चित्रकार, (५) फोटोग्राफर, (६) टेप रिकर्डिंगकर्ता, (७) त्वरालेखन दक्ष, (८) पुरातत्वविद हो। केन्द्रीय सगठन के द्वारा ही ऐसी सग्रहकर्ता टोली खडी की जा सकती है। फिर विधिवत् कार्य करने मे और भी जो व्यय पडते हैं उन्हें कोई सगठित केन्द्र ही भली प्रकार उठा सकता है। फलत ऐसे सगठन की उपयोगिता स्वय सिद्ध है।

विदेशों में ऐसे केन्द्रीय सगठन

विदेशो के कितने ही विश्वविद्यालयो मे आज सग्रह सकलन तथा सर्वेक्षण के लिए लोकवार्ता विषयक पृथक विभाग हैं। सवसे पहले १८८८ ई० मे आज से ७३

वर्ष पूर्व फिनलैण्ड के 'हेलसिंकी विश्वविद्यालय' मे लोकवार्ता के पीठ की स्थापना हुई। लोकवार्ता के क्षेत्र मे 'भौगोलिक प्रणाली' का उद्गम यही से हुआ। इसी विश्वविद्यालय ने हमे ऐन्टी आर्ने जैसा फोक्लोरिस्ट लोकवार्ताविद् दिया, जिसने लोक-साहित्य के अध्ययन के लिए आदर्श 'टेलटाइपो' की स्थापना की। इस समय विश्व मे कई विश्वविद्यालयो मे लोकवार्ता-विभाग विद्यमान हैं।

सरकारी सस्थाएँ

विश्वविद्यालयो के विभागो के द्वारा तो सग्रह और सकलन का कार्य हुआ ही है, कही-कही सरकार की ओर से भी किन्ही सस्थाओ की स्थापना की गयी है और ये सस्थाएँ लोकवार्ता विषयक सग्रह का कार्य विधिवत कराती हैं।

सार्वजनिक सस्थाएँ

विश्वविद्यालयो और सरकारी परिषदो के अतिरिक्त कही-कही सार्वजनिक सस्थाएँ भी इस कार्य को कराती है, भारत मे पहले तो 'इण्डियन एटिक्वरी' के लिए कुछ सग्रह हुए पर इण्डियन एटिक्वरी कोई सस्था नही पत्र था। भारत मे ब्रिटेन की भाँति की फोकलोर परिषद स्थापित नही हुई। हिन्दी क्षेत्र मे सबसे पहले व्रज साहित्य मण्डल मथुरा ने विधिवत सग्रह करने की वैज्ञानिक प्रणाली की स्थापना की। यही सबसे पहली सस्था है जिसने 'प्रश्नमाला प्रणाली' और 'निर्देश-पुस्तिका' की प्रणाली अपनायी। व्रजसाहित्य मण्डल की तरह अन्य कई सस्थाएँ इस कार्य मे प्रवृत्त हुईं। इस समय तो सम्भवत उदयपुर विद्यापीठ का सग्रह बहुत महत्त्वपूर्ण है। कृष्णानन्द जी ने लोकवार्ता परिषद् चलाने का प्रयत्न किया। व्रजसाहित्य मण्डल ने अपने हाथरस अधिवेशन मे 'जनपद-परिपद' की स्थापना करायी थी, और भी ऐसे कितने ही प्रयत्न हुए हैं जो आज फल रहे हैं। उत्तर प्रदेश सरकार ने भी एक लोक-साहित्य समिति की स्थापना की थी, इसका भी कार्य ठीक नही चल सका। वस्तुत लोक साहित्य के सग्रह और सकलन का कार्य ऐसा है जो एक ऐसी स्थायी सस्था के द्वारा किया जाना चाहिए जिसके पास धन और कार्यकर्ताओ का अभाव न हो। यदि सार्वजनिक और सरकार दोनो के योग से कोई सस्था न बने तो वह बहुत सफल हो सकता है। भारत मे यह कार्य केन्द्रीय सरकार के द्वारा कराया जाना चाहिए, और पहले यह ठीक उसी प्रकार से हो जिस प्रकार से भाषा-सर्वेक्षण होता है। अखिल भारतीय लोक-साहित्य-लोकवार्ता सर्वेक्षण होना चाहिए और होना चाहिए पूर्णत प्रशिक्षित व्यक्तियो द्वारा। एक वर्ष का प्रशिक्षण देकर तब सर्वेक्षण कराया जाय।[१]

क्षेत्रीय अभ्यास

इस प्रकार यह भी प्रकट हो जाता है कि लोकवार्ता के क्षेत्र मे सग्रह तथा

---

[१] यहाँ हम व्रज-साहित्य मण्डल के मेरठ अधिवेशन पर साहित्य परिषद् के अध्यक्ष पद मे दिये गये अपने भाषण की ओर ध्यान आकर्षित करते है, जिससे भारत मे ऐसे सग्रहादि के कार्य के महत्त्व पर प्रकाश पडता है।

सकलन की विधि का सागोपाग अध्ययन ही नही कराया जाना चाहिए, वरन् उसका क्षेत्रीय अभ्यास भी कराना चाहिए।

आरम्भिक तैयारियाँ

क्षेत्रीय कार्य और उसके अभ्यास के लिए सबसे पहले यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि हमे कहाँ और किसलिए अनुसन्धान करना है। यह कैसे जाना जा सकता है ? इसके लिए 'चित्र-स्थापन' (mapping) आवश्यक है। प्रोफेसर वाल्टर एण्डरसन ने 'चित्र-स्थापन' की प्रक्रिया का महत्त्व बताते हुए एक रोचक घटना का भी उल्लेख किया है। उनका कहना है कि

"किसी भी देश मे लोकवार्ता के अध्ययन की तैयारी से पूर्व सबसे अधिक अनिवार्य बात है उस क्षेत्र मे अब तक जो सामग्री एकत्र की जा चुकी है, उसका चित्र-स्थापन। केवल इसी विधि से हम यह जान सकते हैं कि वह भाग कौन-सा है जिसमे कुछ भी काम नही हुआ और जिसमे अनुसन्धान अपेक्षित है। इस सम्बन्ध मे ऐस्टोनिया मे हमे महत्त्वपूर्ण अनुभव हुए। साठ वर्ष पूर्व डा० हर्ट ने अपनी प्रश्नमाला के आधार पर ऐस्टोनिया की लोकवार्ता का सग्रह करना शुरू किया, उससे बहुत-सी सामग्री प्राप्त हुई, कहानियो के, गीतो के, पहेलियो के पाठ प्राप्त हुए, और भी बहुत-सी सामग्री आयी। यह सामग्री वर्ष-प्रति-वर्ष बढती ही गयी। तब आस्कर केल्लास नामक एक ऐस्टोनीयन विद्यार्थी आया, वह चित्र-स्थापन प्रक्रिया से परिचित था। उसने समस्त प्राप्त सामग्री का चित्र-स्थापित किया तो पता चला कि ऐस्टोनिया के केवल २०-३० प्रतिशत भाग से ही सामग्री आ पायी है। आगे उसे पता चला कि गीतो मे पुराने गीत तो और भी बहुत ही कम थे। ऐस्टोनिया मे पुरानी और नयी तरह के लोकगीत मिलते हैं।"[१]

चित्र-स्थापन (Mapping)

यह कथन इस बात को सिद्ध कर देता है कि सग्रह से पूर्व उस क्षेत्र का एक चित्र प्रस्तुत किया जाना चाहिए जिसमे उन स्थानो को अलग चिह्नित किया जाय जिनमे लोकवार्ता सकलन का कार्य हो चुका है। इस प्रकार यह पता चल सकेगा कि हमे किन क्षेत्रो मे कार्य करना है। इस विधि से परिश्रम व्यर्थ नही जायेगा और न अव्यवस्था होगी। वस्तुत ये सर्वेक्षण चित्र कुछ इस प्रकार बनाये जाने चाहिए कि जिनसे केवल लोकवार्ता के कार्य हो चुकने का ही पता न चले वरन् यह भी पता चल सके कि किस क्षेत्र से किस प्रकार की सामग्री (गीत, कहानी, कहावतें, पहेलियाँ) एकत्र की गयी है और कोई ऐसी विधि भी निकाली जानी चाहिए जिससे लोकवार्ता के स्तर का भी पता चल सके। केन्द्रीय सस्थान मे तो अनुसन्धान के क्षेत्र का मृत्तिका-चित्र एक कक्ष मे बनाया जा सकता है और उसमे अनुसन्धान किये गये स्थानो को इगित करने के लिए लघु रग-बिरगी पताकाओ का उपयोग किया जा सकता है। ये

---

१ फोर सिम्पोजिया।

पताकाएँ एक के ऊपर एक लगायी जा सकती हैं, और उन पर अन्य उपयोगी निर्देश भी रह सकते है।

लाल लोक गीत
पीली लोक कहानी
नीली कहावतें

इनमे परिमाण भी दिया जा सकता है।

इस चित्र-स्थापन के साथ अन्य प्रकार के सर्वेक्षण-चित्रो का भी उपयोग किया जा सकता है। जैसे किसी क्षेत्र के आनुवशिक तत्त्वो का चित्र, उस क्षेत्र की बोलियो का चित्र पुरातात्विक चित्र। आनुवशिक चित्र से हम आदिम जाति अथवा विजातीय वशो को जानकर उनकी लोकवार्ता का सकलन कर सकते हैं।

पूर्व के सग्रह

चित्र-स्थापन के उपरान्त आवश्यक यह है कि उस क्षेत्र मे इस समय तक जो काम हो चुका है, उस समस्त कार्य का लेखा-जोखा समझ लिया जाय। उस सम्बन्ध के समस्त प्रकाशित साहित्य की ग्रन्थ-सूची तैयार कर ली जाय। उस पूर्व के सग्रह मे किस स्तर की सामग्री सकलित होकर आयी है, इसका भी अनुमान लगा लिया जाय। जैसा आस्कर केल्लास के उदाहरण से स्पष्ट है कि उसने न केवल भौगोलिक सर्वेक्षण अथवा चित्र-स्थापन ही किया वरन् समस्त सग्रहीत सामग्री के प्रकार और कोटि का भी निर्धारण कर इस बात का पता लगा लिया कि किस प्रकार और किस कोटि की सामग्री अभी और अब किस प्रकार की अपेक्षित है। इसी प्रकार हमे क्षितिजातीय अथवा भौगोलिक अनुसन्धान का ही ज्ञान नही हो जाना चाहिए, तलगामी अथवा लोकवार्ता के स्तरो का भी सर्वेक्षण प्रस्तुत करना होगा।

प्रशिक्षण

इस प्रकार क्षेत्र का ठीक-ठीक ज्ञान हो जाने पर आवश्यक है कि जिन व्यक्तियो से सग्रह-कार्य कराना है, उन्हे अनुचित प्रशिक्षण दिया जाय। सकलन करने की कला का ज्ञान उन्हे कराया जाय।

वैसे तो यह निर्विवाद है कि जैसे कवि जन्म से ही कवि होता है उसी प्रकार एक प्रतिभाशाली सकलनकर्ता की विद्या को भी जन्मघुट्टी के साथ ही पीकर आता है। पर जिस प्रकार अभ्यास से भी कविता करना सीखा जा सकता है, उसी प्रकार प्रशिक्षण और अभ्यास से अच्छा सकलनकर्ता भी बना जा सकता है।

इस प्रशिक्षण मे निम्न विपयो का अभ्यास कराया जा सकता है

१ उस क्षेत्र की भूगोल।

२ उम क्षेत्र का सामान्य ऐतिहासिक सास्कृतिक तथा लोकवार्ता परक परिचय।

३ प्रश्नमाला तैयार करना, तथा तद्विपयक अन्य सहायक सभावित प्रश्नो की रचना तथा निर्देशक-पुस्तिका का ज्ञान।

४ टेप पर रिकार्ड करना तथा टेप से पुनर्लेखन ।

५ उस क्षेत्र के सामान्य शिष्टाचार तथा कुछ ऐसी शील की बातें जिनसे उस क्षेत्र के लोग आकर्षित हो सके ।

६ डायरी भरना ।

७ फोटोग्राफी ।

८ चित्रकला ।

९ उस क्षेत्र की भाषा का ज्ञान ।

१० लोकवार्ता के रूप और उनकी प्रकृति ।

इस प्रकार के प्रशिक्षणो का जब प्रवन्ध किया जाय तव शौकिया सकलन-कर्ताओ के लिए भी कुछ स्थान रखने चाहिए । क्योकि कभी टोली विशेष सहायक हो सकती है कभी व्यक्ति अकेला ही ।

टोली या व्यक्ति

यथार्थ सर्वेक्षण और सकलन-कार्य के लिए टोली उपयोगी है या अकेला व्यक्ति यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है ।

अकेले सकलनकर्ता का भी क्षेत्रीय दृष्टि से कम महत्त्व नही । क्योकि सकलन कार्य का सम्वन्ध जीवित व्यक्तियो से है और उनके साथ सम्पर्क मे मानवीयता, सामाजिकता और मिलनसारी बहुत अर्थ रखते है, फलत अकेला व्यक्ति इनमे विशेष सफल हो सकता है । टोली मे एक भीड-सी हो जाती है जिससे लोकवार्ता प्राप्त करने के लिए अपेक्षित एक घरेलू और निजी जैसा वातावरण नष्ट हो जाता है तब ऐसी सामग्री नही मिल सकती जिसका सम्वन्ध उस व्यक्ति या वहाँ की समाज की अतल गहराइयो से है ।

पर दल का पक्ष भी कम भारी नही, जहाँ तक व्यक्तिगत सम्पर्क की रसायन का प्रश्न है, टोली का व्यक्ति भी किंचित सावधानी से व्यवहार करे तो अपने निजत्व से टोली के रहते भी उस रसायन को पैदा कर सकता है । समस्त टोली के सदस्यो की मनोवृत्ति भी यदि मिलनसारिता और शील समन्वित होगी तो टोली का अभियान किसी भी व्यक्ति को आक्रमण जैसा उत्पीडक नही प्रतीत होगा । अच्छा हो टोली का एक आदमी पहले निजत्व स्थापित करे फिर धीरे-धीरे शेष व्यक्ति वहाँ पहुँचते जायँ और उस निजत्व को गहरा करते जायँ ।

वस्तुत लोकवार्ता एक जटिल और वहुरूपी वस्तु है, जिसके लिए एक नेत्र से काम नही चल सकता । कितने ही नेत्रो की अपेक्षा है । एक नेत्र एक प्रकार की सामग्री पर विशेष ध्यान दे रहा है, दूसरा दूसरी पर, और इसी प्रकार ।

किस-किस प्रकार के लोग इन अभियानी टोलियो मे रहें, इस पर विचार कर लेना भी आवश्यक है—

कहा जाता है कि इस दिशा मे रूस ने आदर्श प्रस्तुत किया है । उनकी लोक-वार्ता सकलन टोलियो मे ६ से १६ तक सदस्य हो सकते हैं । इनमे—

१ लोक-सगीत-विशेषज्ञ
१ नृविज्ञानवेत्ता (Anthropologist) या वर्शविज्ञानवेत्ता (Ethnologist)
१ पुरातत्वविद
१ जाति के इतिहास का अनुसधाता
१ फोटाग्राफर
१ टेप रिकार्ड करने वाला आदि

स्वीडन मे किसी ग्राम के सर्वेक्षण की टोली मे—

१ फोटोग्राफर
१ स्थापत्य-विज्ञ (Architect) या विश्वकर्मा
१ सामाजिक विषयो का विशेषज्ञ तथा औजारो और कृषि का विशेषज्ञ
१ लोकवार्ता-विशेषज्ञ

१६४७ मे कोलम्बिया को एक लोकवार्ता-सस्थान द्वारा सर्वेक्षण के लिए जो टोली भेजी गयी थी उसमे[1]—

१ एक मुख्यत लोककलाओ मे रुचि रखता था।
१ एक लोक-नृत्यो का विशेषज्ञ था जिसने कोलम्बिया का लोक-नृत्य द्योतक एक चित्र भी तैयार किया था।
१ भाषा विशेषज्ञ था जो उस समुदाय की भाषागत विशेषताओ का अध्ययन करता था।
१ एक कहानियो और धर्मगाथाओ मे विशेष रुचि रखता था।

हम समझते हैं कि लोकवार्तागत सर्वेक्षण के लिए जो टोली खडी की जाय उसमे ८ से अधिक व्यक्ति रहें। उसके सदस्य निम्न योग्यता के हो सकते हैं

१ फोटोग्राफर
१ चित्रकार तथा मूर्तिकार
१ पुरातत्वविद प्राचीन अक्षरमालाओ से भी परिचित हो
१ एक भाषाविद
१ पुराण-पडित
१ लोकवार्ताविद
१ वैज्ञानिक (टेप रिकार्ड आदि भी यही चलायेगा)
१ साहित्यिक, लेखक या पत्रकार

क्षेत्रीय प्रक्रिया

सगठित केन्द्र के अधीन होने वाले अनुसधान मे अच्छा रहेगा कि सर्वेक्षण के लिए दो दल तैयार किये जायें।

---

[1] देखिये फोर सिम्पोजिया।

एक अग्रिम टोली एक प्रारम्भिक प्रश्नमाला लेकर क्षेत्र मे जानी चाहिए। यह जाकर प्रश्नमाला की सहायता से इस वात का पता लगायेगी कि किन-किन व्यक्तियो से क्या-क्या वार्ताएँ प्राप्त हो सकती है, और क्या-क्या वार्ताएँ ज्ञातव्य हैं, इसी टोली का यह भी धर्म होगा कि वह पीछे जाने वाली टोली के अनुसधान के लिए वातावरण पैदा कर दे।

इस टोली का विवरण या प्रनिवेदन प्राप्त हो जाने पर केन्द्र आगे के अनुसधान के लिए एक नयी प्रश्नमाला प्रस्तुत करेगा, साथ ही इस दल के सदस्यो मे कार्य का विभाजन भी कर देगा, यह टोली अपने सकलन का काय करेगी।

उदाहरणार्थ क० मु० हिन्दी विद्यापीठ के लोकवार्ता विपयक विद्यार्थियो के एक सर्वेक्षण का विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जाता है।

इटौरा का उदाहरण

इस सर्वेक्षण और सकलन के लिए "इटौरा" नामक गाँव चुना गया था। इटौरा आगरा-ग्वालियर जाने वाली सडक पर आगरा से १० मील है।

सबसे पहले तीन व्यक्तियो की एक अग्रिम टोली एक प्रारम्भिक प्रश्नमाला को लेकर इटौरा मे गयी। इस टोली के तीनो सदस्य हिन्दीतर क्षेत्र के थे—एक आसामी, एक तमिल, एक कन्नड। जैसे भापा-विज्ञान के अनुसन्धान के लिए, वैसे ही लोकवार्ता विज्ञान के लिए ऐसे व्यक्ति ही अच्छे अनुसन्धाता हो सकते है जो उस क्षेत्र के न हो।

सदस्यो मे विशेप कार्य विभाजन कुछ इस प्रकार किया गया—

१ व्रतानुष्ठान विपयक सग्रह— १ व्यक्ति
२ कहावतें तथा लोकविश्वास विपयक सग्रह—१ व्यक्ति
३ लोक-साहित्य-कहानी-गीत विपयक सग्रह—१ व्यक्ति
४ अन्य लोकवार्ता सग्रह— १ व्यक्ति
५ टेप रिकार्ड करने वाला— १ व्यक्ति
६ एक फोटोग्राफर—

निश्चित दिवस पर यह टोली इटौरा ग्राम मे अपने साज-सामान सहित पहुँच गयी। वहाँ अपना कार्य सम्पादित करने के उपरात इस टोली ने जो विवरण दिया वह यो है

एक ग्राम सर्वेक्षण

सर्वेक्षण स्थल—इटौरा।

स्थिति—(क)—आगरा मे ग्वालियर जाने वाली सडक पर लगभग दस मील दक्षिण-पूर्व।

(ख)—यह गाँव दो हिस्सो मे बँटा हुआ है।

तारीख—१०-१२-६० और ११-१२-६०।

अभिप्राय —(क)—लोकवार्ता विषयक सामग्री एकत्र करने के अभ्यास के लिए।

(ख)—लोकजीवन मे लोकवार्ता के यथार्थ स्वरूप का परिचय पाने के लिए।

आयोजन तथा तैयारियाँ— यह निश्चय हो जाने पर कि एक गाँव का सर्वेक्षण करना है 'इटौरा' को चुन लिया गया।

क्योंकि—

(१) यह आगरे के पास था।

(२) यह देवी की पूजा की जात का केन्द्र भी है।

(३) जनसख्या भी विविध जातियो से बनी हुई है।

अब 'इटौरा' के सर्वेक्षण के लिए आवश्यक तैयारी मे प्रवृत्त हुए।

तैयारियाँ— पहले इटौरा का सामान्य परिचय कुछ जानकारो से प्राप्त किया गया। गजट, भूगोल, पुस्तक आदि से भी आवश्यक सामग्री ग्रहण की गयी।

सकलन विषयक क्षेत्रीय अभ्यास के सिद्धान्त कक्षा मे जान लिये गये थे। अत निर्देश पुस्तिका की अलग आवश्यकता नही थी।

निम्न सामग्री का प्रबन्ध कर लिया गया

(क) नापने का फीता, (ख) दैनंदिनी, (ग) पेंसिल, (घ) रबड, (च) कागज, (छ) टेपरिकार्डर (बैटरी का), (ज) परिचय पत्र (डिप्टी इन्सपेक्टर आफ स्कूल्स से वहाँ के प्रधानाध्यापक के नाम), (फ) विद्यापीठ के सचालक महोदय से इस अभ्यास के लिए स्वीकृति, (ट) स्थिति परीक्षण तथा अनुसधान के लिए प्रश्नमाला।

प्रारम्भिक कार्य—(सिद्धान्त)—सिद्धान्त यह है कि ऐसे सर्वेक्षण से पूर्व एक अग्रिम दल भेजकर स्थिति का परीक्षण करा लिया जाय।

स्थिति परीक्षण—स्थिति परीक्षण के लिए हम ऐसे विद्यार्थी चुने गये जो अहिन्दी भाषी थे।

(सिद्धान्त—भाषा विज्ञान की ही भाँति लोकवार्ता अनुसन्धान के लिए क्षेत्र के बाहर का व्यक्ति ही अग्रिम दल का अग होना चाहिए।)

इस दल मे निम्न सदस्य थे

(१) मैं—परेश चन्द्र शर्मा (असमिया भाषी)

(२) श्री जी० एन० रेड्डी (तेलुगु भाषी)

(३) श्री पी० परशुरामन (तमिल भाषी)

यह दल प्रश्नमाला लेकर १०-१२-६० को इटौरा पहुँचा। प्रश्नमाला के आधार पर आवश्यक सूचना प्राप्त करके उसे भेज दिया गया। वह प्रश्नमाला और उसके प्राप्त उत्तर उदाहरणार्थ यहाँ दिये जाते है।

प्रश्नमाला

इटौरा

यात्रा करने का समय	तारीख १०-१२-६० को प्रात ८.२५
पहुँचने का समय	प्रात ६.४५
किस तहसील मे है ?	आगरा
आगरे से कितनी दूरी पर है ?	१० मील
गाँव की जनसख्या ?	१८००
कौन-कौन जाति ?	जाट, ब्राह्मण, वनिया, गडरिया, चमार, धीमर, कुम्हार, नाई, खटीक, धोवी, मुस्लिम ।
प्रमुखता किसकी है ?	गडरिया, जाट और चमार ।
लोगो का पेशा क्या है ?	मुख्यत खेती ।
गाँव की नाम सम्वन्धी कोई कथा है क्या ?—	यह गाँव ५०० वर्ष पूर्व वसा था, ऐसा कहा जाता है । और पुराने समय से ही इसका यही नाम चला आता है ।
लोकवार्ता सम्वन्धी जानकारी रखने वाले सज्जनो के नाम व जाति तथा पेशा ?	१ प० श्याम लाल ब्राह्मण-कथा-वाचक, कीर्तन, रामायण, भागवत के ज्ञाता । २ रिशीपाल पुजारी—देवी की पूजा करने वाले । ३ रामवावू कथा कहने वाले ।
लोक-साहित्य के किन-किन अगो की सामग्री इस गाँव मे उपलब्ध हो सकती है ?	लोकगीत, कहावतें, लोकनृत्य, धोवी, चमारो के गीत और नृत्य ।
(क) लोक कथा (ख) लोकगीत, (ग) ख्याल, (घ) ढोला, (ङ) आल्हा, (च) जिकडी, (छ) पमारे, (ज) राझा, (झ) जाहरपीर, (ट) देवी के—	गाँव सम्वन्धी कथा नही, सामान्य लोक-कथाएँ मिलती हैं । ढोला मिलता है । देवी के मिलते है ।
नियमित रूप से कथा कहने वाले कोई हैं क्या ?	हैं, प० श्यामलाल जी ।
नियमित रूप से कोई गाने वाले है क्या ?	नही, देवी के मेले के समय गीत गाने वाले और नाचने वाले वाहर से आते हैं ।

प्रश्न	उत्तर
क्या गीत, किसका गीत या कथा कहते हैं ?	यहाँ देवी कीर्तन, राम भजन के गीत, विवाह, खेल आदि के गीत सामान्य बेपेशा लोगो के द्वारा गाये जाते है ।
गाँव मे कौन-कौन उत्सव मनाये जाते है ?	देवी का उत्सव ।
किस समय ?	भाद्रपद और चैत्र मे सातें, आठें और नवमी को । (तीन दिन)
किसी जाति के लिए अलग उत्सव है क्या ?	नही ।
खेत के समय मे कोई अनुष्ठान होता है क्या ?	नही ।
कौन कराते हैं—किस जाति का है ?	नही ।
विवाह, जन्म-सस्कार आदि किस तरह मानते है ?	विवाह, जन्म, नामकरण सस्कारो मे गीत गाते है । स्त्रियाँ गाती, बजाती, नाचती हैं । धीमरों के विवाह चण्डी देवी के मेले पर होते हैं ।
इन सस्कारो के अतिरिक्त और कोई विशेष सस्कार है क्या ?	
सभी सस्कारो के सम्बन्ध मे भलीभाँति जानने वाले व्यक्ति का नाम ?	प० श्यामलाल, जीवा राम ।
मन्दिर कितने है ?	देवी का मन्दिर, शकर जी का मन्दिर, ठाकुर जी का मन्दिर ।
देव-देवी कौन-कौन हैं ?	चण्डी देवी ।
ग्राम देवता किसको मानते हैं ?	चण्डी देवी को ।
किसी वृक्ष या पशु को खास तौर पर पूजते हैं क्या ?	पीपल, गाय ।
किसी वृक्ष के नीचे किसी विग्रह की प्रतिमा स्थापित है क्या ?	पेड के नीचे एक पत्थर है वह चण्डी देवता है, पीपल के पेड के नीचे चबूतरी है वहाँ बनिये पूजा करते हैं ।
खेल कौन-कौन सा खेलते हैं ?	कबड्डी, टेसू, गिल्ली-डण्डा ।
(क) बच्चो के लिए	
(ख) प्रौढों के लिए	
(ग) स्त्रियो के लिए	गुडिया, झाझी, नौरता ।
मन्त्र आदि के द्वारा चिकित्सा या दूसरा कोई सस्कार आदि करते हैं क्या ?	१ मन्त्र झाड-फूंक से चिकित्सा होती है । २ मन्त्र जानने वाला और झाड-फूंक करने वाला है जगन्नाथ ।

	३ झाड फूंक-मोर पख से, नीम से, बिच्छू चढना, आँखें आना, बच्चो की बीमारी आदि का पानी से और भभूत से अभिसिंचित करके करते है।
इस तरह के व्यवसायी लोग हैं क्या ?	है, एक जगन्नाथ नाम का व्यक्ति।
या बाहर से आते है—	मेले के समय स्याने बाहर से आते है ?
कहाँ से आते हैं ?	दूर-दूर प्रान्तो मे भी आते है और पास के गाँवो से भी।
गाँव किस तरह बसा हुआ है ?	ग्वालियर रोड से दायी ओर एक फर्लांग।
घरो की बनावट ?	
घरो के अवस्थान ?	मिट्टी के घर ज्यादा।
क्या किसी घर मे बखार मन्दिर आदि किसी निश्चित दिशा मे रखना जरूरी है ? कौन दिशा मे ?	नही।
घरो की दीवारो पर कोई कलात्मक चित्र अकित है क्या ?	लाल रँगीली हस्त मुद्राएँ, पाँच और धनुप।
कुएँ पर भी कोई कलात्मक निशान है क्या ?	नही।
हस्तशिल्प आदि के सम्बन्ध मे जानकारी	
(क) करघा	
(ख) बाँस, बेंत का काम—	बढई हैं जो लकडी का काम करते हैं।
(ग) मिट्टी का बर्तन—	कुम्हार बनाते हैं।
(घ) सोनार आदि का काम—	
(ङ) सिलाई का काम—	होता है।
कोई नृत्य आदि प्रचलित है क्या ? पहले था क्या ?	धोबी और चमार के नृत्य भी हैं।
नृत्य कौन करता है ?	स्त्री और पुरुप।
जाति पेशा	चमार, धोबी।
वाद्य यन्त्र क्या-क्या हैं ?	ढोलक, हारमोनियम, मजीरा, चिकाडा।
व्यवसायी भी कोई है क्या ?	व्यवसायी नही लेकिन समय-समय पर आकर गाते हैं।
बाहर से कोई आते हैं क्या ?	नाचने गाने वालो के साथ ही वाद्य यन्त्र वाले भी बाहर से मेले पर आते हैं।
नाट्यमण्डली, खयाल मण्डली आदि कोई मण्डली है, क्या ?	नहीं।

मण्डली का दलपति कौन है ?

किस जाति के लोग ज्यादातर है ?

किस अवसर पर खेले जाते है ?

प्रतियोगिता भी है क्या ?

खर्च आदि कैसे चलाते हैं ?

स्त्रियो के आभूषण—नाम किस धातु के है (क) वस्त्र ? (ख) वर्तन ?	हसली (सोना व चाँदी), गुलूवन्द, छल्ली, विछुआ, पायजेव, अनौखे, भुटे, लच्छे, कदुआ, झाँझन, कान की तरकी, नथु, कीलरी, वोल्ला, शीशफूल, हथफूल, अँगूठी ।

सामान्य

किस-किस धर्म के लोग हैं ?	हिन्दू, मुसलमान ।
पचायत प्रथा आदि ?	है, सब जातियो के लिए एक ही पचायत है ।
शिक्षितो की सख्या ?	ज्यादातर अशिक्षित हैं, शिक्षित बहुत कम हैं ।
पर्दा प्रथा—	
साधारण व्यवहार—	
पाठशाला ग्रन्थागार	आरम्भिक पाठशाला है ।
सडक आदि की व्यवस्था—	कच्ची सडक है ।
पालतू जानवर—	गाय, वैल, भैंस ।
खेत किस-किस का करते हैं—	गेहूँ, आलू, मटर ।
जातिविरादरी की सकीर्णता—	है ।
साधारण अर्थनैतिक अवस्था—	गरीब लोग है ।
पटवारी आदि कौन-कौन हैं—	
समाज मे आधुनिकता—	नही ।
भापा सम्वन्धी आधुनिकता—	एक-आध अग्रेजी शब्द का प्रयोग ।

गाँव की ऐतिहासिक तथा सामान्य वार्ता

इस गाँव की आवादी प्राय १८०० है । स्थानीय स्कूल के पण्डित जी के अनुसार इसमे २५० परिवार हैं । इस गाँव मे दो धर्मो (हिन्दू, मुसलमान) के विभिन्न उपजातियो के लोग वसे हुए है । उन लोगो के परिवारो की सख्या निम्न प्रकार है

हिन्दू

१	ब्राह्मण	१४
२	जाट	५०

मुसलमान

१	मिरासी	२

इस गाँव मे जातक सस्कारो के अतिरिक्त नौरता, झाँझी, टेसू, दिवाली, होली, आदि व्रत त्यौहार मानते है। इसके अलावा ग्रामीण जनता मे मगलार्थ होम आदि भी करते हैं।

गाँव की कला

इटौरा गाँव लोक कला की दृष्टि से विशिष्ट मालूम नही पडा। घरो की बनावट अन्य कुछ गाँवो की तरह कलापूर्ण नही है। दिवाली, दशहरा, आदि के अवसर पर दीवार आदि चित्रित करने की प्रथा अब भी है। लेकिन वह अपना वैशिष्ट्य छोडकर प्रतीक मात्र ही रह गयी है। ब्राह्मण और बनिया लोगो के घरो की दीवारो पर धनुष मुद्रा, हस्तछाप और स्वस्तिका के चित्र देखने को मिले। चित्र गेरुआ और सफेद रग का था। विवाह के अवसर पर बनाये गये चित्र किवाडो की दोनो तरफ की दीवारो पर कई रगो मे अकित पाये गये, जिनका फोटो लिया गया।

व्यावसायिक कलाकार के रूप मे यहाँ के कुम्हार लोग हैं। टेसू, झाँझी आदि की मूर्ति के अतिरिक्त गाँव के लिए आवश्यक विभिन्न प्रकार के मिट्टी के वर्तन वे लोग बनाकर देते हैं।

कताई, बुनाई, शिल्प यहाँ नही के बराबर है। विवाह के अवसर पर समधिन के लिए जिस "घडे" मे मिठाई आदि भेजते है उसकी कारीगरी देखने लायक है। पीले रग के ऊपर लाल रग से इसे चित्रित करते है। सामान्यत इसे गाँव की स्त्रियाँ ही बनाती है।

चमार, धीमर आदि जातियो के घर हमेशा लिपे-पुते रहते है। इसलिए दीवारो के चित्र आदि के सम्बन्ध मे कुछ पता नही चला। समयाभाव के कारण इसका विशेष अध्ययन करना सम्भव नही हुआ।

स्त्रियो के अलकारो के बहुत नाम मिले। लेकिन अलकार देखने का सौभाग्य नही मिला। शहरी जीवन के प्रभाव से प्राचीन कला-विशिष्ट अलकार लुप्त-से हो गये हैं।

गाँव के तन्त्र-मन्त्र

गाँव के लोगो की तथा पशुओ की चिकित्सा तन्त्र-मन्त्र से भी करते हैं। इस गाँव मे इस प्रकार के हमे तीन आदमी मिले

(१) श्री जगन्नाथ ठाकुर—उम्र ४५, दूसरा पेशा नही है। वडा भाई दूकानदार है। बीछू के दशन पर, नजर लग जाने पर, माता निकलने पर मन्त्र आदि पढकर चिकित्सा करते है। भूत-प्रेत की चिकित्सा भी आप करते हैं।

(२) श्री बुधिराम— उम्र ५५। पेशा खेती करते है। वश परम्परा से इनके परिवार पशुओ की चिकित्सा करते आये हैं। जडी-बूटी और मन्त्र आदि से चिकित्सा करते हैं। लेकिन यह उनका पेशा नही है।

(३) जवान लडका है— इनसे कुछ साधारण मन्त्र सग्रह किये गये।

सर्वेक्षण में कठिनाइयां तथा समाधान

सर्वेक्षण प्रतिवेदन की समाप्ति से पहले लोकवार्ता सग्रह कार्य मे कितने प्रकार की असुविधाएँ झेलनी पडी, उसका वर्णन कर देना उचित होगा।

प्रारम्भिक कार्य के लिए जाने वाले हम तीनो व्यक्ति अहिन्दी भाषी होने के कारण हिन्दी भाषी लोगो के साथ बातचीत करने मे दिक्कत होने का डर था। लेकिन कार्य-क्षेत्र मे इस तरह की असुविधाएँ नही हैं यद्यपि एक ही बात को कभी-कभी दुहराना पडा।

यह गाँव शहर से ज्यादा दूरी पर नही। अत लोग शहराती जीवन से परिचित होने के कारण हमे पहले सन्देह की दृष्टि से देखने लगे थे।

कुछ लोग वोट माँगने वाला समझते थे तो कुछ लोग सिनेमा मे काम करने वाला। कुछ लोगो को यह सन्देह था कि हम पुलिस के आदमी हैं। टेप रिकार्डर से इनके इस प्रकार के सन्देहो की पुष्टि होती थी।

स्थानीय राजकीय प्राइमरी स्कूल के प्रधान शिक्षक श्री नन्दनलाल जी (जिनके लिए आगरा खण्ड के स्कूल के उप-निरीक्षक श्री सिद्धेश्वरनाथ जी श्रीवास्तव से एक पत्र ले गये थे) के जरिये इस तरह की शकाओ का समाधान हुआ।

सग्रह कार्य मे दूसरी असुविधाएँ ही ज्यादा हुईं। जैसे—

(१) जाति भेद की सकीर्णता—जिसके कारण सभी लोगो को एक ही जगह इकट्ठा नही कर पाये। समय की कमी के कारण घर-घर मे जाकर सग्रह करना सम्भव नही था।

(२) पर्दा प्रथा।

(३) व्यवहार सम्बन्धी असावधानता ने भी एक बार परिचय सग्रह करने मे असुविधा कर दी थी।

प्रथम प्रकार की असुविधा के अतिरिक्त बाकी दोनो प्रकारो की असुविधाओ का समाधान तो कर लिया गया।

अपनी तरफ से भी हमारी एक गलती हो गयी है। इटौरा गाँव के एक व्यक्ति ही हमे इटौरा गाँव तक ले गये। उनके कहने के अनुसार ही हम उस गाँव के दूकानदार श्री जीवारामजी की दूकान पर पहुँचे जहाँ करीब-करीब पन्द्रह-बीस आदमी इकट्ठे हो गये और हमें जानकारी हासिल करने की सुविधा हुई। लेकिन हमे यह सोचने का अवसर नही मिला कि वे सब लोग उच्च जाति का प्रतिनिधित्व करने वाले आदमी ही थे। गाँव सम्बन्धी जानकारी सभी अभिज्ञ आदमी रखते हैं। यह समझकर ही हमने सभी बातो की प्रामाणिकता ढूँढने की कोशिश नही की—जिसके कारण चमार आदि जातियो की बातें अधिक सग्रह नही कर सके। अनुभव यह हुआ है कि आचार्य डा० सत्येन्द्र जी के कहने के अनुसार गाँवो के चारो तरफ किसी को

कुछ पूछे बिना ही एक बार घूम लेना चाहिए और विभिन्न लोगो की स्थिति को देख लेना चाहिए।

अपना अनुभव

इन दृष्टियो से इटौरा गाँव का अध्ययन करने के उपरान्त यह मालूम हुआ कि यह गाँव धीरे-धीरे लोकजीवन से दूर हटता जा रहा है। आगरा शहर की कृत्रिमता गाँववासियो पर अपना प्रभाव डालने लगी है। जाट और चमारो की औरतो मे अब भी लोकजीवन की विशिष्टता विद्यमान है। लेकिन इन लोगो का अध्ययन अपूर्ण रहा।

इस गाँव के अध्ययन करने पर यह अनुभव हुआ कि—

(१) एक गाँव का लोकतात्विक अध्ययन एक ही दिन मे पूरा करना सम्भव नही है।

(२) लोकवार्ता के सग्रह की दृष्टि से दिन की अपेक्षा रात का समय अधिक उपयुक्त है।

(३) लोक गायक आदि को कुछ आर्थिक सहायता देना भी जरूरी है।

(४) महिलाओ की निकटता प्राप्त करने के लिए सग्रहकारी दल मे यदि कोई महिला हो तो सग्रह कार्य सहज हो जाता है।

ऊपर की कमियो के बावजूद भी इटौरा गाँव का अध्ययन कर हमे बहुत ही आनन्द प्राप्त हुआ तथा यह अनुभव हुआ कि धीरज के साथ काम करने पर गाँवो का लोकतात्विक सर्वेक्षण आसानी से हो सकता है। इटौरा गाँव के लोगो का सहयोग इस दिशा मे प्रशसनीय है। परिशिष्ट मे उन व्यक्तियो के परिचय दे रहे हैं जिनसे हमे इस सर्वेक्षण कार्य मे विशेष रूप से सहायता मिली।

परिशिष्ट (क)

१ डा० सत्येन्द्र—आप हमारे लोकवार्ता विज्ञान विषय के निर्देशक हैं। आपके निर्देश और उपदेश के अनुसार ही सर्वेक्षण किया गया है।

२ श्री राम सनेही शर्मा—आप आगरा तहसील के सहायक उपविद्यालय निरीक्षक हैं। आपसे इटौरा गाँव सम्बन्धी जानकारी मिली और साथ ही उपविद्यालय निरीक्षक से श्री नन्दनलाल जी के लिए निर्देश पत्र प्राप्त करने मे सहायता पहुँचाई।

३ श्री सिद्धेश्वरनाथ श्रीवास्तव— आप आगरा जिले के उप-विद्यालय निरीक्षक है। इनकी चिट्ठी से ही प्रभावित होकर श्री नन्दनलालजी ने हमारी सहायता की।

इटौरा गाँव के व्यक्ति

४ श्री श्यामलाल—उम्र ७५ वर्ष, जाति ब्राह्मण। खुद नित्य भजन करते है। विनयपत्रिका और सूरदास के पद गाते है। इटौरा गाँव मे सबसे वयोवृद्ध बतलाये गये है। सामान्य शिक्षित है। भारतवर्ष के प्राय सभी तीर्थों का पर्यटन कर चुके हैं। सवालो का जवाब बनावटी ढग से देने की कोशिश करते हैं।

५ श्री नन्दनलाल—उम्र करीब ३५ वर्ष की। पास के गाँव के ही व्यक्ति हैं। इटौरा राजकीय प्राइमरी स्कूल के प्रधान शिक्षक हैं। दोनो दिन हमारी सहायता की। उप-विद्यालय निरीक्षक के पत्र के कारण काफी उत्साह भी दिखाया। खुद लोकगीतो मे रस लेते है। एक 'रसिया' गाकर सुनाया था।

६ प्रो० दीनानाथ—उम्र २५-२६ वर्ष की होगी। राजस्थान के एक कालेज मे अग्रेजी विषय के अध्यापक हैं। इस गाँव के एकमात्र उच्च शिक्षित व्यक्ति हैं। हाल मे ही इनकी शादी हुई। नृत्य सम्बन्धी सूचनाएँ इनसे मिली।

७ श्री जगन्नाथ ठाकुर—४०-४१ वर्ष की उम्र के है। जाति जाट है। इनसे मन्त्र सम्बन्धी सूचना मिली। दाढी आदि रखकर 'भक्त' जैसा जीवन बिताते हैं।

८ श्री जीवाराम—श्री जगन्नाथ ठाकुर के बडे भाई है। उम्र ४४-४५ वर्ष की होगी। इस गाँव के दुकानदार हैं।

९ श्री मनिया बाबा—एक लोक गायक हैं। (व्यावसायिक)। नाथ पथी हैं। उम्र ४४-४५ वर्ष की होगी। आप भी इटौरा गाँव के ही हैं। इनसे दो गीत लिख लिये गये हैं।

१० अज्ञात नाम— दूसरे गाँव से आये थे। इनके तीन गीत रेकार्ड किये गये।

११ श्री बुधिराम—पशु चिकित्सा सम्बन्धी सूचनाएँ आपसे मिली थी।

१२ श्री ज्ञानी राम—जाट हैं। आधुनिकता से प्रभावित हैं। लोक-साहित्य मे रस लेते हैं।

इन लोगो के अतिरिक्त इटौरा राजकीय प्राइमरी स्कूल के छात्र, छात्राएँ तथा गाँव की स्त्रियो से गीतो के सग्रह मे सहायता मिली।

परिशिष्ट (ख)

(स्त्रियो के आभूषण)

सिर पर—शीशफूल ।

कान के—तडकी, तकसी, बोल्ला ।

नाक के—नथ, सीक, कीलडी ।

गले के—मोहनमाला, मटरमाला, जौमाला, गलबन्द ।

हाथ मे—बडा बाजू, बगची, अगली, कडौला, हाथफूल, मूदरी ।

पैर मे—खड ुवा, सल्ली, बिछुआ, पाइजेब, मुरडे, लच्छे, अनोखे, झाझन (नुपुर)

अँगुली पर—अँगूठी ।

यह बात यहाँ उल्लेखनीय है कि यह सर्वेक्षण एक अभ्यास की दृष्टि से कराया गया था । अत सग्रह मे कुछ नमूने की सामग्री ही ली गयी ।

लोकवार्ता के ऐसे क्षेत्रीय अभ्यासो की दृष्टि से कम से कम चार प्रकार के विषयो को अवश्य लेना चाहिए । एक सर्वेक्षण सामान्य रूप का । इसका उदाहरण दिया जा चुका है ।

दूसरा विषय लोक-धर्म (Folk-religion) विषयक होना चाहिए । लोक-धर्म के किसी एक लोक-तत्त्व प्रधान पहलू को लेकर । जैसे भैरो, हनुमान, देवी, शिव आदि पर । इससे लोक-सस्कृति के स्थूल रूप का पता चलेगा ।

तीसरा विषय—स्यानावाद अथवा भूत-प्रेत, पूजा तथा लोक चिकित्सा । इससे लोक के सूक्ष्म आत्म-जगत का ज्ञान होगा ।

चौथा विषय—लोक-क्रीडा विषयक या लोक-कला विषयक ।

प्रश्नमाला

यह कहने की आवश्यकता नही कि प्रत्येक प्रकार के विपयक के लिए सकलन-टोली या सकलनकर्ता को उसके अनुरूप ही प्रश्नमाला बनानी होगी । उदाहरणार्थ मान लीजिए आप अपने अनुसन्धानार्थ भूत-प्रेत पूजा के विषय मे प्रवृत्त होना चाहते हैं । इसकी प्रश्नमाला कुछ-कुछ उस प्रश्नमाला के अनुरूप हो सकती है जो 'गगा-पथ' अनुष्ठान दिवस के पर्यवेक्षण के लिए एक टोली के लिए बनायी गयी थी—वह कुछ इस प्रकार थी—

प्रेत-पूजा विषयक क्षेत्रीय अभ्यास

गगापथ—थान (पुरागोवर्द्धन आगरा)

अनुष्ठान का दिन ४ अक्तूबर १९६० शरदपूर्णिमा

१ समस्त चौगिर्दा का विस्तृत अध्ययन १ इस पूजा का थान ।

२ थान के ओर पास के वृक्ष ।

		३	मकान वगैरह।
		४	गाँव तथा उसकी जनसख्या।
		५	उस गाँव के मन्दिर या अन्य पूजा के थान।
२	गगापथ—ऐतिहासिक वि	१	किसने आरम्भ किया? क्या ये चतुर्भुज ही थे? चतर्भुज जी का कुछ जीवन परिचय।
		२	कब और कहाँ आरम्भ हुआ?
		३	क्यो आरम्भ किया गया?
		४	इसका विस्तार और विकास कैसे हुआ? इस पथ के अन्य थान?
		५	पुरागोबर्द्धन थान का विवरण किसने चलाया? कब और क्यो आरम्भ किया?
		६	पुरागोवर्द्धन के थान के अधीन कुछ अन्य उप-थान।
३	गगापथ अनुष्ठान तथा दर्शन	१	यह गगापथ क्यो कहलाता है?
		२	इसमे गगा कैसे पूजी जाती है?
		३	भूत-प्रेत आह्वान तथा पूजा का क्या रूप तथा प्रक्रिया है।

इस प्रकार 'प्रश्नमाला' का रूप विविध प्रकार के विषयो के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार का हो सकता है। कभी-कभी प्रश्नमाला का रूप मात्र 'सकलन-पत्र' के जैसा हो सकता है।[1] पर इसमे सन्देह नही कि प्रश्नमाला एक अनिवार्य वस्तु है। बिना इसके विधिवत सामग्री-सकलन का कार्य नही हो सकता। आज सभी प्रकार के अनुसन्धान-काय प्रश्नमाला या सकलन-पत्र के आधार पर किये जाते हैं।

प्रश्नमाला की भाँति ही निर्देश-पुस्तिका की भी आवश्यकता है। यह निर्देश-पुस्तिका उन लोगो के तो बहुत ही काम की सिद्ध हो सकती है जो शौकिया कार्य कर रहे हैं और जिन्हे विधिवत् शिक्षा नही दी गयी। पर, उनके भी कम उपयोग की वस्तु नही जो शिक्षा पाये हुए हैं। उन्हे कभी-कभी समझे हुए विषय को पुन समझने की भी आवश्यकता हो सकती है। ऐसे अवसरो पर यह गाइड बहुत लाभप्रद सिद्ध होती है।

हिन्दी क्षेत्र मे सबसे पहले ब्रजसाहित्य मण्डल मथुरा ने ही सकलन-पत्र और निर्देशिका पुस्तक का आयोजन किया था।[2]

---

[1] देखिए आगे सकलन-पत्र, पृ० १५९।

[2] देखिए आगे निर्देश पुस्तिका (विधि-पुस्तिका) 'ग्राम साहित्य सकलन क्यो? और कैसे?' पृ० १६०।

दैनंदिनी (डायरी)

प्रत्येक कार्यकर्ता को क्षेत्र मे काम करते समय प्रत्येक दिन का पूरा विवरण डायरी मे देना चाहिए। ये डायरियाँ बहुत उपयोगी सिद्ध होती है। ये केन्द्र की ही सम्पत्ति होती हैं।

पुस्तक

विधिवत प्रशिक्षण के लिए यह भी आवश्यक है कि प्रत्येक 'क्षेत्रीय अभ्यास' को एक पुस्तक मे विधिवत् लिखा जाय। इसके सम्बन्ध मे कोई विस्तृत ब्यौरा देना उपयोगी नही माना जा सकता।

प्राध्यापक अपनी-अपनी दृष्टि से इन्हे तैयार करा सकते है। हाँ, वैज्ञानिक प्रयोग पुस्तिकाओ की भाँति यदि केवल एक ओर बिना रेखाओ वाला कागज हो और दूसरी ओर रेखाओ वाला तो अच्छा रहेगा।

कार्यगत दृष्टि

इस कार्य मे प्रवृत्त होने वाले को कुछ विशेष तैयारियो की आवश्यकता है। सबसे पहले तो प्रश्न यह उपस्थित होता है कि सग्रह के लिए किस दृष्टि को अपनाया जाय।

एक दृष्टि है—सम्पूर्ण लोकवार्ता की दृष्टि से।

दूसरी दृष्टि है—केवल सम्पूर्ण लोक-साहित्य की दृष्टि से।

तीसरी दृष्टि है—केवल लोक-साहित्य के विशिष्ट रूप या अग की दृष्टि से।

लोकवार्ता की दृष्टि

लोकवार्ता के विषय—सम्पूर्ण लोकवार्ता की दृष्टि से काम करने वाले को लोकवार्ता विषयक समस्त सामग्री का सकलन करना होगा।

१ लोक-विश्वास
२ लोक-गीत
३ लोक-कथा
४ लोकोक्ति
५ मन्त्र
} लोक-साहित्य

६ लोक-चित्र
(१) चीतने (४) जन्त्र
(२) धरने (५) खोदने
(३) भरने (६) गोदने

७ लोक-नृत्य
८ लोक-नाट्य
९ लोक-खेल
१० लोक-अनुष्ठान
(१) सस्कार सम्बन्धी, (२) व्रतादि,
(३) झाड फूंक वाले।

११ लोक-दस्तकारी।

१ लोक-विश्वास मे छीक, छिपकली, बिल्ली, कुत्ता, अग-स्फुरण, आदि शकुन-अपशकुन तथा भावी-कथन आते हैं। इनका लोक-जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। लोक-जीवन मे पद-पद पर ये विश्वास अपना प्रभाव डालते मिलते हैं।

२ लोक-साहित्य के अन्तर्गत लोक-मानसोद्भूत समस्त वाणी विलास आता है। इसमे मन्त्रो को भी स्थान मिलेगा क्योकि मन्त्र बडी घनिष्ठतापूर्वक लोक-विश्वासो से सम्बद्ध हैं।

३ लोक-चित्रो मे।

(अ) चीतने आते हैं, घडे आदि चीते जाते हैं, यह चिताई किसी गाढ़े लेपनीय पदार्थ से की जाती है। गोबर, चून (गेहूँ का या चावल का), हल्दी रोली आदि से।

(आ) भूमि अथवा भित्ति पर जो चित्र काढ़े जाते है, उन्हे 'चित्र' धरना कहा जाता है।

(इ) भरने वाले चित्रो मे शास्त्रीय धूलि-चित्र आते हैं। रग के सूखे चूर्णो से यो ही या साँचो के द्वारा जो चित्र भूमि पर या पट्टे पर बनाये जाते हैं, वे भरकर बनाये जाने वाले चित्र होते है।

(ई) जन्त्रो को यद्यपि पारिभाषिक दृष्टि से यथार्थत चित्र नही कह सकते, फिर भी इनमे रेखाकन रहता है, अत इन्हे यहाँ ही स्थान दे दिया गया है। यो जन्त्र को अलग भी स्थान दिया जा सकता है। किसी भी दृष्टि से लिया जाय, जन्त्रो का स्थान लोकवार्ता मे है अवश्य। इसीलिए लोकवार्ता की दृष्टि से इनका भी सग्रह-सकलन होना चाहिए।

(उ) कुछ कृतियाँ पृथ्वी पर खोदी या उकेरी जाती हैं, उन्हे खोदने कहते हैं।

(ऊ) शरीर पर गोदने गोदे जाते हैं।

४ लोक-नृत्य—आदिम से आदिम और सभ्य से सभ्य समाज मे नृत्यो का महत्त्व है। लोकवार्ता की दृष्टि से लोक-मानस-प्रेरित नृत्य ही इसके अन्तगत आयेंगे, शास्त्रीय नृत्य नही। लोक-नृत्यो मे भी कुछ आनुष्ठा-निक होते है, कुछ मनोरजक। दोनो का सकलन करना होता है।

नृत्य सामूहिक तथा एकान्तिक हो सकता है। अकेले व्यक्ति का नृत्य एका-न्तिक कहा जायगा। एक से अधिक का सामूहिक।

एकान्तिक नृत्य मे—

१ गति—गति से सम्बन्ध पद-गति से है। नृत्य मे पैर की गति का क्या रूप होता है यह देखना होता है।

२ थिरकन-सिहरन—शिख से नख तक अग-प्रत्यग मे आवश्यकतानुसार थिरकन और सिहरन होती है ।

३ मुद्रा—सर्वांग, पैर, हाथ, सिर तथा मुख के विशेष रूप, आकार-विकार तथा स्थितियाँ ।

४ नाट्य या चापल्य (Acrobatic)—नृत्य मे शरीर को विविध गतियो या चापल्य से गति-रूपो मे परिवर्तित करना ।

५ भूमि—नृत्य मे कितनी भूमि का उपयोग किया जाता है, नर्तक कहाँ से कहाँ तक एक 'लय' मे जाता है, यह भूमि के अन्तर्गत आता है ।

६ ताल—नृत्य मे गीत की भाँति 'समय या ताल' का भी महत्त्व है ।

७ लय—जैसे सगीत मे लय होती है, वैसे ही नृत्य मे भी ताल से ताल के बीच तथा ताल-उत्क्रामक लय होती है ।

८ फिरकन—चक्रित होने को फिरकन कहते है । फिरकनी या घूमनी की भाँति एक ही स्थान पर घूमते चले जाना, चले जाना ।

सामूहिक-नृत्यो मे कुछ और बाते भी देखी जाती है

१ सख्या तथा क्रम

२ आकार, व्यूह-रचना (pattern) अथवा रूप

३ शैली

४ नाट्य अथवा नटकला

५ स्वाग-तत्त्व

इन नृत्यो को कई वर्गो मे बाँटा जा सकता है—

१ अभिप्राय की दृष्टि से—ये गीत प्रेमाभिव्यक्ति के लिए है या मैत्री के लिए, या विवाह के उपलक्ष्य मे है, अथवा किसी व्यवसाय से सम्बन्धित हैं, अथवा उत्पादन के लिए है, या ग्रहशमन के लिए है या शिकार की सफलता के लिए हैं, या किसी चिकित्सा से सम्बन्धित है, मृत्यु विषयक भी हो सकते हैं, धार्मिक तल्लीनता के हो सकते हैं, भाँडो के हो सकते हैं ।

२ जातीय क्षेत्रो की दृष्टि से अफ्रीका, एशिया आदि विविध देशो की जातियो के अपने गीत ।

लोक-नाट्य

कुछ एकान्तिक नृत्यो और सामूहिक नृत्यो मे स्वाग-तत्त्व रहता है । स्वाग-तत्त्व से युक्त लोक-नृत्य लोक-नाट्य के निकट होते हैं । नृत्य जब भावाभिव्यक्ति की प्रबलता से बहुत कथात्मक होने लगता है, और आगिक तथा कायिक अभिव्यक्ति की मुद्राएँ कुछ नाटकीयता से युक्त होने लगती हैं, तो नृत्य मे नाट्य की प्रधानता मानी जा सकती है । जहाँ नाट्य का अश कम, और ऐसी नाटकीयता का अश अधिक हो जाता है तो

उसे नाट्य कह सकते हैं। लोक-भूमि पर वस्तुत शुद्ध नृत्य की तो किसी सीमा तक कल्पना की भी जा सकती है, पर शुद्ध नाट्य की सम्भावना बहुत कम है।

लोक-नाट्य के कितने ही रूप हमे मिलते हैं। स्थूल रूप मे कुछ नाम उदाहरणार्थ यहाँ दिये जाते हैं (१) रास, (२) स्वाग, (३) भँडैती या नकल, (४) भगत या नौटकी, (५) सागीत स्वाग, (६) खोइया, (७) शारीरिक या कायिक।

लोक-नाट्य मे नाट्य अथवा अभिनय, नृत्य, सगीत तथा सभापण या सलाप या कथोपकथन तथा कथा-तत्त्व सभी बातें किसी न किसी रूप या परिमाण मे होती हैं। स्वाग, भँडैती और खोइया मे सगीत और नृत्य का कभी-कभी अत्यन्ताभाव हो सकता है। स्वाग और खोइया निजी मनोरजन और आवश्यकता के अनुसार अव्यावसायिक भाव से होते है। अन्य लोक-नाट्य मे वाणी-विषयक आधार के लिए पहले कृति प्रस्तुत की जाती है। उसी के आधार पर उन्हे खेला जाता है। ये कृतियाँ तो लोक-साहित्य के अन्तर्गत रखी जायँगी। लोक-नाट्य के अन्तगत अन्य बातो पर ध्यान दिया जाता है, यद्यपि कृति का आधार निरन्तर रखा जाता है।

लोकवार्ता के समग्र रूप को प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि इनके साथ ही लोक-खेलो, लोक अनुष्ठानो और लोक-दस्तकारी का भी सग्रह-सकलन किया जाय। लोकवार्ता के इतने रूपो को समझ लेने के उपरान्त अब यहाँ लोक-साहित्य के सकलन की विस्तृत विधि का विवरण दिया जाता है।

सकलनकर्ता

लोक-साहित्य के सकलन की दृष्टि से पहले तो यह विचारना है कि सकलनकर्ता कौन हो सकता है ?

सकलनकर्ता वस्तुत तो कोई भी व्यक्ति हो सकता है। ये अलग-अलग अपनी-अपनी दृष्टि से सकलन-कार्य कर सकते हैं, या किसी व्यवस्था के अन्तर्गत सघबद्ध होकर इसमे प्रवृत्त हो सकते है।

प्रत्येक अवस्था मे सकलन करने मे कुछ सामान्य आधार सभी सकलनो के लिए होना चाहिए।

इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए ब्रज-साहित्य मण्डल मथुरा ने एक सकलन-पत्र का आदर्श-रूप प्रस्तुत किया, और उसके आधार पर सकलन कराने मे पूरी-पूरी सफलता प्राप्त की।

इस सकलन-पत्र के साथ ही सकलन विधि को समझाने के लिए एक विधि पत्रिका भी प्रस्तुत की। ये दोनो यहाँ उद्धृत की जाती है—

योग्यताएँ

सकलनकर्ता में कुछ सामान्य और कुछ विशेष योग्यताएँ हो तो काम अच्छा हो सकता है। सामान्य योग्यताएँ

१ लोक और लोक-साहित्य मे रुचि हो।

२ लोगो का विश्वास प्राप्त करके उनसे अभीप्सित वस्तु निकलवाने का कौशल ।

३ त्वरित लेखन का अभ्यास ।

विशेष योग्यताएँ—(१) टेप रिकार्डर के प्रयोग का ज्ञान, (२) अन्तर्राष्ट्रीय ध्वनि वैज्ञानिक वर्णमाला का ज्ञान, (३) अन्तर्राष्ट्रीय नृत्यरूपो का ज्ञान, (४) अन्तर्राष्ट्रीय तथा भारतीय सगीत स्वर लिपि का ज्ञान ।

ग्राम-साहित्य सकलन-पत्र

१—सकलनकर्ता का नाम
  पूरा पता

२—जाति व वर्ण

३—आयु

४—सकलित वस्तु का नाम

५—स्थान जहाँ वह प्रचलित है

६—जाति, जिसमे विशेष रूप से प्रचलित है

७—विशेप अवसर जिन पर प्रचलित है

८—स्त्री या पुरुप समाज जिसमे प्रचलित है

९—प्राप्ति साधन

१०—निर्माता का नाम

११—सक्षिप्त परिचय

१२—प्राप्ति-स्थान

१३—विशेप सूचना

१—इसके पीछे के पृष्ठ पर सकलित ग्रामगीत, कहानी, चुटकुले, मुहावरे, कहावत तथा विशेष ग्रामीण शब्द लिखे जा सकते हैं ।

२—गीतो मे जन्म विवाह, अन्य सस्कार, व्रत, त्योहार, यात्रा, ऋतु, चक्की, कुआँ, हल, भिखारी, मन्दिर, झूलो के तथा बच्चो के सुलाने व खिलाने आदि सभी के गीत सम्मिलित हो सकते हैं ।

३—सकलन मे भापा के प्रचलित रूप की ओर विशेप ध्यान दिया जाये। उसे अपनी ओर से शुद्ध करने की तनिक भी आवश्यकता नही है ।

यह तो उस फार्म का पहला रूप था । बाद मे इसमे कुछ आवश्यक परिवर्तन और कर दिये गये । पहले सकलन से यह विदित हुआ था कि इस उद्योग मे जितनी गहराई की आवश्यकता है उतनी गहराई और व्यापकता नही आयी है । फलत सकलनकर्ताओ की सहायता के लिए मण्डल के द्वारा एक सकलन प्रणाली पर छोटी पुस्तिका लिखकर भिजवायी गयी । वह इस प्रकार थी ।

विधि पत्रिका

●●

१—ग्राम-साहित्य मे युगो से चले आने वाले ग्रामीण मानव का हृदय सुरक्षित है। उसके सकलन मे एक पवित्र सावधानी की आवश्यकता है।

२—ग्राम-साहित्य के सकलनकर्ता की दृष्टि मे ग्रामीणो की वाणी से उद्गरित होने वाला कोई भी भाव घृण्य अथवा अश्लील नही प्रतीत होना चाहिए, मानवीय सहानुभूति और सहृदयता रखते हुए साहित्य-सकलन करना उचित है।

३—सकलन करते समय जो भाग सकलनकर्ता को स्वय समझ न पडे, और जिसके सम्बन्ध मे ग्रामवासी भी कोई सन्तोषजनक समाधान न दे सकें, उसे विशेष सावधानी से लिपिबद्ध करने की आवश्यकता है। उसमे किसी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रहस्य के निहित होने की सम्भावना है।

ग्राम साहित्य क्या ?

गाँव के मनुष्यो का मौखिक उद्‌गार साहित्य है। जो कुछ भी वे मुख से कहते हैं यदि वे

१—उसे अपने बडे-बूढो से कई पीढियो से सुनते चले आये हैं।

२—उसका उपयोग मनोरजन या शिक्षा या ज्ञानवर्द्धन के लिए करते आये हैं या करते हैं ?

३—उसके गाँव निवासी ने ही रचा है, और बहुत अधिक गाँव मे तथा पास-पडोस मे प्रचलित हो गया है।

४—गाँव वालो के किसी सस्कार, त्यौहार या पूजा से सम्बन्धित है।

५—गाँव वालो के खेलो से सम्बन्धित है।

६—गाँव वालो मे से किसी के विश्वास या अन्धविश्वास से सम्बन्धित है।

तो वह सब ग्राम-साहित्य है। उसका सकलन अवश्य कर लेना चाहिए।

ग्राम साहित्य के प्रकार

यो तो ग्राम साहित्य के अनेको प्रकार हो सकते हैं। पर यहाँ विशेष प्रकारो का उल्लेख कर देना पर्याप्त होगा। इससे सकलनकर्ताओ को सकेत मिल जायगा जिससे वह ऐसे प्रकार को भी ग्रहण कर सकेंगे जिसका उल्लेख यहाँ नहीं हो सका है।

१ ग्राम कहानी—ग्राम कहानी कई प्रकार की हो सकती है—

(अ) साधारण मनोरजक कहानी—राजा-रानी की या पशु-पक्षियो की या जादू-टोने की या परी-देवताओ की आदि।

(आ) जाति-विषयक कहानी—जिसमे किसी जाति-विशेष को लेकर कहानी कही गयी हो जैसे 'एक जाट ओ जाट' या 'एक कोरिया अपनी ससुरारि कूँ चलो' या 'एक काइथ ओ वु कवऊँ भगवती नाँइ करतो' आदि। इन कहानियो मे वे सभी कहानियाँ शामिल होगी जिनमे किसी जाति की दूसरी जाति से ऊँचाई प्रकट की गयी हो या जाति की विशेषता सूचित की गयी हो। जैसे नाई का छप्पनियापन, काइथ का काँइयाँपन, बनियाँ का पोचपन, जाट का भुच्चपन या और कोई ऐसी ही बात।

(इ) **धर्म विषयक**—जिसमे एक धर्म को दूसरे से बढकर दिखाया गया हो, या किसी धार्मिक देवता का कोई करतब दिखाया गया हो। जैसे एक कहानी मे गौरा-पारवती की उदारता दिखायी गयी है।

(ई) **त्यौहार-विषयक कहानी**—ऐसी कहानियाँ जो त्यौहार के मूल पर प्रकाश डालती हैं।

ऐसी कहानियाँ जो त्यौहारो की पूजा प्रणाली का अग हैं। जैसे कही-कही 'अनन्त चौदस' पर अनन्त की पूजा कहानी सुनने के बाद होती है। ये कहानियाँ बहुधा स्त्रियो के ही लिए होती है। ऐसे ही करवाचौथ या अहोई आठें आदि की कहानियाँ तथा कार्तिक स्नान की कहानियाँ हैं।

(उ) **अन्धविश्वास या विश्वास सम्बन्धी कहानियाँ, जैसे**—

१—गिलहरी की पीठ पर तीन धारियाँ क्यो हैं?

२—गोवर्द्धन पर्वत कहाँ से आया?

३—किसी-किसी घर मे बडियाँ क्यो नही तोडी जाती?

४—सती वग़ैरह की आन की कहानी।

५—गीदड क्यो रोते हैं?

६—कौए ने अमरौती कैसे खायी?

(ऊ) **कहावत की व्याख्या सम्बन्धी कहानी**—जैसे "आइ जा री सुख नीदरिया, तेरी भोर कटेगी मूँडरिया" की व्याख्या मे।

(ए) **पद्य-बद्ध अथवा पद्ययुक्त कहानियाँ**—जैसे कौए की 'ठूँठ चन्ना देइ नाँय मैं चब्बूँ का।'

ग्राम साहित्य के प्रकार

२ **ग्राम-गीत**—ग्राम-गीत जिस अवसर पर गाये जाते है उनके अनुसार वे कई प्रकार के हो सकते हैं।

१ सावन के गीत या झूले के गीत— ये गीत वर्षा ऋतु मे झूले पर या कभी-कभी साधारणत गाये जाते हैं।

२ न्यौरते के गीत—क्वार की नौदुर्गाओ मे प्रतिदिन जिस समय बालिकाएँ न्यौरता खेलती हैं उस समय गाये जाते है।

३ देवी के गीत, माता के गीत, शीतला के गीत, बाबू के गीत, कूआवारे के गीत।

४ तीर्थ-पर्व-स्नानादि के गीत, जैसे गगा-यात्रा या कार्तिक-स्नान के गीत।

५ होली तथा अन्य त्यौहारो के गीत, जैसे दिवाली पर 'स्याहू' के गीत या दौज के गीत।

६ टेसू के गीत, झाँझी के गीत तथा चट्टो के गीत।

७ जात के गीत।

८ सस्कारो के गीत—जनेऊ, विवाह, जन्ति आदि के।

९ खेल आदि के गीत।

१० चक्की के समय के गीत ।

११ विविध वर्गों के गीत—जैसे सँपेरो के, भोपाओ के, सरमनियो के, नटो के, भगतो के, देवी मनाने के ।

१२ विविध जातियो के गीत—धोबियो के, कुम्हारो के ।

१३ इतिवृत्तात्मक—आल्हा, ढोला, साके ।

१४ रसिया, कडखे, ख्याल, जिकडी ।

३ खेल साहित्य—ऐसे समस्त खेल जिनमे मौखिक किसी पद्य आदि का प्रयोग किया जाय जैसे—बच्चो के कई खेल यथा—

आटे-वाटे दही चटाके । वरफूले बगाली फूले ।।
बाबा लाये तोरई । भूजि खाइँ भोरई ।।आदि।।

[इन खेलो मे खेल के रूप का भी सकलनकर्ता को पूरा-पूरा विवरण देना चाहिए । केवल प्रयुक्त पद्य-मात्र से काम नही चलेगा ।]

४ पहेलियाँ—जैसे "पीरी पोखरि पीरेई अडा,
बेगि बताइ नँइ देतूँ डडा ।"

५ कहावतें—ऐसी सभी कहावतं जिनका (१) मूल रूप से गाँव मे ही किसी घटना के सम्बन्ध से निर्माण हुआ हो । [ऐसी कहावतो के साथ उन घटनाओ का भी पता लगाकर उल्लेख कर दिया जाय तो अच्छा रहेगा] (२) मूल निर्माण गाँव से सम्बन्धित नही पर गाँव वाले उसका प्रयोग अवश्य करते हैं, तथा—

"करि करि होमु पादि गयी दुर्गे'

६ चुटकुले—

७ विविध शब्द समूह—जैसे खेती सम्बन्धी, बर्तन बनाने आदि से सम्बन्ध रखने वाले । ऐसे प्रत्येक शब्द को एक पूरे विवरण के साथ देना चाहिए जिससे उसका रूप स्पष्ट हो जाय । यथा—

शक्कर बनाने का यन्त्र

(अ) गन्ने की चक्की

२६५—गन्ने की चक्की 'कोल्ह' (Kolh) या कोल्हू (Kolhu) प्रान्त भर मे कहलाता है । यूरोपियन फर्मो द्वारा प्रचलित की गयी पेटेण्ट चक्कियाँ कल कहलाती हैं ।

२६८—चक्की की नीव के खोखले काठ का हिस्सा—यही साधारणत कोल्ह या कोल्हू कहलाता है । वह छेद जिसमे पेरने के लिए गन्ने रखे जाते हैं । गगा के उत्तर में पश्चिम की ओर 'खान' कहलाता है या चम्पारन मे 'घर' या पूर्व मे कुण्ड, या कूड, शाहाबाद मे यह हडा या हडोल्वा कहलाता है । दक्षिण मुगेर में यह हाढा है और अन्यत्र गगा के दक्षिण मे हण्ढा या हण्डा । किनारे के चारों ओर इसके सिरे पर मिट्टी की एक मेड लगा दी जाती है, जिससे गन्ने के टुकडे न गिर सकें, यह पैंड

(इ) **धर्म विषयक**—जिसमे एक धर्म को दूसरे से बढकर दिखाया गया हो, या किसी धार्मिक देवता का कोई करतब दिखाया गया हो। जैसे एक कहानी मे गौरा-पारबती की उदारता दिखायी गयी है।

(ई) **त्यौहार-विषयक कहानी**—ऐसी कहानियाँ जो त्योहार के मूल पर प्रकाश डालती हैं।

ऐसी कहानियाँ जो त्यौहारो की पूजा प्रणाली का अग हैं। जैसे कही-कही 'अनन्त चौदस' पर अनन्त की पूजा कहानी सुनने के बाद होती है। ये कहानियाँ बहुधा स्त्रियो के ही लिए होती हैं। ऐसे ही करवाचौथ या अहोई आठें आदि की कहानियाँ तथा कार्तिक स्नान की कहानियाँ हैं।

(उ) **अन्धविश्वास या विश्वास सम्बन्धी कहानियाँ, जैसे**—

१—गिलहरी की पीठ पर तीन धारियाँ क्यो हैं ?

२—गोवर्द्धन पर्वत कहाँ से आया ?

३—किसी-किसी घर मे बडियाँ क्यो नही तोडी जाती ?

४—सती वगैरह की आन की कहानी।

५—गीदड क्यो रोते हैं ?

६—कौए ने अमरौती कैसे खायी ?

(ऊ) **कहावत की व्याख्या सम्बन्धी कहानी**—जैसे "आइ जा री सुख नीदरिया, तेरी भोर कटेगी मूँडरिया" की व्याख्या मे।

(ए) **पद्य-बद्ध अथवा पद्ययुक्त कहानियाँ**—जैसे कौए की 'ठूँठ चन्ना देइ नाँय मैं चव्वूँ का।'

ग्राम साहित्य के प्रकार

२ **ग्राम-गीत**—ग्राम-गीत जिस अवसर पर गाये जाते है उनके अनुसार वे कई प्रकार के हो सकते हैं।

१ सावन के गीत या झूले के गीत— ये गीत वर्षा ऋतु मे झूले पर या कभी-कभी साधारणत गाये जाते हैं।

२ न्यौरते के गीत—क्वार की नौदुर्गाओ मे प्रतिदिन जिस समय बालिकाएँ न्यौरता खेलती हैं उस समय गाये जाते हैं।

३ देवी के गीत, माता के गीत, शीतला के गीत, बाबू के गीत, कूआवारे के गीत।

४ तीर्थ-पर्व-स्नानादि के गीत, जैसे गगा-यात्रा या कार्तिक-स्नान के गीत।

५ होली तथा अन्य त्यौहारो के गीत, जैसे दिवाली पर 'स्याहू' के गीत या दौज के गीत।

६ टेसू के गीत, झाँझी के गीत तथा चट्टो के गीत।

७ जात के गीत।

८ सस्कारो के गीत—जनेऊ, विवाह, जन्ति आदि के।

९ खेल आदि के गीत।

१० चक्की के समय के गीत।

११ विविध वर्गों के गीत—जैसे सँपेरो के, भोपाओ के, सरमनियो के, नटो के, भगतो के, देवी मनाने के।

१२ विविध जातियो के गीत—धोबियो के, कुम्हारो के।

१३ इतिवृत्तात्मक—आल्हा, ढोला, साके।

१४ रसिया, कड़खे, ख्याल, जिकड़ी।

३ खेल साहित्य—ऐसे समस्त खेल जिनमे मौखिक किसी पद्य आदि का प्रयोग किया जाय जैसे—बच्चो के कई खेल यथा—

आटे-बाटे दही चटाके। बरफूले बगाली फूले॥
बाबा लाये तोरईं। भूँजि खाईं भोरईं॥आदि॥

[इन खेलो मे खेल के रूप का भी सकलनकर्ता को पूरा-पूरा विवरण देना चाहिए। केवल प्रयुक्त पद्य-मात्र से काम नही चलेगा।]

४ पहेलियाँ—जैसे "पीरी पोखरि पीरेई अडा,
बेगि बताइ नँइ देतूँ डडा।"

५ कहावतें—ऐसी सभी कहावतें जिनका (१) मूल रूप से गाँव में ही किसी घटना के सम्बन्ध से निर्माण हुआ हो। [ऐसी कहावतो के साथ उन घटनाओ का भी पता लगाकर उल्लेख कर दिया जाय तो अच्छा रहेगा] (२) मूल निर्माण गाँव से सम्बन्धित नहीं पर गाँव वाले उसका प्रयोग अवश्य करते हैं, तथा—

"करि करि होमु पादि गयी दुर्गे'

६ चुटकुले—

७ विविध शब्द समूह—जैसे खेती सम्बन्धी, बर्तन बनाने आदि से सम्बन्ध रखने वाले। ऐसे प्रत्येक शब्द को एक पूरे विवरण के साथ देना चाहिए जिससे उसका रूप स्पष्ट हो जाय। यथा—

शक्कर बनाने का यन्त्र

(अ) गन्ने की चक्की

२६५—गन्ने की चक्की 'कोल्ह' (Kolh) या कोल्हू (Kolhu) प्रान्त भर मे कहलाता है। यूरोपियन फर्मों द्वारा प्रचलित की गयी पेटेण्ट चक्कियाँ कल कहलाती हैं।

२६८—चक्की की नीव के खोखले काठ का हिस्सा—यही साधारणत कोल्ह या कोल्हू कहलाता है। वह छेद जिसमे पेरने के लिए गन्ने रखे जाते हैं। गगा के उत्तर मे पश्चिम की ओर 'खान' कहलाता है या चम्पारन मे 'घर' या पूर्व मे कुण्ड, या कूड, शाहाबाद मे यह हुडा या हुडोल्वा कहलाता है। दक्षिण मुगेर मे यह हांढा है और अन्यत्र गगा के दक्षिण मे हुण्ढा या हुण्डा। किनारे के चारों ओर इसके सिरे पर मिट्टी की एक मेंड लगा दी जाती है, जिससे गन्ने के टुकडे न गिर सकें, यह पींड

कहलाता है। इस काठ के चारो ओर इसे फट जाने से बचाने के लिए जो लोहे का घेरा कस दिया जाता है वह 'बन' होता है। यह तिरहुत मे मत्तर तथा दक्षिण भागलपुर मे मडरो कहलाता है।

८ प्रकृति विज्ञान पर्यवेक्षण उक्तियाँ—उदाहरणार्थ—

पूख पुनर्वस बोइये धान। असलेखा कोदो परमान॥
मघा मसीना दीजिये पेल। फिर दीजिए परहल मे ठेल॥

९ विशेषोक्तियाँ—जैसे—'दम्मदार, बेडा पार'

१० स्वाग आदि

इनके अतिरिक्त भी और अनेक प्रकार हो सकते है, जिन्हे ग्राम साहित्य का सकलनकर्ता अपनी बुद्धि और उद्योग से प्राप्त कर सकता है।

ग्राम-साहित्य कहाँ ढूँढा जाय ?

ग्राम-साहित्य किस प्रकार सकलित किया जाय ?

१—घर के वृद्ध और वृद्धाओ के पास। गाँव मे शायद ही कोई घर ऐसा हो जिसके बडे-बूढो को कोई न कोई कहानी याद न हो।

स्त्रियो के द्वारा विविध सस्कारो के गीत तथा कहानियाँ सहज ही प्राप्त की जा सकती हैं।

२—गाँव की चौपालो और अगिहानो पर बहुधा कहानियाँ सुनने को मिल सकती हैं। यहाँ पर गाँव के ज्ञानी पुरुष एकत्रित हो जाते है। उनसे विविध बातें पूछी जा सकती हैं।

३—गाँव के ज्ञानी और विशेषज्ञ से। प्राय प्रत्येक गाँव मे एक न एक ऐसा व्यक्ति होता है जिसमे कहानी सुनाने की विशेष कला होती हैं। इसे बहुत अधिक और पुरानी कहानियाँ याद रहती हैं।

४—गाँव के ओझे, सयाने, भोपे, मुखिया तथा पुरोहित साधारणत ऐसे व्यक्ति हैं जिन्हे गाँवो की रीति-नीति सम्बन्धी बातो का ज्ञान रहता है।

५—भिखारियो के रूप मे भी कुछ व्यक्ति गाँवो मे आते हैं और वे इकतारा, डमरू, बीन, चिकाडा, डफ आदि पर गीत गाकर भीख माँगते है। इनसे बहुत कुछ सामग्री मिल सकती है।

६—कुछ विशेष प्रकार के गीतो के विशेषज्ञ होते हैं। वे कभी-कभी किसी-किसी गाँव में आ निकलते हैं और वहाँ समाज एकत्र कर गीत से उसका मनोरजन करते हैं। जैसे आल्हा गाने वाले अल्हैत, ढोला गाने वाले ढुलइया।

७—साधारण कहावतें, चुटकुले, पहेलियाँ आदि तो गाँव मे चाहे जब चाहे जिसके द्वारा सुनी जा सकती हैं।

८—विशेष त्यौहारो और सस्कारो के अवसर पर विविध व्यक्तियो द्वारा साहित्य निसृत होता रहता है।

ग्राम साहित्य कैसे प्राप्त किया जाय ?

इस सम्बन्ध मे 'दि लीजेंड्स आव दि पजाब' के सकलनकर्ता केप्टन आर० सी० टेम्पल का उद्धरण दिया जाता है

'यह कहना पर्याप्त होगा कि अपने गायक (Bard) को पकडने के लिए अग्रसर होने का मेरा ढग निम्नलिखित रहा है, मैं उत्सवों मे, मेलो मे तथा शादियो और स्वाँगो और मन्दिरो मे सम्मिलित हुआ हूँ। यथार्थ यह है कि प्रत्येक ऐसी जगह मैं गया हूँ जहाँ किसी गायक के आने की सम्भावना हो सकती थी, और उन गायको को ऐसे फुसलाया कि वे मेरे निजी लाभ के लिए भी गावें। मेरे सामने ऐसे मामले भी हैं जिनमे ऐसे अवसरो पर झगडे उठ खडे हुए हैं और उनसे उस गायक का पता लगा है जो उस अवसर पर पौरोहित्य कर रहा था। और तब उसे मेरे लिए गाने को प्रेरित किया जा सका है। और कभी-कभी स्वांग खेलने वाले पढ़े-लिखे मनुष्यो को स्वाँगो की उनकी निजी हस्तलिखित प्रति मुझे देने के लिए प्रेरित किया जा सका है। जब कभी केवल गर्मी की ऋतु मे मैं घूमने वाली जोगी, मीरासी, भराइन तथा ऐसे ही लोगो से गलियो और सडको पर मिला हूँ तब उन्हे रोककर यथासमय उनसे जो कुछ जानते थे सब उगलवा लिया है। कभी-कभी देशी राजाओ और सरदारो के दूतो और प्रतिनिधियो से मिलने और बातचीत करने का भी मौका मिला है—ये वे लोग हैं जो अपने स्वाथ व लाभ के लिए कुछ भी करने को सदा तत्पर रहते हैं—उन्हे इस सम्बन्ध मे सकेत मात्र कर देने से एकाधिक ग्राम-गीत मुझे प्राप्त हुए है। अन्त मे व्यक्तिगत भेंट तथा पत्र-व्यवहार सफेद और काले सभी प्रकार के ऐसे व्यक्तियो से जो सहायता कर सकते थे लाभदायक सिद्ध हुआ है और बहुत-सी सामग्री इस प्रकार मुझे प्राप्त हुई है।

अत ग्राम-साहित्य के सकलनकर्ता को चाहिए कि—

१—वह निस्सकोच गाँव के प्रत्येक उत्सव, मेले, त्योहार, पूजा, सस्कार आदि मे गाँव वालो की भाँति ही सम्मिलित हो।

२—प्रत्येक अवसर पर सूक्ष्म निरीक्षण और पर्यवेक्षण का उपयोग करे, प्रत्येक विधि-विधान को समझे और नोट करता जाय।

३—वहाँ जो बात समझ मे न आये उसे जानकार लोगो से भली प्रकार समझ ले।

४—जिससे भी उसे किसी प्रकार का साहित्य प्राप्त हो सकता है उसका विश्वास-पात्र बने।

५—ऐसे लोगो को किसी न किसी नशे का चस्का रहता है। उन्हे नशा-पत्ता करा देने पर वे बडी प्रसन्नतापूर्वक आपकी इच्छापूर्ति कर सकते हैं।

६—कभी-कभी किसी व्यक्ति को कुछ दाम भी देने पड सकते हैं।

७—ग्राम-गीत सग्रह करने वाले को ऐसे लोगों का विशेष अध्ययन करने की आवश्यकता है जो ओछी जाति के कहे जाते है।

८—गाँवो मे विद्यार्थियो से मौखिक कहानी प्रतियोगिता द्वारा या बालचरो से कैम्प फायर मे थोडे ही प्रोत्साहन से अनेको कहानियाँ मिल सकती है।

९—लोक-साहित्य-सकलनकर्ता के पास निम्नलिखित यन्त्रादि भी होने चाहिए

(अ) टेप रिकार्डर,

(आ) फोटो कैमरा,

(इ) कई पेन्सिले,

(ई) चाकू,

(उ) शिला लिपियो की प्रतिलिपि करने का साधन।

१०—सकलनकर्ता को चित्रकला का भी अभ्यास होना चाहिए।

कैसे लिपिवद्ध किया जाय ?

उपरोक्त विधियो से जब कहानी कहने वाला या गायक आपको मिल गया तो अब यथार्थ कार्य आता है उस मौखिक साहित्य को लिपिवद्ध करना। इसमे बहुत सावधानी की आवश्यकता है।

१—कहानी कहने वाला या गायक अपने स्वाभाविक ढग से निरन्तर अपनी कहानी या गीत कहता चला जाय और उसी गति से पहले तो यह चेष्टा की जाय कि टेपरिकार्डर[1] पर उसे अकित कर लिया जाय। यदि ये साधन उपलब्ध न हो तो उसे ज्यो का त्यो लिपिवद्ध कर लिया जाय तो सबसे श्रेष्ठ फल मिलेगा। यदि यह सम्भव न हो तो कहानी कहने वाले या गायक को यह समझा दिया जाय कि वह धीरे-धीरे कहे।

२—जैसे-जैसे वह कहे उसे लिपिवद्ध करते चले जाना चाहिए। यदि कोई ऐसा स्थल आये जो आपकी समझ मे न आ सका हो तो बीच मे मत टोकिए, कोई चिह्न लगाकर आगे लिखते चले जाइए। जब वह गीत या कहानी समाप्त हो जाय तब उन शकाओ का समाधान उससे कर लीजिए। यह अत्यन्त आवश्यक है कि आप हर दशा मे वही लिखें जो कहानी कहने वाला लिखा रहा है, वह चाहे कितनी ही असम्भव और ऊटपटाँग क्यो न हो।

३—कहानीकार तथा गायक से कहानी या गीत मे आने वाले शब्दो, पात्रो, तथा स्थानो के सम्बन्ध मे तथा कहानी कब और क्यो बनी, या उसका क्या उपयोग है इन बातो के सम्बन्ध मे भी प्रश्न करके उसकी व्याख्याएँ भी हाशिये मे लिख लेनी चाहिए।

४—जब कहानी कही जा चुके और लिखी जा चुके तो कहानी कहने वाले या गाने वाले को उसे पढकर फिर सुना देना चाहिए तथा भूलो का सशोधन कर लेना चाहिए।

---

[1] टेप रिकार्डर दो प्रकार के आते हैं। एक बिजली से चलने वाला दूसरा बैटरी से चलने वाला। गाँवों के लिए बैटरी वाला टेप रिकार्डर ही काम दे सकता है।

५—सबसे अधिक ध्यान देने की बात यह है कि कहानी या गीत ठीक उस बोली मे लिपिबद्ध होना चाहिए जिसमे कि कहानी कहने वाला बोल रहा है, और वह जिस ढग से बोल रहा है उसी ढग मे लिखी जानी चाहिए। वह यदि 'नखलऊ' कहता है तो यही लिखना होगा अपनी ओर से उसे लखनऊ नही करना होगा।

६—लोक-साहित्य का अनुलेखन पहले तो अन्तरराष्ट्रीय ध्वनि वर्णमाला मे किया जाना चाहिए (देखिए परिशिष्ट) ऐसा अभ्यास न हो तो सामान्य वर्णमाला मे ही लिखें। इस सम्बन्ध मे स्वरो पर विशेष दृष्टि रखनी चाहिए सभी स्वरो का उच्चारण सब स्थानो पर एकसा नही होता। उदाहरणार्थ—'एक राजा ओ, एकु राजा ओ, इक राजा ओ'—यहाँ पर एक के विविध उच्चारण दिये गये है। बोलने वाला जैसा उच्चारण करे वैसा ही लिखा जाना चाहिए।

७—यदि ऐसा अवकाश या सुविधा न मिले कि आप अक्षरश उसे उपरोक्त ढग से लिख सकें तो हारे के दर्जे उसे अपने शब्दो मे ही लिख डाले।

८—गीत के लिपिबद्ध कर लेने पर उसकी लय को भी समझ लेना चाहिए और उसके गीत विधान को भी। उस लय की स्वर-लिपि भी प्रस्तुत कर ली जाय तो अच्छा है।

● ● ●

गीत कैसे लिपिबद्ध करें ?

स्वर-लिपि अथवा नोटेशन के तीन ढग हो सकते हैं

सबसे श्रेष्ठ ढग तो यह है कि सकलनकर्ता को अन्तरराष्ट्रीय सगीत-स्वर-लिपि का ज्ञान हो और उसी लिपि मे उसे लिख डाले।

यदि यह सम्भव न हो तो फिर उसे भारतीय सगीत स्वर-लिपि (सरगम) का ज्ञान होना चाहिए। उस स्वर-लिपि के अनुसार वह प्रत्येक गीत की स्वर-लिपि तैयार कर ले। यदि वह स्वय न जानता हो तो किसी सगीतज्ञ की शरण ले सकता है। टेप पर अकित गीतो की स्वर-लिपि किसी सगीतज्ञ से तैयार करने मे विशेष कठिनाई नही हो सकती।

इन दोनो के अभाव मे एक तीसरी कामचलाऊ प्रणाली काम मे लायी जा सकती है। इस तीसरी प्रणाली को लोक-साहित्यिक प्रणाली कहा जा सकता है। इसके लिए आवश्यक यह है कि सकलनकर्ता अथवा अध्येता यह जानता हो कि किसी गेय-गीत मे निम्नलिखित तत्त्व काम करते हैं—

१ गति— गति की दृष्टि से एक गीत मे कई प्रयोग होते हैं। उदाहरणार्थ

(१) पाठ्य—एक कडी को सामान्य लय से पढ देना—

वडे परभात करन कौ पहरौ।

(२) स्थानीय गौरव —इसमे किसी विशेष शब्द के विशेष स्वर पर कुछ जोर देना होता है। लय प्राय सामान्य ही रहती है। गौर-

वित स्वर कुछ दीर्घ लय से युक्त प्रतीत होता है। वस्तुत वह दीर्घता नही वरन् केवल बल पा लेता है।

वडे' परभा त करन कौ' पहरौ। यहाँ ' 'चिह्न' से गौरव अकित किया गया है।

(३) अरथाना—सामान्य लय मे ही प्रत्येक शब्द के प्रत्येक वर्ण को बहुत स्पष्ट अलग-अलग प्राय समान अवकाश से बोलना

व डे प र भा त क र न कौ प ह री।

(४) तानना—किसी कडी मे किसी स्वर को लय मे दूर तक तानना—तानने को 'ऽ' चिह्न द्वारा व्यक्त किया जा सकता है, 'आ' ध्वनि के स्वाभाविक काल मान को जितना ताना जाय उतने ही ऐसे चिह्न लगाये जा सकते हैं।

गुरु उस्ताद सुमिरि लउ अपनौ ऽऽऽ

इसमे 'नौ' तक तो सामान्य पाठ्य-लय रखी गयी, फिर नौं के औं को तीन दीर्घ कलाओ तक, 'औ-औ-औ तक, एक लय मे ताना गया है।

(५) द्रुत गति—द्रुत गति को — चिह्न से दिखाया जा सकता है।

(६) आरोह—√ यह चिह्न आरोह के लिए और

(७) अवरोह—√यह चिह्न अवरोह के लिए है

(८) मूर्च्छना —बहुत-से स्वरों को मिलाकर प्राय एक ही मात्रा-विराम मे गाने की चेष्टा—

इसे⌒चिह्न के द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है। जितने स्वर इस प्रकार एक मात्रा-विराम मे समाएँ उन्हें इसके भीतर रखा जायगा।

(९) लयावरोध—पूर्ण लय तक पहुँचने से पूर्व ही रुक जाना। इसे '—' चिह्न से।

(१०) ग्राम—छन्द शास्त्र मे जो 'यति' कही जाती है, उसी को गीत मे ग्राम कह सकते हैं।

(११) बलाघात—किसी अक्षर पर अनायास बल। इसे '—' इस चिह्न से।

२ रीढ— प्रत्येक गीत की एक रीढ होती है। मूल गीत का मूल ढाँचा। किसी गीत का 'छन्द रूप' इसी के आधार पर निर्धारित किया जाता है। यथा—

जब राजा नें बात सुनाई १

मोइ नारि मारग मे पाई २

तीनि पोत गई थकि—(यहाँ लयावरोध है)

पाम ते धूरि उडाई। ४
दीजौ भेद वताइ—५
जौ तू खैर जीय की चाहे, ६
सबरौ हालु सुनाइ। ७

इतनी ढोला-गीत की रीढ है।

३ पूर्ति— लय की आवश्यकतानुसार रीढ गीत के स्वरो मे पहले, वाद में या बीच मे कही कुछ शब्द, जैसे 'अरे', 'हाँ', 'फिर', 'सो', लगा लिये जाते है।

४ अलकार— या लयकारी कही लय मे चमत्कार या गीत के प्रभाव के लिए कुछ स्वरो को बढा लिया जाता है। जैसे 'होली' गाते मे 'हो', शब्द को जोडकर विविध लयकारी प्रस्तुत की जाती है।

अत इस तीसरी प्रणाली मे यह आवश्यक है कि इन सभी तत्त्वो को ठीक-ठीक समझ लिया जाय और तब प्रत्येक गीत-रूप का विश्लेषणपूर्वक एक विवरण प्रस्तुत कर दिया जाय। उदाहरण के लिए 'ब्रजलोक-साहित्य के अध्ययन' से 'ढोला' गीत का विवरण यहाँ दिया जाता है।

ढोला मे ढोलाकार के व्यक्तित्व का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। वह चिकाडे पर ढोले की तर्ज बनाये रहता है, पर उसमे वर्णन की विशदता, रस का सचार, घटना आद्भुत्य का विस्तार, काफियाबन्दी तथा ढोला से भिन्न अन्य तर्जो का उसमे समावेश कर उसे एकरसता के दोप से मुक्त करने का कौशल अपनी निजी प्रतिभा के वल से दिखाता है। ढोले की तर्ज का स्थूल रूप यह है—

पहले अत्यन्त मन्द और मन्थर गति से प्रत्येक अक्षर का पूर्ण और स्वतन्त्र उच्चारण करते हुए निम्नतम ध्वनि मे वह दुलैया गाता है—

गुरु उस्ताद सुमिरि लउ अपनौं
सुमिरू सारद माई
तोइ सुमिरि फिर कौनें सुमिरूँ
जसुदा जी के कुमर कन्हाई,
सुमिरु ब्रह्मा, विस्नु, महेश,
गवरी गनपति सुमिरु लाडिले।
जिन दीनी मोइ बुद्धि विसेस।

गनपति चरनन वलिहारी,
मैं तेरोई धरि रह्यौ ध्याऽनु—
सिवसकर से पिता,
गवरि जिनकी महतारी।

गवरि के सुत,
गिरिजा के लाडिले
नेंक,
राऽखि सभा मे आइकें मानु
तोइ सुमिरि फिर कौ नें सुमिरूँऽऽऽ
मेरी राखि पचन मे लाज

फिर इसी को द्रुत गति से उतार-चढाव के साथ गाया जायेगा, यह रूप साधारणत 'सुरसती' (सरस्वती-वन्दना) का है। सुरसती कहने के बाद तुरन्त ही कथा-भाग आरम्भ हो जाता है।

उसमे साधारण रूप यह मिलता है—
व डे प र भा त क र न कौ प ह रौ ऽ ऽ ऽ
राजा पिरथम नें अपनौ घोडा सजवायौ
सब सिंगारु करयौऽऽ घोडा कौ,
औरु
सोने कौ जडाऊ जीन' धरवायौ।
गमकि वनौ ऐ असवाऽर
नरवर वारौ गढपतीऽ
कैसें ऽऽऽऽखेलन जातु सिकार।

(यहाँ तक यह अरथाने के ढङ्ग से कहा जाता है, अर्थात ताल स्वर मे बाँध-कर और गाकर नही, वरन् मौखिक किन्तु मन्द गति से। इससे आगे फिर चिकाडे के स्वर मिलाकर विलंबित गति से गाया जाता है।)

करी चलिबे की त्यारी,
औरु दीनो ऐं हुकमु सुनाइ
सार ते सँग लगि लीयौ स्वानु सिकारी
घोडा हाँकि दियौ छत्तुर धारी,
हौनहार बलवान करमगति—टरै न टारी।
इत-उत देखतु जाय अगारी भगिनि आई।
औरु तीन पोत गई थूकि—पाँमते धूरि उडाऽऽई।
घोडा पै सोचै छत्तुरधारी,
भगिनि पीठि फेरि भई ठाडी—
राजा मन मे रह्यौ ऐ विचाऽरि°
नरवर वारे भूप नें—घोडा दीओ ऐ पिछमनौ अपनौंऽओऽडाऽरि✓।
सो घो। तो घुडसार लगायौऽऽ✓ऽऽ✓✓

(यह लय मे और तीव्र स्वर मे कहा जाता है, फिर तुरन्त ही स्वर ऋषभ पर करके, चिकाडा बन्द कर दिया जाता है ।)

रा जा वै ठ्यौ कचहरी जोरि कै—
सोच रह्यौ छा ँइ,
(इसके बाद फिर द्रुतगति मे और एक साँस मे गाया जाता है)
नरवर वारे भूप ने अब नौकर लीयौ ऐ बुलाइ ।
क हि र ह्यौ हीयौऽऽऽ खो ऽलि
चिंता भगी की घरवारी ऐ, ए लाऔ सिपाही नेंक जल्दी बोऽलि—
सुनत खैंम अब नौकरु धायौ,
पल ना करी अबार, द्वार भगी के आयौ ।
औरु भगी लियौ बुलाइ,
अपनी घरवारी ऐ भेजि दै नेंक ब्वाइ लै जाऊँ सग लिवाइ ।
कहा कहि आई जानें तेरी घरवारी
और बोलि रहे ब्वाइ छत्तुरधारी—
इतनी सुनि कें भगी घर अपने गे धँसि गयौ ।
भगिनि लई बुलाइ,
कहा कहि आई भूप ते मेरे माऊँ तिरिया (नेंक) चाहि ।
(सो) तोइ बोलिवे कूं आयौ सिपाही
आजु नरवर वारे भूप कौ,
अब कहि कैसें होइ॰
आपु मरैगी नारि हमारी
मेरे जानें लै वैठैगी व्याहँता मोऽऽइ॰ ।
मवरी भाई पेट की खोली,
(फिरि) भगी ते भगिनि बोली,
अम्वखास कूं अबईं जाऊँ
द्वै द्वै ज्वाव जाइ करि आऊँ
कै राजा मोइ मग्वाइ देऽगौऽऽऽऽ
नही वचन ते राजा ऐ हराऊँ
सब सख्या ऐ छोडि दै,
घर वैठे मौज उडाइ ।
इतनी कहि कें, भगिनि धाई
नैंक न कीनी देर मग नौकर के आई ।
धरयौ क च ह री मे पाँइ॰
नरवर वारे भूप कूं सो दीयौ ऐ सीसु नवाइ ।

जब राजा नें वात सुनाई १
मोइ नारि मारग मे पाई २
तीनि पोत गईऽऽऽथूकि°—३
पाँम ते धूरि उडाई ४
दीजौ भेद बताइ, ५
जौ तू खैरि जीय की चाहै, ६
सबरौ हालु सुनाइ । ७

ऐसे गीतो को उक्त चिह्नो के सहारे रेखाकन द्वारा यो प्रस्तुत किया जा सकता है । इस रूप मे लिप्यकन सबसे अधिक सुविधाजनक है
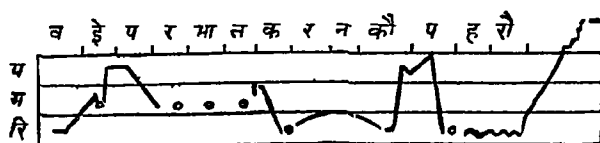
यह तो मेरा प्रयत्न है, प्रतिभाशाली व्यक्ति इसे और भी उपयोगी बना सकते हैं ।

छन्द की दृष्टि से इसे मिश्र छन्द माना जा सकता है, जिसमे पहले दो चरण या अधिक सोलह मात्राओ के होगे, तीसरा ग्यारह का, चौथा तेरह का, पाँचवाँ फिर ग्यारह का, छठा सोलह का, सातवाँ स्थायी के रूप मे ग्यारह मात्राओ का । पहला, दूसरा, चौथा और छठा चरण दीर्घान्त (गुरु) होता है, जिसमे मे पहले, दूसरे और चौथे की प्राय तुक मिलती है, तीसरे और छठे बेतुके होते हैं, पाँचवें और सातवें की तुक मिलती है और ये चरण लघ्वन्त होते है, जिनमे जगण (।ऽ।) होता है ।

यह अवस्था साधारण प्रवाहमय ढोला-गीत की होती है, इसमे आरम्भ के दो चरण (१, २) सतुलित होते हैं, उनके साथ चाहे जितने मतुलित चरण प्रभाववर्द्धन अथवा कथा सचरण के लिए आ सकते है । इस साधारण प्रवाहमय गीत को अरथाने, अर्थात् बहुत धीरे-धीरे बिना ताल-स्वर और वाद्यो का सयोग किये काव्य-पाठ के ढग मे गाया जा सकता है । फिर विलम्बित गति मे गाया जाता है, फिर द्रुत मे । इसके बीच-बीच मे अन्य तर्जें भी आ मिलती हैं, उदाहरणार्थ, नल के विवाह के अवसर पर ढोलावाला अवसर पाकर ज्यौनार गाने लगता है, गारी गाने लगता है, कही मल्हार का पुट आ जाता है, कही निहालदे का । ये तर्जें इस प्रवाह मे आकर और भी सुन्दरता बढा देती हैं, सोने मे सुगन्ध का काम देती है । कवित्त और रसिया भी अच्छे फब जाते है ।

इस ग्रन्थ से ऐसी ही स्वर-लिपि देने का एक और उदाहरण दिया जाता है।
एक गीत जो चट्टा चौथ पर माँगने के लिए गाया जाता है, वह यह है—

उठ उठ री मोहन की माँ
भीतर ते तू बाहिर आ
गढ़े गढाये रुपिया ला
पण्डित जू कूँ बागौ ला
मिसरानी कूँ तीहर ला
चट्टन कूँ मिठाई ला
चट्टा दिग्गे बडी अशीश
बेटा हुँग्गे नौ सौ तीस
आयौ वसतक सुन चकपैया
अब का देखौ लाओ रुपैया

यह गीत १४ मात्राओ के आधार पर है। १५-१६ भी हो सकती हैं। इसका स्वरूप मार्ग-गीत (मार्चिग-साग) का जैसा है। वह ७ दीर्घ स्वरग्रामो मे बाँटकर गाया जाता है। १६ या १५ मात्राओ के गीतो को भी गाने मे ७ ग्रामो मे समाना पडता है। उदाहरणार्थ यह तो इसकी स्वाभाविक गति है—

बे	टा	हुँ	ग्गे	नौ	सौ	तीसु	१५ मात्रा
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	
आ	चू	ही	तू	वा	हर	आ	१४ मात्रा
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	
भोर	हुई	बनि	यो	की	न्या	री	१६ मात्रा
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	
१	२	३	४	५	६	७	स्वर ग्राम

इस गीत मे पहली पक्ति मे १५ मात्राएं हैं जिसमे अन्तिम 'ग्राम' ३ मात्राओ का होता हुआ भी एक दीर्घ स्वर की अनुरूपता रखेगा। दूसरा चरण बिलकुल ठीक जितने ग्रामो मे जितनी मात्राएँ होनी चाहिए उतनी ही रखता है। तीसरे मे १६ मात्राएँ हैं। इसमे प्रथम दो ग्राम तीन-तीन मात्राओ के हैं। इस प्रकार दो अधिक मात्राएँ पहले दो ग्रामो मे समा गयी है। यह गीत का मूल रूप है।

६—जिन गीतो का सम्बन्ध नृत्य से हो उन गीतो की स्वर-लिपि के साथ-साथ उसके नृत्य का भी रूपाकन करना चाहिए। नृत्य के रूपाकन की भी अन्तर्राष्ट्रीय प्रणाली खडी होती जा रही है। उसका अनुसरण करें अथवा इसके लिए अपनी ही किसी प्रणाली को जन्म दें पर उसे ऐसा वैज्ञानिक रूप दें कि नृत्य के स्वरूप को भली प्रकार हृदयगम किया जा सके और उससे वैज्ञानिक तथा तुलनात्मक अध्ययन में सहायता मिल सके।

पाश्चात्य लोकवार्ता क्षेत्र मे मिसेज कुग्थ ने नृत्य को अंकित करने की एक प्रणाली स्थापित की है और उसे समझाने के लिए आपने यह चित्र 'फोर सिंपोजिया' मे दिया है।
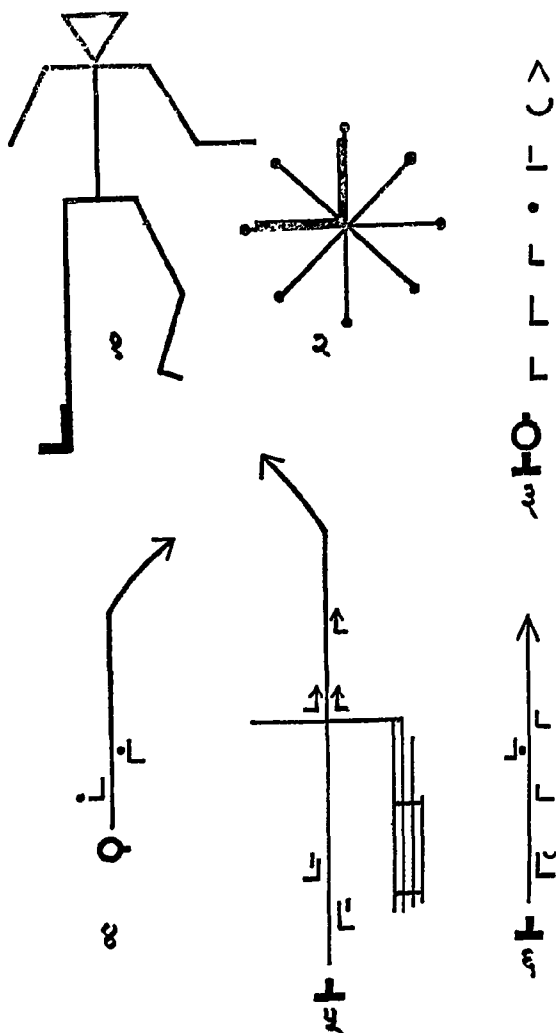
मिशीगन विश्वविद्यालय की इन श्रीमती कूरथ ने फोर सिम्पोजिया मे लोक-नृत्यो को अकित करने के सम्बन्ध मे जो कहा है उसका साराश यहाँ दिया जाता है।

"लोक-नृत्यो के लिप्यकन मे लोकवार्ता क्षेत्र के अनुसन्धाता को जो कठिनाइयाँ होती है उनका उल्लेख मैं करूँगी । आज नृ-विज्ञानविद् तथा लोकवार्ताविद यह अनुभव करने लगे हैं कि लोक-नृत्यो का लिप्यकन बहुत कठिन है और इसके लिए नृत्यो की तकनीक का जानना जरूरी है। सीधे से सीधे नृत्य के लिप्यकन के लिए इसके विशेषज्ञ की आवश्यकता है, यह कहना पर्याप्त नही कि वे एक वृत्त मे नाचते थे। वास्तविक मूल्य का लिप्यकन तभी हो सकता है जबकि उसे आवश्यक विस्तार के साथ दिया जाय।

मैंने जिस लिप्यकन प्रणाली का प्रयोग किया है वह अनुभव का फल है यद्यपि बहुत अच्छे-अच्छे और बहुत-से ढग भी लिप्यकन के हैं, पर वे बहुत जटिल हैं। हमारी नृत्यलिपि की प्रणाली मे स्पष्टता, सिधाई तो होनो ही चाहिए, उसे जल्दी लिखा जा सके, यह गुण भी उसमे होना चाहिए। क्योकि हमारी इस सामग्री का उपयोग ऐसे नृ-विज्ञानविद् तथा लोकवार्ताविद् भी करेंगे जो नृत्य के विशेषज्ञ नही पर उनके अर्थों को समझ-समझा सकते हैं। अत नृत्यलिपि ऐसी सीधी-सादी होनी चाहिए कि उसे ये लोग भी पढ सकें।

इसके अतिरिक्त नृत्यलिपि को त्वरा सहित लिख लेने का गुण होना चाहिए क्योकि यह लिपि नृत्य के साथ-साथ ही लिखी जा सकती है। नृत्य वीत जाने पर फिर उसको लिखना सम्भव नही होगा और दुबारा उसी को देखने का अवसर भी शायद ही मिल पाये।

वस्तुत आदर्श बात तो यह होगी कि अनुसन्धाता अथवा लिपिकार स्वय उस नृत्य मे भाग ले। वह दर्शक न रहे नर्तक बने। ऐसा कभी-कभी सम्भव हो जाता है। मुझे इरोक्रोई इण्डियनो मे जाकर बार-बार एक ही अनुष्ठान मे भाग लेने का अवसर मिला है तथा सूचको के साथ उनके चरणो पर तथा उनके नामकरण की प्रतीकात्मक पृष्ठभूमि पर काम किया है तथा उन अन्य बहुत-सी बातो पर भी काम किया है जो उस अनुष्ठान के अवसर पर अनुष्ठान मे भाग लेने या उसे देखने पर सामने नही आती।

सबसे बडी कठिनाई यह है कि अनुष्ठान के बीच मे आपको कोई अकन करने की आज्ञा नही मिलेगी। लिप्यकन अनुष्ठान के बाद स्मृति के सहारे किया जा सकता है, फल यह होता है कि पूरे दिन परिश्रमपूर्वक अनुष्ठान मे भाग लेने के उपरान्त आपके हाथ उसका अत्यन्त सामान्य ज्ञान ही रह जाता है। इसीलिए कभी-कभी मुझे अनुष्ठान के बीच से हटकर अपनी कार मे जाकर शीघ्रता से सीखी-देखी वस्तु का लिप्यकन कर लेना पडा है। यह सब उनकी आँखो से बचाकर किया है क्योकि वे यह पसन्द नही करते कि उनके नृत्यादि को लिप्यकित किया जाय।

यदि आप स्वय उस नृत्य को सीख लें तो ठीक-ठीक लिपि मे उतार सकते हैं। तब भी सूचक की सहायता से जब आप उसका मिलान करने बैठेंगे तो आपको विदित

होगा कि कितनी ही अडचनें हैं। इण्डियन आपको चरण की ठीक-ठीक शिक्षा नही दे सकता। वह किसी चरण का स्थूल-मूल चरण तो बता सकता है पर उन चरणो मे जो लपेटे आती है वे ही तो उसके सर्वोत्तम अश होते हैं, इन्हे इण्डियन बता सिखा नही सकता। इन्हे तो अनुष्ठान मे ही आवृत्त देखा जा सकता है। इसका पता स्वय नृत्य करने पर ही अच्छी तरह लगता है और तभी उनका लिप्यकन किया जा सकता है। उनके प्रत्येक रूप को अथवा नृत्य के कथा-पृष्ठ को इण्डियन भी ठीक-ठीक नही बता सकता। ऐसी बातें पूछते समय वह एकदम चुप्पी साध लेता है।

वास्तव मे करना यह चाहिए कि उनसे यो ही इधर-उधर की चर्चा मे लग जाइये, ऐसी चर्चा मे कभी आपको बहुत महत्त्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध हो जायगी। बच्चे इसमे कभी-कभी बहुत उपयोगी सिद्ध होते है। मैं कभी-कभी अपने बच्चो को, लडके को विशेषत, साथ ले गयी हूँ, मेरा लडका उन लोगो के बच्चो से हेल-मेल बढा लेता है, तब उन्हे आप पिकनिक पर ले जा सकते है। वहाँ वे मौज मे उन बातो को बता देंगे जो उन्होने अपनी दादियो से जानी है। ये बच्चे भी भावी नर्तक हैं।

मेरी नृत्यलिपि की प्रणाली मे अब भी कमियाँ है, जिन्हे मैं धीरे-धीरे दूर कर रही हूँ। यह प्रणाली मैंने चार वर्ष के क्षेत्रीय अभ्यास के द्वारा खडी की है, और कितने ही सुधार-सशोधनो के उपरान्त इसे आज का रूप मिला है।

मेरी प्रणाली का एक तत्त्व मनुष्य की आकृति पर खडा किया गया है। हमे पैरो की गति तथा शरीर के अन्य विविध अगो की गति के लिए प्रतीक चिह्नो की आवश्यकता है।

मनुष्य की आकृति का कोणरूपी रेखाकन मुख्य आधार है। इसका रूप वह है जो सख्या १ मे दिखाया गया है। इसका बायाँ पैर मोटी काली रेखा से दिखाया गया है, २ सख्या के चित्र मे उसी चरण की विविध गतियाँ दिखायी गयी हैं। दायी ओर के बिन्दु के अर्थ है दायी ओर चरण की गति, बायी ओर के बिन्दु से बायी ओर चरण गति, ऊपर का बिन्दु आगे के कदम का द्योतक है, नीचे का बिन्दु पीछे चरण रखने का। तब इनके बीच मे व्यास है।

सख्या ३ के चित्र मे कुछ प्रतीक चिह्न दिखाये गये है जो नीचे से ऊपर इस प्रकार हैं—एक पुरुष, एक स्त्री, पूरा पैर, अर्द्ध आगुलीय (half toe), एडी, एक चरण, रपट पार्श्वगत, रपट आगे, ररक (brush) तथा उछाल (hop)। ये रेखा पर अपने उचित स्थान पर रखे गये है। दाहिने चरण का चिह्न इस उदाहरण मे रेखा के दायी ओर रखा जायगा, मध्य की रेखा को बढाकर नृत्य के भूमि-विधान को बताया जा सकता है। सख्या ४, ५ तथा ६ मे नृत्यो की लिपियाँ उदाहरणार्थ दी गयी है।

सख्या ४—साउक विजय नृत्य

स्त्री का मुख दायी ओर, वृत्त के केन्द्र की ओर, बायाँ पैर बायी ओर रपटता है, दायाँ पैर बायी ओर एक चरण बढता है, बायें पैर के साथ हो जाता है।

सख्या ५—इरोकोई शफल या स्टोम्प स्टैप—आदमी का मुख आगे की ओर दायाँ पैर दायी ओर रपटता है, वायाँ पैर आगे की ओर सटता है दायें पैर के साथ होने के लिए। दायी ओर सगीत स्वरलिपि का स्थान दिखाया गया है, इसके ऊपर—कूद-उछाल, कूद दोनो पैरो से, उछाल दायी ओर।

सख्या ६—याकुई हरिण नृत्य के चरण—आदमी सामने मुँह किये हुए दायी एडी दायाँ अर्द्ध आँगुलीय पैर सामने की ओर और दायी ओर तिरछा ररकता है, चक्रित, वायाँ अर्द्ध आगुलीय पैर एक चरण दायी ओर, दायी ऐडी चक्रित।

इस विवरण से यह स्पष्ट है कि इस नृत्यलिपि मे हाथ और अँगुलियो की गति को दिखाने के लिए कोई चिह्न नही, न पैरो से ऊपर के अगो की गतियो का द्योतक ही कोई चिह्न है। इस तथ्य से श्रीमती कूरथ भी परिचित है, तभी उन्होने आगे वताया है कि इस लिपि मे बाली नृत्य बद्ध नही किया जा सकता, क्योकि उसमे हस्त तथा अगुलि-मुद्राओ की प्रधानता रहती है और श्रीमती कूरथ ने यह भी कहा है कि शरीर के ऊपरी भाग के लिए सम्भवत लिपि का विकास इसी प्रणाली मे से हो सकता है। भारत की नृत्यकला के लिए ऐसी लिपि की उद्भावना आवश्यक है।

अलग-अलग देशो की नृत्य-प्रणाली अलग-अलग होती है, उनके लिए अलग-अलग लिपियाँ बनायी गयी हैं। श्रीमती कूरथ ने जो लिपि निर्धारित की है वह सरल है, पर वह भी अपूर्ण है, निश्चय ही समयान्तर मे इस विषय के विशेषज्ञो को एक अन्तर्राष्ट्रीय नृत्य-लिपि निकालनी होगी जो सभी रूपो को प्रस्तुत करने मे समर्थ हो सके।

कुछ अन्य आवश्यक बातें

अन्य आवश्यक बातो मे से पहली यह बात है कि मण्डल की ओर से इस काय के लिए जो फाम दिये गये हैं उनमे लिखी प्रत्येक बात का ठीक-ठीक ब्यौरा दिया जाय।

कहानी या गीत कहने वाले का नाम व पता। गाँव का नाम देना अत्यन्त आवश्यक है।[1]

कहानी किसी विशेप अवसर के लिए है तो उस अवसर का ब्यौरा।

कहानी मे आने वाले विशेप शब्दो की व्याख्या।

दूसरी आवश्यक बात यह है कि जिन अवसरो पर गीत या कहानियाँ कही जाती हैं, उन पर यदि किसी प्रकार के चित्र बनाये जाते हो, तो उन चित्रो की प्रतिलिपि और यदि कोई मिट्टी की मूर्ति या अन्य कुछ रखा जाता हो तो उसका भी वर्णन दिया जाय।

---

[1] कहानी कहने वाले की उम्र, जाति तथा व्यवसाय भी देना चाहिए। कहानी जिस दिन लिखी गयी वह तारीख और सन् भी देने आवश्यक है।

तीमरी बात यह है कि जिस गाँव से सकलन किये जायँ उसका भी परिचय दिया जाय जिममे निम्नलिखित बातो के सम्बन्ध मे गाँव से या अन्यत्र से प्रचलित मतो का उल्लेख कर दिया जाय—

१—गाँव का नाम वैमा क्यो रखा गया ?

२—गाँव का इतिहास—उसे कब, किसने, क्यो स्थापित किया ?

३—गाँव मे बसने वाली विविध जातियाँ, उनके नाम, वे कहाँ से आकर और कब बसी।

४—गाँव मे पुजने वाले विविध देवी-देवता, उनके नाम तथा उनका परिचय और पूजा-प्रणाली।

इम कार्य को विधिपूर्वक करने के लिए एक समान सकलन तथा सूचना-पत्र प्रस्तुत किया जा सकता है। ऐसा एक सकलन-पत्र यहाँ दिया जा रहा है।

इस समस्त सग्रह के साथ गाँवो और स्थानो का लोक-वृत्त भी देना चाहिए। उसके सकलन-पत्र का रूप यहाँ दिया जाता है।

गाँवो के सम्बन्ध मे कुछ प्रश्न ?

१—गाँव का नाम ?

२—गाँव की आबादी कितनी है ?

३—कौन-कौन सी जातियाँ रहती हैं (सभी जातियो का उल्लेख होना चाहिए)

नाम जाति। घर। जनसख्या। जाति विशेष के त्यौहार।

४—गाँव के सम्मिलित त्यौहार ?

५—गाँव मे मन्दिर है तो किस-किस के ? किम दिशा मे ?

६—क्या कोई अन्य थान भी है ?

७—गाँव के प्रमुख देवी-देवता ?

८—क्या कोई पशु किसी विशेप अवसर पर पूजा जाता है ?

९—क्या कोई पेड पूजा जाता है ?

१०—क्या किमी पेड को पूज्य माना जाता है कि उमकी लकडी वगैरह घर के काम मे न ली जाती हो ?

११—गाँव मे स्याने हैं क्या ?

१२—स्याने किस गाँव से आते हैं ?

१३—क्या गाँव मे भगत (देवी के) है ?

१४—जात कहाँ की होती है ?

१५—क्या इस गाँव मे ये गीत प्रचलित हैं और इनके गाने वाले भी हैं ?

१—ख्याल

२—ढोला

३—आल्हा
४—जिकड़ी
५—पमारे
६—राँझा
७—जाहरपीर
८—देवी के
९—अन्य आवश्यकतानुसार

१६—इनके अतिरिक्त भी क्या कोई और प्रसिद्ध गीत है ?
१७—गाँव के गाने वालो तथा कवियो के नाम तथा परिचय (जीवित व मृतक सभी के)
१८—क्या टेसू झाँझी खेले जाते है ? कौन खेलता है ? कब खेलता है ?
१९—नौरता खेले जाते है क्या ? कब खेले जाते है ? आदि।

अन्तिम

इस रूपरेखा मे कार्य का महत्त्व भी स्पष्ट हो गया होगा। यह कार्य अत्यन्त ही आवश्यक है। अभी तक का हमारी सभ्यता का समस्त अध्ययन बिलकुल ऊपरी अध्ययन है। मानव के कल्याण के लिए उसका यथार्थ अध्ययन इसी प्रणाली से हो सकता है। हमारा कर्तव्य है कि हम इस महत्त्वशाली कार्य मे अपना पूरा सहयोग दें और पूरी सावधानी से इस कार्य को सम्पादित करें।

लोक-साहित्य संग्रहालय

इस प्रकार के सकलन वैयक्तिक उद्योगो मे अभी हो रहे है, और भारत मे लोक-साहित्य तथा लोकवार्ता के वास्तविक वैज्ञानिक स्वरूप की प्रतिष्ठा इन उद्योगो मे नही हो पाती। वैज्ञानिक स्वरूप की प्रतिष्ठा न हो पाने के कारण ही इसे अभी तक भारतीय विश्वविद्यालयो मे स्वतन्त्र विषय के रूप मे स्थान नही मिला। भारत मे प्रयाग विश्वविद्यालय मे पहले-पहल बी० ए० मे हिन्दी विभाग के पाठ्यक्रम मे इसे स्थान मिला। अब यहाँ एम० ए० के पाठ्यक्रम मे भी एक ऐच्छिक प्रश्न-पत्र के रूप मे स्थान मिल गया है। इन पक्तियो का लेखक जब कलकत्ता विश्वविद्यालय मे हिन्दी-विभाग का रीडर तथा अध्यक्ष था, तब वहाँ भी इसे एक प्रश्न-पत्र का गौरव मिल गया था। मेरे वहाँ से चले आने के पश्चात् फिर लोक-साहित्य का महत्त्व समाप्त हो गया है। यो सभी विश्वविद्यालयो मे पी-एच० डी०, डी० लिट्० आदि के अनुसन्धान के लिए लोक-साहित्य को स्वीकार कर लिया गया है, और आज प्राय सभी हिन्दी-क्षेत्र के विश्वविद्यालयो मे लोक-साहित्य पर हिन्दी विभाग के अन्तर्गत कितने ही लोक-साहित्य विषयक अनुसन्धानो पर पी-एच० डी० तथा डी० लिट्० की उपाधियाँ मिल चुकी हैं, कितने ही अभी अनुसन्धान मे प्रवृत्त हैं। पर इन सबसे भी लोक-साहित्य की वास्तविक वैज्ञानिक प्रतिष्ठा नही हो सकी है। पाश्चात्य देशो में उन्नीसवीं शती से ही

तीसरी बात यह है कि जिस गाँव से सकलन किये जायें उसका भी परिचय दिया जाय जिसमे निम्नलिखित बातो के सम्बन्ध मे गॉव से या अन्यत्र से प्रचलित मतो का उल्लेख कर दिया जाय—

१—गाँव का नाम वैसा क्यो रखा गया ?

२—गाँव का इतिहास—उसे कब, किसने, क्यो स्थापित किया ?

३—गॉव मे बसने वाली विविध जातियाँ, उनके नाम, वे कहाँ से आकर और कब बसी।

४—गाँव मे पुजने वाले विविध देवी-देवता, उनके नाम तथा उनका परिचय और पूजा-प्रणाली।

इस कार्य को विधिपूर्वक करने के लिए एक समान सकलन तथा सूचना-पत्र प्रस्तुत किया जा सकता है। ऐसा एक सकलन-पत्र यहाँ दिया जा रहा है।

इस समस्त सग्रह के साथ गाँवो और स्थानो का लोक-वृत्त भी देना चाहिए। उसके सकलन-पत्र का रूप यहाँ दिया जाता है।

गाँवो के सम्बन्ध मे कुछ प्रश्न ?

१—गाँव का नाम ?

२—गाँव की आबादी कितनी है ?

३—कौन-कौन सी जातियाँ रहती हैं (सभी जातियो का उल्लेख होना चाहिए)

नाम जाति। घर। जनसख्या। जाति विशेष के त्यौहार।

४—गाँव के सम्मिलित त्यौहार ?

५—गाँव मे मन्दिर है तो किस-किस के ? किस दिशा मे ?

६—क्या कोई अन्य थान भी है ?

७—गाँव के प्रमुख देवी-देवता ?

८—क्या कोई पशु किसी विशेष अवसर पर पूजा जाता है ?

९—क्या कोई पेड पूजा जाता है ?

१०—क्या किसी पेड को पूज्य माना जाता है कि उसकी लकडी वगैरह घर के काम मे न ली जाती हो ?

११—गाँव मे स्याने है क्या ?

१२—स्याने किस गाँव से आते हैं ?

१३—क्या गाँव मे भगत (देवी के) हैं ?

१४—जात कहाँ की होती है ?

१५—क्या इस गाँव मे ये गीत प्रचलित हैं और इनके गाने वाले भी हैं ?

१—ख्याल

२—ढोला

३—आल्हा
४—जिकडी
५—पमारे
६—राँझा
७—जाहरपीर
८—देवी के
९—अन्य आवश्यकतानुसार

१६—इनके अतिरिक्त भी क्या कोई और प्रसिद्ध गीत हैं ?
१७—गाँव के गाने वालो तथा कवियो के नाम तथा परिचय (जीवित व मृतक सभी के)
१८—क्या टेसू झाँझी खेले जाते हैं ? कौन खेलता है ? कब खेलता है ?
१९—नौरता खेले जाते है क्या ? कब खेले जाते है ? आदि।

अन्तिम

इस रूपरेखा से कार्य का महत्त्व भी स्पष्ट हो गया होगा। यह कार्य अत्यन्त ही आवश्यक है। अभी तक का हमारी सभ्यता का समस्त अध्ययन बिलकुल ऊपरी अध्ययन है। मानव के कल्याण के लिए उसका यथार्थ अध्ययन इसी प्रणाली से हो सकता है। हमारा कर्तव्य है कि हम इस महत्त्वशाली कार्य मे अपना पूरा सहयोग दें और पूरी सावधानी से इस कार्य को सम्पादित करें।

लोक-साहित्य सग्रहालय

इस प्रकार के सकलन वैयक्तिक उद्योगो से अभी हो रहे है, और भारत मे लोक-साहित्य तथा लोकवार्ता के वास्तविक वैज्ञानिक स्वरूप की प्रतिष्ठा इन उद्योगो से नही हो पाती। वैज्ञानिक स्वरूप की प्रतिष्ठा न हो पाने के कारण ही इसे अभी तक भारतीय विश्वविद्यालयो मे स्वतन्त्र विषय के रूप मे स्थान नही मिला। भारत मे प्रयाग विश्वविद्यालय मे पहले-पहल बी० ए० मे हिन्दी विभाग के पाठ्यक्रम मे इसे स्थान मिला। अब यहाँ एम० ए० के पाठ्यक्रम मे भी एक ऐच्छिक प्रश्न-पत्र के रूप मे स्थान मिल गया है। इन पक्तियो का लेखक जब कलकत्ता विश्वविद्यालय मे हिन्दी-विभाग का रीडर तथा अध्यक्ष था, तब वहाँ भी इसे एक प्रश्न-पत्र का गौरव मिल गया था। मेरे वहाँ से चले आने के पश्चात् फिर लोक-साहित्य का महत्त्व समाप्त हो गया है। यो सभी विश्वविद्यालयो मे पी-एच० डी०, डी० लिट्० आदि के अनुसन्धान के लिए लोक-साहित्य को स्वीकार कर लिया गया है, और आज प्राय सभी हिन्दी-क्षेत्र के विश्वविद्यालयो मे लोक-साहित्य पर हिन्दी विभाग के अन्तर्गत कितने ही लोक-साहित्य विषयक अनुसन्धानो पर पी-एच० डी० तथा डी० लिट्० की उपाधियाँ मिल चुकी हैं, कितने ही अभी अनुसन्धान मे प्रवृत्त हैं। पर इन सबसे भी लोक-साहित्य की वास्तविक वैज्ञानिक प्रतिष्ठा नही हो सकी है। पाश्चात्य देशो मे उन्नीसवी शती से ही

कुछ विश्वविद्यालयो ने इसे एक विषय स्वीकार कर लिया था।[1] वहाँ इसके वैज्ञानिक स्वरूप की प्रतिष्ठा हो चुकी है। लोक-साहित्य अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र का अध्ययन है।

लोक-साहित्य के वैज्ञानिक स्वरूप की प्रतिष्ठा के लिए जिन बातो की आवश्यकता है, वे ये हैं

१ मकलन का कार्य वैज्ञानिक विधि से एक सुनिश्चित प्रणाली के द्वारा किया जाय। यह प्रणाली वही हो जो अन्य देशो मे अपनायी जा रही है। इसके लिए भारत क लोक-साहित्यविदो को इन विकसित देशो मे इन प्रणालियो का अध्ययन करने के लिए भेजा जाय। किन्तु ऐसा न हो सके तव भी ऊपर दी हुई प्रणाली से यह सकलन कार्य कराया जाय—पर।

२ सकलन का कार्य एक सुनिश्चित योजना के अनुसार कराया जाय। यह योजना या तो विश्वविद्यालय प्रस्तुत करे या सरकार कोई विभाग या परिषद या अकादमी स्थापित करे जो यह योजना प्रस्तुत करे या कोई सार्वजनिक लोकविद्या कान्फ्रेन्स इस कार्य को सँभाले।

३ इस सुनिश्चित योजना मे इस वात का ध्यान रखना आवश्यक है कि

पहले— तो कार्यकर्ताओ को यह ध्यान रखते हुए कि लोक-साहित्य एक अन्तरराष्ट्रीय विषय है आवश्यक प्रशिक्षण दिया जाय।

दूसरे— कार्य के क्षेत्रो का निर्णय भी विधि से होना चाहिए, जिससे भारत के प्रान्त-प्रान्त के गाँव-गाँव और नगर-नगर से सामग्री सकलित की जा सके।

तीसरे— इस सकलन को वैज्ञानिक दृष्टि से व्यापक वनाया जाय यानी सभी जातियाँ सभी पेशो, सभी वर्गो से सकलन किया जाय और उनके जीवन के प्रत्येक पहलू से सम्वन्धित लोकवार्ता तथा लोक-साहित्य का सकलन हो।

चौथे— विविध कहानियो और गीतो तथा अन्य साहित्य-रूपो के भौगोलिक विस्तार की सीमाएँ निर्धारित की जा सकें और उनमे मिलने वाले उनके विविध रूपान्तरो को भी सकलित किया जाय।

---

[1] फिनलैण्ड मे १८८८ मे 'हेलसिंकी' के विश्वविद्यालय मे 'फनीशियन तथा तुलनात्मक लोकवार्ता' का पीठ स्थापित हुआ, जिसके प्रथम डामेण्ट वनाये गये लोकवार्ता विज्ञान में 'ऐतिहासिक भौगोलिक पद्धति' के प्रतिष्ठात्मक जूलियस क्रोहन। इस प्रकार यह प्रथम विश्वविद्यालय है जिसमे 'लोकवार्ता' को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला।

पाँचवें— इन सकलनो के आवश्यक सग्रहालय बनाये जायँ, जिनमे लोक-साहित्य को विधिपूर्वक सुरक्षित रखा जाय, तथा अध्ययनार्थ प्रस्तुत किया जाय। ऐसे सग्रहालयो मे गीतो के लेख तथा टेपो (फीतो) को रखने की अन्तर्राष्ट्रीय प्रणाली को अपनाया जाय।

छठे— लोक-साहित्य के सग्रहालय के साथ ही लोक कला-सग्रहालय भी तैयार कराये जाएँ जिनमे समस्त लोक-कलाओ के सरक्षण और उपयोग की व्यवस्था अन्तर्राष्ट्रीय प्रणाली से हो।

सातवें— भारत मे इस आयोजन को भाषानुसार किया जा सकता है। हिन्दी क्षेत्र के सभी प्रदेशो की सरकारें एक व्यवस्था बना लें। गाँव की पाठशालाओ मे मूल सग्रहालय स्थापित हो। फिर जिले मे बडा सग्रहालय हो, तथा एक नगर मे केन्द्रीय सग्रहालय हो। मूल सामग्री केन्द्रीय मे भी रखी जा सकती है, और उसकी प्रतिलिपि या चित्र अन्यों मे रखे जा सकते हैं।

आठवें— प्रत्येक क्षेत्र में लोक-साहित्य तथा लोकवार्ता के कार्य का भौगोलिक चित्राकन भी होते रहना चाहिए, जिससे पता चलता रहे कि किस गाँव या किस क्षेत्र मे किस-किस रूप का कार्य हो चुका है।

नवें— लोक-साहित्य के अध्ययन को विश्वविद्यालयो में ऊँची कक्षाओ मे स्थान दिया जाय, उसे केवल अनुसन्धान का ही विषय न माना जाय।

इतनी बातें हो जाने पर लोक-साहित्य का वास्तविक स्वरूप उदित हो सकेगा।

परिशिष्ट १

अन्तर्राष्ट्रीय ध्वनि-लिपि

Consonants	Bilabial	Labio-dental	Dental and Alveolar	Retroflex	Palato alveolar	Alveolo palatal	Palatal	Velar	Uvular	Pharyngal	Glottal
Plosive	p b		t d	ʈ ɖ			c ɟ	k g	q ɢ		ʔ
Nasal	m	ɱ	n	ɳ			ɲ	ŋ	ɴ		
Lateral			l	ɭ			ʎ				
Lateral fricative			ɬ ɮ								
Rolled			r						ʀ		
Flapped			ɾ	ɽ					ʀ		
Rolled fricative			ř								
Fricative	ɸ β	f v	θð|sz|ɹ	ʂ ʐ	ʃ ʒ	ɕ ʑ	ç ʝ	x ɣ	χ ʁ	ħ ʕ	h ɦ
.	w|ɥ	ʋ	ɹ				j (ɥ)	(w) ɰ	ʁ		
Vowels	Rounded						Unrounded				
Close Half Close Half-open Open	(y ʉ u) (ø o) (œ ɔ) (ɒ)						i y ɨ ʉ ɯ u e ø ɤ o ɛ œ ə ʌ ɔ æ ɐ a ɑ ɒ				

परिशिष्ट २

ध्वन्यकन यन्त्र
(Tape-Recorder)

ध्वन्यकन-यन्त्र तरह-तरह के होते हैं। कुछ बडे होते हैं, कुछ छोटे। कुछ विद्युत चालित होते हैं, और कुछ बैटरी (battery) चालित।

चित्र (अ) चित्र (आ) चित्र (इ) चित्र (ई)
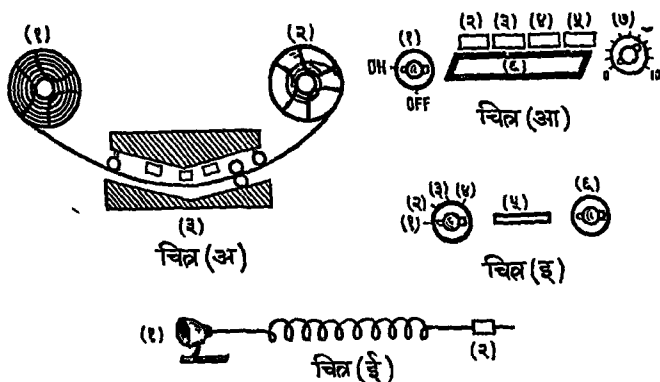
प्रत्येक ध्वन्यकन-यन्त्र मे [देखिए चित्र (अ), (१) व (२)] दो गिर्रियाँ (स्पूल spool) होती हैं। (३) की जगह पर दरारें होती हैं। फीता (tape) (१) से निकलकर (३) की दरारो मे से होकर (२) मे लपेटा जाता है। ध्वन्यकन (tape record) करते समय व ध्वन्यकित विषय (recorded matter) को सुनाते (play) समय फीता (टेप) हमेशा न० १ से (३) के रास्ते से होकर (२) मे आकर लिपटा करता है। फीते (टेप) को पहले पहल (१) गिर्री (स्पूल) से निकाल कर दरारो के बीच में ठीक तौर पर रखने के पश्चात् उसके छोर को दूसरी गिर्री (स्पूल) मे उलटे लपेटना चाहिए। फीते (टेप) की लपेट (रिवाइंड rewind) के लिए, बटन दबाने से फीता (टेप) (२) गिर्री (स्पूल) से (३) में से होकर (१) मे लिपटा करता है। यह सिद्धान्त प्रत्येक ध्वन्यकन यन्त्र मे होता है।

देखिए चित्र (आ)। बहुत-से विद्युतचालित ध्वन्यकन यन्त्रो मे बटन (१) यन्त्र चलाने के लिए बिजली का स्विच है। इससे बिजली बन्द भी की जा सकती है। यन्त्र जब काम में नही आता है तब बिजली को बन्द रखना जरूरी है। बटन (२) अङ्कित ध्वनि को पुन श्रवण (play) करने का स्विच है। इसे दबाने से फीते पर अङ्कित ध्वनि पुन श्रवणगोचर हो उठती है। बटन (३) फीते (टेप) को जल्दी

से (१) गिर्री (स्पूल) से (२) गिर्री (स्पूल) मे लपेटने के लिए है। इसे दवाने मे फीता (टेप) शीघ्र ही (१) गिर्री (स्पूल) से (२) गिर्री (स्पूल) मे उलटा लपेटा जाता हैं, इस विधि से हम जहाँ से चाहे वहाँ से फीते को उलट कर लपेटते हुए रोककर सुनना आरम्भ कर सकते हैं।

(४) यह (२) गिर्री (स्पूल) से फीते (टेप) को (१) गिर्री (स्पूल) मे भरने के लिए उलटी लपेट का वटन (रिवाइड-स्विच) है। इस वटन को दवाने से फीता (टेप) (२) *गिर्री (स्पूल) से शीघ्र ही (१) गिर्री (स्पूल) मे आकर लिपेटने* लगता है।

(५) ध्वन्यकन करने के लिए इस वटन को दवाना चाहिए। इसे दवाकर गिर्रियो के चलाने पर माइक्रोफोन (ध्वनि-मुख) मे वोलने से या गाने से उसका अकन (रेकार्ड) हो जाता है।

(६) स्थिरक छड (स्टाप वार stop bar) है। अकन करते (रेकार्ड करते) समय लपेटते या उल्टी लपेट करते समय अथवा सुनते (प्ले करते) समय इसे दवाने से फीते (टेप) का चालन वन्द हो जाता है। याद रहे मशीन वन्द नही होती, केवल टेप का ही चालन वन्द हो जाता है।

(७) सुनते समय ध्वनि को तीव्र या मन्द वनाने के लिए इस वटन को घुमाना चाहिए। इसको ध्वनि परिमाण नियत्रक (वॉल्यूम कण्ट्रोल Volume control) कहते है। फीते के अकन को मिटाते समय इसको शून्य (zero) के स्थान पर रखना चाहिए। इस तरह के वटन का नियम वहुत-से टेप-रेकार्डरो मे होता है। परन्तु कुछ छोटी व वैटरी से चालित मशीनो मे दूसरी तरह के वटन का नियम रहता है। देखिए चित्र [इ] मे—

एक ही वटन को (१) की जगह पर रखें तो विजली या वैटरी वन्द हो जाती है। (२) की जगह पर रखने से प्ले (श्रवण) होता है। (३) की जगह पर रखने से उलटी लपेट होती है और (४) की जगह पर रखने से ध्वनि-अङ्कन होता है। बीच मे रोकने के लिए (५) रोक छड (स्टाप वार) है। (६) ध्वनि परिमाण नियन्त्रण (वाल्यूम कण्ट्रोल) है, अन्य चालन नियम सव पूर्ववत ही है।

देखिए चित्र (ई)—यही ध्वनिमुख माइक्रोफोन (Microphone) कहलाता है। इसमे (१) की जगह पर हम जो कुछ वोलते हैं या गाते हैं—वह सव लहरो के रूप मे अन्दर जाता है। (२) को हम टेप रेकार्डर के खाँच (साकेट—socket) के अन्दर घुसेड देते है। ध्वनि लहरें (१) से निकलकर तार के जरिये (२) मे से टेप रेकार्डर मे घुसती हैं। ये ध्वनि-लहरें यहाँ विजली की लहरो मे परिवर्तित होती हैं। फीता प्लास्टिक का होता है। उस पर आयरन-ऑक्साइड (Iron Oxide) के चूर्ण मले जाते हैं। लोहे (Iron) को विजली के क्षेत्र मे लाने से उसमे कान्त गुण

(Radium activity) आ जाता है। बिजली की लहरो के क्रमानुसार फीते मे कांत-कण के रास्ते बनते जाते हैं। जब हम सुनने का प्रक्रम करते हैं तो कांत-कण के रास्तो के क्रमानुसार बिजली की लहरें बनती हैं। इन बिजली की लहरो के क्रमानुसार ध्वनि लहरें बन जाती है और ये ध्वनि-लहरें प्रसारक स्पीकर के जरिये हमारे बोल, गाने आदि को जैसे का तैसा पुन सुनाती हैं। इसी तत्त्व के आधार पर प्रत्येक टेप रेकार्डर बनाया गया है।

ध्वन्यकन करने के लिए माइक्रोफोन मे बोलना या गाना चाहिए। अङ्कन-बटन को खोलना चाहिए। अपने आप अङ्कन होता जाता है। रोक छड (स्टाप बार) दबाने से रेकार्ड होना बन्द होता है।

एक ही फीते का, उस पर के अङ्कन को मिटमिटाकर, अनेक बार हम उपयोग कर सकते हैं। फीते के अङ्कन को मिटाने के लिए तीन बातो का ध्यान रखना आवश्यक है—(१) ध्वनिमुख (माइक्रोफोन) को हटा देना चाहिए। (२) वाल्यूम कण्ट्रोल को शून्य पर रखना चाहिए। (३) अङ्कन करने के लिए जो बटन है उसी को दबाना चाहिए। टेप अपने आप मिटकर नया-सा बन जाता है। कुछ यन्त्र ऐसे भी होते हैं जिनमे फीते का पुराना अङ्कन मिटता भी जाता है और नया ध्वन्यकन भी होता जाता है। ऐसे यन्त्र मे अङ्कन को मिटाने की अलग आवश्यकता नही। अङ्कन करते समय निम्नलिखित बातो का ध्यान रखना परमावश्यक है—ध्वनिमुख (माइक्रोफोन) को कम से कम टेप रेकार्डर से एक फुट की दूरी पर रखना चाहिए। उसे बोलने वाले के मुँह के भी बहुत समीप नही रखना चाहिए। वह कम से कम मुँह से तीन इच दूर रहे। यदि ध्वनि-स्तभित (sound proof) कमरा हो तो फीते पर अङ्कन और भी अच्छा होता है। नही तो, कम से कम, बन्द कमरे मे रेकार्ड करना उत्तम होगा। शोर-गुल जहाँ नही हो वहाँ रेकार्ड करना चाहिए। रेकार्ड करते समय वॉल्यूम-कण्ट्रोल को छूना नही चाहिए। बोलने वाले को भी स्वाभाविक रूप से धीरे-धीरे स्पष्ट उच्चारण के साथ बोलना चाहिए। अस्पष्ट उच्चारण एव जल्द-बाजी से रेकार्ड बिलकुल बेकार हो जाता है।

रेकार्ड करने के बाद रील (reel) मे नम्बर एव विषय लिखकर डिब्बे के अन्दर रखना चाहिए। इन सब रीलो की सूची बनाकर रखने से तुरन्त हम उन्हे पहचान सकते हैं। टेप रेकार्डर को पेटी मे बन्द करके रखना चाहिए। खुला रखने से उसमे धूल, रद्दी कागज के टुकडे आदि अन्दर चले जायँगे जिससे मशीन जल्दी खराब हो सकती है।

आजकल जेबी-टेप रेकार्डर से लेकर स्टुडियो-टेप रेकार्डर तक नाना प्रकार के टेप रेकार्डर बने है। इनकी उपयोगिता असीमित है। शिक्षा के क्षेत्र मे अनुसन्धान करने के लिए, अध्ययन एव अध्यापन के लिए, विशेष रूप से लोकवार्ता एव भाषा-विज्ञान के क्षेत्रो मे टेप रेकार्डर का होना निस्सदेह आवश्यक है।

से (१) गिर्री (स्पूल) से (२) गिर्री (स्पूल) मे लपेटने के लिए है। इसे दवाने मे फीता (टेप) शीघ्र ही (१) गिर्री (स्पूल) से (२) गिर्री (स्पूल) मे उलटा लपेटा जाता हैं, इस विधि से हम जहाँ से चाहे वहाँ से फीते को उलट कर लपेटते हुए रोककर सुनना आरम्भ कर सकते हैं।

(४) यह (२) गिर्री (स्पूल) से फीते (टेप) को (१) गिर्री (स्पूल) मे भरने के लिए उलटी लपेट का बटन (रिवाइड-स्विच) है। इस बटन को दबाने से फीता (टेप) (२) गिर्री (स्पूल) से शीघ्र ही (१) गिर्री (स्पूल) मे आकर लिपेटने लगता है।

(५) ध्वन्यकन करने के लिए इस बटन को दबाना चाहिए। इसे दवाकर गिर्रियो के चलाने पर माइक्रोफोन (ध्वनि-मुख) मे बोलने से या गाने से उसका अकन (रेकार्ड) हो जाता है।

(६) स्थिरक छड (स्टाप बार stop bar) है। अकन करते (रेकार्ड करते) समय लपेटते या उल्टी लपेट करते समय अथवा सुनते (प्ले करते) समय इसे दवाने से फीते (टेप) का चालन बन्द हो जाता है। याद रहे मशीन बन्द नही होती, केवल टेप का ही चालन बन्द हो जाता है।

(७) सुनते समय ध्वनि को तीव्र या मन्द वनाने के लिए इस बटन को घुमाना चाहिए। इसको ध्वनि परिमाण नियत्रक (वॉल्यूम कण्ट्रोल Volume control) कहते है। फीते के अकन को मिटाते समय इसको शून्य (zero) के स्थान पर रखना चाहिए। इस तरह के वटन का नियम बहुत-से टेप-रेकार्डरो मे होता है। परन्तु कुछ छोटी व बैटरी से चालित मशीनो मे दूसरी तरह के बटन का नियम रहता है। देखिए चित्र [इ] में—

एक ही बटन को (१) की जगह पर रखें तो विजली या बैटरी बन्द हो जाती है। (२) की जगह पर रखने से प्ले (श्रवण) होता है। (३) की जगह पर रखने से उलटी लपेट होती है और (४) की जगह पर रखने से ध्वनि-अङ्कन होता है। बीच मे रोकने के लिए (५) रोक छड (स्टाप वार) है। (६) ध्वनि परिमाण नियन्त्रण (वाल्यूम कण्ट्रोल) है, अन्य चालन नियम सब पूर्ववत ही है।

देखिए चित्र (ई)—यही ध्वनिमुख माइक्रोफोन (Microphone) कहलाता है। इसमे (१) की जगह पर हम जो कुछ वोलते हैं या गाते हैं—वह सब लहरो के रूप मे अन्दर जाता है। (२) को हम टेप रेकार्डर के खाँच (साकेट—socket) के अन्दर घुसेड देते हैं। ध्वनि लहरें (१) से निकलकर तार के जरिये (२) मे से टेप रेकार्डर मे घुसती हैं। ये ध्वनि-लहरें यहाँ विजली की लहरो मे परिवर्तित होती हैं। फीता प्लास्टिक का होता है। उस पर आयरन-ऑक्साइड (Iron Oxide) के चूर्ण मले जाते हैं। लोहे (Iron) को विजली के क्षेत्र मे लाने से उसमे कान्त गुण

(Radium activity) आ जाता है। बिजली की लहरो के क्रमानुसार फीते मे कांत-कण के रास्ते बनते जाते हैं। जब हम सुनने का प्रक्रम करते है तो कात-कण के रास्तो के क्रमानुसार बिजली की लहरें बनती है। इन बिजली की लहरो के क्रमानुसार ध्वनि लहरें बन जाती हैं और ये ध्वनि-लहरें प्रसारक स्पीकर के जरिये हमारे बोल, गाने आदि को जैसे का तैसा पुन सुनाती हैं। इसी तत्त्व के आधार पर प्रत्येक टेप रेकार्डर बनाया गया है।

ध्वन्यकन करने के लिए माइक्रोफोन मे बोलना या गाना चाहिए। अङ्कन-बटन को खोलना चाहिए। अपने आप अङ्कन होता जाता है। रोक छड (स्टाप बार) दबाने से रेकार्ड होना बन्द होता है।

एक ही फीते का, उस पर के अङ्कन को मिटमिटाकर, अनेक बार हम उपयोग कर सकते हैं। फीते के अङ्कन को मिटाने के लिए तीन बातो का ध्यान रखना आवश्यक है—(१) ध्वनिमुख (माइक्रोफोन) को हटा देना चाहिए। (२) वाल्यूम कण्ट्रोल को शून्य पर रखना चाहिए। (३) अङ्कन करने के लिए जो बटन है उसी को दबाना चाहिए। टेप अपने आप मिटकर नया-सा बन जाता है। कुछ यन्त्र ऐसे भी होते हैं जिनमे फीते का पुराना अङ्कन मिटता भी जाता है और नया ध्वन्यकन भी होता जाता है। ऐसे यन्त्र मे अङ्कन को मिटाने की अलग आवश्यकता नही। अङ्कन करते समय निम्नलिखित बातो का ध्यान रखना परमावश्यक है—ध्वनिमुख (माइक्रोफोन) को कम से कम टेप रेकार्डर से एक फुट की दूरी पर रखना चाहिए। उसे बोलने वाले के मुंह के भी बहुत समीप नही रखना चाहिए। वह कम से कम मुंह से तीन इंच दूर रहे। यदि ध्वनि-स्तभित (sound proof) कमरा हो तो फीते पर अङ्कन और भी अच्छा होता है। नही तो, कम से कम, बन्द कमरे मे रेकार्ड करना उत्तम होगा। शोर-गुल जहाँ नही हो वहाँ रेकार्ड करना चाहिए। रेकार्ड करते समय वॉल्यूम-कण्ट्रोल को छूना नही चाहिए। बोलने वाले को भी स्वाभाविक रूप से धीरे-धीरे स्पष्ट उच्चारण के साथ बोलना चाहिए। अस्पष्ट उच्चारण एव जल्दबाजी से रेकार्ड बिलकुल बेकार हो जाता है।

रेकार्ड करने के बाद रील (reel) मे नम्बर एव विषय लिखकर डिब्बे के अन्दर रखना चाहिए। इन सब रीलो की सूची बनाकर रखने से तुरन्त हम उन्हें पहचान सकते है। टेप रेकार्डर को पेटी मे बन्द करके रखना चाहिए। खुला रखने से उसमे धूल, रद्दी कागज के टुकडे आदि अन्दर चले जायँगे जिससे मशीन जल्दी खराब हो सकती है।

आजकल जेबी-टेप रेकार्डर से लेकर स्टुडियो-टेप रेकार्डर तक नाना प्रकार के टेप रेकार्डर बने है। इनकी उपयोगिता असीमित है। शिक्षा के क्षेत्र मे अनुसन्धान करने के लिए, अध्ययन एव अध्यापन के लिए, विशेष रूप से लोकवार्ता एव भाषा-विज्ञान के क्षेत्रो में टेप रेकार्डर का होना निस्सदेह आवश्यक है।

सातवाँ अध्याय

क साहित्य

अब हम लोक-साहित्य के विभिन्न रूपो पर अलग-अलग विचार करने की स्थिति मे आ गये हैं। समस्त सामग्री सकलित होकर आ गयी है। उसमे से हमने कथा-साहित्य की सामग्री छाँट ली है, और उसके अध्ययन मे प्रवृत्त होना चाहते हैं।

लोक-साहित्य मे कथा कहानी का बहुत मूल्य है। कहानी लोक-मानस की मूल-भावना के रूप को स्थूल प्रतीक से अभिव्यक्त करती है। यह प्रयत्न जीवन के सभी क्षेत्रो मे होता मिलता है, अत कहानी की सत्ता की व्यापकता सिद्ध होती है। अत स्वाभाविक प्रश्न यह खडा होता है कि 'लोक-कहानी' के उदय तथा विकास का क्या क्रम हो सकता है? इस प्रश्न का महत्त्व इसलिए और भी बढ जाता है कि कहानी के दो रूप हमे विशेषत मिलते हैं—एक धर्म गाथा (myth) वाला दूसरा लोककहानी वाला। इन दोनो पर मौलिक विचार होने लगता है तो प्रश्न उठता है कि दोनो मे कौन पहले? और क्या पहले से दूसरा या दूसरे से पहला पैदा हुआ है?

धर्मगाथा

विद्वानो के मत मे धर्मगाथा मे धार्मिक आस्था नही, धार्मिक पृष्ठभूमि अवश्य होनी चाहिए। उसमे किसी देवता या दैवी पुरुष का समावेश होना आवश्यक है, यदि ऐसा न होगा तो उसे लोककहानी कहा जायगा।

किन्तु यह बात ध्यान मे रखने की आवश्यकता है कि केवल देवी-देवताओ के आने से कोई लोक-कहानी धर्मगाथा नहीं हो सकती। कितनी ही लोक-कहानियाँ ऐसी प्रचलित हैं जिनमे शिव-पार्वती, विष्णु आदि का उल्लेख मिलता है। पर उन्हे धर्म-गाथा नही कहा जा सकता। किसी तथ्य की व्याख्या करने वाली कहानियो मे भी देवताओ का समावेश होता है पर उन्हें धर्मगाथा नहीं कह सकते। उदाहरणार्थ—

१ **गिलहरी की पीठ पर रेखाएँ क्यों हैं?**—सीता के वियोग मे गिलहरी ने राम को सहायता दी, राम प्रसन्न हुए, उन्होंने उस पर हाथ फेरा और रेखाएँ बन गयी। यह लोक-कहानी है, धर्मगाथा नही।

२ **पेट बन्द क्यो है?**—पहले पेट खुला होता था और वह एक ढक्कन अथवा परिया से बन्द होता था। किन्तु पार्वती के पेट को खोलकर एक बार शिवजी ने देख लिया और उनके मायके का उपहास किया तब से पार्वती ने अभिशाप देकर बन्द कर दिया—यह लोककथा है, धर्मगाथा नहीं।

कारण यह है कि धर्मगाथा के लिए केवल यही आवश्यक नही कि उसमे देवताओ का समावेश हो, केवल यह भी आवश्यक नही कि उसमे आस्था हो, यहाँ आस्था से अभिप्राय है कहानी मे कही बात पर विश्वास करना। ऊपर की दोनो कहानियो मे वर्णित बात पर कहने-सुनने वाले दोनो ही विश्वास करते है किन्तु धर्म-गाथा के लिए आवश्यक है कि दोनो बातो के साथ उसमे धार्मिक आस्था हो। उसके कहने-सुनने मे किसी धार्मिक लाभ की सभावना हो। किन्तु इन सबसे भी अधिक महत्त्व का तत्त्व यह है कि धर्मगाथा मे देवी-देवता का समावेश परम्परित कथा-अभि-प्राय (मोटिफ) के रूप मे नही होता वरन् धर्मगाथा सजीवित तत्त्व की तरह किसी देवी-देवता के वृत्त से गुँथी रहती है।

कुछ विद्वानो ने धर्मगाथा को लोकवार्ताभिव्यक्ति नही माना। कुछ का तो कहना यह है कि धर्मगाथा का पूर्व मे कुछ भी रूप रहा हो, हमारे समक्ष तो वह महान कवियो की रचना के रूप मे आती है, इन विद्वानो का लक्ष्य ईलियड तथा महा-भारत जैसी रचनाओ की ओर होता है।[1] कुछ का विचार है कि लोकवार्ता तत्त्व का सम्बन्ध आदिम-मानव के वर्तमान अवशेषो से होता है, किन्तु धर्मगाथा तो अतीत काल से सम्बन्ध रखती है।[2] यह भी कहा जाता है कि धर्मगाथा मे आदिम-मानस की अभिव्यक्ति नही, क्योकि आदिम-मानस का विकास कुछ निम्न क्रम से हुआ है

१ मन[3]
२ परा-प्राकृतिकवाद—प्राकृतिक पदार्थों के श्रद्धामयोद्रेक मे
३ आत्मवत् वाद—किसी शक्ति की उद्भावना आत्मवत्—'आत्मवत् सर्व-भूतेषु'—मेरी जैसी बुद्धि, शक्ति तथा विवेक, पशु-पक्षियो तथा पदार्थों मे है।

---

[1] ऐसे विद्वानो से हमे यही पूछना है कि धर्मगाथा का उपयोग महाकाव्यो मे हुआ है, या महाकाव्य ही धर्मगाथा है। निश्चय ही धर्मगाथा ने महाकाव्य से पूव ही जन्म ग्रहण किया। उसी पूर्व रूप के कारण वे धर्मगाथा हैं। उसी महत्त्व के कारण वे महाकाव्यो की इसी रूप मे विषय बनी। अत वे अपने मूल रूप मे क्या थी, यही महत्त्वपूर्ण है।

[2] इस तर्क के सम्बन्ध मे एक तो काट यही है कि आज लोकवार्ता वस्तुत आदिम अवशेष मात्र नही। धर्मगाथा का सम्बन्ध भी उतना ही वर्तमान से है, जितना लोकवार्ता के आदिम अवशेषो का वर्तमान से होता है। धर्मगाथा का यदि अतीत से सम्बन्ध है तो लोकवार्ता के आदिम अवशेषो को क्या बिना अतीत से सम्ब-न्धित किये आदिम अवशेष माना जा सकता है।

[3] मन शब्द का प्रयोग मैलेनेशियन द्वीपसमूह मे होता है, To describe a mysterious form of energy which is thought of as capable of residing or gathering in men and natural objects, much as does electricity in a Leyden jar "यह वस्तुत आत्मा अथवा आत्म-शक्ति का भी मूल सार है। कुछ विद्वान इस क्रमविकास से सहमत नही। वे 'आत्मवतवाद' या ऐनिमेटिज्म से ही लोक-मानस का मूल मानते हैं।

४ पदार्थात्मवाद—समस्त पदार्थो मे आत्मा है।

५ देववाद—देवताओ की कल्पना।

इन विद्वानो के विचार से इस पाँचवी स्थिति मे पहुँचने पर ही धर्मगाथाओ का उदय हुआ।[1] अत- यह मूल लोक-मानस से सम्बद्ध नही। भाषा मे भी जैसा मैक्समूलर ने माना—

पहली अवस्था १. धातु निर्माण की है।

दूसरी २ भाषाओ की मूल जातियो के जन्म की है। इस अवस्था मे आर्य, सेमेटिक, टर्की जैसी जाति भाषाओ ने जातीय धर्म ग्रहण करना आरम्भ किया।

तीसरी ३ धर्मगाथा पूरक है, जिसमे मूल शब्दो ने विकारयुक्त होकर गाथाओ को जन्म दिया। इस अवस्था पर आकर धर्मगाथाएँ बनी।

चौथी ४ लौकिक, इस अवस्था पर पहुँचकर राष्ट्रीय भाषाओ का निर्माण हुआ।

धर्मगाथाओ के निर्माण मे भाषा का बहुत हाथ रहा है। मैक्समूलर ने यही धारणा बना ली थी कि धर्मगाथा केवल भाषा का रोग 'मैलेडी आव लैंग्वेज' है। भाषा जब अपनी श्लेष-शक्ति अथवा असमर्थता के कारण एक के स्थान पर साम्य के कारण दूसरे शब्द को ग्रहण कर लेती है और अर्थ विषयक परिवर्तन भी पैदा कर देती है, तब धर्मगाथा जन्म लेती है। अत धर्मगाथा का सम्बन्ध लोक-मानस से नही हो सकता। फिर धर्मगाथा से लोक कथाएँ उत्पन्न हुई हैं। अत लोक-कथाओ और लोकवार्ता की जननी को पृथक ही मान्यता देनी पडेगी।

इन युक्तियो मे विशेष बल नही माना जा सकता। धर्मगाथा मे मूलत आदिम मानस (Primitive Mind) ओत-प्रोत है। उसमे समस्त विकार, विकास और उद्-भावना लोक-मानस के परिणाम से है, सस्कृत मानस की मनोपिता उसमे नही। यो यह विषय पर्याप्त विवाद की गुजायश रखता है कि आदिम उद्गार धार्मिक भावना के मूल से सयुक्त थे जैसा कि फ्रेजर ने माना है। मैजिक (टोने) के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए फ्रेजर का कहना है कि लोकवार्ता का मूल मानस मैजिक (टोने) भाव का

---

[1] यहाँ प्रश्न यही है कि क्या इस पाँचवी अवस्था तक पहुँचने पर आदिम-मानस की सत्ता मिट चुकी थी। 'देववाद' क्या लोक-मानस की ही उद्भावना नही। यह भी अब स्पष्ट हो गया है कि लोकवार्ता का मूल लोक-मानस से सम्बन्ध अनिवार्य नही। लोक-मानस की जो दाय रूप मे स्थिति है, उसकी अभिव्यक्ति भी लोकवार्ता का एक तत्त्व है। धर्मगाथाओ के विन्यास मे लोक-मानस व्याप्त है।

परिणाम है। मैक्समूलर[1] ने उधर, ऐनीमिज्म या पदार्थ-आत्मदेव सत्तावाद की स्थापना की थी, और रूस के विद्वानो की मान्यता यह हो रही है कि आदिम मानव की मूल अभिव्यक्ति शुद्ध लौकिक थी। तथापि इस समस्त विवादपूर्ण स्थिति के उपरान्त भी यह कहा जा सकता है कि वह धर्म भी लोक-तत्त्व का अग था और धर्मगाथाएँ भी उसी लोक-तत्त्व के आधार पर बनी। अत धर्मगाथाएँ लोक-साहित्य का ही अग हैं।[2] धर्मगाथाओ का अध्ययन लोकवार्ताओ के अध्ययन के लिए अत्यन्त आवश्यक है तथा लोकवार्ताओ के स्वरूप को समझे बिना धर्मगाथाओ का भी अध्ययन असम्भव है। दोनो का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है।

इस प्रकार धर्मगाथा का निरूपण करने के उपरान्त भी धर्मगाथा के सम्बन्ध मे सवत् २००४-५ मे हमने जो लिखा था उसे 'ब्रजलोक साहित्य के अध्ययन' से यहाँ उद्धृत किया जाता है

"लोक-साहित्य की व्याख्या करने मे जब यह विदित हो कि उनके मूल मे किसी आधिभौतिक तत्त्व का प्रतिविम्ब है, कि आदिम मानव ने सूय और अन्धकार के सघर्प को, अथवा सूय और उपा के प्रेम को अथवा साहचर्य को ही विविध रूपको द्वारा साहित्य का रूप प्रदान कर दिया है, तो उसका यह रूप धर्मगाथा का रूप ग्रहण कर लेता है। तात्पर्य यह है कि लोक-साहित्य का वह अश जो रूप मे प्रकटत तो होता है कहानी, पर जिसके द्वारा अभीष्ट होता है किसी ऐसे प्राकृतिक व्यापार का वर्णन जो साहित्य-सृष्टा ने आदिमकाल मे देखा था और जिसमे धार्मिक भावना का पुट भी है—वह धर्मगाथा कहलाता है। इसके अतिरिक्त समस्त प्राचीन मौखिक परम्परा से प्राप्त कथा तथा गीत-साहित्य भी लोक-साहित्य कहलाता है। धर्मगाथाएँ भी हैं तो लोक-साहित्य ही, किन्तु विकास की विविध अवस्थाओ मे से होती हुई ये गाथाएँ धार्मिक अभिप्राय से सम्बद्ध हो गयी हैं। अत लोक-साहित्य के विशेप पारिभाषिक क्षेत्र से इनका स्थान बाहर हो जाता है। यह धार्मिक अभिप्राय आरम्भ मे तो सहज होता है, उपरान्त अभीष्ट अथ की चेतना से सम्बद्ध हो जाता है।

धर्मगाथा का रूप—रस्किन ने इसकी परिभाषा करते हुए लिखा है "एक धर्मगाथा अपनी सरलतम परिभाषा मे एक कहानी है, जिससे एक अर्थ सम्बद्ध है, ऐसा अर्थ जो प्रथम प्रकट होने वाले अर्थ से भिन्न हो। ऐसी कहानी मे ऐसा कोई अभिप्रेत

---

[1] मैक्समूलर का सिद्धान्त अब अमान्य हो चुका है। वास्तविक बात यह है कि लोक-कथा का जन्म पहले होता है। उसके पात्रो का तथा स्थलो का नामकरण बाद मे होता है। यह नामकरण की स्थिति ही महाकाव्यो की स्थिति है। सामान्य लोक-कथा+धम तथा देवतत्त्व=धर्मगाथा+देवतत्त्व का नामकरण=महाकाव्य। अत महाकाव्य धर्मगाथा का एक रूपान्तर है, धर्मगाथा लोक-कथा का रूपान्तर है।

[2] लोकवार्ता का क्षेत्र बहुत विशद् है, उसमे धर्मगाथा का समावेश सहज ही हो जाता है।

४ पदार्थात्मवाद—समस्त पदार्थों मे आत्मा है।

५ देववाद—देवताओ की कल्पना।

इन विद्वानो के विचार से इस पाँचवी स्थिति मे पहुँचने पर ही धर्मगाथाओ का उदय हुआ।[1] अत. यह मूल लोक-मानस से सम्बद्ध नही। भाषा मे भी जैसा मैक्समूलर ने माना—

पहली अवस्था	१. धातु निर्माण की है।
दूसरी	२ भाषाओ की मूल जातियो के जन्म की है। इस अवस्था मे आर्य, सेमेटिक, टर्की जैसी जाति भाषाओ ने जातीय धर्म ग्रहण करना आरम्भ किया।
तीसरी	३ धर्मगाथा पूरक है, जिसमे मूल शब्दो ने विकारयुक्त होकर गाथाओ को जन्म दिया। इस अवस्था पर आकर धर्मगाथाएँ बनी।
चौथी	४ लौकिक, इस अवस्था पर पहुँचकर राष्ट्रीय भाषाओ का निर्माण हुआ।

धर्मगाथाओ के निर्माण मे भाषा का बहुत हाथ रहा है। मैक्समूलर ने यही धारणा बना ली थी कि धर्मगाथा केवल भाषा का रोग 'मैलेडी आव लैंग्वेज' है। भाषा जब अपनी श्लेष-शक्ति अथवा असमर्थता के कारण एक के स्थान पर साम्य के कारण दूसरे शब्द को ग्रहण कर लेती है और अर्थ विषयक परिवर्तन भी पैदा कर देती है, तब धर्मगाथा जन्म लेती है। अत धर्मगाथा का सम्बन्ध लोक-मानस से नही हो सकता। फिर धर्मगाथा से लोक कथाएँ उत्पन्न हुई हैं। अत लोक-कथाओ और लोकवार्ता की जननी को पृथक ही मान्यता देनी पडेगी।

इन युक्तियो मे विशेष बल नही माना जा सकता। धर्मगाथा मे मूलत आदिम मानस (Primitive Mind) ओत-प्रोत है। उसमे समस्त विकार, विकास और उद्‌भावना लोक-मानस के परिणाम से है, सस्कृत मानस की मनीषिता उसमे नही। यो यह विषय पर्याप्त विवाद की गुजायश रखता है कि आदिम उद्‌गार धार्मिक भावना के मूल से सयुक्त थे जैसा कि फ्रेजर ने माना है। मैजिक (टोने) के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए फ्रेजर का कहना है कि लोकवार्ता का मूल मानस मैजिक (टोने) भाव का

---

[1] यहाँ प्रश्न यही है कि क्या इस पाँचवी अवस्था तक पहुँचने पर आदिम-मानस की सत्ता मिट चुकी थी। 'देववाद' क्या लोक-मानस की ही उद्‌भावना नही। यह भी अब स्पष्ट हो गया है कि लोकवार्ता का मूल लोक-मानस से सम्बन्ध अनिवार्य नही। लोक-मानस की जो दाय रूप मे स्थिति है, उसकी अभिव्यक्ति भी लोकवार्ता का एक तत्त्व है। धर्मगाथाओ के विन्यास मे लोक-मानस व्याप्त है।

परिणाम है। मैक्समूलर[1] ने उधर, ऐनीमिजम या पदार्थ-आत्मदेव सत्तावाद की स्थापना की थी, और रूस के विद्वानो की मान्यता यह हो रही है कि आदिम मानव की मूल अभिव्यक्ति शुद्ध लौकिक थी। तथापि इस समस्त विवादपूर्ण स्थिति के उपरान्त भी यह कहा जा सकता है कि वह धर्म भी लोक-तत्त्व का अग था और धर्मगाथाएँ भी उसी लोक-तत्त्व के आधार पर बनीं। अत धर्मगाथाएँ लोक-साहित्य का ही अग हैं।[2] धर्मगाथाओ का अध्ययन लोकवार्ताओ के अध्ययन के लिए अत्यन्त आवश्यक है तथा लोकवार्ताओ के स्वरूप को समझे बिना धर्मगाथाओ का भी अध्ययन असम्भव है। दोनो का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है।

इस प्रकार धर्मगाथा का निरूपण करने के उपरान्त भी धर्मगाथा के सम्बन्ध मे सवत् २००४-५ मे हमने जो लिखा था उसे 'ब्रजलोक साहित्य के अध्ययन' से यहाँ उद्धृत किया जाता है

"लोक-साहित्य की व्याख्या करने मे जब यह विदित हो कि उनके मूल मे किसी आधिभौतिक तत्त्व का प्रतिबिम्ब है, कि आदिम मानव ने सूर्य और अन्धकार के सघर्ष को, अथवा सूर्य और उपा के प्रेम को अथवा साहचय को ही विविध रूपको द्वारा साहित्य का रूप प्रदान कर दिया है, तो उसका यह रूप धर्मगाथा का रूप ग्रहण कर लेता है। तात्पर्य यह है कि लोक-साहित्य का वह अश जो रूप मे प्रकटत तो होता है कहानी, पर जिसके द्वारा अभीष्ट होता है किसी ऐसे प्राकृतिक व्यापार का वणन जो साहित्य-सृष्टा ने आदिमकाल मे देखा था और जिसमे धार्मिक भावना का पुट भी है—वह धर्मगाथा कहलाता है। इसके अतिरिक्त समस्त प्राचीन मौखिक परम्परा से प्राप्त कथा तथा गीत-साहित्य भी लोक-साहित्य कहलाता है। धमगाथाएँ भी हैं तो लोक-साहित्य ही, किन्तु विकास की विविध अवस्थाओ मे से होती हुई ये गाथाएँ धार्मिक अभिप्राय से सम्वद्ध हो गयी हैं। अत लोक-साहित्य के विशेप पारिभाषिक क्षेत्र से इनका स्थान बाहर हो जाता है। यह धार्मिक अभिप्राय आरम्भ मे तो सहज होता है, उपरान्त अभीष्ट अर्थ की चेतना से सम्बद्ध हो जाता है।

धर्मगाथा का रूप—रस्किन ने इसकी परिभापा करते हुए लिखा है "एक धर्मगाथा अपनी सरलतम परिभाषा मे एक कहानी है, जिससे एक अर्थ सम्बद्ध है, ऐसा अर्थ जो प्रथम प्रकट होने वाले अर्थ से भिन्न हो। ऐसी कहानी मे ऐसा कोई अभिप्रेत

---

[1] मैक्समूलर का सिद्धान्त अब अमान्य हो चुका है। वास्तविक बात यह है कि लोक-कथा का जन्म पहले होता है। उसके पात्रो का तथा स्थलो का नामकरण बाद मे होता है। यह नामकरण की स्थिति ही महाकाव्यो की स्थिति है। सामान्य लोक-कथा + धर्म तथा देवतत्त्व = धमगाथा + देवतत्त्व का नामकरण = महाकाव्य। अत महाकाव्य धर्मगाथा का एक रूपान्तर है, धर्मगाथा लोक-कथा का रूपान्तर है।

[2] लोकवार्ता का क्षेत्र बहुत विशद् है, उसमे धर्मगाथा का समावेश सहज ही हो जाता है।

अर्थ है, यह उस कहानी की कुछ उन परिस्थितियो मे साधारणत विदित होता है जो असाधारण होती है, प्राकृतिक घटनाओ के रूपक पर बनी है—पहले आदि-मानव-समूह ने प्रकृति के इन दिव्य व्यापारो को देखा और इन्हे मूत रूप मे शब्द का अर्थ माना, अथवा शब्द के साधारण अर्थ मे अस्वाभाविक होती है।"[1] इसकी व्याख्या करते हुए रस्किन ने आगे बताया है कि " प्राय प्रत्येक महत्त्वपूर्ण गाथा मे तुम्हे ये तीन निर्माण-तत्त्व मिलेंगे—मूलबिन्दु तथा दो शाखाएँ। मूलबिन्दु (बीज) होता है किसी प्राकृतिक सत्ता मे सूर्य अथवा आकाश, अथवा मेघ या सागर, उपरान्त उसका पुरुप रूप अवतार, जो एक ऐसा विश्वसनीय तथा स्पष्ट रूप ग्रहण कर लेता है कि उसके साथ हाथ मिलाये आप ऐसे ही घूम-फिर सकें जैसे अपने भाई अथवा बहन के साथ कोई शिशु, और अन्तत इस रूप-कल्पना की नैतिक सारगर्भिता जो सभी महान् धर्मगाथाओ मे शाश्वत तथा उपयोगी भाव से सत्य रूप मे प्रतिष्ठित होती है।"[2] किन्तु बर्न ने धर्मगाथा को और भी विस्तृत अर्थ दे दिया है। वे धर्मगाथाओ को 'कारण-निरूपक-कहानी' मानती हैं। इसमे विश्व, उसकी उत्पत्ति, प्रलय, जीवन, मरण, मनुष्य, पशु, जातीय-भेद, व्यवसाय-भेद, धार्मिक उपचार, पैतृक प्रथाएँ तथा रहस्यमय व्यापारो के कारणो की व्याख्या रहती है। यह कारण प्राय असम्भव ही होता है, पर जो उन धर्मगाथाओ को मानते हैं, वे उन पर विश्वास भी करते हैं।[3]

साधारण लोक-साहित्य मे यद्यपि धर्मगाथा के समान समस्त रूप मिल सकता है पर उसमे उस विशिष्ट अर्थ की अन्तर्व्याप्ति नही मिलती जिससे उसका समस्त कथानक मूलबीज के रूप मे किसी प्राकृतिक व्यापार का कोई अग बन सके।

धर्मगाथा का मूल—धर्मगाथाओ के मूल के सम्बन्ध मे अभी तक दो प्रधान मत हैं एक यह मानता है कि धर्मगाथा सूर्य और अन्धकार के सघर्प की प्राकृतिक घटनाओ के रूपक पर बनी है—पहले आदि-मानव-समूह ने प्रकृति के इन दिव्य व्यापारो को देखा और इन्हें मूर्तरूप मे शब्द का अर्थ माना अथवा इन मूर्त विपयो को शब्द दिये। फिर समय पाकर शब्दो मे विकार हुआ और उनमे अर्थ-परिवर्तन भी होने लगा, इससे प्रकृति व्यापारवाची शब्द दिव्यता• अथवा देवत्व द्योतक हो उठे। उनमे नैतिक सिद्धान्तो का भी समावेश हो गया। धर्मगाथा की उत्पत्ति का मूल शब्दो के रूपालङ्कार की भाँति प्रयोग मे निहित है। आगे चलकर रूपक का भाव लुप्त हो गया। वे अवस्थाएँ भी विस्मृत हो गयी जिनमे होकर इस शब्द का रूपकवत् प्रयोग हुआ था और शब्द 'धर्मगाथा' का आधार बन गया। यथार्थ मे धर्मगाथा भाषा का विकार है, जिसमे वे शब्द जो रूपक अथवा विशेषणवत् थे अपनी स्वतन्त्र सत्ता ग्रहण

---

१ देखिए, 'दि क्वीन ऑव दि एअर', जान रस्किन लिखित, पृ० २।

२ देखिए, वही, पृष्ठ १०।

३ देखिए, 'दि हैण्डबुक ऑव फोकलोर' लेखिका बर्न, अध्याय १६, पृष्ठ १६१।

करने लगते हैं और यह भूल जाया जाता है कि ये कवि के दिये नाम हैं, जिन्होंने शनैः-शनैः देवत्व प्राप्त कर लिया।[1]

धर्मगाथा के मूल के सम्बन्ध मे दूसरा मत यह रहा है कि ये मनुष्य की असभ्य अवस्था मे उत्पन्न हुई है और इनका सम्बन्ध उस काल के मनुष्यो के कृषि-कर्म तथा प्रजनन कर्म से है। कृषिकर्म और प्रजनन कर्म मे 'जिन भयो और आशकाओ का पद-पद पर उदय होता है, उन्ही के आधार पर धर्मगाथाएँ चली। अत धर्मगाथा का मूलबिन्दु सूर्य तथा उसके व्यापारो पर निर्भर नही करता, वरन् कृषि और काम पर निर्भर करता हैं। फ्रेजर महोदय इस मत के प्रबल पोषक थे। आजकल मेयर (Meyer) महोदय ने पुन इस मत की प्रबल युक्तियो से पुष्टि करने की चेष्टा की है।

"आदिम मानव का आध्यात्म जीवन चिन्ता और आशका का तथा यौन-प्रेरणा अथवा काम-चेष्टाओ का जीवन है। यह उनके आचरण के मूल मे रहते है। मेयर महोदय ने बाइबिल से दृष्टान्त देकर समझाया है कि मनुष्य भय के कारण ही जीवन मे बन्धन स्वीकार करता है। आदिम मानव का यह भय मृत्यु का ही भय होता है और यह दुष्ट प्रेतो अथवा जादू-टोनो की शक्तियो के रूप मे उसका पीछा करता है। उन्हें आशका बनी रहती है कि हो सकता है पृथ्वी अथवा ये शस्यशक्तियाँ समय पर उन्हे उचित सामग्री प्रदान न करें। उनकी इस भयग्रस्त अवस्था मे यौन-उद्रेक अथवा उनके शरीर का 'चमत्कार' ही उन्हे कुछ निवृत्ति प्रदान करता है। आदिम मानव का सास्कृतिक विकास मनुष्यो की यौन-क्रियाओ के ही अनुकूल होता है।"[2]

जिस प्रकार धर्मगाथाओ का उदय हुआ है, उससे यह स्पष्ट है कि पहले वे शब्द जो धमगाथाओ मे आज पात्र बने हुए है किसी प्राकृतिक व्यापार को प्रकट करते थे, फिर उन प्राकृतिक व्यापारो का प्राकृतिक रूप विलुप्त होता गया और धार्मिक कथा का रूप उसने ग्रहण किया, जिसमे उन प्राकृतिक व्यापारो के विविध शब्दो ने कथा के दिव्य तथा अलौकिक पात्रो का रूप ग्रहण कर लिया। बाद मे परि-स्थितियो मे परिवतन हो जाने से, कथाओ की धार्मिक आस्था भी कम हो गयी और वे केवल लोकगाथाएँ हो गयी। लोकगाथाओ मे पात्रो के नाम भी लुप्त हो जाते हैं। घटनाएँ और कथा-विधान ही ऐसा रह जाता है जो उन्हें धर्मगाथा से सम्बन्धित रखता है। पात्रो के नाम यदि मिलते भी हैं तो नये होते हैं और मूल धमगाथाओ के साभिप्राय शब्दो के रूपान्तर नही होते। हाँ, कभी-कभी ये रूपान्तर्गत नाम भी इन धर्मगाथाओ मे से लोकगाथाओ मे चिपके चले जाते है। यूरोप की कितनी ही लोक-गाथाओ का जियस (Zeus) वेदो का 'द्यौस' है। पहले प्राकृतिक व्यापार है, फिर देवता हुआ और आर्य ऋषियो ने उसकी स्तुति की। फिर वह धर्मगाथाओ का

---

[1] देखिए मैक्समूलर के 'लैक्चर्स ऑन साइस ऑव लैंग्वेज', पृष्ठ ११।
[2] दिसम्बर १९४३ के Indian Historical Quarterly मे प्रकाशित विनयकुमार सरकार के 'A Study of Meyer's Trilogy of Vegitation Powers and Festivals' नामक लेख से।

अलौकिक नायक वन गया, अव उसकी कथा कहने वाला साधारण जन यह कल्पना भी नही कर सकता कि जिस 'जियस' के सम्बन्ध मे वह ऐसी रोचक कहानियाँ सुनता है, वह कोई पुरुष रूपधारी व्यक्ति नही केवल एक प्राकृतिक व्यापार है।

किन्तु लायल महोदय ने 'एशियाटिक स्टडीज, सेकिण्ड सीरीज' मे 'हिस्टरी एण्ड फेविल' नामक छठे अध्याय मे इन दोनो मतो से भिन्न मत प्रकट किया है। वस्तुत ऊपर दिये हुए दोनो सम्प्रदाय एक ही हैं। दोनो ही यह मानते हैं कि धर्म-गाथा का उदय किसी मानवीय घटना से अथवा किसी ऐतिहासिक तत्त्व से नहीं। वह आदिम मानव की उस अवस्था मे उदय हुई जव वह मनत शिशु था और समस्त धर्मगाथा और लोक-कथा साहित्य या तो दिव्य प्राकृतिक व्यापारो के वर्णनो का रूपक है, या कृषि-उत्पादन और प्रजनन सम्बन्धी भावनाओ को प्रकट करने का। इन दोनो की दृष्टि मे गाथाओ के पात्रो का ऐतिहासिक अस्तित्व नही है। किन्तु लायल महोदय मानते हैं कि उनके मूल मे ऐतिहासिक तथ्य अवश्य विद्यमान होता है।[1]

इस सम्बन्ध मे यह लेखक आगे कहता है

"आख्यान अथवा गाथा मे कथा-तत्त्व और कल्पना-तत्त्व के साथ ऐतिहासिक तथ्य का भी समावेश होता है। नही, कथा और कल्पना का मूल-विन्दु ऐतिहासिक तथ्य अथवा घटना होती है। यह लेखक यह मानता है कि "धर्मगाथा का जव जन्म हुआ उस समय मनुष्य इतिहास और कल्पना-कथा मे अन्तर करना नही जानता था। अत उन कथाओ मे जो धर्मगाथाओ के रूप मे हमे प्राप्त हुए हैं इतिहास का विन्दु भी है और लोकगाथाओ का भी। दोनो का जन्म साथ-साथ हुआ है, वाद मे इतिहास कथा से अलग होता चला गया, और कथा इतिहास से।"

भारतीय आर्यो की धर्मगाथाओ के सम्वन्ध मे अभी-अभी एक और मत प्रकट किया गया है। इसके अनुसार वेद श्लेषार्थी है। एक ओर वे प्रकृति के व्यापारो का वर्णन करते है, पर उन व्यापारो का वर्णन कुछ ऐसा है कि पूर्ण सन्तोप नही होता। इससे उनका दूसरा अर्थ देखना पडता है। वह दूसरा अर्थ यह है कि वेदो मे यह समस्त वर्णन मानव के शरीर के अन्तर्विज्ञान से सम्वन्ध रखता है। वैदिक मन्त्र-द्रष्टाओ ने मनुष्य के शरीर विज्ञान का पूर्ण और गम्भीर वैज्ञानिक अध्ययन किया और वेदो की श्रेष्ठ भाषा मे उसे प्रकट किया। उदाहरण के लिए, इन्द्र मस्तिष्क है, सूर्य चैतन्य है, उषा चैतन्य के उदय होने से पूर्व के शरीर के शासक अचेतन केन्द्र है, विष्णु मेरुदण्ड है, पूषण लघु मस्तिष्क है, आदि-आदि। यह विलकुल नयी स्थापनाएँ हैं। इनके सम्वन्ध मे निश्चय रूप से अभी कुछ नही कहा जा सकता। इस स्थापना के

---

१ लायल (Lyall) महोदय ने लिखा है कि वह ऐतिहासिक तथ्य कितना ही लघु क्यो न हो, उसी लघु विन्दु पर कल्पना के पुट से गाथा का रूप खडा हुआ है। वे प्राकृतिक व्यापारो के कल्पनाप्रसूत पात्र रूप नही हैं, तथ्य पर निर्भर हैं। बाद मे इतिहास गौण हो गया, कथा मे कल्पना प्रधान हो गयी।

प्रतिपादक वी० जी० रिलि का तो यह कहना है कि इससे वैदिक देवताओ से सम्बन्धित सभी गुत्थियाँ सुलझ जाती हैं, पर इसकी परीक्षा अपेक्षित है। इस मत से भी धर्मगाथाओ का मूल ऐतिहासिक नही रहता, धर्मगाथाओ द्वारा शरीर-विज्ञान को ही रोचक कहानी का रूप दे दिया गया है।[1]

धर्मगाथा-साहित्य के जन्म और उसकी विशेषताओ का इस प्रकार हमे ज्ञान हो गया है।

लोकवार्ता साहित्य का मूल—साधारण लोकवार्ता-साहित्य के सम्बन्ध मे दो दृष्टियाँ हो सकती हैं। एक—यह साहित्य धर्मगाथा-साहित्य से ही प्रेरणा प्राप्त कर उदय हुआ है। प्रेरणा से भी विशेष यह कहा जा सकता है कि साधारण लोकवार्ता साहित्य का आधार धर्मगाथा साहित्य ही है। जिन कथाओ मे धार्मिक आस्था लगी रही उन्हे एक विशेष वर्ग ने विशेष सम्पत्ति की भाँति सुरक्षित कर लिया, उनके आधार पर विशाल महाकाव्य रचे गये। वे समय-विशेष के अनुकूल रूप भी बदलती रही—रूप बदलने से अभिप्राय यह है कि लोकवार्ता के परम्परा प्राप्त भण्डार मे से कभी कोई भी सामग्री ग्रहण की, कभी कोई। कभी विष्णु को महत्त्व दिया, कभी शिव को, और इस महत्त्व के केन्द्र के आधार पर ही लोकवार्ता मे प्राप्त सामग्री को नयी व्यवस्था दे दी गयी। यह तो धर्मगाथा के रूप मे रही। किन्तु समय बीतते-बीतते महत्त्व के बिन्दु बदलते गये, नये भावो के अनुरूप पुरानो को ढालने की चेष्टा की गयी। और नये नामो का भी निर्माण हुआ, पुरानों को भूला भी गया। इन्द्र का जो महत्त्व हमे वेद मे मिलता है वह पुराणो मे नही मिलता। बौद्ध और जैन साहित्य मे तो उसका रूप बिलकुल ही बिगड गया है। वरुण का नाम बाद के समय मे कोई विशेष महत्त्व नही रखता, किन्तु वेदो में वह प्रमुख है। यह सब तो धर्मगाथा का ही रूपान्तर है। धर्मगाथाओ के निर्माण अथवा विकास की तीन अवस्थाएँ मानी जा सकती हैं। आरम्भिक अवस्था मे प्राकृतिक व्यापारों और व्यापार-कर्ताओ को वह जीवनद्योतक शब्दो के द्वारा अभिव्यक्त करेगा।[2]

किन्तु जीवन व्यापार से विभूषित प्रकृति के ये तत्त्व और व्यापार मानवीकरण के आरोप, अथवा रूपक के द्वारा सिद्ध हुए नही माने जा सकते। उन व्यापारो का आदि-द्रष्टा प्रकृति के इन व्यापारो को अपनी भाँति ही प्राणियो के व्यापार मानता है। सूर्य, उषा आदि उसके लिए प्राणी ही हैं, अत उनको वह रूपक अथवा मानवीय

---

[1] देखिए वी० जी० रिलि, एम० एण्ड एस०, एफ० सी० पी० एस० द्वारा लिखित 'दि वैदिक गाड्स ऐज फिगर्स ऑव बायलाजी'।

[2] 'For every aspect of the material world have ready some life-giving expression" —Mythology of the Aryan Nations

अलौकिक नायक बन गया, अब उसकी कथा कहने वाला साधारण जन यह कल्पना भी नही कर सकता कि जिस 'जियस' के सम्बन्ध मे वह ऐसी रोचक कहानियाँ सुनता है, वह कोई पुरुप रूपधारी व्यक्ति नही केवल एक प्राकृतिक व्यापार है।

किन्तु लायल महोदय ने 'एशियाटिक स्टडीज, सेकिण्ड सीरीज' मे 'हिस्टरी एण्ड फेबिल' नामक छठे अध्याय मे इन दोनो मतो से भिन्न मत प्रकट किया है। वस्तुत ऊपर दिये हुए दोनो सम्प्रदाय एक ही है। दोनो ही यह मानते हैं कि धर्मगाथा का उदय किसी मानवीय घटना से अथवा किसी ऐतिहासिक तत्त्व से नही। वह आदिम मानव की उस अवस्था मे उदय हुई जब वह मनत शिशु था और समस्त धर्मगाथा और लोक-कथा साहित्य या तो दिव्य प्राकृतिक व्यापारो के वर्णनो का रूपक है, या कृषि-उत्पादन और प्रजनन सम्बन्धी भावनाओ को प्रकट करने का। इन दोनो की दृष्टि मे गाथाओ के पात्रो का ऐतिहासिक अस्तित्व नही है। किन्तु लायल महोदय मानते हैं कि उनके मूल मे ऐतिहासिक तथ्य अवश्य विद्यमान होता है।[1]

इस सम्बन्ध मे यह लेखक आगे कहता है

"आख्यान अथवा गाथा मे कथा-तत्त्व और कल्पना-तत्त्व के साथ ऐतिहासिक तथ्य का भी समावेश होता है। नही, कथा और कल्पना का मूल-विन्दु ऐतिहासिक तथ्य अथवा घटना होती है। यह लेखक यह मानता है कि "धर्मगाथा का जब जन्म हुआ उस समय मनुष्य इतिहास और कल्पना-कथा मे अन्तर करना नही जानता था। अत उन कथाओ मे जो धर्मगाथाओ के रूप मे हमे प्राप्त हुए हैं इतिहास का बिन्दु भी है और लोकगाथाओ का भी। दोनो का जन्म साथ-साथ हुआ है, बाद मे इतिहास कथा से अलग होता चला गया, और कथा इतिहास से।"

भारतीय आर्यो की धर्मगाथाओ के सम्बन्ध मे अभी-अभी एक और मत प्रकट किया गया है। इसके अनुसार वेद श्लेषार्थी हैं। एक ओर वे प्रकृति के व्यापारो का वर्णन करते है, पर उन व्यापारो का वर्णन कुछ ऐसा है कि पूर्ण सन्तोष नही होता। इससे उनका दूसरा अर्थ देखना पडता है। वह दूसरा अर्थ यह है कि वेदो मे यह समस्त वर्णन मानव के शरीर के अन्तर्विज्ञान से सम्बन्ध रखता है। वैदिक मन्त्र-द्रष्टाओ ने मनुष्य के शरीर विज्ञान का पूर्ण और गम्भीर वैज्ञानिक अध्ययन किया और वेदो की श्रेष्ठ भाषा मे उसे प्रकट किया। उदाहरण के लिए, इन्द्र मस्तिष्क है, सूर्य चैतन्य है, उषा चैतन्य के उदय होने से पूर्व के शरीर के शासक अचेतन केन्द्र है, विष्णु मेरुदण्ड है, पूषण लघु मस्तिष्क है, आदि-आदि। यह बिलकुल नयी स्थापनाएँ हैं। इनके सम्बन्ध मे निश्चय रूप से अभी कुछ नही कहा जा सकता। इस स्थापना के

---

१ लायल (Lyall) महोदय ने लिखा है कि वह ऐतिहासिक तथ्य कितना ही लघु क्यो न हो, उसी लघु विन्दु पर कल्पना के पुट से गाथा का रूप खडा हुआ है। वे प्राकृतिक व्यापारो के कल्पनाप्रसूत पात्र रूप नही है, तथ्य पर निर्भर हैं। बाद मे इतिहास गौण हो गया, कथा मे कल्पना प्रधान हो गयी।

प्रतिपादक वी० जी० रिलि का तो यह कहना है कि इससे वैदिक देवताओ से सम्बन्धित सभी गुत्थियाँ सुलझ जाती हैं, पर इसकी परीक्षा अपेक्षित है। इस मत मे भी धर्मगाथाओ का मूल ऐतिहासिक नही रहता, धर्मगाथाओ द्वारा शरीर-विज्ञान को ही रोचक कहानी का रूप दे दिया गया है।[१]

धर्मगाथा-साहित्य के जन्म और उसकी विशेषताओ का इस प्रकार हमे ज्ञान हो गया है।

लोकवार्ता साहित्य का मूल—साधारण लोकवार्ता-साहित्य के सम्बन्ध मे दो दृष्टियाँ हो सकती हैं। एक—यह साहित्य धर्मगाथा-साहित्य से ही प्रेरणा प्राप्त कर उदय हुआ है। प्रेरणा से भी विशेष यह कहा जा सकता है कि साधारण लोकवार्ता साहित्य का आधार धर्मगाथा साहित्य ही है। जिन कथाओ मे धार्मिक आस्था लगी रही उन्हे एक विशेष वर्ग ने विशेष सम्पत्ति की भाँति सुरक्षित कर लिया, उनके आधार पर विशाल महाकाव्य रचे गये। वे समय-विशेष के अनुकूल रूप भी बदलती रही—रूप बदलने से अभिप्राय यह है कि लोकवार्ता के परम्परा प्राप्त भण्डार मे से कभी कोई भी सामग्री ग्रहण की, कभी कोई। कभी विष्णु को महत्त्व दिया, कभी शिव को, और इस महत्त्व के केन्द्र के आधार पर ही लोकवार्ता मे प्राप्त सामग्री को नयी व्यवस्था दे दी गयी। यह तो धर्मगाथा के रूप मे रही। किन्तु समय बीतते-बीतते महत्त्व के बिन्दु बदलते गये, नये भावो के अनुरूप पुरानों को ढालने की चेष्टा की गयी। और नये नामो का भी निर्माण हुआ, पुरानों को भूला भी गया। इन्द्र का जो महत्त्व हमे वेद मे मिलता है वह पुराणो मे नही मिलता। बौद्ध और जैन साहित्य मे तो उसका रूप बिलकुल ही बिगड गया है। वरुण का नाम बाद के समय में कोई विशेष महत्त्व नही रखता, किन्तु वेदो मे वह प्रमुख है। यह सब तो धर्मगाथा का ही रूपान्तर है। धर्मगाथाओ के निर्माण अथवा विकास की तीन अवस्थाएँ मानी जा सकती हैं। आरम्भिक अवस्था मे प्राकृतिक व्यापारो और व्यापार-कर्ताओ को वह जीवनद्योतक शब्दो के द्वारा अभिव्यक्त करेगा।[२]

किन्तु जीवन व्यापार से विभूषित प्रकृति के ये तत्त्व और व्यापार मानवीकरण के आरोप, अथवा रूपक के द्वारा सिद्ध हुए नही माने जा सकते। उन व्यापारो का आदि-द्रष्टा प्रकृति के इन व्यापारो को अपनी भाँति ही प्राणियो के व्यापार मानता है। सूर्य, उषा आदि उसके लिए प्राणी ही हैं, अत उनको वह रूपक अथवा मानवीय

---

१ देखिए वी० जी० रिलि, एम० एण्ड एस०, एफ० सी० पी० एस० द्वारा लिखित 'दि वैदिक गाड्स ऐज फिगर्स ऑव बायलाजी'।

२ 'For every aspect of the material world have ready some life-giving expression "
—Mythology of the Aryan Nations

आरोप के द्वारा प्रकट नही कर रहा। अपने मनोभावो मे उस प्रकृति-मण्डल को उसने यथार्थत इसी रूप मे देखा है।[१]

इस क्रम से आरम्भिक धर्मगाथाओ का निर्माण हुआ, जो वेद मे बिखरी मिलती हैं। माध्यमिक गाथाएँ वे होती है जिनमे शब्दो के यथार्थ अर्थ और विषय या तो बिलकुल ही विस्मृत हो जाते हैं या अधिकाश विस्मृत हो जाते हैं और उन विस्मृत कडियो को जोडने के लिए कल्पित कडियाँ बन जाती हैं अथवा बनायी जाती हैं। तीसरी प्रकार की गाथाएँ भी होती हैं। ये शब्द के बहु अर्थों के कारण अथवा एक ही अर्थ वाले विविध शब्दो के श्लेष से उत्पन्न हो जाती हैं।

धर्मगाथा के सम्बन्ध मे ऊपर विस्तृत विचार हो चुका है। फिर भी ऐन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका का मत और देख लेना चाहिए। उसमे बताया गया है कि "As distinct from these last myths have a purpose They are essentially aetiological, or as Mr Kipling would say 'Just so stories' Their object is to explain (1) cosmic phenomena (e g, how the earth and sky came to be separated, (2) peculiarities of natural history (e g why rain follows the cries or activities of certain birds, (3) the origin of human civilization (e g, through the beneficient action of a culture hero like Prometheus, or (4) the origin of social or religious custom or the nature and history of objects of worship" यह धर्मगाथा है।

लोकगाथा (अवदान) के सम्बन्ध मे ऐनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका[२] मे बताया गया है कि—"Legend may be said to be the distorted history It contains a nucleus of historical fact the memories of which have been elaborated or distorted by accretions derived from myths or from stories of our third kind" लोक-गाथा मे ऐतिहासिक बिन्दु अवश्य होता है। यद्यपि लायल महोदय के साथ एक मत होकर धर्मगाथाओ के सम्बन्ध मे हम यह नही कह सकते कि—"The divine myths represented no more than a later chapter of the same story, a further development of the fable working upon true events and persons"[3] किन्तु लोकगाथाओ के अवदानो के सम्बन्ध मे यह मत अक्षरश सत्य माना जा सकता है, अवश्य ही एक सशोधन की आवश्यकता है। 'ऐतिहासिक तथ्य' अथवा 'ऐतिहासिक व्यक्ति' से सदा

---

१ But it would be no personification and still less would it be an allegory or metaphor It would be to him a veritable reality which he examined and analysed as little as he reflected on himself It would be a sentiment and a belief but in no sense a religion

—Mythology of the Aryan Nations

२ लोक-कथाओ के सम्बन्ध मे 'ऐनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका' मे यह उल्लेख है "Popular stories fall into three main categories myths, legends and stories which are told primarily to provide entertainments"

3 अल्फ्रेड लायल की पुस्तक ऐशियाटिक स्टडीज, सेकिण्ड-सीरीज।

यही अभिप्राय नही माना जा सकता कि वे किसी समय मे यथार्थ मे हुए ही थे। मानवीय भाव-विकास मे बहुधा ऐसा होता है कि जो व्यक्ति और घटनाएँ बिलकुल कल्पना के होते है, वे समय पाकर ऐतिहासिक मान लिये जाते है। इस ऐतिहासिक युग मे जयचन्द और पृथ्वीराज का जो सम्बन्ध बताया जाता रहा था वह कितना काल्पनिक सिद्ध हुआ है। दूसरे शब्दो मे जो लोक-कल्पना थी वह इतिहास के रूप मे मानी गयी। यदि उस कल्पना को अन्य कसौटियो पर कसकर अनैतिहासिक सिद्ध न किया गया होता तो वह ऐतिहासिक ही मानी जाती। 'ट्रेजेडी ऑव ब्लैक हॉल' भी अनेक विद्वानो की दृष्टि मे एक चतुर राजनीतिज्ञ के दिमाग की सूझ मात्र है। यद्यपि यह पूर्णरूपेण निश्चय नही हो सका है किन्तु किसी भी दिन यह ऐतिहासिक घटना कहानी मात्र सिद्ध हो सकती है। इसी प्रकार राम और कृष्ण के सम्बन्ध मे इतिहासकारों मे अभी तक मतभेद है। यह बिलकुल सम्भव है कि ये राम और कृष्ण 'सूर्य' के ही नाम हो। राम तो वैसे भी सूर्यवशी कहलाते ही है—वे सूर्य की परम्परा मे हैं। वेदो मे सूर्य अथवा वरुण अथवा उषा अथवा इन्द्र का जिस प्रकार वर्णन हुआ है उससे वे शरीरधारी पुरुष भी माने जा सकते है—और कालोपरान्त ऐतिहासिक मान लिये जायँ तो आश्चर्य की बात नही होगी। यूनानी 'जियस' वैदिक 'द्यौस' ही है, पर यह ऐतिहासिक व्यक्ति की भाँति माना जाने लगा था। अत ऐसी समस्त गाथाएँ जो यथार्थ ऐतिहासिक बिन्दु पर खडी की गयी हो, अथवा जिनको किसी समय मे ऐतिहासिक प्रतिष्ठा मिल गयी हो, उन पर बनी हो, वे लोक-गाथाएँ (अवदान) कही जाएँगी। यह अक्षरश सत्य है कि "निम्न तथा अपेक्षाकृत अज्ञान मे डूबी जातियो मे आज भी किसी दुष्ट प्रकृति मनुष्य का प्रेत, उसकी मृत्यु के उपरान्त पूजा जाता है। उसके विषय मे बडी विलक्षण चमत्कार कथाएँ चल पडती हैं। जो मनुष्य अपने शौर्य, दया, अथवा किसी मानसिक या शारीरिक शक्ति से अपने समय के लोगो पर अपनी गहरी छाप लगा देता है, वही निरक्षरजनो मे अवदान का विषय बन जाता है।"

किन्तु यह कथन ऐतिहासिक युग मे घटने वाली बातो के लिए है। आदिम मानव को अपनी जाति मे उतने आश्चर्य के व्यापार नही मिल सकते जितने प्राकृतिक व्यापारो मे। पर, इससे स्पष्ट है कि प्राचीन अवदान मे इतिहास के ही ध्वस विस्तृत होने से नही बच रहे, वरन् आधुनिक युग के भी पुरुषो के वृत्त अद्भुत रूप मे प्रस्तुत हैं। भारत मे ऐसे उदाहरणो की कमी नही है जिनमे एक साधारण-सा व्यक्ति किसी असाधारण घटना के कारण मृत्यु के उपरान्त पूज्य बन गया है। कुछ व्यक्ति अपनी असाधारणता के कारण भी पूजे जाते है। रेणुका क्षेत्र के पास सरवर सुलतान की मजार है। यह वही सखी-सरवर है जिसकी लोक-गाथा पजाब मे विशेष प्रचलित है और जिसका सग्रह कैप्टेन आर० एस० टेम्पल महोदय ने "दि लीजेण्ड्स ऑव दि पजाब" मे किया है। अपनी उक्त पुस्तक की स० २ की लोकगाथा 'सखी सरवर एण्ड दानी जती' के आरम्भ मे टेम्पल महोदय ने यह टिप्पणी दी है "यह बिलकुल आधुनिक

अवदान है, क्योकि लेखक ने फीरोजपुर जिले के लदेके गाँव के लम्बरदार से बातें की हैं। यही वह आदमी है जो अपने को उस लडके का पुत्र बताता है जिसे दानी के लिए सरवर ने मुर्दा से जिन्दा कर दिया था। ' सैयद अहमद सखी सरवर, सुलतान लाखदाता, जो साधारणत सरवर या सखी सरवर कहा जाता है, पजाब का सबसे लोकप्रिय आधुनिक सन्त है। सरवर तेरहवी शताब्दी मे हुआ होगा। इसका मजार सुलेमान पर्वत के नीचे डेरागाजीखाँ जिले मे सखी सरवर दर्रे के मुख पर निगाहा मे है।"

आगरा मे 'कुआवाला' पूजा जाता है और अगणित स्त्री और पुरुष 'कुआ वारौ मचलि गयौ बगिया मे' गाते हुए उसे पूजने जाते है। यह तो एक साधारण पुरुष था जो एक स्त्री पर आसक्त होने के कारण कुएँ में गिरा दिया गया था, पर आज वह देवता की भाँति पूजा जाता है और उसके सम्बन्ध मे कितने ही गीत गाये जाते हैं। मध्यप्रदेश या बुन्देलखण्ड का 'हरदौल' भी ऐसा ही ऐतिहासिक सच्चरित्र व्यक्ति है, जो घर-घर पूजा जाता है। अत लोक-गाथाएँ प्राचीन वीरो की और सिद्धो की ही नही, नये व्यक्तियो की भी हो सकती हैं और उनमे भी कल्पना का पूरा उपयोग हुआ मिल सकता है। टेम्पल महोदय ने इन लोक-गाथाओ (अवदानो) को छ चक्रो मे विभाजित किया है। एक चक्र का नाम उन्होने रखा है रसालू चक्र, इसमे शौर्य के चमत्कारपूर्ण साहसी कार्य मिलते है। दूसरे का नाम पाण्डव-चक्र इनमे महाभारत के प्रकार की गाथाएँ मिलती हैं। इनका सम्बन्ध किसी न किसी रूप मे पौराणिक वृत्त से कर दिया गया है, अथवा पौराणिक गाथा को ही लोक-कलाकार ने अपनी कला का विषय बना लिया है। तीसरा चक्र है शौर्य और सिद्धि से मिला-जुला, जिसमे योद्धाओ, सिद्धो की कथाएँ मिलती है। चौथा प्रकार सिद्ध-सम्बन्धी अवदानो का, और पाँचवाँ चक्र सखी सरवर के अवदानो का माना गया है। छठा चक्र उन कथाओ का है जो स्थानीय वीरो से सम्बन्ध रखती हैं। किन्तु लोक-पुरुषो अथवा लोक-घटनाओ ने सत्य पर बनी हुई ये प्राचीन तथा नवीन गाथाएँ अपने विषय और तकनीक के आधार पर और भी चक्रो मे बाँटी जा सकती हैं।[1]

लोक-कहानी—लोक-कथाओ के तीसरे वर्ग के सम्बन्ध मे विशेष इतना ही

---

१ श्रीमती बर्न ने अवदान के सम्बन्ध मे लिखा है "अवदान वे विवरण हैं जो किसी की व्याख्या करने के लिए नही कहे गये वरन् उन बातो के सीधे-सच्चे वर्णन हैं जिनको घटित हुआ माना जाता है। जैसे जल-प्लावन, कोई प्रवास, कोई विजय, पुल का निर्माण अथवा नगर का निर्माण। उसने लोक-गाथाओ (अवदानो) को दो विभागो मे बाँटा है। वीर-कथा तथा साके। जो अवदान किसी पुराण पुरुष के शौर्य की कहानी कहते हैं, वे वीरकथा (हीरो टेल्स) कहे जाते हैं। इन पुराण पुरुषो के अस्तित्व को निर्विवाद मान लिया जाता है। जिन अवदानो मे ऐसे पात्रो के जीवन तथा शौर्य का विस्तृत वर्णन होता है, जो ऐतिहासिक होते हैं वे अवदान 'साके' कहलाते हैं, पृ० २६२।

कहा जा सकता है कि वे कथाएँ जो उपरोक्त दोनो विभागो की कथाओ से भिन्न हैं और उनसे अतिरिक्त है, वे ही साधारण कहानी कहलाती हैं। साधारण लोक-कहानी को भी केवल मनोरजन की सामग्री मानना सम्भवत पूर्णत वैज्ञानिक नही होगा। निश्चय ही उनमे से अधिकाश केवल बात कह कर मन बहलाने के लिए ही हैं, किन्तु सभी कहानियाँ मनोरजन के लिए नही मानी जा सकती। अग्रेजी मे कहानियो का जो प्रकार फेबल (Fable) कहलाता है और अपने यहाँ जिसे तन्त्राख्यान या पशु-पक्षियो की कहानियाँ कह सकते हैं वह तो विशेषत शिक्षा के लिए ही उपयोग मे आता रहा है। "ला फोण्टेन" ने स्पष्ट कह दिया है कि—

> "Fables in sooth are not what they appear,
> Our moralists are mice and such small deer
> We yawn at sermons, but we gladly turn
> To moral tales, and so amused in yarn"

डाक्टर जानसन ने 'लाइफ ऑव गे' मे यह परिभाषा दी है—

"A fable or apologue seems to be in its genuine state a narrative in which beings irrational and sometimes inanimate (arbores loquntur, non-tantum ferae), are, for the purpose of moral instruction, feigned to act and speak with human interests and passions"

भारत मे यह अत्यन्त प्रसिद्ध ही है कि पचतन्त्र की कहानियाँ राजकुमारो को राजनीति सिखाने के लिए कही गयी थी। ये राजकुमार पढने मे मन नही लगाते थे, तभी उन्हे ऐसी कहानियो द्वारा ही शिक्षा दी गयी। इन तन्त्राख्यानो मे पशु-पक्षियो की कहानियाँ होती हैं और उन कहानियो के द्वारा किसी न किसी प्रकार की शिक्षा अवश्य मिलती है।

यहाँ भी यह बात ध्यान मे रखने की है कि तन्त्राख्यान उन अन्य आख्यानो से भिन्न हैं जिनमे पशु-पक्षियो की कहानियाँ है, पर उनसे कोई शिक्षा नही निकाली गयी। ऐसी पशु-पक्षियो की कहानियाँ, जिनका सम्बन्ध 'तन्त्र' अथवा नीति से नही भारत मे तथा अन्य देशो मे पचतन्त्र की रचना से पूर्व भी प्रचलित थी, ऐसा शोध से निश्चय हो चुका है। वेदो[1] तक मे पशु-पक्षियो की कहानी अथवा कहानी मे पशु-पक्षी किसी न किसी रूप मे आये ही हैं। बौद्ध जातको मे तो पशु-पक्षी सम्बन्धी कहानियाँ भरी पडी हैं, पर उन्हे धर्मगाथाओ की-सी मान्यता प्राप्त है। उनमे यह धर्मगाथात्व इसलिए नही कि उनमे कोई दूसरा अर्थ निहित है, वरन् इसलिए कि उनका आदर धार्मिक-श्रद्धा से होता है। जातको मे पशु-पक्षियो की कहानियो के साथ नीति अथवा उपदेश का सम्बन्ध होने लगा है।

लोक-कथा का उद्भव—इस विचार-विमर्श से यह निष्कर्ष निकलता है कि

---

[1] Works by the late Horace Hayman Wilson Vol IV
—*Hindu Fiction*, p. 84

लोकवार्ता साहित्य की धर्मगाथाओ का उदय जिन उपादानो और व्यापारो से हुआ उन्ही से साधारण लोकवार्ता साहित्य की लोकगाथाओ और लोककथाओ का भी हुआ। धर्मगाथा और लोककथा के उदय की श्रेणियाँ सक्षेप मे यो दिखायी जा सकती हैं—

पहली अवस्था—आदि मानव के मानस द्वारा प्रकृति-व्यापारो का दर्शन, उनका नामकरण, और उनमे अपने जैसे व्यापारो का ज्ञान।

दूसरी अवस्था—इस ज्ञान के दो रूप हुए एक—ज्ञान ने विकसित होकर उन प्रकृति के व्यापारो के वाचक शब्दो के यथार्थ अभिप्राय को अंशत अथवा पूर्णत विस्मृत कर दिया, और उन प्रकृतिवाची शब्दो के विषयो को देवत्व और अलौकिकत्व से विभूषित कर दिया। धर्म-भावना का, श्रद्धा अथवा भय का सचार कर दिया। ऐसा प्रकृति के उन तत्त्वो और व्यापारो के सम्बन्ध मे हुआ जो मनुष्य को अपने प्रत्यक्ष अनुभव से उसके दैनिक कार्यक्रम मे हानि-लाभ पहुँचाते प्रतीत होते थे।

दूसरे—ज्ञान से विकसित होकर प्रकृति के विविध व्यापारो मे मिलने वाली शिक्षाओ को हृदयङ्गम किया—उनके प्रकृति व्यापारो को कथा का रूप दिया और उनसे उपदेश निकाला।

तीसरी —पहला ज्ञान धर्मगाथाओ के रूप मे धार्मिक आख्यानो का आधार बना। उन्हें मनीषियो ने अपनाकर और भी अधिक श्रद्धा का भाजन बना दिया। इसमे से महाकाव्यो तथा धर्मगाथाओ के परिपक्व रूप खडे हुए। यह शिष्ट और विशेष वर्ग की सम्पत्ति होता चला गया। इसका रूप भी स्थिर होता गया।

दूसरे—ज्ञान को साधारण लोक ने अपनाया इसमे प्रकृति के व्यापारो की शिक्षाएँ साधारण कल्पना से विविध रूप ग्रहण करती रहीं, यही साधारण लोकवार्ता हुई। इसमे या तो मनोरजन की प्रधानता रही, या नैतिक शिक्षा की। इस साहित्य मे कथा-कहानी के रूप मे घटनाएँ तो सुरक्षित रही, पर नामो की रक्षा न हो सकी। इसकी आधार रूपरेखा तो दृढ रही पर ऊपरी रूप मे अनेक परिवर्तन होते गये और रग भरते गये। यह सर्वसाधारण की सम्पत्ति बनी।

चौथी अवस्था—मूल लोकवार्ताएँ अपने आदि स्रोतो से पृथक होती चली गयी। वे विविध मानव-समूहो द्वारा विविध भौगोलिक प्रदेशो मे ले जायी गयी। उन प्रदेशो की भूगोल के अनुसार उस कथा के स्थानो का नामकरण हुआ। ये अधिकाधिक फलने-फूलने लगी। उनकी शाखा-प्रशाखाएँ ऐसा नया रूप ग्रहण करने लगी कि मूल से वे बिलकुल असम्बद्ध प्रतीत होने लगी। अब ये बिलकुल ही साधारण लौकिक कहानियाँ हो गयी।

पाँचवीं अवस्था—ये साधारण लोक-कहानियाँ साधारण जन-समुदाय मे प्रवाहित हो चली और साधारण लोक-मानस ने इनके समान ढाँचे पर बिलकुल लौकिक और स्थानीय कहानियाँ रच डाली। ऐसी कहानियो को भी प्रेरणा मिली जिनका उनकी कहानी से कोई सम्बन्ध ही न रहा।

वैदिक प्रकृति—उदाहरण के लिए—पहली अवस्था मे मानव ने उषा को देखा और मुग्ध होकर गा उठा—

We see that thou art good far shines the lustre,
Thy beams, the splendours have flown up to heaven
Decking thyself, thou makest bare thy bosom,
Shining in majesty, thou Goddess Morning

\+ + + +

Thy ways are easy on the hills thou passest Invincible !
Self ! illuminous through waters
So lofty Goddess with thine ample pathway,
Daughter of Heaven bring wealth to give us comfort

सूर्य के सम्बन्ध मे उनके मन में यह धारणा बनी—

सूर्यो देवीमुषस रोचमाना
मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् । [ऋ० १, ११५,

"सूर्य दिव्य (देवी) तथा ज्योतिष्मती उषा के पीछे-पीछे ऐसे ही जाता है जैसे कोई प्रेमी अपनी प्रेयसी के ।"

मेघ और वर्षा के व्यापार को देखकर उसने इन्द्र की जो कल्पना की वह तो अद्भुत ही है । उसने कहा—

यो हत्वाहि मरिणात्सप्त सिन्धुन्योगा उदाजपधा वलस्य । [ऋ० २, १२

तथा— य शम्बर पर्वतेषु क्षियन्त
चत्वारिंश्या शरद्यन्वविन्दत् ।
ओजायमान यो अहि जघान
दानु शयान स जनास इन्द्र ॥ [ऋ० २, १२

"Who found out in the fortieth autumn, Sambara abiding in the hills, who slew that dragon boasting of his might, the sprawling demon He, O men, is Indra "—Tr Peter Peterson

उसने अग्नि की प्रशसा मे ये अनुभूतियाँ समर्पित की—

"Agni born of sacrifice, three are thy viands, three thine abiding places, three the tongues satisfying (the gods), three verily are thy forms, acceptable to the deities, and with them never heedless (of our wishes), be propitious to our praises "

"Divine Agni, knowing all that exists he has deposited in the whatever are the delusions of the deluding " (Rakshasas)

"The divine Agni is the guide of devout men as the sun is the regulator of seasons may he, the observer of truth, the slayer of Vritra, the ancient, the omniscient, convey his adorer (safe) over all difficulties "

(Rv III 2 8 Tr by H H Wilson)

\+ + + +

The heroic Agni is able to encounter host and by him the gods overcome their foes

When (existing) as an embryo (in the wood), Agni is called Tanunapat, when he is generated (he is called) the Asura-destroying Narashansa, when he has displayed (his energy) in the material firmament, Matarish wan, and the creation of the wind is in his rapid motion

+ + + +

Day by day he never slumbers after he is borne from the interior of the (spark) emitting wood [Rv III 2 17

वादलो मे मेघ के जल को वन्द कर रखने वाला अहि वृत्र है, इन्द्र उसी वृत्र को मारकर वर्षा कराता है। यह इन्द्र सूर्य का ही रूपान्तर है, अग्नि इसका प्रमुख साथी है। तभी वेदो ने अग्नि और इन्द्र की साथ-साथ स्तुनि की है—

Over powering is the might of these two the bright (lightening) is shining in the hands of Maghvan, as they go together in one chariot for the (Recovery of the) cows, and the destruction of Vritra

[Rv V 6 11 Tr H H Wilson

उसने देखा अन्धकार, और कल्पना की कि यह अन्धकार वर्षों को और प्रभातो को भक्षण किये जाता था। इन्द्र तथा सूर्य ने उन्हे मुक्त किया

"Having slain Vritra, he has liberated many mornings and years (that had been) swallowed up by darkness" [Rv IV 2 9

उसने कल्पना की कि यह अन्धकारकारिणी रात्रि कोई दुष्प्रवृत्ति छिपाये हुए है, अत इन्द्र उसे मार डालता है, "Is as much Indra, as thou hast displayed such manly prowess, thou hast slain the woman, the daughter of the sky, when meditating mischief" [Rv 3 9

और उसने उस इन्द्र को उषा के प्रेमी के रूप मे चित्रित किया,

"Thou Indra, who art mighty, hast enriched the glorious dawn, the daughter of heaven" वेदो मे यही उषा 'सरमा' भी कही जा सकती है। अन्धकार की अधिष्ठात्री ने पणिस का रूप ग्रहण किया है, जो सरमा को फुसला लेना चाहती है। रात्रि उषा के प्रथम प्रकाश को अपने चगुल मे कर लेना चाहती है।

प्रकृति में देवत्व—इस आरम्भ से आगे आदि कवियो ने प्रकृति के इन व्यापारो मे शक्ति के दर्शन किये, उनके हृदय आतङ्क और श्रद्धा से परिपूर्ण हो उठे, उन्होने उन्हे देव मान लिया, उनके व्यापार जो यथार्थ मे प्रकृति-व्यापार थे, देवताओ के अलौकिक कृत्यो की कथा वन गये। अब सूर्य, सूर्य नही रहा, वह इन्द्र के रूप में एक शक्तिशाली देव हो गया, जिसने वृत्र नाम के अहि—सर्पो के से आकार वाले वादलो का सहार कर डाला और सृष्टि को जला दिया। यह वृत्र दानव हो गया। इसका आकार-प्रकार सर्पों जैसा कल्पित किया गया। इसे मारकर नष्ट-भ्रष्ट कर दिया तो सरमा प्रत्यक्ष हुई।

[When thou hadst divided the cloud (for the escape of) waters, Sarama appeared before thee] [Rv iv. 26

इन्द्र उषा को प्रेम करता है, उसे उपहारो मे समृद्ध करता है। उषा वृत्र की वन्दिनी थी, इन्द्र ने उसके बन्धनो को नष्ट कर दिया। उषा मुक्त हुई [The terrified Ushas descended from the broken waggon when the (showerer of benefits) had smashed it] वृत्र-विनाश मे इन्द्र का साथ अग्नि ने दिया। अग्नि भी देव हो गया, मात्र प्रकृति का एक भूत नही रहा। पणि ने सरमा को फुसलाया, उसे इन्द्र से छीन लेना चाहा, पर वह मारी गयी इन्द्र के बाण से। जब पणि सरमा को बहका रही थी इन्द्र के विरुद्ध, तब सरमा ने पणि से कहा था "I do not know that Indra is to be subdued," "for it is he himself that subdues, you Panis will lie prostrate killed by Indra" और यही होता है। इन्द्र का मित्र अग्नि साधारण देवता नही, उसने वृत्र के सहार मे इन्द्र का साथ दिया है। वह कभी सोता नही, वह सबको कठिनाइयो से बचाकर ले जाता है। वह सबका ज्ञाता है। इस प्रकृति-व्यापार का यह धर्मगाथा का पूर्व रूप बनने लगा। समय बीतने पर इन्द्र-अग्नि जैसे सीधे दिव्य पात्रो का स्थान राम-लक्ष्मण[1] अथवा कृष्ण-बल्देव ने ग्रहण किया। वृत्र रावण बना, पणि शूर्पणखा हुई, और परिपक्व धर्मगाथा का पौराणिक रूपान्तर प्रस्तुत हो गया। यह शिष्ट-सम्प्रदाय मे हुआ, लोक की कल्पना मे उपरोक्त आदिकालीन विविध प्रकृति-तत्त्वो की प्राणी रूप कल्पना ने एक अद्भुत कहानी का ढाँचा खडा किया, जिसमे न तो इन्द्र-वृत्र का नाम रहा न राम-रावण का।

लोक कहानी में परिणति—इस कहानी का मूल ढाँचा कुछ ऐसा बना राजकुमार और उसके मित्र घर से चले। उन्होंने एक सुन्दरी की छवि देखी, वह सुन्दरी पानी मे रहती थी। वह एक मणिधर सर्प के वश मे थी। दोनो ने सर्प को मार डाला और सुन्दरी को प्राप्त किया, एक अन्य राजकुमार की दृष्टि सुन्दरी पर पडी, उसने चतुर दूती भेजी जो धोखा देकर उसे ले गयी पर राजकुमार के मित्र ने पता लगा लिया और वह दूती को धता बताकर उस सुन्दरी को छुडा लाया। जब राजकुमार और सुन्दरी के साथ वह मित्र भी घर लौटने लगा तो उसने रात मे जगकर पक्षियो की बातो से राजकुमार पर पडने वाले सकटो को जान लिया। उसने तीनो सकटो से राजकुमार की रक्षा की, पर अन्त मे राजकुमार हठ पकड गया कि बताओ तुम्हे इन सकटो का कैसे ज्ञान हुआ तो मित्र ने सब हाल कहा। वह पत्थर का हो गया। तब राजकुमार और सुन्दरी से जो पहला पुत्र उत्पन्न हुआ उसके स्पर्श या रक्त से वह पाषाण पुन जीवित हो उठा। यह कहानी इन्द्र-उषा-सरमा अग्नि-पणि की ही लोक-कल्पना मे जीवित रहने वाली आवृत्ति है। अग्नि के तीन रूपो से तीन सकटो की कल्पना हुई है। सब सकटो से अग्नि रक्षा करता है, इससे मित्र द्वारा रक्षा की

---

[1] जैसा वेदो मे अग्नि के सम्बन्ध मे कहा गया है कि वह कभी नही सोता वैसे ही लक्ष्मण की लोक-कथा मे बताया गया है कि वह बनवास मे कभी नहीं सोये।

भावना लोककहानी मे मिलती है। पणि दूती है। अग्नि की सामर्थ्य बीत जाने पर वह पाषाणवत् शीतल और जड हो जाती है, और वह तभी पुनरुद्दीप्त हो सकती है जब पुन उद्योग किया जाय। वेदो मे अग्नि के आरम्भिक रूप को प्रथम उत्पन्न शिशु भी कहा गया है—"He (it is) whom the two sticks have engendered like a new-born babe" Rv V I 10 और यह भी कहा गया है कि उसके कारण वृद्ध युवा हो जाते हैं। "but he has (again) been born, and they, which had become grey-haired are (once more) young" —[Rv V I 2

यह लोकवार्ता विविध दलो के व्यक्तियो के साथ अलग-अलग देश मे गयी और अपनी उस मौलिक रूपरेखा की रक्षा करते हुए भी विविध देशो मे इसने विविध रूप धारण कर लिये, जिन्हे तुलना करने पर यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि यह एक ही कहानी है जिसने इतने वेष बदल लिये है। जर्मनी मे यह फेदफुल जोह्न (Faithful John) के नाम से प्रचलित है, दक्षिण मे राम-लक्ष्मण की कहानी का रूप लिया, बगाल मे 'फकीरचन्द' बनी, ब्रज मे 'यार होइ तौ ऐसौ होइ' के नाम से चल रही है, और भी इसके कितने ही अवान्तर रूप इधर-उधर के अनेको प्रदेशो में मिलते हैं।[1]

इस विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि लोकवार्ता मे हम किसी न किसी रूप मे किसी प्राचीन युग को झाँकता देख सकते हैं। वह कहानीकार की मौलिक कल्पना नही होती वरन् किसी प्राचीन कल्पना का रूपान्तर होती है, और उसके विविध-निर्माण-तन्तुओ मे ऐसी अद्भुत असम्भावनाओ का समावेश होता है, कि वे किन्ही अन्य तत्त्वो की व्याख्या के द्वारा ही सम्भावना का रूप ग्रहण कर पाती हैं। इन लोकवार्ताओ के कथा-तत्त्वो को समझने के लिए उनमे झाँकते हुए रहस्य का उद्घाटन करना आवश्यक होता है।

कहानियो का वर्गीकरण

लोक के गद्य-साहित्य मे प्राय चार दृष्टियाँ मिलती है, उसे कथाकार के उद्देश्य के रूप मे चार प्रकार का माना जा सकता है। १—मनोरजक अथवा मन-बहलाव का, २—शिक्षा अथवा उपदेश का, इसी के अन्तर्गत व्रत-विषयक कहानियाँ भी रखी जा सकती हैं, ३—व्याख्या का, और ४—वाणी-विलास का। इन चारो उद्देश्यो से मिलने वाले साहित्य का रूप या तो कहानियो का हो सकता है, बहुधा कहानियो का ही होता है, या 'चुटकुलो' का। 'वाणी-विलास' कहावतो के रूप मे प्रकट होता है। चुटकुले भी अत्यन्त छोटी, विशेष अवसर पर फबती हुई कहानियाँ ही मानी जा सकती हैं, यद्यपि दोनो का विधान एकसा नही होता है।

कहानियो को विषय की दृष्टि से हम कई विभागो मे बाँट सकते है क्योकि

---

१ देखिए ब्रज भारती, वर्ष २, अक ५–६, सवत् २००३ मे लेखक की ब्रज की इसी कहानी पर टिप्पणी।

विषय के कई अग होते हैं ' एक ता होता है उद्देश्य, उसका उल्लेख ऊपर हो चुका है, पर वह कथा कहने वाले का उद्देश्य है। एक उद्देश्य कथा के कथानक का भी हो सकता है। कथा का उद्देश्य हो सकता है मनोरजन का, पर कथाकार का उद्देश्य हो सकता है आपको अलौकिक घटनाओ मे से ले चलना, अथवा किसी की चतुराई प्रदर्शित करना। कथानक के उद्देश्य से ही कहानी का स्वभाव वनता है स्वभाव की दृष्टि से ये कहानियाँ अलौकिक हो सकती है। इनमे लोक मे न मिलने वाली बातो का समावेश मिलता है। इस लोक से उनका सम्वन्ध नही होता, अन्य किसी लोक मे वे हमें ले जाती हैं, जैसे जैनियो की अनेको लोककथाएँ ऐसी है जिनमे हम विद्याधरो के दिव्य-लोक मे विचरण करते हैं।[१] ये कहानियाँ ऐसी भी हो सकती हैं जिनमे इसी लोक मे अन्य लोको के प्राणी विचरण करे और ऐसे कृत्य करें जो दिव्य और विलक्षण हो। इन कहानियो का उद्देश्य धार्मिक भी है, पर कथानक मे केवल धार्मिक भावना प्रधान नही रहती।

साधारणत स्थूल दृष्टि से कहानियो को हम आठ वडे भागो मे बाँटते हैं १—गाथाएँ, २—पशु-पक्षी सम्बन्धी अथवा पचतन्त्रीय, ३—परी की कहानियाँ, ४—विक्रम (Adventures) की कहानियाँ, ५—बुझौवल सम्वन्धी, ६—निरीक्षण गर्भित कहानियाँ, ७—साधु-पीरो की कहानियाँ (Hageological), और ८—कारण-निर्देशक कहानियाँ (Aeteological), तथा ६—बाल-कहानियाँ।

गाथाओ के अन्तर्गत वे सभी कहानियाँ आ जाती है जो धमगाथा (Myth), लोकगाथा (Ballod), पँवाडा या वीरगाथा (Heroic Tales) कही जाती हैं। पशु-पक्षियो की तथा पचतन्त्रीय ये दो प्रकार की होती हैं एक साभिप्राय, जिनसे कोई न कोई शिक्षा निकलती है, दूसरी वे जिनसे कोई शिक्षा नही निकलती। परी की कहानियो के कई वर्ग हो सकते है एक वे जो यथार्थ मे परियो से, अप्सराओ से, दिव्य-कन्याओ, विद्याधारियो से सम्वन्धित हैं जैसे 'वेजान नगर' की कहानी। वेजान नगर की रानी एक अप्सरा थी, जिसे तँबोली के लडके ने बडे उद्योग से प्राप्त किया था। दूसरी वे जिनमे दाने (दानव) रहते हैं। तीसरी वे जिनमे डाहिनें आती हैं। जादू चमत्कारो की कहानियाँ भी इसी के अन्तगत होगी। विक्रम या पराक्रम की कहानी मे किसी वीर नायक का चरित्र दिखाया जाता है। इसके भी दो प्रकार हो सकते हैं एक इतिहास-पुरुषाश्रित (अवदान), दूसरा अनैतिहासिक पुरुषाश्रित।

ऐतिहासिक पुरुषाश्रित कहानियो मे 'वीर-विक्रमाजीत' की कहानियाँ प्रधान मानी जा सकती है। अनैतिहासिक पुरुषाश्रित कहानियो मे किसी भी राजा के लडके या अन्य व्यक्ति के पराक्रम की कहानी आ सकती है।

---

[१] यथा जे० जे० मेयर (J J Meyer) की 'Hindu Tales' मे सग्रहीत कहानियाँ हैं, अथवा 'कथासरित्सागर' मे।

बुझौवल-कहानियाँ भी दो प्रकार की होती हैं। एक तो वे जिनमे कुछ समस्याओ अथवा नीति की बातो को सुलझाने तथा परीक्षण करने का उद्योग होता है। दूसरी वे जिनमे समस्याएँ या पहेलियाँ शर्त के रूप मे आती हैं, जिन्हे हल कर देने पर अभीप्सित वस्तु मिल जाती है।

निरीक्षण-कहानियो मे किसी के स्वभाव, धर्म आदि के सम्बन्ध मे जो ज्ञान हुआ है, वह रहता है। ये कहानियाँ ही प्राय चुटकुलो का रूप ग्रहण कर लेती है। विविध जातियो से सम्बन्ध रखने वाली कहानियाँ इसी के अन्तर्गत आयेगी।

साधु-पीरो की कहानियो मे पहुँचे हुए साधुओ, सिद्धो तथा पीरो की कहानियाँ होती हैं। इनमे साधु-पीरो के द्वारा सकट-निवारण करने अथवा पुत्र-धन आदि प्रदान करने के चमत्कारो का उल्लेख रहता है। कारण-निर्देशक कहानियाँ वे है जिनमे किसी व्यापार का कारण प्रकट किया जाता है।

बाल कहानी—

इन कहानियो के अतिरिक्त एक और वर्ग भी कहानियो का है। इन्हे बाल-कहानियाँ कह सकते हैं—ये कहानियाँ उपर्युक्त वर्ग से भिन्न प्रकार की होती हैं। उपरोक्त वर्ग की सभी कहानियो की भूमि को मनुष्य की तीन वृत्तियो मे बाँट सकते हैं। १—विश्वास प्रतिपादक वृत्ति, २—आश्चर्य उद्दीपक वृत्ति, ३—समाधानकारक वृत्ति। ये तीनो वृत्तियाँ विकसित अवस्था मे ही विशेप प्रतिफलित होती हैं। किन्तु अबोध बाल-मानस की वृत्तियाँ इन वृत्तियो को सन्तुष्ट करने वाली कहानियो को सह नही सकती। उनका अपना छोटा ससार, वे उसी से घनिष्ठ परिचय रखना चाहते है, और उसी जगत की वस्तुओ से साहचर्य और जीवन-सम्पर्क तथा रस प्राप्त करना चाहते हैं। बाल-मनोवृत्ति की कहानियो मे सक्षिप्त कथानक, परिचित पदार्थ, उनकी दुहरावट, उनके स्वभाव का चित्रण, और कल्पनातिरेक कौतूहल आदि बातें मिलेंगी। इन कहानियो मे सगीतात्मकता (Rythms) (सगीत नही) का पुट विशेष रहता है। इस दृष्टि से हम कहानियो को निम्न वृक्ष से समझ सकते है (पृष्ठ १६९ पर देखिए)।

इन समस्त कहानियो को हम व्यक्ति की दृष्टि से न विभाजित कर कहानियो की वस्तु के स्वभाव की दृष्टि से भी बाँट सकते है। इस दृष्टि से ये तीन विशद विभागो में वँट सकती हैं। १—गाथाएँ (माइथ), २—वीर गाथाएँ अथवा अवदान (लीजेण्ड), ३—कहानियाँ (स्टोरीज)।

धर्मगाथाएँ चार प्रकार की हो सकती है। विश्व-निर्माण की व्याख्या करने वाली, (२) प्रकृति के इतिहास की विशेषताओ की व्याख्या करने वाली, (३) मानवी सभ्यता के मूल की व्याख्या करने वाली, (४) समाज तथा धर्म-प्रथाओ के मूल अथवा पूजा के इष्ट के स्वभाव तथा इतिहास की व्याख्या करने वाली।

इस समस्त ऊहापोह के उपरान्त वर्गीकरण को पृष्ठ १६९ पर दिये वृक्ष के रूप मे प्रस्तुत किया जा सकता है। यहाँ यह भी समझ लेना उचित होगा कि जर्मनी शब्द सागेन (Sagen) के अन्तर्गत इस वर्गीकरण की सख्या १, २, ३ तथा ४ तो आती

कहानी
अभिप्राय-गर्भित
मनोरंजन-गर्भित
आनुष्ठानिक
उपदेशात्मक
हास्य ७
चुटकी
चुटकुले ८
आश्चर्य
परियों की कहानियाँ (Fairy Tales) ९
शौर्य-विक्रम सम्बन्धी १०
जातिवर्णन सम्बन्धी ११
चतुराई (ठगों की कहानी) १२
कथा (सत्यनारायण की कथा) (साधु-पीर आदि की कहानी की प्रकृति इसी कथा के रूप की होती है) १
व्रत के अग ('करवा चौथ की कहानी' 'अनन्त चौदस की कहानी') २
महात्म्य बोधक (कार्तिक स्नान की कहानियाँ) ३
गाथाएँ ४
बुझौअल ५
पचतन्त्रीय (Fables) ६
धर्मगाथा (Myth)
लोकगाथा (Ballod)
अवदान (Legend)
[पँवाडा या वीरगाथा]
कारणगाथा (Aeteological)
सामान्य पशु-पक्षी कहानी
नीत्युपदेशयुक्त पशु-पक्षी कहानी

ही हैं ? ६ तथा १० भी कभी-कभी आ सकती हैं। जर्मनी शब्द 'मार्खें' (Merchen) परियो की कहानियो के लिए आता है। अंग्रेजी शब्द ट्रेडीशन (Tradition) के क्षेत्र मे १०, ११ सख्या वाली कहानियाँ आयेंगी।

लोक-कहानी के निर्माण तन्तु

लोक-कहानी के इतने विवेचन के उपरान्त अब हम यह देख सकते हैं कि लोक-कहानी के निर्माण-तत्त्व क्या-क्या हैं ? लोक-कहानी मे निम्नलिखित निर्माण-तत्त्व परिलक्षित होते हैं—

१ लोक-मानस (Folk mental element)
२ कथा-रूप (Tale form)
३ पात्र (Personages)
४ अभिप्राय, कथानक रूढि या कथा-तन्तु (Motif)
५ सामान्य घटना (Incidents)
६ सघटना (Organisational sections of a tale)
७ अक्षर कथा या कथामानक (Tale type)
८ उपयोग दृष्टि (Utility point of view)
९ अलकरण (Ombellishment)
१०. वातावरण

लोक-कहानी के लोक-कहानी होने के लिए लोक-मानस की अन्त व्याप्ति अनिवार्य है। अन्य सामान्य अथवा साहित्यिक कहानियो से लोक-कहानी को यही तत्त्व भिन्नता प्रदान करता है। एक कहानी मे लोक-मानस के कितने ही स्तर मिल सकते है, क्योकि ऐसी कहानी एक अत्यन्त दीर्घ यात्रा करके आज तक आ पाती है। लोक-मानस मे विविध युगीन लोकसस्कृतियो के अवशेष किसी न किसी बहाने विद्यमान चले आते हैं, और वे कहानियो के विधान के विविध निर्मायक तत्त्वो के रूप मे अपना अस्तित्व अभिव्यक्त करते हैं। फलत लोक-कहानी के अध्येता को इन मानसिक तत्त्वो और उनके स्तरो का उद्घाटन करना होता है।

इसके उपरान्त 'कथारूप' आता है। कहानी की दृष्टि से कथारूप एक आवश्यक तत्त्व है। इसी के कारण कहानी-कहानी कहलाती है। यह वर्णन और विवरण तत्त्व है। कहानी-कहानी अपनी-अपनी चाल से अलग-अलग रूप ग्रहण करके चलती है। कुछ रूपो का उदाहरणार्थ यहाँ उल्लेख किया जा सकता है—

१ स्तवक कहानी— किसी आरम्भिक कथा के द्वारा दो-चार व्यक्ति जमा हो गये और अपनी-अपनी कहानी कहने लगे।

२ शृखलित कहानी—एक कहानी आरम्भ हुई, कुछ दूर चलकर उसमे से दूसरी कहानी निकली, उसमे से तीसरी निकली और आगे इसी प्रकार, एक कहानी के ही कथानक-तत्त्व मे से दूसरी और दूसरी मे से तीसरी फूटती चलती है।

३ बूमेरग कहानी— एक आरम्भिक कहानी से कोई ऐसा तत्त्व प्रस्तुत हो गया जो लौट-लौटकर नयी-नयी कहानियो का आरम्भ करता है । वैताल पचीसी के रूप की ।

४ यात्रा कहानी— कहानी का एक प्रमुख पात्र एक कहानी वनाता चलता है । उस कहानी के समाप्त होने पर फिर आगे चलकर दूसरी कहानी वनाता है, फिर और आगे चलकर तीसरी, इसी प्रकार वढता जाता है और कहानी बनाता जाता है ।

५ ऐकिक कहानी—

एक कथारूप मे कई सरल कहानियाँ समाविष्ट हो सकती हैं । सरल कहानी के मानक-रूप (Types) प्रस्तुत करके कहानियो का लोक क्षेत्रीय अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है । यह अनुभव किया गया कि वास्तविक इकाई तो यह 'सरल कहानी' ही है । विविध सरल कहानियाँ विशिष्ट प्रचलित कथारूपो मे गुम्फित हो जाती हैं । ये कथारूप वस्तुत एक जटिल वाक्य की भाँति होते हैं जिनमे एक सामान्य सरल कथा-सूत्र मे कितनी ही दूसरी सरल कथाएँ उपवाक्यो (Clauses) की भाँति जुड जाती है और जुडती चली जाती हैं ।

कथारूपो से लोक-तत्त्व की दृष्टि से कहानी के अध्ययन मे विशेष सहायता नही मिलती । क्योकि गुम्फन की पद्धति तो कथावक्ता की अपनी विशेपता भी हो सकती है । अत इसमे स्थान-स्थान और व्यक्ति-व्यक्ति के अनुसार भेद होता रहता है । इससे कथारूपो की व्याप्ति का क्षेत्र सकुचित हो जाता है । किन्तु जिन सरल कहानियो से ये कथारूप वने होते हैं उनके प्रचलन का विस्तार क्षेत्र बहुत वढा हुआ मिलता है ।

वैज्ञानिक अध्ययन की दृष्टि से यह सरल कहानीरूप वहुत उपयोगी सिद्ध हुआ और इसीलिए इनके अध्ययन के लिए एक माप के रूप मे 'कथा-मानक-रूप' (Tale type) निर्धारित करने का प्रयत्न लोक-साहित्य के अध्ययन के आरम्भ काल से ही होता रहा ।

किन्तु कथामानक रूपो की स्थापना और अध्ययन को वास्तविक वल मिला था फिनलैंण्ड के लोकवार्ताविद् काल क्रोह्न के प्रयत्नो से । क्रोह्न अपने पिता जूलियस क्रोह्न की परम्परा मे ऐतिहासिक भौगोलिक प्रणाली का अनुयायी था । उसने कहा कि शीघ्र ही विश्वभर की कहानियाँ एकत्र की जानी चाहिए । उन्हे व्यवस्थित करके सुलभ वनाना चाहिए । उन्हे अध्ययन करने की एक निश्चित प्रणाली ढाली जानी चाहिए । इसी के लिए कथामानको का भी आश्रय लिया गया । क्रोह्न के शिष्य एण्टी आर्ने ने भी इसमे वहुत योग दिया । अमरीकन लोकवार्ताविद् स्टिथ थामसन ने कथा-मानकों की आर्ने की अनुक्रमणिका को और भी सँभाल के प्रस्तुत किया । आर्ने-

ही हैं ? ६ तथा १० भी कभी-कभी आ सकती हैं। जर्मनी शब्द 'मार्खं' (Merchen) परियो की कहानियो के लिए आता है। अंग्रेजी शब्द ट्रेडीशन (Tradition) के क्षेत्र मे १०, ११ सख्या वाली कहानियाँ आयेंगी।

लोक-कहानी के निर्माण तन्तु

लोक-कहानी के इतने विवेचन के उपरान्त अब हम यह देख सकते हैं कि लोक-कहानी के निर्माण-तत्त्व क्या-क्या है ? लोक-कहानी मे निम्नलिखित निर्माण-तत्त्व परिलक्षित होते है—

१ लोक-मानस (Folk mental element)
२ कथा-रूप (Tale form)
३ पात्र (Personages)
४ अभिप्राय, कथानक रूढि या कथा-तन्तु (Motif)
५ सामान्य घटना (Incidents)
६ सघटना (Organisational sections of a tale)
७ अक्षर कथा या कथामानक (Tale type)
८ उपयोग दृष्टि (Utility point of view)
९ अलकरण (Ombellishment)
१० वातावरण

लोक-कहानी के लोक-कहानी होने के लिए लोक-मानस की अन्त व्याप्ति अनिवार्य है। अन्य सामान्य अथवा साहित्यिक कहानियो से लोक-कहानी को यही तत्त्व भिन्नता प्रदान करता है। एक कहानी मे लोक-मानस के कितने ही स्तर मिल सकते है, क्योकि ऐसी कहानी एक अत्यन्त दीर्घ यात्रा करके आज तक आ पाती है। लोक-मानस मे विविध युगीन लोकसस्कृतियो के अवशेष किसी न किसी बहाने विद्यमान चले आते है, और वे कहानियो के विधान के विविध निर्मायक तत्त्वो के रूप मे अपना अस्तित्व अभिव्यक्त करते हैं। फलत लोक-कहानी के अध्येता को इन मानसिक तत्त्वो और उनके स्तरो का उद्घाटन करना होता है।

इसके उपरान्त 'कथारूप' आता है। कहानी की दृष्टि से कथारूप एक आवश्यक तत्त्व है। इसी के कारण कहानी-कहानी कहलाती है। यह वर्णन और विवरण तत्त्व है। कहानी-कहानी अपनी-अपनी चाल से अलग-अलग रूप ग्रहण करके चलती है। कुछ रूपो का उदाहरणार्थ यहाँ उल्लेख किया जा सकता है—

१ स्तवक कहानी— किसी आरम्भिक कथा के द्वारा दो-चार व्यक्ति जमा हो गये और अपनी-अपनी कहानी कहने लगे।

२ शृंखलित कहानी—एक कहानी आरम्भ हुई, कुछ दूर चलकर उसमे से दूसरी कहानी निकली, उसमे से तीसरी निकली और आगे इसी प्रकार, एक कहानी के ही कथानक-तत्त्व मे से दूसरी और दूसरी मे से तीसरी फूटती चलती है।

असाधारण शारीरिक व्यापारादि भी इसमे सम्मिलित होते है। कभी-कभी कोई छोटी सरल कहानी भी कलातन्तु हो सकती है, इसी प्रकार कोई आकर्षक घटना भी।

यह ठीक है कि इस प्रातिपदिक 'कलातन्तु' का प्रयोग काफी शिथिल रूप मे होता है। इसमे परम्परा से चली आती हुई कहानी मे प्रयुक्त कोई भी तत्त्व सम्मिलित हो सकता है, किन्तु फिर भी यह बात ध्यान मे रखने की है कि किसी परम्परित कहानी का यथार्थ अश बनने के लिए उस तत्त्व मे कोई ऐसी बात होनी चाहिए जिससे लोक उसे याद रखना और बार-बार कहना चाहें, उसे सामान्य न होकर कुछ विशेषता लिए हुए होना चाहिए। 'माता' स्वय कलातन्तु नही। क्रूरमाता कलातन्तु है क्योकि इसमे एक विशेषता है। जीवन के सामान्य व्यापार भी कलातन्तु नही। यह कहना कि 'जोह्न ने कपडे पहने और शहर को चल दिया' तो इसमे कलातन्तुत्व नही, किन्तु यह कहना कि नायक ने अदृश्यक टोपी पहनी, जादुई कालीन पर बैठा और सूर्य के पूर्व मे तथा चन्द्रमा के पश्चिम मे स्थित देश मे पहुँचा, तो इसमे कम से कम चार कलातन्तुओ का प्रयोग हुआ है—टोपी, कालीन, जादुई यात्रा तथा दिव्यलोक। ये लोकतन्तु जीवित हैं क्योकि पीढियो दर पीढियो से इसे लोगो ने पसन्द किया है। [स्टैण्डर्ड डिक्शनरी ऑव फोकलोर]।

इस विवेचन से कलातन्तु (Motif) का रूप स्पष्ट हो जाता है। कोई भी कुछ असाधारण तत्त्व कलातन्तु है।

कलातन्तुओ ने कहानी के अध्ययन को और भी अधिक वैज्ञानिक आधार प्रदान कर दिया है। कारण यह है कि कथा-मानक रूप तो केवल भारोपीय (Indo-European) लोकवार्ता और लोक-कहानी के अध्ययन मे ही सहायक हो सकता है या किसी विशिष्ट परिवार के कथा-चक्रो के अध्ययन मे ही सहायक हो सकता है। कथा-मानक-रूप मे जो लघु तन्तु होते है वे किसी वाक्य के शब्दो की भाँति स्वतन्त्र रूप से लोकव्यापी-क्षेत्र मे जहाँ-तहाँ विविध भिन्न-भिन्न उपयोगो मे प्रयुक्त होते मिलते हैं, अत लोकवार्ता के विशाल क्षेत्र के अध्ययन को वैज्ञानिक विधि मे लाने के लिए कथा-मानक रूपो को छोडकर कलातन्तुओं को ही लेना होगा। इसके लिए स्टिथ थामसन ने अपने दीर्घकालीन परिश्रम से एक व्यवस्थित कलातन्तु अनुक्रमणिका (Motif Index) प्रस्तुत कर दी है, जो लोक-कहानी के अध्ययन के क्षेत्र मे प्रगति का एक बहुत बडा कदम है।

सामान्य घटना पर विचार कलातन्तु पर विचार करते समय ऊपर हो चुका है। सघटना वह व्यवस्थापना का तत्त्व है जो एक कथा मे विविध तत्त्वो को मिलाकर कथारूप मे प्रस्तुत करता है। आरम्भ और अन्त की सयोजना, विविध अक्षर कहानियो मे कलातन्तुओ और घटनाओ तथा पात्रो का सयोजन, विविध सरल कहानियो मे अक्षर कहानियो को जोडकर, तथा सरल कहानियो का कथारूपो मे समावेश करने का ढग सघटना ही तो है। उपयोग-दृष्टि का सयोजन कैसा और कैसे किया गया है, यह भी सघटना का क्षेत्र है।

थामसन के कथामानक-रूपो की एक संक्षिप्त की हुई सूची कुछ परिचय के लिए यहाँ दी जा रही है ।

जैसा ऊपर ऐतिहासिक विवरण मे बताया जा चुका है कि धर्मगाथा की एक कहानी पात्रो और स्थलो के नाम बदलकर दूसरे युग मे क्षेत्र बदलकर चल पडती है वैसे ही एक ही काल मे एक देश से दूसरे देश मे वही कहानी स्थानीय आवश्यकता के अनुसार पात्रो और स्थलो के बदले हुए नामो से प्रचलित मिलती है । इससे निष्कर्ष यह निकाला गया कि कहानी का एक 'मानकरूप' निर्धारित किया जा सकता है, और हमे मापकमानक रूप से कहानियो की तुलना और अन्तर को समझने मे सहायता मिल सकती है । इस विधि से विविध क्षेत्रो के, विस्तृत और दूर-दूर के क्षेत्रो की कथाओ मे साम्य और वैषम्य का भली प्रकार और सरलतापूर्वक निर्देशन किया जा सकता था ।

हमे श्रीमती बर्न की पुस्तक 'ए हैण्डबुक ऑव फोकलोर' में एक अच्छा प्रारम्भिक सामान्य रूप-निर्धारण मिलता है । इस प्रयत्न मे आगे विकास हुआ, और वस्तुत सरल कहानियो को 'अक्षर कहानियो' में बाँटकर उनके मानक-रूप निर्धारित किये गये । इस दशा मे सबसे अन्तिम और एक प्रकार से इस दिशा मे पूर्ण प्रयत्न एण्टी आर्ने और स्टिथ थामसन द्वारा सम्पन्न हुआ ।

'अक्षर कहानी' वस्तुत सरल कहानी का वह लघुतम रूप है जिससे अधिक लघुतम कहानी का हो ही नही सकता । जैसे एक अक्षर वाक्य वह है जो एक उद्देश्य और एक विधेय से बनता है, उदाहरणार्थ 'वह गया' इसी प्रकार जिस कहानी में पात्र-घटना-क्रिया-प्रतिक्रिया मात्र हो वह अक्षर कहानी है। यह आवश्यक है कि क्रिया-प्रतिक्रिया और घटना मे 'कहानी' तत्त्व हो, दूसरे शब्दो मे यथासम्भव 'घटना' मात्र घटना न हो वह विशिष्ट-कथातन्तु (motif) हो ।

विशिष्ट कथातन्तु, अभिप्राय अथवा कथानक रूढि की परिभाषा मे, इस विषय के अधिकारी विद्वान थामसन ने बताया है कि "लोकवार्ता मे यह प्रातिपद उन किन्ही अशो का निर्देश करने के उपयोग में आता है, जिन अशो मे कि कोई एक लोकवार्ता की चीज विश्लेषित की जा सकती है ।" यो तो इन विशिष्ट कलातन्तुओ का अस्तित्व लोककला (folk art) तथा लोकसगीत मे भी होता है पर इसका सबसे अधिक अध्ययन तथा विश्लेषण जिस क्षेत्र मे उपयोगी सिद्ध हुआ है, वह 'लोक-वृत्त' (folk narrative) है, उदाहरणार्थ लोक-कहानी, लोकावदान (legends), साके, तथा धर्मगाथा ।

वृत्त विषयक कलातन्तु (motif) कभी-कभी बहुत सरल भाव-चित्र (concepts) ही होते है, जो परम्परा से प्राप्त कहानियो मे लगातार काम मे आते रहे हैं । ये अद्‌भुत प्राणी हो सकते हैं यथा परियाँ, जादूगरनियाँ, सूर्य, दानव, क्रूर विमाता, बोलते पशु-पक्षी आदि । दैवी लोक, जादू प्रधान देश, जादू के पदार्थ तथा

असाधारण शारीरिक व्यापारादि भी इसमे सम्मिलित होते है। कभी-कभी कोई छोटी सरल कहानी भी कलातन्तु हो सकती है, इसी प्रकार कोई आकर्षक घटना भी।

यह ठीक है कि इस प्रातिपदिक 'कलातन्तु' का प्रयोग काफी शिथिल रूप मे होता है। इसमे परम्परा से चली आती हुई कहानी मे प्रयुक्त कोई भी तत्त्व सम्मिलित हो सकता है, किन्तु फिर भी यह बात ध्यान मे रखने की है कि किसी परम्परित कहानी का यथार्थ अश बनने के लिए उस तत्त्व मे कोई ऐसी बात होनी चाहिए जिससे लोक उसे याद रखना और बार-बार कहना चाहे, उसे सामान्य न होकर कुछ विशेषता लिए हुए होना चाहिए। 'माता' स्वय कलातन्तु नही। क्रूरमाता कलातन्तु है क्योकि इसमे एक विशेषता है। जीवन के सामान्य व्यापार भी कलातन्तु नही। यह कहना कि 'जोह्न ने कपडे पहने और शहर को चल दिया' तो इसमे कलातन्तुत्व नही, किन्तु यह कहना कि नायक ने अदृश्यक टोपी पहनी, जादुई कालीन पर बैठा और सूर्य के पूर्व मे तथा चन्द्रमा के पश्चिम मे स्थित देश मे पहुँचा, तो इसमे कम से कम चार कलातन्तुओ का प्रयोग हुआ है—टोपी, कालीन, जादुई यात्रा तथा दिव्यलोक। ये लोकतन्तु जीवित हैं क्योकि पीढियो दर पीढियो से इसे लोगो ने पसन्द किया है। [स्टैण्डर्ड डिक्शनरी आॅव फोकलोर]।

इस विवेचन से कलातन्तु (Motif) का रूप स्पष्ट हो जाता है। कोई भी कुछ असाधारण तत्त्व कलातन्तु है।

कलातन्तुओ ने कहानी के अध्ययन को और भी अधिक वैज्ञानिक आधार प्रदान कर दिया है। कारण यह है कि कथा-मानक रूप तो केवल भारोपीय (Indo-European) लोकवार्ता और लोक-कहानी के अध्ययन मे ही सहायक हो सकता है या किसी विशिष्ट परिवार के कथा-चक्रो के अध्ययन मे ही सहायक हो सकता है। कथा-मानक-रूप मे जो लघु तन्तु होते हैं वे किसी वाक्य के शब्दो की भाँति स्वतन्त्र रूप से लोकव्यापी-क्षेत्र मे जहाँ-तहाँ विविध भिन्न-भिन्न उपयोगो मे प्रयुक्त होते मिलते हैं, अत लोकवार्ता के विशाल क्षेत्र के अध्ययन को वैज्ञानिक विधि मे लाने के लिए कथा-मानक रूपो को छोडकर कलातन्तुओ को ही लेना होगा। इसके लिए स्टिथ थामसन ने अपने दीर्घकालीन परिश्रम से एक व्यवस्थित कलातन्तु अनुक्रमणिका (Motif Index) प्रस्तुत कर दी है, जो लोक-कहानी के अध्ययन के क्षेत्र मे प्रगति का एक बहुत बडा कदम है।

सामान्य घटना पर विचार कलातन्तु पर विचार करते समय ऊपर हो चुका है। सघटना वह व्यवस्थापना का तत्त्व है जो एक कथा मे विविध तत्त्वो को मिलाकर कथारूप मे प्रस्तुत करता है। आरम्भ और अन्त की सयोजना, विविध अक्षर कहानियो में कलातन्तुओ और घटनाओ तथा पात्रो का सयोजन, विविध सरल कहानियो मे अक्षर कहानियो को जोडकर, तथा सरल कहानियो का कथारूपो मे समावेश करने का ढग सघटना ही तो है। उपयोग-दृष्टि का सयोजन कैसा और कैसे किया गया है, यह भी सघटना का क्षेत्र है।

प्रत्येक कहानी किसी उद्देश्य-विशेष से, किसी विशेष आयुवर्ग के लिए खडी होती है। यही उसमे उपयोग-दृष्टि है।

इनके साथ लोक-कहानी मे इन सबसे अलग एक मौजीपन या विनोदात्मकता या मनोरमता कथन अथवा वर्णन-विवरण पद्धति मे मिलती है। इसको भी एक लोक-कहानी मे विस्मृत नही किया जा सकता।

किसी भी लोक-कहानी के सम्यक् अध्ययन के लिए इन सभी तत्त्वो का विश्लेषण और अध्ययन अपेक्षित है। इसके लिए भौगोलिक तथा ऐतिहासिक प्रणाली का अनुगमन भी करना होगा।

आठवाँ अध्याय

कथा मानक रूप
(Folk Tale Types)

प्रासगिक

लोक-साहित्य और उसके रूपो पर विचार करने से यह वात स्पष्ट विदित होती है कि लोक-साहित्य के लोक-तत्त्व को ग्रहण करने के लिए किसी छोटे मानव समूह, जाति या भाषावर्ग तक ही सीमित नही रहा जा सकता। लोक-तत्त्व की प्रतिष्ठा वस्तुत तभी हो पाती है जव वह समस्त छोटी सीमाओ को पार कर सामान्य सार्वभौम मानव-लोक मे मिलता हो। उसकी सीमाएँ अपनी निजी सीमाएँ हो सकती हैं। अत लोकतात्विक की दृष्टि अपने क्षेत्र की सामग्री को हाथ मे लेते ही अन्य प्रदेशो के क्षेत्रो की ओर जाती है, वह दृष्टि विविध मानव-समूहो के ऐतिहासिक और प्राक्-ऐतिहासिक अतीत मे भी जाती है और वर्तमान के विस्तार को भी देखती है।[1] वह यह देखना चाहती है कि जो वस्तु उसके अपने क्षेत्र की उसके हाथ मे है, वह कहाँ-कहाँ कब-कब किस-किस रूप मे विद्यमान मिलती है।

इस प्रक्रिया की सफलता के लिए लोक-साहित्य के कथा भाग में अनिवार्यत कथा मानक-रूपो का निर्धारण करना पडा। मानक-रूप निर्धारित हो जाने से विविध कथाओ को पहचानने, उनका नामकरण करने, उन्हे सक्षेप मे सूचित करने तथा उनके योगायोग को ठीक-ठीक समीकृत प्रणाली मे बताने मे बहुत सुविधा होती है।

पाश्चात्य जगत् के विद्वानो के समक्ष जव सस्कृत का उद्‌घाटन हुआ तो वे उसके अध्ययन मे प्रवृत्त हुए। उससे एक विद्या-विषयक पुनराहरण की लहर विश्व मे दौड गयी। इन विद्वानो ने देखा कि सस्कृत में तो बहुत कुछ ऐसा है जो उनके यहाँ भी मिलता है। इस अनुभव ने उन्हे किंचित विस्तारपूर्वक तुलना करने की प्रेरणा दी। इससे कितने ही नये ज्ञान-विज्ञानो को जन्म मिला। भाषा-विज्ञान का मूल इसी पुनराहरण मे था। निश्चय ही इस युग मे इसका भी आधार तुलनामूलक था। तुलनात्मक इतिहास, तुलनात्मक नृविज्ञान अथवा एन्थ्रापालाजी, तुलनात्मक दर्शन,

---

[1] "Moreover the actual subject matter of Folktales shows many striking resemblances from age to age and from land to land"
—Stiath Thompson in 'The Folk Tales'

तुलनात्मक धर्मगाथा-दर्शन (Mythology) और इन सबके साथ ही तुलनात्मक लोकवार्ता भी इस युग मे पनपी। पश्चिम की लोक-कहानियो से पूर्व की लोक-कहानियो की तुलना होने लगी। इसी तुलना मे यह आभास मिला कि मूलत एक ही कहानी विविध आर्य-भाषाओ तथा अन्य भाषाओ के क्षेत्रो मे नाम रूप के सशोधन और कुछ गौण परिवर्तन, परिवर्द्धन के साथ मिलती है।[१] उस मूल रूप को खोज कर प्रस्तुत करने से ही मानक रूप का जन्म हो गया। अब तो यह अनुसधान किया जाने लगा कि ऐसे कितने मानक-रूप हो सकते हैं, जो इस प्रकार पश्चिम-पूर्व के आर्यक्षेत्रो मे मिलते हैं। इस तुलनात्मक अध्ययन की प्रवृत्ति का ही परिणाम यह हुआ कि लोग यह पूछने लगे कि आखिर यह मानक-रूप पहले कहाँ बना ? उसके मूल जन्म स्थान का अनुसन्धान किया जाने लगा। एक समय तो वह आया कि पाश्चात्य विद्वानो को यह प्रतीत हुआ कि पश्चिमी समस्त कथाएँ भारत से आयी हैं। हम ऊपर बेनफे (Benfey) के सम्प्रदाय का वर्णन पढ चुके है। इसने पर्याप्त प्रमाण जुटाकर यह सिद्ध किया कि पश्चिम की कहानियाँ भारत से आयी है।[२] उसने उनके पश्चिम मे पहुँचने के मार्गों तक का निर्देश किया।

किन्तु यही वह युग था जबकि आर्यभाषा परिवार की सत्ता मान्य हो चुकी थी, और विद्वानो का एक ऐसा वर्ग भी था जो यह सिद्ध कर रहा था कि इतिहास के

---

१ "A study of Tale collections shows clearly that many tales are widely distributed over the globe"　　　　—Ibid

सबसे पहले १८५६ मे विलहेल्म ग्रिम ने अपने दोनो भाइयो के तुलनात्मक अध्ययन के निष्कर्ष दिये। इन्होने अपने विशद तुलनात्मक अध्ययन से दो स्थापनाएँ की—(१) कहानियो का जन्म भारोपीय प्राचीन मूल से हुआ है। (२) कहानियाँ धर्मगाथाओ के खण्डित रूप हैं। फलत इस सम्प्रदाय का विश्वास *एक आर्यमूल मे था, और यह माना जाता था कि मूल परम्परा की एक कहानी* विविध आर्यवशो मे अलग-अलग रूप ग्रहण कर लेती है।

२ धर्मगाथावादी सम्प्रदाय से यह सिद्धान्त भिन्न भूमि पर था। धर्मगाथावादी एक मूल से प्राप्त विविध क्षेत्रो मे अपनी-अपनी विशेषताओ से कहानी के विकसित होने के सिद्धान्त को मानता था। वह कहानी जैसे भारतीयो को मूल आदिम आर्यों से मिली वैसे ही यूनानियो को मिली। किन्तु आगे चलकर समस्त आर्य-भाषा क्षेत्र के लोगो का एक वश का होना सदिग्ध हो चला था। बेनफे का कहना था कि यूरोप की लोक-कथाओ का जन्म भारत मे हुआ, ईसप की पशु-कहानियाँ ही इसका अपवाद हैं। स्टिथ थामसन का मत है कि "Benfey thus sees the origin of Folktales, except the Aesop fables, India, and thinks the spread westward had taken place through three channels (1) a certain number by oral tradition before the tenth century, (2) after the tenth century by literary tradition alone the lines of Islamic influence, particularly through Byzantine, Italy and Spain (3) Buddhistic material through China and Tibet (or directly) to the Mangols and from them to Europe

एक युग मे समस्त आर्यभापा-भापियो के पूर्वज एक स्थान पर रहते थे। वहाँ से वे विविध क्षेत्रो मे फैल गये। भापा के कुछ समान तत्त्वो का जन्म हो चुका था जब ये आर्य एक परिवार की भाँति अपने मूल स्थान मे रहते थे, और बिखरे नही थे। इसी सिद्धान्त के अनुसार लोकवार्ता और लोककहानी अथवा धर्मगाथा के सम्बन्ध मे भी यह परिकल्पना की जाने लगी कि बहुत-सी कहानियो के मूल मानक-रूपो का जन्म भी बिखरने से पूर्व ही आर्यो के मूल स्थान मे हुआ था। वही से ये विविध दल जो भिन्न-भिन्न भौगोलिक प्रदेशो मे फैले अपने साथ उन मानक-कथारूपो को लेते गये और उनके योगायोग से अनेको कथा-रूप प्रस्तुत हुए।

बर्न महोदया ने अपनी पुस्तक 'हैण्डबुक ऑव फोकलोर' मे ऐसे सत्तर रूप दिये हैं। इन रूपो को निर्धारित करके उन्होंने उनके पाश्चात्य क्षेत्र मे प्रचलित नामो से अभिहित किया। प्रत्येक मानक-रूप मे उसके निर्माण की तीलियो (Steps) का भी क्रमश उल्लेख किया। उनके इस प्रयत्न ने कथारूपो के अध्ययन का मार्ग और भी प्रशस्त कर दिया। उनके इन कथा मानक-रूपो का ऐतिहासिक महत्व है अत उन्हे विस्तारपूर्वक, यहाँ हिन्दी मे रूपान्तर करके दिया जा रहा है। साथ मे ब्रज मे मिलने वाले उनके रूपो का भी टिप्पणी की भाँति जहाँ-तहाँ उल्लेख कर दिया गया है।

बर्न महोदया के कथारूप

१—क्यूपिड तथा साइक

१ एक सुन्दर लडकी को एक दिव्य जाति (Supernatural race) का मनुष्य प्रेम करता है।

२ वह मनुष्य के रूप मे रात्रि मे प्रकट होता है, और लडकी को समझा देता है कि उसे देखे नहीं।

३ वह उसके आदेश का उल्लघन करती है और उससे हाथ धो बैठती है।

४ वह लडकी खोज मे निकलती है, कितनी ही कठिनाइयो का सामना करती है, कितने ही कठिन कार्यो का उसे सम्पादन करना पडता है।

५ वह अन्त मे उसे पा लेती है।

यह कहानी पुरुरवा-उर्वशी की वैदिक कहानी के तुल्य है। यद्यपि थोडा हेर-फेर है। पुरुरवा-उर्वशी की कहानी यजुर्वेद के ब्राह्मण मे आती है। उसमे उर्वशी ने पुरुरवा से कहा है कि वह उसे नग्न न देखे। पुरुरवा मनुष्य योनि का है, उर्वशी दिव्य योनि की। वस्तुत 'मेलूसिना' से इसका अधिक साम्य है। पुरुरवा-उर्वशी कहानी का उत्तराश विशेष दृष्टव्य है। उसमे पुरुरवा जब प्राण तक देने को सन्नद्ध हुआ करुणार्द्र उर्वशी ने कहा कि वर्षान्त मे आना तब मै मिलूगी। पुरुरवा गया, तब उर्वशी ने कहा तुम गन्धर्वो से यह वरदान माँग लेना कि मैं भी तुम मे से एक हो जाऊँ। इस उत्तराश की घटना लोक-कहानियो नें अत्यन्त प्रचलित है। एक मनुष्य एक अप्सरा के प्रेम मे फँस जाता है। अप्सरा उसे इन्द्र के समक्ष ले जाती है। वह नाचती है मनुष्य तबला बजाता है और इन्द्र से पुरस्कार मे इस अप्सरा को माँग

लेता है। स्पष्ट ही इस लोकवार्ता मे यजुर्वेद के ब्राह्मण के 'पुरुरवा-उर्वशी' का रूपान्तर ही जीवित है।

२—मेलूसिना

१ एक मनुष्य दिव्य जाति की स्त्री से प्रेम करने लगता है।
२ वह उसके साथ इस शर्त पर रहने के लिए तत्पर हो जाती है कि वह उस स्त्री को सप्ताह के एक विशेप दिन नही देखेगा।
३ वह उसकी आज्ञा का उल्लघन करता है, और उससे हाथ धो वैठता है।
४ वह वहुत ढूँढता है, पर उमे नही पाता।

यह कहानी शान्तनु-गगा की कहानी जैसी है। इस पौराणिक कहानी मे गगा की शर्त यह है कि शान्तनु उसे कोई भी कार्य करने से नही रोकेंगे। जिस समय रोकेंगे उसी समय वह चली जायगी। गगा अपने पुत्रो को गगा मे वहाती है। अन्त मे शान्तनु रोक देते हैं। गगा शान्तनु को छोड जाती है।

लोक-कहानियो मे ढोला मे मोतिनी की कहानी इसी प्रकार की है। मोतिनी मनुष्य योनि की नहीं, भौमासुर दाने के पास रहती है। नल से इस शर्त पर विवाह करती है कि वह दूसरा मौहर (विवाह का मुकुट) सिर पर नही रखेगा। जव रखेगा तभी मोतिनी से हाथ धो वैठेगा। दमयन्ती से विवाह के समय वह नल सिर पर मौहर पहनता है, मोतिनी से वियोग हो जाता है।

३—हस-कुमारी (Swan-Maiden-Type)

१ एक मनुष्य एक स्त्री को स्नान करते देखता है, उस स्त्री की अभिमत्रित पोशाक (Charm dress) किनारे पर है।
२ वह उसे चुरा लेता है, स्त्री उसके वश मे हो जाती है।
३. कुछ वर्षों के उपरात वह अपनी भूषा-पोशाक हस्तगत करने मे सफल होती है, और भाग जाती है।
४ वह उस स्त्री को पुन प्राप्त नही कर पाता।

इस कहानी की ऊपर की दो घटनाएँ 'गोपी-चीर हरण' से मिलती हैं। यद्यपि इन घटनाओ की व्याख्या पुराणकार ने और ही ढग से कर दी है, पर ढाँचा वही है। गोपियाँ वस्त्र उतारकर स्नान कर रही हैं, कृष्ण उन्हें चुरा लेते हैं। परिणाम वही है, सभी गोपियाँ कृष्ण के प्रेम मे पागल हो जाती हैं। हाँ, यहाँ वस्त्रो को न तो अभिमत्रित ही बनाया गया है, न कृष्ण ने उन्हे अधिक समय तक ही रखा है। यही तत्त्व प्रसिद्ध प्रेमगाथा मृगावती में है।

४—पेनीलोप

१ पुरुष यात्रा पर वाहर जाता है, स्त्री घर रहती है।
२ वह पतिव्रत की रक्षा करती हुई प्रतीक्षा करती है।
३ पुरुष उसके पास लौटकर आता है।

यह कहानी कथा-सरित्सागर की 'उपकोशा' की कहानी है। उपकोशा की कहानी के विश्व-साहित्य मे और लोक-साहित्य मे कितने ही रूपान्तर हुए है। यही कहानी स्काट की 'ऐडिशनल अरेबियन नाइट्स' मे 'लेडी ऑव कैरो एण्ड हर फोर गैलैंटस' (कैरो की महिला और उसके चार वीर) के नाम से आयी है, शिर्यूस्वरी ने अपने एक सग्रह मे इसे सौदागर की स्त्री और उसके चार प्रेमी शीर्षक दिया है। पर्शिया मे प्रचलित अरौया भी यही है। भूमि मे तो यह अत्यन्त प्राचीन काल से प्रसिद्ध है। इसका नाम है, 'कान्सटेण्ड डु हुँमेल' अथवा 'ला डेम कुइ एट्रप अन प्रेट्रि-अन प्रिवोट, एट अन फारेस्टियर'।[1] किन्तु भारत मे भी इसके कई रूपान्तर मिलते हैं। ब्रज मे यही कहानी 'ठाकुर रामपरसाद' की कहानी के रूप म है। उपकोशा की कहानी की 'ठाकुर रामपरसाद' की कहानी की तुलना वडी रोचक है। इसमे हमे विदित हो सकता है कि ढाँचे की तीलियो को सुरक्षित रखते हुए भी कहानियाँ किस प्रकार स्थानीय वातावरण और ज्ञान गरिमा के अनुकूल वन जाती है। 'वररुचि' ठाकुर रामप्रसाद बन जाते है, उपकोशा ठकुरानी। सारा वातावरण ग्रामीण हो जाता है। राजधानी के प्रधान कर्मचारियो का स्थान ले लेते हैं, पटवारी, मुखिया आदि।

५—जेनोनीवा

१ पुरुष युद्ध मे जाता है, स्त्री घर रहती है।

२ स्त्री पर मिथ्या दोषारोपण किया जाता है, वह स्त्री को मृत्युदड का आदेश देता है।

३ वह मारी नही जाती, पर इतस्तत हो जाती है।

४ लौटने पर पति को अपनी भूल विदित होती है।

५ वह उसे पुन प्राप्त कर लेता है।

स्त्री पर मिथ्यादोषारोपण और मृत्युदड तथा अन्त मे पुन प्राप्ति की वात कितनी ही लोक-कहानियो मे है। यथार्थ मे इस कहानी का मूलाधार दुष्यन्त-शकुन्तला की कहानी हो सकती है। ढोला मे नल के पिता राजा प्रथम ने इसी प्रकार मिथ्या दोष पर अपनी स्त्री को मृत्युदड दिया था। मझा पर बधिको को दया आ गयी। उन्होने उसे छोड दिया। वह एक सेठ के यहाँ चली गयी। वाद मे राजा को अपनी भूल विदित हुई, वह दुखी हुआ और अन्त में उसे उसने पुन ग्रहण किया। गुरु गुग्गा-जाहरपीर की माँ के साथ भी ऐसी ही घटना हुई। उसे मारने की आज्ञा नही दी गयी घर से अपमानित कर निकाल दिया गया। राजा को अपनी भूल विदित हुई तो पुन लिवा लाया।

---

[1] कथा सरित्सागर (अगरेजी) सी० ऐच० टाउनी, एच० ए० द्वारा अनुवादित पृ० २० की दूसरी पाद-टिप्पणी।

लेता है। स्पष्ट ही इस लोकवार्ता मे यजुर्वेद के ब्राह्मण के 'पुरुरवा-उर्वशी' का रूपान्तर ही जीवित है।

२—मेलूसिना

१ एक मनुष्य दिव्य जाति की स्त्री से प्रेम करने लगता है।
२ वह उसके साथ इस शर्त पर रहने के लिए तत्पर हो जाती है कि वह उस स्त्री को सप्ताह के एक विशेष दिन नही देखेगा।
३ वह उसकी आज्ञा का उल्लघन करता है, और उससे हाथ धो बैठता है।
४ वह बहुत ढूंढता है, पर उसे नही पाता।

यह कहानी शान्तनु-गगा की कहानी जैसी है। इस पौराणिक कहानी मे गगा की शर्त यह है कि शान्तनु उसे कोई भी कार्य करने से नही रोकेंगे। जिस समय रोकेंगे उसी समय वह चली जायगी। गगा अपने पुत्रो को गगा मे बहाती है। अन्त मे शान्तनु रोक देते हैं। गगा शान्तनु को छोड जाती है।

लोक-कहानियो मे ढोला मे मोतिनी की कहानी इसी प्रकार की है। मोतिनी मनुष्य योनि की नही, भौमासुर दाने के पास रहती है। नल से इस शर्त पर विवाह करती है कि वह दूसरा मौहर (विवाह का मुकुट) सिर पर नही रखेगा। जब रखेगा तभी मोतिनी से हाथ धो बैठेगा। दमयन्ती से विवाह के समय वह नल सिर पर मौहर पहनता है, मोतिनी से वियोग हो जाता है।

३—हस-कुमारी (Swan-Maiden-Type)

१ एक मनुष्य एक स्त्री को स्नान करते देखता है, उस स्त्री की अभिमत्रित पोशाक (Charm dress) किनारे पर है।
२ वह उसे चुरा लेता है, स्त्री उसके वश मे हो जाती है।
३ कुछ वर्षो के उपरात वह अपनी भूषा-पोशाक हस्तगत करने मे सफल होती है, और भाग जाती है।
४ वह उस स्त्री को पुन प्राप्त नही कर पाता।

इस कहानी की ऊपर की दो घटनाएँ 'गोपी-चीर हरण' से मिलती हैं। यद्यपि इन घटनाओ की व्याख्या पुराणकार ने और ही ढग से कर दी है, पर ढाँचा वही है। गोपियाँ वस्त्र उतारकर स्नान कर रही है, कृष्ण उन्हें चुरा लेते हैं। परिणाम वही है, सभी गोपियाँ कृष्ण के प्रेम मे पागल हो जाती हैं। हाँ, यहाँ वस्त्रो को न तो अभिमत्रित ही बनाया गया है, न कृष्ण ने उन्हे अधिक समय तक ही रखा है। यही तत्त्व प्रसिद्ध प्रेमगाथा मृगावती मे है।

४—पेनीलोप

१ पुरुष यात्रा पर बाहर जाता है, स्त्री घर रहती है।
२ वह पतिव्रत की रक्षा करती हुई प्रतीक्षा करती है।
३ पुरुष उसके पास लौटकर आता है।

यह कहानी कथा-सरित्सागर की 'उपकोशा' की कहानी है। उपकोशा की कहानी के विश्व-साहित्य मे और लोक-साहित्य मे कितने ही रूपान्तर हुए है। यही कहानी स्काट की 'ऐडिशनल अरेबियन नाइट्स' मे 'लेडी ऑव कैरो एण्ड हर फोर गैलैंटस' (कैरो की महिला और उसके चार वीर) के नाम से आयी है, शिर्यूस्वरी ने अपने एक सग्रह मे इसे सौदागर की स्त्री और उसके चार प्रेमी शीर्षक दिया है। पर्शिया मे प्रचलित अरौया भी यही है। भूमि मे तो यह अत्यन्त प्राचीन काल से प्रसिद्ध है। इसका नाम है, 'कान्सटेण्ड डु हूँमेल' अथवा 'ला डेम कुइ एट्रप अन प्रेट्रि-अन प्रिवोट, एट अन फारेस्टियर'।[1] किन्तु भारत मे भी इसके कई रूपान्तर मिलते हैं। व्रज मे यही कहानी 'ठाकुर रामपरसाद' की कहानी के रूप म है। उपकोशा की कहानी की 'ठाकुर रामपरसाद' की कहानी की तुलना बडी रोचक है। इसम हमे विदित हो सकता है कि ढाँचे की तीलियो को सुरक्षित रखते हुए भी कहानियाँ किस प्रकार स्थानीय वातावरण और ज्ञान गरिमा के अनुकूल बन जाती है। 'वररुचि' ठाकुर रामप्रसाद बन जाते है, उपकोशा ठकुरानी। सारा वातावरण ग्रामीण हो जाता है। राजधानी के प्रधान कर्मचारियो का स्थान ले लेते है, पटवारी, मुखिया आदि।

५—जेनोनीवा

१ पुरुष युद्ध मे जाता है, स्त्री घर रहती है।

२ स्त्री पर मिथ्या दोषारोपण किया जाता है, वह स्त्री को मृत्युदड का आदेश देता है।

३ वह मारी नही जाती, पर इतस्तत हो जाती है।

४ लौटने पर पति को अपनी भूल विदित होती है।

५ वह उसे पुन प्राप्त कर लेता है।

स्त्री पर मिथ्यादोषारोपण और मृत्युदड तथा अन्त मे पुन प्राप्ति की बात कितनी ही लोक-कहानियो मे है। यथार्थ मे इस कहानी का मूलाधार दुष्यन्त-शकुन्तला की कहानी हो सकती है। ढोला मे नल के पिता राजा प्रथम ने इसी प्रकार मिथ्या दोष पर अपनी स्त्री को मृत्युदड दिया था। मझा पर बधिको को दया आ गयी। उन्होंने उसे छोड दिया। वह एक सेठ के यहाँ चली गयी। बाद मे राजा को अपनी भूल विदित हुई, वह दुखी हुआ और अन्त में उसे उसने पुन ग्रहण किया। गुरु गुग्गा-जाहरपीर की माँ के साथ भी ऐसी ही घटना हुई। उसे मारने की आज्ञा नही दी गयी घर से अपमानित कर निकाल दिया गया। राजा को अपनी भूल विदित हुई तो पुन लिवा लाया।

---

[1] कथा सरित्सागर (अगरेजी) सी० ऐच० टाउनी, एच० ए० द्वारा अनुवादित पृ० २० की दूसरी पाद-टिप्पणी।

६—पचकिन

प्राण-प्रतीक (Life-Index Type)

१ एक दाना (दानव) जिसकी आत्मा किसी बाह्य पदार्थ मे रहती है, एक ऐसी स्त्री से विवाह कर लेता है जिसका एक प्रेमी है ।
२ प्रेमी उस स्त्री को खोजकर पा लेता है और उसे प्रेरित करता है कि वह अपने पति को मार डाले ।
३ वह यह जानने की चेष्टा करती है कि पति के प्राण किसमे रहते है । दाना बार-बार उसे टाल देता है, पर अन्त मे रहस्य बता देता है ।
४ वह प्राण-प्रतीक वस्तु को नष्ट कर डालती है, जिससे पति मर जाता है ।
५ वह प्रेमी के साथ भाग जाती है ।

उत्तरी भारत मे ऐसी एकानेक कहानियाँ है । एक अन्तर उनमे विशेषत मिलता है, वह यह है कि यहाँ की कहानियो मे बहुधा वह 'लडकी' बेटी की भाँति दाने के यहाँ रहती है । वह उस दाने की स्त्री नही बनी । पचकिन की कहानी दक्षिणी भारत की कहानी है । उत्तरी भारत मे विशेषत ब्रज मे इस कहानी का एक रूप हमे प्रसिद्ध 'ढोला' गीत मे मिलता है । इसमे राजा नल के बाल्यकालीन कृत्यो मे से एक कृत्य 'मोतिनी' से विवाह से सम्बन्धित है । मोतिनी भौमासुर दाने की बेटी है । नल उस दाने को मारकर ले आता है । उस दाने के प्राण एक बगुली मे थे । उस बगुली का भेद मोतिनी ने स्वय दाने से पूछकर जाना था और राजा नल को बताया था । यह कहानी एक नॉर्स (नार्वे की) कहानी से बिलकुल मिलती है । नार्वे की कहानी मे नायक उसी प्रकार दाने के प्राणो का पता लगाता है, और उसे मारता है जैसे पचकिन अथवा नल । ब्रज मे जो कार्य नल 'ढोला' मे करता है, वही 'बूट्स' यूरोप की कहानियो मे करता है । नॉर्स कहानी मे दानव अपने प्राणो के सम्बन्ध मे कहते हैं

"बहुत दूर एक झील मे एक द्वीप है, उस द्वीप मे एक गिरजाघर है । गिरजे मे कुआँ है । कुँए मे एक बतख तैरती है । बतख मे एक अण्डा है । उस अण्डे मे मेरा हृदय (प्राण) है ।"

गालिक (Gaelic) कहानी मे, जिसका नाम है "यग किंग ऑव ईसैध रुआध" मे भी इसी प्रकार प्राणो का उल्लेख बताया गया है ।

७—सैमसन

१ पति की दानवी शक्ति किसी बाह्य पदार्थ मे है ।
२ स्त्री, जो विश्वासघातिनी है, पति से उसका रहस्य पूछती है, बहुत बार टालने पर भी अन्त मे वह रहस्य प्रकट कर देता है ।
३ वह उसके शत्रुओ को रहस्य बता देती है, वह मारा जाता है ।

जे० जे० मेयर द्वारा सग्रहीत 'हिन्दू टेल्स' नाम की पुस्तक मे एक जैन कहानी मे एक वीर पुरुष की वीरता तलवार की मूँठ में बतायी गयी है ।

८—हरक्युलीज

१ पति मे दानवी शक्ति।

२ उसकी स्त्री का भी एक पूर्व प्रेमी उसके पति को मारने का सकल्प करता है, वह उस स्त्री से जो पतिव्रता है, एक भेंट माँगता है।

३ वह बिना किसी हानि करने की भावना के उसे उसकी माँगी वस्तु दे देती है, उससे उसका पति मारा जाता है।

९—सर्प-पुत्र

१ एक माँ के पुत्र नही। वह मानता करती है कि उसे कोई पुत्र मिले, भले ही वह साँप हो या पशु।

२ जैसा उसने चाहा वैसा ही पुत्र पैदा होता है।

३ उस बच्चे का वह एक स्त्री या पुरुष से विवाह कर देती है। वह रात मे मनुष्य का रूप धारण कर लिया करता है।

४ उसकी माँ उसके चर्म को पा लेती है और जला डालती है, तब उसका लडका सर्प या पशु का रूप धारण करना त्याग देता है।

यह कहानी ज्यो की त्यो ब्रज मे प्रचलित है। जर्मन की एक कहानी मे रीछ की खाल का उल्लेख है। इसमे तो किसी दुष्टात्मा के वश मे पडे होने के कारण उसे सात साल तक, शर्त के अनुसार, रीछ की खाल ओढकर रहना पडता है। इसी अवस्था मे वह बादशाह की लडकी से विवाह करता है। 'ह सदी हैजहोग' मे वह रीछ ही है, उसका चर्म जला दिया जाता है, तब वह मानव रूप मे रह पाता है। भारत में दक्षिण की ओर की कहानियो मे ऐसे राजा का उल्लेख है।

१०—रौबर्ट शैतान

१ माता-पिता यह सकल्प करते हैं कि उनके यदि बालक होगा तो वे उसे एक शैतान (evil being) को चढा देंगे।

२ बालक पैदा होता है, शैतान माँगता है।

३ बालक बच निकलता है, उससे लडता है, या उस दुरात्मा से छल करता है, तथा

४ अन्त मे उस पर विजयी होकर अपने को मुक्त कर लेता है।

इस कहानी का ढाँचा वेद के हरिश्चन्द्र की कहानी से मिलता है। हरिश्चन्द्र सन्तान की कामना करता है। जो बालक होगा उसे वरुण को प्रदान करने का वचन देता है। रोहित पैदा होता है, वरुण माँगता है। विविध बहानो से पहले वरुण को टाला जाता है, फिर रोहित बडा होने पर बचकर जगलो मे भाग जाता है। यह वरुण से छल करने के समान है। अन्त मे अपने स्थान पर पुन शेफ की बलि देने का विचार करता है। शुन शेफ को विश्वामित्र बचा लेते हैं। बस एक बडे भेद की बात यह है कि वेदो मे वरुण देवता हैं, और उसका सम्पूर्ण चरित्र साधारणत उदारता से परिपूर्ण है।

ब्रज की लोक-कहानी मे "दुऐ भाई और दानौ" नामक कहानी का भी ऐसा ही रूप है। दाने के आशीर्वाद से दो लडके होते है। एक को दाना माँग ले जाता है। पहले लडके को वह खा जाता है, दूसरा छल से उसे मार डालता है, और दाने की लडकी से अमृत लेकर अपने पहले भाई को जीवित कर लेता है।

११—स्वर्ण-पुत्र (Gold-child Type)

१ एक माँ एक विशेष पदार्थ खाने के लिए माँगती है, जिससे वह गर्भवती हो जाती है।

२ उस भोजन का कुछ भाग वह फेंक देती है, जिसमें से कुछ को एक घोडी या कुतिया खा लेती है, ये भी गर्भवती हो जाती है, शेष जमीन पर उग आता है।

३ स्त्री का बच्चा, घोडी का बछेडा या कुतिया का पिल्ला और वह पौधा परस्पर सहजात सहानुभूति रखते हैं।

४ माँ अपने बच्चे को मार डालना चाहती है, पर उसके सहजात बन्धु बछेडा अथवा पिल्ला उसे बचा लेते हैं।

५ वे और भी साहस का काम करते हैं।

ब्रज मे जाहरपीर या गुरुगुग्गा की प्रचलित कहानी मे लीली बछेडी, गुरुगुग्गा के साथ ही पैदा होती है और वही उसकी सवारी में काम आती है। ब्रज की एक अन्य कहानी मे पुत्र एक घोडा खरीदकर लाया है, इससे माँ रुष्ट होकर उसे मार डालना चाहती है, पर घोडा उसे हर बार बचाता है।[1] एक जर्मन कहानी में एक दरिद्र मनुष्य को एक मछली पकडाई आ जाती है। उसके आते ही वह हैलिओ के भवन का अधिकारी बन जाता है। मछली कहती है मुझे छ टुकडो मे काट डालो। दो टुकडे स्त्री को दिये जाते हैं, दो घोडी को, दो पृथ्वी मे गाढ दिये जाते हैं। दो पुत्र, दो बछेडे और दो कमल उत्पन्न होते है। आगे के सूत्र प्रधान कहानी की भाँति चलते हैं। ब्रज की एक और कहानी मे रानी के फेंके हुए पुत्र को घोडा पिता की भाँति पालता है।

१२—लीअर

१ एक पिता के तीन पुत्री हैं, पिता उनके प्रेम की परीक्षा करता है। छोटी विशेष प्रेम घोषित नही करती, अत उसे निकाल देता है।

२ पिता सकटग्रस्त है, पहली दो पुत्रियाँ कोई सहायता नही देती, छोटी से ही सहायता मिलती है।

इसी कहानी के आधार पर शेक्सपीअर का 'किंग लीअर' नाटक लिखा गया है। यह ब्रज मे भी प्रचलित है। इसके दो रूप मिलते हैं। एक तो ठीक ऊपर के ढग

---

१ देखिए 'ब्रज की लोक कहानियाँ'

का है। पिता को सकट मे सहायता करती है, छोटी परित्यक्त पुत्री। दूसरे ढग की कहानी मे पुत्री को राजा इसलिए निकाल देता है कि वह पिता को नमक के समान प्रिय बताती है। वह पुत्री अपने भाग्य से राजा की समानता करने वाला पति प्राप्त करती है। वह पति से कहती है कि राजा को निमन्त्रण दीजिए। राजा को भोजन में मिठाई ही दी जाती है, मिठाई से ऊबकर राजा कहता है नमकीन चाहिए। पुत्री स्वय नमकीन परोसती है और कहती है पिता नमक अधिक प्रिय है या मीठा। राजा भूल स्वीकार करता है और पुत्री का आदर करता है।

१३—हॉप ओ माई थम्ब

१ पिता अत्यन्त दरिद्र है, वच्चो को त्यागकर चला जाता है।
२ सवसे छोटा कई वार सबको घर ले जाने का उद्योग करता है पर असफल रहता है।
३ वे एक दिव्य प्राणी के वश मे पड जाते हैं, किन्तु सवसे छोटा उसे छल लेता है, और वे सब बच निकलते हैं।

इस सविधान से ब्रज की 'गुरु-चेला' कहानी कुछ मिलती है। पिता दरिद्र है, दो बच्चे हैं। वह उन्हें एक गुरु के पास पढने छोड आता है। छोटा वालक गुरु से सभी विधाएँ सीख लेता है, और अन्त मे गुरु को समाप्त करके गुरु के चगुल से छूटकर घर आता है।

१४—रहीअ सिल्विया (Rhea Sylvia)

१ माँ या तो मारी जाती है, अथवा वच्चो को कुछ क्षणो के लिए अकेला छोड जाती है।
२ उन्हे एक वन्य पशु पयपान-स्तनपान कराता है।
३ वे कितने ही साहस के कार्य करते हैं, और
४ अन्त मे वे पहचान लिये जाते हैं और सिंहासनारूढ किये जाते है।

१५—जुनीपर वृक्ष

१ एक सौतेली माँ अपने सौतेले पुत्र से घृणा करती है और उसे मरवा डालती है।
२ वच्चे की आत्मा का आवागमन पहले एक वृक्ष मे, फिर चिडिया मे होता है, इससे चमत्कारक स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं।
३ सौतेली माँ को दण्ड मिलता है।

ब्रज की कहानियो मे सौतेली माँ द्वारा सौतेले पुत्र को कष्ट बहुत दिये जाते हैं, और अन्त इस कहानी की भाँति ही होता है, पर उक्त कहानियो मे ब्रज की सौतेली माँ न तो पुत्र को मरवा ही डालती है, व पुत्र ही वृक्ष, पक्षी आदि योनियो मे जन्म ग्रहण करता है। 'कुनाल', पूरनमल ऐसे ही वृत्त हैं। पर इस प्रकार मरने के उपरान्त विविध रूप ग्रहण करने की कहानी ब्रज मे मिलती है। ऐसा रूप ग्रहण करने वाली ब्रज की कहानी मे स्त्री है। विवाहित स्त्री के स्थान पर धोखे से एक निम्न

जाति की—बहुधा माली की—लडकी राजा के साथ हो लेती है। वह विवाहिता को मार डालती है। वह कभी अनार बनकर पक्षी को आकर्षित करती है, कभी घास, कभी कुछ। अन्त मे वह एक फल मे से अपने पूर्व रूप के साथ साकार उत्पन्न होती है। इस प्रकार रहस्य खुल जाता है। राजा उसे ग्रहण कर लेता है। यहाँ सौतेले पुत्र के स्थान पर स्वय सौत ही है।

१६—होल्ले

१ एक सौतेली माँ, सौतेली लडकी को घर की दासी बना लेती है।

२ उस लड़की के अच्छे स्वभाव के कारण उसका भाग्य चमक उठता है।

३ दूसरी लडकी को अपने दु स्वभाव के कारण दु ख झेलने पडते हैं।

यह कहानी 'ब्रज की लोक कहानियो' मे आती है। इस कहानी का नाम 'फूलनदेई कोलनदेई'[1] रखा गया है। 'कोलनदेई' सौतेली लडकी है। इस कहानी मे सौतेली माँ के अत्याचार का चरम वहाँ है जहाँ वह 'कोलनदेई' के सिर मे कील ठोककर उसे चिडिया बना देती है और अपनी लडकी फूलनदेई का विवाह कोलनदेई के स्थान पर कर देती है। अन्त मे कोलनदेई का रहस्य खुल जाता है। वह अपने रूप मे आ जाती है और पति को प्राप्त कर लेती है।

१७—कैटस्किन

१ एक पिता, पत्नी के मर जाने पर उसी जैसी स्त्री से विवाह करने का निश्चय करता है।

२ अपनी पुत्री से विवाह करने का निश्चय करता है।

३ वह तीन चुस्त पोशाको को लेकर भाग जाती है।

४ एक दूर विदेश मे वह एक राजकुमार से विवाह कर लेती है।

१८—स्वर्ण केश (Golden-locks Type)

१ तीन राजकुमार दुलहिन की खोज मे निकले। दो असफल रहे।

२ तीसरा दुलहिन को जीत लाता है।

३ दो अग्रज कुमार मार्ग मे उस पर आक्रमण कर उसे अधमरा कर देते हैं, दुलहिन को ले भागते हैं।

४ वह स्वस्थ होकर, अपने भाइयो को भगा देता है।

यह कथानक लोकवार्ता मे प्रसिद्ध कथानक है। ढोला मे इसका समावेश हुआ है। नल अपने दो मामाओ के साथ सोने की गोट की तलाश मे जहाज से द्वीप पर जाता है। वहाँ दोनो मामा तो जहाज पर रहते है। नल मोतिनी से विवाह कर लाता है। मामाओ की दृष्टि बदल जाती है। वे नल को समुद्र मे फेंक देते हैं और मोतिनी को स्वय तो भय के कारण ग्रहण नही कर सकते, राजा को सौंप देते हैं।

---

[1] एक दूसरी कहानी मे यह नाम 'कानी टिप्पो' है।

नल सर्पो के द्वारा बचाया जाता है। वे उसे किनारे पर पहुँचा देते है। नल युक्ति से प्रकट होकर मोतिनी को प्राप्त कर नेता है।

एक दूसरी कहानी मे एक राजा अन्धा हो गया है। उसे वताया गया है कि वह जब नाचता पेड (?) देखेगा तो उसे दृष्टि आ जायगी। उसके तीनो पुत्र खोज मे निकलते हैं। छोटा पुत्र ही उसे पा सकता है। दोनो वडे भाई उसे छीनकर घर ले आते हैं और पिता को देते है। यथार्थ मे वह एक सुन्दरी है जो जादू से नाचता पेड वन जाती है। दोनो भाई उसे नाचता पेड नही वना सकते। छोटा भाई आकर वह कर दिखाता है, और दोनो भाइयो को इस प्रकार परास्त करता है।

१९—श्वेत बिल्ली

१ एक राजा अपने पुत्रो को कठिन कार्य देता है, जो सफल होगा, वह गद्दी पायेगा।

२ अग्रज दो भाई जादू से वँध जाते हैं, सबसे छोटा सम्मोहन को भग्न कर देता है। उन्हे मुक्त करता है और कार्य सम्पादन करता है।

ब्रज मे इस कहानी का एक रूप तो ऐसा ही है। उसमे पुत्रो को वोलती चिडिया, मोती का पानी और नाचता पेड लाने का भार सौंपा गया है। वडे भाई जाते हैं, साधुओ की सेवा करते हुए एक साधू से एक गेंद मिलती है। उसे वे लुढका देते हैं और पीछे-पीछे चले जाते है। उनके पीछे बडी भयानक आवाजें आने लगती हैं। वे पीछे की ओर देख उठते हैं और पत्थर वन जाते हैं। अन्त मे छोटा भाई उन वस्तुओ को प्राप्त करने मे सफल होता है और पानी छिडककर सवको सजीव कर लेता है और राज्य पाता है। किन्तु कुछ कहानियो मे भाइयो को ऐसे ही कुछ कठिन कार्य इसलिए दिये जाते हैं कि वे दुष्प्राप्य वस्तु ला देंगे तो पिता की आँखें ठीक हो जायेंगी या किसी रोग से मुक्त हो जायेंगी। एक नाचते पेड की माँग पुत्रो से पिता ने इसलिए की है कि उसके सामने आते ही उसका अन्धापन दूर हो जायगा।

२०—सिंड्रैला

१ तीन बहिनो मे से सबसे छोटी रसोईशाला की दासी की भाँति।

२ अग्रज वहिनें एक नृत्य मे जाती हैं सबसे छोटी भी दिव्य साधनो से अत्यन्त भव्य भूषा प्राप्त कर नृत्य मे सम्मिलित होती है।

३ ऐसा तीन वार, अन्तिम वार वह स्लीपर छोड जाती है।

४ स्लीपर की सहायता से राजकुमार उसे ढूढ लेता है और उससे विवाह कर लेता है।

२१—सुन्दरी तथा पशु (Beauty and Beast Type)

१ तीन वहिनो मे से सवसे छाटी से घृणा।

२ पिता यात्रा के लिए जाता है, तीनो के लिए मुँह माँगी चीज लाना चाहता है, सवसे छोटी एक फूल मात्र माँगती है।

३ फूल को प्राप्त करने मे पिता सकट मे फँस जाता है। उसके प्राण इस वचन देने से बचते है कि वह उस लडकी को प्रदान करेगा।
४ वह पुत्री उसमे अत्यन्त समृद्ध और एक सुन्दर प्रेमी पा लेती है।
५ बहिनें उसके प्रेमी को आहत कर मार डालती है।
६ सबसे छोटी उसे जीवित कर लेती है।

२२—पशु बहनोई (Beast Brother-in-law)

१ भाई के कई बहिनें, पशुओ को विवाहित।
२ भाई को कोई कठिन कार्य करना पडता है।
३ वह बहनोई पशुओ की सहायता से उसे पूरा करता है।

२३—सात हस (Seven Swan Type)

१ एक बहिन के सात भाई, जो पक्षी हो गये।
२ मौन के मूल्य पर वह उनकी मुक्ति चाहती है।
३ वह भयकर सकट मे फँस जाती, उसके प्राणो पर आ बनती है, किन्तु वह उन्हे मुक्त करने मे सफल होती है।
४ वह एक राजा से विवाह करती है।

२४—जुडवाँ भाई

१ दो भाई एक-दूसरे को अत्यन्त प्रिय, यात्रा मे बिछुड जाते है।
२ बिछुडने के पूर्व एक-दूसरे को ऐसा चिह्न देते है जिससे उसके स्वास्थ्य समृद्धि का पता चलता रहे।
३ एक भाई सकट मे, दूसरा चिह्न द्वारा इसे जान लेता है।
४ वह उसे बचाता है।

ब्रज लोककहानी समूह मे 'दुए भाई और दानो' नामक कहानी का एक अश कुछ-कुछ इससे भी मिलता है। ब्रज की कहानी मे छोटा लडका माँ के रोने पर माँ से कह जाता है कि 'कटोरा दूध' भर के रख लो। मेरे ऊपर आपत्ति आयी तो दूध का खून हो जायगा। इसी विधि से बडा भाई छोटे के सकट को समझकर दाने के यहाँ जाकर उसे मारता है, और भाई को पुन जीवित करता है।

२५—जादूगरनी के जाल से भागना

१ एक भाई और बहिन (अथवा दो प्रेमी) किसी जादूगरनी अथवा माँ, अथवा दानव के वश मे।
२ भाई जादू-विद्या सीख लेता है, अथवा बहिन वह शक्ति प्राप्त कर लेती है।
३ थूक अथवा सेव के फाँको (Pips) से वे अपने स्वामी को धोखा देकर भाग निकलते है।
४ उनका पीछा किया जाता है, वे विद्या से कई रूप बदलते है (अथवा मार्ग मे अडचनें खडी करते है) जिससे पीछा करने वाला भ्रम जाय।

५ अन्त मे पीछा करने वाले को वे मार डालते है।

विद्या सीखकर अपने पीछा करने वाले को छका कर अन्त मे उसे मारकर मुक्ति पाने की घटना तो गुरु-चेला नाम की कहानी मे है। पर इस कहानी मे स्त्री कोई नही। दो भाई हैं और पिता है। यहाँ पर गुरु ही जादूगर है, वही पीछा करता है।

२६—बार्था

१ राजकुमार एक राजकुमारी को विवाह करने के लिए बुलावा भेजता है। राजकुमारी अपनी दासी के साथ चल देती है।

२ दासी राजकुमारी को जहाज मे से फेंक देती है, स्वय दुलहिन बन जाती है।

३ राजकुमारी राजा के पास पहुँचती है, छल का भेद खुल जाता है।

ब्रज मे यह कहानी 'काग बिडारिनी' के नाम से प्रचलित है। आरम्भ का अश भिन्न होता है। रानी मृत पति को जीवित करने के लिए शरीर पर उगी घास उखाडती है। कुछ घास रह गयी है। रानी को नीद घेर लेती है। दासी उखाडती है। जिससे वह पुरुप जीवित हो जाता है। दासी को ही रानी समझ लेता है।

२७—जेसन

१ नायक एक अद्भुत देश मे आकर एक राजकुमारी से प्रेम करने लगता है।

२ राजा उसे कार्य सौंपता है, वह स्त्री की सहायता से उन्हे पूरा करता है।

३ वह उसे लेकर भागता है, उसका पीछा किया जाता है।

४ वह अपनी दुलहिन का त्याग कर जाता है (अ) या तो बिना स्वय अपराध किये ही, क्योंकि माँ के द्वारा चुम्बन पाने पर वह भूत घटनाओ को भूल जाती है (आ) अथवा स्वेच्छा से जान-बूझकर।

५ दुलहिन या तो सम्मोहन को भग्न कर देती है अथवा अपना प्रतिकार कर लेती है।

यह कहानी कथा-सरित्सागर मे मिलती है।

२८—गुद्रूमन

१ एक दुलहिन को एक दैत्य अथवा एक वीर (hero) ले जाता है।

२ वह पुन मिल जाती है अथवा वह भगा ले जाने वाले के दुर्भाग्य और नाश का कारण बनती है।

२९—कर्कशा वशीकरण

१ वह अभिमानिनी और कर्कशा-सी है।

२ पति उसे बल से वश मे कर लेता है।

३०—थ्रुशबेअर्ड

१ एक राजा अपनी पुत्री के गर्व से क्रोधित होकर उसकी एक भिखारी से शादी कर देता है।

२ भिखारी उसे दासी बना डालता है, और उसकी आत्मा को ध्वस्त कर देता है।
३ उसे तब विदित होता है कि वह एक राजा है जिसके प्रस्ताव को इस राजपुत्री ने पहले घृणा से ठुकरा दिया था।

३१—सोती हुई सुन्दरी

१ राजकुमारी किसी विशेष वस्तु को स्पर्श करने से वर्जित।
२ वह वर्जित बात कर डालती है और सो जाती है।
३ कितने वर्षों के उपरान्त एक राजकुमार उसे सोते पाता है, उसका चुम्बन लेकर उसे जगा देता है।

३२—दाँव पर रखकर दुलहिन पाना

दुलहिन (कभी-कभी पति) को प्राप्त किया जाता है—

१ बुझौअलो का उत्तर देने पर
२ विविध कार्य सम्पादन कर देने पर
३ दैत्य से युद्ध करके
४ उसे हँसा देने पर
५ किसी रहस्य का उद्घाटन कर देने पर

विविध कार्य सम्पादन कर देने पर दुलहिन की प्राप्ति की कहानी बहुत पुरानी है। राम का धनुष तोडना, अर्जुन का मत्स्यवेध जैसी घटनाएँ तो महाकाव्यो मे भी मिलती है। नहर को लाने की भयकर शर्त फरहाद के सामने प्रस्तुत है। 'ढोला' मे किसी-किसी ढोला बनाने वाले ने नल के विवाह के समय, दमयती अथवा दुभैती से विवाह के समय, कई कठिन कार्य पूरा करने की शर्त रखी है। एक मे तो उसे आग मे कूदना पडता है। आगे, ढोला का सम्बन्ध मारू से पक्का करने के लिए 'कारे गाडे' कजरीवन से उसे लाने पडते है। इसका पूर्वाभास हमे बुद्ध के जीवन मे भी मिलता है। उन्हे विविध कार्यो मे अपने प्रतियोगियो से श्रेष्ठता सिद्ध करनी पडती है।

दैत्य से युद्ध करके दुलहिन पाने की घटना भी बहुत मिलती है। कृष्ण चरित्र मे जामवन्त से युद्ध और उसकी पुत्री से विवाह पुराण-प्रसिद्ध घटना है। उषा अनिरुद्ध की कथा से सभी परिचित है। ढोला मे 'कारे गाडे' लाने मे प्रमुखता दैत्यो से युद्ध की है।

हँसा देने की शर्त वीर विक्रमाजीत की एक कहानी मे मिलती है। वीर विक्रमाजीत ही जाकर इस शर्त को पूरा कर देने की घोषणा करने के लिए नगाडे पर चोब मारता है, और अन्त मे सफल होता है। पहेलियाँ बनाकर विवाह की बात जगदेव के पँवाडे मे है।

३३—जैक तथा बीन्सटॉक

१ एक मनुष्य एक वृक्ष, एक रस्सी अथवा एक शीशे के पहाड पर चढता है और एक अद्भुत प्रदेश मे पहुँच जाता है।

२ वहाँ से वह एक वशी, धन, एक स्वर्ण अंड, अथवा राजकुमारी को चुरा लाता है।

३ वह पृथ्वी पर लौट आता है।

३४—नरक-यात्रा

१ एक भूगर्भस्थ मार्ग से एक मनुष्य एक रहस्यमय प्रदेश मे पहुँच जाता है।

२ वह कई बार बाल-बाल बचता है।

३ वह नीचे से एक राजकुमारी को बचा लाता है।

३५— दानव सहारक जैक

१ एक मनुष्य को दानव या शैतान का सामना करना पडता है।

२ वह उन्हे अपने विशेप कौशल से छलता है।

३ उसकी प्रेरणा (कौशल) से वे एक-दूसरे को मार डालते हैं।

दाने को मारने वाले वीर की ऐसी ही कहानी व्रज मे प्रचलित है।

३६—पॉलीफेमस

१ एक मनुष्य को दानव वन्दी रखता है।

२ वह दाने को अन्धा कर देता है।

३ वह एक भेड के मेमने मे अपने को छिपाकर भाग जाता है।

४ दानव भी उसे छलने का उद्योग करता है, पर परास्त होता है।

३७—जादुई युद्ध

१ दो मनुष्य दिव्यशक्तियो से युक्त। एक-दूसरे पर उन शक्तियो की परीक्षा करते हैं।

२ वे विविध रूप बदलते है।

३ भला मनुष्य धूर्त पर विजय पाता है।

व्रज मे 'गुरु-चेला' नाम की कहानी के अन्तिम भाग मे इसी कहानी का रूप विद्यमान है। 'गुरु और चेला' एक-दूसरे को परास्त करने के लिए विविध रूप बदलते हैं, अन्त मे 'गुरु' जो धूर्त है, चेले द्वारा परास्त होता है।

३८—शैतान की पराजय

१ शैतान और मनुष्य के बीच एक शर्त।

२ मनुष्य शैतान को परास्त करता है।

३९—निर्भय जोह्न

१ एक निर्भय लडका, उसे (१) मनुष्य, (२) मृतशरीर, तथा (३) आत्माओ (भूत-प्रेतो) का सामना करना पडता है।

२ एक भूत-प्रेतावास मकान मे वह भूत-प्रेतो का तीन बार सामना करता है, और उनसे सोना हडपता है।

३ जब शय्या पर उसके ऊपर स्वर्ण मछलियो (Goldfish) का पात्र औंधाया जाता है तभी वह काँपना सीखता है।

४०—भविष्यवाणी की सपूर्ति

१ एक भविष्यवाणी एक दिव्य व्यक्ति के द्वारा कि एक वालक या तो एक राजा को मार डालेगा या उसकी पुत्री से विवाह करेगा।

२ राजा उसे मार डालने का उद्योग करता है।

३ जिन साधनो का उपयोग वह अपने अभीष्ट को पूरा करने के लिए करता है, वही भविष्यवाणी को पूरा करने मे सहायक हो जाते हैं।

४१—जादुई पुस्तक

१ एक मनुष्य भूत-प्रेतो (Evil Spirits) पर किसी उपाय से अधिकार पा लेता है।

२ वह उन साधनो को रोकने मे असमथ रहता है और अन्तत नाश को प्राप्त होता है।

४२—चोर शिरोमणि

१ एक युवक चोर-कला सीखने निकलता है।

२ चोर-कला मे निपुणता सिद्ध करने के लिए वह एक किसान से गाय ठग लेता है।

३ ठगो का नायक बनकर वह ठग दल को परास्त करता है।

४ घर लौटकर अपने देश के स्वामी की लडकी विवाह मे चाहता है।

५ उसे कार्य सौंपे जाते है, जिन्हे वह कर डालता है।

यह चोर-शिरोमणि की कहानी विश्वभर मे किसी न किसी रूप मे अवश्य प्रचलित है। व्रज मे इसके कई सस्करण मिलते हैं।

किसान से बकरी ठगने की प्रधान कहानी हितोपदेश और पचतन्त्र मे मिलती है। एक ब्राह्मण की बकरी एक ठग द्वारा, उसे तीन अवसरो पर तीन भिन्न व्यक्तियो द्वारा, कुत्ता' बताया गया तो उसने भी उसे कुत्ता समझकर छोड दिया, और ठगो ने उसे प्राप्त किया। नार्वे की एक कहानी मे चोरों के सघ मे शामिल होने के लिए उत्सुक एक युवक की परीक्षा मे भी कुछ इसी प्रकार का विषय है। उससे कहा जाता है कि किसान का यदि एक बैल चुरा लाओगे तो सम्मिलित होने योग्य समझे जाओगे, दूसरा भी ले आओगे तो बराबर के समझे जाओगे, तीसरा भी चुरा लोगे तो हमारे शिरोमणि। वह युवक एक बार चाँदी के बकसुए के जूते को दो बार मार्ग मे रखकर तथा स्वय तीन बार पेड पर लटककर और अन्त मे बैलो के रँभाने की आवाज करके उन बैलो को ठग लाता है।

व्रज की एक कहानी मे तो किसान की गाय के ठगने का एक और अनोखा ढग निकाला गया है। चोर हैं बाप और उसके दो बेटे। एक बेटा किसान से गाय या बैल को खरीदने का भाव-ताव करने लगता है। दोनों उसके मूल्य पर सहमत नही हो पाते। बुड्ढा चोर मार्ग मे से ऐसे निकलता है, जैसे किसी से परिचित नही। उनके मूल्य का फैसला उसी वृद्ध पर छोड दिया जाता है। वह एकदम अत्यन्त कम

दाम बताता है। किसान को वह बैल प्रतिश्रुत होने के कारण दे देना पडता है। किन्तु अब वह उन ठगो को ठगने के लिए कटिवद्ध होता है। पहले स्त्री बनकर, फिर चिकित्सक बनकर, फिर सिपाही बनकर वह तीनो को ठगता है, और हर बार वृद्ध को बहुत मारता है।

४३—बहादुर दर्जी

१ एक दर्जी एक ही हाथ मे सात मक्खियाँ मार डालता है, वह अब अपने को शूरवीर समझने लगता है।

२ वह (१) दानवो को, (२) मनुष्यो को परास्त करता है।

३ वह राजकुमारी से विवाह करता है।

'तीसमारखाँ' की प्रसिद्ध कहानी इसी के आधार पर है।

४४—विलियम टैल

१ एक क्रूरकर्मा एक धनुर्धारी को यह कार्य सौपता है, कि वह उसके लडके के सिर पर से एक सेव या अखरोट पर लक्ष्य मारे। वह यह कर देता है।

२ धनुर्धारी के तूणीर के अन्य वाणो का उपयोग उससे पूछा जाता है, और आतंकित किया जाता है।

३ कितने ही वर्ष बीत जाने पर धनुर्धर उसे मार डालता है।

४५—स्वामिभक्त जोह्न

१ एक राजकुमार का एक स्वामिभक्त सेवक, वह उसे सकटो से बचाता है।

२ राजकुमार को उसके कृत्यो पर सदेह होता है, वह सेवक को दण्ड देता है, वह सेवक पत्थर बन जाता है।

३ राजकुमार और उसकी दुलहिन के आँसुओ से सम्मोहन नष्ट हो जाता है, और सेवक मुक्त हो जाता है।

ब्रज मे यह कहानी मिलती है। इसे हमने 'यारु होइ तौ ऐसौ होइ' शीर्षक से दिया है। इस कहानी की विस्तृत विवेचना 'ब्रज-भारती' मे दी जा चुकी है।

४६—गेलर्ट (Galert Type)

१ एक मनुष्य के पास स्वामिभक्त कुत्ता, जो उसके बच्चे को सकट से बचाता है।

२ मनुष्य कुत्ते के एक कृत्य से भ्रम में पडकर कुत्ते को मार डालता है।

३ कुत्ते के मर जाने पर उसे अपनी भूल विदित होती है।

यह कहानी भी अत्यन्त प्रचलित है। पचतन्त्र मे कुत्ते के स्थान पर 'न्यौला' है। 'न्यौला' साँप से बच्चे की रक्षा करता है। बच्चा सोता रहता है। गृह मालकिन पानी भरकर घर आती है, तो न्यौले के मुख को रक्त-रजित देखकर उसे पुत्र-घाती अनुमान करके उस पर घडा पटककर उसे मार डालती है। बाद मे उसे अपनी भूल पर पछताना पडता है।

यह कुत्ते वाली कहानी ज्यो की त्यो 'व्रज की लोक कहानियाँ' नामक सग्रह मे 'ठगो को ठगने वाला' शीर्षक कहानी का एक अग है। इसे उसमे 'लाखा वजारे' का वृत्त कहा गया है। इसी कहानी मे दूसरी अतर्भुक्त कहानी राजा और वाज की है। यह भी इसी कहानी के ढग की है। कुत्ते-न्यौले का स्थान वाज ने लिया है, और रक्षा उसने बच्चे की नही स्वय अपने स्वामी की की है।

४७—कृतज्ञ पशु

१ एक मनुष्य कुछ पशुओ को तथा एक मनुष्य को (कुँए या) खाई से बचाता है।

२ पशु तो अपने प्राणरक्षक को धनी बनाते हैं, पर मनुष्य उसके सर्वनाश का प्रयत्न करता है।

यह कहानी भी विश्व-ख्याति की कहानी है। ठीक इसी ढग की एक कहानी व्रज की लोक कहानियो मे प्रकाशित है। यह कहानी 'नारद कौ घमण्ड दूरि कर्यौ' शीर्षक कहानी मे अन्तर्भुक्त है। यह कहानी किसान और वन्दर, स्याप और सुनार की है। वन्दर, स्याप और सुनार को किसान कुँए में से निकालता है। वन्दर और स्याप तो किसान की सहायता करते है, सुनार उसे जेल भिजवा देता है। जेल से मुक्ति भी स्याप की सहायता से होती है।

४८—पशु, पक्षी, मछली

१ एक मनुष्य एक थलचर पशु, एक नभचर और एक जलचर पर एक उपकार करता है।

२ वह सकट मे पड जाता है, अथवा उसे कुछ कार्य सम्पादन करने हैं।

३ वह कृतज्ञ प्राणियो की सहायता से बचता है, अथवा सफल होता है।

'व्रज की लोक कहानियो' मे 'बिल्ली, मूसौ, स्यापु' शीर्षक से एक ऐसी ही कहानी दी गयी है। इसमे तीनो ही प्राणी एक ही प्रकार के हैं।

४९—मनुष्य पशुओं को वश में करता है

१ अपनी चतुराई से

२ अपनी सगीत-शक्ति से

५०—अलाउद्दीन

१ एक मनुष्य के पास दिव्य पदार्थो का भण्डार अथवा एक कुटुम्ब को आमात्मो द्वारा ऐसा वरदान मिला है जिससे उनका भाग्य चमकेगा।

२ मूर्खता से वह खो जाता है।

३ पुन प्राप्त हो जाता है।

५१—स्वर्णिम मराल (Golden Goose Type)

१ मनुष्य को ऐसा ही (५० मे जैसा पदार्थ) मिला हुआ है।

२ मूर्खता से वह खो जाता है।

३ वह फिर कभी प्राप्त नही होता ।

५२—वर्जित गृह-कक्ष

१ एक लडकी (अथवा मनुष्य) अपेक्षाकृत उच्च वर्ण से विवाह करती है ।

२ वह लडकी (अथवा मनुष्य) उस नये भवन के सब कक्षो में जा सकती है । एक वर्जित है ।

३ वर्जित कक्ष में जाती है, वह भयानक वस्तुओ से परिपूर्ण है ।

४ वर को इसका पता चल जाता है, दण्ड देने के प्रयत्न में स्वय मृत्यु प्राप्त करता है ।

वर्जित कोठरी या वर्जित दिशा की कई कहानियाँ ब्रज में प्रचलित हैं । पर उनमें अन्तिम चरण नही मिलता । तीसरे चरण में वैविध्य है । किसी में नरक का दृश्य मिलता है । किसी में घोडा, यह घोडा उसे अपने मूल एक देश में पहुँचा देता है । किसी में तालाब है, जिसमें नायक तालाब में कूद पडता है और जब निकलता है तो अपने मूल देश में ही आ निकलता है ।

५३—दस्यु दुलहा

१ एक छद्मधारी दस्यु से एक लडकी का सम्बन्ध हो जाता है ।

२ वह उसके महल में जाकर उसके व्यवसाय का पता लगा लेती है ।

३ वह लडकी किसी सकेत से अपने सम्बन्धियो के समक्ष उसे अपराधी बनाती है, और वह मार डाला जाता है ।

५४—गाती हड्डी

१ एक भाई (बहिन) किसी ईर्ष्या या जलन से दूसरे को मार डालता है ।

२ दिवसोपरान्त जब मृतक की हड्डी फूँकी जाती है तो उसमें से गीत निकलता है । उससे मारने वाली का भेद खुलता है ।

५५—हिम-धवल

१ सौतेली माँ सौतेली पुत्री से घृणा करती है । उसकी मृत्यु का षड्यन्त्र रचती है ।

२ सौतेली पुत्री अन्तत उसका शिकार हो जाती है ।

३ किन्तु नायक द्वारा उसे पुन प्राण-दान मिलता है, और सौतेली माँ को दण्ड मिलता है ।

५६—टॉम थम्ब (Tom thumb)

१ एक माँ पुत्र चाहती है, भले ही वह उसके अँगूठे से बडा न हो ।

२ ऐसा ही पुत्र उत्पन्न होता है, वह अपनी चतुराई और लघुत्व से अनेको साहसपूर्ण कार्य करता है ।

ब्रज की एक कहानी में ऐसे ही एक घडा है जो पुल बन गया है ।

५७—एण्ड्रोमीडा

१ एक सर्प-दैत्य (dragon) एक देश को उजाडता है और यह चाहता है कि एक कुमारी से उसका विवाह कर दिया जाय।

२ राजा की पुत्री ही इस प्रकार दी जाती है।

३ नायक सर्प-दैत्य को मारकर राजपुत्री से विवाह करता है।

व्रज की कहानियो में सर्प की रक्षा में कुमारी तो है, पर सर्प उससे विवाह करना ही चाहता हो ऐसी वात नही। वह किसी सर्प के वन्धन में या उसके सरक्षण में आ गयी है।

५८—मेकी राजकुमार

१ एक राजकुमार एक घृण्य पशु में रूपान्तरित हो जाता है।

२ वह एक लडकी के साथ एक उपकार का कार्य इस शर्त पर करता है कि एक रात को वह जो चाहेगा वह कर देगी।

३ वह लडकी वैसा ही कर देती है, राजकुमार का सम्मोहन टूट जाता है। वे दोनो विवाह कर लेते हैं।

५६—रम्पैलिस्टल्टास्किन

१ एक लडकी को कार्य सौंपे जाते है।

२ उसे एक बौना इस शर्त पर सहायता देता है कि वह उसका नाम खोज निकालेगी।

३ वह सयोग से उसके नाम को उस समय सुन लेती है जब वह दूसरो को वता रहा है और इस प्रकार उसके चगुल से निकल जाती है।

६०—पशुओ की भाषा

१ एक पुत्र जादूगर का शिष्य वनकर पशुओ की भाषा सीखता है।

२ उसके यह कहने पर कि वह उनसे महान होगा उसका पिता उसे परित्यक्त कर देता है।

३ पशुओ की भाषा के ज्ञान के कारण वह अद्भुत कृत्य करता है।

४ वह अपने पिता (पोप, राजा) से भी बढकर हो जाता है, तब उनमें समझौता हो जाता है।

६१—बूटो में पूसी (Puss in Boots Type)

१ सबसे छोटे को केवल बिल्ली मिली।

२ बिल्ली राजा पर यह विश्वास जमा देती है कि उसका स्वामी अत्यन्त धनाढ्य है।

३ बिल्ली का स्वामी राजा की पुत्री से विवाह करता है।

६२—डिक विटिंगटन

१ एक गरीब को एक बिल्ली मिल जाती है।

२ वह उस बिल्ली को विक्रयार्थ भेज देता है।

३ एक देश में जहाँ चूहो का आतक था वह बहुत मूल्य में बिकी और लडका धनी हो गया।

६३—सच्चा और दगाबाज

१ दो साथी यात्रा को निकले—एक सज्जन दूसरा दुर्जन।

२ दुर्जन पहले लाभ में रहता है किन्तु दूसरा राक्षसो की बातें सुनकर उनके अनुसार सम्पत्ति प्राप्त करता है।

३ दुर्जन भी उसी की नकल करना चाहता है पर राक्षसो द्वारा मार डाला जाता है।

६४—कृतज्ञ मृत

१ नायक एक मृतक मनुष्य का कर्ज अदा कर देता है जिससे वह दफनाया जा सका।

२ उसका प्रेत उस नायक को कार्य सपादन करने में सहायता देता है।

६५—पाइड पाइपर (Pied Piper)

१ एक जादूगर गायक एक नगर को रोग मुक्त कर देता है।

२ उसे निश्चित पुरस्कार नहीं मिलता वह सब बच्चो को चुरा ले जाता है।

६६—गदहा, मेज तथा डडा

१ एक लडके को सेवा के पुरस्कार में एक तो गदहा मिलता है, जो सोना डालता है, एक मेज मिली जो चाहने पर मन-माँगा भोजन प्रदान करती है।

२ दोनो को धूर्त सराय-मालिक चुरा लेता है।

३ तीसरी बार पुरस्कार मे डडा मिला, जो कहते ही मारने लगता है। इसकी सहायता से सराय वाले से पहली दोनो वस्तुएँ प्राप्त हुईं।

यह कहानी व्रज मे कई रूपो मे मिलती है। व्रज की एक कहानी मे पहले एक थैली मिलती है जिसमे से लड्डू निकलते हैं। फिर दूसरी थैली मिलती है जिसमे से मुक्के निकलते है। पहली को राजा छीन लेता है। दूसरी के द्वारा राजा परास्त होता है, पहली थैली भी लौट आती है। एक अन्य कहानी मे कढाई या पतीली मिलती है। यह मन चाहे भोजन देती है, इसके छिन जाने पर डण्डा मिलता है।

६७—Droll, Three Noodles (तीन मूर्खाएँ)

१ एक सज्जन की एक लडकी से सगाई हो गयी है, वह लड़की कुछ मूर्खता-पूर्ण कार्य करती है।

२ वह यह प्रतिज्ञा करता है कि जब तक उस लड़की जैसी मूर्ख और नही देख लेगा विवाह नही करेगा।

३ उसे तीन मूर्खाएँ मिलती है, वह लौटकर उसी से शादी कर लेता है।

६८—क्रम सवृद्ध (Accumulative Droll) टिड्डी चूहा

१ पशु साझा करते हैं, एक मर जाता है, दूसरा रोता है।

२ अन्य पदार्थ सहानुभूति मे रोते है, यहाँ तक कि समस्त विश्व मे रोना-पीटना होने लगता है।

६९—वृद्धा और घेंटा

१ एक वृद्धा स्त्री घेंटे को सीढी के ऊपर नही कर पाती, उसने कुत्ते, लकडी, अग्नि, जल, बैल, कसाई, रस्सी, चूहे, बिल्ली से सहायता की याचना की।

२ बिल्ली एक शर्त पर सहायता करने को प्रस्तुत होती है, उसके कारण और सब भी क्रम से तैयार होते जाते हैं, यहाँ तक कि घेंटा Itile पर कूद जाता है।

यह कहानी व्रज मे 'दौल वाले कौऐ' से मिलती है।

७०—(Accumulative Droll) हेन्नी पेन्नी

१ मुर्गी सोचती है कि आकाश गिर रहा है, राजा से कहने जाती है, और मुर्गा, बत्तख, हस, Turkey से मिलती है।

२ अन्त मे वे लोमडी से मिलते है। वह उन्हें अपने भिटे मे ले जाती है और खा जाती है।

इन क्रमसवृद्ध कहानियो के मानक-रूपो मे तीन भारत के लोकतत्त्वविद् श्री शरतचन्द मित्र ने ढूँढ कर जोडे। वे ये है

७१—आदमी तथा केंकडा

७२—शहद की बूँद

७३—सेही (Prawn) तथा कौआ

किन्तु 'भारतीय सम्प्रदाय' के तुलनामूलक सिद्धान्तो से लोककथाओ का अध्ययन बहुत आगे बढ गया। फलत ऐसे कथा-मानक रूपो का ऐतिहासिक मूल्य ही रह गया है। ऐड्रूलैंग, एह्रेनरीख (Ehrenreich), लेसनर (Laistner), सेंटीवेस (Saintyves), आर्नल्ड वान गेन्नेप (Arnold van-Gennep), हैन्स नऊमैन (Hans Naumann), मैलीनावस्की (Malinowski) बोआज जैसे विद्वानो और गवेषको ने भारतीय सम्प्रदाय की स्थापनाओ का खण्डन किया और लोक-कथाओ, धर्मगाथाओ, वीरगाथाओ आदि के मूल के सम्बन्ध मे विविध अन्य सिद्धान्त प्रस्तुत किये। एड्रूलैंग के अनुसार एक सिद्धान्त था कि आदिम मानव मे ही कहानियो का मूल स्रोत है। फ्रेजर तथा मैककुलिच के द्वारा बहुत-सी तुलनात्मक सामग्री एकत्र की गयी, और उक्त सिद्धान्त की पुष्टि की गयी। इस सिद्धान्त के परिणाम थे कि सस्कृतियो का विकास सीधे आदिम मूलो से समान्तर भूमियो पर हुआ है, तथा आदिमो के अवशेष सस्कृतियो मे आज भी हैं।

एक सिद्धान्त भारतीय सम्प्रदाय या 'धर्मगाथा सम्प्रदाय' के अनुरूप यह मानता है कि कहानियो का मूल प्राकृतिक व्यापारो मे है, ये व्यापार विश्वभर के मानव को प्रभावित करते हैं, और इन व्यापारो के सम्बन्ध मे बनने वाले उनके विश्वास कहानियो का रूप ग्रहण कर लेते हैं। ये अलग-अलग देश जाति के लोगो मे भी एक ही प्रकार की प्रतिक्रिया पैदा करते हैं, और समान लगने वाले अभिप्राय या कहानियाँ जन्म ले लेती हैं। एह्रेनरीख ने इनमे चन्द्रमा को सबसे अधिक महत्त्व दिया है।

एक अन्य सिद्धान्त ने समस्त लोककथाओ, धर्मगाथाओ तथा वीरगाथाओ को समझने की कुजी स्वप्नो के हाथ मे दे दी। लैसनर ने भय तथा तबाही के स्वप्नो को महत्त्व दिया। फ्रायडवादियो ने कुण्ठा की रचनाओ मे कथाओ के मूल को देखा।

आनुष्ठानिक (Ritualistic) मूल का सिद्धान्त सेण्टीवेस ने स्थापित किया। कुछ कहानियों के मूल मे ऋतु समारोह के अनुष्ठान हैं, कुछ मे दीक्षा के अनुष्ठान, कुछ मे मध्ययुग के उपदेशो के अवशेष हैं।

टोटेम या तत्वम पशु के कारण ही कहानियाँ पैदा हुईं, यह भी सिद्धान्त स्थापित हुआ। क्योकि पशु-कहानियो की प्रबलता आदिम तत्वम प्रधान जातियो मे मिलती है। वान गेन्नेप इसके प्रधान पोषक हैं।

आदिम मूल विश्वासो मे धर्माचारो के द्वारा ही कथाएँ बनी हैं, अत उनमे धार्मिक अनुष्ठानो के अवशेष मिल ही जाते हैं। इन आदिम विश्वासो मे 'मृत (प्रेत) का भय' विशेष प्रभाव रखता है, जिससे दानवो की कहानियो की उद्भावना हुई।

ये सभी सिद्धान्त एक प्रकार से विविध-मूलो (Polygenesis) को मानते हैं, केवल एक ही किसी स्थान से कहानियो के जन्म की बात इन्हे अमान्य है। ये सभी आदिम मानव मे ही इनका मूल मानते हैं।

किन्तु आदिम मानव की जैसी अवस्था मे रहने वाली आज की जातियो में भी गाथा बनाने की प्रवृत्ति है, उससे कहानियो के मूल पर विचार किया जा सकता है। यह मैलीनावस्की की स्थापना थी।

बोआज ने इसी सिद्धान्त को विश्व लोक कहानियो की पृष्ठभूमि पर तुलनापूर्वक स्थापित किया। लोक-कहानी और धमगाथा में कोई अन्तर नही। लोक-कहानी तथा धर्मगाथा का निर्माण बहुत जटिल सूत्रो से होता है, और आज उनके यथार्थ मूल को ढूंढ सकना सम्भव नही माना जा सकता।

इन सिद्धान्तो पर विचार करने से स्पष्ट होता है कि प्रत्येक में कुछ न कुछ कमियाँ हैं, और प्रत्येक अपने पक्ष के आग्रह से ग्रसित है। साथ ही स्पष्ट है कि इन सिद्धान्तो में से कुछ मूल में कथा का ही निर्माण मानते हैं। प्राकृतिक या जीवन व्यापारो की गतिविधि के सूत्रो से कहानी खडी होती है। मूल में यह कहानी एक सीधी कहानी होती है। कहानी का यह मूलरूप तुलनात्मक अध्ययन से खडा होता है। यह कथा मानक-रूप (Tale type) कहा जाता है। इसी में अन्य मानक-रूप मिल जाते हैं और जटिल कहानियाँ खडी हो जाती हैं।

यद्यपि दूसरा वर्ग, जिसमें नृविज्ञानविद् विशेष हैं, यह भी मानता है कि 'अभिप्राय' ही मूलत जन्म लेते हैं, और उन्ही के मूल को ढूंढने का प्रयत्न होना चाहिए, फिर भी कथा-मानको का कुछ विस्तृत परिचय प्राप्त कर लेना अपेक्षित है। यह लोक-साहित्य के साहित्यिक-पक्ष या कथा-पक्ष के लिए आवश्यक है। क्योंकि कथा अध्ययन का क्रम कुछ इस प्रकार ही होना चाहिए।

वर्तमान जटिल कहानियाँ
तुलना←→विश्लेषण
↓
कथा मानक-रूपो वाली कहानियाँ
तुलना←→विश्लेषण
↓
अभिप्राय (Motif) स्थापना

और इस प्रकार आधुनिक युग मे कथा मानक-रूप केवल आर्य परिवार की दृष्टि से नही विश्वभर की दृष्टि से प्रस्तुत किये गये हैं। इन कथा-मानक रूपो की *अनुक्रमणिका ऐंटीआर्ने ने प्रस्तुत की, फिर उसे पूर्ण करने का प्रयत्न किया स्टिथ* थामसन महोदय ने। इस अनुक्रमणिका मे कथा मानक-रूपो की सख्या भी निर्धारित कर दी गयी। किसी रूप के समान अन्य नया रूप आगे मिले तो उसे भी इसमे स्थान दिया जा सकता है। इस अनुक्रमणिका मे से कुछ प्रमुख रूप उदाहरणार्थ 'फोक टेल' नामक पुस्तक से उद्धृत किये जाते हैं। स्पष्ट है कि इस स्थान पर पहुँच जाने पर अब लोककथा मे आर्य-अनार्य क्षेत्र का प्रश्न नही रह गया।

कथा रूपो की अनुक्रमणिका

पशुओ की कहानियाँ

१—९९ वन्य पशु

१ मछली की चोरी
२ पुच्छल मछुआ
३ झूठा रक्त और मस्तिष्क
४ झूठे बीमार छलिया को ले जाना
५ पैर को काटना
६ वायु की दिशा के बारे मे पूछताछ
७ तीन वृक्षो के नामो को पुकारना
८ चित्रकारी
९अ अस्तबल मे रीछ फसल की दाँय देता है।
९ब फसल की बाँट में, लोमडी अनाज का और रीछ अधिक भूसे का ऊँचा ढेर लेता है
१५ क्रीडारत धर्म पिता बनकर मक्खन (शहद) की चोरी

२०स प्रलय या युद्ध के भय से पशुओ का भागना
२१ अपने भीतरी अगो को, अतडियो को, खाना
३० भेडिये को गड्ढे मे गिराने के लिए लोमडी की चाल
३१ लोमडी का भेडिये की पीठ पर चढकर बाहर निकलना
३२ एक बाल्टी से भेडिया कुएँ मे जाता है और दूसरी से लोमडी को बचाता है
३३ लोमडी मरने का बहाना करती है और बाहर फेंक दी जाती है और भाग जाती है
३४ पनीर के प्रतिबिम्ब को देखकर भेडिया कुएँ मे कूद पडता है
३५ छद्म वेश धारण कर लोमडा रीछनी पर बलात्कार करता है
३६ लोमडी रीछ की धाय के रूप मे
३७ चिरे पेड मे पजा
३९ रीछ पर्वत की राख दूर खीचता है ताकि लोमडी की बूढी माँ रसभरी (फल) पा सके
४१ गुफा में भेड़िया अत्यधिक खा लेता है
४३ रीछ एक लकडी का और लोमडी बर्फ का मकान बनाती है
४४ लोहे पर शपथ
४७अ लोमडी (रीछ आदि) दाँत के बल घोडे की पूँछ से लटकती है
४७ब घोडा भेडिये के दाँतो मे लात मारता है
४९ रीछ और शहद
५० बीमार शेर
५१ शेर का भाग
५५ पशु सडक बनाते हैं
५६अ लोमडी पेड को गिराने की धमकी देती है
५६ब लोमडी चिडिया को फुसलाती है कि वह अपने बच्चो को उसके घर ले आये
५७ काला कौआ (Raven) मुँह मे पनीर लिये हुए
६१ लोमडी मुर्गे को आँखे बन्द करके बाँग देने को फुसलाती है
६२ पशुओ मे शान्ति—लोमडी और मुर्गा
६८ लोमडी का प्रेमी
७० खरगोश से अधिक कायर
७१ कछुए और खरगोश मे प्रतियोगिता
७२ खरगोश लोमडी पर सवारी लेता है
७२ब शीतकाल मे खरगोश कहता है यदि मौसम गर्म होता तो मैं मकान बना लेता

७५ कमजोर की मदद
७६ भेडिया और सारस
७७ वारहसिंघा वसत मे अपनी प्रशसा करता है
८५ चूहा, चिडिया और कवाव
९० सुई, दस्ताना और गिलहरी

१००—१४९ वन्य और घरेलू पशु

१०० कुत्ते के महमान के रूप मे भेडिया गाता है
१०१ वच्चे (मैंमने) का रक्षक वूढा कुत्ता
१०२ भेडिये का जूता वनाने वाला कुत्ता
१०३ अनजान पशु से वन्य पशु छिपते हैं
१०४ डरपोक निवासी
१०५ विल्ली की एकमात्र चाल
११० विल्ली के घण्टी वाँधना
१११ चूहे और बिल्ली का वार्तालाप
११२ गाँव के चूहे का शहर के चूहे के यहाँ जाना
११५ भूखी लोमडी व्यर्थ प्रतीक्षा करती है कि घोडे के मुँह से लार गिरे
११६ घास की गाडी पर रीछ
११८ शेर ने घोडे को डराया
१२० सूर्योदय का दर्शन करने में सर्वप्रथम
१२१ भेडिये एक-दूसरे के सिर पर चढते हैं पेड पर पहुँचने के लिए
१२२ भेडिया अपनी शिकार खोदता है
१२२अ भेडिया (लोमडी) नाश्ता खोजता है
१२२ब चूहा (चिडिया) विल्ली (कौए) को फुसलाती है कि वह उसे खाने से पहले अपना मुँह धो ले
१२२स भेडिये को गाने के लिए भेड फुसलाती है
१२३ भेडिया और मैंमने
१२४ तीन मेढे
१२५ भेडिया भेडिये के सिर से डरकर भाग जाता है
१३० पशु रात्रि गृह मे

१५०—१९९ मनुष्य और वन्यपशु

१५० लोमडी की सलाह
१५२ मनुष्य रीछ पर रग चढाता है
१५३ रीछ पर सोना चढाना और दास को लेकर लौटना
१५४ कृतघ्न सर्प पुन बन्दी बनाया गया

१५६ रीछ (शेर) के पजे मे काँटा
१५७ डरपोक आदमी को सीख
१५८ स्लेज पर वन्यपशु
१५९ गिरफ्तार जगली जानवर परस्पर मुक्ति-शुल्क देते हैं
१६० कृतज्ञ पशु कृतघ्न मनुष्य
१७० लोमड़ी अपने साथी निवासी को खाती है
१७५ मीग्रोशिशु और खरगोश

२००—२१२ घरेलू जानवर

२०० कुत्ते का प्रमाणपत्र
२०२ कमजोर कुत्ता जजीर और प्रचुर भोजन से स्वतन्त्रता को अधिक पसन्द करता है
२०२ दो जिद्दी बकरे
२०४ भेड, बतख और मुर्गा समुद्र पर खतरे मे
२०६ भूसे पर दुबारा दाँय
२१० मुर्गी, मुर्गा, पिन, बतख और सुई एक यात्रा पर
२१२ लेटी हुई बकरी

२१३—२४९ चिडियाँ

२१४ चिडियों की सभा
२१५ चिडियो के राजा का चुनाव
२१६ चिडियो और चौपायो का युद्ध
२१७ टर्की एक चिडिया और मोर की शादी
२१८ सारस लोमडी को उडना सिखाती है
२१९ हस लोमडी को तैरना सिखाता है
२२० बुलबुल और अन्धा कीडा
२३५ नीलकठ कोयल की खाल उधार लेता है
२३६ बया (Thrush) फाख्ता (आदि) को छोटे घोसले बनाना सिखाती है
२३८ फाख्ता की तीव्र दृष्टि और मेढक की तीव्र श्रवण शक्ति
२४० फाख्ता का अडो को स्थानापन्न करना
२४२ मेढक अपने बिल से छल से निकाला गया
२४३ कौआ शादी करता है
२४४ काला कौआ उधार लिये पखो मे
२४५ पालतू चिडिया और जगली चिडिया
२४६ शिकारी धनुष खीचता है
२४७ प्रत्येक अपने बच्चो को सबसे अधिक चाहता है

२४८ कुत्ता और गौरैया
२४९ चीटी और सुस्त झीगुर

२५०—२७४ मछली

२५० मछलियो मे तैरने की प्रतियोगिता
२५२ लम्बी थूथन वाली मछली (Pike) और साँप की स्थल के लिए दौड
२५३ जाल मे मछली

२७५—२९९ अन्य पशु और पदार्थ

२७५ झाई मछली और लोमडी की दौड
२८० चीटी अपने बराबर बोझ ले जाती है
२८१ पिस्सू और घोडे
२८५ बालक और साँप
२९५ सेम, भूसा और कोयला

प्राकृतिक लोक कथाएँ

३००—३९९ अ जादू की कहानियाँ

३०० अजगर को मारने वाला
३०१ तीन चुरायी हुई राजकुमारियाँ
३०२ अण्डे में दाँने (राक्षस) का दिल
३०३ जुडवाँ भाई
३०४ शिकारी
३०६ नाँचते जूते
३०७ कफन में राजकुमारी
३१० मीनार में कन्या
३११ अपनी बहनो द्वारा बधन से मुक्ति
३१२ राक्षस मारने वाला और उसका कुत्ता (नीली दाढी)
३१३ वीर नायक के भागने में सहायक लडकी
३१३अ वीर नायक के भागने पर बीच में लडकी सहायिक की तरह
३१३ब वही, एक जादू के महल मे मिली—एक वर्जित कमरे के द्वारा
३१३स वही विस्मृत की कथा से युक्त
३१४ युवक घोडे के रूप में परिवर्तित हुआ
३१५ अविश्वसनीय बहन
३१५ब अविश्वसनीय पत्नी
३१६ चक्की के तालाब की जलपरी
३२५ जादूगर और उसका शिष्य
३२६ युवक जो जानना चाहता था कि भय क्या है

३२७ बालक और मनुष्यभक्षी
३२७अ हेनसेल और ग्रेटेल
३२७ब बौना और राक्षस
३२७स राक्षस (चुडैल) वीर को बोरे में घर ले जाता है
३२८ लडका राक्षस का कोष चुराता है
३२९ राक्षस से छिपना
३३० धातुकार राक्षस (मृत्यु) को बातो से छका देता है
३३०अ धातकार और राक्षस (मृत्यु)
३३०ब राक्षस बोरे (शीशी) मे
३३१ शीशी मे आत्मा
३३२ धर्मपिता (मृत्यु)
३३३ पेटू (ओवरकोट तथा छ छोटी बकरियाँ)
३३५ मृत्युदूत
३६० तीन भाइयो का जिन्न के साथ सौदा
३६१ रीछ की खाल
३६३ खून पीने वाला पिशाच
३६५ मरा हुआ वर अपनी वधू को ले जाता है
३६६ मनुष्य फाँसी के तख्ते से

४००—४५९ पराप्राकृतिक सम्मोहन

पति (पत्नी) और अन्य सम्बन्धी विषयक

४०० मनुष्य अपनी खोई पत्नी की खोज मे
४०१ राजकुमारी हिरन मे रूपातरित
४०२ चूहा (बिल्ली, मेढक आदि) वधू की तरह
४०३ काली और गोरी वधू
४०३अ इच्छाएँ
४०३ब भूमिका के रूप मे तीन बौने, बर्फ मे झरबेरी (strawbery)
४०३स चुडैल ने चुपचाप अपनी लडकी को वास्तविक वधू के स्थान पर कर दिया
४०७ फूल के रूप मे लडकी
४०८ तीन नारगियाँ
४०९ भेडिये के रूप में लडकी
४१० सुप्त सौदर्य
४२५ खोये हुए पति की खोज
४२५अ वधू के रूप मे एक दैंयत (पशु)

४२५ब वही, भूमिका के साथ अनुमान कि किस पशु से खाल ली गयी है (एक जूँ)
४२५स रीछ की पत्नी के रूप मे लडकी
४२६ दो लडकियाँ, रीछ और बौना
४२८ भेडिया
४३० गदहा
४३१ वन मे घर
४३२ चिडिया के रूप मे राजकुमार
४३३ साँप के रूप मे राजकुमार
४३३अ साँप अपने महल मे राजकुमारी को ले जाता है
४३३ब निस्सतान रानी एक ऐसे लडके को जन्म देती है जो घर से दूर साँप के रूप मे रहता है
४४०. मेढक राजा या लौह हैनरी (Henry)
४४९ सिदी न्यूमेन तथा जार का कुत्ता
४५० जरा-सा भाई और जरा-सी बहन
४५१ वह स्त्री जो अपने भाई को खोजती है

४६०—४९९ परामानवीय पराक्रम

४६०अ पुरस्कारार्थ ईश्वर तक यात्रा
४६०ब सम्पत्ति की खोज मे यात्रा
४६१ दानव की दाढ़ी से तीन बाल
४६५ सुन्दर पत्नी का पति होने के कारण अभिशप्त
४६५अ अनजान की खोज
४७० जीवन तथा मरण मे मित्र
४७१ परलोक के हेतु पुल
४७३ बुरी स्त्री को दण्ड
४७५ नरक की कढाही (केतली) को गरम करने वाला मनुष्य
४८० नदी के पास चरखा कातती बुढिया

५००—५५९ पराप्राकृतिक सहायक

५०० सहायक का नाम
५०१ तीन सहायक बूढी औरतें
५०२ जगली आदमी
५०३ छोटे-छोटे आदमी की भेंट
५०५ राजा जिसके साथ विश्वासघात किया गया
५०६ खतरे से मुक्त की गयी राजकुमारी

५०६अ दासता से मुक्त की गयी राजकुमारी
५०६ब डाकुओ से मुक्त की गयी राजकुमारी
५०७अ दैयत की वधू
५०७ब वधू-भवन मे दैयत
५०७स नाग-कन्या
५०८ पराक्रम-प्रतियोगिता मे जीती हुई वधू
५१०अ अमानवीय कृपा-भाजन पीड़ित कुमारी (सिंड्रेला)
५१०ब चाँदी, सोने और सितारो की पोशाक
५११ एक आँख, दो आँखें, तीन आँखें
५१३ सहायक
५१३अ छ द्वारा सारे ससार का परिभ्रमण
५१३ब पृथ्वी और पानी का जहाज
५१४ योनि परिवर्तन
५१६ स्वामिभक्त सेवक (फैथफुल जौह्न)
५१७ लडका, जिसने बहुत-सी बातें सीखी
५१८ जादू की चीजो पर दानों मे युद्ध
५१९ बलशाली औरत वधू के रूप में
५३० शीशे के पहाड पर राजकुमारी
५३१ चालाक घोडा
५३२ सहायक घोडा
५३३ बोलने वाला घोडे का सर
५४५अ बिल्ली का महल
५४५ब सेविका बिल्ली (पस इन बूट्स)
५५० चिडिया, घोडा और शहजादी
५५१ बाप के लिए आश्चर्यजनक औषध की खोज मे पुत्र
५५२ लडकी जिसने पशु से शादी की
५५३ कौआ सहायक
५५४ कृतज्ञ जानवर
५५५ मछुआ और उसकी पत्नी
५५९ गुबरीला

५६०—६४९ जादुई वस्तुएँ

५६० जादू की अँगूठी
५६१ अल्लादीन
५६२ नीली रोशनी वाली आत्मा
५६३ मेज, गदहा और छडी

५६४ जादू का बटुआ
५६५ जादू की चक्की
५६६ तीन जादू की वस्तुएँ और आश्चर्यजनक फल
५६७ जादूई पक्षी-हृदय
५६९ थैली, टोपी और सीग
५७० खरगोशो का झुण्ड
५७१ राजकुमारी को हँसाना, सब परस्पर चिपक गये
५७५ राजकुमार के पख
५९० राजकुमार और हाथ की पट्टी
५९१ चोर बर्तन
५९२ काँटो मे यहूदी
६१० आरोग्यप्रद फल
६११ बौनो के उपहार
६१२ तीन सर्प पत्तियाँ
६१३ दो यात्री
६२० उपहार
६२१ जूँ की खाल

६५०—६९९ अलौकिक शक्ति अथवा ज्ञान

६५० बलवान जौह्न
६५२ राजकुमार, जिसकी इच्छाएँ सदैव ठीक उतरी
६५३ चार चतुर भाई
६५४ तीन भाई
६५५ आदमी जो चिडिया के समान उडा और मछली के समान तैरा
६७० पशुओ की भाषाएँ
६७१ तीन भाषाएँ
६७२ सर्प का ताज
६७४ सफेद सर्प का माँस
६७५ सुस्त लडका
६७६ खुल जा सीसेम
६७७ लोहा सोने से अधिक मूल्यवान है

७००—७४९ अन्य अलौकिक कथाएँ

७०० टौम अँगूठाकार
७०५ मछली से पैदा
७०६ हाथ रहित कुमारी

७०७ तीन सुनहले लडके
७०८ आश्चर्यजनक बालक
७०९ वर्फ सा सफेद
७१० हमारी महिषी का बालक
७११ सुन्दर और बदसूरत जुडवाँ
७२० मेरी माँ ने मुझे मारा और बाप ने खाया
७२५ स्वप्न
७३५ मालदार और गरीब की सम्पत्ति
७३६ भाग्य और धन

७५०—८४९ (ब) धार्मिक कहानियाँ

७५०अ इच्छाएँ
७५०ब सत्कार पुरस्कृत
७५१ लालची किसान
७५२अ (क्राइस्ट) ईसा और पीटर अन्न के कुठीले मे
७५२ब विस्मृत हवा
७५३ पाप और सम्मान
७५६ तीन हरी टहनियाँ
७५६अ स्वय न्यायपरायण साधु
७५६ब शैतान का ठेका
७५६स और भी बडा पापी
७५९ ईश्वरीय न्याय प्रतिष्ठित
७६१ निर्दय धनी शैतान के घोडे के रूप मे
७६५ वह माँ जो अपनी सन्तान को मारना चाहती है
७८० गाने वाली हड्डी
७८१ वह राजकुमारी जिसने अपने बच्चे को मार दिया
८०० स्वर्ग मे दरजी
८०२ किसान स्वर्ग मे
८०३ सोलोमन शैतान को नरक मे जजीर से जकडता है
८०६ पीटर की माँ स्वर्ग से गिरती है
८१० एक दुष्ट का जाल
८१२ शैतान की पहेली
८१५ मृत मालदार आदमी और शैतान गिरजे मे
८२० फसल उसाहने के समय शैतान दैनिक श्रमिक के स्थानापन्न
८२१ वकील के रूप में शैतान
८२२ सुस्त लडका और मेहनती लडकी

५६४　जादू का बटुआ
५६५　जादू की चक्की
५६६　तीन जादू की वस्तुएँ और आश्चर्यजनक फल
५६७　जादूई पक्षी-हृदय
५६९　थैली, टोपी और सींग
५७०　खरगोशो का झुण्ड
५७१　राजकुमारी को हँसाना, सब परस्पर चिपक गये
५७५　राजकुमार के पख
५९०　राजकुमार और हाथ की पट्टी
५९१　चोर बर्तन
५९२　कांटो मे यहूदी
६१०　आरोग्यप्रद फल
६११　बौनो के उपहार
६१२　तीन सर्प पत्तियाँ
६१३　दो यात्री
६२०　उपहार
६२१　जूं की खाल

६५०—६९९ अलौकिक शक्ति अथवा ज्ञान

६५०　बलवान जौह्न
६५२　राजकुमार, जिसकी इच्छाएँ सदैव ठीक उतरी
६५३　चार चतुर भाई
६५४　तीन भाई
६५५　आदमी जो चिडिया के समान उडा और मछली के समान तैरा
६७०　पशुओ की भाषाएँ
६७१　तीन भाषाएँ
६७२　सर्प का ताज
६७४　सफेद सर्प का माँस
६७५　सुस्त लडका
६७६　खुल जा सीसेम
६७७　लोहा सोने से अधिक मूल्यवान है

७००—७४९ अन्य अलौकिक कथाएँ

७००　टौम अँगूठाकार
७०५　मछली से पैदा
७०६　हाथ रहित कुमारी

७०७ तीन सुनहले लडके
७०८ आश्चर्यजनक वालक
७०९ वर्फ सा सफेद
७१० हमारी महिषी का वालक
७११ सुन्दर और वदसूरत जुडवाँ
७२० मेरी माँ ने मुझे मारा और वाप न खाया
७२५ स्वप्न
७३५ मालदार और गरीव की सम्पत्ति
७३६ भाग्य और धन

७५०—८४९ (ब) धार्मिक कहानिया

७५०अ इच्छाएँ
७५०ब सत्कार पुरस्कृत
७५१ लालची किसान
७५२अ (क्राइस्ट) ईसा और पीटर अन्न के कुठीले मे
७५२ब विस्मृत हवा
७५३ पाप और सम्मान
७५६ तीन हरी टहनियाँ
७५६अ स्वय न्यायपरायण साधु
७५६ब शैतान का ठेका
७५६स और भी वडा पापी
७५९ ईश्वरीय न्याय प्रतिष्ठित
७६१ निर्दय धनी शैतान के घोडे के रूप मे
७६५ वह माँ जो अपनी सन्तान को मारना चाहती है
७८० गाने वाली हड्डी
७८१ वह राजकुमारी जिसने अपने बच्चे को मार दिया
८०० स्वर्ग मे दरजी
८०२ किसान स्वर्ग में
८०३ सोलोमन शैतान को नरक मे जजीर से जकडता है
८०६ पीटर की माँ स्वर्ग से गिरती है
८१० एक दुष्ट का जाल
८१२ शैतान की पहेली
८१५ मृत मालदार आदमी और शैतान गिरजे मे
८२० फसल उसाहने के समय शैतान दैनिक श्रमिक के स्थानापन्न
८२१ वकील के रूप मे शैतान
८२२ सुस्त लडका और मेहनती लडकी

८२५ नूह की नाव में शैतान
८३० आत्म प्रशसक मृग-हत्यारा
८३१ बेईमान पुरोहित
८३२ निराश मछुआ
८३६ घमड को दड
८३७ दुष्ट स्वामी कैसे दडित हुआ
८४० मनुष्यो को दड
८४१ एक भिखारी ईश्वर पर विश्वास करता है, दूसरा राजा पर
८४४ भाग्य लाने वाली कमीज

८५०—९९९ रोमाटिक कहानियाँ

८५० राजकुमारी के जन्म-चिह्न
८५१ राजकुमारी जो पहेली को बुझा नही सकती
८५२ नायक जो राजकुमारी को यह कहने को बाध्य करता है कि "यह झूठ है"
८५३ राजकुमारी के अपने शब्दो से ही नायक उसे पकडता है
८५४ सुनहरी मेढा
८७० टीले में बन्द राजकुमारी
८७०अ छोटी हस-कन्या
८७५ चतुर कृषक बालिका
८८० अपनी पत्नी का प्रशसक मनुष्य
८८१ स्वामिभक्ति बार-बार परीक्षा में खरी उतरी
८८२ पत्नी के सतीत्व का दाँव
८८३अ निर्दोष बदनाम बालिका
८८३ब दडित छलिया
८८४ परित्यक्त वाग्दत्ता
८८८ पतिव्रता पत्नी
८९० एक पौंड माँस
८९२ बादशाह की सन्तान
९०१ खखा को वश करना
९१०अ अनुभव के द्वारा बुद्धिमान
९१०ब नौकर की नेक सलाह
९१०स किसी कार्य को करने से पहले भली प्रकार सोचो
९१०द फाँसी लगाने वाले पुरुष का खजाना
९२० राजा का बेटा और सुनार
९२१ राजा और कृषक का पुत्र

९२२ राजा के प्रश्नो का उत्तर पुरोहित का स्थानापन्न गडरिया देता है
९२३ नमक के समान प्रिय
९२३अ गर्म धूप में हवा के समान
९२७ न्यायाधीश को निरुत्तर करना
९३० भविष्यवाणी
९३१ ओडीपस (Oedıpus) (मातृ रति करने वाला)
९३५ उडाऊखाऊ की वापिसी
९४५ भाग्य और बुद्धि
९५१अ राजा और लुटेरा
९५१ब बैंक में डकैती
९५२ राजा और सिपाही
९५३ वृद्ध डकैत अपने तीन जोखिम के कार्यो का वर्णन करता है
९५४ चालीस चोर
९५५ डकैत दूल्हा
९५६अ डकैत के घर
९५६ब चालाक कन्या अकेले ही घर पर डकैत को मारती है
९६० सूर्य सबको प्रकाश में लाता है।

१०००—११९९ मूर्ख दाँने की कथाएँ

१०२९ श्रम का ठेका (क्रोध का सौदा)
१०३३ फसल का विभाजन
१०३७ दाँना सूअर को उधेडता है
१०४६ गोदाम को घसीट ले जाने की धमकी
१०४९ भारी कुल्हाडी
१०५३ जगली सूअरो को मारना
१०६० पत्थर को निचोडना
१०६१ पत्थर को काटना
१०६२ पत्थर को फेंकना
१०६३ सुनहरी गदाओ को फेंकने की प्रतियोगिता
१०७० कुश्ती प्रतियोगिता
१०७१ कुश्ती की प्रतियोगिता, बुड्ढी दादी के साथ
१०७२ दौड, छोटे लडके के साथ
१०७४ दौड, रिश्तेदार एक पंक्ति में
१०८८ खाने में होड (खाना थैलो में)
१०९७ वर्फ की चक्की
११३० वेतन गिनना (गड्ढे के ऊपर)

१९३१ दाँने के गले पर गर्म लपसी
११३३ दाँने को मजबूत बनाना
११३५ आँखो की दवा
११३७ दाँना अधा किया गया
११३८ दाढी पर मुलम्मा करना
११४६ चक्की के पाट (नायक की माँ के मोती)
११४७ भाई की गाडी के लुढकने पर मेघ-गर्जन
११४८ मेघ-गर्जन से दाँने को डर
११४९ बच्चे दाँने का माँस चाहते है
११५१ बन्दूक हुक्के की नली की तरह
११५९ दाँना खेल सीखना चाहता है
११६० दाँना भूत के किले मे
११६१ भालू का प्रशिक्षक और उसका भालू
११६४ दुष्ट स्त्री को गड्ढे मे फेंक दिया गया
११७० दुष्ट औरत, काँच की पेटी मे अंतिम वस्तु के रूप मे

११७१—१२०० दानव के सौदे में असम्भव शर्तें

११८१ शरीर से लकडी
११८२ सतही माप (बुशल)
११८४ आखिरी पत्ती
११८५ पहली फसल
११९५ अपने सम्पूर्ण दिल के साथ
११९९ ईश्वर की प्रार्थना

मजाक और चुटकुले

१२००—१३४९ मूढ की कहानियाँ

१२००. नमक को बोना
१२१० गाय को चरने के लिए छत पर ले जाया गया
१२२१ कृपक औरत सोचती है कि जुगाली करने वाली गाय उसकी हँसी उडा रही है
१२४० मनुष्य जिस डाली पर बैठा है उसी को काटता है
१२५० कुएँ से पानी लाना
१२७८ घण्टी समुद्र मे गिर जाती है (नाव के डडे पर बना हुआ चिह्न)
१२८७ मूढ लोग अपनी ही गिनती नही कर पाते
१२८८ मूढ लोगो को अपनी टाँगें ही नहीं मिलती
१२९० ऋाई मछली दर्जी के रूप में

१३१३ अपने को मरा समझने वाला मनुष्य
१३१९ काशीफल गधे के अण्डे के रूप मे वेचा गया

१३५०—१४३९ विवाहित जोडो की कहानियाँ

१३५० प्यार करने वाली पत्नी
१३५१ देखें कौन पहले बोले
१३६०ब औरत और उसके प्रेमी की अश्वशाला से उडान
१३६५ जिद्दी पत्नी
१३८० अविश्वसनीय पत्नी
१३८१ खोजा हुआ खजाना और वातून पत्नी
१३८२ बाजार मे कृषक औरत
१३८३ औरत जिसे अपना ही पता नही
१३८४ अपनी पत्नी के समान ही दुष्ट तीन व्यक्तियो का पीछा पति करता है
१३८५ वेवकूफ पत्नी का न्याय
१३८६ बन्दगोभी की जगह खाने के लिए गोश्त
१३८७ औरत शराब लेने जाती है
१४०५ सुस्त कातने वाली औरत
१४०६ प्रमुदित पत्नियो के दाँव
१४०८ वह पुरुष जो अपनी पत्नी का कार्य करता है
१४१५ भाग्यशाली
१४३० मनुष्य और उसकी पत्नी हवा मे महल बनाते हैं

१४४०—१५२४ औरत (लडकी) सम्बन्धी कहानियाँ

१४५० चालाक एलिसी
१४५१ मितव्ययी लडकियाँ
१४५२ युवक तीन बहनो मे से किसे चुने
१४५३ सुस्त वाग्दत्ता
१४५७ तुतलाती कन्या
१४५८ लडकी जिसने इतना थोडा खाया
१४६१ भद्दे नाम वाली लडकी
१४६२ अनिच्छुक प्रणयार्थी को वृक्ष से परामर्श

१५२५—१८७४ मनुष्य (लडके) सम्बन्धी कहानियाँ

१५२५ चोर शिरोमणि
१५२८ टोप उतारना
१५२९ कृपक घोडे को स्थानापन्न करके यहूदी को धोखा देता है

१५३० शिला (चट्टान) को ऊपर उठाना
१५३५ मालदार और गरीब कृषक
१५३६अ पिटारे मे औरत
१५३६ब तीन कुबडे भाई डूबे
१५३६स कत्ल हुआ प्रेमी
१५३७ शव जो पाँच बार मारा गया
१५३८ बैल के सौदे मे युवक को ठगा गया
१५३९ चतुरता तथा सहज ही ठगाई मे आने वाला
१५४० स्वर्ग से विद्यार्थी
१५४१ लम्बे जाडो के लिए
१५४२ चालाक लडका
१५४४ मनुष्य जिसे रात मे ठहरने को स्थान मिला
१५६१ सुस्त लडका जो नाश्ता करता है
१५६३ दाँनो
१५७५ चालाक गडरिया घर पर खराब खाना
१५८६ न्यायालय मे मक्खी मारने वाले आदमी की पेशी
१६०० कातिल के रूप मे बेवकूफ
१६१० पुरस्कार और कोडो की बाँट
१६११ मस्तूल पर चढने की होड
१६१२ तैरने मे होड
१६४० बहादुर दर्जी
१६४१ डाक्टर सर्वज्ञ
१६४२ अच्छा सौदा
१६५० तीन भाग्यवान भाई
१६५२ अस्तबल मे भेडिये
१६५३ पेड के नीचे डाकू
१६५४ मृत्यु-गृह मे डाकू
१६५५ लाभदायक अदल-बदल
१६७५ नगर-अध्यक्ष के रूप मे बैल
१६८० दायी की खोज मे लगा हुआ मनुष्य अकस्मात कुत्ते (आदि) को मार देता है
१६८१ लडके का सर्वनाश
१६८५ मूर्ख दूल्हा
१६९६ मुझे क्या कहना (करना) चाहिए था
१६९८ बहरे आदमी और उनके मूर्खतापूर्ण उत्तर

१७२५ वेवकूफ पुरोहित तने मे
१७३० पुरोहित (पादरी), गिरजे का कब्र खोदने वाला अधिकारी, आदि, एक सुन्दर स्त्री को देखने जाते है
१७३१ युवक और मनोहर जूते
१७३५ जो अपना सामान देता है वह उसका दस गुना पायेगा
१७३६ कृपण पादरी
१७३७ पादरी वोरे मे वन्द हो स्वग को जाता है
१७३६ पादरी और वछडा
१७४२ पुरोहित का महमान और खाई हुई मुर्गियाँ
१७५० पुरोहित की नासमझ पत्नी
१७७५ भूखा पुरोहित
१७७६ गिरजे का अध्यक्ष बनती शराव की नाँद मे गिरता है
१७८५ उपदेश देते हुए पुरोहित को भगा दिया
१७८६ पुरोहित वैल पर गिरजे मे
१८२४ पुरोहित के रूप मे कृषक
१८३३ लडका उपदेश के अनुसार आचरण करता है
१८३८ गिरजे मे सूअर
१८४० कब्र के आशीर्वाद पर पुरोहित का वैल रस्सी तुडाकर भाग जाता है

१८७५—१९९९ झूठ वोलने की कथाएँ (गप्प)

१८७५ भेडिये की पूँछ पर लडका
१८८० लडके के पास मक्खन का टोप
१८८२ गुब्बारे से घिरा हुआ आदमी

शिकार की कहानियाँ

१९२० गप्पो मे होड
१९४० असाधारण नाम
१९५० तीन आलसी
१९६० वडा जानवर या वडा पदार्थ

गुर (फार्मूला) की कहानियाँ

२०००—२१९९ क्रम सम्बन्धित कहानियाँ

२२०० तुक की कहानियाँ
२२५० अपूर्ण कहानियाँ
२३०० समाप्त न होने वाली कहानियाँ

२४००—२४९९ अवर्गीकृत कथाएँ

२४०० पृथ्वी घोडे की खाल से नापी जाती है

ऊपर कथा मानक-रूपो की जो सूची दी गयी है, वह आर्ने-थामसन द्वारा प्रस्तुत कथामानको के वर्गीकरण पर भी प्रकाश डालती है। १ से लेकर २४९९ प्रकार के मानको को यहाँ एक क्रम देकर वर्गों मे बाँट दिया गया है। प्रत्येक वर्ग का शीर्षक उस वर्ग की कहानियो के प्रमुख तत्त्व को अभिहित करता है। इन मानको मे दशमलव विन्दु देकर आगे की सख्या से और भी वृद्धि की जा सकती है, और नये मानको को भी स्थान मिल सकता है, जैसे आगे अभिप्रायानुक्रमणिका मे भी है। यहाँ यह छँटी हुई कथा-मानक सूची केवल आर्ने-थामसन की कथा-मानक विषयक प्रणाली का दिग्दर्शन कराने मात्र के लिए दी गयी है। भारत की कहानियो के लिखित और मौखिक रूपो के अथाह सागर के वृहत सग्रह के उपरान्त भारत के विद्वानो के द्वारा जो वर्गीकरण और अनुक्रम निर्धारित किया जायगा, वह इसे एक वास्तविक पूर्णता दे सकेगा। यह वात द्रष्टव्य है कि कथा मानको का उक्त विधान कहानियो के 'अक्षर रूप' के निकट पहुँचता प्रतीत होता है, और कही-कही तो मात्र अभिप्राय या कथानक रूढि-सा ही लगता है। ऐसा उन कहानियो के मानक रूपो मे हुआ है जो प्राय एक ही अभिप्राय की वनी हुई हैं।

आर्ने-थामसन के इन कथा मानक-रूपो की सख्या की तुलना वर्न की सख्या से करने पर यह विदित हो जाता है कि इस क्षेत्र मे तव से अव तक कितनी प्रगति हुई है तथा यह भी विदित होता है कि इन दोनो महानुभावो ने इस विषय को वैज्ञानिक पद्धति प्रदान करने और वर्गीकरण की प्रणाली देने का कितना महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पादित किया है। किन्तु इतना परिश्रम करने के उपरान्त थामसन महोदय इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि यह कथा मानक-रूपो की पद्धति कहानियाँ तथा लोकवार्ता के अध्ययन मे पूरी तरह उपयोगी नही हो सकती। लोकवार्ताकार को तो अखिल विश्व के लोक का अध्ययन करना होता है। आगे स्टिथ थामसन, इस निष्कर्ष पर भी पहुँचे कि 'कथा मानक-रूप' मे अक्षर कहानियो को प्रस्तुत करने पर भी यह नही कहा जा सकता कि 'अक्षर कहानी' ही लोक-कथा के निर्माण की मूल इकाई है। यह लोक-कथा तो और भी छोटे-छोटे अशो की वनी हुई है, जिन्हें मोटिफ, अभिप्राय, कथानक-रूढि या कथा-कला-तन्तु कह सकते हैं। ये मोटिफ कहानी रूपी वाक्य के शब्द, रूप हैं, जिनसे वाक्य रूपी अक्षर-कहानी वनती है। इन मोटिफो से समस्त दिशा के प्रत्येक क्षेत्र के लोक-कथा-तत्त्वो को अध्ययन का विषय वनाया जा सकता है। इस प्रकार कथाभिप्रायो के महत्त्व को वर्तमान युग मे पुन प्रतिपादित किया गया है, और कहानी के अध्ययन के लिए अभिप्रायानुक्रमणिका प्रस्तुत की गयी है।

कथा-चक्र

लोक-कहानियों के अध्ययन की एक पद्धति वह भी थी जिसमे कहानियो को उनके अपने 'चक्रो' (cycles) में वाँटकर रखा जाता था और उस चक्र की विशेषताओ का अध्ययन किया जाता था। टेम्पल महोदय ने 'द लीजेण्ड्स ऑव

पजाव' मे अपने सग्रह की कहानियो का वर्गीकरण करते हुए इस प्रकार के पाँच 'चक्र' माने थे

१ शूरवीर वर्ग (Heroic class)—अर्थात रसालू चक्र—उदाहरणार्थ राजा रसालू राजकुमारी अधिक अनूपदेई और सीलादेई की कहानियाँ ।

२ पाण्डव-चक्र—सफीदोन का अवदान, राजकुमारी निवलदेई की कहानियाँ ।

३ मिश्र चक्र—शूरवीर तथा सत-पीरो के वर्ग की कहानियाँ जैसे गुरु गुग्गा की, जो वीर भी था तथा संत-पीर भी था ।

४ सत-पीरो का वर्ग ।

५ सखी सरवर चक्र ।

किन्तु यह चक्र का चक्र स्थानीय ही रहा, और १९वी शताब्दी से आगे नही बढा । क्योकि कथा मानक-रूप की वैज्ञानिक उपयोगिता ने लोकवार्ता विद्वानो को आकृष्ट कर लिया ।

यहाँ यह बात भी ध्यान मे रखने की है कि विद्वानो के कैसे ही मतवाद क्यो न हो कथा मानक-रूपो के अध्ययन का अपना महत्त्व है । जिस प्रकार कि 'वाक्य' का विन्यास ही भाषा विपयक प्रतिभा को प्रकट करता है, उसी प्रकार किसी जन की प्रतिभा 'कहानी' के कहानी-रूप मे ही प्रतिभासित होती है । कथामानको से किसी जन-जाति के लोक-मानस की प्रक्रिया का रूप हम जान सकते है । 'चक्र' के रूप में एक साभिप्राय वर्गीकरण का साधन हमे मिलता है जिससे कहानियो के पारस्परिक रिश्तों को जाना जा सकता है ।

नवाँ अध्याय

अभिप्राय-अध्ययन का इतिहास

लोक-कथा के मूल तत्त्व विशेषत अभिप्राय

[लेखिका—डा० सावित्री सरीन, एम० ए०, डी० फिल०]

लोक-कथा के पक्ष

अब लोक-कथा के तत्त्वो का अनुसन्धान भी लोकवार्ता के उद्भव के इन तमाम क्षेत्रो मे किया जा सकता है।

लोक-कथा के भी दो पक्ष हैं। आन्तरिक एव वाह्य अर्थात भाव और शैली। प्रत्येक लोक-कथा मे कुछ न कुछ कहा जाता है और ढग से कहा जाता है। क्या कुछ कहा जाता है, इसका उत्तर हमे मनोविज्ञान, नृविज्ञान, नृतत्व विज्ञान, सामाजिक मनोविज्ञान मे मिलता है।

मानव प्रागैतिहासिक काल मे प्रकृति के सम्पर्क मे आया। उसके कई स्वरूप उसके सामने आये। उसके हृदय मे कई प्रकार की भावनाएँ उपजी। वह उनको अभिव्यक्त करने के लिए आकुल हो उठा। फलस्वरूप हमे लोक-कथाओ के आदि रूप और उनके साथ ही धर्मगाथाओ (Myths) की प्राप्ति हुई। वह उसकी प्राथमिक भावनाओ की अभिव्यक्ति थी।

मानव की सामाजिक प्रवृत्ति ने उसे मिलकर रहने को वाध्य किया। एक समाज बनाकर रहने से नाना प्रकार के प्रश्न उत्पन्न हो गये। वैयक्तिकता का बलिदान समाज के हेतु करना आवश्यक हो गया। बडे-छोटे का परस्पर व्यवहार नियमबद्ध हो गया। शासन का प्रतिबन्ध लगाया गया। फलस्वरूप मैलोनाव्की के नृतत्व विज्ञान मे वर्णित कथाओ का आविर्भाव हुआ। अब कथाएँ समाज की वागडोर भी सँभाले हुए थी। कथाओ मे उन सभी भावनाओ और विषयो का समावेश करना आवश्यक हो गया जिनके द्वारा समाज का सचालन सुचारु रूप से किया जा सके।

नृतत्व विज्ञान, नृविज्ञान एव मनोविज्ञान से यह पता चलता है कि मानव यद्यपि आदिकाल मे धर्म नामक वस्तु से अभिज्ञ नही होता पर तब भी कई प्रकार के देवी-देवताओ (कल्याणकारी एव अकल्याणकारी) की पूजा-उपासना अथवा केवल स्तुति करना प्रारम्भ कर देता है। मैक्डूगल भी लिखते हैं कि हम सब मे आदिम विश्वास एक मात्रा तक वर्तमान रहते हैं—इसीलिए वह सूर्य, वायु, नदी आदि का मानवीकरण कर लेता है, यही जड है आदिम प्राकृतिक पदार्थो के मानवीकरण की।

इसके बाद, आगे चलकर हमारी कल्पना के उच्चतर स्तर पर जो प्रतिष्ठित होता है और हम जिसे अत्यन्त चाहते है उसमे विश्वास करने लगते हैं—अर्थात स्वर्ग मे विश्वास करने लगते हैं और इसी प्रकार जिससे डरते है—अर्थात् नरक मे भी विश्वास करने लगते हैं। यही विश्वासो एव धार्मिक विश्वासो का आधारभूत कारण है। मानव की धार्मिक चेतना का विकास जैसे ही उत्तरोत्तर होता जाता है, वैसे ही लोक-कथाएँ भी धार्मिक कथाएँ, धर्मगाथाएँ, दृष्टात कथाएँ बनती चली जाती हैं। अब लोक-कथाओ की विपय सामग्री और भी प्रचुर होती जाती है। रूथ बैनेडिक्ट भी कहती हैं कि वह सार्वभौमिक व एक सीमा तक सार्वभौमिक मानव-समाज की विशेषताएँ • इनमे से प्रकृति का मानवीकरण, विवाह, आदि पर प्रतिवन्ध पर सभी एकमत हैं और कई प्रश्न उठते गये हैं। किंचल यग भी कहते है कि हम अपने साथियो के साथ व्यवहार करते हैं उन विचारो के आधार पर जो कि विचार-शास्त्र और कल्पना के मेल से उपलब्ध हुए है, जिनमे हमारे सामाजिक सास्कृतिक मेल की आवश्यकताएँ एव मूल्य अभिव्यक्त हुए हैं।

लोक-कथाओ के आन्तरिक पक्ष के परम्परागत स्वरूप के कारण लोक-कथा मे मानव के प्रागैतिहासिक विश्वास के फलस्वरूप देवी, देवता, राक्षस, इत्यादि की उपलब्धि स्वय-सिद्ध है। नृतत्व-विज्ञान एव सामाजिक मनोविज्ञान इसके साक्षी हैं। और फिर विश्वास करने की इच्छा इतनी अधिक होती है कि अस्पष्ट कल्पनातीत वस्तु भी सत्य मानी जाती है। इसी विश्वास-मनोविज्ञान[1] (Psychology of Faith) द्वारा आज के वैज्ञानिक युग मे भी राक्षस, परी, अप्सरा का अस्तित्व है।

लोक-कथाओ मे नृतत्वविज्ञान के अनुसार मानव के आदिम नीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र और न्यायशास्त्र की झलक पायी जाती है। भिल्डरेड आर्चर भी कहती हैं कि "वे (लोक-कथाए) जातीय ज्ञान को सुरक्षित रखती हैं तथा जातीय रीति-रिवाज को व्यवहार योग्य ठहराती हैं। वे स्तर और मूल्य निर्धारित करती है और आत्म-विश्वास भरती हैं। लोक-कथाएँ शक्ति का भण्डार हैं जिनसे कि जातीय जीवन सशक्त रहता है।"

लोक-कथाओ मे देवी-देवताओ, राक्षसो, दानवो के अस्तित्व के कारण का अनुसन्धान तो हो चुका है, उसमे बहुत बडा हाथ मानव की विश्वास-प्रवृत्ति का है जो मनोविज्ञान, सामाजिक मनोविज्ञान और नृतत्वविज्ञान द्वारा सिद्ध है।

यही उन "जादू की वस्तुओ" का भी उल्लेख किया जाना आवश्यक है जिनसे लोक-कथाएँ एक सीमा तक सवत्र आच्छादित पायी जाती हैं। इसका मूल भी आदिम मानव के वे रीति-रिवाज (Traditional Customs) है जिनमे मन्त्र, जन्त्र आदि टोटको का समावेश होता है। धम के उच्च स्तर पर पहुँचकर यह सब धार्मिक नेताओ के अनोखे कार्यो मे परिवर्तित हो जाते हैं। मुसलमान पीरो के करिश्मे और

---

[1] इसका मूल लोक-मानस ही है।

और हिन्दू साधु फकीरो के आश्चर्यजनक कार्य सब टोटको (magic) के सुसस्कृत स्वरूप है।

यहाँ मानव का 'अपूर्व' विश्वास और उसकी 'कल्पनातीत ससार' मे विचरण करने की प्रवृत्ति कार्य करती है। मानव जब अपने कार्य-क्षेत्र मे बाधा पाता है और किसी प्रकार भी वास्तविक कठिनाइयो से छुटकारा नही प्राप्त कर सकता, तब वह इस प्रकार की कल्पना की उडानें भरने लगता है। मानव की एक विशेष प्रवृत्ति है ऊपर उठने की। वह सब बाधाओ को भौतिक और मानसिक रूप से विजित देखना चाहता है। आज के विज्ञान के युग और उसके मानव पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है। यदि ऐसा कहा जाय कि मानव के इसी कल्पनाशील मस्तिष्क द्वारा विज्ञान के आश्चर्यजनक अन्वेषणो का आविर्भाव हुआ तो अनुचित नही और फिर लोक-कथाओ के उडने वाले घोडे आदि भी अनुचित नही। मानव का कल्पनाशील मस्तिष्क लोक-कथाओ मे आने वाले जादू के घोडो का निर्माण करता ही रहेगा। यह मनोविज्ञान द्वारा प्रमाणित हो चुका है।

मानव यदि प्रत्यक्ष कुछ करने मे असमर्थ है तो ईश्वर प्रदत्त वरदान रूप कल्पना द्वारा वह सब कुछ सम्पन्न कर सन्तोष लाभ करता है। इस प्रकार की कल्पना का मानव के लिए एक विशेष महत्त्व है और जब तक इस प्रकार की कल्पना का मानव मे अस्तित्व है जो अक्षुण्ण है तब तक लोक-कथाओ के जादू, जादूगरी भरी वस्तुओ का भी अस्तित्व अक्षुण्ण है।

देखा गया है कि 'शक्ति पूजा', 'वीर भावना', 'वीर पूजा' के हेतु भी इस प्रकार की कल्पनामयी घटनाओ का नायक के जीवन मे समावेश किया जाता है। धार्मिक गायको को अवतार बनाने के लिए नाना प्रकार की आश्चर्यजनक घटनाओ को उनके साथ जोड दिया जाता है। भारतीय इतिहास आदिकाल से आधुनिक काल तक उसका ज्वलन्त उदाहरण है। भारतीय धर्म सुधारको और नेताओ के जीवन से जुडी हुई अनेकश किंवदतियाँ मानव की इस प्रवृत्ति का उदाहरण है। रामकृष्ण परमहस, महात्मा गाधी आदि के साथ अभी से ही कई प्रकार की असम्भाव्य घटनाओ को जोड दिया गया है जिन्हे जादू का सुसस्कृत रूप माना जायगा। जैसे कि परमहस के सामने बैठने से चार दिन तक भूख नही लगती थी। यह जादू की पेट भरने वाली चोटी का सुसस्कृत रूप नही तो क्या है ! पुनश्च जब कभी भी सक्रमण-काल होता है अथवा बाधाओ से मानव हार बैठता है तब वह नाना प्रकार की कल्पनामय, असम्भाव्य घटनाओ से युक्त लोक-कथाओ को जन्म देता है। किम्बल यग भी कहते हैं कि सर्वाधिक अर्थमय अवदान और हमारे भौतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक ससार के आये दिन के प्रश्नो के रूप व्यवहारो के फलस्वरूप निर्मित होती है। वासुदेवशरण अग्रवाल भी कहते हैं कि मानव के सुख, दु ख, प्रीति, शृगार, वीर भाव और बैर इन सबने खाद बनकर लोक-कथाओ को पुष्ट किया है। रहन-सहन, रीति-रिवाज, धार्मिक विश्वास, पूजा-उपासना इन सबसे कहानी का ठाठ बनता और बदलता रहता है।

लोक-कथा और मनोविज्ञान

लोक-कथाओ द्वारा मानव का सम्पूर्ण जीवन आच्छादित है इसीलिए हमे जीवन के सभी क्षेत्रो की भावनाओ की अभिव्यक्ति उसमे उपलब्ध होती है। लोक-कथा का मनोरजनात्मक तत्त्व, कल्पनात्मक तत्त्व (जादू की करामातें) मनोविज्ञान की देन हैं। उसमे पायी जाने वाली परम्परा की धारा की झलक के रूप मे सस्कृति एव सभ्यता के क्षेत्र मे, लोक-कथा की महत्ता है। नीतिशास्त्र एव धार्मिक क्षेत्र मे उसका महत्त्व, नृतत्व विज्ञान एव नृविज्ञान द्वारा प्रमाणित हो चुका है। इसी के फलस्वरूप कथाओ मे देवी-देवताओ, राक्षसो, दानवो आदि का एक विशेष स्थान है जो मानव के आदिम विश्वास, मनोविज्ञान (Psychology), कल्पना (Fantacy) और परम्परा (Tradition) के वरदान रूप वर्तमान है।

लोक-कथा में परम्परा

यहाँ लोक-कथा मे परम्परा का क्या स्थान है इसके विषय मे प्रचलित एक भ्रममूलक धारणा का निराकरण करना समुचित है। कई एक नृतत्वविज्ञान शास्त्री एण्ड्रू लैंग (Andrew Lung) आदि लोक-कथा को केवल परम्परागत ही मानते है। वह इसे अवशेष (सस्कृति) कहकर वर्तमान काल मे उसका कुछ अस्तित्व ही स्वीकार नही करते हैं जैसे कि उनके पूर्वोक्त उद्धरण द्वारा व्यक्त होता है पर यह विचार अब ग्राह्य नही। सोलोकोव इसी को लक्ष्य कर लिखते हैं कि "कई एक अन्वेषको ने लोक-वार्ता का अस्तित्व मात्र सास्कृतिक अवशेषो तक ही सीमित कर दिया है।" यह ठीक नही जँचता क्योकि यद्यपि सामग्री और शैली में प्राचीन सस्कृति के अवशेषो का अस्तित्व है मानव समाज के जीवन और कार्यों में कोई ऐसा अनुभव नही है जिसमे प्राचीन सस्कृति के स्तरो की झलक न हो यह तो लोकवार्ता-विज्ञान के कार्यो का समुचित विरोधाभास होगा 'पर, लोकवार्ता भूतकाल की प्रति-ध्वनि होने के साथ-साथ वतमान की दृढ आवाज भी है। बौडिग भी कहते हैं कि लोकवार्ता मे भी, सभ्यता की नयी उपलब्ध जायदाद पैतृक होने के साथ-साथ (स्वनिर्मित) अपने आप बनायी गयी भी होती है। इसी भ्रम के निवारणार्थ डा० सत्येन्द्र ने अपने ब्रजलोक साहित्य के अध्ययन मे लोक कला की मर्यादाओ को निर्धारण करना आवश्यक समझा। लोक-साहित्य के अध्ययन मे प्रथम मर्यादा को वे लोक-मानस की युगीन स्थिति का अद्यतन रूप मानते हैं। लोक मानस दो अवस्थाओं से सदा सम्पन्न रहता है, एक लोक-जीवन की दीर्घ परम्परा की मनोभावना है। इसमे हमे उत्तराधिकृत मनोविज्ञान की सामग्री मिलती है। दूसरा लोक-जीवन मे व्याप्त सामाजिक सामूहिक भावना। पहली मनोवस्था युगीन स्थिति को प्रकट करती है और दूसरी अवस्था का मूल विन्दु होती है। यह लोक-मानस की अद्यतन स्थिति प्रकट करती है।[1]

---

[1] ब्रज लोक-साहित्य का अध्ययन, पृष्ठ ४४५।

लोक-कथा मे पाये जाने वाले तत्त्वो और उनके कारणो के अनुसन्धान के उपरान्त, उसका आधुनिक काल मे किया गया वैज्ञानिक अध्ययन किस मात्रा तक और किस प्रकार किया गया है, यह स्पष्ट करना आवश्यक हो जाता है।

कथा-तत्त्व

कथा शब्द का इतिहास अधिकाशत भाषा की दृष्टि से 'कथ' अर्थात कहने की धातु से सम्बद्ध है। कथाकार ने किसी वस्तु एव भाव को अपनी कथा का विषय बनाया और फिर उसने किसी ढग से उसको कहा। आधुनिक लोकवार्ता वैज्ञानिक लोक-कथा के इन्ही दो पक्षो को उसके सारभूत तत्त्व मानते हैं। कथा का भाव पक्ष अथवा कथानक क्या है और उसकी शैली क्या है ?

लोक-कथा मे कथानक एव भावतत्त्व अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। लोक-कथा का परम्परागत रूप भी उसके कथानक मे ही अधिक सुरक्षित है। यदि यह कहा जाय कि लोक-कथा की जितनी भी विशेषताएँ हैं वे अधिकाशत कथानक मे ही व्यक्त हुई हैं तो अत्युक्ति न होगी। लोक-कथा की मनोवैज्ञानिकता, नैतिकता और धार्मिकता आदि इसी कथानक द्वारा ही अभिव्यक्त की जाती रही है। लोक-कथा के वैज्ञानिक अध्येताओ ने कथानक की इसी विशेषता को लक्ष्य कर, अपने अध्ययन का विषय इसी को विशेषत बनाया और शैली को गौण स्थान दिया। स्टिथ थामसन भी कहते है कि ऐतिहासिक भौगोलिक सम्प्रदाय का अध्ययन कथाओ की सामग्री की ओर विशेषत झुका हुआ रहता है। इन खोजो के परिणाम यह बताते हैं कि यद्यपि शैली बदलती रहती है कथा का कथानक स्थिर-सा रहता है। यहाँ हमे कथानक के उस तत्त्व का परिचय प्राप्त होता है जो स्थिर रहता है और जिसे अभिप्राय का नाम दिया गया है। श्यामाचरण दुबे ने उसे 'मूल भाव' माना है और हजारी प्रसाद द्विवेदी उसे कथानक रूढि शब्द से अभिहित करते हैं। कृष्णानन्द गुप्त उसको 'कथानक का मूल लक्षण' एव 'मुख्य लक्षण' कहकर परिचय देते हैं।

लोक-कथा के अध्ययन का आरम्भ

लोक-कथा मे वैज्ञानिक अध्ययन का सूत्रपात तुलनात्मक अध्ययन से हुआ। जब बहुत-सी कथाओ का संग्रह हो गया तो उन कथाओ की परस्पर तुलना की गयी। ग्रिम बन्धु और उनके बाद मे आने वाले विद्वानो के लोक-कथा अध्ययन की नीव भाषा-विज्ञान के तुलनात्मक अध्ययन पर रखी गयी थी। क्योकि तब तक लोक-कथा का अपना निज का क्षेत्र अत्यन्त सीमित था। उधर नये-नये समाजो के प्रकाश मे आने पर विद्वानो की दृष्टि नृतत्व विज्ञान और नृविज्ञान के क्षेत्र मे उपलब्ध लोक-कथाओ पर भी गयी। परिणामस्वरूप हमे वैज्ञानिक अध्ययन के दो स्कूल एव मत प्राप्त हुए जिसका नाम भाषा-वैज्ञानिक (Philological Mythological) स्कूल और नृतत्व वैज्ञानिक (Anthropological) स्कूल पडा और इनके प्रतिपाद्य विषय क्रमश धर्म-गाथाएँ (Myths) और नैतिक मनोरजनात्मक गाथाएँ भी थीं। दोनो की अध्ययन प्रणाली अपने-अपने विज्ञान के ढगो से पूर्णत ग्रसित थी।

वैज्ञानिक अध्ययन

सर्वप्रथम कोहृन के शिष्य आर्ने ने लोक-कथा का अध्ययन एक प्रधान विज्ञान के रूप मे किया। उसने सगृहीत कथाओ के तुलनात्मक अध्ययन के परिणामस्वरूप एक प्रकारो या मानक (types) का कोप तैयार किया। प्रकार या मानक की परिभाषा देते हुए आर्ने की परम्परा के डा० स्टिथ थामसन लिखते हैं कि प्रकार या मानक (type) वह परम्परा प्राप्त कथा है जिसका स्वतन्त्र अस्तित्व है। यह एक पूर्ण कथा के रूप मे कही जा सकती है और अन्य किसी कथा के साथ बतायी जा सकती है। पर यह बात कि यह स्वतन्त्र रूप से उपस्थित रहती है इसकी स्वतन्त्रता को सिद्ध करती है। इसमे एक या एक से अधिक अभिप्राय पाये जा सकते है। बहुत-सी पशु कथाएँ और चुटकुले और सक्षिप्त कथाएँ (anecdote) एक अभिप्रायी कथा के उदाहरण हैं और साधारण कथाएँ कई अभिप्राय युक्त कथाओ के उदाहरण है।

कथा मानक-रूप अथवा प्रकार विषयक

थामसन यहाँ प्रकार या मानक का वैज्ञानिक अध्ययन मे क्या स्थान और अर्थ है आवश्यकता से अधिक मात्रा मे बता गये है। इस प्रकार बहुत-सी कथाओ के तुलनात्मक अध्ययन के परिणामस्वरूप कथाओ के कुछ 'प्रकार' या मानक निर्धारित कर दिये गये और कथाओ का अध्ययन उन्ही के अनुकूल प्रारम्भ हो गया। प्रकार निर्धारित करने हेतु आर्ने ने कथाओ को उनमे आने वाली घटनाओ मे विभाजित किया। उदाहरणार्थ क्यूपिड और साइक टाइप।

१ सुन्दरी लडकी का अतिमानवीय प्रेमी।
२ रात्रि मे पुरुष रूप प्रकट होता है और देखने के लिए मना करता है।
३ वह आज्ञा नही मानती और उसे खो देती है।
४ वह खोजने निकलती है और कठिन कार्य करती है।

यही घटनाएँ आगे चलकर अभिप्राय या मोटिफ (motif) के रूप मे लोक-कथा के अध्ययन मे प्रसिद्ध हुई। 'प्रकार' या मानक प्रणाली से किसी एक प्रदेश की कथाओ का अध्ययन सुलभ हुआ जहाँ सस्कृति एव विचारो की एकता पायी गयी। जहाँ सस्कृति भिन्न है वहाँ प्रकार प्रणाली उतनी सफल न हो सकी। उदाहरणार्थ भारत मे क्यूपिड और साइक के प्रकार की पुरुरवा और उर्वशी की कथा मे पत्नी अतिमानवीय जाति की है। इसलिए प्रकार मे जिन घटनाओ का उल्लेख है उन्ही का एक मूल-भाव इस प्रकार के तुलनात्मक अध्ययन का आधार बन सकता है। अत एकदेशीय कथाओ के अध्ययन के लिए प्रकार या मानक प्रणाली से काम चल सकता है पर सार्वदेशीय और ससार भर की कथाओं के अध्ययन का आधार अभिप्राय या मूल भावों की प्रणाली ही हो सकती है। स्टिथ थामसन भी कहते हैं कि प्रकार या मानक सूची एक प्रदेश की परम्परित कथाओ के अध्ययन का आधार बन सकती है। इससे जन्मगत मूल से सम्बन्धित विभिन्न रूपान्तरो का पता चलता है क्योकि कथाओ का

भण्डार एक ही है। पर अभिप्राय सूची समता प्रदर्शित करती है ससार भर के तत्त्वो की।

अभिप्राय

मोटिफ या अभिप्राय प्रकार या मानक प्रणाली का स्वाभाविक परिणाम है। स्टिथ थामसन ने आर्ने के प्रकार कोप का एक परिवर्द्धित सस्करण निकाला और फिर वही अभिप्राय प्रणाली के अध्ययन मे जुट गये और कई वर्षो के परिणाम के फलस्वरूप उनके अभिप्राय कोष का प्रथम सस्करण सन् १९३५ मे प्रकाशित हुआ। यह कोष, विश्वभर की लाककथाओ के अपूर्व समतामय मूल भावो का सग्रह, इस कोष का जन्मदाता बना। अव इसी कोष का नूतन तथा और अधिक परिवर्द्धित सस्करण प्रकाशित किया गया है।

अव अभिप्राय का थामसन के शब्दो मे क्या अभिप्राय है यह वताना अभीष्ट है। आपके विचार मे अभिप्राय कथा का लघुतम तत्त्व है जो परम्परा मे स्थिर रूप से रहने की शक्ति रखता है। इस प्रकार की शक्ति रखने के लिए उसमे कुछ असाधारणता और अपूर्वता होनी चाहिए। अभिप्राय कथानक के निर्माण तत्त्व हैं।

इससे हमे पता चलता है कि कथानक का मूल तत्त्व अभिप्राय ही है और लोक-कथाओ के अध्ययन मे वह विशद् स्थान रखता है। लोक-कथा का परम्परागत रूप, सास्कृतिक रूप, मनोवैज्ञानिक रूप, नैतिक रूप और परिभ्रमणकारी रूप अभिप्राय ही परिलक्षित होता है। ससार भर की लोक-कथाओ की एकता इसी के द्वारा अभिव्यक्त की गयी है।

अभिप्रायो का वर्गीकरण करते हुए स्टिथ थामसन लिखते हैं कि अधिकाशत अभिप्राय तीन श्रेणियो मे विभाजित किये जा सकते हैं। प्रथम—कर्ता-कथाओ मे देवता, असाधारण पशु, आश्चर्यजनक प्राणी, जैसे चुडैल, राक्षस, अप्सरा, और परम्परित मानव चरित्र जैसे प्रिय सबसे छोटा बच्चा या क्रूर सौतेली माँ। द्वितीय—कुछेक ऐसी वस्तुएँ जो कथा-व्यापार मे काम आने वाली होती हैं। जादू की वस्तुएँ, असाधारण रिवाज, अनोखे विश्वास। तृतीय स्थान कुछ एक घटनाओ का है—जिनमे बहुत-से अभिप्राय आ जाते हैं। उपर्युक्त वर्गीकरण से पता चलता है कि अभिप्राय कथानक के सभी अगो को अपने में समेटे हुए है क्योकि कथानक 'घटना, चरित्र और कार्य के मेल' से वनता है। 'अभिप्राय' घटना के भी हो सकते हैं, चरित्र के भी और कार्य के भी। अभिप्राय कथानक का लोक-कथात्मक रूप है और इसीलिए जिस प्रकार कथानक के विना कथा का अस्तित्व नही, उसी प्रकार प्रत्येक लोक-कथा मे किसी न किसी प्रकार का एक या अधिक अभिप्राय उपस्थित रहता है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल भी कहते हैं—"कहानियो के लिए 'अभिप्रायो' का वैसा ही महत्त्व है जैसा किसी भवन के लिए ईंट-गारे का, अथवा किसी मन्दिर के लिए नाना भाँति की सज्जा से उकरे हुए शिला-पटो का। अभिप्राय द्वारा सस्कृति का परम्परित स्वरूप सुरक्षित मिलता है। प्रादेशिक कथाओ के रूपान्तरो की जन्मगत एकता इन्हीं मे परिलक्षित होती है, पर एक देश से

ही इतने रूपान्तरो का प्रचलन क्यो ? अभिप्राय एकसे रहने से भी लोक-कथाओ मे इतनी विभिन्नता क्यो ? यहाँ रूपतत्त्व के दो कारण कार्य करते हुए उपलब्ध होते है। एक तो परिवर्तनशील शैली, दूसरी सास्कृतिक विभिन्नता।

अभिप्राय, कथा और कथक्कड

अभिप्रायो से एकसे होने पर भी उनको जिस ढग से पिरोया जाता है उससे एक कथा अन्य कथा से भिन्न स्वरूप वाली हो जाती है। इस विभिन्नता मे विशेष हाथ रहता है उन कथक्कडो एव कथाकारो का जो उन लोक-कथाओ को कहते है या उनका निर्माण करते हैं। शैव कथा-सरित्सागर ने जहाँ-तहाँ शैव धर्म का रग लोक-कथाओ पर चढा दिया है। जातक की कथाएँ बौद्ध रग मे रँगी लोक-कथाएँ है। इसी प्रकार उपनिपदो के दृष्टान्त आदि माने जा सकते है। वैदिक 'बीज' के रूप की कथाएँ भी लोक-कथाओ का एक विशेष रूपान्तर है। लोक-कथा कथाकार के हाथो मे विभिन्न रूप धारण कर लेती है। रूस मे इस पर विशेष अध्ययन किया गया है कि किस प्रकार कथक्कड कथा का स्वरूप ही परिवर्तन कर डालते है। वहाँ कई एक कथक्कडो के जीवन के अध्ययन द्वारा इस तथ्य को प्रमाणित किया गया है। उसी को लक्ष्य कर रूसी विद्वान सोलोकोव कहते है कि कथा तथा कथक्कडो मे बहुत ही गहरा और दूर का सम्बन्ध है। कथक्कड का मानसिक स्तर, भावनाएँ, चरित्र, सभी गणनीय हैं।

यह सत्य ही नही वरन् मनोविज्ञान द्वारा सिद्ध भी है। यदि कथक्कड का मानसिक धरातल एक विशेष प्रकार का है तो वह नि सन्देह कथा का रूप उसके अनुरूप ही प्रस्तुत करेगा। पजाव के कथक्कड और व्रज के कथक्कड द्वारा कही गयी एक ही कथा की शैलीगत विभिन्नता या स्वरूपगत विभिन्नता उन दोनो के मानसिक धरातल की विभिन्नता को ही अभिव्यक्त करेगी। जैसे, गुरू-चेला की कथा। पजाव मे शिष्य कबूतर, मच्छी, मच्छर वन लाश मे छिप जाता है, गुरू वाज, मगर, आदमी वन पीछा करता है। पजाव की कथा मे 'वैताल पचीसी' की कथाएँ जोड दी गयी हैं फिर अन्त मे दोनो वकरी (शिष्य) और बाघ (गुरू) बनकर शिकारियो द्वारा मारे जाते है। पर व्रज की कथा मे जव हार टूटकर विखर जाता है और गुरू मुर्गा बन दाने चुगता है तो शिष्य विल्ली वन उसे मार डालता है। व्रज की कथा अधिक सुसम्वद्ध है और बुन्देलखण्डी रूपान्तर से भी मिलती है। पजाब के कथक्कड ने कथा का अन्त ही वदल डाला है। ब्लूमफील्ड भी कहते हैं कि "सर्वत्र प्रत्येक कथक्कड और सग्रहकर्ता मानो ऐसे लगता है कि इन अभिप्रायो की समूची माला को उठाता है जिसकी तुलना हम मनके की माला से कर सकने हैं, उसे वह छिन्न-भिन्न कर देता है जिससे मनके चतुर्दिक विखर जाते है और फिर प्रारम्भ से वह इन मनको को पिरोता है।" इस प्रकार अभिप्राय एकसे होने पर भी कई प्रकार की लोक-कथाओ का जन्म सम्भाव्य हो जाता है। जवकि लोक-कथा का शैली तत्त्व निर्भर करता है कथक्कड के मानसिक स्तर पर, तव कथक्कड का मानसिक धरातल निर्भर करता है देश और

सस्कृति के ऊपर। जिस प्रदेश का वह निवासी है, जिस सभ्यता और सस्कृति की परम्परा मे वह पला है, वह उसके द्वारा कथित लोक-कथा मे प्रतिविम्वित होगी ही। साहित्य समाज का दर्पण है उतना ही सत्य सिद्ध होता है लोक-कथा के क्षेत्र मे जितना कि अन्य किसी क्षेत्र मे। इसलिए लोक-कथा मे जो राष्ट्रीय विशेपताएँ डाकिन्स को परिलक्षित होती है वह इसी बात पर आधारित हैं। आप कहते है कि हमे राष्ट्रीय विशेषताएँ एक मात्रा तक दृष्टिगोचर होगी, उदाहरणार्थ तुर्की को परियो की कथा और प्रेम कथाएँ पसन्द है। भारतीय लोक-कथाओ मे भी यह स्पष्ट परिलक्षित होता है। वगाल की लोक-कथा वगाल के वगाली रग मे रँगी हुई है तो पजाव की पजावी मे। व्रज की विनोदप्रियता लोक-कथाओ मे सर्वत्र दिखायी देती हैं। (व्रज की लोक कहानियाँ)। इसी प्रकार राजस्थानी लोक-कथाओ पर राजपूती रग चढा दिखायी पडता है। (देखिए ढोलामारू का राजस्थानी सस्करण)। पुनश्च साधारणीकरण के हेतु भी इस प्रकार का देशीय रग लोक-कथा मे पाया जाना अत्यन्त आवश्यक है। यदि कथा मे इस प्रकार का देशीय रग वर्तमान न हो तो लोक-कथा का आनन्द नहीं उठाया जा सकता और न उसका अस्तित्व अक्षुण्ण बना रह सकता है।

शैली तथा अभि

इसलिए शैली लोक-कथा की परिवर्तनशील है और अभिप्राय लोक-कथा का परम्परित तत्त्व है। अभिप्रायो द्वारा लोक-कथा की सामग्री प्रस्तुत की जाती है और शैली द्वारा उसको एक रूप प्रदान किया जाता है। बिना सामग्री के जिस प्रकार निर्माण असम्भव है उसी प्रकार अभिप्रायो के बिना लोक-कथा का अस्तित्व निर्मूल है। अभिप्राय ही लोक-कथा का (कथानक का) मूल तत्त्व हैं। ब्लूमफील्ड के शब्दो मे ये कथा से उसी प्रकार सम्वन्धित है जिस प्रकार शब्द वाक्य से। इसलिए अभिप्राय का स्थान लोक-कथा मे प्रमुख है।

अभिप्राय-अध्ययन . ब्लूमफील्ड

अभिप्राय का सर्वप्रथम अध्ययन अमरीका के विद्वान ब्लूमफील्ड ने किया। और साथ ही साथ आर्ने के 'प्रकार' प्रणाली मे आयी हुई घटनाओ को देख स्टिथ थामसन ने ससार भर की कथाओ के अध्ययन के हेतु अभिप्राय प्रणाली का शुभारम्भ किया।

ब्लूमफील्ड के कई एक शिष्यो मे जिनमे रूथ नार्टन, नार्मन, ब्राउन, प्रधान हैं औरियटल सोसाइटी के जरनल एव फिलोसोफीकल सोसाइटी के जरनल 'अमरीकन' मे कतिपय अभिप्रायो का ऐतिहासिक अध्ययन प्रस्तुत किया। ब्लूमफील्ड ने भी कई एक अभिप्रायो का ऐतिहासिक अध्ययन सस्कृत के ग्रन्थो और अग्रेजी मे प्रकाशित सग्रहो के आधार पर किया। उदाहरणार्थ, देखिए—ग्रे हेअर मौटिफ—सफेद वाल का अभिप्राय, खण्ड (volume) ३६—औरियण्टल जरनल। ब्लूमफील्ड की ऐतिहासिक प्रणाली मे विभिन्न कथाओ के पाये जाने वाले एक ही अभिप्राय का विस्तृत अध्ययन किया जाता था। उसी परम्परा मे अव भी छिटपुट प्रयत्न किये जाते रहे हैं।

थामसन

अभिप्रायो का कोष बनाने की परम्परा भी अभी चल रही है। थामसन ने ससार भर की सगृहीत एव उपलब्ध कथाओ का कोष तैयार किया है। अन्य देशो मे भी इस प्रकार के कोष तैयार किये गये हैं। उदाहरणार्थ आयरलैण्ड आदि मे। अधिकतर इस प्रकार के कोष इन्डियाना यूनीवर्सिटी मे ही तैयार किये जा रहे हैं।

भारत में

भारत मे अभिप्रायो पर सर्वप्रथम ध्यान टेम्पेल और स्टील की पुस्तक 'वाइड अवेक स्टोरीज' मे दिये गये नोट्स के रूप मे टेम्पेल ने दिया (सन् १८८४)। यहाँ उसने अभिप्रायो को घटनाओ का नाम दिया है। आप कहते है कि घटनाएँ चाहे कितनी ही मनोरजक क्यो न हो केवल गडबडझाला के समान हैं जब तक कि किसी एक कथानक में ग्रथित न हो और कथानक भी एक माँस रहित ढाँचे के समान है बिना उपयुक्त घटनाओ के। घटनाओ का वर्गीकरण भी किया है।

यही नोट्स टेल्स आफ पजाब (सन् १८९४ मे प्रकाशित) मे जोड दिये गये हैं।

इसके बाद स्विनरटन आदि विद्वानो ने अपने सग्रहो की भूमिका मे छिटपुट रूप से कई एक अभिप्रायो पर जिन्हें कि घटना भी कहा जाता था, कुछ-कुछ प्रकाश डाला है।

फिर पेंजर ने 'ओसन आफ स्टोरी'—१० पुस्तको में कई एक अभिप्रायो का ऐतिहासिक विवरण ब्लूमफील्ड की प्रणाली पर दिया है। आपने भी मोटिफ एव अभिप्राय को घटना नाम से ही अभिहित किया है।

इधर वेरियर एलविन ने फोक टेल्स ऑव उडिया, फोक टेल्स ऑव महाकौशल मे कथाओ मे आये अभिप्रायो का एक कोष-सा प्रस्तुत किया है और कई एक अभिप्रायो का विवरण भी दिया है।

उपरोक्त सब कार्य अग्रेजी के माध्यम से किया गया है। हिन्दी मे डा० सत्येन्द्र ने ब्रजलोक साहित्य के अध्ययन मे लोक-कहानियो के अध्याय मे अभिप्रायो का विवरण दिया है। इस कार्य मे आप ही सर्वप्रथम विद्वान हैं जिन्होने मौलिक रूप से इस ओर ध्यान दिया है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी काव्य के अभिप्रायो के ऊपर प्रकाश डाला है।

प्रादेशिक भाषाओ मे अभी इस दिशा में कोई विशेष कार्य नही किया गया। पर सभी प्रान्तो के विद्वानो का ध्यान इस ओर गया हुआ है और हो सकता है कि निकट भविष्य मे ऐसा ही कोई कार्य प्रकाश मे आये।

परिशिष्ट

ब्लूमफील्ड सम्प्रदाय के कार्य का इतिहास

प्रो० ब्लूम फील्ड द्वारा—

१ मूलदेव का चरित्र एव कार्य (प्रोसीडिंग्स ऑव द अमेरिकन फिलोसफिकल सोसाइटी—५२, पृष्ठ ६१६—६५०)

२ हिन्दू कहानियो मे बोलने वाले पक्षी

३ वार-बार आने वाले मनोवैज्ञानिक अभिप्राय, हँसने रोने का अभिप्राय, ग्रेहेअर का व काल गुफा का बुलाना, डण्डो पर कछुआ, ठगो द्वारा वकरी को कुत्ता कह छीन ले जाना, शेखचिल्ली, जल्दवाजी दिखायी, कठिन कार्यो का करना हिरण्यकश्यपु का वरदान (जनरल ऑव द अमेरिकन ओरियण्टल सोसायटी—खण्ड ३६, पृष्ठ ५४—८६)

४ शरीर-प्रवेश-कला (जरनल ऑव फिलोलौजी—११, पृष्ठ १—३६)

५ दोहद या गर्भिणी स्त्री की इच्छाएँ (जनरल ऑव द अमरीकन ओरियण्टल सोसायटी—११, पृष्ठ २४)

६ पशुओ को नशा पिलाना (वही, ३३६—३३९)

७ छिपकर सुनना ('अमेरिकन'—दि जरनल ऑव फिलौलौजी—४१ पृष्ठ ३०९—३३५)

८ गोसिफ मोतीफर—यूसुफ जुलेखा (काश्मीरी ट्राजेक्शन ऑव द अमेरिकन फिलौलौजीकल एसोसियेशन—५४, पृष्ठ १४१—१७६)

९ चौर्य कला (अमरीकन जरनल ऑव फिलौलौजी—४४, पृष्ठ ९७—१३३, १९३—२२९)

१० कपटी भिक्षु-भिक्षुणियाँ (जरनल ऑव अमरीकन ओरियण्टल सोसाइटी—४४, पृष्ठ २०२—२४२)

११ योगरोचन, जादू की मलहम (अदृश्यता के लिए जादू की वस्तुओ का इतिहास—४५, पृष्ठ ११०)

१२ डाकेजनी (अमरीकन जरनल ऑव फिलौलौजी—४७, पृष्ठ २०५—२३३)

इनके अतिरिक्त छोटे-मोटे अभिप्राय 'चतुर लडका', 'करके दिखाओ', 'कैसे', 'टूटने पर आ पडने वाला धनुष', 'जल ढूँढना', 'गोतीनारी', 'उजाड नगरी' मे (देखिए भूमिका—कथा सरित्सागर)

डा० ई० डब्ल्यू० बर्लिंगम द्वारा

१३ सच्चक्रिया (जरनल ऑव द रायल एशियाटिक सोसाइटी, जुलाई १९१७, पृष्ठ ४२७—४६७)

इन्होने सन् १६२१ मे 'बुद्धिस्ट लीजेण्ड्स' पुस्तक १, मे जातक कथाओ की अभिप्राय सूची दी

१ सच्च क्रिया
२ बाण—सात सौ योद्धाओ को गिराकर लौट आया
३ कोयले की दलाली मे मुँह काला
४ समुद्र को खाली करना
५ सौन्दर्य नाशवान
६ शेखचिल्ली
७ हजार मनुष्यो से हिलने वाला धनुष
८ कैदी राजा और उसकी पुत्री
९ योनि परिवर्तन
१० यन्त्र द्वारा राजा का बचना
११ यन्त्र द्वारा हाथी बुलाना और भेजना
१२ भाग्यवान का भजित जीवन
१३ चतुर बालक
१४ देवासुर सग्राम
१५ मृत्यु की औषधि
१६ पेटूपने की चिकित्सा
१७ प्रेम की चिकित्सा
१८ पिता से बडी पुत्री
१९ चोर से प्रेम करने वाली धनी कन्या
२० मृत्यु पत्र
२१ पीछा करने मे देरी
२२ मित्रता का नाशक
२३ धोखेबाज पुत्र (पुत्रियाँ)
२४ शेखचिल्ली के दिवा स्वप्न
२५ मद्यपान
२६ हठ, इच्छा
२७ भजित शिकारी
२८ फकीर—आश्चर्यजनक प्राणी
२९ झूठाभियोग
३० कर्मफल
३१ स्वण कन्या
३२ भजित वन, तालाब, वेशधरा, उत्तराधिकारी
३३ भूख हडताल

३४ वीर (नायक) के चिह्न, (पहचान अँगूठी, उत्तरीय द्वारा)
३५ सौत का ईर्ष्यालु व्यवहार
३६ झूठा अभियोग
३७ हँसना रोना
३८ सिंहनी माँ
३९ दोहद
४० जादू का पक्षी
४१ मन की बातें जानना
४२ भोजन अनन्त
४३ जनसख्या जादू से वढानी
४४ कृपणता
४५ मानव रक्त से धोने की प्रतिज्ञा
४६ पवित्र धोखा
४७ घमण्डी का सिर नीचा
४८ पुनर्जन्म
४९ रत्न दिवारा मे परछाईं से योद्धाओ का डरना
५० हटाया गया और न भी हटाया गया
५१ पहेली के मन्त्र
५२ पहेली रूप मे आज्ञा
५३ प्रहेलिका कथन
५४ प्रहेलिका प्रश्न
५५ प्रहेलिका ज्ञान
५६ मूल कथन
५७ वुद्ध की मुस्कराहट
५८ मौदग्लायन की मुस्कराहट
५९ अपशकुन की आवाजें
६० आग उगलने वाला भिक्षु वा दैत्य
६१ मारने से पहले सुनो
६२ जीवित के स्थान पर मृत को रखना
६३ वदला हुआ पत्र
६४ तलवार टूटना
६५ वोलने वाला कछुआ
६६ गोवर की गोली खाने से वातूनीपन की चिकित्सा
६७ निम्न धातु को सोना वना—
६८ कपटी पत्नी

६६ भूतो से प्रतिज्ञा
७० हम वहाँ थे, हम दो थे मैं अकेला रह गया
७१ स्त्री और भिक्षु
७२ पूर्व पत्नियाँ
७३ निर्दोष भिक्षु को पति ने पीटा
७४ भूत स्त्री
७५ काठ का हाथी—योद्धा भरे हुए

डा० डबल्यू० एन० ब्राउन द्वारा

१४ भ्रमण करती खोपडी—(अमरीकन जरनल ऑव फिलौलौजी ११, पृष्ठ ४२३—४३०)
१५ भाग्य से बचना (स्टडीज इन आनर ऑव एम० ब्लूमफील्ड ८६—१०४)
१६ व्याघ्रमारी (अमरीकन जरनल ऑव फिलौलौजी—४२, पृष्ठ १२२—१५१)
१७ मौन के बाद—(वही, पृष्ठ ४३ पृष्ठ २८६—३१७)
१८ लुक का बच्चा गृह पर—(साइंटिफिक मथली, १५—पृष्ठ २२८—२३४)

डा० राथ नार्टन द्वारा

१६ प्राणों की अन्यत्र स्थिति—(स्टडीज इन आनर ऑव एम० ब्लूमफील्ड, पृष्ठ २११—२२४)

एमेन्यू द्वारा

एम० वी० एमेन्यू ने भी दो अभिप्रायो का ऐतिहासिक अध्ययन किया है।
२० तीन लडके एक गृह मे उत्पन्न हुए—(जरनल ऑव ओरियण्टल सोसाइटी ५५, पृष्ठ ६२)
२१ दोहराया शब्द घोडा-बोडा—(वही ५८, पृष्ठ ५५३ सन् ३८)
२२ मोर के कुरूप पाँव—(वही ६३, पृष्ठ १५८)
२३ शरीर की गर्मी से पकाना—(वही ६७, पृष्ठ ३०)
२४ पशुओ की शृखला मुनि चुहिया (हितोपदेश)

इसके अनन्तर एमेन्यू ने एक ही कथा के कुछ रूपान्तरो को एकत्र कर घटनाओ का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया और घटना का थामसन की इडैक्स की सख्या भी दी। [देखिए औरियण्टल सोसाइटी की जरनल—६१]

स्वामिभक्त कुत्ता—ऋण की अमानत—ब्राह्मण और नैवला प्रकार का सायी—थामसन सख्या वी० ३३१ और ब्लूमफील्ड का अल्दबाजी की अकृत्रिमता—[औरियण्टल जरनल—३६, पृष्ठ ६३]

विभिन्न रूपान्तरो के आधार पर विश्लेषण

१ चरित्र
२ ऋण के कारण
३ ऋण का रुपया
४ सेवा की गयी
५ ऋण मुक्ति सकेत
६ स्थान जहाँ कुत्ता मारा गया
७ कुत्ते को मारने का कारण
८ मारना अन्यायपूर्ण माने जाने का साधन
९ स्वामी की आत्महत्या

इन नौ बातो पर आपने सभी रूपान्तरो को तोला है। फिर चेष्टा की है कि कौन-सा रूपान्तर वास्तविक के सर्वाधिक निकट है। ब्रज की लोक कहानियो मे और काश्मीर मे भी यह कथा प्रचलित है। उनको भी इन कसौटियो पर कसा जा सकता है।

पेंजर ने कथासरित्सागर मे ब्लूमफील्ड के सम्प्रदाय के अनुकरण पर जिन विविध अभिप्रायो का ऐतिहासिक विवरण तुलनात्मक ढग से दिया है। वे हैं—

जादू की वस्तुएँ, शरीर प्रवेश, फँसे विवाहोत्सुक, सकेत भाषा, मछली जो हँसी, हँसने रोने का, अन्त पुर मे नर, चोरी से ले जाया जाना, सुनना, छिपकर, मृत्यु पत्र, दोहद, कृतज्ञ सर्प (पशु), प्राण की अन्यत्र स्थिति, सदाचार सकेत, कुतिया और मिर्च, चतुर बालक—इस प्रकार टैम्पल साहब ने 'वाइड अवेक स्टोरीज' मे सग्रहीत लोक-कथाओ का विश्लेषण किया था। आपने इण्डियन एटिक्वेरी के सम्पादक होने के नाते उसमे प्रकाशित कथाओ मे ऊपर लिखित आधार पर विश्लेषण भी प्रस्तुत किया था। कई एक स्थानो पर तुलनात्मक नोट्स भी दिये और विशेष घटनाएँ मोटे अक्षरो मे प्रकाशित की। इसी प्रकार क्रुक ने भी कथाओ मे आयी घटनाओ के कथा के अन्त मे तुलनात्मक सकेत दिये और कथाओ को कथाचक्रो मे रखने की चेष्टा की। देखिए इण्डियन एटिक्वेरी—२१, २२, २३, २४।

वेरियर एलविन ने भी फोकटेल्स ऑव महाकौशल मे पेंजर के जैसे अभिप्रायो का ऐतिहासिक अध्ययन तुलनात्मक नोट्स के ढग पर दिया, उदाहरणार्थ देखिए जादू की वस्तुएँ, चमडे के वस्त्रो से रूप परिवर्तन, सुनना छिपकर, सबसे छोटा भाई, जादू के बाण, अन्यत्र प्राण स्थिति, टूटकर मारने वाला धनुष, जादू की कृपि, सत्य क्रिया, ईर्ष्यालु रानी, मुठभेड चक्र चुहिया कुमारी, सूर्य पवन मे झगडा, धन वृद्धि झूठे सच मे, ठगी के ढग, आँख गँवाने की शर्त, दिवा स्वप्न लेने वाला शेखचिल्ली, यात्रा पर जाने वाला नायक, पशु-भाषा, बदले, शुद्ध द्वार गिरने को तैयार, सदाचरण, परीक्षा, सकेत भाषा, कृतज्ञ पशु, कृतघ्न पशु, कैसे किया जाता है दिखाओ, दोहराया शब्द, पशु से विवाह।

इसके अनन्तर आपने 'ट्राइवल टेल्स ऑव उडीसा' मे थामसन के अभिप्राय कोष के आधार पर उस पुस्तक मे सग्रहीत लोक-कथाओ की अभिप्राय सूची दी है और साथ ही टिप्पणियाँ भी।

इसके अतिरिक्त अग्रेजी के माध्यम से कुछ छिटपुट प्रयत्न भी हुए [इडियन एण्टीक्वेरी देखिए ५२]

प्रकार के आधार पर अध्ययन शरतचन्द्र मित्रा ने (मैन इन इडिया—८ पृष्ठ २०६—१८ जे० बी० ओ० आर० एस०—१४—१५—११ जे० ए० एस० ५—७१ जे० ए० एस० बम्बई—६—६) सथाली, विहारी, (उत्तरी) हो, लोक-कथाओ का क्रमश किया। यहाँ तक के निकाले गये अभिप्रायो को थामसन ने अपने नवीन सस्करण मे जोड लिया है और नम्बर दे दिया है।

हिन्दी में

राष्ट्र भाषा हिन्दी में इस प्रकार का वैज्ञानिक अध्ययन करने का श्रेय डा० सत्येन्द्र को जाता है। आपने अपने व्रजलोक-साहित्य के अध्ययन मे व्रज की लोक-कहानियो की कथा-सरित्सागर की, बुन्देलखण्ड की, बगाल की, काश्मीर की कहानियो से तुलना कर तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है (देखिए अध्याय लोक कहानियाँ) गै सोदोह की कथा का विस्तृत अध्ययन किया है। आपने ('भारतीय साहित्य' अप्रैल १९५६ मे) 'जाहर पीर गुरु गुग्गा' का एक विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत कर लोक-साहित्य के उत्तर भारतीय कथा के प्रश्न को सुलझाने की भरपूर चेष्टा की है। इसी प्रकार जातक कथाओ से तुलना की है। इस सब के अतिरिक्त उन्होने एक नया ढग सुझाया है वैदिक बीज-कथाओ के आदि रूप का अनुसधान करके। भारत जैसे देश मे इस प्रकार का अध्ययन स्वाभाविक और आवश्यक है। आपने विविध चरित्रो और घटनाओ पर भी टिप्पणियाँ दी हैं। व्रज की लोक-कहानियो मे पाये जाने वाले भारोपीय प्रकारो का भी अनुसधान किया है। [देखिए, पृष्ठ ५०० व्र० लो० सा०]

अन्त मे आपने अभिप्रायो का (जो व्रज की लोक-कहानियो मे पाये जाते हैं) का टिप्पणी सहित उल्लेख किया है। प्राण प्रवेश, प्राणो की अन्यत्र स्थिति, विद्या से रूप परिवतन, धोखे से स्थान ग्रहण, चीर पर लेख, सकेत, पहेली बुझाना, छ मास की आन, बिछुडे पति से मिलने के उपाय, सत की तोल, आपत्ति की सूचना, भावी आपत्ति की सूचना, भावी सकट, पशु-पक्षियो की अभिभावकता, खोये बिछडो के अभिभावक, भाइयो का विश्वासघात, माता का पुत्र विरोधी होना, सकटाकीर्ण कार्य सौपना, दुखती आँखो का बहाना, जादू की पुडिया, अगुली का अमृत, खून से लाल बनना, सिर तथा धड अलग, बाँसुरी से नाँच, आकाश मे उडने के साधन, मुँह माँगे भोजन देने वाली कडाही, देगची, लड्डू देने वाली थैली, ऐसा टोपा अथवा वस्त्र जिसे धारण करने मे मनुष्य आँखो से ओझल हो जाय, रस्सी व सोटा, स्त्रियो का हीन व्यक्तियों से प्रेम, कडाह में मनुष्य का पकना, मनुष्य की बलि, हँसने पर फूल, मुख से

सर्प, फाँसी से बचने के उपाय, एक को कुछ दूसरे को कुछ, आयु बाँटना, शिव पार्वती, दक्षिण दिशा का निषेध, हाथी द्वारा वर निर्वाचन, राजा के मरने पर जो प्रात सबसे पहला व्यक्ति फाटक पर मिले वही राजा।

अर्थात् डाक्टर साहब ने जितनी प्रचलित शैलियाँ थी उन सबका प्रयोग ब्रजलोक कहानियो के अध्ययन मे किया है।

अब आपने हिन्दी विद्यापीठ ग्रन्थ वीथिका मे जाहरपीर का ब्रज स्थानीय सस्करण देकर उसमे आये अभिप्रायो की लोकवार्ता के अभिप्रायो से तुलना कर दोनो मे पाये जाने वाली समता दिखायी है। सन्तान की आवश्यकता, ज्योतिषियो पण्डितो से विधियाँ पूछी, बाग लगवाया, बाग के फल-फूलो का कुम्हलाना, राजा का राजपाट छोड़ना, बाग जोगी के आने से हरा होना, जोगी सेवा से गुग्गल से पुत्र प्राप्ति, बहिन का प्रथम दो फल धोखे से लेना, गूगल बाँटकर खाने से नायक और उसके चार साथियो का जन्म, ननद का लाछन लगाना, तलवार मारने के समय तलवार का न चलना, निष्कासन, नायक से स्थित गर्भ के प्रताप से सर्प से बैल डसा जाना, करामात से लाछन झूठा पडना, स्वप्न मे नायिका दर्शन, नायिका की खोज, गुरु से उसका पता लगाना, नायिका से मिलाप, नायिका के पिता का इन्कार, सहायक तातिग नाग, उसका फिर भेष बदलकर प्रण लिखवाना, दूसरा वर, बरातो मे युद्ध, दैवी हस्तक्षेप, नायिका से विवाह, मौसेरे भाइयो का राज्य माँगना, जाहरपीर का इन्कार, क्रुद्ध भाई मुसलमानी शासक चढा लाया, नायिका की सहायता से युद्ध जीतना, देश-द्रोही भाइयो का सिर काटना, नायक की माँ-भगिनी-पुत्रो के पक्ष मे, माँ का क्रुद्ध हो शाप देना, पृथ्वी मे समा जाना, कही-कही मुसलमान बन पृथ्वी मे समाना नायक का प्रेत बनकर नायिका से सम्बन्ध, माँ को दिखाने का प्रण, नायिका से सौभाग्य चिह्न रखे रहने का कारण जानना, नायक का पता चलना और जाना, काग सन्देश, नायिका का सासु को जाते हुए नायक को दिखाना, फिर से नायिका सहित नायक का समाना।

डा० सावित्री सरीन

पुनश्च

अब हिन्दी मे इस क्षेत्र मे अभिप्राय की अन्तर्राष्ट्रीय स्टिथ थामसन-पद्धति को अपनाकर श्रीमती डा० सावित्री सरीन ने अग्रणी का स्थान प्राप्त किया है। अब तक हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओ मे भी, जहाँ तक मेरा ज्ञान है, अभिप्रायो का उल्लेख तो होता था, उन पर विचार भी किया जाता था, उनका ऐतिहासिक निरूपण हो लेता था, उनके आधार पर कुछ कहानियो के तुलनात्मक अध्ययन भी होते रहे हैं, और ऐसा प्राय ग्रन्थो के आधार पर ही किया गया है। किन्तु अभिप्रायो को स्टिथ थामसन जैसी वैज्ञानिक पद्धति से वर्गीकृत करके प्रत्येक अभिप्राय का एक सुनिश्चित अन्तर्राष्ट्रीय स्थान निर्देशित नही किया गया था। डा० सरीन ने

ब्रजलोक कहानियो के अभिप्रायो का अध्ययन इसी नवीनतम वैज्ञानिक पद्धति पर किया है। प्रत्येक अभिप्राय को स्टिथ थामसन की 'अभिप्राय अनुक्रमणिका' (Motif Index) की योजना मे उचित सख्या देकर उनका स्थान निर्देशित किया है, साथ ही कुछ ६०० से अधिक ऐसे अभिप्रायो का उद्घाटन भी किया है जिन्हे स्टिथ थामसन अपनी अनुक्रमणिका मे सम्मिलित नही कर पाये थे। इस प्रकार इस पद्धति मे डा० सरीन का यह प्रयत्न अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उन्होने वर्गीकरण मे रोमन अक्षरो के स्थान पर देवनागरी अक्षरो के उपयोग का भी प्रथम श्लाघनीय प्रयत्न किया है। यह एक दिशादर्शक कार्य है।

-

दसवाँ अध्याय

कहानी मे अभिप्राय

(मोटिफ या कथानक रूढि या कथा के कला-तन्तु)

ऊपर के अध्याय मे अभिप्रायो का मामान्य इतिहाम देने की चेष्टा की गयी है। इससे यह विदित होगा कि स्टिथ थामसन से पूर्व 'अभिप्राय' विपयक विचार न तो वहुत स्पष्ट हो पाये थे, न उन्हे ठोस वैज्ञानिक पद्धति से ही प्रस्तुत किया गया था। यह महत्त्वपूर्ण कार्य स्टिथ थामसन के द्वारा सम्पन्न हुआ। उन्होंने पुस्तकालयों की पुस्तको के वर्गीकरण की प्रणाली के अनुकरण को अपनाकर अभिप्रायो के वैज्ञानिक वर्गीकरण का माग प्रशस्त कर दिया। उन्होने इस विधि से अभिप्रायो की एक वृहद अनुक्रमणिका वना डाली। इस अनुक्रमणिका के दो सस्करण हो चुके हैं। पहला सस्करण छोटा था और उसमे उन्होने भारत की कहानियो के अभिप्रायो को सामान्य रूप से ही सम्मिलित किया था। दूसरा सस्करण अभी सन् ५७ मे निकला है। इसमे भारत की कहानियो के भी अभिप्राय पर्याप्त सम्मिलित किये गये हैं। यह पहले से कही अधिक वडा है। वस्तुत तो किसी भी अनुसन्धान को अभिप्रायो या कथानक रूढियो का यथार्थ और पूर्ण ज्ञान पाने के लिए इसी वृहद अनुक्रमणिका का उपयोग करना होगा। विना इसकी सहायता के किम कहानी मे क्या है और क्या नही है, इसे ठीक प्रकार से नही समझा जा सकता। किन्तु इस पाठ्यग्रन्थ मे भी इतनी सामग्री तो दी ही जानी चाहिए कि इस महत्त्वपूर्ण प्रयत्न का स्वरूप भली प्रकार समझा जा सके। इसीलिए हम यहाँ इस वृहद अनुक्रमणिका का वह सार दे रहे हैं जो स्वय स्टिथ थामसन ने अपनी पुस्तक 'फोक टेल' मे दिया है। इससे इस प्रयत्न का कुछ रूप स्पष्ट हो जाता है।

भारत मे अभी तक इस आधुनिक पद्धति का प्रचलन नही हुआ। कथानक रूढियो और अभिप्रायो की चर्चा तो प्राय होती रहती है, इसका सक्षिप्त उल्लेख ऊपर के अध्याय मे हो चुका है। किन्तु वैज्ञानिक दृष्टि से स्टिथ थाममन की पद्धति का अनुसरण करते हुए सवसे पहला महत्त्वपूर्ण कार्य डा० सावित्री मरीन ने व्रज की लोक कहानियो के अभिप्रायो के अध्ययन नाम की थीसिस मे किया है। और यह वडे श्रेय की वात है कि इन्होने व्रज की लोक कहानियो मे लगभग ६०० ऐसे अभिप्राय ढूंढ निकाले हैं जो स्टिथ थामसन महोदय के दूसरे सस्करण मे से भी नहीं आ सके।

स्टिथ थामसन के महान् कार्य को पूर्णता प्रदान करने के लिए सावित्री सरीन के जैसे अध्ययन और भी भारतीय बोलियो तथा भाषाओ मे होने चाहिए।

अभिप्राय-अनुक्रमणिका (मोटिफ इन्डैक्स) के प्रथम सस्करण की भूमिका मे अनुक्रमणिका बनाने के प्रयत्न का अभिप्राय बताते हुए स्टिथ थामसन महोदय ने बताया था कि हमारे वे महान् पुस्तकालय जिनमे लोकवार्ताओ का सग्रह किया जा रहा है, हमारे लोकवार्ता के क्षेत्रीय कार्यकर्ताओ और सग्रहकर्ताओ के अनवरत उद्योग से निरन्तर अधिकाधिक समृद्ध होते जा रहे हैं और उनका पूरा-पूरा अनुसन्धान कठिन हो चला है। कहानियाँ, पँवाडे, धर्मगाथाएँ तथा अनुश्रुतियाँ ससार के सभी भागो से, सभ्य तथा असभ्य दोनो क्षेत्रो से आकर बरस पडी है, कि उनके सग्रहो के हजारों खण्डो को पढना एक व्यक्ति के तो पूरे जीवन के वश की बात नही। इसीलिए विगत काल मे यह अनुभव किया जाता रहा है कि उन्हे अनुक्रमणिका बद्ध करने की किसी व्यवस्थित प्रणाली का उपयोग किया जाना चाहिए।

लोक कहानियो के ही क्षेत्र के लिए तो ऐण्टी आर्ने का वर्गीकरण उपयोगी सिद्ध हुआ है। ऐण्टी आर्ने की इस कहानी-रूपो की अनुक्रमणिका का सशोधन सस्करण स्टिथ थामसन ने 'द टाइप्स ऑव द फोक-टेल' नाम से १९२८ मे प्रकाशित कराया था। पर, थामसन महोदय का ही कहना है कि ऐण्टी आर्ने की यह प्रणाली यूरोपियन क्षेत्र मे तो लाभदायक सिद्ध होती है। जब तक कहानी का कथानक-ग्रथन (Tale-complex) एक स्थान से दूसरे स्थान मे सक्रमित होने पर यथावत रहता है, तब तक तो आर्ने-प्रणाली लाभदायक है। किन्तु जब ऐसी स्थिति नही रहती, कथा-रूप का निबन्धन कुछ का कुछ मिलने लगता है तब 'रूपो' से भी छोटे अशो को अध्ययन का आधार बनाना उपयोगी होता है। भले ही यूरोप से बाहर यूरोप के कथा-मानक रूपो से साम्य रखने वाले रूप कम ही मिलें, पर उनके अतिरिक्त उस प्रभूत सामग्री मे अर्थात् विश्व भर के लोक-साहित्य मे बहुत कुछ बातें एक-सी जैसी मिलती हैं। यह समानता वास्तव मे कथा-रूपो मे नही अभिप्रायो या कथानक-रूढियो मे है। इन सरल तत्त्वो (अभिप्रायो-मोटिफो) से ही पूरी बडी कहानियाँ बनती हैं, इनके आधार पर विश्व के समस्त परम्परित अनुश्रुत साहित्य के व्यवस्थित अनुक्रमण के लिए सामान्य भूमि प्राप्त की जा सकती है।

स्टिथ थामसन महोदय ने इस अनुक्रमणिका के लिए एक विशाल पुस्तकालय की पुस्तको को सूचीबद्ध करने के जैसे सिद्धान्त को आधार बनाया। इस सम्बन्ध मे उनका यह कथन दृष्टव्य है

"पुस्तकालय की सूची बनाने वाला इस बात पर ध्यान नही देता कि जिस पुस्तक को वह सूची मे रख रहा है, उसका मूल्य या महत्त्व क्या है? न वह साहित्यिक समालोचना के किसी सिद्धान्त के आधार पर ही सूची बना सकता है। 'ज्ञान विषयक साहित्य' तथा 'शक्ति का साहित्य' सम्बन्धी सिद्धान्त अवश्य ही आलोकप्रद हैं, पर इनके आधार पर ग्रन्थो को व्यवस्थित करने की योजना खडी नही की जा

C १०० — C १९९ यौन वर्जन

C २०० — C २९९ खाने-पीने-विषयक वर्जन

C ३०० — C ३९९ देखने के वर्जन

C ४०० — C ४९९ बोलने के वर्जन

C ५०० — C ५४९ वर्जन स्पर्श विषयक

C ५५० — C ५९९ जाति या वर्गगत वर्जन

C ६०० — C ६९९ अनोखे आवर्जन तथा विवशीकरण

C ७०० — C ८९९ विविध अन्य वर्जन

C ९०० — C ९९९ वर्जन के उल्लघन पर दण्ड

चौथा D (घ) जादुई अभिप्राय

D ० — D ६९९ रूपान्तरण

D १० — D ९९ रूपान्तरण मनुष्य का भिन्न मनुष्य मे

D १०० — D १९९ ,, मनुष्य से पशु

D २०० — D २९९ ,, मनुष्य से पदार्थ

D ३०० — D ३९९ ,, पशु से मनुष्य

D ४०० — D ४९९ रूपान्तरण के अन्य प्रकार

D ५०० — D ५९९ रूपान्तरण के साधन

D ६०० — D ६९९ विविध रूपान्तरण सम्बन्धी घटनाएँ

D ७०० — D ७९९ टोने से मुक्ति (Disenchantment)

D ८०० — D १६९९ जादुई पदार्थ

D ८०० — D ८९९ जादुई वस्तुओ का स्वामित्व

D ९०० — D १२९९ जादुई वस्तुओ के प्रकार

D १३०० — D १५९९ जादुई पदार्थो के काम

D १६०० — D १६९९ जादुई वस्तुओ के उपलक्षण

D १७०० — D २१९९ जादुई ताकते तथा प्रदर्शन

D १७१० — D १७९९ जादुई शक्तियो पर अधिकार तथा उपयोग

D १८०० — D २१९९ जादुई शक्तियो का चमत्कार

पाँचवाँ E (च) मृतक

E ० — E १९९ पुनरुज्जीवन

E २०० — E ५९९ भूत तथा अन्य प्रेत

E २०० — E २९९ दुष्टात्मा का मृतकावस्था से लौटना

E ३०० — E ३९९ मृतको से मैत्री युक्त लौटना

E ४०० — E ५९९ भूत-प्रेत—विविध

E ६०० — E ६९९ पुनरावतार

E ७०० — E ७९९ आत्मा

छठा F (छ) चमत्कारक

F ०—F १६६ अन्य लाको की मात्राएँ

F २००—F ६६६ चमत्कारक प्राणी

F २००—F ३६६ अप्सराएँ तथा परियाँ

F ४००—F ४६६ आत्माएँ तथा दाँने

F ५००—F ५६६ अनोखे व्यक्ति

F ६००—F ६६६ मनुष्य असाधारण शक्तियो वाले

F ७००—F ८६६ असाधारण स्थान तथा वस्तुएँ

F ६००—F १०६६ असाधारण घटनाएँ

*—G (ज) दैंयत

G १०—G ३६६ दैंयतो के प्रकार

G १०—G ६६ मनुष्यभक्षी तथा मनुष्य भक्षण

G १००—G १६६ महाकाय दैंयत

G २००—G २६६ जादूगरनियाँ

G ३००—G ३६६ अन्य दैंयत

G ४००—G ४६६ दैंयत के चगुल मे फँसना

G ५००—G ५६६ दैंयत परास्त

G ६००—G ६६६ दैंयत विषयक अन्य अभिप्राय

आठवाँ—H (झ) परीक्षाएँ

H ०—H १६६ पहचान के लिए परीक्षाएँ पहचान लेना

H २००—H २६६ सच्चाई की परख

H ३००—H ४६६ विवाह के लिए परीक्षा

H ५००—H ८६६ चतुराई की परीक्षा

H ५००—H ५२६ चतुराई या योग्यता की परीक्षा

H ५३०—H ८६६ पहेलियाँ

H ६००—H ११६६ तेज की परीक्षा साहस के कार्य

H ६००—H ६६६ साहस के कामो को सौंपना तथा करना

H १०००—H ११६६ साहस के कामो के रूप

H १२००—H १३६६ तेज की परीक्षा खोज

H १२००—H १२४६ खोजो के साथ की स्थितियाँ

H १२५०—H १३६६ खोजों के रूप

H १४००—H १५६६ अन्य परीक्षाएँ

H १४००—H १४४६ भय की परीक्षा

H १४५०—H १४६६ चौकसी की परीक्षा

सकती । इसी प्रकार कथा-साहित्य की कथानक रूढ़ियो की सुगठित सूची बनाने का काम इसी सीधे तथा सामान्यत. सरल उपाय से ही सबसे अच्छी तरह सम्पन्न हो सकता है कि एक विषय से सम्बन्धित सभी रूढियो को एक स्थान पर ही व्यवस्थित कर दिया जाय ।" इस 'अभिप्राय-अनुक्रमणिका' मे स्मिथ थामसन ने आगे बताया है कि " 'मोटिफ' (कथानक रूढि या अभिप्राय) शब्द का उपयोग जब किया गया है तब बहुत ढीले-ढाले अर्थ मे किया गया है और कथा-विलास के सभी तत्त्वो की समाई इसके अन्तर्गत कर ली गयी है ।"

इस प्रणाली मे अनुक्रमणिकाकार ने जो सामान्य क्रम रखा है वह अंग्रेजी (रोमन) वर्णमाला के वर्ण के क्रम पर ही नही रखा, उसने धर्मगाथा तथा दैवी और पराप्राकृतिक से चलकर प्राकृतिक और उपहासादि तक पहुँचने का क्रम रखा है । इस क्रम को 'मोटिफ इंडैक्स' अभिप्राय-अनुक्रमणिका की भूमिका से स्पष्ट किया जा सकता है ।

प्रथम अध्याय 'A' (क) है । इसका सम्बन्ध धर्मगाथा-विषयक अभिप्रायो से है, और इसमे सृष्टि कर्त्ता, सृष्टि, देवी-देवताओ को स्थान दिया गया है । इस अध्याय का विषय-क्षेत्र और विषय का अक-स्थान निम्न तालिका से समझा जा सकता है

A (क) धर्म गाथा—अभिप्राय

A ०—A ९९ सृष्टि कर्ता

A १००—A ४९९ देवता ।

स्पष्ट है कि इसमे १००-१०० के वर्ग मे देवताओ के अभिप्रायो को चार वर्गो मे लिया गया है

A १००—A १९९ देवताओ को सामान्य रूप मे

A २००—A २९९ उच्च लोक (स्वर्ग) के देवता

A ३००—A ३९९ पाताल या नीचे के लोक के देवता

A ४००—A ४९९ पृथ्वी के देवता

A ५००—A ५९९ अर्द्ध देवता तथा सस्कृति-वीर (नायक)

A ६००—A ८९९ सृष्टि

- A ६००—A ६९९ विश्व-ब्रह्माण्ड
- A ७००—A ७९९ द्युलोक
- A ८००—A ८९९ पृथ्वी मर्त्यलोक

A ९००—A ९९९ पृथ्वी के भूतात्विक लक्षण

A १०००—A १०९९ ससार के सकट

A ११००—A ११९९ प्राकृतिक व्यवस्था की स्थापना

A १२००—A १२९९ सृष्टि प्रक्रिया तथा मानव जीवन

- A १२००—A १२९९ मनुष्य की सृष्टि
- A १३००—A १३९९ मानव जीवन की व्यवस्था

A १४००—A १४९९ सस्कृति की उपलब्धि
A १५००—A १५९९ रिवाजो-प्रथाओ का मूल
A १६००—A १६९९ लोगो का वितरण तथा विभेदन
A १७००—A २१९९ पशु जीवन का सृजन
A १७००—A १७९९ पशु जीवन का सृजन—सामान्य
A १८००—A १८९९ स्तनपायियो का सृजन
A १९००—A १९९९ पक्षियो का सृजन
A २०००—A २०९९ कीडे-मकोडो का सृजन
A २१०३—A २१९९ मछलियो तथा अन्य जानवरो का सृजन
A २२००—A २५९९ पशुओ की प्रकृति तथा लक्षण
A २२००—A २२९९ पशुओ की प्रकृतियो के विविध कारण
A २३००—A २३९९ पशुओ की प्रकृति के कारण शरीर विपयक
A २४००—A २४९९ ,, रूप तथा स्वभाव
A २५००—A २५९९ ,, विविध
A २६००—A २६९९ वृक्षो और पौधो का सृजन
A २७००—A २७९९ वृक्षो की प्रकृति का मूल
A २८००—A २८९९ विविध व्याख्याएँ।

दूसरा अध्याय है 'B' (ख) यह पशु-विषयक अभिप्रायो का है इसकी अकगत रूपरेखा इस प्रकार है

B ०—B ९९ धर्मगाथकि पशु
B १००—B १९९ जादुई पशु
B २००—B २९९ मानव-गुणो वाले पशु
B ३००—B ५९९ मित्र पशु
B ३००—B ३४९ सहायक पशु—सामान्य
B ३५०—B ३९९ कृतज्ञ पशु
B ४००—B ४९९ सहायक पशुओ के प्रकार
B ५००—B ५९९ सहायक पशुओ की सेवाएँ
B ६००—B ६९९ पशु से मानव का विवाह
B ७००—B ७९९ पशुओ के कल्पनात्मक गुण
B ८००—B ८९९ पशु विपयक अन्य अभिप्राय

तीसरा अध्याय है (C) (ग) इसमें वर्जन (Tabu) विषयक अभिप्रायो को स्थान दिया गया है

C ०—C ९९ पराप्राकतिको से सम्वन्धित वर्जन

C १०० — C १९९ यौन वर्जन
C २०० — C २९९ खाने-पीने-विषयक वर्जन
C ३०० — C ३९९ देखने के वर्जन
C ४०० — C ४९९ बोलने के वर्जन
C ५०० — C ५४९ वर्जन स्पर्श विषयक
C ५५० — C ५९९ जाति या वर्गगत वर्जन
C ६०० — C ६९९ अनोखे आवर्जन तथा विवशीकरण
C ७०० — C ८९९ विविध अन्य वर्जन
C ९०० — C ९९९ वर्जन के उल्लघन पर दण्ड

चौथा D (घ) जादुई अभिप्राय

D ० — D ६९९ रूपान्तरण
D १० — D ९९ रूपान्तरण मनुष्य का भिन्न मनुष्य मे
D १०० — D १९९ „ मनुष्य से पशु
D २०० — D २९९ „ मनुष्य से पदार्थ
D ३०० — D ३९९ „ पशु से मनुष्य
D ४०० — D ४९९ रूपान्तरण के अन्य प्रकार
D ५०० — D ५९९ रूपान्तरण के साधन
D ६०० — D ६९९ विविध रूपान्तरण सम्बन्धी घटनाएँ
D ७०० — D ७९९ टोने से मुक्ति (Disenchantment)
D ८०० — D १६९९ जादुई पदार्थ
D ८०० — D ८९९ जादुई वस्तुओ का स्वामित्व
D ९०० — D १२९९ जादुई वस्तुओ के प्रकार
D १३०० — D १५९९ जादुई पदार्थों के काम
D १६०० — D १६९९ जादुई वस्तुओ के उपलक्षण
D १७०० — D २१९९ जादुई ताकतें तथा प्रदर्शन
D १७१० — D १७९९ जादुई शक्तियो पर अधिकार तथा उपयोग
D १८०० — D २१९९ जादुई शक्तियो का चमत्कार

• E (च) मृतक

E ० — E १९९ पुनरुज्जीवन
E २०० — E ५९९ भूत तथा अन्य प्रेत
E २०० — E २९९ दुष्टात्मा का मृतकावस्था से लौटना
E ३०० — E ३९९ मृतको से मैत्री युक्त लौटना
E ४०० — E ५९९ भूत-प्रेत — विविध
E ६०० — E ६९९ पुनरावतार
E ७०० — E ७९९ आत्मा

छठा F (छ) चमत्कारक

F ०—F १९९ अन्य लाको की मात्राएँ

F २००—F ६९९ चमत्कारक प्राणी

F २००—F ३९९ अप्सराएँ तथा परियाँ

F ४००—F ४९९ आत्माएँ तथा दाँने

F ५००—F ५९९ अनोखे व्यक्ति

F ६००—F ६९९ मनुष्य असाधारण शक्तियो वाले

F ७००—F ८९९ असाधारण स्थान तथा वस्तुएँ

F ९००—F १०९९ असाधारण घटनाएँ

सातवाँ—G (ज) दैंयत

G १०—G ३९९ दैंयतो के प्रकार

G १०—G ९९ मनुष्यभक्षी तथा मनुष्य भक्षण

G १००—G १९९ महाकाय दैयत

G २००—G २९९ जादूगरनियाँ

G ३००—G ३९९ अन्य दैयत

G ४००—G ४९९ दैयत के चगुल मे फँसना

G ५००—G ५९९ दैयत परास्त

G ६००—G ६९९ दैयत विषयक अन्य अभिप्राय

आठवाँ—H (झ) परीक्षाएँ

H ०—H १९९ पहचान के लिए परीक्षाएँ पहचान लेना

H २००—H २९९ सच्चाई की परख

H ३००—H ४९९ विवाह के लिए परीक्षा

H ५००—H ८९९ चतुराई की परीक्षा

H ५००—H ५२९ चतुराई या योग्यता की परीक्षा

H ५३०—H ८९९ पहेलियाँ

H ९००—H ११९९ तेज की परीक्षा साहस के कार्य

H ९००—H ९९९ साहस के कामो को सौंपना तथा करना

H १०००—H ११९९ साहस के कामो के रूप

H १२००—H १३९९ तेज की परीक्षा खोज

H १२००—H १२४९ खोजो के साथ की स्थितियाँ

H १२५०—H १३९९ खोजो के रूप

H १४००—H १५९९ अन्य परीक्षाएँ

H १४००—H १४४९ भय की परीक्षा

H १४५०—H १४९९ चौकसी की परीक्षा

H १५००—H १५४६ सहिष्णुता तथा बच जाने की शक्ति की परीक्षा
H १५५०—H १५६६ चरित्र की परीक्षा
H १५७०—H १५६६ विविध परीक्षाएँ

नवाँ J (ट) बुद्धिमान तथा मूर्ख

J ०—J १६६ बुद्धिमानी (ज्ञान) की उपलब्धि तथा उस पर अधिकार
J २००—J १०६६ समझदारी तथा मूर्खता के आचरण
J २००—J ४६६ निर्वाचन
J ५००—J ५६६ दूर दृष्टि तथा निजी निर्णय
J ६००—J ७६६ पूर्व विचार
J ८००—J ८४६ अवसरानुकूलता
J ८५०—J ८६६ दुर्भाग्य मे धीरज
J ६००—J ६६६ अपदार्थता
J १०००—J १०६६ बुद्धिमानी के अन्य पहलू
J ११००—J १६६६ चतुराई
J १११०—J ११२६ चतुर व्यक्ति
J ११३०—J ११६६ कचहरी मे चतुराई
J १२००—J १२२६ चतुर आदमी दूसरे के छक्के छुडाता है
J १२३०—J १२४६ चतुर बाँट
J १२५०—J १४६६ चतुर व्यग
J १५००—J १६४६ चतुराई की चोटें
J १६५०—J १६६६ विविध चतुराई के कर्म
J १७००—J २७४६ मूर्ख (तथा अन्य अबुद्धिमान (बुद्धू) व्यक्ति)
J १७००—J १७४६ मूर्ख (सामान्य)
J १७५०—J १८४६ भद्दे भ्रम
J १८५०—J १६६६ तथ्यो की भद्दी प्रवचना
J २०००—J २०४६ भद्दा खोया-खोयापन
J २०५०—J २१६६ भद्दी सकुचित दृष्टि
J २२००—J २२५६ तर्कना का भद्दा अभाव
J २२६०—J २२६६ भद्दे वैज्ञानिक सिद्धान्त
J २३००—J २३४६ गप्पी (Gullible) मूर्ख
J २३५०—J २३६६ वाचाल मूर्ख
J २३७०—J २३६६ छिद्रान्वेषी मूर्ख
J २४००—J २४४६ मूर्खतापूर्ण नकल
J २४५०—J २४६६ शब्दत मूर्ख

J २५००—J २५४९ मूर्खता की अति
J २५५०—J २५९९ धन्यवाद देने वाले मूर्ख
J २६००—J २६४९ कायर मूर्ख
J २६५०—J २६९९ गडबड करने वाले (Bungling) मूर्ख
J २७००—J २७४९ सरल समस्या भी कठिन
J २७५०—J २७९९ बुद्धिमानी तथा मूर्खता के अन्य पहलू

दसवां—K (ठ) धोखे

K ०—K ९९ धोखे से प्रतियोगिता मे जीत
K १००—K २९९ धोखे के सौदे
K ३००—K ४९९ चोरियाँ तथा ठगई
K ५००—K ६९९ धोखे से बच निकलना
K ७००—K ७९९ धोखे से पकडना
K ८००—K ९९९ घातक धोखा
K १०००—K ११९९ स्वय के चोट पहुँचाने वाला धोखा
K १२००—K १२९९ अपदार्थता की स्थिति मे पहुँचाने वाला धोखा
K १३००—K १३९९ धोखे की शादी
K १४००—K १४९९ ठग (Dupe) की सम्पत्ति का नाश
K १५००—K १५९९ व्यभिचार विषयक धोखे
K १६००—K १६९९ धोखेबाज स्वय अपने जाल का शिकार
K १७००—K २०९९ (shams) (छद्मियो) बनावटो से धोखा
K १७००—K १७९९ उल्लू बनाकर धोखा
K १८००—K १८९९ छद्‌म या मरीचिका से धोखा
K १९००—K १९९९ छद्‌मधारी
K २०००—K २०९९ धूर्त्त (Imposters)
K २१००—K २१९९ मिथ्या अपवाद
K २२००—K २२९९ दुष्ट तथा विद्रोही
K २३००—K २३९९ अन्य धोखे

ग्यारहवां—L (ड) भाग्य का पलटना

L ०—L ९९ विजयी सबसे छोटा बालक
L १००—L १९९ अहोनहार नायक (नायिका)
L २००—L २९९ शील से पुरस्कार मिला
L ३००—L ३९९ दुर्बल की जीत
L ४००—L ४९९ घमण्ड का सिर नीचा

H १५००—H १५४९ सहिष्णुता तथा बच जाने की शक्ति की परीक्षा
H १५५०—H १५६९ चरित्र की परीक्षा
H १५७०—H १५९९ विविध परीक्षाएँ

नवाँ J (ट) बुद्धिमान तथा मूर्ख

J ०—J १९९ बुद्धिमानी (ज्ञान) की उपलब्धि तथा उस पर अधिकार
J २००—J १०९९ समझदारी तथा मूर्खता के आचरण
J २००—J ४९९ निर्वाचन
J ५००—J ५९९ दूर दृष्टि तथा निजी निर्णय
J ६००—J ७९९ पूर्व विचार
J ८००—J ८४९ अवसरानुकूलता
J ८५०—J ८९९ दुर्भाग्य मे धीरज
J ९००—J ९९९ अपदार्थता
J १०००—J १०९९ बुद्धिमानी के अन्य पहलू
J ११००—J १६९९ चतुराई
J १११०—J ११२९ चतुर व्यक्ति
J ११३०—J ११९९ कचहरी में चतुराई
J १२००—J १२२९ चतुर आदमी दूसरे के छक्के छुडाता है
J १२३०—J १२४९ चतुर बाँट
J १२५०—J १४९९ चतुर व्यग
J १५००—J १६४९ चतुराई की चोटें
J १६५०—J १६९९ विविध चतुराई के कर्म
J १७००—J २७४९ मूर्ख (तथा अन्य अबुद्धिमान (बुद्धू) व्यक्ति)
J १७००—J १७४९ मूर्ख (सामान्य)
J १७५०—J १८४९ भद्दे भ्रम
J १८५०—J १९९९ तथ्यो की भद्दी प्रवचना
J २०००—J २०४९ भद्दा खोया-खोयापन
J २०५०—J २१९९ भद्दी सकुचित दृष्टि
J २२००—J २२५९ तर्कना का भद्दा अभाव
J २२६०—J २२९९ भद्दे वैज्ञानिक सिद्धान्त
J २३००—J २३४९ गप्पी (Gullible) मूर्ख
J २३५०—J २३६९ वाचाल मूर्ख
J २३७०—J २३९९ छिद्रान्वेषी मूर्ख
J २४००—J २४४९ मूर्खतापूर्ण नकल
J २४५०—J २४९९ शब्दत मूर्ख

J २५००—J २५४९ मूर्खता की अति
J २५५०—J २५९९ धन्यवाद देने वाले मूर्ख
J २६००—J २६४९ कायर मूर्ख
J २६५०—J २६९९ गडबड करने वाले (Bungling) मूर्ख
J २७००—J २७४९ सरल समस्या भी कठिन
J २७५०—J २७९९ बुद्धिमानी तथा मूर्खता के अन्य पहलू

दसवां—K (ठ) धोखे

K ०—K ९९ धोखे से प्रतियोगिता मे जीत
K १००—K २९९ धोखे के सौदे
K ३००—K ४९९ चोरियाँ तथा ठगई
K ५००—K ६९९ धोखे से बच निकलना
K ७००—K ७९९ धोखे से पकडना
K ८००—K ९९९ घातक धोखा
K १०००—K ११९९ स्वय के चोट पहुँचाने वाला धोखा
K १२००—K १२९९ अपदार्थता की स्थिति मे पहुँचाने वाला धोखा
K १३००—K १३९९ धोखे की शादी
K १४००—K १४९९ ठग (Dupe) की सम्पत्ति का नाश
K १५००—K १५९९ व्यभिचार विषयक धोखे
K १६००—K १६९९ धोखेबाज स्वय अपने जाल का शिकार
K १७००—K २०९९ (shams) (छमियो) बनावटो से धोखा
K १७००—K १७९९ उल्लू बनाकर धोखा
K १८००—K १८९९ छद्म या मरीचिका से धोखा
K १९००—K १९९९ छद्मधारी
K २०००—K २०९९ धूर्त्त (Imposters)
K २१००—K २१९९ मिथ्या अपवाद
K २२००—K २२९९ दुष्ट तथा विद्रोही
K २३००—K २३९९ अन्य धोखे

ग्यारहवां—L (ड) भाग्य का पलटना

L ०—L ९९ विजयी सबसे छोटा बालक
L १००—L १९९ अहोनहार नायक (नायिका)
L २००—L २९९ शील से पुरस्कार मिला
L ३००—L ३९९ दुर्बल की जीत
L ४००—L ४९९ घमण्ड का सिर नीचा

बारहवां—M (ढ) भविष्य निदर्शन

M ०—M ९९ निर्णय तथा (डिकरियाँ) आदेश
M १००—M १९९ वचन तथा शपथ
M २००—M २९९ सौदे तथा वायदे
M ३००—M ३९९ भविष्यवाणियाँ
M ४००—M ४९९ शाप

तेरहवां—N (त) अवसर तथा भाग्य

N ०—N ९९ दाँव तथा जुए
N १००—N २९९ भाग्य तथा कर्म के मार्ग
N ३००—N ३९९ दुर्भाग्यपूर्ण घटनाएँ
N ४००—N ६९९ भाग्यपूर्ण घटनाएँ
N ४१०—N ४३९ भाग्यपूर्ण व्यावसायिक साहस
N ४४०—N ४९९ मूल्यवान रहस्य सीखे
N ५००—N ५९९ छिपे खजाने
N ६००—N ६९९ अन्य भाग्यपूर्ण घटनाएँ
N ७००—N ७९९ आकस्मिक मुठभेड़ें
N ८००—N ८९९ सहायक

चौदहवां—P (थ)

P ०—P ९९ राजकीय तथा अभिजात्य
P १००—P १९९ अन्य सामाजिक वर्ग
P २००—P २९९ कुटुम्ब
P ३००—P ३९९ अन्य सामाजिक सम्बन्ध
P ४००—P ४९९ व्यवसाय तथा व्यापार
P ५००—P ५९९ शासन
P ६००—P ६९९ प्रथाएँ
P ७००—P ७९९ समाज—विविध अभिप्राय

पन्द्रहवां—Q (द) पुरस्कार तथा दण्ड

Q १०—Q ९९ कामो पर पुरस्कार
Q १००—Q १९९ पुरस्कार के रूप
Q २००—Q ३९९ कामो पर दण्ड
Q ४००—Q ५९९ दण्ड के रूप

सोलहवां—R (ध) कैदी तथा

R ० —R ९९ कैद
R १००—R १९९ छुडाना

R २००—R २९९ बच निकलना तथा पीछा करना

R ३००—R ३९९ शरण तथा पुन बन्दी

सत्रहवाँ—S (न) अप्राकृतिक क्रूरता

S ० —S ९९ क्रूर नातेदार

S १००—S १९९ मन उमेठनेवाली हत्याएँ या अगभगीकरण

S २००—S २९९ क्रूर बलिदान

S ३००—S ३९९ परित्यक्त या मारा गया बालक

S ४००—४९९ क्रूर उत्पीडन

अठारहवाँ—T (प) यौन

T ० —T ९९ प्रेम

T १००—T १९९ विवाह

T २००—T २९९ विवाहित जीवन

T ३००—T ३९९ पवित्रता तथा सतीत्व तथा ब्रह्मचर्य

T ४००—T ४९९ अवैध यौन सम्बन्ध

T ५०० T ५९९ गर्भधारण तथा जन्म

T ६००—T ६९९ बच्चो का पोषण

उन्नीसवाँ—U (फ) जीवन का रूप

U ०—U ९९ जीवन की विषमताएँ

U १००—U २९९ जीवन के रूप—विविध

बीसवाँ V (ब) धर्म

V ० —V ९९ धार्मिक सेवाएँ

V १००—V १९९ धार्मिक भवन तथा वस्तुएँ

V २००—V २९९ पावन व्यक्ति

V ३००—V ३९९ धार्मिक विश्वास

V ४००—V ४४९ दान तथा उदारता

V ४५०—V ४९९ धार्मिक समुदाय (orders)

V ५००—V ५९९ धार्मिक अभिप्राय—विविध

इक्कीसवाँ W (भ) चरित्र की विशेषताएँ

W ० —W ९९ चरित्र की अच्छी विशेषताएँ

W १००—W १९९ चरित्र की बुरी विशेषताएँ

W २००—W २९९ चरित्र की विशेषताएँ—अन्य तथा विविध

बाईसवाँ X (म) हास्य

X ० —X ९९ विकलस्थता मे हास्य

X १००—X १९९ लुज-पुजता (शारीरिक) में हास्य

X २००—X ५९९ सामाजिक वर्गों या जातियो का हास्य

X २००—X २९९ व्यापारियो से व्यवहार मे हास्य

X ३००—X ४९९ व्यवसायो से व्यवहार मे हास्य

X ५००—X ५९९ अन्य सामाजिक वर्गो के विषय मे हास्य

X ६००—X ६९९ वशो और जातियो के सम्बन्धित हास्य

X ७००—X ७९९ यौन सम्बन्धी हास्य

X ८००—X ८९९ पियक्कडपन पर हास्य

X ९००—X १०९९ झूठ और गप्पो के हास्य

तेईसवां Z (य) अभि ाो के अन्य विविध समूह

Z ० —Z ९९ गुर (formula)

Z १००—Z १९९ प्रतीकात्मकता

Z २००—Z २९९ वीर (heroes)

Z ३००—Z ३९९ अनोखे अपवाद

Z ४००— अवर्गीकृत अभिप्राय

इतने अध्यायो मे सहस्रश अभिप्राय पुस्तकालय की सूचीकरण प्रणाली के अनुसरण पर सँजो दिये गये हैं। इस प्रणाली से सबसे बडा लाभ यह है कि और भी नये अभिप्राय अनुक्रमणिका मे ठीक-ठीक स्थानो पर जमाये जा सकते हैं। जिससे अध्ययनकर्ता को उन्हे खोजने मे भी कोई विशेष प्रयत्न नही करना पडेगा। लोक कहानियो के अध्ययन की यह अन्तरराष्ट्रीय व्यवस्थित प्रणाली बहुत महत्त्वपूर्ण है।

प्रथम सस्करण की उक्त सूची मे स्टिथ थामसन ने I, O तथा Y छोड दिये थे। इनमे से आगे दूसरे सस्करण (J) मे कुछ परिवर्तन करके I (इ) को बढा दिया है। अब (I) इ तथा J (ट) का रूप यह हो गया है

I (इ)—

I ०—I १०९९ बुद्धिमान सम्बन्धी प्रसग के

I ०—I १९९ विद्योपार्जन कथातन्तु

I २००—I ५९९ ठीक चुनाव एव विवेक

I ६००—I ७९९ दूरदर्शिता

I ८००—I ८९९ बदलती परिस्थितियो मे निर्वाह तथा सकट मे आश्वस्त

I ९००—I ९९९ विद्या से विनय

J (ट)—

J ११००—J १९९९ चातुर्यपूर्ण प्रसग

J ११३०—J ११९९ न्यायालय मे बुद्धिमानी

J १२३०—J १२४९ भेदनीति

J १२५०—J १४९९ वाक् वैदग्ध्य

J १७००—J २७४९ मूर्ख एव शेखचिल्ली

अभिप्रायो के अध्ययन मे इस अनुक्रमणिका की उपयोगिता स्वयसिद्ध है।

डा० सरीन ने रोमन वर्णमाला के स्थान पर देवनागरी वर्णो के उपयोग के लिए जो योजना अपनायी है ऊपर प्रत्येक रोमन वर्ण के साथ देवनागरी वर्ण उसी योजना से दिया गया है। उसे यहाँ पुन दिया जा रहा है

क	A	ख	B	ग	C	घ	D
च	E	छ	F	ज	G	छ	H
इ	I	ट	J	ठ	K	ड	L
ढ	M	त	N	उ	O	थ	P
द	Q	ध	R	न	S	प	T
फ	U	ब	V	भ	W	म	X
व	Y	य	Z				

ग्यारहवाँ अध्याय

लोक-कहानी का अध्ययन

प्रासगिक

लोक-साहित्य के अध्ययन की कुछ पद्धतियो पर अन्यत्र प्रकाश डाला गया है। इस कथा विषयक प्रसग को समाप्त करने से पूर्व यह आवश्यकता प्रतीत होती है कि किसी एक कहानी का कुछ विस्तृत अध्ययन उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जाय। यहाँ यह प्रयत्न प्रस्तुत किया जा रहा है।

इस अध्ययन मे साहित्यिक और लोक-साहित्यिक दोनो ही क्षेत्रो को लिया गया है। इससे यह विदित हो सकेगा कि किसी साहित्यिक उल्लेख को लोक-साहित्यिक अध्ययन के लिए किस रूप मे ग्रहण किया जा सकता है। यह बात स्मरण रखने योग्य है कि यहाँ जो साहित्यिक उल्लेख लिया गया है, वह एक पूर्ण लोक-कथा से सम्बन्धित है, किन्तु साहित्य मे लोक-साहित्यिक उल्लेख कई प्रकार के हो सकते है—कही खण्ड रूप मे तो कही मात्र सन्दर्भ के रूप मे।

फिर इस अध्ययन मे नीचे लिखी पद्धति से विचार किया गया है— और उसमे ये पग रखे गये हैं—

१ **सामान्य परिचय**—साहित्यिक उल्लेख का

२ **साहित्यिक रूपान्तर**—इसमे साहित्य कुछ अन्य प्रमुख उल्लेखो का, कहानी की तीलियो का विश्लेषण करके उनकी तुलना करते हुए, निदर्शन किया गया है।

३ **कहानी के लोक रूपो के अनुसन्धान का वृत्त**—अब इस कहानी के लोकरूपो का जो सकलन हुआ है, उसका विवरण दिया गया है। जिससे उसका कुछ भौगोलिक और ऐतिहासिक विस्तार दिखायी पड जाय।

४ **कथा मानक-रूप**—तब समस्त सकलन-विवरणों के उल्लेखो के निष्कर्ष रूप इस कहानी का जो कथा मानक-रूप सिद्ध होता है, उसे प्रस्तुत किया गया है। यह कथा मानक-रूप अथवा Tale type अन्तर्राष्ट्रीय रूप है, इसके लिए स्टिथ थामसन का प्रमाण दिया गया है। यह कथा मानक-रूप कहानी की विविध तीलियो के पृथक्-पृथक् उल्लेख के साथ दिया गया है।

५ तुलना से निष्कर्ष—कथा मानक-रूप की तीलियो से विविध तुलनाएँ करने पर जो निष्कर्ष निकलते है उनका विवेचन अब अपेक्षित था, यहाँ उसे प्रस्तुत किया गया है।

६ मूल-कहानी के मूल अभिप्राय—अब इस तुलनात्मक विवेचन से इस निष्कष पर पहुँचा जा सकता है कि इस कहानी के मूल अभिप्राय कुल कितने रहे होगे।

७ कहानी पर विचारक सम्प्रदाय—बहुत सक्षेप मे यह भी सकेत किया गया है कि इस कहानी पर किन सप्रदायो ने अध्ययन किया है।

राजवल्लभ कृत पद्मावती चरित की लोककथा

श्री अगरचन्द नाहटा ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका अक—१, वर्ष—५६, सवत २०११ मे राजवल्लभ कृत 'पद्मावती चरित' का सक्षिप्त परिचय दिया है। उसके अन्त मे उन्होने लिखा है कि यह कोई लोक-कथा है, जिसे उस जैन कवि ने अपने काव्य का विषय बनाया है। उन्होने सम्भावना के रूप मे अपना मत प्रकट किया है, पर यह कहना समुचित होगा कि निश्चय ही यह एक लोक-कथा है और बहुत ही महत्त्वपूर्ण लोक-कथा है। लोक-कथा के विद्वानो ने इस कथा की बहुत चर्चा की है। हिन्दी की प्रसिद्ध पत्रिका 'ब्रजभारती' मे मैंने सबसे पहले इस पर कुछ विचार हिन्दी मे प्रस्तुत किये थे। ब्रज मे यह कहानी प्रचलित है, और इसे 'यारु होय तौ ऐसौ होइ' शीर्षक से ब्रजभारती (१००२। २-४) मे पहले प्रकाशित किया था, फिर ब्रज-साहित्य मण्डल के प्रकाशन 'ब्रज की लोक कहानियाँ' सग्रह मे भी इसे सम्मिलित किया गया। 'ब्रज लोक-साहित्य के अध्ययन' मे भी इस कहानी पर विचार किया गया है।[1] सस्कृत के कथा-सरित्सागर मे इसका लिखित रूप हमे मिल जाता है। कथा-सरित्सागर के 'मदन मचुका' शीर्षक छठे खण्ड के अट्ठाइसवें अध्याय मे राजकुमार और सौदागर के पुत्र की कहानी इसी कहानी का एक लिपिबद्ध रूप है। हिन्दी मे मध्ययुग में लोक-कथाओ की ओर कवियो का ध्यान गया था। अनेक लोक-कथाओ से प्रेम और अचरज के कथानक लेकर काव्यग्रथ लिखे गये।[2] इनमें विश्व मे प्रचलित और मान्य कई महत्त्वपूर्ण कहानियो के रूप तो मिल गये, पर यह इतनी महत्त्वपूर्ण

---

[1] बुन्देलखण्ड से इस कहानी का सग्रह श्री शिव सहाय चतुर्वेदी जी ने 'मित्रो की प्रीति' शीर्षक से 'बुन्देलखण्ड की ग्राम-कहानियाँ' नामक पुस्तक मे किया है। इस सग्रह की प्रस्तावना मे विद्वद्वर श्री कृष्णानन्द गुप्त ने सक्षेप मे कुछ विचार किया है। (पृष्ठ २८)

[2] इन 'लोक-कथाओ' के ग्रन्थो और उनके विषय का सक्षिप्त परिचय निम्न-लिखित पुस्तको से मिल सकता है १ व्रज लोक-साहित्य का अध्ययन, चतुर्थ अध्याय लोक-कहानियाँ। २ हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य। ३ सूफी काव्य सग्रह। ४ कवि और काव्य। ५ 'हिन्दी के विकास मे अपभ्रंश का योग' इस पुस्तक मे भी कुछ उल्लेख है।

कहानी किसी कवि ने ग्रन्थ-रचना के लिए नही चुनी, इस पर किंचित् आश्चर्य था। अनुसधानमार्तण्ड श्री नाहटा जी ने 'पद्मावती चरित' का परिचय देकर जैसे यह घोपणा कर दी कि आश्चर्य की बात नही, सस्कृत मे यह लोक-कथा भी है, जैन साहित्य मे विशेपत। अत आज इस लोक-कथा पर पुन कुछ विस्तार से विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है।

साहित्यिक रूपान्तर (कहानी की तोलियो का विश्लेषण)

पहले तो हम इस कथा के साहित्यिक रूपो की ही तुलना करेंगे।

कथासरित्सागर	पद्मावती चरित
१ पुष्करावती के राजा गुहसेन के पुत्र और सौदागर ब्रह्मदत्त के पुत्र मित्र हो गये।	१ कलिंग के राजा वीरसेन के पुत्र चित्रसेन की मन्त्री बुद्धिसार के पुत्र रत्नसार से मित्रता।
२ दोनो विवाह के निमित्त यात्रा करते हुए मार्ग मे एक नदी के किनारे ठहरे।	२ अ—चित्रसेन की सुन्दरता के कारण जनता परेशान अत चित्रसेन को राज्य-निष्कासन, मन्त्री-पुत्र भी साथ। रात एक वटवृक्ष के नीचे। आ—रात को किन्नरियो की ध्वनि से आकर्पित होकर ऋपभदेव के मन्दिर मे जाकर एक पुतली को देखकर राजकुमार विमोहित। मूर्ति के रूपवाली राजकुमारी से विवाह करने की हठ। इ—एक ज्ञानी मुनि आये—उन्होंने वताया कि यह मूर्ति पद्मपुर के राजा पद्मरथ की पुत्री पद्मावती की है। ई—वह पुरुप द्वेपिणी है। पुरुष द्वेपिणी के लिए एक पूर्व-जन्म मे हस-हसिनी की कथा। वह हसिनी थी, यह राजकुमार था हस। पुरुप-द्वेप दूर करने का उपाय। पूर्व-जन्म की घटना का चित्र दिखाया जाय, उसने हस के सम्वन्ध मे उसका भ्रम दूर होगा और वह पुरुप-द्वेप त्याग देगी। उ—वताये उपायो से पद्मावती की प्राप्ति।

			ऊ—विदा कराके तीनो का एक वृक्ष के नीचे पडाव ।
३	वहाँ एक कहानी कहते-कहते कहानी अधूरी छोडकर राजकुमार सो गया ।	३	राजकुमार और पद्मावती सो गये ।
४	सौदागर पुत्र जागता रहा ।	४	मन्त्री पुत्र जागता रहा ।
५	उसने दो क्रुद्ध आवाजें सुनी कि कहानी अधूरी छोडने के दण्ड-स्वरूप इसे—	५	वृक्ष पर यक्ष-यक्षिणी की बातें मन्त्री पुत्र ने सुनी कि इसकी विमाता आ गयी है वह इसे मारने के तीन उपाय करेगी—
(१)	हार दिखायी पडेगा जिसे यह पहन लेगा तो गला घुट जायगा और मर जायगा और इससे बच गया तो—	(१)	नगर-प्रवेश से पूर्व एक दुष्ट घोडा भेजेगी ।
(२)	एक आम का पेड मिलेगा, उसके आम खायगा और मर जायगा । और इससे भी बचा तो—	(२)	यन्त्र से नगर-प्रवेश पर द्वार गिराकर मृत्यु ।
(३)	विवाह के समय घर मे घुसते समय द्वार गिर पडेगा और मर जायगा । इससे भी बचा तो—	(३)	विप-मिश्रित भोजन (लड्डू) देकर मृत्यु तथा इन सबसे बच निकला तो—
(४)	रात्रि मे शयन कक्ष में आने पर सौ बार छीकेगा, और यदि वहाँ उपस्थित कोई व्यक्ति इसके उतनी बार 'ईश्वर रक्षा करें' नही कहेगा तो यह मर जायगा ।	(४)	रात मे सप डस लेगा ।
(५)	जो व्यक्ति हमारी बातें सुनकर उसे रक्षार्थ ये भेद बता देगा, वह भी मर जायगा ।	(५)	जो व्यक्ति सुन लेगा और बातें प्रकट कर देगा तो पत्थर हो जायगा ।
(६)	सौदागर पुत्र ने चारो सकटो से रक्षा की । अन्तिम बार रक्षा करने के लिए वह पलग के नीचे लेटा रहा । सौ बार	(६)	मन्त्री पुत्र ने चारो सकटो से रक्षा की— १—द्वार से एकदम पीछे हटाके २—वैसे ही दूसरे लड्डू परोसकर ३—रात्रि में पलग के पास पहरा देकर सर्प को मारकर ।

कहानी किसी कवि ने ग्रन्थ-रचना के लिए नही चुनी, इस पर किंचित् आश्चर्य था। अनुसधानमार्तण्ड श्री नाहटा जी ने 'पद्मावती चरित' का परिचय देकर जैसे यह घोषणा कर दी कि आश्चर्य की बात नही, सस्कृत मे यह लोक-कथा भी है, जैन साहित्य मे विशेषत। अत आज इस लोक-कथा पर पुन कुछ विस्तार से विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है।

साहित्यिक रूपान्तर (कहानी की तीलियो का विश्लेषण)

पहले तो हम इस कथा के साहित्यिक रूपो की ही तुलना करेंगे।

	कथासरित्सागर		पद्मावती चरित
१	पुष्करावती के राजा गुहसेन के पुत्र और सौदागर ब्रह्मदत्त के पुत्र मित्र हो गये।	१	कलिंग के राजा वीरसेन के पुत्र चित्रसेन की मन्त्री बुद्धिसार के पुत्र रत्नसार से मित्रता।
२	दोनो विवाह के निमित्त यात्रा करते हुए मार्ग मे एक नदी के किनारे ठहरे।	२	अ—चित्रसेन की सुन्दरता के कारण जनता परेशान अत चित्रसेन को राज्य-निष्कासन, मन्त्री-पुत्र भी साथ। रात एक वटवृक्ष के नीचे। आ—रात को किन्नरियो की ध्वनि से आकर्षित होकर ऋषभदेव के मन्दिर मे जाकर एक पुतली को देखकर राजकुमार विमोहित। मूर्ति के रूपवाली राजकुमारी से विवाह करने की हठ। इ—एक ज्ञानी मुनि आये—उन्होने बताया कि यह मूर्ति पद्मपुर के राजा पद्मरथ की पुत्री पद्मावती की है। ई—वह पुरुष द्वेषिणी है। पुरुष द्वेपिणी के लिए एक पूर्व-जन्म मे हस-हसिनी की कथा। वह हसिनी थी, यह राजकुमार था हस। पुरुप-द्वेप दूर करने का उपाय। पूर्व-जन्म की घटना का चित्र दिखाया जाय, उससे हस के सम्बन्ध मे उसका भ्रम दूर होगा और वह पुरुप-द्वेप त्याग देगी। उ—बताये उपायो से पद्मावती की प्राप्ति।

			ऊ—विदा कराके तीनो का एक वृक्ष के नीचे पडाव ।
३	वहाँ एक कहानी कहते-कहते कहानी अधूरी छोडकर राजकुमार सो गया ।	३	राजकुमार और पद्मावती सो गये ।
४	सौदागर पुत्र जागता रहा ।	४	मन्त्री पुत्र जागता रहा ।
५	उसने दो क्रुद्ध आवाजें सुनी कि कहानी अधूरी छोडने के दण्ड-स्वरूप इसे—	५	वृक्ष पर यक्ष-यक्षिणी की बातें मन्त्री पुत्र ने सुनी कि इसकी विमाता आ गयी है वह इसे मारने के तीन उपाय करेगी—
	(१) हार दिखायी पडेगा जिसे यह पहन लेगा तो गला घुट जायगा और मर जायगा और इससे बच गया तो—		(१) नगर-प्रवेश से पूर्व एक दुष्ट घोडा भेजेगी ।
	(२) एक आम का पेड मिलेगा, उसके आम खायगा और मर जायगा । और इससे भी बचा तो—		(२) यन्त्र से नगर-प्रवेश पर द्वार गिराकर मृत्यु ।
	(३) विवाह के समय घर मे घुसते समय द्वार गिर पडेगा और मर जायगा । इससे भी बचा तो—		(३) विष-मिश्रित भोजन (लड्डू) देकर मृत्यु तथा इन सबसे बच निकला तो—
	(४) रात्रि मे शयन कक्ष मे आने पर सौ बार छीकेगा, और यदि वहाँ उपस्थित कोई व्यक्ति इसके उतनी बार 'ईश्वर रक्षा करें' नही कहेगा तो यह मर जायगा ।		(४) रात मे सर्प डस लेगा ।
	(५) जो व्यक्ति हमारी बातें सुनकर उसे रक्षार्थ ये भेद बता देगा, वह भी मर जायगा ।		(५) जो व्यक्ति सुन लेगा और बातें प्रकट कर देगा तो पत्थर हो जायगा ।
	(६) सौदागर पुत्र ने चारो संकटो से रक्षा की । अन्तिम बार रक्षा करने के लिए वह पलग के नीचे लेटा रहा । सौ बार		(६) मन्त्री पुत्र ने चारो संकटों से रक्षा की— १—द्वार से एकदम पीछे हटाके २—वैसे ही दुष्ट लड्डू फेंककर ३—रात्रि में पलंग के पास पहरा देकर सर्प को मारकर ।

(७) 'ईश्वर रक्षा करे' कह चुकने के बाद जब वह चुपचाप वहाँ से खिसकने लगा, तभी राजकुमार ने देख लिया।

(८) उसे राजकुमार ने वन्दी बना लिया और प्राणदण्ड के लिए आज्ञा दी।

(९) तब मित्र ने समस्त रहस्य समझाया और सभी प्रसन्न होकर रहने लगे।

(७) सर्प के विप मिश्रित रक्त की बूँद पद्मावती की जाँघ पर जा पडी। उसे हानिकर समझ वस्त्र के अचल से पोछने के समय चित्रसेन ने देख लिया।

(८) चित्रसेन ने आग्रह किया कि वह बताये कि उसने उसकी स्त्री के ऊपर इस प्रकार हाथ क्यो रखा।

(९) विवश हो मन्त्री ने रहस्य बताया और वह पत्थर का हो गया।

(१०) चित्रसेन यक्ष वाले वृक्ष के नीचे जाकर सोया और यक्ष-यक्षिणी की बातो से जाना कि विशुद्ध चरित्र वाली सती स्त्री अपने नवजात पुत्र को गोद मे ले उस पापाण मूर्ति का स्पर्श करे तो वह स्वस्थ हो जायगा।

(११) रानी पद्मावती के पुत्र हुआ। उसने स्पर्श करके मन्त्री को पुनर्जीवित किया।

कहानी के लोक रूपो के अनुसन्धान का वृत्त

वेन्फी[1] ने इस कहानी को हितोपदेश के स्वामिभक्त सेवक वीरवर के तुल्य माना है। यह वीरवर की कहानी वैताल पचविंशति मे भी मिलती है। वीरवर की पचविंशति वाली कहानी मे वीरवर एक स्त्री का रुदन सुनता है। यह स्त्री राजा की भाग्यलक्ष्मी है, जो राजा का परित्याग करने को प्रस्तुत है। उसे सन्तुष्ट कर राजा मे ही अनुरक्त रखने के लिए वह अपने पुत्र का और अपना वलिदान कर देता है। इसे राजा छिपकर देखता है। वह स्वय भी अपनी वलि चढा देने को सन्नद्ध होता है

---

1 वेन्फी का समय है १८०९ से १८८१। इसका जन्म नोएरलैन (हनोवर) मे हुआ था। यह जर्मन था, और सस्कृत का विद्वान तथा भाषा तत्त्वविद् था। इसकी प्रमुख रचनाएँ है पचतन्त्र (अनुवाद), यूनानी धातुओ का कोप, सस्कृत भाषा का व्याकरण तथा सस्कृत-अग्रेजी कोप। वेन्फी लोकवार्ता क्षेत्र मे वहुत प्रसिद्ध है। इसने लोकवार्ता तत्त्व (फोक लोरिस्टिक्स) के भारतीय सम्प्रदाय (इडिक स्कूल) का प्रवर्तन किया था। इसकी मान्यता थी कि लोक कहानियो का जन्म (कुछ फेविलो को छोडकर) भारत मे हुआ है, और वही से वे अन्य देशो मे गयी है। इसने उनके कुछ विविध मार्गो का भी निर्देशन किया, जिनसे होकर कि ये कहानियाँ गयी। (दे० स्टैण्डर्ड डिक्सनरी ऑव फोकलोर, वेन्फी पर निवन्ध)।

तभी दुर्गा प्रकट होकर उसे रोक देती है और बीरवर तथा उसके बच्चे को जीवित कर देती है।[१] (देखिए, दि ओसिन ऑव स्टोरी—टानी तथा पेन्जर वाला सस्करण)

अभी तक तो अनुसधित्सुओ को इस कहानी के इतने ही लिखित रूप मिले हैं। मेरा अनुमान है कि हिन्दी मे भी इस कहानी को लेकर प्रेमगाथा काव्य रूप मे लिखित साहित्य उपलब्ध होगा। क्योकि इसके मौखिक रूप भारत भर मे प्रचुर मात्रा मे मिलते हैं।

इस कहानी का मौखिक रूप ग्रिम के द्वारा सग्रहीत जर्मन कहानियो मे देर ट्रिपुइ जोहेन्नेस मे मिलता है। इसको अग्रेजी मे 'फेथफुल जोह्न' नाम दिया गया है। यह पेन्टामेरोन (Pentamerone) मे "द क्रो" नाम से है। वर्नार्ड स्किम्दित के ग्रिस्कस्चे मार्खे मे तीसरी सख्या की कहानी इसी के अनुरूप है। इस कहानी मे तीन मोइरइ (moirei) हैं। उनसे भावी सकटो की सूचना मिलती है। राजकुमार की बहिन, राजकुमार को बचपन मे जलने से, तथा गिरने से बचाती है, और विवाह के दिन सर्प से रक्षा करती है।[२] पेड्रोसो के 'पोर्तुगीज फोक टेल्स' मे भी ऐसी कहानी है।

भारत में इसका सग्रह कुमारी फ्रेरे (Miss Frere) ने अपनी पुस्तक 'ओल्ड डेकन डेज' मे किया है। नटेश शास्त्री के सग्रह ग्रथ 'ड्रविडियन नाइट्स' मे भी इसका रूपान्तर है। लालविहारी दे के सग्रह 'फोकटेल्स ऑव बगाल' मे इसका शीर्षक 'फकीरचन्द' है। उडीसा मे भी यह प्रमुख कहानियो मे है इसमे सन्देह नही। कुजविहारीदास जी ने 'स्टडी ऑव ओरिस्सन फोकलोर' मे इसका सक्षिप्त वृत्त दिया है।[३]

इस सक्षिप्त विवरण से स्पष्ट है कि यह लोक कहानी अत्यन्त महत्त्वपूण है। इसके सम्बन्ध मे लोकवार्ता तत्त्व के विद्वानो का कहना है कि इसमे मिलने वाला स्वामिभक्त सेवक विपयक अभिप्राय लगभग दो हजार वर्ष पूर्व भारत से यूरोप मे गया होगा।[४] जिसका स्पष्ट अर्थ है कि इस कहानी के इस मूल अभिप्राय का जन्म भारत मे हुआ होगा।

सर जी० काक्स महोदय ने 'माइथालाजी ऑव दि आर्यन नेशन्स' मे इस कहानी पर विस्तारपूर्वक विचार किया है और वे इस निष्कर्प पर पहुँचे कि इस

१ यह कहानी ऐतिहासिक लोककथा के रूप मे गुजरात मे जगदेव पँवार के विषय मे प्रचलित है। सिद्धराज जयसिंह के लिए जगदेव देवी पर अपने पुत्र-कलत्र की वलि चढा देता है, और अपनी भी। ब्रज मे प्रचलित लखटकिया की कहानी के किसी-किसी रूपान्तर मे भी यह अभिप्राय मिलता है। 'विक्रमाजीत' की कहानी मे भी यह अभिप्राय आता है।

२ देखिए, स्टैण्डर्ड डिक्सनरी ऑव फोकलोर—निवन्ध फेथफुल जोह्न, पृष्ठ ३६६।

३ देखिए, स्टडी ऑव ओरिस्सन फोकलोर, पृष्ठ ११।

४ इसी प्रकार की कहानी 'व्रज' मे तथा भारत मे अन्यत्र लोक-प्रचलित है, और वहुधा 'भैयादूज' के दिन कही जाती है।

कहानी का मूल ढाँचा इतिहासपूर्व युग मे उस समय निर्मित हुआ होगा जब आर्य लोग अपने मूल स्थान मे रहते होगे और यूरोप तथा भारत मे फैले नही होगे। इस दृष्टि से इस लोक-कहानी का जन्म काल दूर अतीतकाल मे चला जाता है जबकि आधुनिक आर्य जातियो की सभ्यता का नाम भी नही था।

मैंने इस कहानी के ब्रज के रूपान्तर पर विचार करते समय लिखा था कि पहली दृष्टि मे यह कहानी हमे तीन छोटी मौलिक कहानियो का मिश्रण प्रतीत होती है। एक तो साँप को मारने और रानी को पाने की, दूसरी दूती और मनिहार की, तीसरी तोते की भविष्यवाणी और बढई के कुमार के पत्थर होने की।

किन्तु भारत के अन्य जनपदो मे तथा जर्मनी आदि मे इस कहानी के इस पूर्णरूप को देखकर मैंने यह विचार त्याग दिया था। इस कहानी के समस्त उपलब्ध रूपो पर विचार करके स्टिथ थामसन ने इसका जो आदर्श रूप खडा किया है वह उसने अपनी पुस्तक 'द फोक टेल' मे दिया है। उसने सबसे आरम्भ मे ही लिखा है—

"समस्त लोक कहानियो मे सबसे अधिक रोचक एक है स्वामिभक्त जोह्न (५१६वी कोटि) जिसका सम्बन्ध एक नौकर की स्वामिभक्ति से है, यद्यपि इस कहानी के कुछ सस्करणो मे कभी-कभी नौकर के स्थान पर भाई, धर्म भाई अथवा हितू मित्र का उल्लेख मिलता है।"

कहानी का कथा-मानक रूप (Tale Type)

(उसकी तीलियो के विश्लेषण के साथ)

अब इस कहानी का आदर्श रूप यह होता है—

१ एक राजकुमार और एक नौकर साथ-साथ पलते हैं।

२ अपने पिता की अनुपस्थिति मे कहानी नायक राजकुमार स्वामिभक्त नौकर के मना करने पर भी एक वर्जित कक्ष मे प्रवेश करता है।

३ उस कक्ष मे वह एक सुन्दरी का चित्र देखता है और उस पर विमोहित होकर उसे प्राप्त करने का सकल्प करता है।

४ अपने सहायक (नौकर, भाई, मित्र आदि) की सहायता से वह उसे प्राप्त कर लेता है—या तो १ सौदागरी जहाज मे धोखे से ले जाकर
या २ स्त्री का वेष धारण कर उसके पास पहुँचकर
या ३ किसी भूमिगर्भ के मार्ग से उसके पास पहुँचकर
या ४ नौकर (सहायक) के दूतत्व से

५ घर लौटने के मार्ग मे दम्पत्ति तीन प्राण-सकटो से वचकर निकलते हैं।
ये सकट या तो १ वधू के पिता द्वारा प्रस्तुत किये जाते हैं।
या २ नायक के पिता द्वारा
या ३ नायक की सौतेली माता द्वारा

६ तीन सकटो की कल्पना मे बहुत भेद है—जैसे—
१ विषैला भोजन
२ विषैला वस्त्र
३ डाकुओ से मुठभेड
४ डूबता मनुष्य
५ नदी पार करना
६ किसी द्वार के नीचे से जाने पर द्वार का गिरना

७ अन्तिम सकट है दम्पत्ति के शयनकक्ष मे साँप का प्रवेश।

८ सहायक को इन सकटो की सूचना साधारणत' पक्षियो के वार्तालाप द्वारा मिलती है। वह इनसे अपने नायक को बचाता है।

९ अन्तिम साँप वाले सकट से रक्षा करते समय उसे नायक की सोती पत्नी का अग स्पर्श करना पडता है और पकड लिया जाता है।

१० वह अपनी सफाई देने मे रहस्य का उद्‌घाटन करता है और पत्थर हो जाता है।

११ राजकुमार के अपने बच्चो के रक्त-स्पर्श से ही वह स्वामिभक्त पुन अपना मानव शरीर प्राप्त करता है। उडीसा की कहानी मे नायक शिलारूप सहायक को बारह वर्ष तक सिर पर रखकर रुदन करता हुआ घूमता है। तब एक विशिष्ट पक्षी स्वर्ग से अमृत लाकर पाषाण मित्र को जीवित कर देता है।

१२ वे मृत पुत्र भी स्वामिभक्त के प्रयत्न से जीवित हो उठते हैं।

कथा मानक-रूप की तुलना से निष्कर्ष

(उसके अभिप्रायो पर विचार ऐतिहासिक दृष्टि भी)

इस आदर्श रूप से तुलना करने पर एक बात तो यह विदित होती है कि प्रेयसी को प्राप्त करने और प्रेयसी के निवास की कल्पनाएँ विविध हैं और भिन्न-भिन्न हैं

१—व्रज और वगाली कहानी मे वह स्त्री साँप की बन्दिनी है। सर्पकन्या भी हो सकती है। वह स्त्री राक्षस के वन्धन मे भी हो सकती है।

वस्तुत प्रेयसी को प्राप्त करने की कहानी एक स्वतन्त्र कहानी है और उसका

विकास अपनी तरह स्वतन्त्र रूप से हुआ है ऐसा विदित होता है।[१] इस कहानी मे निम्नलिखित अभिप्राय आते है—

ख[२]—किसी मनुष्येतर प्राणी के अधीन एक सुन्दरी राक्षस, साँप आदि।

आ[३]—उसका निवास स्थान जल से आवृत। यथा—द्वीप, समुद्र गर्भ, या तालाब-कूप गर्भ।

इ—उस सुन्दरी की किसी वस्तु से नायक आकर्षित। यथा—एक जूती, एक लट, चित्र, मूर्ति, चौपड की गोट आदि।

ई[४]—नायक जलमार्ग मे होकर सुन्दरी के पास पहुँचने का साधन किसी सहायक से पाकर अकेला सुन्दरी के पास पहुँचता है। यथा—मणि (जिससे समुद्र का जल फटकर मार्ग देता है) या जहाज।

उ—नायक सुन्दरी को या तो शय्या पर सोते हुए अथवा मृत पाता है और विधि से उसे जगाता है अथवा जीवित करता है।

---

१ इस अनुमान के लिए निम्नलिखित कारण दिये जा सकते हैं—(१) यह अश कथा सरित्सागर की कहानी मे नही। इसकी लोकपरम्परा भी रही है जो बुन्देलखण्ड से प्राप्त हुई है। 'मित्रो की प्रीति' नाम की कहानी में इस कथाश का उल्लेख नहीं। बुन्देलखण्ड की कहानी 'कथा सरित्सागर' की परम्परा मे है। दे० बुन्देलखण्ड की ग्राम कहानियाँ। (२) इस कथाश के वृत्त का अगे के सकटो वाले वृत्त से कोई अनिवार्य सम्बन्ध नही। (३) श्री स्टिथ थामसन द्वारा प्रस्तुत आदर्श रूप मे इस वृत्त का उल्लेख केवल यही सिद्ध करता है कि वह रूप विशेष व्याप्त है। इसका अर्थ केवल यह है कि इसका प्रसार तभी हुआ होगा जब यह वृत्ताश उसमे मिल गया होगा। उसके मूल का सकेत उसमे नही है।

२ यह अभिप्राय (ई० पूर्व) २०००-१७०० पूर्व की मिश्र की कहानी मे मिलता है। उस कहानी मे यह मनुष्येतर प्राणी सर्पेण्ट=नाग है। यह प्राणी नागदेव मे रहने वाली दिव्यात्माओ (स्प्रिट्स) का राजा है। उसके पास कभी एक मर्त्य सुन्दरी भी थी।

३ उक्त नागराज दूर समुद्र मे एक द्वीप मे रहता था। उसी द्वीप मे उसके साथ वह मर्त्य सुन्दरी थी।

४ नायक एक मनुष्य है जो जहाज टूट जाने पर बचकर बहता-बहता उस नाग के द्वीप पर जा पहुँचता है। इस मिस्र की २००० ई० पू० की कहानी के सम्बन्ध मे स्टिथ थामसन ने यह मन्तव्य दिया है—"यह कहानी ऐसी उलझी हुई है कि यह प्रतीत होता है कि जिस मनुष्य ने यह कहानी आज रूपान्तरित की है वह प्राचीन कहानी की अभिप्राय-व्यवस्था को ठीक-ठीक समझ नही सका था। उस विशालकाय नाग के समक्ष, इस रूपान्तरकार ने, नायक को अत्यन्त भयत्रस्त बताया है जिसने नायक पर बहुत दया दिखायी तथा उस (मर्त्य) सुन्दरी का समावेश क्यो हुआ है इसकी कोई न तो व्याख्या ही है, न इस सूत्र का समुचित विकास ही हुआ है।" देखिए, 'द फोकटेल्स', पृ० २७३।

ऊ—सुन्दरी उसे अपने पोषक प्राणी के मारने की विधि बनाती है, जिससे वह उसे मारकर वह सुन्दरी प्राप्त करता है। कही-कही नायक उसे पहले ही मारकर उसके पास पहुँचता है। इस कहानी मे एक और उप-कहानी जुड जाती है, जिसमे वह सुन्दरी —

(क) किसी दूती के बहकावे मे आकर, (ख) अपने निवास से बाहर जाने का साधन अपने पति से प्राप्त कर, (ग) दूती के साथ बाहर जाकर पर-पुरुष के हाथ मे पड जाती है, (घ) छ महीने की अवधि माँगती है, (ङ) कोई व्यवस्था इस आशा से करती है कि उसका पति खिचकर आ सके, जैसे—प्रतिदिन नई चूडी पहिनना, सदावर्त खोलना, पति विषयक कहानी सुनने वाले को पुरस्कार, आदि (च) नायक का सहायक पहुँचकर उस व्यवस्था से लाभ उठाकर उसका उद्धार करता है और नायक से मिलता है।

इन सभी अभिप्रायो का समावेश मूल कहानी मे प्रक्षेप माना जा सकता है।

२—दूसरी बात यह विदित होती है कि 'तीन सकट' तो सब मे हैं, उन सकटो का रूप प्राय प्रत्येक कहानी मे भिन्न-भिन्न है।

तीन सकटो के अभिप्राय का प्राचीनतम उल्लेख भी हमे मिस्र की ई० १६०० से २००० ई० पू० तक के काल मे प्राप्त एक कहानी मे मिलता है जिसे 'ऐंचाटेड प्रिंस' का नाम दिया गया है। इस कहानी मे राजकुमार के जन्म पर वह भविष्यवाणी की गयी है कि इसकी मृत्यु साँप, कच्छप अथवा कुत्ते के द्वारा होगी। साँप से रक्षा करने के लिए राजकुमार को एक शीशे के महल मे रख दिया जाता है। बडा होने पर राजकुमार बाहर निकलता है और एक शर्त को पूरा कर एक राजकुमारी से विवाह करता है। यह राजकुमारी सर्प से राजकुमार की रक्षा करती है। कच्छप से राजकुमार स्वय बच निकलता है—कुत्ते वाली बात को बिना कहे ही यह कहानी समाप्त हो जाती है।[1] सकटो मे तीन की गिनती ध्यान मे रखने की बात है।

तीसरी बात यह भी विदित होती है कि प्रत्येक कहानी मे दम्पत्ति के शयन कक्ष में सहायक के पहुँचने की बात आती है। मृत्यु का अन्तिम विधान शयन-कक्ष मे किया गया है। यहाँ साँप का उल्लेख 'कथा सरित्सागर' को छोड कहानी के अन्य सभी सस्करणो मे आया है।

चौथी बात यह है कि प्रत्येक मे सकट प्राय भविष्यवाणी के द्वारा बताये गये है। इस भविष्यवाणी को कहने वाले मनुष्य, यक्ष, पक्षी कोई भी हो सकते है।

पाँचवीं बात यह भी विदित होती है कि कहानी का वह अन्तिम भाग जिसमे सहायक समस्त रहस्य का उद्घाटन करके पत्थर हो जाता है, बाद मे जोडा गया

---

[1] देखिए, वही, पृ० २७४

होगा। क्योकि पत्थर होना और रज या रक्त स्पर्श से पुन जीवन प्राप्त करना एक अलग ही अभिप्राय है जिसका अलग इतिहास और विकास है।[१]

मूल कहानी के मूल अभि

अत मूल कहानी मे तीन अभिप्राय ही मुख्य विदित होते हैं—

१—राजकुमार द्वारा वर्जित राजकुमारी की खोज और प्राप्ति,[२]

२—तीन सकटो की भविष्यवाणी और सहायक द्वारा उनसे रक्षा, तथा

३—अन्तिम सकट शयन-कक्ष मे जहाँ सहायक का निपटारा या रहस्य का उद्घाटन। (बुन्देलखण्ड की कहानी मे शयन-कक्ष मे दो सकट प्रस्तुत किये गये हैं। एक तो सामान्य ही है, दूसरा रानी की नाक से रात को सर्प निकलेगा, यह सकट विशेष है। निश्चय ही यह एक दूसरी कहानी का अश है, जो यहाँ जोड दिया गया है।)

इन अभिप्रायो का मूल मर्म भी केवल एक है वर्जित प्रेम के उपभोग मे घातक बाधाओ का उदय और निराकरण।

कहानी पर विचार के सम्प्रदाय

जैसा हम ऊपर सकेत कर चुके है इस लोक कहानी पर 'माइथालोजिकल सम्प्रदाय' के विद्वान काक्स द्वारा विचार किया गया—वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इस कहानी का निर्माण उस प्रागैतिहासिक युग मे हुआ होगा, जब समस्त आर्य जातियो के पूर्वज अपने किसी मूलस्थान मे साथ-साथ रहते होगे।

ऊपर यह भी हम देख चुके है कि इस कहानी का सकट-विषयक मूल अभिप्राय ई० पू० २००० वर्ष मे मिस्र मे प्रचलित था।

किन्तु बाद के विद्वानो मे से राश्च (Rosch) तथा कार्ल क्रोह्न[3] ने इस कहानी पर बहुत विस्तार से विचार किया है। उन्होने सिद्ध किया है कि ये कहानी-तत्त्व भारत से आये और पुर्तगाल तक फैले। ये दोनो विद्वान बेन्फी के *यात्रा-विश्वासी*

---

१ कथा सरित्सागर मे पत्थर होने की घटना का उल्लेख नही जिससे यह तो सिद्ध ही है कि एक ऐसी परम्परा भी थी जिसमे पत्थर होने का अभिप्राय समाविष्ट नही था। कथा सरित्सागर मे रहस्योद्घाटन के साथ एक शाप तो लगा हुआ है पर वह समय सापेक्ष्य है, यदि बचाने के उद्देश्य से कोई रहस्य प्रकट करेगा तो नष्ट हो जायगा। रक्षा हो जाने के बाद इस शाप का प्रभाव नही रहता। फलत कहानी का सम्पूर्ण अभिप्राय इस युक्ति से प्रकट हो जाता है। कहानी यही समाप्त हो जानी चाहिएं।

२ प्राप्ति के लिए जाने भर का अभिप्राय ही मूल प्रतीत होता है। कितनी ही कहानियो मे विवाह के लिए जाते समय की घटनाओ का उल्लेख है। जैसे कथा सरित्सागर और बुन्देलखण्ड की कहानी मे। ढोला और मारू की लोक-कहानी मे भी गौने के लिए जाते समय की बाधाओ का उल्लेख है। आदि।

3 कार्ल क्रोह्न भौगोलिक ऐतिहासिक सम्प्रदाय के प्रवर्तक भी हैं।

या गानेवाली चारणी और नर्तकी का समावेश है। जगदेव ने जिसे सिर दिया था वह चारणी रूप मे देवी ककाली थी। दूसरे शब्दो मे ककाली देवी की उपासिका चारणी ही थी।

ककाली नाम का वामन पीठो मे से एक देवी पीठ बगाल के वीर भूमि जिले मे कोपाई नदी के पास के श्मशान घाट पर स्थित है। (देखिए—ऐंश्यट ज्याग्रफी आँव इण्डिया, लेखक नन्दलाल दे)

मथुरा मे भी ककाली देवी के नाम पर एक प्राचीन ककाली टीला आज भी विद्यमान है।

इस समस्त ऊहापोह से यही स्पष्ट होता है कि जिस देवी को जगदेव ने शीश दान दिया वह ककाली देवी ही थी। वह अपने उपासक ककाली जाति की स्त्री का रूप धारण कर दान माँगने गयी।

लोक-कथा के रूपान्तरों के कारण

जगदेव की लोक-कथा के जो विविध रूपान्तर ऊपर दिये गये है, उनकी सामान्य तुलना से ही स्पष्ट है कि विविध अभिप्रायो की द्योतक विविध लोक-कथाओ मे विविध विकारो के ऊपर जो कारण बताये गये हैं उनके अतिरिक्त कुछ बातो मे स्पष्ट ही लोक-मानस की एक अनोखी प्रतिक्रिया झलकती है।

१ इसमे सबसे अधिक आकर्षक तत्त्व है राजा का नाम। इस नाम ने इस कथा मे कई चमत्कार पैदा किये हैं। राजा का नाम 'जय' से आरम्भ अवश्य होता है, यह बात प्रत्येक लोक-कथा से विदित होती है। किन्तु आगे यह नाम क्या था ? इसमे लोक-मानस ने अपनी-अपनी जानकारी से काम लेकर उसे पूर्ण किया है।

एक क्षेत्र ने उसे जयसिंह माना। इस जयसिंह नाम से एक ओर तो जगदेव सिद्धराज जयसिंह से सम्बन्धित हुए। इस कथा मे जगदेव गुजरात पहुँचे हैं।

दूसरे क्षेत्र को जयसिंह जयपुर के राजा ही प्रतीत हुए, और जगदेव को जयपुर जाना पडा है। जयसिंह की ज्योतिष विषयक प्रसिद्धि भी इस कथा मे नकली चन्द्रमा के रूप मे सम्मिलित हो गयी।

तीसरे को 'जय' के कारण 'जयचद' का ही स्मरण हुआ और जगदेव को कन्नौज जाना पडा है। उसके बाद भी उत्साही कथक्कड उसे बगाल और उससे आगे भी ले गया है।

२ जयसिंह और जगदेव एक ही राजदरबार मे थे, तभी चारणी द्वारा दोनो के प्रति भिन्न आचरण की घटना घटी। इसने कई सम्भावनाएँ प्रस्तुत कर दी—

१ जगदेव इतना प्रबल सिद्ध हो चुका था कि जब वह दरबार मे गया तो जाकर सीधे जयसिंह के आधे सिंहासन पर बैठ गया। किसी ने चूँ तक न की।

२ जगदेव ने जयसिंह पर ऐसा उपकार किया था कि उसके बदले मे उसने अपना आधा राज्य उसे दे दिया था, और अपनी लडकी का विवाह कर दिया था, जिससे जगदेव जयसिंह के साथ आधे सिंहासन पर बैठा था।

३ जगदेव को जयसिंह ने नौकर रख लिया था, वह प्रतिदिन दरबार मे जयसिंह को प्रणाम करने जाता था।

४ जयसिंह और जगदेव भाई-भाई थे। साथ-साथ राज्य करते थे। (इसका मूल इतिहास मे दिखायी पडता है। जगदेव का एक निकट पूर्वज जयसिंह भी था।)

३ जगदेव पहले पैदा हुआ फिर उसके जन्म का समाचार पिता के पास देर से पहुंचा—इसके लिए ये सम्भावनाएँ ग्रहण की गयी—

(अ) राजा कही बाहर थे—जगदेव का समाचार वाहक पोस्ती था, धीरे-धीरे गया। रणधवल का समाचार वाहक तेज था।

(आ) राजा सो रहे थे—जगदेव वाला सिरहाने खडा हुआ। रण-धवल वाला पाँयत खडा हुआ।

४ जगदेव ने स्वेच्छया अपना सिर बलि दिया

I इसने ये कल्पनाएँ प्रस्तुत की—

(अ) चारणी को सिर बलि दिया। दाँने को माँगने पर सिर दिया।

(आ) राजा जयसिंह की आयुष्य बढाने के लिए और राज्यलक्ष्मी स्थिर रखने के लिए अपनी, अपने लडके, अपनी लडकी तथा अपनी पत्नी की स्वेच्छया बलि चढायी।

[यह कथा सरित्सागर के बीरबल की कहानी है।]

इसी बलि के भाव ने अन्य स्वेच्छया 'बलि' जैसे पराक्रम के लिए होने वाली सम्भावनाओ को उपस्थित किया।

II (अ) दाँने के लिए राज्य से एक बलि। एक ब्राह्मणी के इकलौते पुत्र की बारी। जगदेव उसी के यहाँ अतिथि। जगदेव ने उसके पुत्र को बचाने के लिए स्वेच्छया उसके स्थान पर दाँने के लिए बलि जाने का निश्चय किया—परिणाम मे दाँने का मारना।

[यह जीमूत वाहन और भीम की एकचक्रा की घटना की कहानी है।]

(आ) तालाब मे पानी आने के लिए अपने सिर की बलि—

[यह एक अत्यन्त व्यापक कथानक-रूढि है। इसके लिए देखिए भारतीय साहित्य अक जुलाई वर्ष '३' ओघ द्वादशी पर निबंध।]

(इ) काल भैरव या कालू देव को परास्त करने की घटना की सम्भा- भी इसी से सहजात है।

(ई) राजकुमारी के मुख से निकलने वाली नागिन को मारकर प्रति-दिन एक युवक की मृत्यु को रोकना। यह बिलकुल II (अ) का ही दूसरा रूप है। दाँने के स्थान पर राजकुमारी तथा उसके मुख की नागिन है।

III शेर को मारने की घटना भी दाँने को मारने की घटना से सूझ सकती है।

IV एक सूखे बाग को हरा किया।

५ देवी की कृपा के चमत्कार

देवी की कृपा के चमत्कार से तो सामान्यत साम्प्रदायिक दृष्टि वाले कथा रूप अधिक ओत-प्रोत हैं। इस साम्प्रदायिक दृष्टि का भी मूल बिन्दु तो वही चारणी देवी को शीश दान विदित होता है जो प्राय सभी कथाओ मे विद्यमान है। इस घटना से जो सम्भावनाएँ हुईं, उन्हे इस क्रम से रख सकते हैं—

जगदेव ने देवी को शीश-दान दिया।
क्यो दान दिया ?
देवी ने शीश माँगा।
देवी ने जगदेव से शीश क्यो माँगा ?

(अ) वह देवी का भक्त था।
 १ उसने धारा मे ही देवी सिद्ध कर ली थी।

(आ) देवी अपने भक्त का यश बढाना चाहती थी और प्रतापी से प्रतापी राजा को भी अपने भक्त के समक्ष नीचा दिखाना चाहती थी।

(इ) देवी माता काल भैरव के हठ को भी पूरा करना चाहती थीं।
 १ हठ पूरा करके भी वह काल भैरव से बढकर ही अपने भक्त को सिद्ध करना चाहती थी।

वह देवी का भक्त था और देवी उसे सिद्ध थी तो देवी ने उस पर क्या-क्या कृपा की—

१ देवी ने उसे अपार बल दिया।

(अ) इतनी भारी तोप देवी की कृपा से उसने उठायी।
(आ) ऐसी भारी साँग उसी की कृपा से चलायी।
(इ) तवे बींधे।
(ई) ऐसे अन्य पराक्रम, दाँने को मारने के, सिंह को मारने के, कालू को पछाडने के देवी की कृपा से सिद्ध हुए।

२. देवी ने उसे पुनरुज्जीवन दिया—
   (अ) समस्त कुटुम्ब की बलि चढाने पर देवी ने सबको पुनरुज्जीवित किया।
   (आ) चारणी को शीश बलि देने पर पुन शीश प्रदान देवी ने किया।
   (इ) तालाब पर बलि चढाने पर पुन शीश देवी ने प्रदान किया।

३ देवी ने उसे अन्य सकटो से भी उबारा।
   (१) काबरियो की समस्या से खडी होने वाली विपत्ति से उबारा।
   (२) कनवज की रानी की पहेली का उत्तर देवी की कृपा से।
   (३) बगाल मे मेढा बना लिया गया तो देवी ने ही उद्धार किया।

कथा-चक्र

इस प्रकार एक बिन्दु से देवी की कृपा के विविध रूपो को दिखाने के लिए सम्भावित वृत्तो का समावेश भी इस वृत्त मे होता गया। इस प्रकार लोक-कथा के रूप मे ही एक भिन्नता उपस्थित हो गयी। जो मूलत एक त्यागमयी घटना का नायक था वह अनेको त्यागमयी घटनाओ का नायक बन गया, और वह लोक-कथा जो एक घटना पर केन्द्रित कथा थी वह घटना-मालाओ की कथा बन गयी और सामान्य कथा-चक्र से निकलकर पराक्रम-माला कथा-चक्र के परिवार मे सम्मिलित हो गयी।

ब्रज का रूप

पराक्रम-माला कथा-चक्र वाला रूप वस्तुत इस लोक-कथा को ब्रज मे ही मिला है। प्राय अन्य सभी रूपो मे दो-तीन पराक्रमो का ही अधिकाधिक समावेश हुआ है, किन्तु ब्रज ने बारह मवासे खडे कर दिये हैं। ब्रज के इन बारह मवासो मे भी कई तो एक-दूसरे के अनुकूल हैं। केवल कुछ रूप बदलकर अलग स्थान उन्हें दे दिया गया है।

१ सिर दान देने की दो कथाएँ—(अ) चारणी को सिर देना।
   (आ) दाँने को सिर देना।

२ दूसरे के उपकारार्थ बलि—(अ) देवियो को बलि देना, राजा की आयुष्य के लिए।
   (आ) तालाब को बलि देना कि उसमे जल आ सके।

३ उपकारार्थ हिंस्त्रो का सहार—(अ) सिंह को मारा।
या दमन
   (आ) दाँने को मारा।
   (इ) राजकुमारी के मुख से निकलने वाली नागिन को मारा।
   (ई) काल भैरव को परास्त किया।

इन तीन कथाओ से आठ कहानियाँ हो गयीं। शेप चार कथाएँ, घटनाएँ, मवासे स्वतन्त्र रूप से आये हैं—

१ नकली चाँद चमकाना
२ कावरियो का कर्ज चुकाना
३ सूखे बाग को हरा करना
४ पहेली बताकर रानी को जीतना
५ काली-पीली सरसो को अलग करना

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि लोक-मानस एक सामान्य-विन्दु से तद्नुकूल विविध लोक-कथाओ को किस प्रकार एक कथा मे जोड लेता है।

कुछ अन्य समावेश

ऊपर जिन पराक्रमो का उल्लेख हुआ है, उनमे कुछ सस्करणो मे कुछ और भी पराक्रमो का सन्निवेश है।

I राजा के यहाँ से जगदेव फिर धार को लौटा।

धार को क्यों लौटा—

१ जगदेव के यश से, अपमानित हो राजा उससे द्वेष मानने लगा—इसलिए जगदेव धार लौटा।

२ जगदेव एक छोर से चलकर देश के दूसरे छोर तक पराक्रम दिखा चुका तो धार को लौटा।

३ जगदेव के यश के साथ धार या मालवा का यश भी बढा तो राजा ने जगदेव को नीचा दिखाने के लिए धार या मालवा पर आक्रमण करने का विचार किया, जिससे जगदेव ने धार लौटने का निश्चय किया।

II जब धार को लौट रहा था तो मार्ग मे देखा कि—

१ एक मिट्टी का गढ धार के अनुरूप बनाया जा रहा है।

२ विदित हुआ कि राजा ने धार को ध्वस्त करके ही अन्न-जल ग्रहण करने का निश्चय किया है। अत यह नकली धारागढ वनाकर राजा ध्वस्त कर देगा और अन्न-जल ग्रहण कर सकेगा।

३ जगदेव उस गढ मे घुस गया। देवी से प्रार्थना करके उसे लोहे का गढ बना दिया, और अकेला उसकी रक्षा करने लगा।

४ इस समाचार को सुनकर राजा हताश हुआ।

यहाँ भी यह देखने को मिलता है कि इतिहास की कहाँ की कहानी कहाँ लोक-मानस ने जोड दी है।

ऐतिहासिक विचार

अब तक जगदेव की ऐतिहासिकता पर सदेह किया जाता था, और उसे मात्र लोक-कल्पना का वीर माना जाता था किन्तु इधर यह निश्चय-सा हो चुका है कि

जगदेव ऐतिहासिक व्यक्ति था। इसके लिए पहले तो केवल एक ही ऐतिहासिक प्रमाण था और वह था अमरुकशतक पर अर्जुन वर्मा की रसिक सजीवनी नाम की टीका मे जगदेव का उल्लेख। किन्तु अब विद्वद्वर डा० दशरथ शर्मा ने ४ शिलालेखो मे जगदेव के उल्लेखो का पता लगाकर उसके कुछ पूर्ण ऐतिहासिक वृत्त को उपस्थित किया है। उन्होने 'राजस्थान-भारती' भाग ४, अक ४ मे 'त्रिविध वीर जगदेव पँमार' शीर्षक निवन्ध दिया है। वह निवन्ध बडा है। फिर भी उसे यहाँ पूरा अविकल उद्धृत किया जाता है क्योकि ऊपर के समस्त लोक-वृत्त के साथ उसकी ऐतिहासिक ऊहापोह भी रहने से अनुसन्धित्सुओ और जिज्ञासुओ को सुविधा रहेगी।

१ जगदेव पँमार का नाम समस्त भारत के इतिहास मे प्रसिद्ध है। इसकी अपूर्व कीर्ति से मालवा, राजस्थान, गुजरात, दक्षिणादि प्रदेश अब तक सुरभित हैं। यह अनेक विचित्र कथाओ का नायक है। अनेक कवियो ने अनेक भाषाओ मे इसके गुण का गान किया है, किन्तु यह गुणगान इस सीमा तक पहुँच चुका है, कि गुण को ही हम द्रव्य समझ बैठे है। इस ऊपरी लीपापोती को दूरकर वास्तविक जगदेव पँमार को राजस्थान-भारती के पाठको के सम्मुख रखना इस निवन्ध का ध्येय है।

२ कथाओ के अनुसार मालवे के राजा उदयादित्य पँमार के दो रानियाँ थीं, एक वाघेली और दूसरी सोलकिन। वाघेली का पुत्र था रणधवल और सोलकिन का जगदेव। वाघेली राजा की प्रेमपात्र थी, इसलिए उसी का पुत्र रणधवल युवराज नियत हुआ, और मनस्वी कुमार जगदेव को मालवा छोडना पडा। उसने पाटन जाकर गुर्जरराज सिद्धराज के यहाँ नौकरी की। विधिविधान से दी हुई सिद्धराज की आयु पूरी हो चुकी थी, किन्तु जगदेव ने अपना, अपनी स्त्री का और अपने दो पुत्रो के मस्तक योगिनो को चढाकर सिद्धराज के लिए ४८ वर्ष की आयु और प्राप्त की। इस अपूर्व स्वामिभक्ति से प्रसन्न होकर योगिनियो ने जगदेव को सकुटुम्ब पुनर्जीवित किया। सिद्धराज ने ये सब बातें छिपे-छिपे देखी थी। उसने भरे दरबार मे जगदेव की भूरि-भूरि प्रशसा की और उसका वेतनादि से मान बढाया। कुछ दिन बाद सिद्धराज ने मालवे पर चढाई करने का निश्चय किया। जगदेव को जब यह ज्ञात हुआ तो उसने सिद्धराज की नौकरी को तिलाञ्जलि दी और वापस मालवे पहुँचा। उदयादित्य ने उसका स्वागत किया। रणधवल के स्थान पर अब जगदेव युवराज नियत हुआ। उदयादित्य की मृत्यु के बाद जगदेव गद्दी पर बैठा। उसने बावन वर्ष राज्य किया।[1]

३ मैं यही कथा अनेक रूप-रूपान्तरो मे पढ और सुन चुका हूँ। किन्तु इसे सर्वथा विश्वसनीय मानना भूल है। जगदेव, अवश्य, उदयादित्य का पुत्र था। उसकी

---

१ देखें फार्ब्स रचित रासमाला, प्रथम भाग, पृ० १७७ एच० जी० रालिन्सन द्वारा सम्पादित सस्करण राजस्थानी वार्ता (नवयुग साहित्य मन्दिर, बीकानेर द्वारा प्रकाशित), और विश्व वाणी, वर्ष ४, पृष्ठ ३२० पर श्री अगरचन्द नाहटा का लेख, 'दानवीर जगदेव पँमार'।

वीरता और दानशीलता भी निस्सन्दिग्ध है। पृथ्वीराजविजय से यह भी सिद्ध है कि उदयादित्य परमार और कर्ण चौलुक्य समसामयिक राजा थे।[1] इसलिए कर्ण चौलुक्य के पुत्र सिद्धराज जयसिंह के समय उदयादित्य परमार के पुत्र जगदेव पँमार का अस्तित्व सम्भव है।[2] यह भी असम्भव नही है कि कुछ समय तक जगदेव गुजरात मे ठहरा हो। उनके उत्तरकालीन वैमनम्य की ध्वनि भी हमे जयनद के शिलालेख मे मिलती है। किन्तु बाकी सब कपोलकल्पना मात्र है। इतिहास मे हमे जगदेव के रणधवल नाम या विरुद वाले किसी भाई का पता नही चलता। न हम यह मान सकते हैं कि अपने पिता के राज्यकाल मे ही जगदेव ने जयसिंह सिद्धराज के दरबार मे आश्रय लिया, क्योकि जयसिंह के सिंहासनासीन होने से कई वर्ष पूर्व ही जगदेव के पिता उदयादित्य का देहान्त हो चुका था। यह भी झूठ है कि उदयादित्य की मृत्यु के बाद जगदेव मालवे की गद्दी पर बैठा, उसके बावन वर्ष राज्य करने का प्रश्न तो दूर ही रहा। उदयादित्य के वास्तविक उत्तराधिकारी जगदेव के बडे भाई लक्ष्मदेव और नरवर्मा थे। इनमे लक्ष्मदेव जगदेव के समान ही वीर और कीर्तिशाली था।[3]

४ जगदेव पँमार की वास्तविक जीवनी के मुख्य आधार निम्नलिखित हैं—

(१) जगदेव के समय का शक स० १०३४ (ई० स० १११२), का डोगरगाँव का शिलालेख
(२) जगदेव का जयनद का शिलालेख
(३) अमरुकशतक पर अर्जुनवर्मा की रसिक सजीवनी नामक टीका मे जगदेव का उल्लेख
(४) होयसाल राज्य के कई शिलालेखो मे जगदेव के आक्रमण का वर्णन
(५) भोजवर्मा का बेलाव शिलालेख
(६) प्रबन्धचिन्तामणि

५ जगदेव के प्रारम्भिक जीवन का सबसे अच्छा वर्णन डोगरगाँव के शिलालेख मे है। इसमे लिखा है कि भोज के भाई राजा उदयादित्य के अनेक पुत्र थे। किन्तु अपने मनोनुकूल पुत्र की इच्छा से उसने भगवान शिव की आराधना की। इसके फलस्वरूप उसके जगदेव नाम का पुत्र हुआ। जब उदयादित्य स्वर्गस्थ हुआ तो राज्य जगदेव के प्राय हस्तगत था। लक्ष्मी स्वय उसे अपना पति चुन रही थी। किन्तु बडे

---

[1] देखें सर्ग पचम, श्लोक ७६-७८।

[2] श्री देवदत्त रामकृष्ण भण्डारकर ने न जाने इस सम-सामयिकता को क्यो सदिग्ध माना है (शिलालेख न० २०८४ पर टिप्पणी, लिस्ट ऑफ दि इस्क्रिप्शन्स ऑफ नॉदन इण्डिया)।

[3] लक्ष्मदेव के लिए नरवर्मा का वि० सम्वत् ११६१ का शिलालेख पढें।

भाई से पूर्व विवाह करने से मनुष्य को परिविक्ति दोष लगता है, (मानो) इसी भय से उसने राज्य बडे भाई को सौप दिया।[1]

६ इस वर्णन से अनुमित किया जा सकता है कि जगदेव उदयादित्य का कनिष्ठ पुत्र था। पिता का बडा लाडला भी रहा होगा। भाई लक्ष्मदेव के राज्य-काल मे सम्भवत वह मालवे मे ठहरा किन्तु नरवर्मा के सिंहासनासीन होने पर उसने मालवा छोडा।[2] दन्तकथाएँ उसे मालवे से गुजरात पहुँचाती हैं। किन्तु डोगरग्राम के शिलालेख मे लिखा है कि उसने कुन्तलेन्द्र के यहाँ जाकर नौकरी की। कुन्तलेन्द्र उससे कहता, 'तुम मेरे पुत्रो मे सर्वप्रथम हो, तुम मेरे राज्य के स्वामी हो, मेरी दक्षिण भुजा हो, तुम मूर्तिमान् मेरी सब दिशाओ मे जय हो, तुम मेरी आत्मा ही हो।' इस स्पष्ट उल्लेख की दन्तकथाओ से कुछ सगति मेरुतुङ्ग-रचित प्रबन्ध-चिन्तामणि के आधार पर की जा सकती है। उसने जो कुछ जगदेव के विषय मे लिखा है वह इतना रोचक है कि उसे उद्धृत करने की उत्कट इच्छा का मै सवरण नही कर सकता। यह उद्धरण जगदेव के जीवन पर ही प्रकाश नही डालता, यह उन कथाओ के खण्डन के लिए भी पर्याप्त है, जो जगदेव को सिद्धराज जयसिंह का भृत्य बनाती हैं। कत्थक लोग किस प्रकार से राजाओ के नामो को बदलते है—इसका भी यह उद्धरण अच्छा उदाहरण है। कुन्तलेन्द्र वीरविक्रमादित्य षष्ठ से राजस्थानियो और गुजरातवालो का क्या सम्बन्ध? वे तो जानते थे बर्बरक जिष्णु जयसिंह सिद्धराज को जिसके यहाँ एकाध महीने सम्भवत जगद्देव ठहरा। बस यही कुन्तलेन्द्र के स्थान पर गुर्जरेन्द्र को रखने का कारण रहा होगा। चालुक्य राज को चौलुक्यराज समझना भी आसान था। मेरुतुग के समय तक लोग जगदेव के विषय मे कुछ जानते थे, यद्यपि उस समय भी जगदेव अनेक आश्चर्यमयी कथाओ का आधार बन चुका था। परवर्ती लेखक और कवि इस सामान्य ऐतिहासिक ज्ञान से भी प्राय शून्य थे।

७ मेरुतुग का वर्णन निम्नलिखित है[3]—

"जगदेव नाम का क्षत्रिय त्रिविध वीर था। सिद्धराज द्वारा खूब सम्मानित होने पर भी जब उसे उसके गुणरूपी मन्त्र से वशीभूत शत्रुमर्दक परमर्दी राजा का निमन्त्रण मिला तो वह पृथ्वी रमणी के केशकलापरूपी कुन्तल देश मे चला गया।

---

१ एपिग्राफिया इडिका, खण्ड २६, पृष्ठ १८२, श्लोक ७-८।

२ नाम-साम्य से लक्ष्मदेव जगदेव का सहोदर भाई प्रतीत होता है। दोनो मे शायद पर्याप्त प्रेमभाव रहा हो। प्रबन्धचिन्तामणि के अनुसार जगदेव, सिद्धराज जयसिंह से सम्मानित होने के बाद, कुन्तलदेश मे गया। सिद्धराज सन् १०९४ मे गद्दी पर बैठा और इसी समय के आसपास लक्ष्मदेव की मृत्यु हुई। इससे भी यही अनुमान होता है कि लक्ष्मदेव की मृत्यु के बाद ही उसने मालवा छोडा। नरवर्मा मे उसका विशेष सौहार्द न रहा होगा।
एपिग्राफिया इण्डिका, खण्ड २६, पृष्ठ १८३, श्लोक ९।
प्रबन्धचिन्तामणि सिंघी जैन ग्रन्थमाला, पृ० ११४-११६।

उसके आगमन की सूचना द्वारपाल ने जब राजा को दी उस समय एक वेश्या नगी होकर (राजा के सामने) पुष्पचयनक नृत्य कर रही थी। उसी समय उसने लज्जित होकर चादर ओढ ली और वही बैठ गयी। राजा ने आकर जगदेव को छाती से लगाया और उससे मधुरालाप किया। जगदेव को उसने प्रधान परिधान दुकूल और लाखों की कीमत के अन्य दो वस्त्र दिये। जगदेव के महामूल्यवान् आसन पर बैठने पर जब सभा की हलचल समाप्त हुई, तो राजा ने उस वेश्या को नाचने का आदेश दिया। तब उचित बात को कहने मे कुशल अत्यन्त चतुरा उस वेश्या ने उत्तर दिया— 'जगत् का एकमात्र पुरुष जगदेव आज यहाँ आया है। उसके सामने बिना वस्त्र के नाचने मे मैं लजाती हूँ। स्त्रियो के सम्मुख ही स्त्रियाँ मनमानी चेष्टा करती है।' इसकी इस अपूर्व प्रशसा से प्रसन्न होकर जगदेव ने राजा के दिये हुए दोनो वस्त्र उसे दे डाले।"

"इसके बाद जब परमर्दी के प्रसाद से जगदेव को किसी एक देश का आधिपत्य मिला, तो उसका ऋणग्रस्त उपाध्याय उससे मिलने आया। उसने यह काव्य भेंट किया—

अक्षत्रक्षतवालिनो भगवत कस्यापि सङ्गीतक—
व्यासक्तस्य च तस्य कुन्तलपते पुण्यानि मन्यामहे।
एक कामदुधामदुग्ध मरुत सूनो सुबाहुद्वयी
प्रत्यक्षप्रतिपक्ष-भार्गव-भवानन्यस्य चिन्तामणि ॥

"हम दो आदमियो के पुण्य को मानते है, एक तो अक्षत्रिय विधि से वालि को मारने वाले किसी भगवान् (रामचन्द्र) को और दूसरे सगीत मे आसक्त कुन्तलपति को। इसमे एक ने तो वायुपुत्र (हनुमान्) के कामधेनुरूप सुभुजद्वय का दोहन किया और दूसरे ने चिन्तामणि स्वरूप शत्रुओ के लिए प्रत्यक्ष परशुराम आपको प्राप्त किया।

"इस काव्य के पारितोषिक मे महादानी जगदेव ने आधी लाख (मुद्राएँ) दी।[1]

"राजा श्री परमर्दी की महारानी को जगदेव अपनी बहन मानता था। एक वार राजा ने सीमान्त के किसी राजा (?) को हराने के लिए जगदेव को भेजा। जब जगदेव देव पूजन कर रहा था, तो उसने सुना कि छलाघात से शत्रुसेना ने उसकी सेना को भगा दिया है। किन्तु उसने देवार्चन न छोडा। राजा ने चरो के मुख से जगदेव की इस अश्रुतपूर्व पराजय की बात जब सुनी तो उसने अपनी महारानी से कहा, "तुम्हारे भाई को सग्राम मे वीरता का अहकार है, किन्तु जब शत्रुओ ने उस

[1] इसके बाद प्रबन्ध चिन्तामणि मे १५ श्लोक और दिये हैं और उसके बाद लिखा है, "इत्यादीनि वहूमिका व्याणि यथाश्रुतानि ज्ञातव्यानि", जिससे स्पष्ट है कि मेरुतुग के समय जगदेव विषयक पद्यो की सख्या पर्याप्त रही होगी।

पर आक्रमण किया तो वह भाग भी न सका ।" राजा की ऐसी परिहासोक्ति को सुन-कर महारानी अरुणोदय के समय पश्चिम दिशा को देखने लगी । राजा ने जब पूछा कि 'क्या देखती हो' तो उसने उत्तर दिया कि 'सूर्योदय को' । राजा ने कहा, "भोली भाली-स्त्री, क्या पश्चिम मे सूर्योदय कभी हो सकता है ?" उसने उत्तर दिया, "पश्चिम मे सूर्योदय विधि के विधान के विरुद्ध है । किन्तु इस दुर्घट वस्तु के घटित होने पर भी क्षत्रियदेव जगदेव की हार नही हो सकती ।" पति-पत्नी इस तरह प्रियालाप कर रहे थे । उधर जगदेव ने देवार्चन के बाद उठकर पाँच सौ सुभटो के साथ शत्रु राजाओ की सेना पर आक्रमण किया और उसे इसी प्रकार आसानी से नष्ट कर डाला जैसे सूर्य अन्धकार को, केसरी-किशोर हाथियो के समूह को, और प्रचण्ड अन्धड घनघोर घनघटा को नष्ट कर डालता है ।"

८ गुर्जरदेशीय राजाओ के वृत्तात के पूरे जानकार और उनके यश का अनेकश गान करने वाले आचार्य मेरुतुग के इस कथन से यह प्रमाणित है कि जगदेव गुर्जरदेश मे अधिक दिनो तक नहीं ठहरा । शायद उसने सिद्धराज जयसिंह की नौकरी कभी स्वीकार ही न की । सिद्धराज जगदेव की वीरता से परिचित था । उसने जगदेव का सम्मान भी किया । किन्तु जगदेव को कुन्तलदेशाधिपति परमर्दी (कल्याणाधिपति चालुक्यराज विक्रमादित्य षष्ठ) का निमन्त्रण मिल चुका था । इसलिए जगदेव वही चला गया । परमर्दी ने 'जगदेव' को किसी देश-विशेष का अधिपति बनाया, और परमर्दी के दरबार मे रहके ही जगदेव ने अपनी दानवीरता की ख्याति विशेष रूप से प्राप्त की । राजस्थान मे जगदेव और ककाली की कथा प्रसिद्ध है । ककाली सिद्धराज के दरवार मे पहुँची । जगदेव को देखते ही उसने अपना मस्तक वस्त्र के अञ्चल से ढक लिया । इस कथा का बीज ऊपर उद्धृत प्रबन्ध-चिंतामणि की कथा मे अनुसन्धेय है [illegible] जगदेव [illegible] कथाएँ भी

का परित्याग कर निश्शक उसकी उपासना करते । न वह देश था, न वह ग्राम, न वह लोक था और न वह सभा, न वह रात्रि थी और न वह दिन जहाँ जगदेव (के यश) का गान न होता हो ।"

१० डोगर गाँव के लेख मे निर्दिष्ट अर्थियो पर जगदेव की इस कृपा के अनेक उदाहरण मिलते है । किन्तु प्रत्यर्थियो पर उसके दृढ प्रहार भी किसी समय कुछ कम प्रसिद्ध न थे । किसी कवि के शब्दो मे जिस प्रकार 'समुद्र का गाम्भीर्य, पृथ्वी का विस्तार, आकाश की व्यापकता, मेरु की उत्तुङ्गता, विष्णु की महिमा, कल्पवृक्ष की उदारता, गगा की पवित्रता, और चन्द्रमा का अमृत-वर्षण' कोई नवीन वस्तु नही है, उसी तरह जगदेव की वीरता कुछ नयी बात न थी । यह तो स्वभाव-सिद्ध थी । जगदेव की विजयें तो अनेक रही होगी । ये कब और किस समय हुई यह पूर्णतया जानने के साधन तो हमारे पास नही हैं । किन्तु जगदेव के सेनापति दाहिमा लोलार्क के विना तिथि वाले जयनद के शिलालेख से हमे इतना अवश्य ज्ञात है कि—

(१) जगदेव ने आन्ध्राधीश को बुरी तरह हराया ।
(२) उसने चक्रदुग के स्वामी को पराजित कर उसे दण्ड मे बहुत-से मस्त हाथी देने के लिए विवश किया ।
(३) उसके मस्त हाथियो की मार से शत्रुओ की हड्डियो के ढेर के ढेर दौर समुद्र मे लग गये । महलराधीश (होयसलराज) को इससे अत्यन्त दुःख हुआ ।
(४) उसके धनुष की ध्वनि जयसिंह की विक्रम कथाओ के स्वाध्याय मे सध्याघनगर्जन रूपी विघ्न है ।
(५) कर्ण नृपति ने इसका आश्रय ग्रहण किया ।[1]

११ जगदेव के ये वीर-कार्य दो विभागो मे विभक्त किये जा सकते हैं । इनमे पहले तीन, दक्षिण दिशा से सम्बन्ध रखते हैं, और अन्तिम दो उत्तर भारत से । दक्षिण की विजय उसने कुन्तलेन्द्र के सेनापति के रूप मे प्राप्त की होगी । चालुक्यराज विक्रमादित्य षष्ठ साम्राज्याभिलाषी राजा था । उसने समस्त दक्षिणापथ मे विजय का डका वजाकर सन् १०७६ मे एक नवीन सम्वत् चलाया । जगदेव और विक्रमादित्य एक-दूसरे के अनुरूप थे । जगदेव ने विक्रमादित्य को स्वामी के रूप मे स्वीकार किया, किन्तु विक्रमादित्य ने उसे अपना पुत्र मानकर ।[2] यही पारस्परिक भावना इन दोनों के घनिष्ठ सम्बन्ध का कारण बनी । विक्रमादित्य के जीवन के अन्तिम भाग मे जब सामन्त इधर-उधर विद्रोह करने लगे, केवल जगदेव पूर्ववत् स्वामिभक्त बना

---

[1] वही, खण्ड २२, पृ० ६०-६१ ।
[2] टिप्पणी ७ देखें । प्रबन्ध चिन्तामणि के उद्धरण से भी विक्रमादित्य की जगदेव के प्रति आत्मीयता स्पष्ट है ।

पर आक्रमण किया तो वह भाग भी न सका।" राजा की ऐसी परिहासोक्ति को सुनकर महारानी अरुणोदय के समय पश्चिम दिशा को देखने लगी। राजा ने जब पूछा कि 'क्या देखती हो' तो उसने उत्तर दिया कि 'सूर्योदय को'। राजा ने कहा, "भोली भाली-स्त्री, क्या पश्चिम मे सूर्योदय कभी हो सकता है?" उसने उत्तर दिया, "पश्चिम मे सूर्योदय विधि के विधान के विरुद्ध है। किन्तु इस दुर्घट वस्तु के घटित होने पर भी क्षत्रियदेव जगदेव की हार नही हो सकती।" पति-पत्नी इस तरह प्रियालाप कर रहे थे। उधर जगदेव ने देवार्चन के बाद उठकर पाँच सौ सुभटो के साथ शत्रु राजाओ की सेना पर आक्रमण किया और उसे इसी प्रकार आसानी से नष्ट कर डाला जैसे सूर्य अन्धकार को, केसरी-किशोर हाथियो के समूह को, और प्रचण्ड अन्धड घनघोर घनघटा को नष्ट कर डालता है।"

८ गुर्जरदेशीय राजाओ के वृत्तात के पूरे जानकार और उनके यश का अनेकश गान करने वाले आचार्य मेरुतुग के इस कथन से यह प्रमाणित है कि जगदेव गुर्जरदेश मे अधिक दिनो तक नही ठहरा। शायद उसने सिद्धराज जयसिंह की नौकरी कभी स्वीकार ही न की। सिद्धराज जगदेव की वीरता से परिचित था। उसने जगदेव का सम्मान भी किया। किन्तु जगदेव को कुन्तलदेशाधिपति परमर्दी (कल्याणाधिपति चालुक्यराज विक्रमादित्य षष्ठ) का निमन्त्रण मिल चुका था। इसलिए जगदेव वही चला गया। परमर्दी ने 'जगदेव' को किसी देश-विशेष का अधिपति बनाया, और परमर्दी के दरबार मे रहके ही जगदेव ने अपनी दानवीरता की ख्याति विशेष रूप से प्राप्त की। राजस्थान मे जगदेव और ककाली की कथा प्रसिद्ध है। ककाली सिद्धराज के दरबार मे पहुँची। जगदेव को देखते ही उसने अपना मस्तक वस्त्र के अञ्चल से ढक लिया। इस कथा का बीज ऊपर उद्धृत प्रबन्ध-चिंतामणि की कथा मे अनुसन्धेय है। इसी प्रकार जगदेव विषयक अन्य कथाएँ भी बीज रूप में हमे इतस्तत मिलती हैं।[1]

९ जगदेव ने कुन्तलेन्द्र के दरबार मे जो ख्याति प्राप्त की उसका डोगरग्राम के शिलालेख ने सामान्यत इस प्रकार निर्देश किया है[2]

अर्थिप्रत्यर्थिनो यस्मिन् वा (बा) णै स्वर्णश्च वर्षति।
दैन्यसैन्यनिधि मुक्त्वा तेऽशङ्कितमुपासते ॥१०॥
न स देशो न स ग्रामो न स लोको न सा सभा।
न तन्नक्त दिव यत्र जगदेवो न गीयते ॥११॥

"जगदेव जब अर्थियो (याचको) और प्रत्यर्थियो (शत्रुओ) पर सुवर्णो (स्वर्ण मुद्राओ) और बाणो की वर्षा करता, तो अर्थी दैन्यसमुद्र का और प्रत्यर्थी सैन्यसमुद्र

---

1 उदाहरण के लिए देखें जयचन्द के दरबार मे प्रच्छन्नम्प मे पृथ्वीराज के पहुंचने पर कर्णाटी की व्यवहार। शायद ये दोनो कथाएँ किसी पुरानी कथा से ली गयी हो।

2 'एपिग्राफिया इण्डिका', खण्ड २९, पृष्ठ १८३-१८४।

का परित्याग कर निश्शक उसकी उपासना करते। न वह देश था, न वह ग्राम, न वह लोक था और न वह सभा, न वह रात्रि थी और न वह दिन जहाँ जगदेव (के यश) का गान न होता हो।"

१० डोगर गाँव के लेख मे निर्दिष्ट अर्थियो पर जगदेव की इस कृपा के अनेक उदाहरण मिलते हैं। किन्तु प्रत्यर्थियो पर उसके दृढ प्रहार भी किसी समय कुछ कम प्रसिद्ध न थे। किसी कवि के शब्दो मे जिस प्रकार 'समुद्र का गाम्भीर्य, पृथ्वी का विस्तार, आकाश की व्यापकता, मेरु की उत्तुङ्गता, विष्णु की महिमा, कल्पवृक्ष की उदारता, गगा की पवित्रता, और चन्द्रमा का अमृत-वर्षण' कोई नवीन वस्तु नही है, उसी तरह जगदेव की वीरता कुछ नयी बात न थी। यह तो स्वभाव-सिद्ध थी। जगदेव की विजयें तो अनेक रही होगी। ये कब और किस समय हुईं यह पूर्णतया जानने के साधन तो हमारे पास नही हैं। किन्तु जगदेव के सेनापति दाहिमा लोलार्क के बिना तिथि वाले जयनद के शिलालेख से हमे इतना अवश्य ज्ञात है कि—

(१) जगदेव ने आन्ध्राधीश को बुरी तरह हराया।
(२) उसने चक्रदुर्ग के स्वामी को पराजित कर उसे दण्ड मे बहुत-से मस्त हाथी देने के लिए विवश किया।
(३) उसके मस्त हाथियो की मार से शत्रुओ की हड्डियो के ढेर के ढेर दौर समुद्र मे लग गये। महलराधीश (होयसलराज) को इससे अत्यन्त दु ख हुआ।
(४) उसके धनुष की ध्वनि जयसिंह की विक्रम कथाओ के स्वाध्याय मे सध्याघनगर्जन रूपी विघ्न है।
(५) कर्ण नृपति ने इसका आश्रय ग्रहण किया।[1]

११ जगदेव के ये वीर-कार्य दो विभागो मे विभक्त किये जा सकते हैं। इनमे पहले तीन, दक्षिण दिशा से सम्बन्ध रखते हैं, और अन्तिम दो उत्तर भारत से। दक्षिण की विजय उसने कुन्तलेन्द्र के सेनापति के रूप मे प्राप्त की होगी। चालुक्यराज विक्रमादित्य षष्ठ साम्राज्याभिलाषी राजा था। उसने समस्त दक्षिणापथ में विजय का डका बजाकर सन् १०७६ मे एक नवीन सम्वत् चलाया। जगदेव और विक्रमादित्य एक-दूसरे के अनुरूप थे। जगदेव ने विक्रमादित्य को स्वामी के रूप मे स्वीकार किया, किन्तु विक्रमादित्य ने उसे अपना पुत्र मानकर।[2] यही पारस्परिक भावना इन दोनो के घनिष्ठ सम्बन्ध का कारण बनी। विक्रमादित्य के जीवन के अन्तिम भाग मे जब सामन्त इधर-उधर विद्रोह करने लगे, केवल जगदेव पूर्ववत् स्वामिभक्त बना

---

[1] वही, खण्ड २२, पृ० ६०-६१।

[2] टिप्पणी ७ देखें। प्रबन्ध चिन्तामणि के उद्धरण से भी विक्रमादित्य की जगदेव के प्रति आत्मीयता स्पष्ट है।

रहा।[1] उसने अनेक विद्रोही सामन्तो को पराजित किया, और स्पष्टत यह सिद्ध किया कि वह चालुक्य साम्राज्य के शत्रुओ के लिए वास्तव मे परशुराम है।[2]

१२ आन्ध्र प्रदेश कृष्णा और गोदावरी नदियो के बीच मे स्थित है। जगदेव के समय इसकी राजधानी वेंगी थी, और इसका शासक कुलोतु ग चोल था। इसके राज्यकाल मे चोल और वेंगी राज्य एक बन गये। विक्रमादित्य ने अपने साले अधिराजेन्द्र को चोल-सिंहासन पर बिठाया। कुलोतुग इसे हटाकर स्वय चोल देश का शासक बना, और जब विक्रमादित्य ने उस पर आक्रमण किया तो उसने विक्रमादित्य के बडे भाई चालुक्यराज सोमेश्वर को विक्रमादित्य पर आक्रमण करने के लिए उकसाया। विक्रमादित्य सोमेश्वर को हराकर स्वय राजा बना और अनेक बार उसने वेंगी पर आक्रमण किये।[3] सन् १११८ के लगभग विक्रमादित्य वेंगी पर अधिकार करने मे सफल हुआ। सम्भवत इसी विजय मे उसे जगदेव से पूर्ण सहायता मिली होगी।

१३ चक्रदुर्ग बस्तर राज्य का चक्रकोट नाम का स्थान है। उस समय यहाँ नागवशियो का अधिकार था। सन् १०७६ से कुछ पूर्व विक्रमादित्य ने चक्रदुर्ग के राजा को पराजित किया।[4] जगदेव को फिर उस पर आक्रमण करना पडा, यह बताना कठिन है। किन्तु इस बार राजा को दण्ड मे बहुत-से मस्त हाथी देने पडे।

१४ दौर समुद्र का शासक कुमार एरेयग (सन् १०६३–११००) विक्रमादित्य का सामन्त था। सोमेश्वर के विरुद्ध इसने विक्रमादित्य की सहायता की। मालवे पर आक्रमण कर इसने धारा को जलाया। चोलो से उसने गगावाडी को जीता। इसके तीन पुत्र थे। बल्लाल प्रथम, विष्णुवर्द्धन और उदयादित्य। बल्लाल ने सन् ११०४ के आसपास विक्रमादित्य के विरुद्ध विद्रोह किया। जगदेव इसे दण्ड देने के लिए नियत हुआ। स्वामी की आज्ञा का पालन करने के सिवाय जगदेव को यह कार्य दूसरे कारणो से भी रुचिकर रहा होगा। एरेयग ने निर्दयता से धारा को लूटा था, जगदेव एरेयग की राजधानी पर आक्रमण कर इसका बदला क्यो न ले? जयनद के शिलालेख मे जगदेव की विजय का उल्लेख है। उसके हाथियो ने दौरसमुद्र मे शत्रुओ की हड्डियो के ढेर के ढेर लगा दिये। किन्तु होयसल शिलालेखो मे दौर समुद्र की विजय जगदेव की

---

१ 'होयसल वश' के लेखक विलियम Coelho और श्री कृष्ण शास्त्री का कथन इस विषय मे पठनीय है। दोनो के मतानुसार विक्रमादित्य का प्रभाव पीछे से उतना न रहा जितना राज्यकाल के आरम्भ मे था। जगदेव अपने स्वामी का सच्चा सेवक था और उसने अनेक विद्रोही सामन्तो पर आक्रमण किये। हम भी अनेक प्रमाणो के आधार पर इसी परिणाम पर पहुँचे हैं।

२ देखें प्रबन्धचिन्तामणि मे प्रयुक्त शब्दावलि, "प्रत्यक्ष-भार्गव भवानन्यस्य चिंतामणि" (पृ० ११५)।

३ कुलोतुग (राजिग) और विक्रमादित्य के सघर्ष के लिए विक्रमाक-देवचरित, सर्ग ६ देखें।

४ देखें विक्रमाकदेव चरित, सर्ग चतुर्थ, श्लोक ३०।

नही अपितु बल्लाल प्रथम की मानी गयी है। सन् ११९६ के एक शिलालेख मे लिखा है, बल्लाल ने युद्ध मे अपने पर आक्रमण करने वाली सेना को ऐसा पीछे हटाया कि मालवाधीश जगदेव (जिसके मस्त हाथी उसने चिंघडवा दिया था) कह उठा, "धन्य है घुडसवार, धन्य है।" इसका उत्तर बल्लाल ने दिया, "मैं केवल घुडसवार ही नही, मैं वीर बल्लाल हूँ"[१] और शत्रुसहार द्वारा उसने जगत् को चकित कर दिया। इसी तरह श्रवण बेलगोल्ल के सन् १०५९ के शिलालेख मे लिखा है, "चक्री (विक्रमादित्य) द्वारा प्रेषित मालवराज जगदेव के सैन्य रूपी समुद्र को (विष्णु बर्द्धन) सहसा पी गया।"[२] सन् ११६१, १११७ और ११६४ के शिलालेखो मे इसी प्रकार बल्लाल और विष्णु-वर्द्धन की विजय का उल्लेख है।[3] सन् १११७ के लेख मे जो इन सबमे प्राचीन है, विष्णुवर्द्धन और बल्लाल की विजय का वर्णन इस प्रकार से है—'दौर समुद्र मे उन्होने जगदेव की सेन्य को पराजित किया, सिन्दूर के स्थान पर हाथियो के रक्त से उन्होने विजय श्री को रजित किया और उसकी नायकमणि के साथ-साथ उसके कोष पर अधिकार कर लिया।"[४]

१५ इन परस्पर विरोधी प्रमाणो के आधार पर दौरसमुद्र मे जगदेव की जय या पराजय के विषय मे निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। किन्तु उसके शौर्य के विषय मे किसी प्रकार का सन्देह नही किया जा सकता। सच्चा शूर वह है जो शत्रु के शौर्य की भी कद्र करे। यह गुण जगदेव मे वर्तमान था।

१६ ऊपर दिये हुए प्रबन्धचिन्तामणि के उद्धरण में जिस सीमाभूपाल पर जगदेव के आक्रमण का वर्णन है, वह सम्भवत यही दौरसमुद्र का राजा बल्लाल है। प्रबन्धचिन्तामणि का पाठ सीमालभूपाल या श्रीमालभूपाल है, जिसका कुछ खीचतान से सीमान्त भूपाल अर्थ किया जा सकता है। वास्तव मे 'मलह' होयसल वश की जाति रही होगी।[५] जयनद के शिलालेख मे दौरसमुद्र के शासक के लिए मलह-क्षोणीश यानि मलह का राजा शब्द प्रयुक्त हुआ है। प्रबन्धचिन्तामणि की सस्कृत मे श्री मलहभूपाल का श्रीमालभूपाल परिवर्तित होना बडी बात नही है। इस श्री मलहभूपाल ने जगदेव की सेना को पराजित कर दिया, किन्तु अन्त मे जगदेव के निजी

---

१ एपिग्राफिया कर्नाटिका, खण्ड ६, तरिकेरे तालुक, सख्या ४५। 'होयसल वश' के लेखक विलियम कोएल्हो ने इस जगदेव को सातरा का राजा मानने की भूल की है। प्रोफेसर कोएल्हो ने जगदेव के लिए प्रयुक्त 'मालावाधीश' शब्द पर ध्यान नहीं दिया।

२ वही, खण्ड २, श्रवणवेलगौल्ल के शिलालेख, (नवीन सस्करण), न० २४९, पृ० १६८।

3 वही खण्ड ५, Bl, No ५८, Hn, No ११६, Bl, No १९३।

४ वही, Bl, No 58।

५ यही 'एपिग्राफिया इण्डिका', खण्ड २२, के विद्वान सम्पादक का मत है।

शौर्य के कारण विजय श्री उसके साथ रही। सम्भवत इसी रूप से हम जयनद के शिलालेख, होयसल शिलालेखो, और प्रवन्धचिन्तामणि के वर्णन की परस्पर सगति वैठा सकते हैं।[1] विष्णुवर्द्धन का अन्त तक अपने लिए 'महामण्डलेश्वर' पदवी का प्रयुक्त करना उसकी कम से कम आशिक हार का द्योतक है।

१७ जगदेव दक्षिण अवश्य चला गया, किन्तु वह स्वदेश को न भूला। नरवर्मा के राज्यकाल मे मालवे की उर्वराभूमि पर विपत्ति के वादल मँडराने लगे। अजमेर के स्वामी अर्णोराज ने नरवर्मा को पराजित किया। पश्चिम से सिद्धराज जयसिंह ने मालवे पर अपनी चढाइयाँ शुरू की। चन्देलो ने भी सम्भवत मालवे की कुछ भूमि पर अधिकार कर लिया। इधर-उधर के अन्य राजा भी मालवे पर आक्रमण करने मे न चूके होंगे। जगदेव किसी ऐसे विपत्तिकाल के समय ही कुछ समय के लिए मालवे आया होगा।

जयनद शिलालेख के दसवें श्लोक मे जयसिंह की पराजय का निम्नलिखित वर्णन है —

आश्चर्यं जयसिंह विक्रमकथा स्वाध्यायस (स) ध्याधन-
ध्वान यस्यधनुर्द्धं (र्द्धव) नि नरपते र्व्यञ्जान्ति विस्तरिण,
अद्याप्यर्बुद पर्व्वतो दरदरी द्वारेषु रात्रिंदिव—
क्रन्दद्गूर्ज्जरवीरवर्गवनितावाप्पाम्वु (म्वु) पूरोर्म्मय ॥

इससे स्पष्ट है कि जयनद के शिलालेख के उत्कीर्ण होने से पूर्व जगदेव और जयसिंह परस्पर विरोधी वन चुके थे। जगदेव की धनुष की टकार अव जयसिंह की विक्रम-कथा के लिए सध्याधन के गर्जन के समान थी। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि जगदेव और जयसिंह का यह सग्राम कही आवूपहाड के आसपास हुआ होगा। उसकी घाटियो के द्वारो पर रोती हुई गुर्जर वीरो की स्त्रियो के आँसुओ से मानो वाढ-सी आ गयी थी।

१८ शिलालेख के सम्पादक श्री धीरेन्द्रचन्द्र गागुली के मतानुसार इस श्लोक मे वर्णित जयसिंह भोज का पुत्र जयसिंह परमार है। यही मत डॉक्टर श्री देवदत्त रामकृष्ण भडारकर का है। किन्तु श्लोक से स्पष्ट है कि यह जयसिंह वास्तव मे गुर्जरराज जयसिंह रहा होगा। परमार जयसिंह का राज्य तो जगदेव के पिता उदयादित्य के भी गद्दी पर वैठने से पूर्व समाप्त हो चुका था। गुर्जरराज जयसिंह सिद्धराज

---

[1] विष्णुवर्द्धन सन् १११७ मे विक्रमादित्य पष्ठ से मिलने गया। इसी समय सम्भवत उसने अपनी आधीनता सूचित की होगी। विष्णुवर्द्धन अपने को अन्त तक महामण्डलेश्वर और चालुक्यराज के चरणकमल का निवासी कहता रहा। इससे स्पष्ट है कि या तो जगदेव ने या विक्रमादित्य के अन्य किसी सामन्त ने विष्णुवर्द्धन को हराया। जयनद के शिलालेख के आधार पर हम यह श्रेय जगदेव को दे सकते हैं।

की प्रबल इच्छा थी कि वह मालवे को हस्तगत करे। आबू भी परमारो के अधिकार मे था। यह सम्भव है कि आबू के परमार ने अपने मालवे के भाइयो का साथ दिया हो, और इसी कारण से सिद्धराज जयसिंह को आबू पर आक्रमण करना पडा हो। जगदेव की विजय कुछ समय तक ही परमारो पर आयी हुई आफत को टाल सकी। नरवर्मा और शायद जगदेव की मृत्यु के बाद, सन् ११३७ के आसपास जयसिंह ने मालवे पर अधिकार कर लिया। आबू ने भी चौलुक्यो की आधीनता स्वीकार की।

१६ जिस कर्ण राजा ने जगदेव का आश्रय ग्रहण किया, वह कौन था, यह भी विवेच्य है, ईस्वी सन् की बारहवी शताब्दी के आसपास ये कर्ण वर्तमान थे, चेदिराज लक्ष्मीकर्ण (लगभग १०४१-१०७३ ई०), उसका पुत्र यश कर्ण (लगभग १०७३-११२५ ई०) और गूर्जर राज कर्ण (१०६४-१०६४)। इनमे से चेदिराज लक्ष्मीकर्ण भोज का प्रतिद्वन्द्वी था। जगदेव के युवावस्था मे पहुँचने से पूर्व ही सम्भवत वह मर चुका था। श्री धीरेन्द्रचन्द्र गागुली गुर्जरराज कर्ण को जगदेव का विरोधी मानते हैं। यह असम्भव नही है। शायद उदयादित्य के हाथो अपनी पराजय का बदला लेने के लिए उसने मालवे पर आक्रमण किया हो, किन्तु सन् १०६४ के आस-पास तक जगदेव का बडा भाई लक्ष्मदेव मालवे का राजा था। उसने बगाल, बिहार, उडीसा, चेदि आदि अनेक राज्यो पर आक्रमण किया। यदि सन् १०६४ तक (जो लक्ष्मणदेव और कर्ण दोनो ही का ही सम्भवत अन्तिम राज्यवर्ष था), जगदेव ने चौलुक्यराज कर्ण को लक्ष्मदेव के सेनानी के रूप मे पराजित किया होता तो ई० स० ११०४ के नरवर्मा के नागपुर-शिलालेख मे यह विजय अवश्य उल्लिखित होती। इस-लिए क्या यह मानना ठीक न होगा कि यह कर्ण वास्तव मे चेदिराज यश कर्ण है। यश कर्ण को विक्रमादित्य ने सन् १०८१ ई० से पूर्व हराया। लक्ष्मदेव ने भी त्रिपुरी का विध्वस इसी राजा को हराकर किया होगा। जगदेव इन दोनो मे से किसी एक का सेनापति होकर यश कर्ण पर आक्रमण कर सकता था। किन्तु कुन्तल की तरफ से उसके आक्रमण की सम्भावना कम है। वह विक्रमादित्य का सेनापति और सामन्त था अवश्य, किन्तु सन् १०८१ तक न जगदेव के पिता की मृत्यु ही हुई थी, और न जगदेव ने विदेश के लिए प्रयाण ही किया था। इसीलिए अधिक सम्भव यही है कि जगदेव ने लक्ष्मदेव के सेनानी के रूप मे कर्ण को हराया और उसे अपनी शरण मे आने के लिए बाध्य किया। मालवा छोडने से पूर्व जगदेव अपने शौर्य के लिए प्रसिद्ध हो चुका था। यह ख्याति सम्भवत उसे लक्ष्मदेव-कालीन विजयो से मिली होगी।[1]

२० जगदेव मालवे का राजा कभी न हुआ। किन्तु जैसा प्रबन्धचिन्तामणि-कार ने लिखा है कि वह विदेश मे भी परमर्दी विक्रमादित्य षष्ठ की कृपा से एक देश

---

[1] के० वी० सुब्रह्मण्य की सम्मति है कि जगदेव ने सन् १११७ मे काकतीय राजा प्रोल द्वितीय को भी पराजित किया। यह ठीक हो तो जगदेव की ज्ञात विजयो की सख्या और बढ जाती है।

का अधिपति था। इस देश-विशेष का कुछ ज्ञान हमे डोगरगाँव और जयनद के शिलालेखो से मिलता है। डोगरगाँव बरार के यवतमाल जिले का एक गाँव है। इसके एक जीर्ण-शीर्ण मन्दिर के गर्भगृह से जगदेव का एक शिलालेख मिला है, जिसमे जगदेव के पूर्वजो की और स्वय जगदेव की प्रशस्ति के अतिरिक्त इस बात का भी उल्लेख है कि जगदेव ने डोगरग्राम, श्री निवास नाम के एक विद्वान् ब्राह्मण को दान मे दिया। इससे यह स्पष्ट है कि विक्रमादित्य से यवतमाल के आसपास का प्रदेश जगदेव को जागीर मे प्राप्त हुआ। किसी समय यह प्रदेश परमारो के राज्य के अन्तर्गत था, किन्तु सन् १०८७ से कुछ पूर्व विक्रमादित्य षष्ठ ने इसे जीतकर अपने राज्य मे मिला लिया। जयनद डोगरगाँव से लगभग ठीक ६५ मील पूर्व मे है और इस समय यह हैदराबाद राज्य के अन्तर्गत है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि जगदेव की जागीर काफी बडी रही होगी। बरार का अधिकाश और हैदराबाद का कुछ उत्तरी भाग इस जागीर के अन्तर्गत था।

२१ जयनद के शिलालेख से हमे इसके अश्वसेना नायक दाहिमा जातीय लोलार्क का नाम मिलता है। उसका पिता गुणराज उदयादित्य का सेनानी था। कई विद्वानो का अनुमान है कि पूर्व बगाल के राजा सामलवर्मा की मुख्य रानी मालव्य-देवी, जगदेव परमार की पुत्री थी।

२२ दन्तकथाओ के अनुसार जगदेव रग का सावला होने पर भी अत्यन्त सुन्दर था। इस कथन की परिपुष्टि के लिए परमार राजा अर्जुनवर्मा की रसिक सजीवनी टीका से यह उद्धरण दिया जा सकता है—

यथास्मत्-पूर्वजरूपवर्णने नाचिराजस्य—
सत्रासाइव सालसा इव लसद्‌गवी इवार्द्रा इव
व्याजिह्म इव लज्जिता इव परिभ्रान्ता इवार्ता श्व।
त्वद्रूपे निपतन्ति कुत्रन जगदेव प्रभो सुभ्रुवा
वाता वर्तन नर्तितोत्पलदल द्रोणी द्रुहो दृष्टय ।।

नाचिराज के वर्णन मे सम्भव है कुछ अत्युक्ति हो, किन्तु यह निराधार प्रतीत नही होता।

२३ शिलालेखादि के आधार पर दिया हुआ यह जगदेव का चरित सर्वांग-पूर्ण नहीं कहा जा सकता। इस अपूर्व वीर के जीवन मे अन्य अनेक घटनाएँ हुई होगी, जिनके विषय मे शिलालेख मौन हैं। किन्तु जो कुछ भी हमे मिल सका है, वह अनेक भ्रान्तियो को दूर करने और जगदेव के वास्तविक जीवन को समझने के लिए पर्याप्त है। कथाओ का जगदेव मुख्यत दानवीर है। इतिहास का वास्तविक जगदेव उससे कम नही उतरता। त्वष्टा के चक्र पर चढे सूर्य की तरह, ऐतिहासिक कसौटी पर कसे हुए जगदेव का यश उज्ज्वल ही प्रतीत होता है। इतिहास का जगदेव दानवीर

ही नही, त्रिविध वीर है। दान मे वह बलि और दधीचि का समकक्ष, शौर्य मे जगदेव वीर, और धर्मनिष्ठ मे अद्वितीय है। जगदेव वास्तव मे जगदेव है।"[१]

उपर्युक्त ऐतिहासिक विवेचन मे एक प्रश्न तो उक्त निबन्ध के विद्वान लेखक के लिए पैदा होता है कि वे निष्कप मे कहते हैं कि 'जगदेव मालवे का राजा कभी नही हुआ' किन्तु दौरसमुद्र के सन् ११९६ के शिलालेख मे उसे 'मालवाधीश' तथा श्रवण-बेलगोल्ल के सन् १०५९ के शिलालेख मे उसे 'मालवराज' कहा गया है? ऐसा क्यो हुआ है? क्या जो व्यक्ति राजा नही उसे इस प्रकार 'अधीश' या 'राज' कहकर सम्बोधित करने की प्रथा मिलती है? इस प्रश्न का सन्तोपजनक समाधान होना आवश्यक है। 'लोककथाओं' मे जगदेव के मालवा लौटने की घटना का उल्लेख है, उसके अनन्तर वही रहने और राज्य करने का भी किसी कहानी मे वर्णन है। विद्वान लेखक ने भी परिच्छेद सख्या १७ मे इस तथ्य को स्वीकार किया है कि जगदेव मालवे गया होगा, विशेष सकटकाल मे। प्रश्न केवल काल विषयक है। कुछ काल के लिए गया या सदा के लिए? यह विपय भी अभी और अनुसन्धान चाहता है। जिन शिलालेखो मे जगदेव को मालवेश या मालवराज कहा गया है, हो सकता है कि वे उसके मालवा पहुँचने के उपरान्त के पराक्रमों से सम्बन्धित हो। यद्यपि इन दोनो शिलालेखो मे यदि ठीक सन् दिये गये हैं तो (सन् ११९५—सन् १०५९) १३७ वर्षों का अन्तर है, जो हमारे सुझाव को स्वीकार करने मे बाधक है। अवश्य ही इस सम्बन्ध मे विशेष अनुसन्धान अपेक्षित है।

दूसरी बात हमे यह आकर्पित करती है कि मेरुतुग ने लिखा है कि "सिद्धराज द्वारा खूब सम्मानित होने पर भी जब उसके आदि (देखिए ७वाँ पैरा) इसमे "सिद्धराज द्वारा खूब सम्मानित" होने के क्या अर्थ हैं? यह किस प्रकार का सम्मान हो मकता है। इससे यह तो सिद्ध ही होता है कि जगदेव सिद्धराज के यहाँ गया था। वह उसके यहाँ ठहरा नही, इसे भी लोककथा मानती है। कितने काल तक वह सिद्धराज के यहाँ रहा इसका उल्लेख मेरुतुग ने भी नही किया, किन्तु वर्णन प्रणाली से विदित होता है कि जगदेव वहाँ दीर्घकाल तक नही रहा, और वहाँ उसने कोई पुरुषार्थ भी नही दिखाया। किन्तु जितने काल तक रहा वह सम्मानित किया गया—निश्चय ही जब वह कुन्तलेश्वर का भृत्य हो सकता था तो सिद्धराज का भी हो सकता था। बहुत सम्भव है कि वह सम्मान के साथ सिद्धराज का भी भृत्य रहा हो, और किसी कारणवश, हो सकता है वह कारण कुन्तलेश्वर का विशेष आग्रह ही रहा हो, वह सिद्धराज की नौकरी छोडकर कुन्तलदेश मे चला गया हो। अत सम्भवत यह कहना पूणत समीचीन नही होगा कि 'शायद उसने सिद्धराज जयसिंह की नौकरी

---

[१] शारङ्गधर पद्धति के श्लोक १२६१ मे इसी जगदेव की दानवीरता का वर्णन है। जायसी ने भी पद्मावत मे इसे एक महान् वीर के रूप मे स्मरण किया है।

का अधिपति था। इस देश-विशेष का कुछ ज्ञान हमे डोगरगाँव और जयनद के शिलालेखो से मिलता है। डोगरगाँव बरार के यवतमाल जिले का एक गाँव है। इसके एक जीर्ण-शीर्ण मन्दिर के गर्भगृह से जगदेव का एक शिलालेख मिला है, जिसमे जगदेव के पूर्वजो की और स्वय जगदेव की प्रशस्ति के अतिरिक्त इस बात का भी उल्लेख है कि जगदेव ने डोगरग्राम, श्री निवास नाम के एक विद्वान् ब्राह्मण को दान मे दिया। इससे यह स्पष्ट है कि विक्रमादित्य से यवतमाल के आसपास का प्रदेश जगदेव को जागीर मे प्राप्त हुआ। किसी समय यह प्रदेश परमारो के राज्य के अन्तर्गत था, किन्तु सन् १०८७ से कुछ पूर्व विक्रमादित्य षष्ठ ने इसे जीतकर अपने राज्य मे मिला लिया। जयनद डोगरगाँव से लगभग ठीक ६५ मील पूर्व मे है और इस समय यह हैदराबाद राज्य के अन्तर्गत है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि जगदेव की जागीर काफी बडी रही होगी। बरार का अधिकाश और हैदराबाद का कुछ उत्तरी भाग इस जागीर के अन्तर्गत था।

२१ जयनद के शिलालेख से हमे इसके अश्वसेना नायक दाहिमा जातीय लोलार्क का नाम मिलता है। उसका पिता गुणराज उदयादित्य का सेनानी था। कई विद्वानो का अनुमान है कि पूर्व बगाल के राजा सामलवर्मा की मुख्य रानी मालव्य-देवी, जगदेव परमार की पुत्री थी।

२२ दन्तकथाओ के अनुसार जगदेव रग का सावला होने पर भी अत्यन्त सुन्दर था। इस कथन की परिपुष्टि के लिए परमार राजा अर्जुनवर्मा की रसिक सजीवनी टीका से यह उद्धरण दिया जा सकता है—

यथास्मत्-पूर्वजरूपवर्णने नाचिराजस्य—
सत्रासाइव सालसा इव लसद्ग्वी इवार्द्रा इव
व्याजिह्म इव लज्जिता इव परिभ्रान्ता इवार्ता श्व।
त्वद्रूपे निपतन्ति कुत्रन जगदेव प्रभो सुभ्रुवा
वाता वर्तन नर्तितोत्पलदल द्रोणी द्रुहो दृष्टय ।।

नाचिराज के वर्णन मे सम्भव है कुछ अत्युक्ति हो, किन्तु यह निराधार प्रतीत नही होता।

२३ शिलालेखादि के आधार पर दिया हुआ यह जगदेव का चरित सर्वांग-पूर्ण नही कहा जा सकता। इस अपूर्व वीर के जीवन मे अन्य अनेक घटनाएँ हुई होगी, जिनके विषय मे शिलालेख मौन हैं। किन्तु जो कुछ भी हमे मिल सका है, वह अनेक भ्रान्तियो को दूर करने और जगदेव के वास्तविक जीवन को समझने के लिए पर्याप्त है। कथाओ का जगदेव मुख्यत दानवीर है। इतिहास का वास्तविक जगदेव उससे कम नही उतरता। त्वष्टा के चक्र पर चढ़े सूर्य की तरह, ऐतिहासिक कसौटी पर कसे हुए जगदेव का यश उज्ज्वल ही प्रतीत होता हैं। इतिहास का जगदेव दानवीर

ही नही, त्रिविध वीर है। दान मे वह बलि और दधीचि का समकक्ष, शौर्य मे जगदेव वीर, और धर्मनिष्ठ मे अद्वितीय है। जगदेव वास्तव मे जगदेव है।"[१]

उपर्युक्त ऐतिहासिक विवेचन मे एक प्रश्न तो उक्त निबन्ध के विद्वान लेखक के लिए पैदा होता है कि वे निष्कर्ष मे कहते हैं कि 'जगदेव मालवे का राजा कभी नही हुआ' किन्तु दौरसमुद्र के सन् ११९६ के शिलालेख मे उसे 'मालवाधीश' तथा श्रवण-बेलगोल्ल के सन् १०५९ के शिलालेख मे उसे 'मालवराज' कहा गया है? ऐसा क्यो हुआ है? क्या जो व्यक्ति राजा नही उसे इस प्रकार 'अधीश' या 'राज' कहकर सम्बोधित करने की प्रथा मिलती है? इस प्रश्न का सन्तोषजनक समाधान होना आवश्यक है। 'लोककथाओ' में जगदेव के मालवा लौटने की घटना का उल्लेख है, उसके अनन्तर वही रहने और राज्य करने का भी किसी कहानी मे वर्णन है। विद्वान लेखक ने भी परिच्छेद सख्या १७ मे इस तथ्य को स्वीकार किया है कि जगदेव मालवे गया होगा, विशेष सकटकाल मे। प्रश्न केवल काल विषयक है। कुछ काल के लिए गया या सदा के लिए? यह विषय भी अभी और अनुसन्धान चाहता है। जिन शिलालेखो मे जगदेव को मालवेश या मालवराज कहा गया है, हो सकता है कि वे उसके मालवा पहुँचने के उपरान्त के पराक्रमो से सम्बन्धित हो। यद्यपि इन दोनो शिलालेखो मे यदि ठीक सन् दिये गये हैं तो (सन् ११९५—सन् १०५९) १३७ वर्षो का अन्तर है, जो हमारे सुझाव को स्वीकार करने मे बाधक है। अवश्य ही इस सम्बन्ध मे विशेष अनुसन्धान अपेक्षित है।

दूसरी बात हमे यह आकर्षित करती है कि मेरुतुग ने लिखा है कि "सिद्धराज द्वारा खूब सम्मानित होने पर भी जब उसके आदि (देखिए ७वाँ पैरा) इसमे "सिद्धराज द्वारा खूब सम्मानित" होने के क्या अर्थ हैं? यह किस प्रकार का सम्मान हो सकता है। इससे यह तो सिद्ध ही होता है कि जगदेव सिद्धराज के यहाँ गया था। वह उसके यहाँ ठहरा नही, इसे भी लोककथा मानती है। कितने काल तक वह सिद्धराज के यहाँ रहा इसका उल्लेख मेरुतुग ने भी नही किया, किन्तु वर्णन प्रणाली से विदित होता है कि जगदेव वहाँ दीर्घकाल तक नही रहा, और वहाँ उसने कोई पुरुषार्थ भी नही दिखाया। किन्तु जितने काल तक रहा वह सम्मानित किया गया—निश्चय ही जब वह कुन्तलेश्वर का भृत्य हो सकता था तो सिद्धराज का भी हो सकता था। बहुत सम्भव है कि वह सम्मान के साथ सिद्धराज का भी भृत्य रहा हो, और किसी कारणवश, हो सकता है वह कारण कुन्तलेश्वर का विशेष आग्रह ही रहा हो, वह सिद्धराज की नौकरी छोडकर कुन्तलदेश मे चला गया हो। अत सम्भवत यह कहना पूर्णत समीचीन नही होगा कि 'शायद उसने सिद्धराज जयसिंह की नौकरी

---

[१] शारङ्गधर पद्धति के श्लोक १२६१ मे इसी जगदेव की दानवीरता का वर्णन है। जायसी ने भी पद्मावत में इसे एक महान् वीर के रूप मे स्मरण किया है।

कभी स्वीकार ही न की।' इस सम्बन्ध मे एक-दूसरे प्रसिद्ध इतिहासकार के ये शब्द भी ध्यान देने योग्य हैं—

"राजा भोजदेव के अन्तिम काल मे अस्तगत परमार-वैभव तथा वैक्रम सूर्य उदयादित्य के शासनकाल मे पुन ज्योतिर्मान हो उठा। इनके तीन पुत्रो—लक्ष्मणदेव, नरवर्मदेव, जगदेव मे, जगदेव पँमार चालुक्य वशीय सिद्धराज जयसिंह के सेवा पाते रहे · · ·।" विक्रम स्मृति ग्रन्थ—निवन्ध मालवे के पँमार—पवार। लेखक श्री चितामणि वलवन्त लेले, पृ० ५९३।

जगदेव के पूर्वज

जगदेव के पूर्वजो का एक उल्लेख मथुरा के पँवारे मे यो दिया हुआ है

राजा उज भये,
उज के कुज भये,
कुज के पालदे पँवार भए
पालदे पँवार के उदैयाजीत भए
उदैयाजीत के राजा जगदेव भए

इसमे जगदेव की पाँच पीढियो का उल्लेख है। इतिहास में उनकी ये पीढियाँ हैं।

ऐतिहासिक वशावली को राजाओ के विरुद आदि के साथ यो दिया जा सकता है।

उपेन्द्रराज=कृष्णमराज
|
वैरिसिंह प्रथम
|

सीयक प्रथम
|
वाक्पतिराज प्रथम=अजयराज
|
वैरिसिंह द्वितीय=वज्रट
|
सीयक द्वितीय=हर्षदेव=सिंहदत्त भट्ट
|
कुंज=कुमार नारायण=नवसाहसाक=सिंधुराज | मुंज=उत्पलराज, अमोघवर्ष, श्रीवल्लभ, पृथ्वीवल्लभ

(कुंज से) विक्रम श्रीवल्लभ—पृथ्वीवल्लभ—त्रिविध वीर चूडामणि भोजदेव
|
जयसिंह
|
अखिलमथन=उदयादित्य
|
लक्ष्मणदेव | नरवर्मदेव | जगदेव
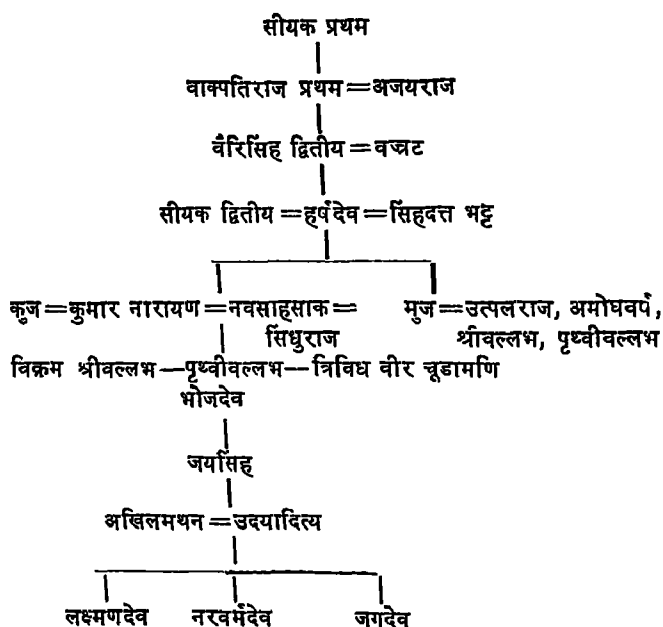
ऐतिहासिको द्वारा प्रस्तुत इस राजवशावली से ब्रज की वशावली की तुलना करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि केवल उदैयाजीत अथवा उदयादित्य और जगदेव को छोड सभी कल्पित हैं। किन्तु इसका निराकरण तब होता है जब हमे इतिहासकार ही यह वताते है कि सिन्धुराज का नाम 'कुंज' भी था। श्री चिन्तामणि बलवत लेले ने लिखा है कि 'इनका कुंज नाम कुंज सागर अभिधान से आज भी अक्षुण्ण है' [विक्रम-स्मृति-ग्रन्थ, पृ० ५६१]। अत यह तीसरा नाम भी ऐतिहासिक सिद्ध हुआ। राज्यारोहण की दृष्टि से इस ऐतिहासिक वशावली की ६ पीढियो का रूप यह हुआ।
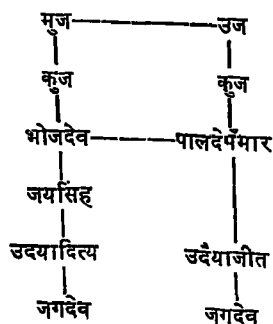
अब ब्रज की लोक वशावली का उज-मुज हो सकता है अथवा यह भी सभव है सीयक द्वितीय का ही नाम 'उज' रहा हो। भोजदेव सभवत पालदे (व) पँमार हो गये हैं। जयसिंह ने वस्तुत राज्य किया था नही यह किंचित विवादास्पद भी है। ये इतने लोकप्रिय न हुए हो। अत लोक-मानस ने पालदे या भोजदेव के बाद उदयादित्य का ही नाम स्मरण रखा। इस प्रकार लोकवशावली आश्चर्यजनक रूप से ऐतिहासिक वशावली से मेल खाती है।

परमार वश की कुछ ख्यातियाँ

परमार वश के जो सक्षिप्त विवरण कुछ इतिहासकारो ने प्रस्तुत किये हैं उनमे कुछ ऐसी बातें हैं जो जगदेव के लोक-वृत्त मे मिलती है। उन्ही का उल्लेख यहाँ किया जाता है।

१ भोज के भाई राजा उदयादित्य के अनेक पुत्र थे। किन्तु अपने मनोनुकूल पुत्र की इच्छा से उसने भगवान् शिव की आराधना की। इसके फलस्वरूप उसके जगदेव नाम का पुत्र हुआ।[1]

—डोगर गाँव का लेख

२ सीयक द्वितीय (सिंहराज तथा सिंह भट्ट) के जीवन के प्रारम्भिक भाग मे पुत्र नही था, अत मुज घास मे एक बालक पडा मिला। उसे उन्होने अपना पुत्र बना लिया, और मुज नाम रखा। उसके कुछ दिनो बाद उनके पुत्र हुआ जिसका नाम सिंधुल रखा। सीयक ने मुज को राज्य दिया। सिंधुल को कारावास मे भी रहना पडा।[2] निर्वासन मे इधर-उधर भटकता भी फिरा,[3] और पुन लौटकर धारा आने पर राज्य भी उसे मिला।[4]

३ सिंधुल के नागकन्या मृगावती से दो पुत्र शुभचन्द्र तथा भर्तृहरि हुए। इसके बाद सिंधुल कारागार मे था तो पुत्र भोज हुआ। यह भोज ही सिंधुल का उत्तराधिकारी हुआ।

४ भोज का पालन मुज ने किया। ज्योतिषी की भविष्यवाणी के कारण मुज ने भोज को मरवा डालना चाहा, पर भोज ने एक उक्ति से मुज को चेताया, और अपनी प्राण रक्षा भी की।[5]

---

१ इसी मे उस पूर्व कथा का मूल है जिसमे उदयादित्य ने फकीर को प्रसन्न कर पुत्र-जन्म का वरदान पाया।

२ भोज जब पैदा हुआ तब उसका पिता कारावास मे था, इससे उस कल्पना को प्रोत्साहन मिला जिसमे उदयादित्य के किसी राजा के यहाँ बन्दी होने का उल्लेख है।

३ एक भाई के गद्दी पर बैठने पर दूसरा भाई निर्वासित अवस्था मे जहाँ-तहाँ फाके करता फिरता था, या योगी हो जाता था, यह परम्परा भी मिलती है।

४ जगदेव लौटा और राजा बनाया गया। यह सिंधुल के चरित्र के मेल से सुझाव मिला है।

५ ज्योतिषी का भय, जगदेव में उसके बाहुबल का भय बन गया प्रतीत होता है।

५ भोज को अपने पिता की मृत्यु का बदला लेना था, अनहिलवाड के भीम चौलुक्य से। पितृव्य मुज के वध का बदला तैलप से लेना था।[1]

६ भोज भी भीम की सेनाओ द्वारा बन्दी बनाया गया, और छोड दिया गया।

७ "भोज की सभा को देखने भीम चौलुक्य छिपकर गया, अपने मन्त्री डामर के साथ। अपने स्वामी की प्रशसा करते हुए डामर ने अपनी वक्रोक्ति का भोज को लक्ष्य बनाया। उसी समय पहचाने जाने की आशका से भीम राज-सभा से खिसक गया। इसके पश्चात् अपने स्वामी को बचाने के लिए भोज का ध्यान दक्षिण की ओर आकृष्ट करते हुए जहाँ मुज की मृत्यु का प्रतिशोध लिया जाना शेप था, डामर ने दूसरा व्यग्योक्ति का प्रहार किया। इस प्रकार चौलुक्य के विरुद्ध आक्रमण हुआ।"[2] (मालवमणि भोज—विक्रम स्मृति ग्रथ—पृ० ५८४ अनन्त वामन वाकणकर)

८ भोज त्रिविध-वीर चूर्णमाशी कहलाते थे।[3] (वि० स्मृति ग्रथ, पृ० ५९)

यह जगदेव की सामान्य ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है। इसमे जगदेव मालवा लौटा और राजा हुआ, यह बात विशेष सदिग्ध रहती है, क्योकि मालवा की राज परम्परा मे जगदेव का नाम नही आता। कुछ विद्वान जैसे डा० गागुली जगदेव को 'लक्ष्मदेव'[२] ही मानते हैं। कुछ जगदेव को लक्ष्मणदेव, नरवमदेव के साथ तीसरा पुत्र मानते हैं। डोगरगाँव के शिलालेख से अन्तिम मत की कुछ पुष्टि होती है।

विवरणात्मक अध्ययन

हमने ऊपर अपने अध्ययनो के दो उदाहरण दिये हैं, और उनसे लोक-कहानियो के अध्ययन के दो पहलुओ को स्पष्ट किया है। एक साहित्यिक कहानी का विविध

---

[1] पिता या पितृव्य का बदला लेने का भाव भोज के वृत्त मे है। उसे डामर ने स्मरण दिलाया है। जगदेव को भी ऐसा ही स्मरण दिलाया गया है, किन्तु यहाँ पिता केवल बन्दी है।

[2] जगदेव भी त्रिविध वीर था।

[3] "Udayaditya closed his reign shortly after 1086 A D The tradition runs that Jug Deb was his immediate successor to the throne, but a contemporary Paramara record states that Laksmadeva became king of Malwa after Udayaditya's death Jagaddeva's name is not mentioned in any Parmara inscription But that he ruled in Malwa for some years about this time, is borne out by two Hoysala inscription referred to above In these circumstance it may therefore be conjectured that the names Jagaddeva and Laksmadeva were those of one and the same person

—History of the Parmara Dynasty by Dr D C Ganguly p 142 see details of Laksmadeva in the Hindi Institute Library No 10564

पक्षीय पहलू है, दूसरा लोक-कहानी का विविध पक्षीय पहलू। पहले अध्ययन मे तुलनामूलकता की प्रधानता है, तुलनामूलकता का सम्बन्ध अन्य कहानियो से है, देश-विदेश से भी है। दूसरे मे रूपान्तरो की तुलना से एक ही कहानी के रूप-निर्मायक तत्त्वो का अध्ययन किया गया है। इस प्रकार हम कह सकते है कि कहानी के अध्ययन की दो प्रणालियो का यहाँ तक दिग्दर्शन कराया गया है। ये दोनो अध्ययन विवरणात्मक हैं जिसमे वस्तु-विवेचन की प्रधानता है।

साभिप्राय अध्ययन

विश्व मे अब तक जो लोक-कथाओ के अध्ययन प्रस्तुत किये गये हैं उनमे अध्ययनकर्ताओ के सामने कुछ समस्याएँ रही हैं। इन समस्याओ को मुख्यत पाँच वर्गों मे बाँटा जा सकता है—

१ लोक-कहानियो के मूल की समस्या। कहानी कहना कैसे शुरू हुआ ? कहानी का मूल रूप क्या था ?

२ लोक-कहानियो के अर्थ की समस्या—कहानियो का जो अर्थ प्रतीत होता है, वही है या कोई अन्य अर्थ भी उनसे अभिप्रेत है।

३ लोक-कहानियो के प्रसार की समस्या—कितनी ही कहानियाँ बहुत बडे क्षेत्र मे विश्व मे प्रचलित मिलती हैं, ये किस प्रकार फैली और उनके इस प्रसार का प्रकार क्या था ?

४ लोक-कहानियो के रूपान्तरो की समस्या—कहानियो के विविध पाठो मे हमे अन्तर मिलता है। यह अन्तर क्यो हुआ और उसका रूप क्या है ? आगम, लोप तथा विपर्यय की पृष्ठभूमि और कारण का अध्ययन।

५ लोक-कहानियो के विविध रूपो के पारस्परिक सम्बन्ध की समस्या। कहानी, धर्मगाथा, वीरगाथा, पँवाडा आदि का परस्पर क्या सम्बन्ध है ?

पहले वर्ग के अनुसन्धाता और अध्ययनकर्ताओ ने कहानियो को उनके ऐतिहासिक विकास मे मुडकर मूल-स्रोत तक ले जाने का प्रयत्न किया। दूसरे वर्ग ने लोक-कहानियो मे छिपे अर्थ ढूँढने का प्रयत्न किया। अनेको घरेलू कहानियो को भी सूर्य-चन्द्र के व्यापारो का रूपान्तरित वर्णन मात्र माना। अनेको मत कहानियो के मूल अर्थ को लेकर खडे हुए। तीसरे वर्ग के विद्वानो ने तुलनापूर्वक कहानियो के प्रसार के मार्ग का ही निर्देश नही किया, किस प्रकार उनका प्रसार हुआ इस पर भी विचार किया। 'भारतीय मूल' से प्रसार के सम्बन्ध मे बेन्फे का नाम सभी जानते हैं। ऐसे ही अन्य विचार भी सामने आये। प्रसार मे कहानियो मे रूपान्तर होते हैं, चौथे वर्ग मे इन पर विचार किया। लोक-साहित्य के रूपो के पारस्परिक सम्बन्ध पर विचार का कार्य पाँचवें वर्ग के अध्ययनकर्ताओ ने किया।

किन्तु वास्तव मे लोकवार्ता के क्षेत्र के अध्ययनकर्ता का मुख्य कार्य है लोक-कहानियो के मूल रूप अथवा अक्षर रूप (Arch type) का अनुसधान करना। यह अक्षररूप ही तो प्रसार की प्रथम वस्तु रहा होगा।

इस अक्षररूप को प्राप्त करने के लिए ही भौगोलिक-ऐतिहासिक सम्प्रदाय या फिनीशियन सम्प्रदाय सचेष्ट रहा है।

ऐतिहासिक-भौगोलिक अध्ययन

भौगोलिक अध्ययन के लिए यह अपेक्षित है कि किसी भी कहानी का रूप गाँव प्रति गाँव क्रमश एकत्र किया जाय और जितने भी रूपान्तर मिलें उन सबको लेकर वह काम मे प्रवृत्त हो। रूपान्तरो के जितने भी पाठ हैं उन सभी की सूची बनायी जानी चाहिए। उस सूची की सभी कहानियाँ भी प्राप्त की जानी चाहिए। यह एक भारी काम है। ये रूपान्तर साहित्यिक क्षेत्र से भी लेने होते हैं और मौखिक परम्परा से भी। लेने की तिथि तथा स्थान भी प्रत्येक रूप के साथ दिया जाता है।

क्रम देना

समस्त साहित्यिक रूपान्तरो को यथासम्भव तिथिक्रम से लगा लिया जाता है। मौखिक रूपान्तरो को भौगोलिक क्रम से।

भौगोलिक क्रम मे स्थान के नामो के लिए सकेताक्षरो का उपयोग किया जाता है। उन स्थान के नामो की एक सकेताक्षरी अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे इस रूप मे काम मे आती है। ये सकेताक्षर जर्मन में पहले-पहल निर्धारित हुए। वे यो हैं

ज न GN—Norwegian नार्वे की
ज ड GD—Danish
ज स GS—Swedish स्वीडेनी
ज स फ GSF—Finish Swedesh फिनीशियन स्वीडेन
ज आ GI—आइसलैंडीय
ज ज GG—जरमन
ज ह GH—डच (हॉलैंडीय)
ज व GV—फ्लेमीय
ज अ GE—अंग्रेजी
क स CS—हाईलैंड स्काटीय
क आ CI—आयरिस
क व CB—ब्रटेन
क व CW—वेल्सीय
र फ—RF—फ्रासीसी
र स RS—स्पेनीय
र प RP—पुर्तगाली
र इ RI—इटालवी
र र RR—रूमानियानी
स र SR—रूसी
स र श SRW—श्वेत रूसी
स र ल SRK—लघुरूसी
स ज SC—जेकोस्लोवेकी
स प SP—पोलैंडीय
स व SB—बलगेरियाई
स स SS—सर्वो क्रोशियायी
फ फ FF—फिनीशियाई
फ ल FL—लैप्पी
फ ऐ FE—ऐस्टोनियाई
फलिव FLiv—लिवोनियाई
फ म FM—हगेरियायी (मग्यार)
र फ अ म RFAm—अमरीकी फ्रासीसी
ज अ अम GEAm—अमरीकी अंग्रेजी
र स अ म RSAm—अमरीकी स्पेनीय
र प अ म RPAM—ब्रेजिली पुर्तगाली

इन सकेतो से युक्त कहानियो को क्रमबद्ध करके उन्हे अक दे दिये जाते हैं। ये अक सकेताक्षरो के साथ उस विशेष कहानी के नाम की भाँति उपयोग मे आने लगते हैं। इस प्रकार किसी भी कहानी के किसी भी रूपान्तर को सकेत-अको से हम जान सकते हैं। उदाहरणार्थ हमे फ्रास की ५ कहानियाँ मिली। उन्हे हम RF१, RF२, RF३, आदि सकेत-अको से जान सकते हैं। इस क्रम से अध्ययन मे सुविधा हुई है और एक वैज्ञानिक विधि प्रतिष्ठित हुई है। इस सूची और सकेत मे एशिया के देशो को भी सम्मिलित करना होगा। इसके लिए देवनागरी मे प्रथम अक्षर के द्वारा देश-विभागो का सकेत रखा जा सकता है, और दूसरे अक्षर से स्वय देश के नाम का यथा प को पश्चिमी एशिया। अब 'ईरान' के सकेत के लिए हम 'प ई' रख सकते है। प अ=अफगानिस्तान। प फ=फारस। आदि भारत-पाकिस्तान के लिए 'भ', उत्तरी एशिया के लिए 'उ' का उपयोग कर जापान को उ ज से चीन को उच से अभिहित कर सकते हैं। पाश्चात्य विद्वानो ने जिस प्रकार यूरोप को अपने अध्ययन का विषय बनाया है, उसी प्रकार भारत के विद्वानो को एशिया को अपने अध्ययन का विषय बनाना चाहिए। जब तक ऐसा नही होता, लोकवार्ताकार अपने अध्ययन को परिपूर्ण नही मान सकता। स्वय भारत के विविध प्रदेशो को इस विधि से लिया जाना चाहिए।

इस विधि से कहानियो को एक क्रम देकर सूची बना डालने पर वर्गीकरण का प्रथम चरण पूर्ण हुआ माना जा सकता है।

अध्ययन का दूसरा चरण 'विश्लेपण' होता है। विश्लेपण करना होता है कहानी के विशिष्ट नियोजक सूत्रो (Traits) का। स्टिथ थामसन ने 'ऐंडरसन' द्वारा विश्लेषित एक कहानी का उदाहरण देकर इस विश्लेपण को स्पष्ट किया है। यह कहानी 'राजा जोह्न तथा पादरी' (King John and Bishop) की है। ऐंडरसन के अनुसार इस कहानी मे तीन अग हैं (१) पात्र (Persons involved) (२) पहेलियाँ (३) कथानक के अन्य तन्तु। इन तीनो अगो मे सूत्रो का विश्लेपण इस प्रकार है—

(१) पात्र

- (क) पात्रो की सख्या
- (ख) प्रश्न देने वाला
- (ग) प्रश्न जिससे पूछा गया
- (घ) उत्तर देने वाला।

(२) पहेलियाँ

- (क) पहेलियो की सख्या
- (ख) वास्तविक पहेलियाँ और उनके उत्तर
  - (अ) स्वर्ग या आसमान कितना ऊँचा है ?
  - (आ) समुद्र कितना गहरा है ?
  - (इ) समुद्र मे कितना पानी है ?
  - (ई) मैं क्या सोच रहा हूँ ? आदि

(३) अन्य

(क) पहेलियाँ प्रस्तुत करने का कारण

(ख) पहेलियो का उत्तर देने की अवधि

(ग) उत्तर न देने पर दण्ड

(घ) जिस व्यक्ति से पूछा गया और जिसने उत्तर दिया उनका शारीरिक साम्य

(ङ) स्थानापन्नता कैसे सम्पन्न हुई

(च) क्रिया का परिणाम

यह स्पष्ट है कि इस विश्लेषण का अर्थ 'अभिप्राय या कथानक' रुढियो को प्रस्तुत करना नही, उन तन्तुओ को निरूपित करना है जिनके आधार पर विविध रूपान्तरो को स्पष्ट किया जा सकता है।

हमने अपने 'जगदेव' के अध्ययन के लिए जिन अगो को रखा है उन्हे हम यो बता सकते हैं—

(१) नायक का देशत्याग

(२) यात्रा मार्ग

(३) पराक्रम

(४) अन्य

इन चारो अगो मे विविध रूपान्तरो मे जो सूत्र मिलते हैं, उनका विस्तृत उल्लेख और विवेचन ऊपर किया जा चुका है। सूत्र या तन्तु आवर्तन (Frequency) का उपयोग भी ऐसे अध्ययनो मे करना अपेक्षित होता है। जगदेव के पँवाडे के अध्ययन मे इसका कुछ दिग्दर्शन कराया गया है। पर, वास्तविक आवर्तन-परीक्षण तभी हो सकता है जबकि यथासम्भव भौगोलिक परिभ्रमण से जितने भी रूप उपलब्ध हो सकते हैं सभी को सूचीवद्ध कर लिया गया हो।

ऐंडरसन के उदाहरण को ही आगे बढाएँ तो हम उक्त कहानी के सूत्र १ (ख) पर प्रस्तुत उसके निरूपण को दे सकते हैं। वह इस प्रकार स्टिथ थामसन ने दिया है।

सम्राट् (रूसी जार, तुर्की सुल्तान या खलीफा) Ron Welcher Jan V hollant, Gesta Rom, Fastnachtsp ज ज ३२, ४४, ४५, ४८, ५४, ५५, जड I, २, ४-७, जव ३२, जन 1, Lit 1, सर I—९ (१०) II २२, २३, २४, (२५), SRW I—५ Sv1, ३-७-९, १०, १३, Sp २, ३ Sc, 1, ss, ३-७ (१२१ रूपान्तर २५ ५% सम्पूर्ण के) इसी प्रकार राजा को सूचीवद्ध किया गया २५४ रूपान्तर, ५३ ६% सम्पूण के, प्रेसीडेण्ड—II रूपान्तर-२ ३% सम्पूर्ण के।

इस प्रकार विविध रूपान्तरो मे एक तन्तु के आवर्तन का प्रतिशत निकाला गया है। ऐंडरसन की इस आवर्तन गणना से सबसे अधिक आवर्तन शाहशाह (monarch) का हुआ है, आवर्तन ८१ ४% है।

जगदेव की कहानियो मे हमे केवल दो सूत्रो का आवर्तन ही शत-प्रतिशत मिला था।

ऐसी आवर्तन गणना से बहुसख्यक आवर्तन के सम्बन्ध मे यह धारणा होना स्वाभाविक ही होता है कि यही मूल सूत्र रहा होगा। किन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं। केवल आवर्तन बाहुल्य ही निर्णायक कसौटी नही हो सकता। रूपान्तरो के ऐतिहासिक क्रम को भी देखना होगा। हो सकता है किसी विशेष युग मे कोई विशेष सूत्र अधिक प्रचलित रहा हो। उस सूत्र के प्रसार की भौगोलिक सीमाएँ भी देखनी होंगी। इस प्रकार ९ बातो की परीक्षा के बाद ही मूलरूप या अक्षररूप (arch type) का निर्धारण सम्भव है, ऐसा आर्ने का मत है। उसके अनुसार वे ९ बातें ये है

१ आवर्तन का सापेक्षिक प्रतिशत

२ उसके प्रसार क्षेत्र का विस्तार

३ उसकी प्रसरण यात्रा की दिशा मे पूर्ण मानक (Complete-type) रूप से अनुकूलता

४ भलीभाँति सुरक्षित सस्करणो (Versions) मे उसकी विद्यमानता

५ सूत्र में उल्लेखनीय गुण, जिनके कारण वह सरलता से स्मरण मे रह सकता है

६ सूत्र मे स्वाभाविकता, उसके विपरीत जबकि अन्यो मे अस्वाभाविकता

७ कहानी की गति मे उसका अनिवार्य स्थान, कि उसके बिना कथानक बँध ही न सके

८ केवल एक ही कहानी मे उसकी विद्यमानता। इस बात से यह सम्भावना विशेष प्रकट होती है कि वह इस कहानी का मूल अग है, किन्तु ऐसा उनके सम्बन्ध मे नही कहा जा सकता जो अन्य कहानियो मे भी मिलते हैं

९ यह सम्भावना कि उस सूत्र से अन्य सूत्र भी सरलतापूर्वक निकल सकते हैं। इस कसौटी से हम अक्षर कहानी के तन्तुओ को पहचान कर यह भी विदित कर सकते हैं कि कौन-से तन्तु बाद मे उससे निकले।

इतने परीक्षणो के उपरान्त हम सम्भावित अक्षर या मूलकथा निर्धारित कर सकते हैं। यदि इन परीक्षणो के परिणाम असदिग्ध हो और निश्चयात्मक हो तो वास्तविक अक्षर-कथा या मूलकथा भी प्रस्तुत की जा सकती है। पर बहुधा सभी परिणाम निर्विवाद नही रहते।

कुछ और बातो को भी देखना होगा। सभी रूपान्तरो को विविध-वर्गो मे व्यवस्थित किया जा सकता है। उनके विविध सूत्रो को ऐतिहासिक क्रम मे भी इस व्यवस्था द्वारा सहज ही देखा जा सकता है। कोई तन्तु या सूत्र किसी पूर्व ऐतिहासिक

युग मे इस कहानी मे विद्यमान हो सकता है जिसका अधिकाश मे आज लोप हो गया है, केवल कुछ मे ही वह प्राप्त हुआ है।

उस युग से ऊपर की साक्षियो को भी ढूंढकर उस कहानी के प्राचीन मूल रूप को देखना होगा। इस प्रकार समस्त ऐतिहासिक रूपो को क्रमबद्ध कर हम एक कहानी का वश वृक्ष भी तैयार कर सकते हैं यथा—
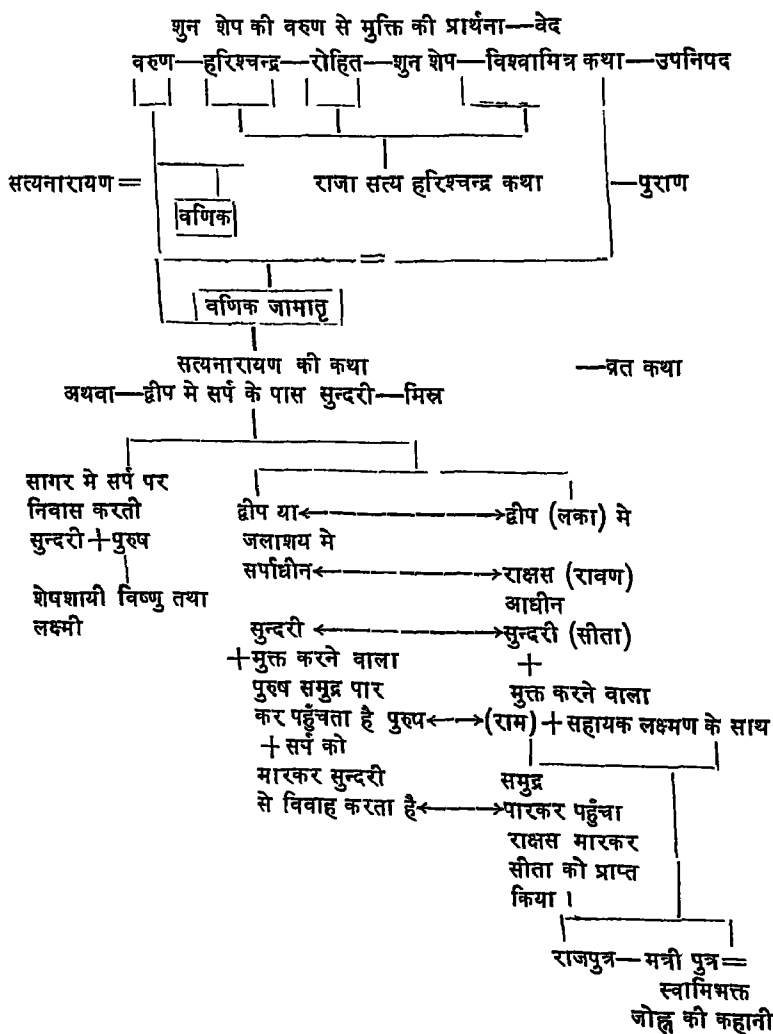
इस प्रकार 'वश वृक्षो' से हम विविध कहानियो के विकास का रूप सरलतापूर्वक समझ सकते हैं—फिर प्रत्येक रूप की भौगोलिकता भी देख सकते हैं। एक कथा रूप किसी स्थानीय अन्य प्रकार की कथा मे जुडकर एक नयी सश्लिष्ट कथा प्रस्तुत कर देता है, उस स्थानीय सश्लिष्ट कथा का अपना वश वृक्ष अलग बन जाता है।

इन अक्षर-कथाओ अथवा मूल-कथाओ (Arch type) की स्थापना हो जाने पर हम इन पर कई दृष्टियो से विचार कर सकते है—

१ इनकी मूल उद्भावना का अनुसन्धान प्रकृति-तत्त्वो से, मनोजगत से, स्वप्न से, या दमित काम-प्रेरणाओ से, ज्योतिष से या किससे ?

२ इनमे निर्मायक तन्तुओ और अभिप्रायो के विश्लेपण से उनके महत्त्व का अनुसन्धान। उनके प्रयोग की सार्थकता और महत्ता।

३ इन रूपो मे सास्कृतिक तत्त्वो की छाप या इनमे सास्कृतिक सूत्रो का विकास।

४ मूल कथा मानक का जन्म-स्थान।

५ उसका ऐतिहासिक विकास—उस विकास मे आगम-लोप-विपर्यय का सहेतु निरूपण—उसमे स्थान-पात्र-घटना की स्थानापन्नता का हेतु।

६ उसके भौगोलिक विस्तार मे आगम-लोप-विपर्यय अथवा स्थानापन्नता का निरूपण—सकारण।

कहानी के विकास और परिवर्तन-परिवर्द्धन के कारण

ऐण्टी आर्ने और ऐंडरसन ने अपने विशाल अध्ययन के उपरान्त कहानी के विकास और परिवर्तन तथा परिवर्तन के कुछ कारणो का निरूपण किया है। उन्हे यहाँ दे देना समीचीन होगा। वे ये हैं

१ कहानी की किसी कडी को भूल जाना। बहुधा यह कडी विशेष महत्त्वपूर्ण नही होती। इस एक तत्त्व के कारण बहुत अधिक कहानियो मे परिवर्तन हुए हैं।=लोप

२ एक ऐसी कडी जोड देना जो मूल मे नही थी। ऐसा बहुधा कहानी के आदि या अन्त मे किया जाता है। अत यह प्राय 'भूमिका कथा' या 'परिणाम कथा' या कथाश का रूप ग्रहण कर लेती है। पर बहुत-सी 'हेतु कथाएँ' भी इस प्रकार जोड दी जाती हैं।=आगम

३ दो या तीन कथाओ को जोड देना। ये कथाएँ कभी तो यो ही एक-दूसरे मे जोड दी जाती हैं, कभी इनके लिए सयोजक कथाओ की आवश्यकता पडती है, या कभी सूत्र-कथाओ की सूत्र कथा (फ्रेम स्टोरी) एक अलग कहानी होती है, जिसमे स्थान-स्थान पर ये कथाएँ जुडती जाती हैं।=आगम

४ कडियो पर कडियाँ जोडते जाना।=आगम

५ मूल या अक्षर कथा के किसी तन्तु को दोहराना, उसे दूसरी तीसरी बार अलग-अलग तरह से लाना ।=आगम – दुहरावट से ।

६ सामान्य का विशेषीकरण (पक्षी के स्थान पर तोते या हंस का उल्लेख) या विशेष का सामान्यीकरण (तोते के स्थान पर पक्षी का उल्लेख)= स्थानापन्नता

७ किसी अन्य कहानी की सामग्री को सयुक्त कर देना, या स्थानापन्न कर देना, विशेषत अन्त मे=स्थानापन्नता या आगम

८ चरित्रो का विपर्यय विशेषत परस्पर विरोधी पात्रो का । चालाक लोमडी और मूर्ख रीछ मे चालाक रीछ और मूर्ख लोमडी हो जाय=विपर्यय

९ पशु-कहानियो मे मानव-चरित्रधारी पशु, पुरुष या स्त्री मे बदल जाएँ= स्थानापन्नता

१० मानव कहानियो मे पशुओ के लक्षण हो, तो वे मानव पशुओ मे बदल जाएँ=स्थानापन्नता

११ इसी प्रकार पशु, दैत्य या दाँने एक-दूसरे का स्थान ले लें=विपर्यय या स्थानापन्नता

१२ कथन-शैली मे परिवर्तन हो जाय, कहने वाला स्वय एक कहानी का पात्र बन जाय और उत्तम पुरुष मे कहानी कहे ।=शैली परिवर्तन

१३ एक परिवर्तन हो जाने से उस परिवर्तन की प्रतिष्ठा के लिए अन्य आवश्यक परिवर्तन प्रस्तुत हो जाते हैं=परिवर्तन शृखला

१४ अपनी यात्रा मे एक कहानी नये प्रदेशो मे उन प्रदेशो की परिचित बातो को अपरिचितो के स्थानापन्न कर लेती है । नगर से गांव मे पहुँचने पर उपकोशा की कहानी मे मन्त्री हो गया, पटवारी, कोतवाल हो गया मुखिया आदि=स्थानापन्नता ।

१५ अप्रचलित व्यवहारव्यक्त बातो के स्थान पर नयी प्रचलित चीजें कहानी मे आ जाती हैं । अब कहानी का नायक काठ के घोडे पर सवार न होकर हवाई जहाज पर जा सकता है=स्थानापन्नता ।

ये वे तत्त्व हैं जो आर्ने ने प्रस्तुत किये ।

इनमे ऐंडरसन ने भी कुछ और जोडे । ऐंडरसन ने बताया कि

१ कहानी की गठन मे एक ऐसी घनिष्ठ सम्बद्धता होती है कि एक के बाद दूसरी कडी स्वयमेव कथक्कड द्वारा ठीक प्रकार से प्रस्तुत की जाती रहती है । एक कथक्कड यदि कोई विपर्यय करता भी है तो दूसरा उसे ठीक कर देता है ।

कहानी मे भूल जाने से कभी कोई परिवर्तन हो जाता है । पर वह परिवर्तन कभी-कभी अत्यन्त लोकप्रिय हो जाता है । इससे यह नया

रूप विशेष चल पडता है। पर इसके साथ मूल का कुछ न कुछ अवशेष लगा ही रहता है। या दोनो रूप साथ-साथ चलते रह सकते हैं।

कहानी मे क्रान्ति की स्थिति ऐंडरसन ने तव मानी है जवकि कहानी का यह नया रूप पुराने को पूरे प्रसार-क्षेत्र मे स्थानापन्न कर देता है।

३ ऐंडरसन ने तीसरा सिद्धान्त यह वताया कि कहानियाँ उच्च सास्कृतिक धरातल से निम्न धरातल की ओर जाया करती हैं।

ऐंडरसन का यह कथन लोकवार्ता की कसौटी पर खरा नही उतरता। वास्तव मे कहानियाँ उन क्षेत्रो मे परस्पर आदान-प्रदान की वस्तु वन जाती हैं जिनमे परस्पर घनिष्ठ राजनीतिक, व्यापारिक या अर्थ सम्पर्क रहते हैं। इन सम्वन्धो के कारण कहानियाँ कभी-कभी वडी-वडी दूर की यात्रा कर जाती है। इन यात्राओ मे भाषा भेद कोई अडचन प्रस्तुत नही करता पर सस्कृति भेद किसी सीमा तक अडचन डालता है। यदि कोई तन्तु किसी क्षेत्र की सस्कृति मे समीचीन नही लगता तो वह या तो छूट जायगा या रूप परिवर्तन कर लेगा या उसके स्थानापन्न कोई नया तत्त्व आ जायगा।

आर्ने-ऐंडरसन की यह ऐतिहासिक-भौगोलिक पद्धति केवल कथा-मानको या अक्षर कथाओ के अध्ययन और उनके प्रसार के लिए उपयोगी नही, स्टिथ थामसन के अनुसार यह अभिप्रायो या मोटिफो के अध्ययन मे भी काम आ सकती है। किन्तु यह कुछ ऐसे ही अभिप्रायो के अध्ययन मे उपयोगी है जिनके 'रूप' के कई रूपान्तर प्राप्त होते हैं। स्टिथ थामसन ने 'भागने मे रक्षार्थ अडचनो' के अभिप्राय का उदाहरण दिया है। रक्षार्थ अडचनें पैदा करने का अभिप्राय वहुत लोकप्रिय है। पर अडचनो के रूप मे कितने ही अन्तर मिलते हैं। भारतीय कहानी मे दाँने से वचने के लिए नायक को तीन पुडियाँ मिली हैं। एक पुडिया तूफान की है। दूसरी पुडिया से पहाड खडा हो जाता है। तीसरी से वीच मे समुद्र वन जाता है। पर कही पुडिया न होकर जादू के दाने हो सकते हैं। कही गुटके हो सकते हैं। कही उनसे तूफान, पहाड या समुद्र न होकर आग का अवार, काँटो का जगल, या वर्फ का मैदान वन सकता है। इन रूपान्तरो का अध्ययन भौगोलिक-ऐतिहासिक प्रणाली से हो सकता है।

वान स्यीडो (Von Sydow) का मत है कि कहानियो मे विकार कुशल कथक्कड अथवा कहानी कहने वाला करता है। इस कहने वाले की प्रवृत्ति अपने प्रदेश-विशेष के अनुसार होती है, और वह कहानी को अपनी निजी ढाल से ढालकर कहता है। यह कोई विशेष तत्त्व नही। कथानक का जव कोई विशिष्ट स्थानीय रूप ढल जाता है तो वह उसी रूप का हो जाता है, जिसे स्यीडो ने महत्त्व दिया है। पर हाँ, कथक्कड या कहानी कहने वाले के तत्त्व पर भी ध्यान अवश्य देना होगा। पर कहानी अपनी परम्परा मे कथक्कड को ला फाँसती है, कुशल से कुशल कथक्कड़ भी

परम्परा के सूत्रो को ही भिन्न-भिन्न प्रकार से पिरोता है, उसकी कल्पना उन्ही के जोड-तोड मे रहती है, उनसे बाहर कोई नयी कल्पना शायद ही वह दे पाता हो।

पर ऐल्टवर्ट वेस्सेल्सकी ने एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाया। वह यह था कि ग्रन्थ-ग्रथित कहानी ही अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण है, मौखिक नही, यद्यपि इस कथन मे सत्यता नही पर प्रश्न स्वय महत्त्वपूर्ण है। कहानी के मौखिक और ग्रन्थस्थ रूपो मे से किससे किसने सामग्री प्राप्त की है, वस्तुत इस जटिल आदान-प्रदान की समस्या का हल तो ऐतिहासिक भौगोलिक पद्धति से ही मिल सकता है। इस पद्धति मे दोनो को समान महत्त्व प्राप्त है। सभी प्रकार के रूपान्तरो के व्यवस्थित वर्गीकरण से और तुलनापूर्वक तन्तु के आगम-लोप विपर्यय से जब मूलकथा को जाना जा सकता है तब ग्रन्थस्थ या मुखस्थ मे से कौन-सा रूप आस्थायोग्य है यह जानना कठिन नही। यथार्थत ग्रन्थस्थ कहानी रूप को भी पूरा महत्त्व देना चाहिए। यह हमने 'पदमावती चरित' के अध्ययन से ऊपर प्रकट भी किया है। जगदेव वाले अध्ययन मे भी ग्रन्थस्थ कहानी की उपेक्षा नही की गयी।

शैली तत्त्व

लोक-कहानी के अध्ययन मे कथन शैली का अध्ययन भी महत्त्वपूर्ण है। भौगोलिक-ऐतिहासिक पद्धति तो कथा-सामग्री या कथानक के अध्ययन की ही प्रणाली है, पर शैली भी कहानियो के स्वरूप के साथ सम्बन्ध रखती है।

शैली तत्त्व की दृष्टि से हमे एक लोक-कहानी मे निम्न बातो पर ध्यान देना होगा—

१ कहानी का आरम्भ—कहानी के विविध रूपान्तरो के आरम्भ की तुलना ही नही, विविध क्षेत्रो मे कथन-शैली की आरम्भिक शब्दावली भी तुलनीय होती है, और अध्ययन योग्य होती है।

२ कहानी का अन्त—कहानी का अन्त भी आरम्भ की तरह एक चोन के लिए रहता है और पृथक्-पृथक् क्षेत्रो मे अपनी-अपनी विशेषता के साथ रहता है। इनका भी तुलनात्मक अध्ययन अपेक्षित है।

३ कहानी मे आवर्त्तक मुहावरे, वाक्याश या पद्याश—कहानी कहते-कहते बीच मे कुछ समान-शील स्थलो पर समान-शील-शब्दावली उपयोग मे आती है। ऐसी समान-शील-शब्दावली को एक ही कहानी मे अथवा विविध कहानियों मे क्षेत्रीय भेद से तुलनात्मक अध्ययन का विषय बनाया जा सकता है।

कागद हो ताइ वाचिये
करम न वाचों जाइ

जैसी शब्दावली या पद्याश न जाने कितनी लोक-कहानियो मे आता है, यह तुलनापूर्वक अध्ययन का विषय होगा, कि किस कहानी मे किस प्रभाव और परिणाम के लिए इसका उपयोग किया गया है।

४ कहानी मे रूप वर्णनो, प्रकृति-खण्डो (बियाबान वनखण्ड) के वर्णनो तथा अन्य सज्जाओ, बाजारो, स्थानो के वर्णनो की एक परिपाटी होती है, जिसमे विशेष शब्दावली का प्रयोग होता है। इसका अध्ययन भी अपेक्षित है।

५ लोक-कहानी भी अलकारो के उपयोग से शून्य नही हो सकती। किस प्रकार के उपमानो का उपयोग उसमे हुआ है, यह अध्ययन रोचक और उपयोगी है।

६ कहानी मे मोड देने, या सनसनाहट पैदा करने या किसी अनोखी बात को लाने, आदि के लिए कुछ विशेष प्रणाली काम मे लाने लगती है, इसके अध्ययन से कहानी कहने वाले और कहानी कहने की परम्परा का परिचय मिलता है और कुछ सास्कृतिक तथा मनोवैज्ञानिक तथ्यो का भी उद्घाटन होता है।

७ लोक-कहानी मे किन्ही वस्तुओ तथा पदार्थो के वर्णन की एक विशेष प्रणाली का उपयोग होने लगता है। आभूषणो का वर्णन, घोडो का वर्णन, दावतो का वर्णन, राज्यसभा का वर्णन, तथा ऐसे ही अन्य वर्णन बँधेस ढग मे कहानी से कहानी मे दुहराये जाते हैं। ये केवल सख्या ४ की भाँति विशेष शब्दावली की दुहरावट नही होती, वस्तुओ की भी दुहरावट होती है।

८ कथन-शैली मे कथक्कड के बोलने मे जो उतार-चढाव होता है वह भी शैलीगत अध्ययन का विषय है। इस अध्ययन के लिए ध्वनि तात्विक प्रयोगशाला के यन्त्रो की भी सहायता लेनी होगी।

९ अपने बोलने या कहानी कहने मे कथक्कड किस प्रकार के प्रयोगो से पाठक के भावो को उत्तेजित करते-करते चरम पर ले जाता है यह भी शैली तत्त्व का ही विषय है।

पात्र तथा चरित्र

लोक-कहानियो मे पात्रो के चित्रण के लिए उनके चरित्र का दिग्दर्शन कराने के लिए भी कुछ विधियो का अवलम्बन किया जाता है। उन विधियो का शैली तत्त्व के अन्तर्गत अध्ययन करके तब चरित्र अथवा पात्र के स्वरूप, स्वभाव प्रकृति का भी अध्ययन किया जाता है। लोक-कहानियो मे प्राय एक-से पात्र बार-बार आते हैं। उनके चरित्र मे केवल एक दो विशेषताएँ सामान्य से भिन्न रूप मे प्रस्तुत की जाती हैं।

लोक-कहानियो के इस पात्र समूह मे से कुछ विशेष लोकप्रिय होते हैं। कुछ कम। कुछ विशेष महत्त्व धारण कर लेते हैं, कुछ कम।

पात्रो के अध्ययन मे इन बातो पर भी ध्यान दिया जाता है। इसके लिए भी आवर्तक गणना का माध्यम अपनाना चाहिए।

पात्रो की यात्राओ मे भूगोल का समावेश भी कहानीकार करता है। उन यात्राओ के रेखाचित्र भी बनाये जा सकते है, और उन्हे तुलनात्मक रूप भी दिया जा सकता है। जैसे 'जगदेव' के विविध रूपान्तरो मे उसके यात्रा मार्ग का जो रूप बनता है उसे तुलनापूर्वक नीचे दिये चित्र से समझाया गया है—

कहानियों का रूपात्मक (Morphological) अध्ययन

लोक-कहानियो के अध्ययन के क्षेत्र मे श्री वी० प्रौप्प ने यथार्थ बीज-प्रणाली की स्थापना की है। उन्होने 'Morphology of the Folktale' लोक-कहानियो मे कहानी-पात्रो के कर्म (function) को प्रमुखता दी है और बताया है कि समस्त लोक-कहानियो मे कुछ गिने-चुने कर्म ही आते हैं, और उनको 'बीजो' अथवा प्रतीको के माध्यम से समीकरणो मे रखकर अध्ययन और अनुसन्धान मे सहायता पा सकते हैं। इसके लिए प्रत्येक कर्म के लिए जो बातें दी गयी हैं १ सार-तत्त्व की सक्षिप्ति २ एक शब्द मे लघुतम परिभाषा तथा एक 'बीज' चिह्न।

यथा—I घर का एक सदस्य अनुपस्थिति (परिभाषा अनुपस्थित बीज—B)।

फिर कहानियो के रूपान्तरो को बताते हुए उन्हें B^1, B^2 तथा B^3 मे रखा है। B^1 घर के किसी बड़े-बूढ़े की अनुपस्थिति—जो इन रूपो मे मिलती है माता-

पिता काम पर गये, अपनी पत्नी को त्यागने के लिए दूर देश की यात्रा, सौदागर वाणिज्य के लिए गया, अथवा काम के लिए जगल मे, व्यापार के लिए, लडाई के लिए जाना।

II नायक को वर्जन आदेश (परिभाषा आदेश बीज y)

इसमे y^1 के अन्तर्गत चौके के भण्डार मे देखने का साहस मत करना, आँगन से बाहर जाने का साहस मत करना, बाबा भाग आये तो कुछ मत कहना, चुप रहना। ऊँची मीनार मत छोडना, दक्षिण दिशा मे मत जाना, मछली के शिकार को मत जाना, सेब मत तोडो, सुनहले पख मत उठाना, दराज मत खोलना, बहिनो को मत चूमना, पीछे मत देखना, आदि।

y^2 मे यह आदेश या वर्जन प्रस्ताव रूप मे भी हो सकता है—नाश्ता खेतो मे लाओ, जगल मे अपने भाई को ले जाओ, आदि।

III वर्जन-आदेश का उल्लघन (परिभाषा उल्लघन बीज S)।

IV खल द्वारा भेद जानने का प्रयत्न (परिभाषा भेद जिज्ञासा, बीज E) इसके E^1, E^2, E^3 भेद।

V खल अपने लक्ष्य की सूचना पाता है (परिभाषा मोचन बीज G)।

VI खल द्वारा अपने लक्ष्य को धोखा देने का प्रयत्न, उसे या उसकी वस्तुओ को प्राप्त करने के लिए (परिभाषा छल, बीज n)—इसके n^1, n^2, n^3 प्रयोग भेद।

VII लक्ष्य छल मे फँसकर अनायास ही अपने शत्रु की सहायता करता है, (परिभाषा सहायता बीज O) इसके तीन प्रयोग भेद O^1, O^2, O^3।

इस छल का एक रूप विवशता सयुक्त हो सकता है। इस छल-तत्त्व को आरम्भिक दुर्भाग्य कह सकते हैं। इसका बीज Λ

VIII खल घर के एक सदस्य को चोट या हानि पहुँचाता है (परिभाषा खलत्व, बीज A इसके ये प्रयोग-भेद किये है A^1, A^2, A^{11}, A^3, A^4, A^5 से 19 तक कुछ उपभेदो सहित किये हैं।

VIII (a) घर का एक सदस्य किसी अभाव से ग्रस्त, वह कुछ चाहता है, (परिभाषा अभाव बीज a)

इसके उन्होंने a^1 से a^6 तक भेद किये हैं।

IX दुर्भाग्य अथवा कमी विदित होती है। नायक से या तो प्रार्थना की जाती है और वह तदनुकूल स्वयमेव कार्य सम्पन्न करता है अथवा आज्ञा देकर भेजा जाता है। (परिभाषा मध्य रूपता, सम्बन्धक [सयोजक] छल बीज B) इसके प्रयोग भेद ७ B^1—B^7 किये गये हैं।

X खोजने वाला प्रतिक्रियान्वय (Counteraction) के लिए सहमत होता है या निर्णय लेता है।

(परिभाषा प्रतिक्रिया आरम्भ बीज C)

XI नायक घर छोडता है (परिभापा बिदाई, बीज 1)

XII नायक किसी जादुई माध्यम अथवा सहायक को पाने की तैयारी मे होने पर उसकी परीक्षा ली जाती है, प्रश्न किये जाते हैं, आक्रमण किया जाता है, आदि।

(परिभाषा दाता का प्रथम कार्य, बीज D) इसके प्रयोग के दस भेद दिखाये गये हैं।

XIII भावी दाता के कार्यो के प्रति नायक की प्रतिक्रिया। (परिभाषा नायक की प्रतिक्रिया, बीज E) इसके उपयोग के E^1 से E^{10} तक १० प्रयोग भेद।

XIV नायक के हाथ जादुई माध्यम (परिभाषा उपलब्धि, जादुई माध्यम की प्राप्ति, बीज F) F के F^1 से F^9 तक ६ प्रयोग भेद बताये गये हैं।

XV नायक का स्थान्तरण होता है, वह खोज के लक्ष्य के अते-पते के पास या तो पहुँच जाता है या ले जाया जाता है, [परिभाषा दो राज्यो के बीच स्थान्तरण, निर्देशन। बीच, G] G के ६ प्रयोग भेद।

XVI नायक तथा खल का मल्ल युद्ध (परिभापा सघर्ष बीज H) H के ४ प्रयोगादि।

XVII नायक को दाग दिया जाता है। (परिभाषा, दागना, चिह्नित करना। बीज D) के दो प्रयोग भेद।

XVIII खल परास्त होता है। (परिभाषा विजय, बीज—I) के ६ प्रयोग भेद।

विजय का एक निषेधात्मक रूप भी होता है, जिसमे दो-तीन नायको मे से एक छिप जाता है, अन्य विजयी होते है। (बीज I^1)

XIX मूल दुर्भाग्य अथवा अभाव दूर हो जाता है। (बीज K) K के १० प्रयोग भेद हैं।

XX नायक लौटता है [परिभाषा लौटना, बीज ↓]

XXI नायक का पीछा किया जाता है। (परिभाषा-पीछा करना, बीज Pr) इसके ७ विभेद किये गये हैं।

XXII नायक की पीछा करने वाले से मुक्ति (परिभाषा-मुक्ति, बीज Rs) इसके १० प्रयोग भेद।

XXIII नायक अज्ञात रूप मे घर आता है अथवा एक-दूसरे देश मे जाता है (परिभाषा अज्ञात आगमन, बीज O)

XXIV — X

XXV नायक को एक कठिन कार्य सौंपा गया। (परिभाषा कठिन कार्य, बीज M)

XXVI कार्य पूरा किया (परिभाषा हल, बीज N)

पिता काम पर गये, अपनी पत्नी को त्यागने के लिए दूर देश की यात्रा, सौदागर वाणिज्य के लिए गया, अथवा काम के लिए जगल मे, व्यापार के लिए, लडाई के लिए जाना।

II नायक को वर्जन आदेश (परिभाषा आदेश बीज y)

इसमे y^1 के अन्तर्गत चौके के भण्डार मे देखने का साहस मत करना, आँगन से बाहर जाने का साहस मत करना, बाबा भाग आये तो कुछ मत कहना, चुप रहना। ऊँची मीनार मत छोडना, दक्षिण दिशा मे मत जाना, मछली के शिकार को मत जाना, सेब मत तोडो, सुनहले पख मत उठाना, दराज मत खोलना, बहिनो को मत चूमना, पीछे मत देखना, आदि।

y^2 मे यह आदेश या वर्जन प्रस्ताव रूप मे भी हो सकता है—नाश्ता खेतो मे लाओ, जगल मे अपने भाई को ले जाओ, आदि।

III वर्जन-आदेश का उल्लघन (परिभाषा उल्लघन बीज S)।

IV खल द्वारा भेद जानने का प्रयत्न (परिभाषा भेद जिज्ञासा, बीज E) इसके E^1, E^2, E^3 भेद।

V खल अपने लक्ष्य की सूचना पाता है (परिभाषा मोचन बीज G)।

VI खल द्वारा अपने लक्ष्य को धोखा देने का प्रयत्न, उसे या उसकी वस्तुओ को प्राप्त करने के लिए (परिभाषा छल, बीज n)—इसके n^1, n^2, n^3 प्रयोग भेद।

VII लक्ष्य छल मे फँसकर अनायास ही अपने शत्रु की सहायता करता है, (परिभाषा सहायता बीज O) इसके तीन प्रयोग भेद O^1, O^2, O^3।

इस छल का एक रूप विवशता सयुक्त हो सकता है। इस छल-तत्त्व को आरम्भिक दुर्भाग्य कह सकते है। इसका बीज Λ

VIII खल घर के एक सदस्य को चोट या हानि पहुँचाता है (परिभाषा खलत्व, बीज A इसके ये प्रयोग-भेद किये है A^1, A^2, A^{11}, A^3, A^4, A^5 से *19* तक कुछ उपभेदो सहित किये हैं।

VIII (a) घर का एक सदस्य किसी अभाव से ग्रस्त, वह कुछ चाहता है, (परिभाषा अभाव बीज a)

इसके उन्होंने a^1 से a^6 तक भेद किये हैं।

IX दुर्भाग्य अथवा कमी विदित होती है। नायक से या तो प्रार्थना की जाती है और वह तद्नुकूल स्वयमेव कार्य सम्पन्न करता है अथवा आज्ञा देकर भेजा जाता है। (परिभाषा मध्य रूपता, सम्बन्धक [सयोजक] छल बीज B) इसके प्रयोग भेद ७ B^1—B^7 किये गये हैं।

X खोजने वाला प्रतिक्रियान्वय (Counteraction) के लिए सहमत होता है या निर्णय लेता है।

(परिभाषा प्रतिक्रिया आरम्भ बीज C)

XI नायक घर छोडता है (परिभाषा विदाई, बीज 1)

XII नायक किसी जादुई माध्यम अथवा सहायक को पाने की तैयारी मे होने पर उसकी परीक्षा ली जाती है, प्रश्न किये जाते हैं, आक्रमण किया जाता है, आदि।

(परिभाषा दाता का प्रथम कार्य, बीज D) इसके प्रयोग के दस भेद दिखाये गये हैं।

XIII भावी दाता के कार्यों के प्रति नायक की प्रतिक्रिया। (परिभाषा नायक की प्रतिक्रिया, बीज E) इसके उपयोग के E^1 से E^{10} तक १० प्रयोग भेद।

XIV नायक के हाथ जादुई माध्यम (परिभाषा उपलब्धि, जादुई माध्यम की प्राप्ति, बीज F) F के F^1 से F^9 तक ९ प्रयोग भेद बताये गये हैं।

XV नायक का स्थान्तरण होता है, वह खोज के लक्ष्य के अते-पते के पास या तो पहुँच जाता है या ले जाया जाता है, [परिभाषा ' दो राज्यो के बीच स्थान्तरण, निर्देशन। बीच, G] G के ६ प्रयोग भेद।

XVI नायक तथा खल का मल्ल युद्ध (परिभाषा सघर्ष बीज H) H के ४ प्रयोगादि।

XVII नायक को दाग दिया जाता है। (परिभाषा, दागना, चिह्नित करना। बीज D) के दो प्रयोग भेद।

XVIII खल परास्त होता है। (परिभाषा विजय, बीज—I) के ६ प्रयोग भेद।

विजय का एक निषेधात्मक रूप भी होता है, जिसमें दो-तीन नायको मे से एक छिप जाता है, अन्य विजयी होते हैं। (बीज I^1)

XIX मूल दुर्भाग्य अथवा अभाव दूर हो जाता है। (बीज K) K के १० प्रयोग भेद हैं।

XX नायक लौटता है [परिभाषा लौटना, बीज ↓]

XXI नायक का पीछा किया जाता है। (परिभाषा-पीछा करना, बीज Pr) इसके ७ विभेद किये गये हैं।

XXII नायक की पीछा करने वाले से मुक्ति (परिभाषा-मुक्ति, बीज Rs) इसके १० प्रयोग भेद।

XXIII नायक अज्ञात रूप मे घर आता है अथवा एक-दूसरे देश मे जाता है (परिभाषा अज्ञात आगमन, बीज O)

XXIV — X

XXV नायक को एक कठिन कार्य सौंपा गया। (परिभाषा कठिन कार्य, बीज M)

XXVI कार्य पूरा किया (परिभाषा हल, बीज N)

XXVII नायक पहचान लिया गया। (परिभाषा पहचान, बीज Q)

XXVIII छद्मनायक अथवा खल का भेद खुला। (परिभाषा उद्घाटन, बीज Ex)

XXIX नायक को नया रूप मिलता है (परिभाषा रूपान्तर, बीज T) इसके ४ प्रयोग भेद।

XXX खल को दण्ड। (परिभाषा=दण्ड, बीज V)

XXXI नायक का विवाह तथा सिंहासनारूढ होना (परिभाषा विवाह, बीज W)

उन्होंने Swan-guse (हंस-हंसिनी) की कहानी को २६ परिभाषित चरणों में विभाजित किया और उन्हें 'बीज' नाम दिये। अब उन्होंने कहा कि यदि कहानी के समस्त कर्म-जाल को लिखा जाय तो उसका यह रूप बनेगा।

$$Y^1B^1S^1A^1C^1 \left\{ \begin{matrix} [DE^1neg \quad Fneg] \\ d^7\,E^7\,F^9 \end{matrix} \right\} C^4K^1 \downarrow \begin{matrix} [Pr^1D^1T^1 \\ F^9 = Rs^4]^3 \end{matrix}$$

इस विधि से विविध कहानियों के समीकरण करके इस विद्वान ने विश्व के विशाल लोक-कहानियों के समूह को बहुत कम स्थान में प्रस्तुत कर अनुसन्धान के लिए अनोखी सुविधा प्रस्तुत कर दी है।

उपसंहार

यहाँ बहुत संक्षेप में कहानी के अध्ययन के विषय में कुछ चर्चा की गयी है। बहुत कुछ महत्त्वपूर्ण बातें इसमें छूट गयी है वे अनुसन्धान में प्रवृत्त होने के समय ही सूझ सकती हैं और अनुसन्धानकर्ता के लिए ही उपयोगी हो सकती है।

कहानी के इस अध्ययन के उपरान्त हम गीतों को विचारार्थ ले सकते हैं।

बारहवाँ अध्याय

लोक-गीत

महत्त्व

मानव की उपलब्धियो मे गीत का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सम्भवत आदिम मानव ने वाणी का प्रथम दर्शन 'गीत' के रूप मे ही किया था। जितना गीत मानव के स्वाभाविक भावनात्मक स्पन्दनो से सम्बद्ध है उतना वाणी का कोई और रूप नहीं। यह सभी जानते हैं कि मनुष्य या प्राणी पहले भावुक तत्त्वो से युक्त होता है। इन्हे आवेग या ऐमोसन्स कहा जाता है। आवेग एक सकल-शरीरी प्रक्रिया है। शरीर का प्रत्येक अवयव ही आवेग से आक्रान्त होकर किसी न किसी प्रकार की गत्यात्मकता से युक्त हो जाता है। इसी के आधीन कण्ठ से स्वर भी फूटता है। यह आवेग लययुक्त होता है। ताल उसकी लय को हृदय और प्राण से मिलती है। अत मानव का परिचय पहले एक लय और ताल युक्त स्वर से होता है। स्वर उसे प्रिय लगता है और उसके दु ख तथा सुख, सकोच तथा विस्तार, रक्षा-भाव तथा प्रसार-भाव, भय तथा राग से सम्बद्ध होकर वह उसके सहजात की भाँति उद्भूत होता है, और इनकी मात्रा के अनुसार उस लय-ताल मे आरोहण-अवरोहण आता है, साथ ही उसकी अभिव्यक्ति के प्रकार मे भी अन्तर हो जाता है। किसी स्वर मे कम्प होगा, किसी मे भारीपन, किसी मे चाचल्य, किसी मे सवृत स्वर, किसी मे विवृत स्वर, आदि। इस प्रकृत-स्वरूप से यही विदित होता है कि 'स्वर' का जन्म पहले हुआ, उसके साथ लय-ताल-सम्भार लगे हुए थे। बाद मे उसमे 'शब्द' का प्रवेश हुआ। शब्द का जन्म स्वर से भिन्न उपादानो और आवश्यकताओ के बीच हुआ। मनुष्य मे विचारण अथवा सार्थक अभिव्यक्ति के विकास से बाद मे 'शब्द' का महत्त्व बढ गया। आज के लोक-गीत मे स्वर और शब्द परस्पर गुँथे रहते हैं, और इस प्रक्रिया मे अवसरानुकूल अथवा प्रकृत्यानुकूल कही स्वर की प्रधानता रहती है, कही शब्द की। तभी ऐसे प्रसग उपस्थित होते है जब यह प्रश्न पैदा होता है कि लोक-गीत स्वर-प्रधान होता है या शब्द-प्रधान। तभी कैनेथ रिचमण्ड को यह लिखना पडा।

शब्द या स्वर

"सभी लोक-गीतो मे सामान्यत यह बात मिलती है कि शब्द गौण होते हैं लय (tunes) मे, और इसी कारण कभी-कभी यह कहा जाता है कि यह लय ही है जिसका सर्वापेक्षा अधिक महत्त्व था। यह विश्वास सत्य से बहुत दूर है। सच्चाई

यह है कि कण्ठ से कण्ठ पर उतरते हुए शब्दो ने क्रमश लघु विकारो और सशोधनो को झेला है। सगीत अधिक यथावत् रूप मे स्मृत रहा है क्योकि लोकनायक के लिए गीत का सम्पूर्ण अर्थ आवेग सपृक्त (Emotional) होता है उतना नैगमिक (logical) नही।" [पोइट्री एण्ड द पीपिल, पृ० १८४]

हमने ऊपर स्वर के जन्म के सम्बन्ध मे जो विचार दिये हैं उनसे यह स्पष्ट है कि स्वर का सम्बन्ध 'आवेग' से है। उनमे जन्य-जनक भाव भी माना जा सकता है, और उससे भी अधिक उन्हे सहजात कहा जा सकता है। एक के साथ दूसरा स्वय ही प्रस्तुत होता है। अत ऐसे अवसरो पर जिन पर कि आवेग प्रवल होता है, लोक-गीतो मे भी स्वर की प्रधानता हो जाती है। यहाँ तक कि कही तो शब्द-क्रम बिलकुल ही लोप हो जाता है, और स्वर-सगीति ही रह जाती है। इसी प्रकार कुछ जाति की प्रकृति मानव-विकास की विशेष अवस्था मे होने के कारण आवेग-प्रधान रहती है। ऐसे मानव-समुदायो मे भी स्वर की प्रधानता रहती है। अत सीधे शब्दो मे कहा जा सकता है कि जहाँ जितना आवेग का पूर होगा, वहाँ उतना ही स्वर प्रधान हो जायगा। अधिक विकसित जातियो मे जिनकी सभ्यता अथवा सस्कृति एक विशिष्ट उत्कर्ष ग्रहण कर चुकी होती है आवेग तथा अर्थ, स्वर तथा शब्द गुँथ जाते हैं। तब उन्हे विशेषरूप से अलग-अलग करके नही देखा जा सकता। हाँ, यह अनुभव किया जा सकता है कि आवेग की मात्रा के उत्कर्षित होने पर स्वर का गौरव बढा है, और सामान्य स्थिति मे अर्थ-गौरव भी स्वर-गौरव के साथ रहा है।

गीतो के दो रूप

भारत मे गीतो के दो रूप मिलते हैं एक स्फुट, दूसरा प्रवन्धमय। सामान्यत स्फुट अथवा मुक्तक रूपो के स्वर-गौरव की कुछ विशेषता रहती है। किन्तु प्रवन्धमय रूपो मे शब्द-गौरव वढ जाता है। मुक्तको अथवा स्फुट गीतो मे अर्थ अथवा शब्द, गीत की अथवा स्वर-गौरव की रीढ का काम करता है, और प्रवन्ध-गीतो मे स्वर शब्दो को प्राण प्रदान करते हैं।

लोक-गीत की परिभाषा

ऐसी स्थिति मे प्रश्न यह उपस्थित होता है कि 'लोकगीत' क्या है? सामान्यत जिसे गीत कहते हैं उससे इसमे क्या भिन्नता है? सगीत, गीत तथा लोक-गीत मे क्या भेद है?

लोक-गीत की परिभाषा अत्यन्त सक्षेप मे यह की जा सकती है, "वह गीत जो लोक-मानस की अभिव्यक्ति हो, अथवा जिसमे लोक-मानसाभास भी हो लोक-गीत के अन्तर्गत आयेगा।"

'लोक-मानस' की व्याख्या पहले की जा चुकी है, उसके लक्षणो का भी प्रति-पादन वहाँ विस्तारपूर्वक हो चुका है, फिर भी लोक-गीत की दृष्टि से उस अभिव्यक्ति की कुछ परिणतियो पर यहाँ प्रकाश डालना समीचीन होगा।

लोक-गीतो के शब्दो मे लोक-मानसपरक अथवा आदिम प्रवृत्ति के जैसा एक

प्रभाव होता है, जिसकी व्याख्या नही की जा सकती, केवल जिसे अनुभव किया जा सकता है। उसमे आदिम मानवीय भावना के उत्तराधिकरण का एक रहस्य भिदा रहता है। उसमे जैसे एक टोना रहता है। लोक-गीत जैसे एक 'दैवी वाक्य' है, जिसका न कोई निर्माता है न स्वर-सधाता। वह जैसे मानव समुदाय मे सहज ही स्वय ही उद्धरित हो उठा है, और बिना प्रयास के सहज ही कण्ठ से कण्ठ पर उतरती हुई अपनी परम्परा स्थापित करता रहा है। वह सामाजिक समुदायी जीवन से सम्बद्ध रहता है, यह भूमिपुत्र है, और निर्वैयक्तिक है, वह अपनी विकास-परम्परा मे देशकाल से प्रभावित हो, उसके तत्त्वो को ग्रहण करता हुआ, फिर प्रवृत्तित उन देश-कालो के प्रभावो का सक्रमण करता हुआ, उनकी उपेक्षा करता हुआ, अपनी मूल-मानवीय मानसता के सत्व मे उन्हे समाहित कर अपनी परम्परा और निरन्तरता बनाता है।

लोक-गीत तथा अन्य गीत

इस दृष्टि से लोक-गीत उन गीतो से भिन्न है जो किसी विशिष्ट मानस की विशेषता से युक्त होते हैं, जिन पर किसी व्यक्ति-विशेष की अपनी शैली, उसके अपने दर्शन, उसके अपने ज्ञान-कोश का प्रभाव रहता है और जिन्हे पढते या सुनते ही यह प्रश्न पैदा होता है कि यह गीत किसने रचा, जो इतना वैयक्तिक होता है कि लोक के साथ एकमेक नही हो पाता। लोक-गीत के सम्बन्ध मे यह प्रश्न कभी उठता ही नही कि इस गीत का कर्ता कौन है ? लोक-गीत के शब्द जैसे समस्त लोक के शब्द होते हैं, लोक-गीत का ज्ञानकोश जैसे समस्त लोक का अपना ज्ञानकोश होता है। उसकी कल्पना-मूर्तियाँ लोक सम्भव होती हैं। यही कारण है कि कभी-कभी किसी-किसी विद्वान ने यह भी माना कि लोक-गीत लोक-समूह द्वारा ही निर्मित होता है। वस्तुत ऐसा कभी सम्भव नही होता। गीत का निर्माण तो व्यक्ति ही करता है, पर उस व्यक्ति का लोक से ऐसा तादात्म्य होता है कि न निर्माण के समय ही, न उसके प्रसार के समय ही यह विदित हो सकता है कि उसे कोई बना रहा है या वह बनाया जा रहा है। कभी-कभी ऐसे गीतो के निर्माण मे यह भी होता है कि एक व्यक्ति आरम्भ करता है, और दूसरा भी या तीसरा भी उसमे कोई कडी जोड देता है, और वह कडी या कडियाँ भी उस मूल गीत की अपनी बनकर परम्परा मे चल पडती हैं।

लोक-गीत उन रहस्यवादी गीतो से भी भिन्न होता है, जिनमे कोई कवि अथवा सत अपनी दार्शनिक रहस्यानुभूति को अभिव्यक्त करता है। लोक-गीत की दैवीवाकता अथवा उसका रहस्यसिंचन आदिममानस के अवशेप के कारण होती है।[1]

---

[1] इस सम्बन्ध मे कैन्नेथ रिचमड ने 'पोइट्री एण्ड द पीपिल' नामक पुस्तक मे बहुत स्पष्ट शब्दो मे विवेचन किया है। जिसके कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते है।

Poetry and the People (by Kenneth Richmond)

Previous chapters have been at pains to point out that the great virtue of folk-poetry was its utter lack of self-consciousness in matters of metre, style and diction

स्वर-साधना

लोक-गीत की स्वर-साधना अपने प्रकृत सजीवित स्वरो से सिद्ध होती है।

Page 184 "In all folksongs it is a common thing to find that the words are inferior to the tunes and because of this it is often stated that it was the tune which mattered most This belief is very far from accurate The truth is that in their passage from mouth to mouth the words have suffered a succession of minor abrasion and modification The music is remembered more faithfully because to the folk-singer, the whole "meaning", of the song is emotional rather than logical "

Page 185 "Obviously the vital function of folkpoetry can never be quite apparent in any printed version As the Morris-dance proper was something more than a dance, having ceremonious implications and mystries of its own, so with the language of folksong The words retain that inscrutable significance which we find so remarkable in primitive literature "

Page 186 "Whether or not they be poetic, they haunt us with a sweet sense of poetry "

Page 186 Every syllable is loaded with more than
meaning, it is literally "The Holy Word
That walked among the ancient trees

It is this attribute of folk-poetry which seems to us so vital for the whole future of English literature It is an attribute which defies analysis All we can say is that it is bound up with the evolutionary forces of tradition and that once separated from them, it tends to disappear

Page 188 "Community-living, absence of the acquisitive motive, oral transmission, ceaseless contact with the soil—everything which goes to make tradition is there Impersonality too Sharp was struck by the fact that the folk-singer "is never conscious of his audience he never, therefore, strives after effect, nor endeavours in this or in any other way to attract the attention, much less the admiration of the hearers "

Page 189 Tradition is essentially a cumulative process its welfare is bound up with the welfare of the people For this reason the folk-arts may be taken as the measure of the cultural well being of any community

Page 189 As life grew ever more individualized it became self-conscious Communalism as a human attitude was lost and with it went the habits of Song and Speech Only in the remoter country districts were they retained Folk-poetry had ceased to be productive but where it was free from the encroachments of "civilization" it maintained a stubborn life

Page 190 Scholarly literature could draw its sustenance from that main stream, but it could never really put anything back into it

सगीत की स्वर-साधना शास्त्रीय मानसिकता से जैसे आक्रान्त रहती है, वैसे लोक-गीत की नहीं। लोक-गीत मे सगीत की भाँति स्वर को कृत्रिम आरोह-अवरोह। सरगम और स्वर-ग्राम तथा लय ताल मे नही बाँधा जाता, लोक-गीत का ताल और लय आरोह-अवरोह, सवृत्ति-विवृत्ति समस्त वन्धन स्वाभाविक मानवावेगो के अनुकूल ढलता है।

लोक-गीतो के प्रकार

लोक-गीतो के प्रकारो पर विवेचन किसी एक सामान्य दृष्टि से नही किया जा सकता। क्योकि उनका उद्भव किसी एक अभिप्राय से नही हुआ। जीवन के जटिल रूप के अनुरूप जटिल उद्देश्यो की परिपूर्ति के प्रयत्न मे लोक-गीतो के भी जटिल प्रकार प्रस्तुत हुए। अत कई दृष्टियो से लोक-गीतो के प्रकार को समझना आवश्यक होगा।

क्षेत्र की दृष्टि से

जार्ज हरजोग ने बताया है कि जिस मानव-समूह के गीतो को लोकगीत कहा जा सकता है, वह मुख्यत ग्रामीण है। लोक-गीत लोक सस्कृति के ही एक अश होते हैं, और यह लोक-सस्कृति नगर-सस्कृति से भिन्न ग्राम-सस्कृति होती है। यो उन्होने यह भी बताया है कि यह ग्राम-नगर भेद आदिम जातियो मे नही मिलता, अत उनके सम्पूर्ण क्षेत्र मे लोक-गीत का प्राधान्य होगा। ग्राम और नगर के निवासी का 'लोक' तथा नगर (urban) के जैसा भेद अमरीका मे नही मिलता, अत अमरीका इस सामान्य नियम का अपवाद माना जायगा। 'द स्टैण्डर्ड डिक्सनरी ऑव फोक-लोर' 'सौंग' पर निवन्ध। उन्होने पश्चिमी गाँवो तथा पूर्व के लिए यह नियम ठीक बताया है कि इन देशों मे लोक-गीत पनपते हैं।

पर हमे क्षेत्र विपयक इस दृष्टि पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना होगा। हिन्दी के क्षेत्र मे पहले 'ग्राम-गीत' के नाम मे गाँव के गीतो का सकलन किया गया था। इस आरम्भ से, और कुछ ऐसी ही दृष्टि से जैसी कि जार्ज हरजोग ने प्रस्तुत की है, आरम्भ मे 'फोक साग' को 'ग्राम-गीत' ही माना गया था। बाद मे विशेष वैज्ञानिक दृष्टि को अपनाने पर 'ग्राम-गीत' शब्द को छोडकर 'लोक-गीत' शब्द अपनाया गया। लोक-गीत और लोक के प्रयोग और अर्थ मे इतने ही समय मे कई परिवर्तन हुए हैं।

Page 190 As William points out, It never occurs to the listener to say, "I wonder who wrote that ?" which is almost the first thought that arises on hearing a song which is, in its present form, a deliberately-composed work of Art ' So slight is the imprint of individual style that the very effort to trace an author only leads the enquirer into such a network of vague associate as to make his research absurd

Page 192 On the whole, we cannot do more than say that folk-poetry is poetry which happens to be current among the folk and leave it at that

कभी तो फोक से ग्रामीण जनो को ग्रहण किया गया, कभी विविध प्रदेशो की आदिम जातियो को। भारत मे भी कभी तो ग्रामीण अर्थ लेकर लोक-साहित्य मे ग्राम-गीत, ग्राम-कहानियाँ, आदि सग्रहीत की गयी। कभी आदिम जातियो अथवा जगली जातियो की गीत-कहानियाँ सग्रहीत हुई। कुछ बाद मे आदिम जातियो के भी गीतादि पर ही अधिक बल दिया गया। निश्चय ही ऐसा तभी हुआ जबकि लोकवार्ता को एन्थ्रापालाजी अथवा नृविज्ञान की दृष्टि से महत्त्व दिया गया।

किन्तु वास्तविक बात यह है कि लोक-गीत अथवा लोकवार्ता का क्षेत्र न तो गाँव ही हैं, न जगल-पहाड ही हैं, न गँवार, न कोल-किरात ही। वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाय तो लोक-मानम सर्वत्र विद्यमान है। अत लोक भी नगर-ग्राम सीमा का भेद किये बिना सर्वत्र है। अत लोक-गीत भी प्रत्येक क्षेत्र मे मिलेगे। हाँ, वे प्रत्येक क्षेत्र की अपनी सुविधा-आवश्यकता के अनुसार भिन्न रूप के होगे, तथा उसी के अनुरूप प्रभावो से प्रभावित होगे।

नगरो और ग्रामो का सम्बन्ध भी कोई ऐसा नही कि उनमे परस्पर किसी प्रकार का आदान-प्रदान ही न हो। एक स्तर नगर और ग्राम में बिलकुल समान जैसा भी विद्यमान मिलता है। तात्पर्य यह है कि लोक-साहित्य नगर मे भी मिलेगा और ग्रामो मे भी। इसी आधार पर क्षेत्र की दृष्टि से लोक-गीतो का वर्गीकरण कुछ इस प्रकार किया जा सकता है—
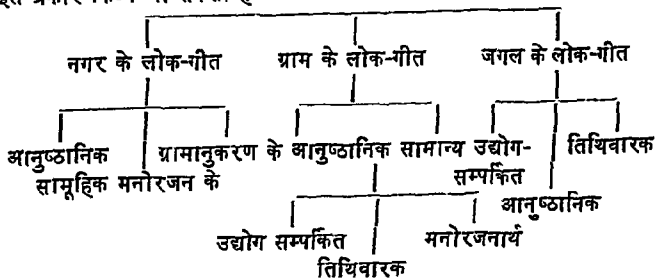
उक्त वर्गीकरण मे आनुष्ठानिक लोक-गीत नगर और ग्राम मे प्राय समान होते है। नगर की जनसख्या विविध प्रदेशो और जातियो के सगम से बनती है, अत इन आनुष्ठानिक गीतो मे उनके उन निजी वैशिष्ट्यो का प्रभाव अवश्य रहता है। क्षेत्र की दृष्टि से भौगोलिक अथवा राजनीतिक इकाइयो मे भी परस्पर यह मिलता है। कोई भौगोलिक प्रदेश किसी विशेष प्रकार को पसन्द करने लगता है।

जातीय दृष्टि से

क्षेत्र की भाँति ही जातीय भेद भी लोक-गीतो मे मिलता है। इस भेद के कारण लोक-गीत भी भिन्न-भिन्न प्रकार ग्रहण कर लेते है। भारत मे जाति का स्वरूप बहुत जटिल है। वर्ण विषयक जातियो के गीतो मे भी कुछ न कुछ पारस्परिक भेद मिल जाता है। इसी प्रकार उद्योगाधार वाली जातियो के गीतो मे भी भेद मिलर

है। निम्न वर्ग की कमीन (काम करने वाली, सेवा वृत्ति वाली) जातियो के गीतो मे तो बहुत ही अधिक भेद मिलेगा। घुमक्कड जातियो के गीतो का रूप कुछ और ही होता है।

अवस्था भेद से

लोक-गीतो मे से कुछ गीत तो ऐसे मिलते हैं जो केवल बच्चो से ही सम्बन्धित होते हैं जैसे टेसू के गीत। उन्हे बडे-बूढे गाते अच्छे नही लगते। बच्चो के गीतो के अतिरिक्त कुछ गीतो की प्रकृति ही ऐसी होती है कि वे नौजवानो के मुख से ही शोभा पाते हैं, जैसे, रसिया।

योनि भेद से

कुछ गीत ऐसे मिलते हैं जो केवल स्त्रियो द्वारा ही गाये जाते है, जैसे सोहर या सार के गीत। कुछ गीत केवल पुरुष ही गाते मिलते हैं, जैसे ढोला।

उपयोगिता की दृष्टि से

गीतो का एक वर्गीकरण उनका उपयोगिता के आधार पर किया जाता है। कौन गीत किस अवसर पर गाया जाता है, इस आधार पर उनका विभाजन करना सामान्य विधि है। इस आधार पर हम भारत की दृष्टि से तीन बडे वग बना सकते हैं—
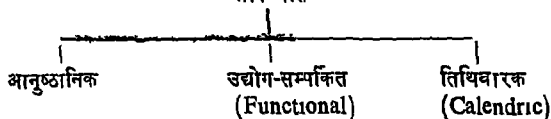
आनुष्ठानिक लोक-गीत जन्म, विवाह, मरण तथा अन्य सस्कारो के अवसर पर गाये जाते है। इन विशेष सस्कारो के अवसरो पर विशेष अनुष्ठानो का आयोजन होता है, इन अनुष्ठानो के अग की भाँति ही ये गीत गाये जाते हैं, इन्ही गीतो मे वे गीत भी सम्मिलित करने होंगे जो विविध पूजा-पाठ के अनुष्ठानो मे गाये जाते है।

उद्योग-सम्पर्कित गीत वे गीत होते हैं जो किसी काम को करते समय गाये जाते हैं। चक्की चलाते समय, पानी भरते समय, यात्रा के समय, आदि।

तिथिवारक गीत किसी तिथि, पर्व, त्यौहार, महीने, ऋतु से सम्बन्धित होते है। जैसे होली फागुन मे, मल्हार सावन मे, आदि।

वस्तु भेद से

गीतो में किस प्रकार की वस्तु आयी है, इस आधार पर भी विभाजन किया जाता है। पूजा-अर्चना-प्रार्थना-स्तुति विषयक गीत छोटे-छोटे होते हैं, इन्हे 'सोहिले' कहा जा सकता है। ये गीत स्तुत्यात्मक (hymnological) होते हैं।

कुछ गीत बच्चो को सुलाने के समय नीद को बुलाने और बालकल्याण के भाव से गाये जाते हैं। जिन्हें 'लोरी' कहा जा सकता है।

कुछ गीतो मे वीरो के विक्रम तथा पराक्रम का वर्णन रहता है। इन्हे साके तथा पँवारे कह सकते हैं।

कुछ गीतो मे प्रेम-तत्त्व का प्राधान्य रहता है। ऐसे गीतो को अग्रेजी मे 'बैलेड' कहा जाता है। इन्हे प्रेम-गीत कहा जा सकता है या गाथा-गीत। कुछ लोग इसे 'लोक-गाथा' कहना ठीक समझते हैं।

रूप भेद से

एक वर्गीकरण गीतो के रूपो के भेद से हो सकता है। एक तो इसमे मुक्तक रूप हो सकता है। छोटे-छोटे भावापन्न गीत। इनके दो वर्ग किये जा सकते हैं 'भाव-विन्दु' वाले। कथा-विन्दु वाले। दूसरा रूप होगा 'प्रबन्ध-गीत' का इसमे एक कथानक रहता है। लघु हो सकता है, और वृहत भी।

प्रकृति भेद से

गीतो का एक वर्गीकरण उनकी प्रकृति के भेद के आधार पर भी किया जा सकता है। इसे यो अभिव्यक्त कर सकते हैं

'शुद्धगीत' तो वे होते हैं जो केवल गाये जाते हैं। नृत्यगीत वे हैं जो 'नृत्य' के साथ के लिए बने होते हैं। नाट्यगीत मे अभिनय और नाट्य रहता है। लोक-रगमच के गीत, नौटकी, भगत आदि इसी के अन्तर्गत आते हैं।
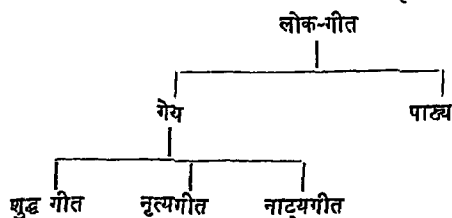
लोक-गीतों के वर्गीकरण की परम्परा

लोक-गीतो के सकलनो के साथ-साथ उनके वर्गो पर भी दृष्टि गयी है। उनके आधार पर डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने दो विद्वानो के वर्गीकरण दिये हैं, जो इस प्रकार हैं

त्रिपाठी जी का विभाजन

पण्डित रामनरेश त्रिपाठी ने ग्राम-गीतो का वर्गीकरण निम्नलिखित ग्यारह श्रेणियो मे किया है[1]—

१—सस्कार सम्बन्धी गीत
२—चक्की और चरखे के गीत
३—धर्म-गीत
४—ऋतु-सम्बन्धी गीत
५—७ खेती, भिखमगी तथा मेले के गीत
८—जाति गीत

---
१ कविता कौमुदी भाग ५, पृष्ठ ४५

९—वीर-गाथा

१०—गीत-कथा

११—अनुभव के वचन

इस उपर्युक्त वर्गीकरण पर सम्यक् दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि त्रिपाठी जी का यह वर्गीकरण वैज्ञानिक नहीं है। चक्की और चरखे के गीतो का अन्तर्भाव वर्तमान लेखक (डा० उपाध्याय) द्वारा प्रतिपादित क्रिया सम्बन्धी गीतो मे हो जाता है। धर्मगीत व्रत गीतो का ही दूसरा नाम है। खेती, भिखमगे और मेले के गीतो की कोई अलग श्रेणी नही है। वे विविध गीतो के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं। वीर-गाथा और गीत-कथा को लोक-गाथा के भीतर माना जा सकता है। अनुभव के वचनो को हम सूक्ति या अनुभूतिपूर्ण उक्ति मात्र कह सकते हैं, लोक-गीत नही। इस प्रकार त्रिपाठी जी के ११ भेदो का अन्तर्भाव हमारे ६ भेदो के अन्दर ही हो जाता है।

पारीक का वर्गीकरण

राजस्थानी लोक-गीतो के विद्वान पारखी प० सूर्यकरण पारीक ने अपनी पुस्तक मे राजस्थानी गीतो का क्षेत्र-विस्तार दिखाते समय इन्हे निम्नाकित २९ भागो मे विभक्त किया है[1]—

(१) देवी-देवताओ और पितरो के गीत

(२) ऋतुओ के गीत

(३) तीर्थो के गीत

(४) व्रत-उपवास और त्यौहारो के गीत

(५) सस्कारो के गीत

(६) विवाह के गीत

(७) भाई बहन के प्रेम के गीत

(८) साली-सालेल्याँ (सरहज) रा गीत

(९) पति-पत्नी के प्रेम के गीत

(१०) पणिहारियो के गीत

(११) प्रेम के गीत

(१२) चक्की पीसते समय के गीत

(१३) बालिकाओ के गीत

(१४) चरखे के गीत

(१५) प्रभाती गीत

(१६) हरजस—राधा-कृष्ण के प्रेम के गीत

(१७) धमालें— होली के अवसर पर पुरुषो द्वारा गेय गीत

(१८) देश-प्रेम के गीत

(१९) राजकीय-गीत

[1] पारीक राजस्थानी लोक-गीत, पृ० २२-२५।

(२०) राज दरबार, मजलिस, शिकार, दारू के गीत
(२१) जम्मे के गीत—वीरो, सिद्ध पुरुषो, महात्माओ की स्मृति मे रखे गये जागरण को 'जम्मा' कहते है।
(२२) सिद्ध पुरुषो के गीत
(२३) क—वीरो के गीत
(२३) ख—ऐतिहासिक गीत
(२४) क—गवालो के गीत
(२४) ख—हास्यरस के गीत
(२५) पशु-पक्षी सम्बन्धी गीत
(२६) शान्त रस के गीत
(२७) गाँवो के गीत (ग्राम-गीत)
(२८) नाट्य-गीत
(२९) विविध—

"इस श्रेणी विभाजन के सम्बन्ध मे इतना ही कहना पर्याप्त है कि इसमे कोई क्रम नही दिखायी पडता। पारीकजी ने हास्य, शृङ्गार और वीर रस के गीतो को तीन श्रेणियो मे पृथक्-पृथक् रखा है, जिनको एक ही वर्ग में रखा जा सकता है। इसी प्रकार भाई-बहन और पति-पत्नी के गीतो का अन्तर्भाव सस्कार या ऋतु सम्बन्धी गीतो मे किया जा सकता है।"

यहाँ यह बात ध्यान मे रखने की है कि उक्त दोनो विद्वानो का दृष्टिकोण उक्त विभाजन प्रस्तुत करने मे वैज्ञानिक नही था। केवल सामान्य रूप से उन्हे जो वर्ग बनते मिले उनका उल्लेख उन्होंने कर दिया। अत इन वर्गीकरणो से तो एक प्रकार से गीतो मे मिलने वाले प्रमुख विषयो का ही सकेत मिलता है। डा० उपाध्याय ने उक्त वर्गीकरण पर जो विवेचन प्रस्तुत किया है वह भी अपर्याप्त है। क्योकि जिन कुछ बातो की ओर उन्होने सकेत किया है, वैज्ञानिक दृष्टि से उनसे अधिक बातो के सम्बन्ध मे यह दिखाया जा सकता है वे पृथक् वर्ग नही प्रस्तुत करती, वरन् अन्य वर्ग मे समाविष्ट हो सकती हैं। किन्तु उक्त वर्गीकरण को इस दृष्टि से ग्रहण करने की आवश्यकता नही।

इसके उपरान्त डा० उपाध्याय ने एक वैज्ञानिक और सैद्धान्तिक पुस्तक के वर्गीकरण का उल्लेख किया है। यह श्री श्याम परमार की पुस्तक 'भारतीय लोक-साहित्य' है। किन्तु इससे पूर्व 'व्रज लोक-साहित्य के अध्ययन' मे दिये गये वर्गीकरण को भी उन्हें देना चाहिए था। क्योकि जैसा डा० उपाध्याय के ग्रंथ की भूमिका मे डा० धीरेन्द्र वर्मा ने लिखा है "हिन्दी प्रदेश की किसी एक भाषा, व्रजभाषा के लोक-साहित्य का प्रथम वैज्ञानिक अध्ययन डा० सत्येन्द्र ने उपस्थित किया था"—इस दृष्टि से प्रथम वैज्ञानिक वर्गीकरण का रूप 'व्रज-लोक-साहित्य का अध्ययन' नामक पुस्तक मे प्रस्तुत हुआ। इसमे लोक-गीतो के वर्गीकरण का यह रूप मिलता है—

लोक-गीत
पुरुषों के
स्त्रियों के
साधारण
अनुष्ठानों के
माँगने वालों के
खेल के
पेशेवरों के
बच्चों के
१ सरमन (विस्नोई)
२ भैरों (भोपों के)
टेसू के
चट्टा के
ग्रामीण
नागरिक जातियों के
ख्याल स्वाँग
भगत
व्यक्ति द्वारा
सम्मिलित
जाहरपीर
देवी की भेंट, ब्याहुले,
ज्वालाजी का जुज्झ आदि
प्रबन्ध
मुक्तक
व्यक्ति द्वारा
समूह द्वारा
सोरठ
समादी भजन
रजपूती होली
सडाके
रागिनी
रसिया
ख्याल आदि
जिकडी
पँवारे
साके
ढोला
आल्हा
हीररांझा
नरसी का भात

स्त्रियों के
संस्कार विषयक
तिथि वासरक
अन्य गीत
जन्म के गीत
विवाह के गीत
मृत्यु-समय के गीत
सामान्य ऋतु-मास परक
त्योहार-व्रतों के गीत
देवी-देवताओं के
सावन के गीत
फागुन के गीत
मांगलिक
आनुष्ठानिक जागरण के
उद्योगपरक
चक्की, सिला आदि के
खेल के [सामान्य मनोरंजन के]

स्त्रियो के
जन्म के गीत
जन्ति के गीत
छठी के गीत
जगमोहन लुगरा
तगा
वै के गीत
सोभर
वधाए
चरुए-साँतिए
साँतिए
भाव-तात्विक
लघु कथाशी
दीर्घ कथायुक्त
सोहिले
छठी की रात का गीत
'नौंतौ'
छठी के दिन का गीत
जच्चा
सोहर
कढाहुली १
लपसी २
हेलन ३
हिरनी ४
सार ५
तिलडी ६
नरगफल ७
पालना ८
झुँझना ९
कौमरी १०
सौंठ ११
दामोदरिया १२
काजल १३
सोहिले
कामना
पीडा
प्रसव
नेग
जच्चा के नखरे
आनन्द
वधाए
अभिलाषा
दार्शनिक
विविध
नन्द

इसी के साथ विविध अन्य गीतो का एक और वर्गीकरण भी आगे दिया गया है
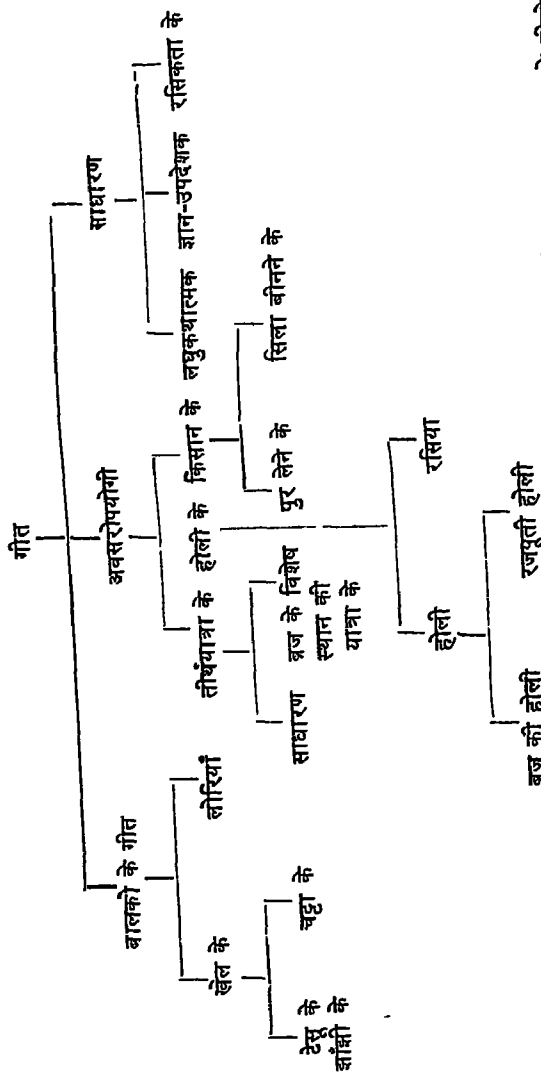
इस प्रकार इस अध्ययन मे गीतो के विविध प्रकारो पर विविध प्रकार से दृष्टि डाली गयी है। यह मुख्यत ब्रज के गीतो को दृष्टि मे रखकर वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है। इसमे जहाँ-तहाँ पारस्परिक सक्रमण भी है।

इसके बाद डा० श्याम परमार के 'भारतीय लोक-साहित्य' का वर्गीकरण दिया जा सकता है। किन्तु उपाध्याय जी ने डा० श्याम परमार का मत न देकर उसमे दिये गये स्व० श्री भास्कर रामचन्द्र भालेराव जी का वर्गीकरण दिया है। भालेरावजी ने लोक-गीतो के सकलन की एक योजना प्रस्तुत की थी, उसी मे उन्होने यह वर्गीकरण दिखाया था। उनका भी यह कार्य सैद्धान्तिक दृष्टि से नही था। फिर भी यह वर्गीकरण विस्तारपूर्वक यहाँ दिया जाता है

ग्रामगीतो के प्रकार

१ **सस्कार विषयक**—(१) पुत्र जन्म सोहर, (२) चरुवा गीत, (३) चौक के गीत, (४) साध के गीत, (५) करौधनी-कदोरा बाँधने के गीत, (६) मुण्डन, (७) जनेऊ, (८) मामा के यहाँ पहली बार जाने के गीत, (९) पहली वार वरात मे जाने के गीत, (१०) टीका, (११) विवाह, (१२) द्विरागमन, (१३) तिरागमन अर्थात् रौने के गीत, (१४) समधियो के आने के गीत, (१५) गौदान, देवस्थापन, पुराण बैठाने, कूपखनन, गृहारम्भ के गीत, (१६) तीर्थ-यात्रा और गमन-आगमन के गीत, (१७) अन्नप्राशन के गीत, (१८) पलने के गीत, (१९) अगरनी-गर्भवती स्त्री विपयक, (२०) माता कढने के गीत—भैंट, (२१) जेवनार, (२२) पत्तल बाँधना व खोलना, (२३) भरनी या ढाँक के गीत (साँप काटने पर), (२४) मेले के गीत, (२५) जन्मगाँठ के गीत, (२६) छत्री स्थापना के गीत।

२ **माहवारी गीत**—(१) वारह मासा, (२) नोरता-नौरात्र-चैत्र-आश्विन, (३) रामनौमी, (४) आखातीज, (५) दसहरा (जेठ आश्विन), (६) देव शयनी, देव-उठान, (७) सावन-हिंडाला, (८) साझी, (झेंझी-हुण्डी के गीत), (९) झाझी, (१०) बीजा-मिट्टी के गीत—टेसू, (११) कृष्णजन्माष्टमी, (१२) करवा चौथ, (१३) महा-लक्ष्मी, (१४) बछवा छठ, (१५) मोर छठ, (१६) नौदुर्गा, (१७) गनगौर, (१८) कार्तिक और माघ-स्नान के गीत, (१९) होली, (२०) अहोरी आठें-कार्तिक के गीत, (२१) कजरिया तीज, श्रावण, (२२) भुजरिया।

३ **सामाजिक-ऐतिहासिक**—(१) चन्द्रावल, (२) वेला सता, (३) ढोला मारू, (४) हरदौल, (५) वावू के गीत, (६) कारसदेव के गीत, (७) कुँवर के गीत, (८) हीरामन, (९) नगरा, (१०) मन्नादेव, (११) पण्डत मेहतर, (१२) जाहरपीर, (१३) अलख, (१४) हीलो के गूजरो के गीत, (१५) कन्हैया, (१६) सलगा सदावृक्ष, (१७) गोरा वादल, (१८) बुलाकीदास, (१९) घासीराम पटेल, (२०) पापूजी के गीत, (२१) राजा केवट, (२२) ओखाजी, (२३) तेजाजी, (२४) गोराजी, (२५) भेरूजी।

४ **विविध**—(१) खेती की कहावतें, (२) ऊख की फसल खत्म होने के गीत, (३) वारी पूजने के गीत, (४) जात व चक्की के गीत, (५) लावनी, (६)

रसिया, (७) ख्याल, (८) छून्दरा, (९) दोहे-साखी, (१०) सोरठे, (११) सवैये, (१२) भजन, (१३) कवित्त, (१४) सिन्धू, (१५) धौल ।

डा० श्री श्याम परमार ने वर्गीकरण के सम्बन्ध मे अपना मत यो दिया है

"लोक-गीतो का सामान्य वर्गीकरण

(१) जातियो की दृष्टि से
(२) सस्कारो और प्रथाओ की दृष्टि से
(३) धार्मिक विश्वासो की दृष्टि से
(४) कार्य के सम्बन्ध की दृष्टि से
(५) रस-सृष्टि की दृष्टि से किया जा सकता है ।"

डा० श्याम परमार को इस वर्गीकरण मे (२) (३) को एक वर्ग देना चाहिए था, क्योकि दोनो मे एक ही दृष्टि काम कर रही है । वैज्ञानिक दृष्टि से 'रस-सृष्टि' जैसा वग लोक-गीतो मे नही हो सकेगा । ऋतु-मास विषयक गीत अपना अस्तित्व रखते हैं, और समस्त विश्व मे इनकी सत्ता है । इन्हें 'तिथिवासरक' (Calenderic) कहा जाता है ।

ऐतिहासिक अनुक्रम मे अब डा० उपाध्याय का वर्गीकरण दिया जा सकता है । पहली दृष्टि मे ही यह विदित हो जायगा कि डा० उपाध्याय ने डा० श्याम परमार के वर्गीकरण का ही अनुसरण किया है । केवल 'धार्मिक विश्वासो' वाले सख्या ३ के स्थान पर ऋतुओ और व्रतो को स्थान दे दिया है । निश्चय ही यह डा० परमार के वर्गीकरण मे उन्होने उचित सशोधन किया है ।

डा० उपाध्याय के मतानुसार लोक-गीतो का वर्गीकरण—

१ सस्कारो की दृष्टि से
२ रसानुभूति की प्रणाली से
३ ऋतुओ और व्रतो के क्रम से
४ विभिन्न जातियो के प्रकार से
५ क्रिया-गीत की दृष्टि से

१ सस्कारो की दृष्टि से

भारतीय जीवन मे धर्म का प्रमुख स्थान है । यदि यह कहा जाय कि भारतीय लोगो का धर्म ही प्राण है तो इसमे कुछ अतिशयोक्ति न होगी । भारतीय जीवन मे धर्म का स्थान कितनी महत्ता रखता है यह बताने की आवश्यकता नही । जन्म के पहले से लेकर मृत्यु के बाद तक इस देश के लोगो का जीवन सस्कारो से सम्बद्ध है । हमारे धर्मशास्त्रियो ने षोडश सस्कारो का विधान किया है, जिनमे गर्भाधान, पुसवन, पुन जन्म, मुण्डन, यज्ञोपवीत, विवाह और मृत्यु प्रधान हैं । इनमे भी

प्रथम दो सस्कारो की प्रथा अब नही है। शेष पाँच सस्कार ही आजकल प्रधान रूप से किये जाते हैं। इन विभिन्न सस्कारो के अवसर पर स्त्रियाँ अपने कोमल कण्ठ से गीत गा-गा कर जन-मन का अनुरजन किया करती हैं। मृत्यु के अवसर के गीत बडे ही कारुणिक तथा हृदय विदारक होते है। किसी प्रिय व्यक्ति पति या पुत्र के मरने पर उसकी स्त्री या माता उस मृतात्मा के गुणो का वर्णन करती हुई रोती और विलाप करती है। ऐसे गीतो की सख्या अधिक नही है।

२ रसानुभूति की प्रणाली से

लोक-गीतो मे अनेक रसो की अभिव्यक्ति बडी ही सुन्दर रीति से हुई है। इन गीतो मे विभिन्न रसो की जो अविरल धारा प्रवाहित होती है उसका स्रोत कदापि नही सूख सकता। यो तो इन गीतो मे सभी रसो की उपलब्धि होती है परन्तु निम्नाकित पाँच रसो की ही प्रधानता पायी जाती है

१ शृङ्गार रस

२ करुण रस

३ वीर रस

४ हास्य रस

५ शान्त रस।

शृङ्गार रस के अन्तर्गत विशेषकर सोहर, जनेऊ, विवाह और वैवाहिक परिहास के गीत आते हैं। सोहर के गीतो मे गर्भिणी स्त्री का शरीर यष्टि का बडा सुन्दर वर्णन पाया जाता है। गर्भिणी होने पर स्त्रियो का शरीर पीला पड जाता है, पयोधर स्थूलता को प्राप्त करते हैं, अगो मे कृशता आ जाती है। इन विषयो का वर्णन लोकगीतो मे हुआ है। यदि इस समय पति परदेश गया होता है तो उसके वियोग मे वह स्त्री अत्यन्त दुखी दिखायी पडती है। उसका एक-एक क्षण युग के समान बीतता है। पति वियोग के साथ मिलकर उसकी प्रसव पीडा सौ गुनी हो जाती है। इन गीतो मे सयोग तथा विप्रलम्भ दोनो प्रकार के शृङ्गार का वर्णन पाया जाता है।

करुण रस के गीतो मे गवना, जँतसार, निर्गुन, पूरबी, रोपनी तथा सोहनी के गीतो की गणना की जा सकती है। इन गीतो से करुण रस छलका पडता है। यद्यपि उपर्युक्त सभी गीत करुण रस से ओत-प्रोत हैं, परन्तु गवना के गीतो मे करुण रस बरसाती नदी की भाँति उमडता हुआ दिखायी पडता है। लडकी की विदाई के समय जो गीत गाये जाते है वे बडे ही हृदयद्रावी होते हैं। गवना के ये गीत क्या है करुण रस के फौवारे है जो पाठको को रससिक्त कर देते हैं।

इसी प्रकार जँतसार, निर्गुन, पूरबी और सोहनी के गीतो को समझना चाहिए जिनका विस्तृत वर्णन यथा स्थान किया जायेगा।

इन गेय गीतो के अतिरिक्त कुछ प्रबन्धात्मक गीत भी पाये जाते हैं, जिनकी रचना किसी विशेष घटना को लेकर पद्यबद्ध रीति से की गयी है। इन गीतो को 'लोक-गाथा' का नाम दिया गया है। आल्हा, विजयमल, लोरकी, सोरठी, नयकवा, बनजारा, गोपीचन्द भरथरी और ढोला मारू के गीत इस श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। पजाब मे राजा रसालू का गीत प्रसिद्ध है। आल्हा वीर रस का महाकाव्य है जिसके प्रत्येक पद मे वीरता कूट-कूट कर भरी हुई है। सोरठी मे रहस्य और रोमाच की कथा का वर्णन बडी सुन्दर रीति से किया गया है। विजयमल मे कुँवर विजयी नामक किसी वीर की कथा वीर रस मे वर्णित है। राजा रसालू के विषय मे भी यही बात समझनी चाहिए।

लोक-गीतो मे हास्य रस की मात्रा अपेक्षाकृत कम पायी जाती है। वैवाहिक परिहास के गीतो मे हास्य रस की मधुर व्यजना हुई है। झूमर के गीतो—जिनका नामकरण इन्हे झूम-झूम कर गाने से हुआ है—मे भी हास्य का पुट उपलब्ध होता है। इनमे कहीं तो अपने प्रियतम पर कोई फबती कसी जाती है तो कही देवर से हँसी-मजाक का अवसर उपस्थित किया जाता है।

भजन, निर्गुन, तुलसी माता और गगा मइया के गीतों मे शान्त रस पाया जाता है। सन्ध्या समय तथा रात्रि के पिछले प्रहर मे स्त्रियाँ भजन गाती हैं जिन्हे क्रमश 'सझा' और 'पराती' कहते हैं। इन गीतो मे भगवान की स्तुति होती है। प्रात काल गगा स्नान के लिए झुण्ड मे जाती हुई स्त्रियाँ गगाजी के गीत गाती है, जिनमे ससार के झझटो से मन को हटाकर भगवान मे उसे लगाने का वर्णन रहता है। इन गीतो को सुनकर मन मे भक्ति का उद्रेक होता है।

३ ऋतुओ और व्रतो के क्रम से

लोक-गीतो की मीमासा करने पर यह पता चलता है कि इनमे से अधिकाश किसी न किसी ऋतु या त्यौहार से सम्बन्ध रखते है। वर्षा, वसन्त आदि ऋतुओ के आने पर जन-जीवन मे जो नवीन उल्लास उत्पन्न होता है, उसकी अभिव्यक्ति लोक-गीतो मे पायी जाती है। यदि वर्षा (आषाढ) के दिनो मे किसान आल्हा गा-गा कर अपना मनोरजन करता है तो सावन मे कजली गाकर अपने दिल के दर्द को दूर करता है। यदि फागुन के महीने मे होली या फागुआ के गीतो के द्वारा वह अपने हृदयगत उल्लास को प्रकट करता है तो चैत मे 'चैता' या 'घाँटो' गाकर वह आत्म-विभोर हो जाता है।

विभिन्न व्रतो के अवसर पर विभिन्न गीत गाये जाते हैं। श्रावण शुक्ला पचमी—नाग पचमी—के अवसर पर नाग (सर्प) देवता सम्बन्धी गीत गाये जाते हैं। भाद्रमास के कृष्ण पक्ष की चतुर्थी को 'बहुरा' का व्रत और कार्तिक शुक्ल द्वितीया

को 'गोधन' की पूजा की जाती है। इन ,अवसरो पर स्त्रियाँ गीत गाकर अपने-अपने इष्टदेवता से अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति की प्रार्थना करती हैं। शायद ही ऐसा कोई त्यौहार हो जिस समय कोई गीत न गाया जाता हो।

४ विभिन्न जातियो के प्रकार से

कुछ ऐसे भी गीत हैं जिन्हें कुछ विशिष्ट जातियाँ ही गाती हैं। उदाहरण के लिए बिरहा को लिया जा सकता है। यह गीत अहीर जाति के लोगो का राष्ट्रीय या जातीय गीत है। अहीर लोग जिस भावभगी तथा सुन्दरता के साथ इसे गाते हैं, उस प्रकार से दूसरा नही गा सकता है। जो अहीर बिरहा गाने मे जितना ही प्रवीण होता है, वह उतना ही योग्य समझा जाता है। इस जाति के लोगो मे विवाह के अवसर पर वर की योग्यता उसके बिरहा गाने पर ही आश्रित होती है।

'पचरा' नामक गीत को दुसाध जाति के लोग प्राय गाया करते है। जब कोई इस जाति का व्यक्ति बीमार पड जाता है, तब इस जाति का कोई बूढा बुलाया जाता है। वह आकर रोगी के पास बैठकर पचरा गा-गा-कर देवी का आवाहन करता है। इस प्रकार कई दिनो तक इस प्रक्रिया के करने से रोगी का रोग दूर हो जाता है, ऐसा उनका विश्वास है।

वर्षा ऋतु मे एक विशेष जाति के लोग—नट—ढोल को गले मे बाँधकर 'आल्हा' गाते फिरते हैं। इस प्रकार भिक्षा का आयोजन करना उनका व्यवसाय हो गया है। गेरुआ वस्त्र को धारण करने वाले कुछ साधु—जो 'साईं' के नाम से प्रसिद्ध हैं—सारगी के ऊपर गोपीचन्द और भरथरी के गीत गाते फिरते हैं। यह कार्य उनकी उदर-पूर्ति का प्रधान साधन बन गया है। माली लोग माता के गीत गाते हैं।

५ क्रिया के आधार पर

कुछ ऐसे भी गीत पाये जाते हैं जो किसी विशेष कार्य को करते समय गाये जाते है। उदाहरण के लिए, धान को रोपते समय स्त्रियाँ जो गीत गाती हैं उन्हे 'रोपनी के गीत' कहते हैं। इसी प्रकार खेत को निराते या सोहते समय जो गीत गाये जाते है वे 'निरवाही' या 'सोहनी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। 'जँतसार' उन गीतो को कहा जाता है कि जिन्हे जाँत पीसते समय स्त्रियाँ गाती हैं। तेली तेल को 'पेरते' समय अपने हृदय के भावो का मन्थन करता हुआ जिन पदो को सस्वर रूप से गाता है उन्हे 'कोल्हू के गीत' की सज्ञा दी गयी है। चूँकि ये गीत एक विशेष प्रकार के कार्य (क्रिया) करते समय गाये जाते हैं अत इन्हें क्रिया-गीतो की श्रेणी मे रखा गया है। इन गीतो को गाने से काम करने से उत्पन्न थकावट दूर होती जाती है और साथ ही उस काम के करने मे मन भी लगा रहता है।

उपर्युक्त लोक-गीतो के वर्गीकरण को निम्नलिखित प्रकार मे स्पष्ट किया जा सकता है—

लोक-गीत
१ संस्कार सम्बन्धी गीत
२ ऋतु सम्बन्धी गीत
३ व्रत सम्बन्धी गीत
४ जाति सम्बन्धी गीत
५ क्रिया सम्बन्धी गीत
६ विविध गीत
पुत्र-जन्म
मुण्डन
यज्ञोपवीत
विवाह
गवना
मृत्यु
कजली
हिंडोला
होली
चैता
बारहमासा
नागपचमी
बहुरा
गोधन
पिड़िया
छठी माता
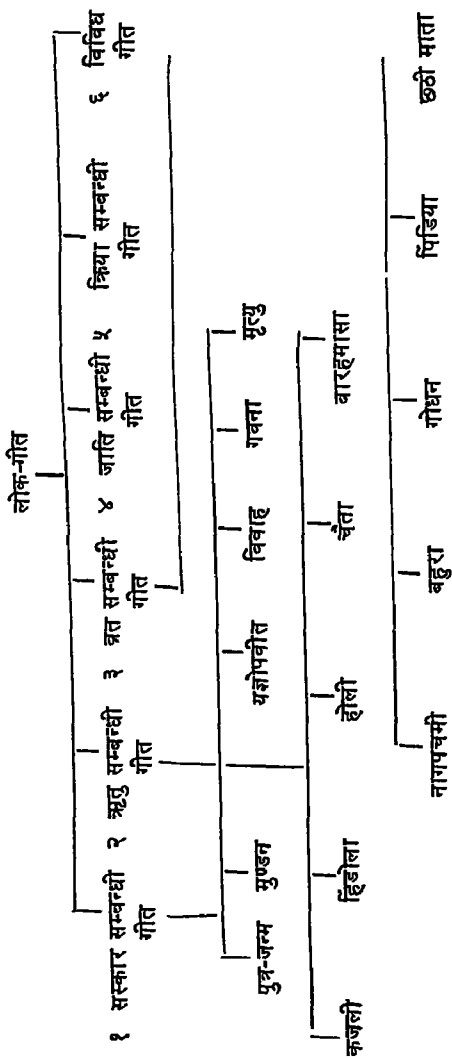
(शेष अगले पृष्ठ पर)

को 'गोधन' की पूजा की जाती है। इन अवसरो पर स्त्रियाँ गीत गाकर अपने-अपने इष्टदेवता से अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति की प्रार्थना करती है। शायद ही ऐसा कोई त्यौहार हो जिस समय कोई गीत न गाया जाता हो।

४ विभिन्न जातियो के प्रकार से

कुछ ऐसे भी गीत है जिन्हे कुछ विशिष्ट जातियाँ ही गाती हैं। उदाहरण के लिए विरहा को लिया जा सकता है। यह गीत अहीर जाति के लोगो का राष्ट्रीय या जातीय गीत है। अहीर लोग जिस भावभगी तथा सुन्दरता के साथ इसे गाते हैं, उस प्रकार से दूसरा नही गा सकता है। जो अहीर विरहा गाने मे जितना ही प्रवीण होता है, वह उतना ही योग्य समझा जाता है। इस जाति के लोगो मे विवाह के अवसर पर वर की योग्यता उसके विरहा गाने पर ही आश्रित होती है।

'पचरा' नामक गीत को दुसाध जाति के लोग प्राय गाया करते हैं। जब कोई इस जाति का व्यक्ति बीमार पड जाता है, तब इस जाति का कोई बूढा बुलाया जाता है। वह आकर रोगी के पास बैठकर पचरा गा-गा-कर देवी का आवाहन करता है। इस प्रकार कई दिनो तक इस प्रक्रिया के करने से रोगी का रोग दूर हो जाता है, ऐसा उनका विश्वास है।

वर्षा ऋतु मे एक विशेष जाति के लोग—नट—ढोल को गले मे बाँधकर 'आल्हा' गाते फिरते है। इस प्रकार भिक्षा का आयोजन करना उनका व्यवसाय हो गया है। गेरुआ वस्त्र को धारण करने वाले कुछ साधु—जो 'साईं' के नाम से प्रसिद्ध है—सारगी के ऊपर गोपीचन्द और भरथरी के गीत गाते फिरते है। यह कार्य उनकी उदर-पूर्ति का प्रधान साधन बन गया है। माली लोग माता के गीत गाते हैं।

५ क्रिया के आधार पर

कुछ ऐसे भी गीत पाये जाते हैं जो किसी विशेष कार्य को करते समय गाये जाते है। उदाहरण के लिए, धान को रोपते समय स्त्रियाँ जो गीत गाती हैं उन्हे 'रोपनी के गीत' कहते है। इसी प्रकार खेत को निराते या सोहते समय जो गीत गाये जाते हैं वे 'निरवाही' या 'सोहनी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। 'जँतसार' उन गीतो को कहा जाता है कि जिन्हे जाँत पीसते समय स्त्रियाँ गाती है। तेली तेल को 'पेरते' समय अपने हृदय के भावो का मन्थन करता हुआ जिन पदो को सस्वर रूप से गाता है उन्हे 'कोल्हू के गीत' की सज्ञा दी गयी है। चूँकि ये गीत एक विशेष प्रकार के कार्य (क्रिया) करते समय गाये जाते हैं अत इन्हें क्रिया-गीतो की श्रेणी मे रखा गया है। इन गीतो को गाने से काम करने से उत्पन्न थकावट दूर होती जाती है और साथ ही उस काम के करने मे मन भी लगा रहता है।

उपर्युक्त लोक-गीतो के वर्गीकरण को निम्नलिखित प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है—

लोक-गीत
१ संस्कार सम्बन्धी गीत
२ ऋतु सम्बन्धी गीत
३ व्रत सम्बन्धी गीत
४ जाति सम्बन्धी गीत
५ क्रिया सम्बन्धी गीत
६ विविध गीत
पुत्र-जन्म
मुण्डन
यज्ञोपवीत
विवाह
गवना
मृत्यु
कजली
हिंडोला
होली
चैता
बारहमासा
नागपंचमी
बहुरा
गोधन
पिड़िया
छठी माता

(शेष अगले पृष्ठ पर)

लोक-गीत
४ जाति सम्बन्धी गीत
५ क्रिया सम्बन्धी गीत
६ विविध गीत
अहीरो के गीत
दुसाधो के गीत
चमारो के गीत
गोडो के गीत
कहारो के गीत
धोबियो के गीत
रोपनी
सोहनी
जँतसार
चरखा
झूमर
अलचारी
पूर्वी
निर्गुन
भजन
खेल
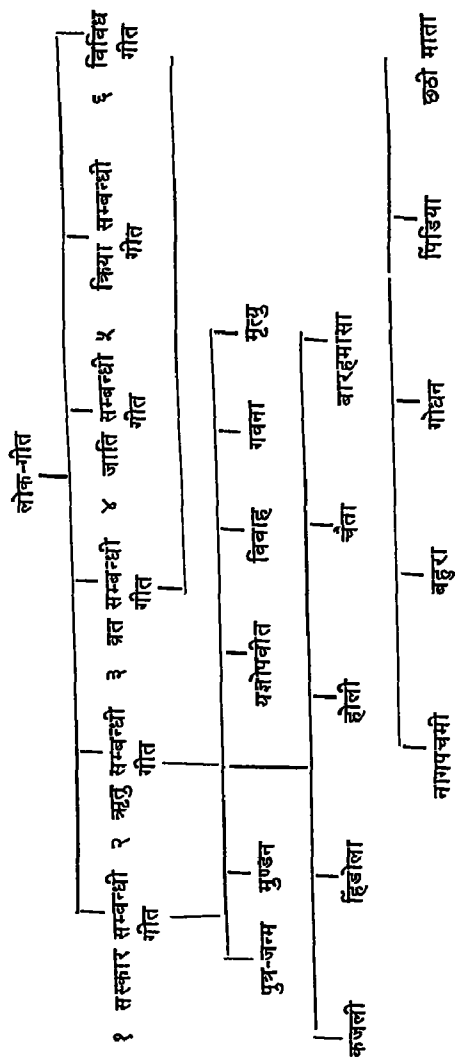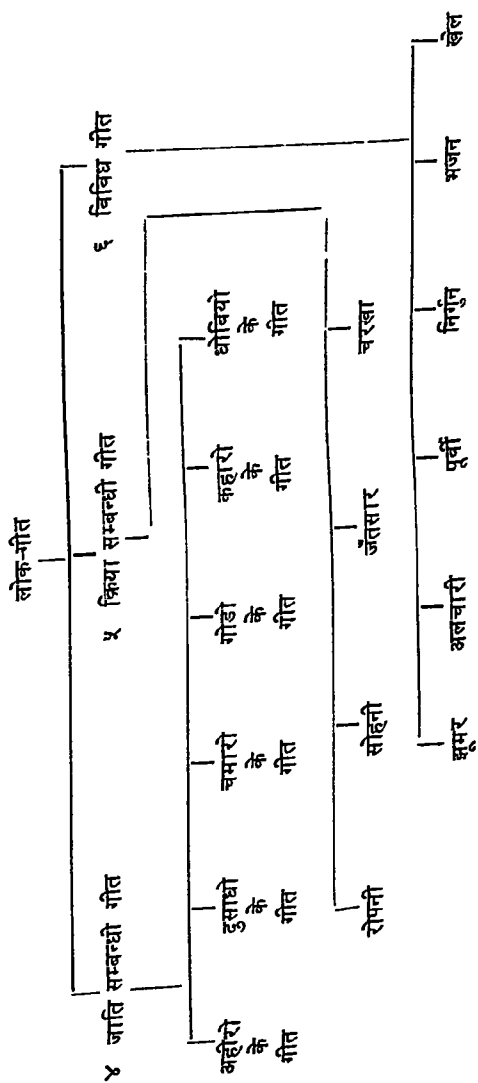
वस्तुत यह वर्गीकरण सदोप है। किसी भी वैज्ञानिक वर्गीकरण का एक ही आधार होना चाहिए। डा० उपाध्याय के वर्गीकरण मे यह बात नही। सस्कार सम्बन्धी गीत, ऋतु सम्बन्धी गीत, व्रत सम्बन्धी गीत तथा क्रिया सम्बन्धी गीत, ये वर्ग गीतो के उपयोग के आधार पर हैं। जातीय गीत का आधार नृतात्विक है। फिर इन जाति विशेषो मे भी सस्कार, ऋतु, व्रतादि, गीत मिल सकते है। 'क्रिया सम्बन्धी गीत' जिस वर्ग को नाम दिया गया है, वह नाम की दृष्टि से समीचीन नही। क्रिया तो सस्कार और व्रत भी हैं। वास्तविक बात तो यह है कि देखा जाय तो ऋतु और व्रत भी एक ही वर्ग मे बैठेंगे। क्योकि इन दोनो का सम्बन्ध काल विशेप से रहता है। इस प्रकार मूलत तो गीत उपयोगिता वादिनी दृष्टि से दो ही प्रकार के होते हैं।

एक—किसी आचार-व्यापार से सम्बन्धित जिन्हें अँग्रेजी मे फक्शनल (functional) कहा जा सकता है। इन आचारिक गीतो को दो भागो मे बाँटा जा सकता है—

१ आनुष्ठानिक तथा

२ उद्योग-सम्पर्कित अथवा

३ उद्योगाचारिक

इसी आचारिक वर्ग मे एक और प्रकार के गीत भी सम्मिलित किये जा सकते हैं, जो न तो यथार्थत आनुष्ठानिक होते हैं, न उद्योगाचारिक, वरन् जो मनोमोदक अथवा समारोहक ही होते है। ये मनकी उमग या मौज मे सामूहिक रूप से या अन्यथा गाये जाते हैं। ऐसे गीत बहुधा विक्रमगीत या गाथा गीत होते हैं, जैसे ढोला या आल्हा, हीर-राझा, नौटकी, आदि। ऐसे गीतो की प्रतिद्वन्द्विता के अखाडे भी आयोजित होते हैं।

लोक-मानस यो तो ऐसे गीतो के साथ भी टोना सलग्न कर देता है, जैसे आल्हा गाने से वर्षा आती है, आदि। प्रश्न यह है कि क्या इन समारोहक गीतो को आचारिक वर्ग मे रखा जा सकता है। आचारिक अथवा functional गीतो का क्षेत्र विपाद ही माना जायगा, और समारोह अथवा मनोरजन के उद्योग भी इसके अन्तर्गत आयेंगे।

किसी भी प्रकार के धार्मिक अभिप्राय अथवा टोने आदि के अनुष्ठान से जिन गीतो का सम्बन्ध होगा, वे पहले वर्ग मे जायेंगे। विश्व भर मे ऐसे आनुष्ठानिक गीत बिना राष्ट्र या जाति के भेद के मिलते हैं। दूसरे वर्ग मे वे सब गीत जायँगे जो किसी काम को करते समय सामान्यत गाते हैं।

दूसरे—तिथिवासरक—जिन्हे अग्रेजी मे कलेंड्रिक कहा जा सकता है। ये गीत किसी ऋतु, मास, तिथि, पर्व पर गाये जाते है।

डा० उपाध्याय ने तालिका-रूप मे लोक-गीतो का जो वर्गीकरण प्रस्तुत किया है, उसमें उन्होंने ६ बडे वर्ग बनाये है। इन वर्गों में सबसे आरम्भ मे बताये गये ५

वर्गों मे से 'रसानुभूत की प्रणाली से' होने वाले वर्ग को कोई स्थान नही दिया गया। ऋतु और व्रत को अलग-अलग वर्ग माना गया है और 'विविध गीत' शीर्षक एक अलग वर्ग। 'लोक-गीतो' मे रस की सस्थिति मिलती है, किन्तु न तो गीतो के निर्माण का यह आधार होता है, न इसके आधार पर गीतो का वर्गीकरण ही किया जा सकता है। यह तो गीतो के अध्ययन का ही तत्त्व है। अत इसे वर्गीकरण मे पृथक् स्थान नही दिया जाना चाहिए।

गीत के निर्माण तत्त्व

गीत के समस्त स्वरूप पर ध्यान देने से विदित होता है कि उसमे सबसे प्रमुख बात जो ध्यान आकर्षित करती है वह 'टेक' होती है। 'टेक' शास्त्रीय सगीत की शब्दावली मे 'स्थायी' कही जा सकती है। 'टेक' गीत के एक आवश्यक रूप-विस्तार के उपरान्त दुहरायी जाती है। वस्तुत एक गीत का मूल रूप-विधान उतना ही होता है जितना एक टेक से उसके दुहरावट के बीच मे प्रस्तुत होता है।

टेक के उपरान्त गीत का 'रूप-विस्तार' अथवा 'मूलरूप-विधान' प्रस्तुत होता है। 'मूलरूप-विधान' के अग ये माने जा सकते हैं—

१ रीढ—मूल रूप-विधान जिन शब्दाधारो पर टिकता है, वही गीत की रीढ होती है।

२ स्वर-सभरण—रीढ के ऊपर 'गीत' का मूल लय-रूप खडा करने के लिए जो स्वर-तत्त्व सयुक्त किया जाता है, वह 'स्वर सभरण है। यह स्वर सभरण ही 'गीत' को अपना निजी रूप प्रदान करता है।

३ स्वरालकरण—(अ) 'गीत' मे सामान्यत इतनी लोच होती है कि वह गायक के आवेग-आवेश को अपनी लय मे समाविष्ट कर सकता है। इसके लिए कई उपादानो से काम लिया जाता है, जिनमे से एक अत्यन्त सामान्य तत्त्व है जो स्वरालकरण कहलाता है। इस स्वरालकरण की कुछ-कुछ शास्त्रीय सगीत की 'तान और अलकार' से तुलना की जा सकती है। शास्त्रीय सगीत की 'तान' और 'अलकार' गायक के कौशल और उसकी कला-सम्पन्नता को प्रदर्शित करते हैं, वह उनसे एक विशिष्ट कला-सौन्दर्य पैदा करता है। इधर लोक-गीतो मे 'स्वरालकरण' एक शक्ति भरता है, और सामूहिक स्वरावेग का सहायक होता है। जैसे 'होली' के गीतो मे 'हो हो हो' का ध्वनि-विस्तार। इसी प्रकार 'अरे' 'ऐजीकोई' 'राजे' आदि शब्दाधारो से इसी स्वरालकरण को सिद्ध किया जाता है।

(आ) 'स्वरालकरण' के दो तत्त्व और होते हैं, जिन्हे विशिष्ट तत्त्व कहा जा सकता है। एक है 'आरोह'। भावावेग के साथ ही स्वरारोह होता है। इसी का प्रतिरूप 'अवरोह' होता है, जो लोक-गायन मे उतना

स्फुट नही होता। लोक-गीतो मे विशेष स्फुट होते हैं 'टूट' और 'दुहरावट'। स्वर को आवश्यक आरोह देकर छोड देने से 'टूट' होती है, और फिर उसे इसी 'आरोह' मे दुहरा दिया जाता है।

४ तोड—गीत का मूल रूप विधान अथवा रूप-विस्तार स्वर-सभरण और स्वरालकरण से युक्त होता हुआ जब पुन एक सामान्य आरम्भिक स्वाराधार अथवा 'लय' को प्राप्त करता है तो इस प्रयत्न को तोड कहा जा सकता है। 'तोड' पर पहुँचते ही फिर आरम्भिक लय आ जाती है, और 'टेक' को दुहराने का अवसर आ जाता है। तोड पर गीत का मूल रूप विस्तार समाप्त हो जाता है।

५ भरती—'टेक' और 'तोड' गीत के मूल-रूप विधान के आदि-अन्त होते हैं। इसमे स्वर-सभरण से गीत की मूललय-प्रकृति प्रकट होती है, और स्वरालकरण से उसमे अपेक्षित शक्ति और स्पन्दन आता है, सामूहिक आवेगाकुशलता को अभिव्यक्ति मिलती है, और समस्त वातावरण गीत के लय के स्वरभाव से आक्रान्त हो जाता है।

इसी के बीच मे कभी-कभी कुछ अन्य लयो, कुछ अन्य गतियो का प्रभावार्थ समावेश भी कर दिया जाता है। इसी को 'भरती' कहा जा सकता है।

६ मोड—'भरती' से ही प्राय घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होता है 'मोड'। एक लय विधान से दूसरे लय विधान मे सक्रमण 'मोड', कहा जाता है। 'भरती' के साथ तो मोड प्रस्तुत होता ही है, पर कभी-कभी यह मोड एक लय विधान की विविध सम्भावित 'पलट-लौटों' से सम्बन्धित होता है।

लोकगायक

१ लोक-साहित्य के सग्रहकर्ता को लोक-गीत से तो भेंट बाद को होती है, पहले तो लोकगायक से होती है। लोक-गीतो के लिए लोकगायक तो एक पुस्तक की भाँति है, पर पुस्तक से कही कठिन। पुस्तक को हम जब चाहें पढ सकते हैं, पर लोकगायक से लोक-गीत पाना बहुत कठिन कार्य है। पर गीत की दृष्टि से ही नही लोकवार्ता, नृविज्ञान और मानव-शास्त्र तथा समाज विज्ञान की दृष्टि से भी लोकगायक का अपना महत्त्व है।

२ यो तो लोक-गीतो के गायक कोई भी हो सकते हैं—किसी गाँव की बुढिया जिसने गाते-गाते अपने बाल सफेद किये हैं, और गाँव की लोकवार्ता को पचाये बैठी है, 'लोकगायक' की परिभाषा मे आ सकती है। ऐसी एक बुढिया माँ जिसे श्याम परमार ने 'माँजी' कहा है, स्त्रियो के लोक-गीतो को सुनाने और लिखवाने मे बहुत सहायक हो सकती है। ऐसी एक माँजी का चित्र श्याम परमार ने 'मालवी लोक-गीत'

मे दिया है।[1] 'ब्रज लोक-साहित्य के अध्ययन' के लिए एक वृद्धा माँ से ही वास्तविक महत्व के गीत प्राप्त हुए थे।

२ १ एक बुढिया माँजी न होकर स्त्रियो और बालाओ का टोल हो सकता है जो गा रहा हो, और गाकर आपको लुभा रहा हो। ऐसे टोल के गीत आप टेप रिकार्डर से ही भली प्रकार ले सकते है। आपकी गायिका कोई बालिका भी हो सकती है। यह बालिका आपको कही झूले पर झूलती मिल सकती है, या न्यौरते पर गौरें चढाती, या झाँझी खेलती।

२ २ आप अपने घर मे ही ऐसी गायिका पा सकते हैं जो चक्की चलाते समय गाती जाती है, जो विवाह आदि के अवसरो पर गाती है, और व्रत आदि के अन्य अनेको अवसरो पर ऐसे ही गाती है।

२ ३ आपको कही-कही ऐसी गायिकाएँ भी मिल सकती हैं जो घरो मे सस्कार आदि के अवसरो पर गाने का भी व्यवसाय करती है। जब किसी घर मे विवाहादि हो तो ऐसी स्त्रियो को बुला लिया जाता है।

३ आपको रास्ते चलते मौज मे गाने वाले व्यक्ति मिल जायँगे। साँडिनी (ऊँट) सवार के गीत प० रामनरेश त्रिपाठी जी ने ऊँट की पीठ पर यात्रा करते हुए सुने और लिखे थे।

३ १ ग्वाले, गडरिये जैसे लोग आपको गायें-बकरियाँ चराते समय मौज मे गाते मिलेंगे।

३ २ विवाहादि के अवसरो पर आपको कुम्हार-धोबी के घरो मे गायको की मण्डलियो की भीड मिलेगी।

---

[1] 'मालवी लोक-गीत' मे डा० श्याम परमार ने यह लिखा है—

माँजी की बगल मे पोटली और हाथ मे बडी-सी लकडी थी। चेहरे पर प्रकृति ने बुढापे के आगमन स्वरूप नक्काशी काढ दी थी। आँखें गोल और चमकीली थी। ऐसा मालूम हुआ मानो एक लम्बी यात्रा के अनुभव का रस उनमे भरा हो। भैरूगढी छीप का लुगडा और मगजीवाला एक मैला घाघरा माँजी ने पहन रखा था। वक्ष प्रदेश पर प्राचीन ढग की चोली थी, जो पीछे की ओर बँधी थी।

× × × ×

माँजी का यौवन तो उतर गया था, किन्तु उनके अन्तस मे गीतो के गाने वाली जो सुहागिन बैठी थी, वह ऐसे ही मौके पर तो खुलती है। माँजी के लटकते हुए चमडे पर मेरी निगाहो ने दूर अतीत की कोई सौन्दर्यमयी-आभा नृत्य करते हुए देखी।

गीत का बँधा हुआ समा देर तक कायम रहा। गीत की लम्बाई ने जी को पूरी तरह से भावो से भर दिया था।

बुढिया माँजी कह रही थी कि गाँव चलो बेटा, कितने ही गीत वहाँ सुनाऊँगी।

३ ३ होली आदि त्यौहार पर होली, धमार, रसिया के गायको को तलाश करने की आपको आवश्यकता नही होगी। वे जहाँ-तहाँ आपको स्वय ही गाते हुए मिल जायेंगे।

४ अनेको भीख माँगने वाले गा-गाकर भीख माँगते हैं, वे प्रतिदिन ही हमारी दृष्टि मे आया करते हैं।

४ १ ऐसे ही विविध देवी-देवताओ की मनौती की पूजाओ पर समय-समय पर आपको रात-रातभर 'जागन्नु' गाने वाले गायक मिल सकते है, साँप के लिए ढाँक रखी जाती है, उस अवसर पर भी आपको रातभर गाने वाले गायक मिलेंगे।

५ इस प्रकार जहाँ देखिए वही आपको गायक मिल सकते हैं। पर इसमे भी सन्देह नही कि इनमे से कितने ही लोक-गायक आज लुप्त होते जा रहे है।

५ १ इन गायको का कई दृष्टियो से बहुत महत्त्व रहा है। प्रधानत इन्हे लोक-मनोरजन के साधक माना जा सकता है। मनोरजन लोक-जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी है, इसमे सन्देह नही। पर ऊपर जो कुछ गायको का उल्लेख हमने किया है, इससे विदित होता है कि गायको का महत्त्व केवल लोक-मनोरजन प्रस्तुत करने की दृष्टि से ही नही है। लोक-मानस मे मनोरजन भी अनुष्ठान के रूप मे जीवन के लिए तात्विक आवश्यकता का उपादान बनकर विकसित हुआ है। अत लोकगायक अनुष्ठान के अग के रूप मे प्रतिष्ठित मिलता है। इस दृष्टि से इसका कार्य लोकचिकित्सा की भाँति का भी हो जाता है। अनेको गीतो को विशेष तान्त्रिक-जैसे विधानो के साथ गाया जाता है, और वे विविध व्याधियो को दूर करने मे उपयोगी माने जाते हैं। अनेको गीतो के गाने-सुनने का माहात्म्य माना गया है, उनके गायको का भी तदनुरूप सम्मान होता है। पर गायक ऐसे भी होते हैं जो अनेक ऐतिहासिक घटनाओ की रक्षा अपने गीत मे परम्परा स्थापित करके करते हैं, और अनेक वीरो के गीत समाज का मनोरजन ही नही करते उस वीर पुरुष की गाथा को भी जीवित रखते हैं। इन गीतो मे विविध धार्मिक सन्देश तथा जीवनादर्श रहते हैं। ये गायक इनके द्वारा सामाजिक शिक्षा के अभिप्राय को भी पूर्ण करते हैं।

६ लोक-गायको की उपयोगी सस्था आज महत्त्व खो रही है और अनेक लोक-गायक आज गायकी का पेशा छोडकर अन्य काम करने मे प्रवृत्त होते जा रहे हैं। अभी मथुरा मे लोकवार्ता-विज्ञान के विद्यार्थियो को अपने क्षेत्रीय अभ्यास मे घासीराम नामक भोपा मिला था, जिसने बताया कि अब उसने भोपागिरी छोड दी है, और अन्य काम करने लगा है।

६ १ फलत आवश्यक है कि लोकगायकों का पूर्ण विवरण एकत्रित किया जाय। यहाँ अब हम कुछ लोकगायकों पर ही विचार करेंगे।

६ २ ये लोकगायक प्रथमत दो वर्गों में बाँटे जा सकते हैं—
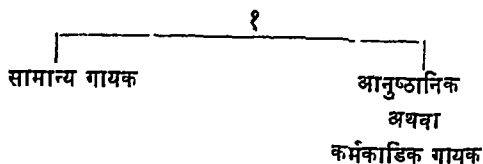
६ ३ सामान्य श्रेणी मे ऐसे गायक रखे जा सकते हैं जो गीतो को प्राय मनोरजनार्थ गाया करते हैं। ये भी कई प्रकार के होते है।
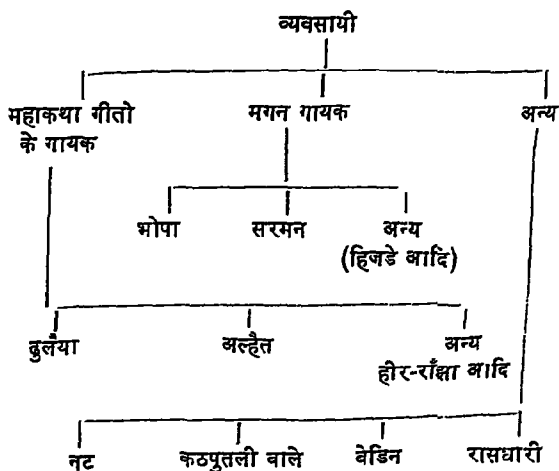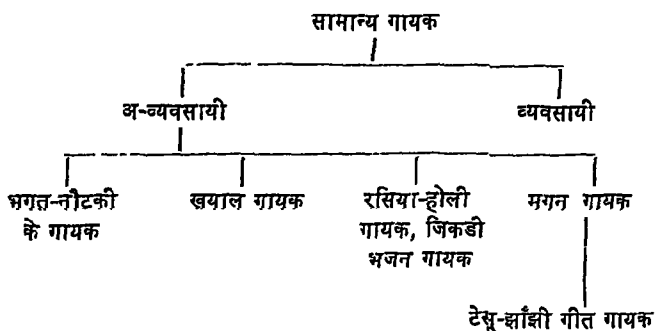
६ ३ आनुष्ठानिक तथा कर्मकाडिक गीतो के गायको मे भी अव्यवसायिक तथा व्यवसायिक गायक होते है।
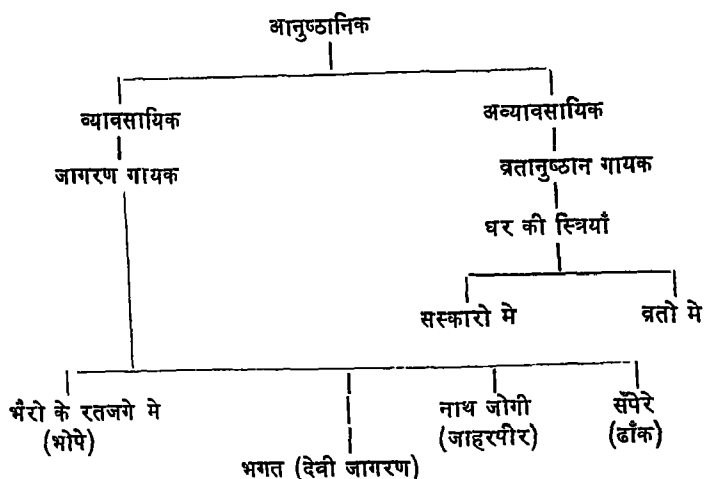
७ इन गायको को पुरुष वर्ग, स्त्री वर्ग, किंपुरुष तथा मिश्र वर्ग मे भी विभाजित कर सकते हैं। कुछ गीत केवल पुरुष वर्ग द्वारा गाये जाते हैं।

७२
स्त्री वर्ग
सामान्य के
अनुष्ठानो के
अव्यावसायिक
व्यावसायिक
सस्कारो के गीत
यात्रा, जागरण के गीत
सस्कारो मे (खेल के गीत)
मगन (झाँझी के गीत)
वेडिनें
सस्कारो मे (खेल के)
अनुष्ठानो के
अव्यावसायिक
व्यावसायिक
सस्कार के गीतो मे
जागरण मे
व्रतो मे
सस्कारो मे
देवी के जागरण मे
विवाह सस्कारो मे रतजगे के
७३
मिश्र
सामान्य
आनुष्ठानिक
अव्यवसायी
व्यवसायी
अव्यवसायी
व्यवसायी
रसिया, होली—
(इन मडलियो मे वेडिनें या वेश्याएँ भी सम्मिलित हो सकती हैं)
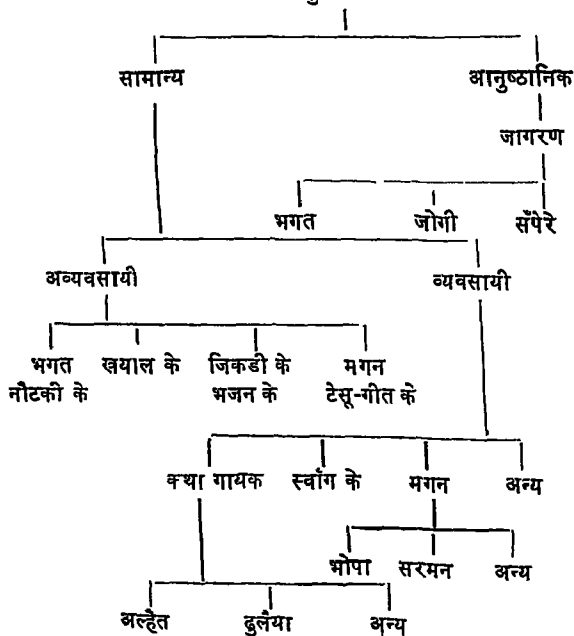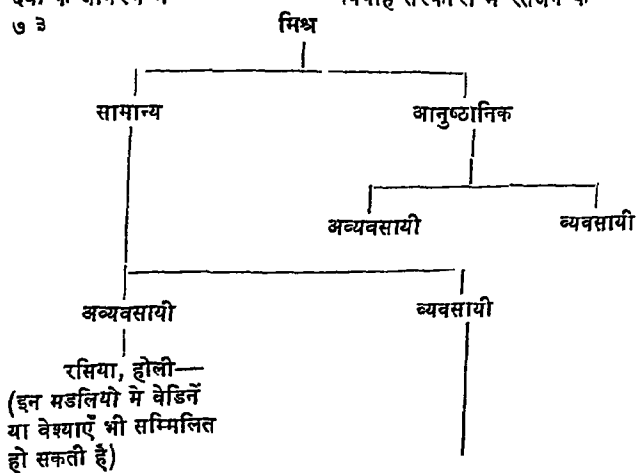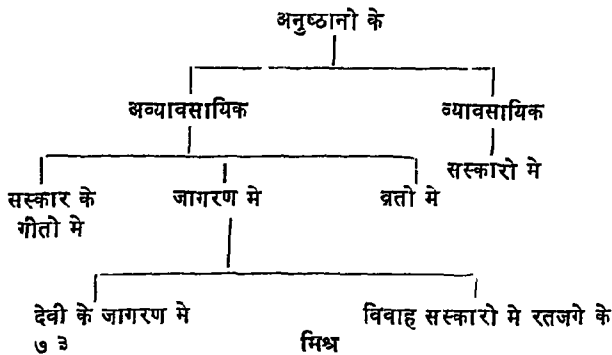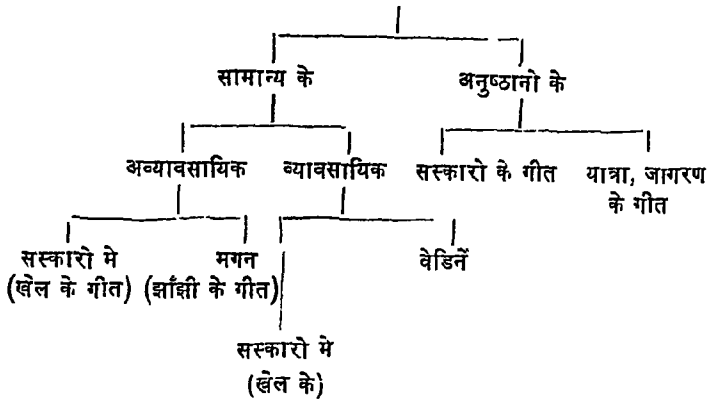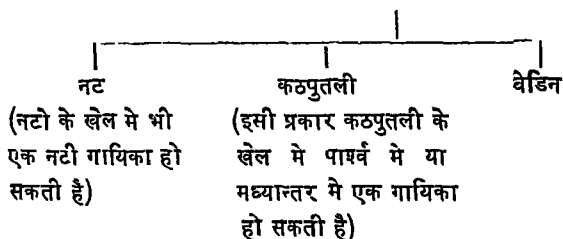
८ इन गायको को हम एक और दृष्टि से भी वर्गीकृत कर सकते हैं। इनमे कुछ गायक तो अकेले गाते है। सामान्य सहायता, जैसे स्वर-साधने मे, एक दो अन्य व्यक्तियो द्वारा मिल सकती है, ऐसा सुर-भरने वाला सहायक सुरैया कहलाता है। कुछ गायक समूह बाँधकर दलो मे बँटकर प्रतियोगिता के भाव से गाते है, कुछ गायक मडली बनाकर गाते हैं। इनमे केवल विश्राम और वैचित्र्य के लिए ही दो दल होते हैं—एक ही गीत की कुछ कडियाँ एक दल गाता है, उन्ही को दूसरा दल भी गाता है, इस प्रकार एक दूसरे को कण्ठ-विश्राम मिलता जाता है। कुछ गायक स्वय बाजे बजाकर गाते हैं, कुछ वादित्र सहायक बजाते हैं। कुछ गायको के मडल अभिनय और नाट्य भी सम्मिलित कर लेते हैं, कुछ के मडल मे नृत्य मात्र रहता है और नृत्य करने वाला पुरुष भी हो सकता है, स्त्री भी हो सकती है, इन सबको हम यो वर्गों मे विभाजित कर सकते हैं
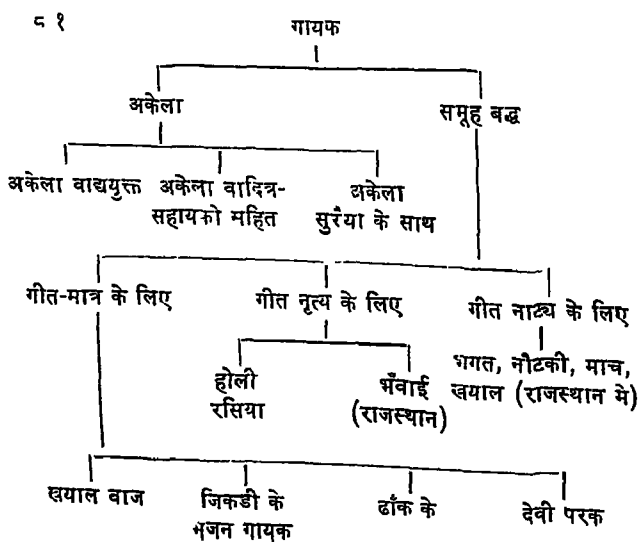
९. इनमे से कुछ गायको का सम्बन्ध साम्प्रदायिक मूल लिए भी होता है। 'भगत' नामक व्रज का लोक-नाट्य जिन अनुष्ठानो मे आरम्भ होता है, उसने उसका मूल देवी या शक्ति से विदित होता है। सम्भवत कभी शाक्तो ने ही इसे आरम्भ किया होगा। 'भगत' शब्द का आज लोक-व्यवहृत अर्थ भी इस लोक-नाट्य 'भगत' का सम्बन्ध देवी-पूजा से सिद्ध करता है। आज व्रज मे देवी की पूजा करने वाला ही 'भगत' कहलाता है। यह भगत वहुधा नीच जातियो मे से होता है। पर आज 'भगत' का कोई ऐसा अखाडा नही मिलता जिसमे नीच जाति के लोग हो। आज इसमे हिन्दू और मुसलमान, अछूतो को छोडकर, सभी जाति के लोग सम्मिलित होते हैं। 'भोपा' का सम्बन्ध 'भैरव' सम्प्रदाय से है। रासधारियो का सम्बन्ध कृष्ण-सम्प्रदाय से स्पष्ट है। 'जाहरपीर' का सम्प्रदाय आज भी चल रहा है और इसके गायक प्राय नाथ होते हैं। सँपेरो का सम्बन्ध भी नाथ-जोगियो से है।

९ १ राजस्थान मे भगत की भाँति के 'माच' होते है। इन्हे देवीलाल सामर ने 'तुर्रांकलगी' भी कहा है। सामर जी का कथन है कि—

"तुर्रांकलगी भी ख्यालो की एक विशिष्ट शैली है, जिसे माच का खेल भी कहते हैं। • • •• शिव के समर्थक तुर्रांवाले और शक्ति के समर्थक कलगी वाले।' • 'किन्तु बाद मे इन्ही लावणी के अखाडो ने माच का रूप ले लिया। • •"[१]

९ २ माच की जो विशेषताएँ सामर जी ने वतायी हैं, वे 'भगत' से विलकुल मिलती हैं—

१ रगमच जमीन से लगभग ५ फीट ऊँचा होता है। इन्हें रगीन कपडो से सुन्दर ढग से सजाया जाता है।

२ एक अलग छोटा मच वनाया जाता है, जिस पर साज वजाने वाले वैठते हैं।

३ यह खेल पेशेवर न होकर शौकिया है।

४ पात्र झरोखे से उतरकर रगमच पर आते हैं और एक-दूसरे से सम्वाद करते हुए नृत्य मुद्राओ मे अपनी जगह पलटते हैं।

५ सगीत के साज गानेवालो के साथ मे न वजकर गीत समाप्त होने के वाद वजते हैं।

६ ये माच के खयाल रात के ९ वजे से सुवह के ९ वजे तक होते हैं।

७ वाद्यो में शहनाई, सारगी और हारमोनियम वजता है।

८ कभी-कभी इनकी रिहर्सल मे ६-६ महीने तक लग जाते हैं।

९ खेल के खिलाडी प्रयत्न करके पहले से खर्चे का प्रवन्ध वस्ती से करवा लेते हैं।

---

१ क देखिए राजस्थानी लोक-नाट्य, प्रकाशक 'भारतीय लोककला मण्डल', उदयपुर, प्रथम सस्करण, पृष्ठ ३१-३४।

६ ३ व्रज क्षेत्र की भगतें 'शाक्त' क्षेत्र से सम्बन्धित प्रतीत होती हैं, हो सकता है यदि तुर्रा-कलगी से ही इनका विकास हुआ है तो ये 'कलगी' दल की हो ।[1]

६ ३ इस विवेचन से स्पष्ट है कि भगत या माच के गायक शौकिया होते हैं, इन भगतो का सम्बन्ध देवी-भक्ति से हो सकता है, पर आज आरम्भिक पूजन मे ही उसके कुछ चिह्न मिलते हैं। खेल मे जैन, मुसलमान, सभी हिन्दू सम्मिलित होते हैं। इन्हे बस एक अखाडे के गुरु और खलीफा का अनुयायी होना होता है।

१० भोपा का सम्बन्ध व्रज मे तो भैरव या भैरूँजी से ही रह गया है, पर राजस्थान के सम्बन्ध मे जो विवरण श्री देवीलाल सामर ने दिया है उससे भोपो के कितने ही प्रकार विदित होते हैं। सामरजी ने बताया है कि—

१० १ 'भोपो के कई भेद हैं। माताजी, गोगाजी, भैरूँजी, पाबूजी, देवजी, हडभूजी, डूंगरजी, झुंवारजी, बलजी-भूरजी आदि के भोपे अलग-अलग हैं। 'पाबूजी के भोपे' रावण-हत्थे पर पाबूजी की विरुदावली गाकर सुनाते हैं। इनका वाद्य बडा सुरीला बजता है। डूंगरजी-झुंवारजी एव बलजी भूरजी धाडियो की विरुदावली कुछ भोपे रावण-हत्थे पर गाकर सुनाते हैं। वह रावण-हत्था कुछ छोटा होता है और इतना सुरीला नहीं बजता। ये भोपे अपने-अपने इष्ट देवो के गीत गाकर सुनाते हैं। गोगाजी के भोपे साँप का जहर उतारते हैं, माताजी के भोपे दूल्हे का-सा वेश धारण किये रहते हैं। ये अपने पास त्रिशूल, डेरूँ और थाली रखते हैं। विशेषतया ये जीण माता (सीकर) और करणी माता (बीकानेर) के मेलो मे इकट्ठे होते हैं। रामदेवजी के भोपे (कामड) मारवाड की ओर हैं। ये तन्दूरा बजाते हैं। भैरूँजी के भोपे माथे मे सिन्दूर लगाते हैं, कपडो मे तेल डालते है। ये त्रिशूल धारण करते हैं। कमर मे बडे-बडे घुघरूँ बाँधे रहते हैं। ये मशक का बाजा बजाते हैं। अकेला ही गाता है, इसके कोई जजमान नही होता।[2]

१० २ सामर जी ने एक 'अडभोपा' अलग बताया है। 'सामुद्रिक शास्त्र' इनका व्यवसाय होता है। ज्योतिष शास्त्र से सम्बन्धित इनके गीत बहुत आकर्षक होते हैं।[3]

१० ३ व्रज मे हमे केवल भैरूँजी के ही भोपे मिले हैं और ये ही कभी-कभी सामुद्रिक शास्त्र मे भी व्यवसाय करते मिलते हैं। इतना तो सामरजी के विवरण

---

[1] मुझे 'भगत' की रूप-रेखा देखकर इस बात मे कुछ सन्देह लगता है कि ये तुर्राकलगी के ख्याल का ही विकास है। ये प्राचीन सगीत नाटको के अवशिष्ट अनुकरण प्रतीत होते हैं, जो अपनी सगीत-विधि अपने समय मे प्रचलित विधि से ग्रहण करते रहे हैं और इन्हे विविध सम्प्रदाय अपने अनुकूल भी ढालते रहे हैं।

[2] राजस्थान का लोक-सगीत—लेखक देवीलाल सामर, प्रकाशक—भारतीय लोक-कला मण्डल, उदयपुर, प्रथम सस्करण, १९५७ ई०, पृ० ७७-७८।

[3] वही, पृष्ठ ८०।

से भी स्पष्ट है कि प्रत्येक गायक भोपा किसी न किसी देवता के सम्प्रदाय से सम्वन्धित होता है, और उसी के गीत गाता है।

११ व्रज मे रासधारियो का सम्वन्ध राधा-कृष्ण के सम्प्रदायो से है। ये रासधारी 'रास' करते है। रास का सम्वन्ध भगवान कृष्ण के रास से है। व्रज के सभी रासो मे पहले तो कृष्ण-लीला ही दिखायी जाती है। इसका क्रम प्राय यह रहता है कि पहले कृष्ण-रास या नृत्य, बाद मे कोई कृष्ण-लीला, तदनतर कोई अन्य धार्मिक लीला दिखाते हैं। किन्तु कुछ रास मडलियाँ ऐसी भी हैं जो कृष्ण की लीलाएँ ही दिखाती हैं। कोई अन्य लीला या स्वाग वे नही दिखाती।

११ १ राजस्थान मे रासधारियो के सम्वन्ध मे श्री सामर जी ने बताया है कि—

१ रासधारी—नृत्य-नाट्य की विशेष शैली है। इसमे अधिकतर धार्मिक लोक-नायको या पौराणिक देवताओ का चित्रण होता है।

२ रासधारी मे बहुधा राम और कृष्ण के चरित्र अकित किये जाते हैं।

३ इस नाट्य के गीत लोक कवियो द्वारा सैकडो वर्ष पूर्व के रचे होते है जो परम्परा से मौखिक रूप मे चले आते हैं।[1]

४ मारवाडी शैली के रासधारियो मे मुख्य रूप से वैरागी साधु भाग लेते हैं। विषय धार्मिक ही रहते हैं। ये राम, कृष्ण, हरिश्चन्द्र, मोरध्वज आदि से सम्वन्धित रहते हैं। यह अधिकाश मे नृत्य और गायन प्रधान है। ख्यालो के मुकावले मे इसके नृत्य ज्यादा अच्छे होते हैं। इसके गीत मौखिक ही रहते हैं।[2]

५ यह राजस्थानी ख्याल का एक प्रकार है। इसमे बहुधा राम का सम्पूर्ण जीवन अकित किया जाता है।

६ पहले जो रास अथवा अभिनय को धारण करे वही रासधारी कहलाता था। धीरे-धीरे सारे नाट्य का नाम ही रासधारी हो गया।

७ इनके लिए मच आवश्यक नही।

८ रासधारियाँ कुछ विशिष्ट जातियो द्वारा एक व्यवसाय के रूप मे खेली जाती हैं। ये है भाट, मिरासी और ढोली। यह इनका पुश्तैनी पेशा है।[3]

९ इनके काम करने वाले अपनी कला मे बडे प्रवीण होते है।

१० इनकी मडलियाँ होती हैं और २०-२५ रुपये मे लगभग सारी रात अपना तमाशा दिखाती हैं।

११ इनके सिर पर साफानुमा जरीदार पगडियाँ और शरीर पर लम्बे घेरदार झग्गे होते हैं।[4]

---

१ राजस्थान के लोकानुरजन, पृष्ठ ३६।
२ वही, पृष्ठ २५।
३ 'राजस्थानी लोक-नाट्य' पुस्तक मे इन जातियो के साथ 'वारहठ' और है।
४ राजस्थान का लोक सगीत, पृष्ठ ३३।

१२ 'नाट्य' की कवित्व रचना भाट करते हैं, ढोली बहुधा सारगी शहनाई, नक्काडे, ढोल तथा झाझ बजाने का कार्य करते हैं, किन्तु आजकल हारमोनियम और ढोलक ने भी स्थान पा लिया है। मीरासी और बारहठ नृत्य गान का काम करते है।[1]

१२ १ राजस्थान के इन विवरणो से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये रासधारियाँ रासलीलाओ और रासमण्डलियो से भिन्न हैं। रास मण्डलियो का सम्वन्ध विशेषत व्रज से है। यह सामरजी के कथन से भी स्पष्ट हो जाता है।

"कृष्णलीला अथवा रासलीला का प्राधान्य मथुरा, वृन्दावन की ओर अधिक रहा है। पूर्वी राजस्थान, करौली, धौलपुर, भरतपुर आदि व्रजभाषी क्षेत्रो मे इनका प्रचलन अधिक दिखायी पडता है। रासलीलाओ मे व्रजलीला चन्द्रावली, माखन लीला, पनघट लीला, बल लीला आदि उपाख्यान प्रदर्शन किये जाते थे जयपुर प्रदेश के फुलैरा क्षेत्र मे भी रासलीला करने वाले मौजूद हैं किन्तु अव वहाँ उनका रूप विकृत हो गया है। अब ये कलाकार रासलीला शुरू करके थाली फिराते है और फिर नथाराम के ख्याल शुरू कर देते है।

रासलीला के प्रदर्शनो मे मर्यादा और बधन है। कृष्ण का मुकुट, स्वामी ब्राह्मण या कुम्भावत ही पहन सकता है—।

इनमें नगाडा, हारमोनियम, ढोलक का प्रयोग होता है—।[2]

११ ३ व्रज की रासमण्डलियो मे शास्त्रीय सगीत और शास्त्रीय नृत्य की प्रमुखता रहती है, यद्यपि वह नृत्य बहुत उच्चकोटि का नही होता। कृष्ण लीलाओ मे जो सवाद होते हैं उन्हे गद्य मे तो अभिनेता ही कहते हैं पर सगीत का अश रासमण्डलियो के सगीत-समाज द्वारा ही प्रस्तुत किया जाता है। तवला, ढोलक, हारमोनियम, सारगी ही प्रधान वाद्य होते हैं।

११ ४ यहाँ तक के समस्त विवेचन से स्पष्ट है कि व्रज के धार्मिक क्षेत्र मे जन्म लेकर रासलीलाओ की मण्डलियो का रूपान्तरण रासधारियो मे हो गया।

१२ 'जाहरपीर' का गीत गाने वाले व्रज मे नाथ-जोगी ही मिलते हैं। ये मुसलमान भी हो सकते हैं। 'जाहरपीर' के जागरण मे ही जाहरपीर का गीत गाया जाता है। व्रज मे जाहरपीर के जागरण के अवसर पर 'पट' लगाया जाता है। लोहे का कोडा भी रहता है, गायक पुश्तैनी ही होता है। कोई गायक डमरू या ड्यौरू बजाकर इस गीत को गाता है। कोई गायक सारगी बजाकर गाता है। जाहरपीर के ये गायक बहुधा जागरण मे ही गाते हैं। जागरण मे गाने वाले देवी के 'भगत' भी कुछ ऐसा ही साज रखते हैं। देवी की जात मे तवला और वेली का उपयोग विशेष होता है। रात्रि जागरण मे देवी के भगत भी पट लगाते हैं और कोडा रखते हैं। एक विशेष प्रकार की भारी पोशाक भी एक भगत पहनता है। इस पोशाक पहनने वाले पर ही देवी की लहर आती है। जिन गायको को जागरण करना होता है उनके

[1] राजस्थानी लोक-नाट्य, पृष्ठ २५-२८।
[2] वही, पृष्ठ ३८।

देवता सिर आते है, और उनके पास लोहे का कोडा अवश्य रहता है। जाहरपीर के नाथ जोगी वहुधा व्यवसाय और जाति से पटवा होते हैं। देवी के भगत चमार, कोली, या कुम्हार होते हैं।

१२ १ राजस्थान मे जाहरपीर या गोगाजी के गायक भी भोपे होते हैं, उन्हें नाथ नही वताया गया।[1] देवी की भाँति ही जाहरपीर की मान्यता है, अत जाहर-पीर के गीतो और गायको का रूप साप्रदायिक ही माना जायेगा।

नृत्य और नाट्य तथा

१३ इन लोक-गायको मे हमे कुछ गायक तो ऐसे मिलते हैं जिनके गायन का नृत्य से सम्बन्ध नही विदित होता, कुछ ऐसे हैं जिनका नृत्य-नाट्य से सम्बन्ध हो सकता है।
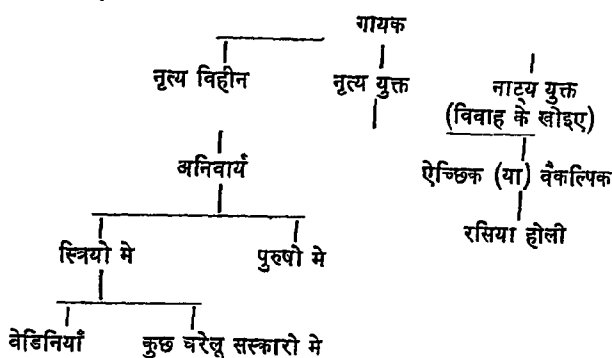
१३ १ केवल नृत्य से युक्त गीतो की गायक व्रज मे सभवत वेडिनियाँ ही है। वेडिनियो की एक जाति ही होती है। गाना नाचना इनका व्यवसाय है।

कुछ सस्कारो मे गीतो के साथ घरो की स्त्रियो को भी नाचना पडता है।

सगीत नाट्य अथवा ऐसे गीत जिनमे नाट्य रहता है विवाह के अवसर पर खोइयो मे विशेषत होते हैं।

२४ ऊपर लोक गायको का जो उल्लेख किया गया है उससे स्पष्ट विदित होता है कि लोक गायको के कितने ही वर्ग, क्षेत्र तथा जातियाँ हैं किन्तु साथ ही यह भी विदित होता है कि लोकगायको का ह्रास होता जा रहा है।

१५ लोकगायको के अपने-अपने वग के विशेप गीतो के लिए जहाँ विशेप तर्जे होती है, वही विशेप वाद्य भी होते हैं, ऊपर के विवेचन से स्पष्ट होता है कि इन गायको के साथ वाद्यो का उपयोग कुछ इस प्रकार है—

[+ यह चिह्न नियमित उपयोग का द्योतक है। × यह चिह्न यह वताता है कि यह कभी-कभी तथा कहीं-कही प्रयोग मे आता है। — यह चिह्न यह वताता है कि यह प्रयोग मे नही आता।]

[1] राजस्थान का लोक-सगीत।

वाद्य

गायक	१ नँगाड़ा	२ ढोलक	३ तबला	४ मजीरे	५ सारंगी	६ डमरू	७ झाझ	८ घट थाली	९ ढप	१० चिकाडा
१ भगत के गायक	+	+	+	+	+	−	−	−	−	−
२ ख्याल	−	−	−	−	−	−	−	−	+	−
३ रसिया-होली गायक	×	+	×	+	×	−	−	−	−	−
४ जिकडी भजन के गायक	+	+	−	+	−	−	−	−	−	−
५ दुलैया	−	+	−	×	−	−	−	−	−	+
६ अल्हैत	−	+	−	−	−	−	−	−	−	−
७ भोपा	−	−	−	−	−	−	−	−	−	−
८ सरमन	−	−	−	+	−	+	−	−	−	−
९ हिजडे	−	+	−	+	−	−	−	−	−	−
१० नट, कठपुतली	−	+	−	−	−	−	−	−	−	−
११ वेडिन	−	+	−	+	−	−	−	−	−	−
१२ रासधारी	×	+	+	+	+	−	−	−	−	−
१३ नाथ जोगी	−	−	−	−	×	+	−	−	−	−
१४ भगत देवी	−	−	−	−	+	+	−	−	−	−
१५ सँपेरा	−	−	−	−	−	+	−	−	−	−
१६ -घर मे (स्त्रियो के)	−	+	−	+	−	−	−	−	−	−

	११ मशकबीन	१२ इकतारा	१३ बेला या बेली	१४ तूंबी बीन	१५ शहनाई	१६ हारमोनियम	१७ रावण हत्था	१८ तंदूरा या तंदूरा	१९ खड़ताल	२० खंजरी
१	—	—	+	—	—	+	—	—	—	—
२	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—
३	—	—	×	—	—	×	—	—	—	—
४	—	—	×	—	—	+	—	—	+	—
५	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—
६	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—
७	+	—	—	—	—	—	×	×	—	—
८	—	—	+	—	—	—	—	—	—	—
९	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—
१०	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—
११	—	—	—	—	—	+	—	—	—	—
१२	—	—	+	—	—	+	—	—	—	—
१३	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—
१४	—	—	+	—	—	—	—	—	—	—
१५	—	—	—	+	—	—	—	—	—	—
१६	—	—	—	—	—	×	—	—	—	—
१७	—	+	—	—	—	—	—	—	—	—

१६ इन वाद्यो मे से तार के वाद्य पाणिनी के समय मे मिलते हैं। ये 'वीणा' कहे जाते थे। प्रतीत होता है कि ये समस्त तार-वाद्य इसी वीणा के पुत्र-पौत्र हैं। झाँझ पाणिनी के समय मे 'झर्झर' कहलाता था। घटथाली या ढाँक भी पाणिनी के समय के 'दार्दुरी' से निकली होगी। पाणिनी मे 'दार्दुरिक' शब्द मिट्टी के घडे के बाजे बजानेवाले के लिए आया है। जातक मे भी 'कुम्भ थूनिक' नाम के वाजे बजाने वाले का उल्लेख है, इसे टीकाकारो ने 'घटदद्दर-वादक' बताया है।

आधुनिक वाद्यो के मूल

१६ १ पाणिनी के उल्लेखो मे इन्ही वाद्यो का वर्णन हमे मिलता है। पट का उपयोग कर उसे दिखा और उसके विवरण बताकर (या गाकर) भिक्षा माँगने वाले जोगी का तथा सँपेरे का उल्लेख मुद्राराक्षस मे भी हुआ है। सँपेरे या कालवेलिया उस समय कुछ गाते भी थे ऐसा कुछ सकेत मिलता है। पर इस नाटक मे इनके गायक होने का स्पष्ट उल्लेख नही। आज के सँपेरे जो साँप दिखाते फिरते हैं केवल तुबी बीन बजाते हैं, गाते नही।[1]

१६ २ जायसी की पद्मावत मे कितने ही वाद्य यन्त्रो का उल्लेख तो है, उनसे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उनके बजाने वाले विशेषज्ञ भी होगे और वे उन बीनो के साथ गाते भी होगे क्योकि आईन-ए-अकबरी मे जिन गायको का नाम मिलता है उनके उस नाम रूप का आधार वाद्य ही है। नीचे आईने-अकबरी के उन गायको के नाम दिये जाते हैं जिनके वाद्ययत्रो का उल्लेख पद्मावती मे है—

---

[1] राजस्थान मे प्रचलित वाद्यो का एक वर्णन 'परम्परा' मे भी मिलता है। 'लोक-गीत और साज' मे श्री कोमल कोठारी जी ने वाद्य बताये है। तारवाद्य—सारगी, कामायची, जतर, रवाव, रावण-हत्था, इकतारा, तबूरो (वीणो, चौतारो या निशान)। फूँक वाद्य—बसूरी (बशी), अलगोजा, शहनाई, टोटो, पूँगी, नड, बरगू और वाकिया, शख, सीगी। तालवाद्य—ढोलक (धोलक), मादल, मृदग, ढोल (एहडा का ढोल, सेर का ढोल, जोरी का ढोल, मटकी का ढोल, ढमका रो ढोल), नगाडा, नौवत, धूँसो, चग, दफडा, डफ, चगडी, खजरी, ढीबको, अपग, मटकी, डमरू। मशक को उन्होने नया बाजा बताया है। इनके बजाने वाले ये हैं—लगे, शेख (माँगणियार) वगडावतो की कथा के गायक, रावभाट, भील और भोपे, गोसाई, नाथपथी-स्वामी-कालवेलिये, बलाई-दसनामी-वीसनामी, रामदेवा, फकीर-साई, हीजडे, मदारी।

देखिए—परम्परा, चैत्र, सवत् २०१३, पृष्ठ १४६-१५६।

आईने अकबरी		पद्मावत का वाद्य	आईने अकबरी	तद्विषयक पद्मावत के वाद्य
गायक	वाद्य		वे वाद्य जिनका स्वतन्त्र उल्लेख है वादक के साथ नही	(पद्मावत-५२७ छद पृ० ५६२)
			तत	
१ वैकार			१ यन्त्र	जत्र
२ सहकार			२ वीणा	वीन
३ कलावत			३ किन्नर	
४ ढाढी (पजाबी	१ ढड्ढ		४ सर-वीणा	
गायक)	२ किंगर		५ अमृती	अँविरती
५ कव्वाल			६ रबाब	रबाब
६ हुडकिया	१ हुडक	हुरुक	७ सरमण्डल	सुरमण्डल
	(पुरुषो द्वारा)		८ सारगी	
	२ ताल		९ पिनाक या	पिनाक
	(स्त्रियो द्वारा)		सुरवितान	
७ ढफजन	१ डफ	डफ	१० आधौती	
	२ डुहुल		११ किंगर	
८ सैंजद ताली	१ वडे ढोल		वितत	
	(पुरुष)		१२ पखावज	पखाउझ
	२ तेरह ताली		१३ आवज	आउझ
	(स्त्रियाँ)		१४ डुहुल	
९ नटवा	१ पखावज	पखाउज	१५ ढड्डु	
	२ रवाव		१६ अर्द्धावज	
	३ ताल		१७ डफ	डफ
१० कीर्तनिया	प्राचीन वाद्य		१८ खजरी	
११ भगतिया	—		घन	
१२ भँवय्या	१ डुहुल		१९ ताल	झाझ
१३ भाँड	२ ताल		२० कठ-ताल	घनतारा
	१ पखावज		सुषिर	
१४ कजरी	२ रवाव	रवाव	२१ शहनाई	
	३ ताल		२२ मश्क	
१५ नट	१ ताल		२३ मुरली	बसि
	२ डुहुल		२४ उपग	उपग

१६३ आज के गायक जिन वाद्यो का उपयोग करते हैं उनमे से किनका नाम हमे अकबर के समय मे मिलता है वह नीचे की तालिका से प्रकट होगा

आधुनिक वाद्य	१	२	३	४	५	६	७	⊙ ८	९	* १०	+ ११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९
जायसी मे	×	×	×	×	×	+	अ +	×	आ +	×	×	×	×	इ |		×	×		×
अकबर के समय के	×	×	×	×	+	×	×	×	+	×	+ *h*	×	×	×	+	×	×		×
अष्ट-छाप	*a* ×	*b* पटह	×	*c* +	*d* +	*e* +	*f* +	×	*g* +	×	×	×	×	*h* +	+	×	×		×

(*a*) तहाँ घुरें निसान नगारे की ध्वनि रह्यौ घोष सब्र गाज (कृष्णदास) अ० वाद्य० पृ० ३९।

(*b*) बाजत पटह निसान अहो होरी होरी है। (सूरदास) (वही पृ० ३९)। सगीत पारिजात मे उल्लेख है कि 'पटह (ढोलक) इति भाषाया।'

(*c*) बाजत बीना मृदग बाँसुरी उपग चग मदन भेरि ढफ झाँझ झालरी मजीर। (कृष्णदास) वही पृ० ४८।

(*d*) इतहू बाजे बाजन लागे दुन्दुभी धौसा गाजे। रूँज मुरज आवज सारगी यन्त्र किन्नरी बाजे। (परमानन्ददास) वही, पृ० १६।

(*e*) खुनखुना कर हँसत मोहनं नाचत डोरूँ बजाय (सूरदास) वही, पृ० ४०।

(अ) औ तेहि गोहन झाँझ मजीरा। (पद्मावत) ५२७।६।

(*f*) झाँझ झनक खजीर बजै भई झालर की झनकारें (कृष्णदास) (अ० वाद्य, पृ० ४८।)

⊙ पाणिनी काल मे इसका उल्लेख मिलता है। ऐतरेय ब्राह्मण तथा साख्यापन आरण्यक मे भूमि दुन्दुभि का वर्णन आता है। यह एक गढा खोदकर तथा उसके चमडे से ढककर बनायी जाती थी और महाव्रत के समय बजायी जाती थी। (अ० वाद्य०) सम्भव है कि इसी से दुन्दुभी और घट वाद्य का जन्म हुआ हो।

(आ) हुरुक बाज डफ बाज गँभीरा (जायसी—५२७)।

(*g*) डफ बाँसुरी सुहावनी, रग भीजी ग्वालिनि। (सूर) (अ० वाद्य० पृ० ४२)।

* सभवत रावणहत्था ही 'चिकाडा' है।

+ 'पोपले' ने 'श्रुति उपग' नामक एक वाद्य का उल्लेख किया है, उसके लक्षण 'मसक वाद्य' से मिलते हैं।

(h) इसे आइने-अकबरी में केवल मसक लिखा गया है।
(इ) महुवरि बाज बसि भल पूरा (जायसी ५२७)।
(l) महुवरि, बाँसुरी, चग लाल रँग भीजी ग्वालिनि (सूरदास) (अ० वाद्य०, पृ० २२)।

इस वर्णन से हमारा अभिप्राय वाद्यो का परिचय पाना नही, वरन् यह बताना है कि इतने वाद्य हैं तो इनके साथ कुछ विशिष्ट गायक भी होंगे ही। जैसे, 'मशक' वाद्य किसी वादित्र-समूह मे सम्मिलित नही दिखायी पडता। स्पष्ट है कि वह किसी न किसी गाने वाले से सम्बन्धित होगा। मशक वाद्य का जन्म कब और कैसे हुआ, यह विदित नही, पर यह सिवाय भैरो जी के भोपे के और किसी के द्वारा उपयोग मे आज नही आता। लगता यह है कि पहले भी यह शायद ही किसी दूसरे के उपयोग मे आता होगा। अत भैरो जी के गायक भोपे को अकबर के समय तक तो माना ही जा सकता है।

कुछ गीतों पर विचार—

'ब्रज का गीत मोरा'

● ● "ब्रज के गीतो मे सावन के गीत बहुत लोकप्रिय है, और सावन के गीतो मे 'मोरा' गीत की स्वरलहरी हमारा मन मोह लेती है

भर भादो की मोरा रैन अँधेर राजा की रानी पानी नीकरी जी
काहे की गगरी रे मोरा काहे की लेज, काहे जडाऊ धन इँडुरी जी
सोने की गगरी रे मोरा रेसम लेज, रतन जडाऊ धन की इँडुरी जी
आगें आगें मोरा चाले पनिहारि जी, पीछे राजा जी के पहरुआ जी
एक वन नाँघौ, दूज वनौ नाँघि, तीजे वन पहुँची है जाइकें जी
जोई भरै मोरा देह लुढकाइ, पख पसारि मोरा जल पीवै जी
परें रे सरकि जा मोरा भरन दै नीर, मो घर सास रिसाइगी जी
त्यारी तो सासुल धनियाँ हमरी है माय, आज वसेरौ हरिअल वाग मे जी
परें रे सरक जा मोरा भरन दै नीर, मो घर ननद रिसाइगी जी
त्यारी तो ननदुल धनियाँ हमरी है भैन, आज वसेरो हरिअल वाग मे जी
उठि उठि सासुल मेरी गगरी उतारि, ना तो फोडूँ चौरे चौक मे जी
किन तौ ए वहुअल वोले हैं वोल, कौनें दीने तोंड़ ताँइने जी
ना काऊ सासुल मो से वोलें है वोल, ना काऊ दीने हैं ताँइने जी
वनकौ मोरा सासुल वनही मैं रहत है, वाकी वौहौक मेरे मन वसी जी
उठि उठि वेटा मेरे मोर पछार, तेरी धन रीझी वन के मोरला जी
मोइ देउ अम्मा मेरी पाँचो हथियार, मोई देउ पाँचौं कापडे जी
एक वन नाँघौ राजा दूजो वन नाँघि, तीजे वन मोरा पछारिए जी
मारि-मूरि राजा लाए लटकाइ, लाइ धरौ है धन की देहरी जी

उठि उठि धनियाँ मेरी हरदी जौ पीस, मोरा छोकि वनाइए जी
हरदी के पीसे राजा जलदी न होइ, मोरा के छोकै मेरौ जी जरै जी
वन कौ तौ मोरा राजा वन ही मे रहत है, वाकी कौहौक मेरे मन वसी जी
जो तुम्हे धनियाँ मेरी मोरा की साध, सौने कौ मोर गढाइए जी
सौने कौ मोरा राजा चोरी मे जाइ, बाकी कौहौक, मेरे मन बसी जी
जो तुम्हें धनियाँ मेरी मोरा की साध, काठ को मोरा वनाइए जी,
काठ कौ मोरा रे राजा जरि-वरि जाइ, वाकी कौहौक मेरे मन बसी जी,
जो तुम्हे धनियाँ मेरी मोरा की साध, छाती पै मोर गुदाइए जी,
छाती कौ मोरा रे राजा बोलै न वोल, वाकी कौहौक मेरे मन बसी जी ।

ठीक यही प्रसग एक गुजराती लोक-गीत मे भी प्रस्तुत किया गया है जो श्री झबेरचन्द मेघानी के गीत-सग्रह 'रढियाली रात' मे मौजूद है । एक-दो राजस्थानी और पजाबी गीतो मे भी इस प्रसग की प्रतिध्वनि सुनायी देती है । यहाँ मयूर उसी प्रकार एक आदर्श-प्रेमी का प्रतीक है जैसी यूनानी लोकवार्ता मे हस को उपस्थित किया गया है । साधारण गृहस्थी मे राजा और रानी की कल्पना इस बात की दलील है कि ब्रज का यह गीत मध्यकालीन रचना है जबकि राजा-रानी साधारण जनता की आन्तरिक आकाक्षा से क्षितिज पर सदैव उभरते चले जाते थे ।

ब्रज के जन-मानस तथा 'मोरा' जैसे उच्चकोटि के गीत के सम्बन्ध मे श्री सत्येन्द्र लिखते हैं

जन-मानस और मुनि-मानस का सघर्ष आज का नही है । मुनि ने सदा यह दावा किया है कि उनकी रचना मे शाश्वत प्रकट होता है, और उसने जहाँ तक हो सका है जन और उसकी कृति की अवहेलना की है, उसे हेय बताया है । उसने अपनी सृष्टि मे ब्रह्मा की सृष्टि से भी विशेषताएँ पायी और दिखायी । उसे अपनी रचना मे जीवन-सन्देश मिला, श्रेय और प्रेय, सत्य, शिव और सुन्दर, दिव्य अनुभूति, अलौकिक अभिव्यजना मिली है । इस वर्ग के गर्व ने विश्व की जितनी क्षति की है, क्या इस पर कभी विचार किया गया है । निश्चय ही इसने शास्त्रो के सूक्ष्म विधान कर अपनी प्रशसा अपने आप करने का कुशल ढग स्थापित किया, किन्तु यह सदा परास्त होता रहा है । जन-मानस ने कभी कोई दावा नहीं किया । उनकी सुश्री ही ऐसी अभिनव रही है कि मुनि के कला-कौशल का गर्व स्वत चूर्ण हो गया है ।

शताब्दियो पूर्व वेदो की रचना हुई । उन्हें जिस वर्ग ने निर्माण किया, उसी वर्ग के अन्य व्यक्तियो ने उसे अलौकिक और अपौरुषेय वताया । ऐसा उनका अपना आतङ्क और प्रभाव जमाने के लिए किया जाता रहा । यह अधिक काल तक न रह सका । लौकिक काव्य की भी उद्‌भावना हुई और आदि-कवि वाल्मीकि ने रामायण रच डाली, वह उनकी रचना मुनि-मानस का प्रतिफलन न था, नही तो उसे लौकिक न कहा जाता । किन्तु मुनि-मानस एक और धाँधली करता रहा है । जन-मानस की सृष्टियो को वह अपनी वनाता रहा है । वाल्मीकि और उनके वर्ग की रचनाएँ फिर

मुनि-मानस की वस्तुएँ हो गयी। जन का जो सुन्दर था उसे अपना लिया गया। वह परिमार्जन और सस्कार करना जानता है। लोक-मानस मे सामग्री लेकर उन पर केवल कलई मुनि-मानस कर देता है। मुनि को विद्वान कहा जा सकता है, तत्त्वदर्शी कहा जा सकता है, किन्तु उसके पास जो कला है वह अपनी नही। कला के लिए उर्वर भूमि की आवश्यकता है। स्वतन्त्रता और उन्मुक्ति ही उर्वरता है •

"जन-मानस निर्विकार होता है। उसके पास न कोई आदर्श है, न शास्त्र और नियम, उसकी स्फूर्ति मे व्यक्ति और व्यक्तित्व का कोई अर्थ नही। वह भी विचार करता है। उसकी धृति ज्ञान और विज्ञान की धृति नही। शुद्ध प्रकृति की धृति है

• •• • 'ब्रज क्षेत्र मे श्रावण मे जो गीत गाये जाते है उनमे पनिहारिन, नटवा, चन्दना, विजैरानी, मोरा सभी प्रबन्ध गीत हैं, और उन सब मे ऐसे भावुक वर्णन हैं कि प्रशसा करनी पडती है। इन गीतो को अश्लील समझा जाता है और एक-मात्र स्त्रियो में इनका प्रचार रहा है, मोरा नाम के गीत को देखिए' • ••

इस सीधी-सी गीत-कहानी मे जन-मानस ने जो जीवन की अन्तर्व्यापिनी प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति की है, वह कितनी अनुपम है, कितनी सहज और कामोद्दीप्ति मे शून्य, एक सहज सवेदना के फल सी और क्या इसमे सूक्ष्म मनोविश्लेषण नही मिलता। रानी के हृदय मे मोर की कुहुक का बस जाना, और उसकी प्रतिस्पर्द्धा का परिमार्जन मोर को मारकर किया जाना, और फिर भी अमिट कुहुक का ज्यो का त्यो बने रहना जैसे कोई दार्शनिक सूत्र हो, जिसकी व्याख्या मे नश्वर यह काया या उसकी अमर अभिव्यक्ति का चिरन्तन सत्य उपस्थित किया जा रहा हो-- और मोरा ने मोर के रूप मे ही रहकर तो इस कहानी को, रूपक की भाँति अनेक अर्थों से पूर्ण कर दिया है। शब्द-सौष्ठव इस गीत मे नही, पर आकर्षण कितना अधिक है, और विचारशील विवेचक के मस्तिष्क के लिए तो इसमे कितनी सामग्री है "[१]

'मोरा' मे प्रियतम के प्रतीक की कल्पना का सूत्र उस युग का स्मरण कराता है जब मानव की दृष्टि मे प्रकृति की विशाल और स्निग्ध गोद का स्पर्श सबसे अधिक महत्त्व रखता था। अनगिनत शताब्दियो को लाँघता हुआ मानव मशीनी युग की दहलीज पर खडा नजर आता है। मशीनी युग की मशीनी सस्कृति मे उलझी हुई मानव चेतना छटपटाती है, और अपने अतीत का ध्यान करते हुए मानव की आँखो मे अनेक परिवर्तन फिर जाते है जिनके साथ उसके इतिहास की कडियाँ जुडी हुई हैं। ईर्षा ज्यो की त्यो कायम है आज भी नारी को किसी मानव 'मयूर' की ओर आकर्षित देखकर पुरुष के हृदय मे ईर्षा और प्रतिस्पर्द्धा की ज्वाला भडक उठती है।[२] ● ●

---

१ श्री सत्येन्द्र, एम० ए०, 'लोक-मानस के कमल' जयाजी प्रताप, ३ फरवरी, १९३८।

२ 'ब्रज की लोक सस्कृति' नामक पुस्तक मे श्री देवेन्द्र सत्यार्थीजी के लेख से उद्धृत।

मोरा और मोरा की कुहक

सम्भवत मोरा की कुहक कोकिल की कूक से भी अधिक मर्मवेधी है ।

मोर या मयूर का वर्णन साहित्य मे मिलता ही है । पौराणिक गाथाओ मे मयूर सरस्वती का भी वाहन माना गया है । यद्यपि अधिकाश हस ही उनका वाहन है । पर मयूर कुमार या षणानन का वाहन तो है ही । इसमे कोई सन्देह नही । देवताओ के सेनापति और भगवान शिव के पुत्र का वाहन होना मयूर के लिए कम गौरव की बात नही ।

पौराणिक गाथा मे मयूर-पख ने मयूर से भी अधिक गौरव प्राप्त किया, मयूर पख भगवान कृष्ण के सिर का मुकट बन गया । मोर पखा अथवा मयूर पुच्छ की चन्द्रिकाओ को लेकर न जाने कितने कवियो ने अनोखी कल्पनाएँ अपनी कविताओ मे उतारी हैं ।

मयूर का महत्त्व कला मे भी कम नही । सिंधुघाटी सभ्यता के युग मे मयूर का अभिप्राय कम नही प्रयुक्त हुआ ।

साँची मे प्रथम शताब्दी ई० मे पूर्वी द्वार के अलकरण मे मयूर युग्म अकित हैं । जिनके मुख एक-दूसरे की ओर हैं ।

११० ई० पू० साँची के स्तूप २ मे एक पूर्ण मयूर अकित है ।

यूनान की देवी हेरा का प्रियपक्षी भी मयूर ही है । हेरा को ओक नाम के पेड के पास दिखाया गया है, और उसके ऊपर उसका प्रिय पक्षी मयूर भी अकित है ।

एक पहाडी इलाके मे पृथ्वीमाता को मयूर के रूप मे माना जाता है और धरती माता के बलि देने के यूप का आकार भी मयूर के जैसा बनाया जाता है ।

मध्यभारत मे भीलो की मोरी नामक खाप मोर का अपना टोटेम या मूमल जनक मानते हैं और उसे दाना डाला करते हैं ये लोग मोर के पैरो के चिह्नो पर पैर रखना अशुभ मानते हैं, उन्हे भय रहता है कि इस प्रकार पैर रखने से उन्हे कोई न कोई रोग हो जायगा । इनकी किसी स्त्री के सामने यदि मोर पड जायगा तो वह घूँघट से मुँह ढक लेगी और दूसरी ओर देखने लगेगी ।

कही-कहीं मोर के पख को बालको को सुँघाना शुभ माना जाता है । जिस बालक को सुँघाया जाता है वह भयानक से भयानक आवाजो से भी भयभीत नही होता है ।

मनु के अनुसार शाक चुराने वाले को मोर का जन्म लेना पडता है ।

लोक-कथा और लोक-गाथाओ मे मोर या मयूर अपना एक अद्भुत स्थान रखता है । उत्तर-केन्द्रीय बल्गेरिया मे जैमईत तथा मोर नामक गीत गाया जाता है । इस गीत मे नागासुर तथा मोर मे एक डोना नाम की सुन्दरी के लिए झगडे का वर्णन हुआ है । नाग भी डोना से प्रेम करता है और मोर भी । उसके लिए दोनो मे युद्ध होता है एक कुएँ के निकट । अन्त मे नाग यह सुझाव रखता है कि वे युद्ध न करें वरन् वे दोनो प्रात गाँव मे आयें । मोर तो कुएँ मे स्वर्ण के सिक्के और नाग उसमे

सुन्दर पख डाले। डोना जिससे विवाह करना चाहेगी उसकी डाली हुई वस्तु ही वह लेगी। मोर से विवाह करना चाहेगी तो सिक्को को लायेगी। नाग से चाहेगी तो पखो को उठा लेगी।

यहाँ हमे मोर एक प्रेमिक के रूप मे मिलता है। पर वल्गेरिया की इस कहानी से भी अद्भुत है जातक की कहानी 'सुवर्ण प्रभासो'—मयूरो के राजा की कहानी।

काशी के राजा ब्रह्मदत्त की सुन्दरी पत्नी को एक बार एक मोर की कुहुक-कुहुक सुनायी पडी। इस कुहुक ने उसे वशीभूत कर लिया। उसने उसी मोर को पाने का आग्रह किया। पता चला कि वह कुहुक कैलास के 'सुवर्ण प्रेम' नाम के मोर की थी। उस मोर को मँगाया गया। रानी उसे खूब खिलाती पिलाती थी। पर रानी अपने चरित्र के दोप से गर्भवती हो गयी। इस भेद को मोरा ही जानता था। भय से रानी ने उस मोर को विप दिया। उस विप से वह मोर और अधिक सुन्दर और स्वस्थ हो गया। तव मोर ने उस रानी की चरित्रहीनता वताते हुए उससे कहा कि वह योग्य स्त्री नही है। इस चोट से रानी ने स्वय प्राण त्याग दिये।

स्पष्ट है कि मोर और मोर की कुहुक दोनो ही लोक-मानस मे युग-युग से चले आये हैं।

ब्रज के जन्म और विवाह के गीतों पर टिप्पणी

इन पर दृष्टि डालने से एक वात तो यह स्पष्ट होती है कि ब्रज मे विशेप महत्त्व जन्म और विवाह के सस्कारो का ही है। अन्य सस्कारो की ओर उतना ध्यान नही। अन्य सस्कारो की रूपरेखा उक्त दो-प्रधान सस्कारो की सामग्री से ही हो जाती है।

इस समस्त लोकवार्ता मे चार स्तर मिलते हैं

एक—अत्यन्त आदिम अवशेप
दो—घरेलू सभ्यता का स्वरूप
तीन—पौराणिक गाथाओ की छाप
चार—विविध अनुष्ठानों का स्थूल उल्लेख

अत्यन्त आदिम अवशेप इनमे वहुत कम रह गये हैं। एक दो ही ध्यान देने योग्य हैं। जन्म-सम्वन्धी वार्ता मे पहले तो 'वैं' है। यह 'वैं' शब्द ध्यान देने योग्य है। ठीक वच्चा पैदा होते समय 'वैं' के गीत गाये जाते हैं। प्रश्न यह है कि यह 'वैं' क्या है ? लोकवार्ता मे इसका कोई विशेप उत्तर नही मिलता। एक 'वैं' के गीत मे यह उल्लेख है कि तुम खाली कुम्हार के यहाँ जाओ, और भरी हमारे यहाँ आओ। कुम्हार का उल्लेख प्रतीकवत् हुआ है। कुम्हार साधारणत प्रजापति (परजापति) भी कहलाता है। कुम्हार ब्रह्मा का प्रतीक है। इस गीत मे 'वैं' मातृत्व शक्ति का वोधक हो सकता है, जो 'विधाता' से सन्तान युक्त होकर घर आये। लोक-कहानियो मे एक 'वैमाता' आती है। लोकवार्ता मे भी 'वैं' माना कहीं गयी है

अबोध-शिशु जब कभी स्वयमेव हँसता है, या रोता है तो यह विश्वास है कि वैमाता उसे हँसा और रुला रही है। शैशव मे 'बैमाता' सदा बालक के साथ रहती है। यह वै शब्द 'वि' का भी रूपान्तर हो सकता है—तब वैमाता 'विमाता' का रूपान्तर माना जायगा। पर 'विमाता' का ऐसा स्नेह माना नही जा सकता। यह शब्द 'विधि-माता' का ही रूपान्तर है। 'विधि' 'वै' मे परिणत हो गया है। विधि का अर्थ ब्रह्मा है। फलत विधि माता प्रजनन शक्ति का प्रतीक हुई। विधि का ब्रह्मा से अर्थ लेने पर यह शब्द वैदिक-सस्कृति से आया प्रतीत होता है। किन्तु 'विधि' मे मातृत्व का आरोप, उसे माता रूप मे ग्रहण करना भी क्या वही से लिया गया है? सात-मातृकाओ का भारतीय-शिल्प मे बहुधा चित्रण हुआ है। ये प्रजनन और पोषण की शक्तियाँ हैं। किन्तु लोक मे तो 'भू' ही प्रजनन माता मानी गयी है। मोहन-जोदडो और हडप्पा से मिले मूर्त-प्रतीको मे मातृ-योनि मे से अकुर का विकास दिखाया गया है। यही वास्तव मे 'जननी' भू माता है। 'माता' का यह रूप प्राक् ऐतिहासिक है। यह 'बैमाता' कही वही से आयी है।

एक गीत मे, जो जन्ति का ही गीत है, यह प्रसग उपस्थित होता है कि ननद ने एक बर्द्ध के मूत्र मे हाथ पखार लिये तो वह गर्भवती हो गयी। उसके बर्द्ध ही उत्पन्न हुआ। इस गीत मे भी एक अत्यन्त प्राचीन सस्कार जीवित दिखायी पडता है। वह सस्कार उस विश्वास से सम्बन्धित है जो यह मानता है कि गर्भाधान के लिए पुरुष की आवश्यकता नही।

विद्वानो के मत से यह सिद्धान्त 'आत्मा के पदार्थवादी' दर्शन से सम्बन्ध रखता है। भारत मे विविध जातियों के बसने और उनके विश्वासो के विश्लेषण से हम निम्न निष्कर्ष पर पहुँचते हैं

निवास का क्रम	जाति	उनके विश्वास
प्रथम निवासी	नैग्रिटो	१—पीपल वृक्ष की मान्यता २—आदिम शैशन उर्वरत्व सम्बन्धी विश्वास
द्वितीय निवासी	प्रोटो-आस्ट्रेलॉयड	१—नैग्रिटो के द्वितीय सिद्धान्त का प्रचलन २—टोटेम[1] का सिद्धान्त अथवा उसका बीज

[1] टोटेम एक विशेष शब्द है। टोटेम उस पशु, वृक्ष, पक्षी तथा मानवेतर वस्तु को कहते हैं जो किसी मानव वर्ग मे विशेष प्रकार की मान्यता से युक्त हो जाय। या तो उससे वह वर्ग अपनी उत्पत्ति मानता हो या किसी रूप मे उसे अपना पूज्य मानता हो और उसके सम्बन्ध मे विविध धारणाएँ प्रचलित हो। सन् १६०२ मे एथनाग्राफी (मानव-विज्ञान) ऑव इण्डिया के डाइरेक्टर श्री एच० रिजले ने इसकी यह परिभाषा दी है—

सुन्दर पख डाले। डोना जिससे विवाह करना चाहेगी उसकी डाली हुई वस्तु ही वह लेगी। मोर से विवाह करना चाहेगी तो सिक्को को लायेगी। नाग से चाहेगी तो पखो को उठा लेगी।

यहाँ हमे मोर एक प्रेमिक के रूप मे मिलता है। पर वल्गेरिया की इस कहानी से भी अद्भुत है जातक की कहानी 'सुवर्ण प्रभासो'—मयूरो के राजा की कहानी।

काशी के राजा ब्रह्मदत्त की सुन्दरी पत्नी को एक बार एक मोर की कुहुक-कुहुक सुनायी पडी। इस कुहुक ने उसे वशीभूत कर लिया। उसने उसी मोर को पाने का आग्रह किया। पता चला कि वह कुहुक कैलास के 'सुवर्ण प्रेम' नाम के मोर की थी। उस मोर को मँगाया गया। रानी उसे खूब खिलाती पिलाती थी। पर रानी अपने चरित्र के दोष से गर्भवती हो गयी। इस भेद को मोरा ही जानता था। भय से रानी ने उस मोर को विप दिया। उस विष से वह मोर और अधिक सुन्दर और स्वस्थ हो गया। तव मोर ने उस रानी की चरित्रहीनता वताते हुए उससे कहा कि वह योग्य स्त्री नही है। इस चोट से रानी ने स्वय प्राण त्याग दिये।

स्पष्ट है कि मोर और मोर की कुहुक दोनो ही लोक-मानस मे युग-युग से चले आये हैं।

व्रज के जन्म और विवाह के गीतो पर टिप्पणी

इन पर दृष्टि डालने से एक बात तो यह स्पष्ट होती है कि व्रज मे विशेष महत्त्व जन्म और विवाह के सस्कारो का ही है। अन्य सस्कारो की ओर उतना ध्यान नही। अन्य सस्कारो की रूपरेखा उक्त दो-प्रधान सस्कारो की सामग्री से ही हो जाती है।

इस समस्त लोकवार्ता मे चार स्तर मिलते हैं

एक—अत्यन्त आदिम अवशेष
दो—घरेलू सभ्यता का स्वरूप
तीन—पौराणिक गाथाओ की छाप
चार—विविध अनुष्ठानो का स्थूल उल्लेख

अत्यन्त आदिम अवशेष इनमें वहुत कम रह गये हैं। एक दो ही ध्यान देने योग्य हैं। जन्म-सम्बन्धी वार्ता मे पहले तो 'वैं' है। यह 'वैं' शब्द ध्यान देने योग्य है। ठीक बच्चा पैदा होते समय 'वैं' के गीत गाये जाते है। प्रश्न यह है कि यह 'वैं' क्या है ? लोकवार्ता मे इसका कोई विशेष उत्तर नहीं मिलता। एक 'वैं' के गीत मे यह उल्लेख है कि तुम खाली कुम्हार के यहाँ जाओ, और भरी हमारे यहाँ आओ। कुम्हार का उल्लेख प्रतीकवत् हुआ है। कुम्हार साधारणत प्रजापति (परजापति) भी कहलाता है। कुम्हार ब्रह्मा का प्रतीक है। इस गीत मे 'वैं' मातृत्व शक्ति का वोधक हो सकता है, जो 'विधाता' से सन्तान युक्त होकर घर आये। लोक-कहानियो मे एक 'वैमाता' आती है। लोकवार्ता मे भी 'वैं' माता कही गयी है।

अबोध-शिशु जब कभी स्वयमेव हँसता है, या रोता है तो यह विश्वास है कि बैमाता उसे हँसा और रुला रही है। शैशव मे 'बैमाता' सदा बालक के साथ रहती है। यह बैं शब्द 'वि' का भी रूपान्तर हो सकता है—तब बैमाता 'विमाता' का रूपान्तर माना जायगा। पर 'विमाता' का ऐसा स्नेह माना नही जा सकता। यह शब्द 'विधि-माता' का ही रूपान्तर है। 'विधि' 'बै' मे परिणत हो गया है। विधि का अर्थ ब्रह्मा है। फलत विधि माता प्रजनन शक्ति का प्रतीक हुई। विधि का ब्रह्मा से अर्थ लेने पर यह शब्द वैदिक-सस्कृति से आया प्रतीत होता है। किन्तु 'विधि' मे मातृत्व का आरोप, उसे माता रूप मे ग्रहण करना भी क्या वही से लिया गया है ? सात-मातृकाओ का भारतीय-शिल्प मे बहुधा चित्रण हुआ है। ये प्रजनन और पोषण की शक्तियाँ हैं। किन्तु लोक मे तो 'भू' ही प्रजनन माता मानी गयी है। मोहन-जोदडो और हडप्पा से मिले मूर्त-प्रतीको मे मातृ-योनि मे से अकुर का विकास दिखाया गया है। यही वास्तव मे 'जननी' भू माता है। 'माता' का यह रूप प्राक् ऐतिहासिक है। यह 'बैमाता' कही वही से आयी है।

एक गीत मे, जो जन्ति का ही गीत है, यह प्रसग उपस्थित होता है कि ननद ने एक बद्ध के मूत्र मे हाथ पखार लिये तो वह गर्भवती हो गयी। उसके बद्धं ही उत्पन्न हुआ। इस गीत में भी एक अत्यन्त प्राचीन सस्कार जीवित दिखायी पडता है। वह सस्कार उस विश्वास से सम्बन्धित है जो यह मानता है कि गर्भाधान के लिए पुरुष की आवश्यकता नही।

विद्वानो के मत से यह सिद्धान्त 'आत्मा के पदार्थवादी' दर्शन से सम्बन्ध रखता है। भारत मे विविध जातियों के बसने और उनके विश्वासो के विश्लेषण से हम निम्न निष्कर्ष पर पहुँचते है

निवास का क्रम	जाति	उनके विश्वास
प्रथम निवासी	नैग्रिटो	१—पीपल वृक्ष की मान्यता २—आदिम शैश्न उर्वरत्व सम्बन्धी विश्वास
द्वितीय निवासी	प्रोटो-आस्ट्रेलॉयड	१—नैग्रिटो के द्वितीय सिद्धान्त का प्रचलन २—टोटेम[1] का सिद्धान्त अथवा उसका बीज

---

[1] टोटेम एक विशेप शब्द है। टोटेम उस पशु, वृक्ष, पक्षी तथा मानवेतर वस्तु को कहते हैं जो किसी मानव वर्ग मे विशेप प्रकार की मान्यता से युक्त हो जाय। या तो उससे वह वर्ग अपनी उत्पत्ति मानता हो या किसी रूप मे उसे अपना पूज्य मानता हो और उसके सम्बन्ध मे विविध धारणाएँ प्रचलित हो। सन् १९०२ मे एथनाग्राफी (मानव-विज्ञान) ऑव इण्डिया के डाइरेक्टर श्री एच० रिजले ने इसकी यह परिभाषा दी है—

तृतीय	निवासी भूमध्यसागर क्षेत्र से जिनका निकास है [यहाँ विद्वानो मे कुछ मतभेद है]	१—शैशन तथा मैगालिथिक २—जीवन-तत्त्व का सिद्धान्त किसी-किसी के मत से

मुण्डा लोग पहले आये, और वे प्रोटो-आस्ट्रेलॉयड से भिन्न हैं तो—

तृतीय	मुण्डा	१—जीवन-तत्त्व का सिद्धान्त
चतुर्थ	भूमध्यसागर क्षेत्र से जिनका निकास है	१—जीवन-तत्त्व के सिद्धान्त को पुनरावतार के सिद्धान्त मे विकसित किया। २—महीमाता (Great Mother) की पूजा।

किन्तु आसाम, बर्मा और इण्डोचीन की जातियो मे मगोलो के दक्षिण प्रवास से पूर्व ही काकेशीय तत्त्व मिलता है जिससे उक्त समय से पूर्व ही भूमध्यसागर का प्रभाव सिद्ध होता है। अत —

तृतीय (जैसा सबसे पहले)	भूमध्यसागरीय	१—जीवन-तत्त्व के सिद्धान्त का विकास
चतुर्थ	मुण्डा (बर्बर-आक्रमणकारी)	आत्मा का पदार्थवादी सिद्धान्त
पचम	[मेसोपोटामिया होकर] एशिया माइनर से व्यापारियो आदि के द्वारा आया हुआ धार्मिक तत्त्व	[इसने उर्वरत्व, प्रजनन

"टाटेमिज्म—एज हिदरटू आवजर्व्ड इन इण्डिया मे बी डिफाइण्ड ऐज दी कसटम बाइ विच ए डिवीजन ऑव ए ट्राइब और कास्ट बेअर्स द नेम ऑव ऐन ऐनिमल, ए ट्री, ए प्लाट, और ऑव सम मैटीरियल ऑवजैक्ट, नेचुरल और आर्टिफिशियल, विच द मेम्बर्स ऑव दैट ग्रुप आर प्रौहिबिटेड फ्रॉम किलिंग, ईटिंग, कटिंग, बर्निंग, कैरीइग, यूजिंग, ऐटसैट्रा। द डिवीजन्स दस नेम्ड और यूजुअली ऐक्सोगेमस, ऐण्ड द रूल इज दैट ए मैन में नॉट मैरी ए वोमन हूज टोटेम इज द सेम ऐज हिज ओन। द रिलीजस आस्पेक्ट, ऑव टोटेमिज्म, विच इज प्रामिनेण्ट इन आस्ट्रेलिया ऐण्ड ऐल्सवेयर, इज जैनरली ऐवजेण्ट इन इडिया"—मैनुअल ऑव एथनाग्राफी फौर इण्डिया।

तथा आत्मा के पदार्थ-
वादी सस्कार के स्थान पर
निम्न स्थापनाएँ की]
१—साकार देवता
२—बलि यज्ञ
३—आनुष्ठानिक पूजा
४—शैश्नव तत्त्व के साथ
५—देवदासी की प्रथा
६—ज्योतिष-वार्ता तथा
आकाशस्थ पिण्डो का
सम्प्रदाय
७—पौरोहित्य-प्रथा

षष्ठम आर्य [इस जाति के विश्वासो[१]
को विस्तार से यहाँ देने
का अवकाश नही]

इस व्याख्या से यह स्पष्ट होता है कि आत्मा का पदार्थवादी दृष्टिकोण मुण्डा जाति की देन है। पर उक्त गीत मे उल्लिखित यह गर्भ की स्थिति 'जीवन-तत्त्व' के सिद्धान्त से भी हो सकती है। उस दशा मे यह तृतीय निवासियो के विश्वासो का अवशेष है। इस अवस्था मे अभी मनुष्य-सन्तान-उत्पत्ति मे एक तो कार्य-कारणपरम्परा नही जान सके थे, दूसरे किसी भी पदार्थ के स्पर्श से गर्भ की भावना को सम्भव मानते थे।

विवाह के गीतो मे टोटके का भाव तो बहुतो मे विद्यमान है, विशेषकर घूरा-पूजने, बायबन्द मे, कोर उझकाने मे तथा ऐसे ही अनेक कृत्यो मे। घूरा पूजकर लौट आने पर वर या कन्या पर वारकर कुछ फरा फेंके जाते हैं। ये फरे आटे के बने होते हैं, इनके पाँच कोने निकले होते है, इस प्रकार ये मूलत मानवाकृति मे होगे। चार कोने हाथ-पैरो के द्योतक, और एक सिर का। ये अभिचार के अग माने जा सकते हैं। इस अवसर पर विविध मृत-योनियो का विशेष ध्यान रखा जाता है। जैसे, अऊत, प्रेत, वारे, जरूले, पितर,—एक गीत मे तो ये सब यह कहते मिलते हैं कि हम भूखे हैं, हम नगे है, और उन्हें सन्तुष्ट करने का आश्वासन भी दिया जाता है। विवाह के खेल के गीतो मे एक और क्रूर अभिचार का उल्लेख हुआ है। किसी देवरानी ने पुत्र-कामना से अपनी जिठानी का पुत्र मार डाला। ऐसा करने का परामर्श उसे किसी सिद्ध ने दिया था। किन्तु रहस्य खुल गया, और देवरानी को परिणाम भोगना पडा। इस प्रकार का अभिचार मध्यकाल मे बहुत प्रचलित था, किन्तु गीत मे इस घटना का

---

[१] देखिए १९३१ की सेंसस रिपोर्ट

तृतीय निवासी भूमध्यसागर क्षेत्र से जिनका निकास है [यहाँ विद्वानो मे कुछ मतभेद है]		१—शैशन तथा मैंगालिथिक २—जीवन-तत्त्व का सिद्धान्त किसी-किसी के मत से

मुण्डा लोग पहले आये, और वे प्रोटो-आस्ट्रेलॉयड से भिन्न है तो—

तृतीय	मुण्डा	१—जीवन-तत्त्व का सिद्धान्त
चतुर्थ	भूमध्यसागर क्षेत्र से जिनका निकास है	१—जीवन-तत्त्व के सिद्धान्त को पुनरावतार के सिद्धान्त मे विकसित किया । २—महीमाता (Great Mother) की पूजा ।

किन्तु आसाम, वर्मा और इण्डोचीन की जातियो मे मगोलो के दक्षिण प्रवास से पूर्व ही काकेशीय तत्त्व मिलता है जिससे उक्त समय से पूर्व ही भूमध्यसागर का प्रभाव सिद्ध होता है। अत —

तृतीय (जैसा सबसे पहले)	भूमध्यसागरीय	१—जीवन-तत्त्व के सिद्धान्त का विकास
चतुर्थ	मुण्डा (बर्बर-आक्रमणकारी)	आत्मा का पदार्थवादी सिद्धान्त
पचम	[मेसोपोटामिया होकर] एशिया माइनर से व्यापारियो आदि के द्वारा आया हुआ धार्मिक तत्त्व	[इसने उर्वरत्व, प्रजनन

"टाटेमिजम—एज हिदरटू आवजर्व्ड इन इण्डिया मे वी डिफाइण्ड ऐज दी कसटम वाइ विच ए डिवीजन ऑव ए ट्राइब और कास्ट बेयर्स द नेम ऑव ऐन ऐनिमल, ए ट्री, ए प्लाट, और ऑव सम मैटीरियल ऑवजैक्ट, नेचुरल और आर्टिफिशियल, विच द मेम्बर्स ऑव दैट ग्रुप आर प्रौहिविटेड फ्रॉम किलिंग, ईटिंग, कटिंग, बर्निंग, कैरीइंग, यूजिंग, ऐटसैट्रा । द डिवीजन्स दस नेम्ड और यूजुअली ऐक्सोगेमस, ऐण्ड द रूल इज दैट ए मैन मे नॉट मैरी ए वोमन हूज टोटेम इज द सेम ऐज हिज ओन । द रिलीजस आस्पेक्ट, ऑव टोटेमिज्म, विच इज प्रामिनेण्ट इन आस्ट्रेलिया ऐण्ड ऐल्सवेयर, इज जैनरली ऐवजेण्ट इन इडिया"—मैनुअल ऑव एथनाग्राफी फौर इण्डिया ।

तथा आत्मा के पदार्थ-
वादी सस्कार के स्थान पर
निम्न स्थापनाएँ की]
१—साकार देवता
२—बलि यज्ञ
३—आनुष्ठानिक पूजा
४—शैश्नव तत्त्व के साथ
५—देवदासी की प्रथा
६—ज्योतिष-वार्ता तथा
आकाशस्थ पिण्डो का
सम्प्रदाय
७—पौरोहित्य-प्रथा

षष्ठम आर्य [इस जाति के विश्वासो[1]
को विस्तार से यहाँ देने
का अवकाश नही]

इस व्याख्या से यह स्पष्ट होता है कि आत्मा का पदार्थवादी दृष्टिकोण मुण्डा जाति की देन है। पर उक्त गीत मे उल्लिखित यह गर्भ की स्थिति 'जीवन-तत्त्व' के सिद्धान्त से भी हो सकती है। उस दशा मे यह तृतीय निवासियो के विश्वासो का अवशेष है। इस अवस्था मे अभी मनुष्य-सन्तान-उत्पत्ति मे एक तो कार्य-कारणपरम्परा नही जान सके थे, दूसरे किसी भी पदार्थ के स्पर्श से गर्भ की भावना को सम्भव मानते थे।

विवाह के गीतो मे टोटके का भाव तो बहुतो मे विद्यमान है, विशेषकर घूरा-पूजने, बायवन्द मे, कोर उझकाने मे तथा ऐसे ही अनेक कृत्यो मे। घूरा पूजकर लौट आने पर वर या कन्या पर वारकर कुछ फरा फेंके जाते है। ये फरे आटे के बने होते हैं, इनके पाँच कोने निकले होते हैं, इस प्रकार ये मूलत मानवाकृति मे होगे। चार कोने हाथ-पैरो के द्योतक, और एक सिर का। ये अभिचार के अग माने जा सकते हैं। इस अवसर पर विविध मृत-योनियो का विशेष ध्यान रखा जाता है। जैसे, अऊत, प्रेत, वारे, जरूले, पितर,—एक गीत मे तो ये सब यह कहते मिलते हैं कि हम भूखे हैं, हम नगे है, और उन्हे सन्तुष्ट करने का आश्वासन भी दिया जाता है। विवाह के खेल के गीतो मे एक और क्रूर अभिचार का उल्लेख हुआ है। किसी देवरानी ने पुत्र-कामना से अपनी जिठानी का पुत्र मार डाला। ऐसा करने का परामर्श उसे किसी सिद्ध ने दिया था। किन्तु रहस्य खुल गया, और देवरानी को परिणाम भोगना पडा। इस प्रकार का अभिचार मध्यकाल मे बहुत प्रचलित था, किन्तु गीत मे इस घटना का

[1] देखिए १९३१ की सेंसस रिपोर्ट

जिस रूप मे उल्लेख है उससे वह किसी नयी घटना को ही स्मरण कराता प्रतीत होता है।

जैसा ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है जन्म और विवाह के सस्कार मे लौकिकाश सवसे अधिक रहता है। वैदिक अथवा पौरोहित्य भाग वहुत कम। इन लौकिक व्यवहारो मे टोने और टोटके भरे पडे हैं। ऐसे प्रत्येक अनुष्ठान मे हम उस धर्म का रूप देखते हैं जिसे नृ-विज्ञानवादियो ने 'ऐनिमिज्म' का नाम दिया है। ऐनिमिज्म को हिन्दी मे 'भूतात्मवाद' कह सकते हैं। यह भूतात्मवाद समस्त धर्म का आदि रूप अथवा धर्म के आधार का आदि-पाद माना जा सकता है। भारतीय भूतात्मवाद के सम्बन्ध मे यह व्याख्या समीचीन है भारतीय भूतात्मवाद मनुष्य को ऐसा जीवनयापन करते मानता है जो प्रेतमय शक्तियो, तत्त्वो, प्रवृत्तियो, से आवृत हैं, अधिकाशत स्वभाव मे व्यक्तित्व हीन हैं, रूपहीन कल्पना है, जिसका कोई चित्र नही खडा हो पाता तथा जिसका कोई निश्चित भाव नहीं बन सकता। इनमे से कुछ के अपने प्रभाव क्षेत्र होते है एक हैजे की अधिष्ठातृ, एक शीतला की, एक पशुरोगो की, कुछ पर्वतो मे रहती हैं, कुछ वृक्षो पर, कुछ का सम्बन्ध नदियो, भँवरो, झरनो अथवा पर्वतो के गर्भ मे छिपे अद्‌भुत तत्त्वो से रहता है। इनके द्वारा जो बुराइयाँ पैदा होती हैं उनसे बचने के लिए हमको बहुत सावधानी से इन्हे सन्तुष्ट करने की आवश्यकता होती है।

इन सब अनुष्ठानो मे टोना व्याप्त रहता है।[1] टोना आदिमधर्म का प्रधान मूल भाव है। इस टोने का रूप ब्रज के इन विविध सस्कारो में हमे स्पष्ट दीखता है। विशेषत विवाह के वायवन्द आदि मे। आँधी, धूल-धक्कड, अलाइ-वलाइ सभी को 'भूतात्म' मानकर उन्हे हानि से रोकने के लिए उन्हे वन्द कर दिया जाता है। ऐसे विविध तत्त्वो को अपने क्षेत्र मे सवसे वडा भी माना गया है। इसकी साक्षी वह गीत है जिसमे यह कहा गया है कि इन दोनो मे कौन वडे हैं? इन उल्लेखो मे चारो ओर के प्राय सभी पदार्थों का उल्लेख हो जाता है। जति और विवाह के समस्त सस्कारो मे यह टोना स्पष्ट और प्रबल रूप से देखा जा सकता है। इन गीतो मे जो यौन-सकेत और अश्लीलता नियमित रूप से मिलती है, वह भी टोने का ही एक रूप है। वौद्ध स्थापत्य मे यह माना जाता रहा है कि वाहर नग्न चित्रो के देने से वज्र नही गिरता। यह आदिम टोने से सम्बन्ध रखता है।

गीतों के अध्ययन में तुलनात्मक प्रणाली

गीतो मे तुलनात्मक प्रणाली का उपयोग भी अपेक्षित है। यह ऐतिहासिक भी हो सकता है अर्थात् कालक्रम से और भौगोलिक भी अर्थात विस्तार क्षेत्र के क्रम से। हम तुलना मे पहले वस्तु को ले सकते हैं। वस्तु मे कथा तत्त्व हुआ तो एक अध्ययन इस प्रकार से हो सकता है। एक गीत मे गगा माँ से वरदान माँगा गया

---

१ देखिए सर हरवर्ट रिजले लिखित तथा क्रुक सम्पादित 'दी पीपिल ऑव इण्डिया' का पृ० २३१।

है। यथार्थ मे वरदान माँगा नही गया, माँगा गया है गगा मे डूबने के लिए एक स्थान, एक लहर। एक स्त्री कोख के दुःख से दुखी है, उसके पुत्र नही होता, वह डूब मरना चाहती है। गगा जी उसे आशीर्वाद देती हैं कि जा तेरे पुत्र होगा। परन्तु वह इतनी उतावली है कि घर लौटकर तुरन्त ही बढई से काठ का बालक बनवा लेती है, और चाहती है कि कोई इसी मे प्राण डाल दे। पर, प्रकृति-क्रम से ९—१० महीने बाद ही बालक होता है। ननद और सासु उसे आदरसूचक शब्दो से सम्बोधित करती हैं। बाजे बजने लगते हैं, मगलाचार होते हैं। स्त्री देवर के द्वारा सोते हुए पति को जगवाती है कि वे आज अपनी स्त्री का सोहिला देख लें। यह स्पष्ट है कि यह 'कामना-गीत' प्रबन्ध की भूमि पर बना है। इस गीत में हमे बाहर के कुछ गीतो से तुलना करने पर विदित होता है कि दो गीत मिल गये हैं। प० रामनरेश त्रिपाठीजी ने जो गीत सग्रह किये हैं उनमें सोहर का प्रथम गीत हमारे इस गीत से बिलकुल मिलता है, केवल वह स्थल भिन्न है, जो दूसरे गीत का अश है। यहाँ हम दोनो गीतो का वह अश देते हैं जो मिलता है

ब्रज का गीत

१

राजे गगा किनारे एक तिरिया सु ठाडी अरज करै,
गगे एक लहरि हमे देउ तौ जामे डूबि जैयो,
अरे जामे डूबि जैयो।

२

कै दुखु री तोइ सासुरी ससुरि कौ कै तेरे पिया परदेश।
कै दुखु री तोय मात पिता कौ, कै मा जाए बीर।
काहे दुख डूबिहौ।

३

ना दुखु री मोइ सासु री ससुर को, नांइ मेरे पिया परदेश।
ना दुखु री मोइ मात पिता कौ ना मा जाए बीर।
सासु बहू कहि नाँएँ बोलै, ननद भाभी ना कहै, ननद भाभी ना कहै।
न हो राजे वे हरि बाँझ कहि टेरें तो छतियाँ जु फटि गईं।

४

जाई दुख डूबिहो सो जाई दुख डूबिहो,
राजे लौटि उलटि घर जाउ, लाल तिहारें होइ, ललन तिहारें होइ।

पूर्वी जिले का

१

गगा जमुनवाँ के बिचवाँ तेवइया एक तपु करइ हो।
गगा! अपनी लहर हमे देतिउ मैं मंझधार डूबित हो॥

२

की तोहिं सास-ससुर दुख कि नैहर दूरि बसै।
तेवई ! की तोरे हरि परदेश कवन दुख डूबहु हो।

३

गगा ! ना मोरे सासु-ससुर दुख नाही नैहर दूरि बसे।
गगा ! ना मोरे हरि परदेस, कोखि दुख डूबव हो।

४

जाहु तेवइया घर अपने हम न लहर देवइ हो।
तेवई ! आजु के नवएँ महिनवाँ होरिल तोरे होइहैं हो ॥

यहाँ तक व्रज का गीत पूर्वी गीत के साथ चलता है। पूर्वी गीत यहाँ से दो चरण लेकर समाप्त हो जाता है —

"गगा ! गहवरि पिअरी चढउबै होरिल जब होइ हैं हो।
गगा ! देहु भगीरथ पूत जगत जस गावइ हो ॥

यह गगा की मनौती व्रज के गीत मे नही है, न भगीरथ जैसा पुत्र व्रज की दुखिया माँगती है। वह घर चली जाती है और काठ का बालक बनवाती है। यह काठ के बालक की बात भी पूर्वीगीत मे मिलती[1] है, पर कुछ दूसरे रूप मे। रानी खिडकी मे बैठी है, राजा कहते हैं सतान-विहीन होने से तो अच्छा है जोगी हो जाऊँ। रानी ने कहा मैं भी जोगिनि हो जाऊँगी। दोनो भीख माँगकर खाया करेंगे। कदम्ब के पेड के नीचे बैठे राम बालक बना रहे थे। रानी ने राम से कहा कि तुमने किसी को दो, किसी को चार, दस-पाँच तक बच्चे दिये हैं मुझे क्यो भूल गये ? राम ने कहा—राजा पूर्व जन्म मे बहेलिया था रानी बहेलिन। तुम्हे पुत्र नही मिल सकता। तुम सास, ससुर, ननद का आदर नही करती, जेठ की परछाई से परहेज नही करती। रानी कहती हैं अब मैं यह सब करूँगी—और यहाँ से वे पक्तियाँ आती हैं जो व्रज के गीत मे मिलती हैं।

व्रज का गीत

५

आई धन तन मन मारि राजे मेरे पिछवारे बढई कौ
लाला तू मेरौ देवरु जेठु, राजे कह्यौ मेरौ कीजिए।
काठ पुतर गढि देउ सो वाइ लैकें उठिहौ, बाइ लैकें बैठिहौ ॥
राजे न्हाय धोय भई ठाढी तौ सुरजु मनामे रामु मनामे।
राजे काठ पुतर जिउ डारौ तौ जाइ लैकें उठिहौ, जाइ लैकें सोमे ॥

---

१ देखिए कविता कौमुदी, ग्रामगीत, सोहरगीत ३, पृ० ६।

पूर्वी

९

मोरे पिछवरवाँ बढइया वेगि ही चलि आवहु हो।
बढई गढि देहु काठै के बलकवा मैं जिया बुझावउँ—
मन समुझावउँ हो।

१०

काठे का बालक गढि दिहलै अँगने धरी दिहलई हो॥
बाबुल मोरे अँगने रोइ न सुनावउ मैं बँझिनि कहावऊँ हो॥

११

दैव गढल जो मैं होतेउँ तो रोइ सुनउतेउ, हो।
रानी बढई के गढल होरिलवा रोवन नाही जानइ हो॥

पूर्वी गीत यही समाप्त हो जाता है, और दु खान्त रहकर राजा रानी के पापो का इस युग मे भी प्रायश्चित्त करता है, पर ब्रज के गीत मे यह काठ का बालक केवल मनोवृत्ति की एक अवस्था को सूचित करता है, मात्र सचारी की भाँति आया है। वह चाहती है कि उस काठ के बालक[1] मे प्राण पड जाएँ, पर नौ-दस माह बाद बालक उसके हो जाता है। ब्रज का गीत आगे बढता है

"राजे जे नौ, जे दस माँस बीते गरभ के, तो होरिल सबद सुनाइये।
राजे सासु बहू कहि बोलै, ननद भाभी बोलै, ननद भाभी बोलै।
वे हरि जच्चा कहि बोलें, तौ छतियाँ जुडि गई।
सुनि सुनि रे मेरे दिवर छतारी, तौ बसी बजाओ, मुरली बजाओ॥
भैया ऐ लाओ जगाय तौ देखें मेरौ सोहिलौ।
बाजन लागे बाजे घुरन लागे नबल निसान॥
धनि धनि गगे तोय वन्नि ऐं तुमनै बढायौ मेरौ मान।"

ब्रज का गीत इस प्रकार वाह्यत भले ही दो तन्तुओ का बना प्रतीत हो, पर अन्तत वह एक ही है। उसमे गगा मे डूबने की दु खद भावना, गगा का वरदान,

---

[1] काठ का बालक बनाकर उसमे प्राणो की कामना करना आदिम मनोभावो और विश्वासो के अनुकूल प्रतीत होता है। लोकवार्ता के विद्वान इस बात को भली प्रकार जानते हैं कि भारत मे ही नही ससार भर मे बाह्य-साम्य टोटके के रूप मे काम मे आता है, अच्छे काम के लिए भी और बुरे काम के लिए भी। किसी का 'पूतरा' निकालना उसके लिए अशुभ माना गया है। कपडे या चून के पुतले के अग-अग मे सुइयाँ चुभाकर अपने शत्रु को मारने का अनुष्ठान कितनी ही जगहो मे होता है। यह काठ का बालक बनाकर उसमे प्राण की चाह ब्रज के गीत मे उसी बाह्य-साम्य के प्राचीन विश्वास और टोटके की ओर सकेत करती प्रतीत होती है। अत यह काठ का बालक ब्रज के गीत मे अधिक उपयुक्त ढग से नियोजित हुआ है। पूर्वी गीत मे वह इस रूप मे नही।

किन्तु स्त्री की उतावली, फिर पुत्र-जन्म, सास, ननद तथा पति के भावो मे परिवर्तन और गगा को धन्यवाद ये सब बडे स्वाभाविक रूप मे आते है, और गीत को सुन्दर और सुखान्त बना देते हैं। गीत यो कुछ लम्बा हो गया है, पर अपने विधान मे पूर्ण और प्रभावोत्पादक है।

एक और गीत

इन्ही गीतो मे ननद-भावज के मलिन व्यवहार का अन्तर-प्रान्तीय गीत आता है। इसमे भावज सीता ननद से कहती है कि रावण का चित्र बनाओ। सीता बहुत आग्रह करने पर चित्र बना देती है। ननद राम को वह चित्र दिखा देती है। राम लक्ष्मण के साथ उसे वन मे भेज देते हैं। वहाँ उसका रोना सुनकर तपस्वी आ जाते हैं। वे उसे अभय और आश्वासन देते हैं। ब्रज का गीत यहाँ समाप्त हो जाता है। पर बुन्देलखण्डी[1] और पूर्वी[2] गीत इससे भी आगे की कहानी का उल्लेख करते हैं। लव-कुश हुए, रोचन अयोध्या मे दशरथ और लक्ष्मण के पास भेजा गया। लक्ष्मण के माथे पर रोचन देखकर राम ने पूछा कि ऐसे प्रसन्न क्यो हो? सीता के लव-कुश होने के सम्वाद से राम को बडी प्रसन्नता हुई। पूर्वी गीत मे लक्ष्मण सीता को बुलाने के लिए गये हैं किन्तु सीता ने जाना अस्वीकार कर दिया है, गीत समाप्त हो जाता है। बुन्देलखण्डी गीत भी प्राय यही समाप्त हो जाता है, पर पूर्वी गीत मे जैसे लक्ष्मण सीधे सीता के पास पहुँच गये है, वैसे बुन्देलखण्डी गीत मे नही पहुँचे। उन्हे पहले लव-कुश धनुषवाण से खेलते मिले हैं। उनसे पूछा है कि उनके माता-पिता कौन हैं? वे पिता का नाम छोड शेष सबका नाम बता देते हैं। तब लक्ष्मण सीताजी के पास जाते है। तीनो गीतो का आरम्भ भी भिन्न है—

ब्रज का

राजे ननद भवज दोउ बैठिए।
भाभी कैसी सुरति देखी 'रामनु'

बुन्देली

आम अमिलिया की नन्ही नन्ही पत्तियाँ
निविया की शीतल छाँह
वहि तरें बइठी ननद भौजाई
चालें लागी रावन की वात।

पूर्वी

ननद भौजाई दूनौ पानी गई
अरे पानी गई
भौजी जौन रवन तुम्हे हरिलेइग उरेहि दिखावहु।

---

[1] देखिए लोकवार्ता वर्ष १, अक २।

[2] देखिए क० कौ० ग्राम० गीत, पृ० ८३।

ब्रज का भी यह गीत सोहर है, जन्ति का गीत है। पूर्वी गीत भी सोहर है। किन्तु बुन्देली के सम्बन्ध मे कोई ऐसी सूचना नही दी गयी। यही सम्भावना है कि बुन्देली गीत भी सोहर गीत होगा।

इन तीनो गीतो की सामग्री का विश्लेषण अलग-अलग इस प्रकार हो सकता है—

ब्रज

१ ननद भाभी बैठी हैं
२ भाभी गर्भवती है
३ ननद कहती है रावण का चित्र खीचो
४ वह तुम्हारे भाई का बैरी है, वह सुन पायेंगे तो निकाल देगे।

बुन्देली

१ ननद भाभी आम के पेड की छाया मे बैठी हैं
२ × ×
३ तुम्हारे देश मे रावण है तुम उसे बनाओ
४ ननद यदि तुम घर न कहो तो खीच दूं।

पूर्वी

१ ननद भाभी पानी के लिए गयी
२ × ×
३ जो रावण तुम्हे हर ले गया उसका चित्र बनाओ
४ जैसा ब्रज मे।

ब्रज

५ ननद ने हठ की, सीता ने पूरा रावण चित्रित कर दिया।
६ भावज को ननद ने अन्यत्र भेज दिया, राम को चित्र दिखाया।
७ लक्ष्मण जाओ, सीता को वन मे मारो और नेत्र निकाल लाओ।
८ सीता लक्ष्मण के साथ गयी, वन मे प्यास लग आयी, एक पेड के नीचे लेट गयी।
९ लक्ष्मण ने दोने मे पानी पेड पर टाँग दिया और चले गये, तब पानी की बूंद टपककर सीता के मुख पर पडी, वह जग पडी।
१० सीता रोयी एक बाबाजी निकले और कहा हमी नन्दलाल का जन्म करायेंगे।

× × × ×

बुन्देली

५ ननद ने शपथ खाई कि वह न कहेगी। गाय का गोबर मँगाया, दो हाथ लिखे, दो पांव, बत्तीस दाँत, माथा नही लिख पायी।
६ राम लक्ष्मण खाना खाने बैठे तो ननद रोने लगी और शिकायत की कि तुम्हारे जन्म के बैरी का चित्र सीता ने खीचा है।

७ राम ने लक्ष्मण से कहा सीता को बाहर निकाल आओ।
८ जैसा व्रज मे
९ जैसा व्रज मे
१० जैसा व्रज मे
११ सीता के लव-कुश हुए
१२ वन का नाऊ दशरथ को तथा लक्ष्मण को रोचन देने गया।
१३ राम ने पूछा कि लक्ष्मण यह रोचन क्यो लाया है? भाभी के लव-कुश हुए हैं।
१४ लक्ष्मण देखते हैं, लव-कुश धनुषबाण से खेल रहे हैं।
१५ तुम किनके नाती-पोते हो? दशरथ के नाती, लक्ष्मण के भतीजे, माता सीता के पुत्र, पिता का नाम नही जानते।
१६ माँ अचल काढो, तुम्हारे कत आ रहे है।
१७ मैं ऐसे कत को नही देखूंगी।
१८ भाभी अयोध्या चलो।
१९ अयोध्या नही चलूंगी, पृथ्वी मे समा जाऊँगी।

पूर्वी

५ ननद की शपथ पर ओवरी मे लिपाकर चित्र बनाया, हाथ बनाये, पैर बनाये, नेत्र बनाये।
६ जैसा बुन्देली मे।
७ जैसा बुन्देलखण्डी मे।
८ जैसा व्रज मे।
९ लक्ष्मण दोना टांगकर चले गये। सीता सोकर उठीं।
१० जैसा व्रज मे।
११ सीता के पुत्र हुआ।
१२ जैसा बुन्देनी मे।
१२अ राजा दशरथ, कौशल्या, लक्ष्मण ने नाई को भेंट दी।
१३ राम सागर पर दांतुन कर रहे थे, लक्ष्मण यह टीका कैसे लगा है? भाभी के पुत्र हुए हैं। हे लक्ष्मण जाओ अपनी भाभी को ले आओ।

× × × ×

१४ लक्ष्मण भाभी के पास पहुँचे भाभी अयोध्या चलो।
१५ लक्ष्मण लौट जाओ हम घर नही चलेंगे।

व्रज मे सोभर के गीत से भिन्न एक दूसरा गीत है जिसमे उपरोक्त गीत से आगे का वह वृत्त जो बुन्देली मे मिलता है आता है।[1] राम-लक्ष्मण को लव-कुश

---

1 देखिए 'व्रज लोक-साहित्य का अध्ययन' का दूसरा अध्याय।

खेलते मिलते हैं। वे राम-लक्ष्मण को देखकर पानी लाते है। राम पूछते हैं, अपनी जात बताओ। बिना जात जाने पानी कैसे पीयें ? कौन तुम्हारे माँ-बाप हैं ? उन्होने कहा कि हमारी माता का नाम सीता है। पिता का नाम नही जानते। राम ने कहा चलो तुम्हारी माँ को देखें। सीता केश सुखा रही हैं। लडको ने कहा राम आ रहे हैं। घूंघट निकाल लो। सीता ने राम को आते देखा, वे पृथ्वी मे समा गयी। त्रिपाठी जी ने ग्रामगीतो मे इसी विषय से सम्बन्धित और भी दो-तीन गीत दिये है।[1] इनमें से एक तो सीता का वन मे दु ख कि सोने का छुरा कहाँ मिलेगा, तपस्विनियो का आकर उसे आश्वासन देना, अयोध्या मे दशरथ कौशल्या तथा लक्ष्मण के पास रोचन भेजना—लक्ष्मण से राम को पता चलना कि सीता के पुत्र हुआ है—गुरु वशिष्ठ का सीता को लेने जाना—सीता का कहना है कि हे गुरु, आपकी आज्ञा नही टाल सकती अत दस कदम अयोध्या की ओर चलूंगी। पर अयोध्या नही जाऊँगी और फाटक पर ही पृथ्वी मे समा जाऊँगी। दूसरे मे माघ की नौमी को राम ने यज्ञ रचा है, बिना सीता के सूना लगता है—गुरु सीता को लेने जाते हैं—पत्तो का दोना बनाकर गुरुजी को अर्घ्य देती है—गुरुजी उसकी प्रशसा करते हैं और कहते है कि तुमने राम को भुला दिया है—वह राम के व्यवहार को दुहराती हैं—मैं अयोध्या नही जाऊँगी, आपकी आज्ञा नहीं टाल सकती अत दो कदम अयोध्या की ओर चल लूंगी। तब राम स्वय गये—गुल्लीडण्डा खेलते दो बालक मिले उन्होंने परिचय मे कहा—

> बाप के नौवाँ न जानौं लखन के भतिजवा हो
> हम राजा जनक के हैं नतिया सीता के दुलरुआ हो।

राम रोने लगे—कदम के नीचे सीता बैठी बाल सुखा रही थी, सीता ने पीछे फिर के देखा, राम खडे हैं। राम ने कहा कि मन की ग्लानि दूर कर दो, पर सीता ने कुछ उत्तर नही दिया, पृथ्वी मे समा गयी।

इससे यह स्पष्ट विदित होता है कि पूर्वी तथा पश्चिमी दोनो हिन्दी प्रदेशो मे गीत की मूल-कथा प्राय ज्यो की त्यो प्रचलित है, और यह समस्त गीत जन्म के सस्कारो से गहरा सम्बन्ध रखता है।

विशेष तुलना से आवर्तन प्रतिशत

इन कुछ उदाहरणो से तुलनात्मक अध्ययन के केवल कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। वस्तुत तुलना का कार्य तभी समीचीन माना जायगा जबकि यह भौगोलिक प्रणाली से गाँव-गाँव से एक ही गीत के पाठो को लेकर की जाय। इसमे कथा-तन्तु तथा चरणो की शब्दावली मे आगम-लोप-विपर्यय ही नही देखना होगा, समस्त पाठों मे आवर्तन (frequency) गणना का प्रतिशत निकालना भी अपेक्षित होगा। इस आवर्तन से उस क्षेत्र का पता लगेगा, जहाँ वह सबसे अधिक प्रचलित है।

---

[1] देखिए क० कौ० ग्रा० गी० सोहर ५१, पृ० ६४ तथा सोहर २४, पृ० ४५।

लय का स्वरूप

केवल वस्तुगत अध्ययन से काम नही चलेगा । 'लय' के स्वरूप का भी अध्ययन होना चाहिए । लय के अध्ययन के लिए पहले तो गीत के लिप्यकन मे बहुत सावधानी बरती जानी चाहिए । इस अध्ययन मे चित्र रूपी लिप्यकन बहुत सहायक होता है । इसका उल्लेख हम ऊपर पृष्ठ १७३ पर कर आये हैं । पर इसी प्रसग मे पृष्ठ १७३ से पूर्व भी जो प्रणालियाँ दी गयी हैं, उनका सहारा भी लिया जा सकता है । तब तुलनापूर्वक विविध गीतों की गान-शैली का भेद हृदयगम किया जा सकता है ।

भाषा-विज्ञान ने ध्वनितत्त्व के अध्ययन के लिए वैज्ञानिक यन्त्रो का उपयोग करना आरम्भ कर दिया है । किसी गीत के लय-विधान को इन यन्त्रो मे से विशेषत 'काइमोग्राफ' या 'ढोल यान्त्रिक रेखन' यन्त्र के रेखनो से अकित किया जा सकता है । इन यत्र-चित्रो की पारस्परिक तुलना से भी 'गायन' की प्रकृति का भेद जाना जा सकता है । इसके लिए एक अच्छी ध्वनि प्रयोगशाला (Phonetic Laboratory) की आवश्यकता होगी ।

विविध गीतो के लिप्यकनो की तुलना करने से और भी लोक-क्षेत्रीय तथ्यो का उद्घाटन होगा । यह उद्घाटन ध्वनि विषयक लोक मानसिकता पर भी प्रकाश डाल सकेगा । ध्वनि के क्षेत्र मे लोक मानसिकता (Folk-psyche) की प्रक्रिया पर अभी कहीं भी ध्यान नही दिया गया है । पर आगे यह भी विज्ञान के अध्ययन का विषय बनेगा इसमे सन्देह नही ।

लय (रिद्म=Rythm)—ताल के विशेष आवर्तन-आरोह-अवरोह निश्चय ही हृदय और मानस की प्रक्रिया का परिणाम होते हैं और ये स्वय प्रभाव द्वारा परिणाम मे हृदय और मानस को उद्वेलन देते हैं । इनका अध्ययन मानव की पूर्ण सत्ता के मूल्याकन मे सहायक होगा ।

मनोविज्ञान का लोकवार्ता से यह सहयोग आगे एक अद्भुत शक्ति ग्रहण करेगा इसमे सन्देह नहीं । क्योकि सगीत की मोहनी का रहस्य और शक्ति जिन स्वर-मूलो से है, वे हाथ मे आ सकेंगे ।

शैलीगत अध्ययन

गीतों का शैलीगत अध्ययन भी होता है । शैलीगत अध्ययन मे शब्द-चयन, वाक्य-विन्यास, शब्द-विकार से अभिप्राय तथा शक्ति, शब्दार्थ तथा स्वर-ध्वनि सयोग आदि का ही समावेश नहीं होता, अलकारादि विषयक शास्त्रीय अध्ययन भी इसी के अन्तर्गत आता है । शब्द-प्रतीको का अध्ययन भी करना होता है । गीतो की टेको तथा आरम्भ और अन्त स्वय अध्ययन की चीजें हैं ।

रस-परिपाक की शैली और सामग्री भी लोक-साहित्य मे ध्यान देने योग्य होती है ।

इन पर विस्तार से यहाँ लिखने का आज अवकाश नहीं । हिन्दी मे शैली-तत्त्व पर नयी दृष्टि से पूर्ण विचार करने के लिए एक पृथक् ग्रन्थ ही अपेक्षित है ।

तेरहवाँ अध्याय

लोकोक्ति साहित्य

प्रासगिक

लोक-साहित्य के जिन दो बडे विभागो पर हमने बात की है उनमे लोक-मानस के उस स्वरूप की प्रतिष्ठा मिलती है, जिस स्वरूप मे लोक-मानस अपनी अभिव्यक्ति विस्तार के साथ करना चाहता है और जिसमे उसका आन्तरिक, आनुष्ठानिक और मनोरजनपरक अभिप्राय निहित है। किन्तु ऐसा भी साहित्य है, जिसमे अभिव्यक्ति का इतना विस्तार नही, और जिसका अभिप्राय कथा अथवा गीत की तरह किसी बात को बात के आनन्द के लिए कहने की प्रवृत्ति मे कम मिलता है। किन्तु जिसमे बहुत सक्षेप मे कुछ व्यवहार विषयक बातो को प्रकट करने की प्रवृत्ति विशेष होती है। जिसमे कथा-तत्त्व बहुत लघु होता है अथवा नही भी होता है। जिसमे लय और तान या ताल न होकर सन्तुलित स्पन्दनशीलता ही होती है। ऐसी रचनाओ को शास्त्रीय दृष्टि से मुक्तक कह सकते हैं। इन मुक्तको के कितने ही भेद मिलते हैं।

मुक्तक

१—बहुत बडा भाग इन मुक्तको मे से कहावतो का है।

२—पहेलियो का।

कहावतें

कहावतो और पहेलियो में दो पृथक्-पृथक् रूप के मानस अभिव्यक्त होते हैं। कहावतें बहुधा व्यवहार से सम्बन्ध रखती हैं और व्यवहार में कितने ही प्रकार के मानसिक रग-रूपो का प्रवेश होता है। इसलिए कहावतो के कितने ही रूप हो सकते हैं। व्रज मे परसोकले, अनमिल्ले, गहगड्ड, ओलना आदि ऐसी ही कहावतो के रूप हैं। जिनमे से किसी में गभीर व्यग्य, उपहास, चुटकी, कटाक्ष, दोष-दर्शन, व्याज-स्तुति, व्याज-निन्दा विषयक मनोभाव व्यक्त हुए हैं।

व्रज की ही भाँति समस्त विश्व के लोक क्षेत्रो मे इसी प्रकार के विविध कहावतो के स्वरूप मिलते हैं। जिनका अध्ययन लोक-मानस के व्यवहार-पक्ष की दृष्टि से अत्यन्त ही मनोरजक होता है। इनका अध्ययन लोकवार्ता साहित्य की दृष्टि से भी उपयोगी है। क्योकि इन कहावतो मे बहुत-सी ऐसी अभिव्यक्तियाँ हैं, जिनमे जातीय-तत्त्व की प्रधानता रहती है। 'रिजले' (Risley) ने 'पिपुल्स ऑव इण्डिया' नामक पुस्तक मे ऐसी कहावतो का कुछ सग्रह दिया है, जिनमे भारत की विविध

लय का स्वरूप

केवल वस्तुगत अध्ययन से काम नही चलेगा। 'लय' के स्वरूप का भी अध्ययन होना चाहिए। लय के अध्ययन के लिए पहले तो गीत के लिप्यकन में बहुत सावधानी बरती जानी चाहिए। इस अध्ययन मे चित्र रूपी लिप्यकन बहुत सहायक होता है। इसका उल्लेख हम ऊपर पृष्ठ १७३ पर कर आये हैं। पर इसी प्रसग मे पृष्ठ १७३ से पूर्व भी जो प्रणालियाँ दी गयी है, उनका सहारा भी लिया जा सकता है। तब तुलनापूर्वक विविध गीतो की गान-शैली का भेद हृदयगम किया जा सकता है।

भाषा-विज्ञान ने ध्वनितत्त्व के अध्ययन के लिए वैज्ञानिक यन्त्रो का उपयोग करना आरम्भ कर दिया हैं। किसी गीत के लय-विधान को इन यन्त्रो मे से विशेषत 'काइमोग्राफ' या 'ढोल यान्त्रिक रेखन' यन्त्र के रेखनो से अकित किया जा सकता है। इन यत्र-चित्रो की पारस्परिक तुलना से भी 'गायन' की प्रकृति का भेद जाना जा सकता है। इसके लिए एक अच्छी ध्वनि प्रयोगशाला (Phonetic Laboratory) की आवश्यकता होगी।

विविध गीतो के लिप्यकनो की तुलना करने से और भी लोक-क्षेत्रीय तथ्यो का उद्घाटन होगा। यह उद्घाटन ध्वनि विषयक लोक मानसिकता पर भी प्रकाश डाल सकेगा। ध्वनि के क्षेत्र मे लोक मानसिकता (Folk-psyche) की प्रक्रिया पर अभी कही भी ध्यान नही दिया गया है। पर आगे यह भी विज्ञान के अध्ययन का विषय बनेगा इसमे सन्देह नही।

लय (रिद्म=Rythm)—ताल के विशेष आवर्तन-आरोह-अवरोह निश्चय ही हृदय और मानस की प्रक्रिया का परिणाम होते हैं और ये स्वय प्रभाव द्वारा परिणाम में हृदय और मानस को उद्वेलन देते हैं। इनका अध्ययन मानव की पूर्ण सत्ता के मूल्याकन मे सहायक होगा।

मनोविज्ञान का लोकवार्ता से यह सहयोग आगे एक अद्भुत शक्ति ग्रहण करेगा इसमे सन्देह नही। क्योंकि सगीत की मोहनी का रहस्य और शक्ति जिन स्वर-मूलो से है, वे हाथ मे आ सकेंगे।

शैलीगत

गीतो का शैलीगत अध्ययन भी होता है। शैलीगत अध्ययन मे शब्द-चयन, वाक्य-विन्यास, शब्द-विकार से अभिप्राय तथा शक्ति, शब्दार्थ तथा स्वर-ध्वनि सयोग आदि का ही समावेश नही होता, अलकारादि विषयक शास्त्रीय अध्ययन भी इसी के अन्तर्गत आता है। शब्द-प्रतीको का अध्ययन भी करना होता है। गीतो की टेको तथा आरम्भ और अन्त स्वय अध्ययन की चीजें हैं।

रस-परिपाक की शैली और सामग्री भी लोक-साहित्य मे ध्यान देने योग्य होती है।

इन पर विस्तार से यहाँ लिखने का आज अवकाश नही। हिन्दी मे शैली-तत्त्व पर नयी दृष्टि से पूर्ण विचार करने के लिए एक पृथक् ग्रन्थ ही अपेक्षित है।

तेरहवाँ अध्याय

लोकोक्ति साहित्य

प्रासंगिक

लोक-साहित्य के जिन दो बड़े विभागो पर हमने बात की है उनमे लोक-मानस के उस स्वरूप की प्रतिष्ठा मिलती है, जिस स्वरूप में लोक-मानस अपनी अभिव्यक्ति विस्तार के साथ करना चाहता है और जिसमे उसका आन्तरिक, आनुष्ठानिक और मनोरंजनपरक अभिप्राय निहित है। किन्तु ऐसा भी साहित्य है, जिसमे अभिव्यक्ति का इतना विस्तार नही, और जिसका अभिप्राय कथा अथवा गीत की तरह किसी बात को बात के आनन्द के लिए कहने की प्रवृत्ति मे कम मिलता है। किन्तु जिसमे बहुत संक्षेप मे कुछ व्यवहार विषयक बातो को प्रकट करने की प्रवृत्ति विशेष होती है। जिसमे कथा-तत्त्व बहुत लघु होता है अथवा नही भी होता है। जिसमें लय और तान या ताल न होकर सन्तुलित स्पन्दनशीलता ही होती है। ऐसी रचनाओं को शास्त्रीय दृष्टि से मुक्तक कह सकते हैं। इन मुक्तको के कितने ही भेद मिलते हैं।

मुक्तक

१—बहुत बड़ा भाग इन मुक्तको मे से कहावतों का है।

२—पहेलियो का।

कहावतें

कहावतो और पहेलियो मे दो पृथक्-पृथक् रूप के मानस अभिव्यक्त होते हैं। कहावतें बहुधा व्यवहार से सम्बन्ध रखती हैं और व्यवहार मे कितने ही प्रकार के मानसिक रंग-रूपो का प्रवेश होता है। इसलिए कहावतों के कितने ही रूप हो सकते हैं। ब्रज में परसोकले, अनमिल्ले, गड़बड्ड, ओलना आदि ऐसी ही कहावतो के रूप हैं। जिनमे से किसी में गंभीर व्यंग्य, उपहास, चुटकी, कटाक्ष, दोष-दर्शन, व्याज-स्तुति, व्याज-निन्दा विषयक मनोभाव व्यक्त हुए हैं।

ब्रज की ही भाँति समस्त विश्व के लोक क्षेत्रो मे इसी प्रकार के विविध कहावतो के स्वरूप मिलते हैं। जिनका अध्ययन लोक-मानस के व्यवहार-पक्ष की दृष्टि से अत्यन्त ही मनोरंजक होता है। इनका अध्ययन लोकवार्ता साहित्य की दृष्टि से भी उपयोगी है। क्योकि इन कहावतो मे बहुत-सी ऐसी अभिव्यक्तियाँ हैं, जिनमे जातीय-तत्त्व की प्रधानता रहती है। 'रिजले' (Risley) ने 'पिपुल्स ऑव इण्डिया' नामक पुस्तक में ऐसी कहावतों का कुछ संग्रह दिया है, जिनमे भारत की विविध

जातियो के विषय मे लोक-मानस की मनोवृत्ति तो समाविष्ट है ही, उस जाति विशेष के गुण और अवगुण भी जिनसे प्रकट होते है। इस प्रकार नृविज्ञान की दृष्टि मे कहावतो का अध्ययन आवश्यक हो जाता है। किन्तु साहित्यकार की दृष्टि में इन कहावतो का मूल्य जातीय-तत्त्वो की दृष्टि से उतना नही है जितना उनमे हुई अभिव्यक्ति, मानसिक वैविध्य, उक्ति वैशिष्ट्य और प्रभाव बोधकता से है। कहावतो के क्षेत्र मे आकर ही हम लोक अनुभूति के अर्थ गौरव को और उसकी व्यावहारिक पैनी दृष्टि को यथार्थत समझ पाते हैं। लोकोक्तियाँ मानवी ज्ञान का सार हैं। ये मर्म को स्पष्ट करती है और थोडे मे ही बहुत कह देने की सूत्र प्रणाली को साधारण लोक मे बनाये हुए हैं। इनमे नीति तो होती ही है। ग्रामीण दर्शन भी होता है। ये गाँवो के ज्ञान-कोष का भी काम करती है। पशुओ तथा कृषि मे सम्बन्ध रखने वाली अनेक प्रामाणिक सूचनाएँ इनमे भरी पडी हैं। इस प्रकार कहावतो मे हम लोक-मानस के कितने ही पक्षो का साक्षात्कार कर सकते हैं। ये कहावतें लोक-जीवन के यथार्थ पक्ष से निबद्ध होती हैं। अतएव इनकी उपयोगिता लोक व्यवहार मे पद-पद पर दिखायी पडती है। ब्रज की कहावतो का विश्लेषण करते हुए ब्रज लोक-साहित्य के अध्ययन मे हमने कहावतो मे मिलने वाली कितनी ही दृष्टियो का उल्लेख किया है। सक्षेप में, उन्हें उदाहरणार्थ यहाँ दिया जाता है।

कहावतो में विविध दृष्टियाँ

एक दृष्टि है अर्थ पोषण की। इन कहावतो मे हमे दो भेद मिलते हैं एक तो मात्र तथ्य कथन—जैसे गाय न बाछी नीद आवे आछी। दूसरा सामान्य से विशेष अथवा विशेष से सामान्य की पुष्टि। दूसरे शब्दो मे, पुष्टि विषयक उक्ति से सम्बन्ध रखने वाली कहावत।

दूसरी दृष्टि शिक्षक की है। ऐसी कहावतो मे कोई न कोई शिक्षा रहती है। यह शिक्षा एक तो नीति विषयक हो सकती है, दूसरे ज्ञान विषयक हो सकती है।

नीति विषयक मे— आरकस नीद किसाने खोवै, चोरै खोवै खाँसी।
टका ब्याज बैरागी खोवै, राडै खोवै हासी॥

और ज्ञान विषयक मे—गुनि घटि गए गाजर खाये ते,
बल बढ गयो बाल चबायें ते,

—जैसी कहावतें समाविष्ट होगी।

तीसरी दृष्टि है आलोचना की। ऐसी कहावतो मे किसी वस्तुस्थिति की गम्भीर और कटु आलोचना निहित रहती है। इसमे अनेक मानसिक तथ्यो के प्रकट होने की विशेष सम्भावना रहती है। 'गैल में हँसे और आँख नटेरे' 'उल्टौ चोर कोतवालै डाटै', 'घर मे वैद मरी मैया', 'गदहा दैयो नोन, गदहा ने जानि आँख फोरी'—जैसी कहावतो मे आलोचना के साथ मानसिक वैभिन्य देखा जा सकता है।

चौथी दृष्टि सूचना विषयक होती है। इनमे ऋतु, खेत, व्यवसाय और व्यवहार आदि के लिए उपयोगी परामर्शदात्री ज्ञान सामग्री का समावेश रहता है। 'बुध वामनी, शुक्र लामनी' ऐसी ही कहावत है।

तीन भेद

इन कहावतो अथवा लोकोक्तियो के साधारणत हम तीन भेद कर सकते है। १—गम्भीर कथन से सम्बन्ध रखने वाली सामान्य कहावतें जिन पर कुछ विस्तृत विचार ऊपर हो चुका है। २—गम्भीर कथन विषयक स्थान अथवा लोक विशिष्ट कहावतें। सामान्य कहावतो का क्षेत्र बहुत व्यापक होता है। उनमे गर्भित अभिप्राय प्राय सभी क्षेत्रो मे मिलने वाली कहावतो मे मिल सकता है। किन्तु कुछ कहावतें स्थान-विशेष अथवा जाति-विशेष मे ही मिलती हैं और उनका उद्भव भी उस स्थल अथवा जाति विषयक किसी विशिष्ट घटना से होता है। उदाहरणत लज्जावारी देना अथवा सीजी की दुकान—जैसी कहावतें ब्रज के लोहवन गाँव मे ही बोली और समझी जा सकती हैं। क्योकि इनका सम्बन्ध उस स्थान विशेष के व्यक्तियो के किसी व्यवहार से ही है। ऐसी कहावतो मे कभी कभी स्थानीय प्रतीको के प्रयोग के द्वारा सामान्य अर्थ की अभिव्यक्ति भी होती है। केवल प्रतीक वैशिष्ट्य के कारण ही इन्हे स्थानीय कहा जा सकता है। अर्थ की दृष्टि से नही।

तीसरा भेद लोकोक्तियो का वह है जिसे शैली वक्र लोकोक्तियाँ कह सकते हैं। जैसा कि नाम से प्रकट किया है, इन लोकोक्तियो मे बात कहने की वक्रतापूर्ण ढग की विशेषता रहती है। ऐसी वक्र लोकोक्तियाँ सभी बोलियो मे मिल सकती हैं। ब्रज के उदाहरण से हम इन्हे सात प्रकार की कह सकते हैं। ब्रज लोक-साहित्य के अध्ययन मे हमने विस्तारपूर्वक उनका उल्लेख किया है। सक्षेप मे

(१) अनमिल्ला, (२) भेरि, (३) अचका, (४) औठपाव, (५) गहगड्ड, (६) ओलना, (७) खुसि। ये सभी लोकोक्तियाँ पद्यबद्ध होती है। इनको साधारणत वक्रोक्ति गर्भित लोकोक्तियाँ कह सकते हैं। क्योंकि लोक-मानस अन्य कहावतो की तरह इनमे अपने कथन को किसी न किसी वक्रता के साथ कहना चाहता है। उस वक्रता मे वह अद्भुत और अतिशय तो प्रस्तुत रहता ही है, कथित वस्तु गम्भीर अथवा ज्ञान-प्रदायक होते हुए भी एक ऐसे ग्रामीण हल्केपन का समावेश भी इसमे रहता है कि उक्त समस्त तत्वो के सघटन से अन्य अभिप्रायो के साथ हास्य भी गुम्फित हो जाता है। ऐसी अभिव्यक्तियाँ प्रत्येक भाषा और जाति के लोक-साहित्य मे किसी न किसी परिमाण मे मिलती ही है। अभी हिन्दी मे लोकोक्तियों मे वैज्ञानिक अध्ययन का आरम्भ नही हुआ। कही-कही छिटपुट प्रयत्न हुए है। आवश्यकता इस बात की है कि सबसे पहले लोकोक्तियो का सग्रह किया जाय। समस्त जनपदों के ऐसे सग्रह जब प्रस्तुत हो जायँ तब उनका सतुलित अध्ययन करके वर्गीकरण किया जाय।

लोकोक्तियों में पर्त

इन लोकोक्तियो मे वर्गीकरण करते समय विदित होगा कि पाँच पर्तं एक के

ऊपर एक बिछे हुए है। एक पर्त ऐसी लोकोक्तियो का होगा जो सार्वभौम मान्यता रखती होगी। इन लोकोक्तियो का रूप-विधान, शिल्प-विधान और अर्थ-विधान समस्त भाषाओ और देशो मे केवल भाषा के रूपान्तर से विद्यमान मिलेगा। इन कहावतो को सार्वभौम सामान्य लोकोक्तियाँ कह सकते है। दूसरा पर्त ऐसी कहावतो का होगा जो भारत भर मे हो। ऐसी लोकोक्तियो को देश सामान्य लोकोक्तियाँ कह सकते हैं। तीसरा पर्त ऐसी लोकोक्तियो का होगा जिनमे जातिगत वैशिष्ट्य होगा। ये लोकोक्तियाँ जिस भाषा मे मिलती हैं उस भाषा के जातीय क्षेत्र मे वे सामान्यत सर्वत्र प्रचलित मिलेंगी। जैसे—हिन्दी मे ऐसी लोकोक्तियाँ मिल सकती हैं जो भारतीय आर्य भाषाओ मे सर्वत्र समान रूप से प्रचलित हो। केवल साधारण रूप-भेद हो। चौथा पर्त इन लोकोक्तियो मे जनपदीय पर्त हो सकता है। जिसमे बोली के क्षेत्र मे ही मिलने वाली कहावतें स्थान पा सकेंगी। पाँचवें पर्त मे वे कहावतें आयेगी जिनमे ग्राम-विशेष अथवा स्थान-विशेष की विशेषता ही लक्षित होगी और जो उसी क्षेत्र के लिए सार्थक होगी। हिन्दी मे लोकवार्ता साहित्य के अध्येता को ये समस्त प्रयत्न और अध्ययन करने की अत्यन्त आवश्यकता है।

सग्रह

इस सम्बन्ध मे लोकवार्ता साहित्य के सग्रह का प्रश्न सबसे महत्त्वपूर्ण है। इस सम्बन्ध मे मार्ग्रेट ब्रायन (Margret M Brayan) ने जिन बातो की ओर ध्यान दिलाया है वे ये हैं १—कोई भी कहावत या मुहावरा जिसमे कोई ज्ञान गर्भित हो अथवा किसी अलकार का समावेश हो, उपमा अथवा रूपक का हो, सभी को सग्रह कर लेना चाहिए। जितना अधिक सग्रह हो सके उतना ही अच्छा। जहाँ यह सन्देह हो कि किसी एक विशेष कथन का सग्रह किया जाय या नही, तो उसका भी सग्रह कर लेना ही उचित है। क्योंकि जो अनावश्यक हैं, उनको बाद मे छाँटा जा सकता है। किन्तु यदि किसी क्षेत्र की कोई कहावत सग्रह मे आने से रह गयी, तो वह एक बडी हानि हो सकती है। उक्त महोदय ने लोक कहावतो के ७ रूप उदाहरणार्थ प्रस्तुत किये हैं, जो इस प्रकार हैं

(१) ऐसी लोक कहावतें जो पूरे वाक्य के रूप मे होती हैं। हिन्दी से यदि उदाहरण लिया जाय, तो 'जो गरजते हैं, वे बरसते नही।'

(२) विद्वानो द्वारा निर्मित पूरे वाक्यो के रूप मे अभिव्यक्त होने वाली कहावतें—उदाहरणार्थ—शरीर माद्यम् खलु धर्म साधनम्।

(३) सतुक कहावतें—उत्तम खेती मध्यम बान,
निकृष्ट चाकरी भीख निदान

(४) मुहावरे वाली कहावतें जो एक पूर्ण वाक्य नही होती, जिसमे क्रिया की प्रधानता होती है, जो कि क्रियार्थक सज्ञा (इनफिनिटिव) रूप मे आती है और जिसमे प्रथम सज्ञा महत्त्वपूर्ण होती है। जैसे—खीसें निपोरना।

(५) ऐसे-ऐसे मुहावरे जिनमे क्रिया न हो। जैसे—'आकाश कुसुम'।

(६) तुलना और उपमा से युक्त कहावतें। जैसे—'काजल से काली'।

(७) वेलरिज्मा वेलर दि किंग्स (Weller the kings) 'पिकविक पेपर्स' (Pickwick papers) मे एक पात्र है, जो अद्भुत रूप से कहावतो का उपयोग करता है। ऐसी कहावतें वह चुनता है जो बहुत प्रचलित हैं और उनका प्रयोग वह कुछ उपहास और व्यग्य की दृष्टि से करता है। अत ऐसी कहावतें जो कि वेलर की शैली मे कही गयी हो, इस वर्ग के अन्तर्गत आयेंगी।

(८) आधुनिक व्यग्य हास्यपूर्ण कहावतें तथा तुकें।

यह स्पष्ट है कि लोकोक्तियो का यह वर्गीकरण भारतीय कहावतो के लिए उतना उपयुक्त नही है। किन्तु इससे यह सकेत मिल सकता है कि किस प्रकार के लोक कथन को हमे लोकोक्तियो की दृष्टि से अध्ययन करने के लिए एकत्र करना चाहिए। यहाँ यह बात भी ध्यान रखने की है कि लोकोक्तियो की दो परम्पराएँ बनती हैं एक साहित्यिक परम्परा और दूसरे लोक परम्परा। लोक-साहित्य के विद्यार्थी को साहित्यिक परम्परा वाली कहावतो को अलग निकाल देना होगा। उसे केवल लोक-परम्परा की कहावतो को ही अपने अध्ययन का विषय बनाना होगा। लोक-कहावतो को लिपिबद्ध करने के लिए भी उक्त महोदय ने आठ नियमो का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार हैं

(१) तीन इच चौडी और पाँच इच लम्बी चिटों का उपयोग कीजिए। या तो उन पर स्याही से लिखिए या टाइपराइटर से।

(२) प्रत्येक कहावत को एक पृथक चिट पर लिखिए, उसी रूप मे जिस रूप मे आपने उसे सुना है। परिमार्जन मत कीजिए। यदि आपने उसी कहावत के अन्य रूप भी सुने हो, तो उनका भी उल्लेख कर दीजिए।

(३) साथ ही कोई अन्य उपयोगी सूचना हो तो उसे भी दीजिए। जैसे—कहाँ, कब और किसके द्वारा उस कहावत का प्रयोग हुआ था। इस तथ्य का निश्चयात्मक रूप से उल्लेख कीजिए कि वह कहावत, किसी विशेष विदेशी, सामाजिक धार्मिक, औद्योगिक अथवा अन्य समुदाय के लिए विलक्षण तो नही है। यदि आवश्यक हो, तो उसका अर्थ भी लिख दीजिए।

(४) ऊपर बायें किनारे पर उस कहावत का जो सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण शब्द हो—बहुधा जो सज्ञा के रूप मे होगा (कभी-कभी क्रिया अथवा विशेषण के रूप मे होगा) उसे लिख दीजिए।

(५) ऊपर सीधे कोने मे उस प्रदेश का नाम लिखिए जहाँ से सबसे पहले उसका सग्रह किया गया है।

(६) यदि आप उसके अर्थ को भली प्रकार नही समझते तो कार्ड पर कहावत अथवा लोकोक्ति और उसके अर्थ को कोष्ठकों मे कर दीजिए। इस कहावत अथवा लोकोक्ति के सम्बन्ध मे जो अन्य ज्ञातव्य बातें हो इनका भी उल्लेख कीजिए। जैसे—

ऊपर एक बिछे हुए हैं । एक पर्त ऐसी लोकोक्तियों का होगा जो सार्वभौम मान्यता रखती होगी । इन लोकोक्तियों का रूप-विधान, शिल्प-विधान और अर्थ-विधान समस्त भाषाओं और देशों में केवल भाषा के रूपान्तर से विद्यमान मिलेगा । इन कहावतों को सार्वभौम सामान्य लोकोक्तियाँ कह सकते है । दूसरा पर्त ऐसी कहावतों का होगा जो भारत भर मे हो । ऐसी लोकोक्तियो को देश सामान्य लोकोक्तियाँ कह सकते हैं । तीसरा पर्त ऐसी लोकोक्तियों का होगा जिनमे जातिगत वैशिष्ट्य होगा । ये लोकोक्तियाँ जिस भाषा मे मिलती है उस भाषा के जातीय क्षेत्र मे वे सामान्यत सर्वत्र प्रचलित मिलेंगी । जैसे—हिन्दी मे ऐसी लोकोक्तियाँ मिल सकती हैं जो भारतीय आर्य भाषाओ मे सर्वत्र समान रूप से प्रचलित हो । केवल साधारण रूप-भेद हो । चौथा पर्त इन लोकोक्तियो मे जनपदीय पर्त हो सकता है । जिसमे बोली के क्षेत्र मे ही मिलने वाली कहावतें स्थान पा सकेंगी । पाँचवें पर्त मे वे कहावतें आयेंगी जिनमे ग्राम-विशेष अथवा स्थान-विशेष की विशेषता ही लक्षित होगी और जो उसी क्षेत्र के लिए सार्थक होगी । हिन्दी मे लोकवार्ता साहित्य के अध्येता को ये समस्त प्रयत्न और अध्ययन करने की अत्यन्त आवश्यकता है ।

सग्रह

इस सम्बन्ध मे लोकवार्ता साहित्य के सग्रह का प्रश्न सबसे महत्त्वपूर्ण है । इस सम्बन्ध मे मार्ग्रेट ब्रायन (Margret M Brayan) ने जिन बातो की ओर ध्यान दिलाया है वे ये हैं १—कोई भी कहावत या मुहावरा जिसमे कोई ज्ञान गर्भित हो अथवा किसी अलकार का समावेश हो, उपमा अथवा रूपक का हो, सभी को सग्रह कर लेना चाहिए । जितना अधिक सग्रह हो सके उतना ही अच्छा । जहाँ यह सन्देह हो कि किसी एक विशेष कथन का सग्रह किया जाय या नही, तो उसका भी सग्रह कर लेना ही उचित है । क्योकि जो अनावश्यक हैं, उनको बाद मे छाँटा जा सकता है । किन्तु यदि किसी क्षेत्र की कोई कहावत सग्रह मे आने से रह गयी, तो वह एक बडी हानि हो सकती है । उक्त महोदय ने लोक कहावतो के ७ रूप उदाहरणार्थ प्रस्तुत किये हैं, जो इस प्रकार है

(१) ऐसी लोक कहावतें जो पूरे वाक्य के रूप मे होती हैं । हिन्दी से यदि उदाहरण लिया जाय, तो 'जो गरजते हैं, वे बरसते नही ।'

(२) विद्वानो द्वारा निर्मित पूरे वाक्यो के रूप मे अभिव्यक्त होने वाली कहावतें—उदाहरणार्थ—*शरीर माद्यम् खलु धर्म साधनम्* ।

(३) सतुक कहावतें—उत्तम खेती मध्यम बान,
निकृष्ट चाकरी भीख निदान

(४) मुहावरे वाली कहावतें जो एक पूर्ण वाक्य नही होती, जिसमे क्रिया की प्रधानता होती है, जो कि क्रियार्थक सज्ञा (इनफिनिटिव) रूप मे आती है और जिसमे प्रथम सज्ञा महत्त्वपूर्ण होती है । जैसे—खीसें निपोरना ।

(५) ऐसे-ऐसे मुहावरे जिनमे क्रिया न हो । जैसे—'आकाश कुसुम' ।

(६) तुलना और उपमा से युक्त कहावतें । जैसे—'काजल से काली' ।

(७) वेलरिज्मा वेलर दि किंग्स (Weller the kings) 'पिकविक पेपर्स' (Pickwick papers) मे एक पात्र है, जो अद्‌भुत रूप से कहावतो का उपयोग करता है । ऐसी कहावतें वह चुनता है जो बहुत प्रचलित हैं और उनका प्रयोग वह कुछ उपहास और व्यग्य की दृष्टि से करता है । अत ऐसी कहावतें जो कि वेलर की शैली मे कही गयी हो, इस वर्ग के अन्तर्गत आयेंगी ।

(८) आधुनिक व्यग्य हास्यपूर्ण कहावतें तथा तुकें ।

यह स्पष्ट है कि लोकोक्तियो का यह वर्गीकरण भारतीय कहावतो के लिए उतना उपयुक्त नही है । किन्तु इससे यह सकेत मिल सकता है कि किस प्रकार के लोक कथन को हमे लोकोक्तियो की दृष्टि से अध्ययन करने के लिए एकत्र करना चाहिए । यहाँ यह बात भी ध्यान रखने की है कि लोकोक्तियो की दो परम्पराएँ बनती हैं एक साहित्यिक परम्परा और दूसरे लोक परम्परा । लोक-साहित्य के विद्यार्थी को साहित्यिक परम्परा वाली कहावतो को अलग निकाल देना होगा । उसे केवल लोक-परम्परा की कहावतो को ही अपने अध्ययन का विषय बनाना होगा । लोक-कहावतो को लिपिबद्ध करने के लिए भी उक्त महोदय ने आठ नियमो का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार हैं

(१) तीन इच चौडी और पाँच इच लम्बी चिटो का उपयोग कीजिए । या तो उन पर स्याही से लिखिए या टाइपराइटर से ।

(२) प्रत्येक कहावत को एक पृथक चिट पर लिखिए, उसी रूप में जिस रूप मे आपने उसे सुना है । परिमार्जन मत कीजिए । यदि आपने उसी कहावत के अन्य रूप भी सुने हो, तो उनका भी उल्लेख कर दीजिए ।

(३) साथ ही कोई अन्य उपयोगी सूचना हो तो उसे भी दीजिए । जैसे—कहाँ, कब और किसके द्वारा उस कहावत का प्रयोग हुआ था । इस तथ्य का निश्चयात्मक रूप से उल्लेख कीजिए कि वह कहावत, किसी विशेष विदेशी, सामाजिक धार्मिक, औद्योगिक अथवा अन्य समुदाय के लिए विलक्षण तो नही है । यदि आवश्यक हो, तो उसका अर्थ भी लिख दीजिए ।

(४) ऊपर बायें किनारे पर उस कहावत का जो सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण शब्द हो—बहुधा जो सज्ञा के रूप मे होगा (कभी-कभी क्रिया अथवा विशेषण के रूप मे होगा) उसे लिख दीजिए ।

(५) ऊपर सीधे कोने मे उस प्रदेश का नाम लिखिए जहाँ से सबसे पहले उसका सग्रह किया गया है ।

(६) यदि आप उसके अर्थ को भली प्रकार नही समझते तो कार्ड पर कहावत अथवा लोकोक्ति और उसके अर्थ को कोष्ठको मे कर दीजिए । इस कहावत अथवा लोकोक्ति के सम्बन्ध मे जो अन्य ज्ञातव्य बातें हो इनका भी उल्लेख कीजिए । जैसे—

मूलत यह किस भाषा से आयी है, किस अवसर पर सुनी गयी अथवा किस पुस्तक या पत्रिका से इसे उतारा गया।

(७) सावधानी से उसके समस्त लिखित स्रोतो का उल्लेख कीजिए। उसके लेखक का पूरा नाम दीजिए। पुस्तक अथवा पाण्डुलिपि का पूरा नाम दीजिये। प्रकाशन का वर्ष अथवा लिखे जाने का वर्ष लिखिए। पुस्तक अथवा पाण्डुलिपि की पृष्ठ सख्या दीजिए, यदि उसमे पृष्ठ सख्या पडी हो।

(८) इस कार्ड की पीठ पर अपना नाम और पता भी दे दीजिए, जिसमे आपके योगदान का श्रेय आपको दिया जा सके। रबर की मुहर इसके लिए सुविधाजनक हो सकती है।

हिन्दी क्षेत्र मे अभी ऐसी वैज्ञानिक सस्थाएँ प्राय नही हैं, जो लोकवार्ता और लोक-साहित्य के विषय मे वैज्ञानिक कार्य कर रहे हो। और फिर भी ब्रजभाषा से सम्बन्ध रखने वाली सस्था ब्रज-साहित्य-मण्डल एक ऐसी सस्था अवश्य है जो इस प्रकार का कार्य कर रही है और इस प्रकार से लोकोक्तियो को सग्रह करने वाले व्यक्ति अपने सग्रह ब्रज-साहित्य-मण्डल, मथुरा के मन्त्री को भेज सकते हैं। जहाँ उसका आवश्यक वर्गीकरण हो सकता है।

कहावतों का जन्म

लोक कहावतो के सम्बन्ध मे इतनी चर्चा के उपरान्त इसके दूसरे अग पर विचार करना समीचीन होगा। यहाँ पर थोडा-सा विचार कहावतो के उद्भव पर भी कर लेना आवश्यक है। कुछ लोगो का अनुमान है कि कहावत मे सूत्रशैली मिलती है। अत इनका जन्म सूत्रकाल मे हुआ होगा। उस युग मे जिसमे पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी लिखी थी। इस युग मे सूत्र रचना की ओर बहुत प्रवृत्ति थी। सम्भवत उसी प्रवृत्ति के फलस्वरूप लोक-मानस ने भी सूत्रशैली मे अपनी अभिव्यक्ति की। यह दृष्टिकोण समीचीन नही माना जा सकता। क्योकि एक तो सूत्रकाल से पूर्व ही कहावतो का प्रयोग मिल सकता है। वेदो तक मे ऐसे प्रयोग हैं। जिन्हें कहावत अथवा लोकोक्ति माना जा सकता है। दूसरे सूत्रशैली मे जिस उच्च बौद्धिकता और शब्द अधिकार का पता चलता है, वह इन लोकोक्तियो मे साधारणतया नही मिलता। लोकोक्ति साधारणत लोक की काम चलाऊ अभिव्यक्तियाँ हैं। बहुत सीधे-सादे शब्दो मे लघुतम रूप मे अपने भावो को प्रकट करने की चेष्टा में व्यवहार दृष्टि से उपयोगी बनने के लिए इनका जन्म हुआ होगा। अत सूत्रकाल के घोर बौद्धिक और पाण्डित्य-पूर्ण वातावरण से इनके जन्म का सम्बन्ध नही जोडा जा सकता। फिर भी इनमे कोई सन्देह नही कि कहावतें शुद्ध आदिम मानव के मानस से उद्भूत भी नही मानी जा सकतीं। जैसी कि लोक-कहानियाँ अथवा लोक-गीत नाम की चीजें मानी जा सकती हैं, क्योकि लोक-मानस-चित्रो (इमेजेज) की छाप तो सहज ही ग्रहण कर लेता है और इन्हे वह गीत और कहानियो मे प्रकट करता है। मानव-चित्रो से ऊपर उठकर बौद्धिक भावतत्त्वो के सयोजन के लिए जिस स्थिति की आवश्यकता है, वह स्थिति आदिम

मानस की अन्तिम विकास कोटि की सीमा पर पहुँचती है। वहाँ से जन्म लेकर ये कहावतें निरन्तर ऐतिहासिक विकास के साथ विकसित होती गयी है और वढती गयी हैं। कहावतो का क्षेत्र गीतो और कहानियो मे भिन्न व्यवहार और व्यवसाय का क्षेत्र है।

पहेली

अव हम लोकोक्तियो के दूसरे भेद पर विचार कर सकते हैं, जिन्हें पहेली नाम दिया जाता है और अगरेजी मे रिडिल (Riddle)।

पहेली-बुझौवल नृविज्ञान की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आनुष्ठानिक कर्म रहा विदित होता है। जैसा कि फ्रेजर ने गोल्डेन वाउ मे विविध आदम जातियो मे विविध सकट और सशय के क्षणो में पहेली-बुझौवल की सत्ता के उदाहरण दिये हैं। फलत पहेलियो का महत्त्व वहुत अधिक है और निश्चय ही इनका जन्म व्यावहारिक कहावतो से पूर्व आदिम मानस मे लोक-कहानियो और लोक-गीतो की तरह से ही हुआ होगा। इनके प्रमाण भी इतिहास मे ईस्वी पूर्व से कई हजार वर्ष पहले से हमे मिलते हैं। भारतीय दृष्टि से देखें तो वेदो मे हमे ये पहेलियाँ ब्रह्मोदय के नाम से विद्यमान मिलती हैं। उनमे भी इनका उपयोग अनुष्ठान के एक अग के रूप मे हुआ है। अश्वमेध यज्ञ मे अश्व का वलिदान करने से पूर्व होतृ और ब्राह्मण मे पहेली-बुझौवल होती थी और यह अनिवार्य थी। इसमे केवल होतृ और ब्राह्मण ही भाग ले सकते थे। वेदो के उपरान्त इसकी परम्परा लौकिक हो गयी प्रतीत होती है या लोक-क्षेत्र मे भी यह साथ-साथ चली होगी। किन्तु जीवन और मरण से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा ऐसा विदित होता है। महाभारत में यक्ष ने पाण्डवों से इसी प्रकार की पहेलियाँ बूझी हैं। यक्ष अथवा धम सम्भवत सारस का रूप धारण करके एक जलाशय मे खडा हो गया था। जहाँ पर पानी लाने के लिए एक-एक करके नकुल, सहदेव, अर्जुन और भीम पानी लेने गये। किन्तु यक्ष की पहेलियो का उत्तर न दे सकने के कारण न वे पानी ले सके, न लौट सके। वही उनकी मृत्यु हो गयी। अन्त में धर्मराज युधिष्ठिर गये। उन्होने यक्ष की पहेलियो का उत्तर दिया और प्रसन्न होकर यक्ष ने चारो पाण्डवो को जीवन दान भी दिया। इस प्रकार पुराण काल मे पहेलियो के इस रूप का उदाहरण हमे मिल जाता है। लोक-कथाओ के सग्रह मे तो इसकी परम्परा और भी अधिक पुष्ट है। कथा सरित्सागर मे कई कहानियाँ हैं, जिनमे पहेली-बुझौवल को एक अभिप्राय के रूप मे काम में लिया गया है।

फ्रेजर महोदय ने वताया है कि पहेलियो की रचना अथवा उदय उस समय हुआ होगा, जव कुछ कारणो से वक्ता को स्पष्ट शब्दो मे किसी बात को कहने मे किसी प्रकार की अडचन पडती होगी।[1] भारत के मूल निवासियो मे से मण्डला के गोंड और प्रधान तथा विरहोर जातियो के विवाह के अनुष्ठानो मे पहेली । भी

---

[1] देखिए फ्रेजर द्वारा लिखित "दी गोल्डन बाउ" नवाँ भाग, पृष्ठ १२१।

मूलत यह किस भाषा से आयी है, किस अवसर पर सुनी गयी अथवा किस पुस्तक या पत्रिका से इसे उतारा गया।

(७) सावधानी से उसके समस्त लिखित स्रोतो का उल्लेख कीजिए। उसके लेखक का पूरा नाम दीजिए। पुस्तक अथवा पाण्डुलिपि का पूरा नाम दीजिये। प्रकाशन का वर्ष अथवा लिखे जाने का वर्ष लिखिए। पुस्तक अथवा पाण्डुलिपि की पृष्ठ सख्या दीजिए, यदि उसमे पृष्ठ सख्या पडी हो।

(८) इस कार्ड की पीठ पर अपना नाम और पता भी दे दीजिए, जिसमे आपके योगदान का श्रेय आपको दिया जा सके। रबर की मुहर इसके लिए सुविधा-जनक हो सकती है।

हिन्दी क्षेत्र मे अभी ऐसी वैज्ञानिक सस्थाएँ प्राय नही है, जो लोकवार्ता और लोक-साहित्य के विषय मे वैज्ञानिक कार्य कर रहे हो। और फिर भी ब्रजभाषा से सम्बन्ध रखने वाली सस्था ब्रज-साहित्य-मण्डल एक ऐसी सस्था अवश्य है जो इस प्रकार का कार्य कर रही है और इस प्रकार से लोकोक्तियो को सग्रह करने वाले व्यक्ति अपने सग्रह ब्रज-साहित्य-मण्डल, मथुरा के मन्त्री को भेज सकते हैं। जहाँ उसका आवश्यक वर्गीकरण हो सकता है।

कहावतों का जन्म

लोक कहावतो के सम्बन्ध मे इतनी चर्चा के उपरान्त इसके दूसरे अग पर विचार करना समीचीन होगा। यहाँ पर थोडा-सा विचार कहावतो के उद्भव पर भी कर लेना आवश्यक है। कुछ लोगो का अनुमान है कि कहावत मे सूत्रशैली मिलती है। अत इनका जन्म सूत्रकाल मे हुआ होगा। उस युग मे जिसमे पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी लिखी थी। इस युग मे सूत्र रचना की ओर बहुत प्रवृत्ति थी। सम्भवत उसी प्रवृत्ति के फलस्वरूप लोक-मानस ने भी सूत्रशैली मे अपनी अभिव्यक्ति की। यह दृष्टिकोण समीचीन नही माना जा सकता। क्योकि एक तो सूत्रकाल से पूर्व ही कहावतो का प्रयोग मिल सकता है। वेदो तक मे ऐसे प्रयोग हैं। जिन्हे कहावत अथवा लोकोक्ति माना जा सकता है। दूसरे सूत्रशैली मे जिस उच्च बौद्धिकता और शब्द अधिकार का पता चलता है, वह इन लोकोक्तियो मे साधारणतया नही मिलता। लोकोक्ति साधारणत लोक की काम चलाऊ अभिव्यक्तियाँ हैं। बहुत सीधे सादे शब्दो मे लघुतम रूप मे अपने भावो को प्रकट करने की चेष्टा मे व्यवहार दृष्टि से उपयोगी बनने के लिए इनका जन्म हुआ होगा। अत सूत्रकाल के घोर बौद्धिक और पाण्डित्य-पूर्ण वातावरण से इनके जन्म का सम्बन्ध नही जोडा जा सकता। फिर भी इसमे कोई सन्देह नही कि कहावतें शुद्ध आदिम मानव के मानस से उद्भूत भी नही मानी जा सकती। जैसी कि लोक-कहानियाँ अथवा लोक-गीत नाम की चीजें मानी जा सकती हैं, क्योकि लोक-मानस-चित्रो (इमेजेज) की छाप तो सहज ही ग्रहण कर लेता है और इन्हे वह गीत और कहानियो मे प्रकट करता है। मानव-चित्रो से ऊपर उठकर बौद्धिक भावतत्त्वो के सयोजन के लिए जिस स्थिति की आवश्यकता है, वह स्थिति आदिम

मानस की अन्तिम विकास कोटि की सीमा पर पहुँचती है। वहाँ से जन्म लेकर ये कहावतें निरन्तर ऐतिहासिक विकास के साथ विकसित होती गयी है और बदलती गयी हैं। कहावतो का क्षेत्र गीतो और कहानियो से भिन्न व्यवहार और व्यापार का क्षेत्र है।

पहेली

अब हम लोकोक्तियो के दूसरे भेद पर विचार कर सकते हैं, जिन्हे पहेली नाम दिया जाता है और अगरेजी मे रिडिल (Riddle)।

पहेली-बुझौवल नृविज्ञान की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आनुष्ठानिक कर्म रहा विदित होता है। जैसा कि फ्रेजर ने गोल्डेन बाउ मे विविध आदम जातियो मे विविध सकट और सशय के क्षणो म पहेली-बुझौवल की सत्ता के उदाहरण दिये हैं। फलत पहेलियों का महत्त्व बहुत अधिक है और निश्चय ही इनका जन्म व्यावहारिक कहावतो से पूर्व आदिम मानस मे लोक-कहानियो और लोक-गीतो की तरह से ही हुआ होगा। इनके प्रमाण भी इतिहास मे ईस्वी पूर्व से कई हजार वर्ष पहले से हमे मिलते हैं। भारतीय दृष्टि से देखें तो वेदो मे हमे ये पहेलियाँ ब्रह्मोदय के नाम से विद्यमान मिलती हैं। उनमे भी इनका उपयोग अनुष्ठान के एक अग के रूप मे हुआ है। अश्वमेध यज्ञ मे अश्व का बलिदान करने से पूर्व होतृ और ब्राह्मण मे पहेली-बुझौवल होती थी और यह अनिवार्य थी। इसमे केवल होतृ और ब्राह्मण ही भाग ले सकते थे। वेदो के उपरान्त इसकी परम्परा लौकिक हो गयी प्रतीत होती है या लोक-क्षेत्र मे भी यह साथ-साथ चली होगी। किन्तु जीवन और मरण से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा ऐसा विदित होता है। महाभारत मे यक्ष ने पाण्डवो से इसी प्रकार की पहेलियाँ बूझी हैं। यक्ष अथवा धर्म सम्भवत सारस का रूप धारण करके एक जलाशय मे खडा हो गया था। जहाँ पर पानी लाने के लिए एक-एक करके नकुल, सहदेव, अर्जुन और भीम पानी लेने गये। किन्तु यक्ष की पहेलियो का उत्तर न दे सकने के कारण न वे पानी ले सके, न लौट सके। वही उनकी मृत्यु हो गयी। अन्त में धर्मराज युधिष्ठिर गये। उन्होने यक्ष की पहेलियो का उत्तर दिया और प्रसन्न होकर यक्ष ने चारो पाण्डवो को जीवन दान भी दिया। इस प्रकार पुराण काल मे पहेलियों के इस रूप का उदाहरण हमे मिल जाता है। लोक-कथाओं के सग्रह मे तो इसकी परम्परा और भी अधिक पुष्ट है। कथा सरित्सागर मे कई कहानियाँ है, जिनमे पहेली-बुझौवल को एक अभिप्राय के रूप मे काम में लिया गया है।

फ्रेजर महोदय ने बताया है कि पहेलियों की रचना अथवा उदय उस समय हुआ होगा, जब कुछ कारणो से वक्ता को स्पष्ट शब्दो मे किसी बात को कहने मे किसी प्रकार की अडचन पडती होगी।[1] भारत के मूल निवासियो मे से मण्डला के गोंड और प्रधान तथा बिरहोर जातियो के विवाह के अनुष्ठानो मे पहेली बुझाना भी

---

[1] देखिए फ्रेजर द्वारा लिखित "दी गोल्डन बाउ" नवाँ भाग, पृष्ठ १२१।

एक आवश्यक वात मानी गयी है ।[1] पहेलियो का ऐसा आनुष्ठानिक प्रयोग अब कही-कही मिलता है । अब तो पहेलियाँ, साधारणत मनोरजन का माध्यम है अथवा ठाले-वैठे "वुद्धि-विलास" अथवा "वुद्धि-परीक्षा" का काम देती है ।

पहेलियाँ यथार्थ मे किसी वस्तु का वर्णन है । यह ऐसा वर्णन है जिसमे अप्रकृत के द्वारा प्रकृत का सकेत होता है । अप्रकृत, इन पहेलियो मे वहुधा 'वस्तु-उपमान' के रूप मे आता है । यह स्वाभाविक ही है कि गाँव की पहेलियो मे ऐसे उपमान भी ग्रामीण वातावरण से ही लिये गये हो ।

पहेलियो मे कुछ सार्थक शब्दो के साथ कुछ निरर्थक अद्भुत शब्द होते हैं । ये शब्द निरर्थक होते हुए भी अर्थ-द्योतक की भाति प्रस्तुत किये गये हैं । ये शब्द किसी वस्तु के भाव मात्र की ओर सकेत करते है, इन्हे पहेलियो के वीजगणितीय सकेत कह सकते हैं ।

पहेलियाँ एक प्रकार से वस्तु को सुझाने वाली उपमानो से निर्मित शब्द चित्रावली है, जिसमे चित्र प्रस्तुत करके यह पूछा जाता है कि यह किसका चित्र है । पर इससे यह न समझना चाहिए कि उपमानो के द्वारा यह चित्र पूर्ण होता है । उपमानो द्वारा जो चित्र निर्मित होता है वह अस्पष्ट होता है, उससे अभिप्रेत वस्तु का वहुत अधूरा सकेत मिलता है, पर वह सकेत इतना निश्चित होता है कि यथासम्भव उससे किसी अन्य वस्तु का वोध नही हो सकता । यह एक चित्र है ।

"ओर पास घास-फूंस, वीच मे तवेलौ ।
दिन मे तौ भीरभार, राति मे अकेलौ ।

इससे जो चित्र प्रस्तुत होता है, उसमे कुएँ का भाव स्पष्ट सकेत से नही आता अत पहेलियो मे जहाँ वस्तु की व्याख्या और चित्र प्रस्तुत किये जाते हैं, वहाँ उन चित्रो मे अभिप्रेत वस्तु की ओर से ध्यान दूसरी ओर ले जाने वाले शब्दो का भी सयोजन होता है । इसमे 'तवेलौ' शब्द ध्यान-विकर्षण का कार्य करता है । इन शब्द-चित्रो के लिए उपमानो का सयोजन इसी ध्यान-विकर्षण की प्रणाली पर किया जाता है—

नद्दी की पारि पै वोक चरै । नदिया सूखै वोक मरै ।।

दीपक के मृत-पात्र और उसमे भरे तेल को 'नद्दी' के उपमान से अभिहित करने मे दीपक की ओर ध्यान आकर्षित करने की अपेक्षा उसकी ओर से ध्यान विकर्षित करने की प्रवृत्ति ही मिलती है । दीपक की वत्ती औ लौ को, किसी भी शास्त्र-विहित अलकार-प्रणाली से 'चरता हुआ वोक'—वकरा नही माना जा सकता । आर्चर महोदय ने एक स्थान पर कहा है कि अन्तिम विश्लेषण मे पहेली का मूल्य काव्य का

---

[1] 'मैन इन इण्डिया' का 'ऐन इण्डियन रिडिल वुक' अक—भाग १३, सख्या ४, दिसम्वर १९४३ मे वेरियर ऐलविन तथा डब्ल्यू० जी० आर्चर लिखित, "नोट आन दि यूज ऑव रिडिल्स इन इण्डिया", पृष्ठ ३१६ ।

मूल्य है।[1] भारतीय साहित्य मे प्रहेलिका को शब्दालकार का एक भेद बनाया गया है। पर ये ग्रामीण पहेलियाँ अर्थ-शक्तियो की चरम परीक्षा कर लेती है। इनमे शब्दालकारिक चमत्कार उतना नही जितना ध्वनि[2] का चमत्कार है।

ध्वनि का यह सकेत इन उपमानो से उत्सृष्ट मूर्त कल्पनाओ के द्वारा ही नही मिलता, क्रियाओ के उल्लेख से भी यह अभिप्राय पाया जाता है। "तू चलि मैं आई" का अर्थ "किवाड" है। जो चलते समय साथ चले पर रुक जाय, जैसे हम मे कह रही हो कि "तू चल मैं आई।"

दृष्टिकूट प्रणाली पर रची पहेलियाँ भी कुछ पढ़े-लिखे लोगो मे प्रचलित मिलती हैं, पर ये पहेलियाँ लोक-मानस की अपनी अभिव्यक्ति नही। ये सस्कृत-मानस से उधार ली गयी है, जैसे यह पहेली है —

अजापुत्र को शब्द लै गज को पिछलौ अक।
सो तरकारी लाय दें चातुर मेरे कथ॥

"मैंथी" के लिए ये शब्द गाँव मे खडे नही हो सकते।

इन पहेलियो मे केवल मानसिक कौशल की प्रधानता नही रहती, भाव भी विद्यमान रहता है। प्रधान भाव तो 'अद्भुत' आश्चर्य का रहता है। कही-कही तो पहेलीकार स्वय भी इस भाव को व्यक्त कर देता है—

पोखरि की पारि पै अचम्भौ बीतौ,
भरि दियौ खूब उठाय लियौ रीतौ—

कच्ची ईंट थापने के लिए यह आश्चर्य भाव को व्यक्त करने वाली पहेली है। यह आश्चर्य-भाव बहुधा रहता है। इसी के साथ कही-कही हास्य भी प्रस्तुत हो जाता है। कभी-कभी इन पहेलियो मे लोक-मानस यौन-वृत्ति परिचायक शब्द-चित्र अथवा क्रियाओ को उपस्थित करने मे भी नही हिचकता। यौनवृत्ति की अभिव्यक्ति मे एक सुख की भावना फ्रायड के मत से ही अवचेतन मानस से सम्बन्धित नही है, यह आदिम-मानव के दाय का अवशेष भी है। यौन-सकेत फिर भी बहुत कम पहेलियो मे मिलते हैं, और बहुत सयमित हैं, केवल बहुत ही कम स्थलो मे यह यौन-भाव बहुत ही स्पष्ट हुआ हैं।

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कही-कही पहेलियो मे बुद्धि-विलास के साथ भाव-ससर्ग भी रहता है। यह भाव-ससर्ग इन पहेलियो मे से मनोरजन के तत्त्व को कम नही होने देता, बुद्धि-विलास प्रधान होते हुए भी इसके मनोरजन के तत्त्व को पराभूत नही कर पाता।

कुछ विशेष प्रकार की पहेलियाँ भी होती हैं जिनमे किसी घटना-विशेष को लक्षित करके पहेली रची जाती है।

---

[1] दिसम्बर १६४३ के 'मैन इन इण्डिया' मे दी हुई "कमेण्ट", पृष्ठ २६६।
[2] 'ध्वनि' से अभिप्राय साहित्य-शास्त्र मे प्रयुक्त 'ध्वनि' से है।

चार पाम की चापड चुप्पो वापै बैठी लुप्पो,
आई सप्पो लै गई लुप्पो रह गई चापड चुप्पो—

यह पहेली एक विशेष दृश्य देखकर रची गयी है। भैंस पर मेढकी बैठ गयी, मेढकी को चील लेकर उड गयी। चापडचुप्पो भैंस के लिए, लुप्पो मेढकी के लिए, सप्पो चील के लिए सकेत करते हैं।

नीचे धरती ऊपर अबर बीच मे मण्डल छायौ है,
नाज तौ आयौ कुनवा के खाने को, नाज ने कुनवा खायौ है।

चील अपने घोसले मे अपने बच्चो को खिलाने के लिए एक साँप ले आयी। साँप जीवित निकला। वह उल्टा बच्चो को खा गया।

ऐसी पहेलियो की गिनती विशेष नही है, और न ये साधारण समुदाय से सम्बन्ध रखती है।

पौराणिक तथा अन्य विशेष व्यक्ति अथवा घटना से सम्बन्धित पहेलियाँ भी होती हैं और वे इसी विशेष शैली के अन्तर्गत आती हैं।

चौदहवाँ अध्याय

मन्त्र

प्रासगिक

'मत्र' को सामान्यत लोक-साहित्य या वार्ता का अग नही माना जाता। पर वास्तविक बात यह है कि इससे विशिष्ट लोकाभिव्यक्ति मिलना कठिन है। प्रत्येक बोली या भाषा मे मत्र का अपनी भाषा का आवरण होता है। वह भाषा सार्थकता को उतना महत्त्व नही देती। उसमे टोने या मैजिक का तत्त्व ही प्रधान होता है। जो सर्वथैव लोक मानसिक मानी जायगी। मत्र की साधना सिद्धि पक्ष से लोकवार्ताकार का उतना सम्बन्ध नही साधना सिद्धि के अनुष्ठान का वार्ता रूप अवश्य हमारे काम की चीज होती है। फलत साधना सिद्धि का रूप कितना ही मनीषी क्यो न हो, मत्र का रूप तो लोकवार्ता क्षेत्र और लोक-साहित्य क्षेत्र की ही वस्तु है।

मत्र और वेद

'मत्र' शब्द सुनते ही, लोक-क्षेत्र मे इसका पर्यायवाची 'मतर', जो 'जन्तर' के साथ आता है, उद्भावित होता है। 'जन्तर-मन्तर' मे 'जत्र या यत्र' वह होता है जो लिखकर किया जाता है और लिखकर किसी प्रकार से जिसका सम्बन्ध शरीर से किया जाता है। यह जन्तर या जन्त्र शरीर से लगकर ही प्रभाव पैदा करता है। किन्तु जो केवल शब्द-रूप मे प्रभाव करने वाला हो वह 'मन्तर' है, या मत्र है। 'मत्र' का विशिष्ट प्रयोग वैदिक ऋचाओं के लिए होता है। 'वेदमत्र' से सभी परिचित हैं। वस्तुत एक वात यह ध्यान मे रखने के योग्य है कि मत्र शब्द विशद् अर्थयुक्त है। वेद सहिताएँ ऋक्, यजुस् और सामन् से बनी हैं। ऋचाएँ उच्च स्वर मे पाठ्य होती हैं, यजस् गद्यमय है, और धीमे स्वर से बोली जाती हैं, सामन् गेय है। ये तीनो ही 'मत्र' मे अन्तर्भुक्त हैं। फलत वैदिक शब्द ही मत्र है। वेद-मत्रो के सम्बन्ध मे उच्चारण विषयक सावधानी पर बहुत ध्यान दिया गया है। प्रत्येक मत्र का उच्चारण सर्वथा शुद्ध होना चाहिए। इस शुद्धता को प्राप्त करने के लिए वैदिक ऋषियो ने वेदागो की रचना की, पाठ-प्रणालियाँ बनायी। यह कथा इस क्षेत्र में प्रचलित थी कि एक बार इन्द्र के आवाहन मे किसी मत्र का उच्चारण कुछ का कुछ हो गया, जिससे उलटा परिणाम हुआ।[1]

---

[1] मिथ्याप्रयुक्तो नतमर्थमात यथेन्द्रशत्रुस्वरतोपराधात्।
स्वरतो वर्णतो वापिदुष्ट स वाग्वज्र यजमान हिनस्ति॥
सिद्धान्त कौमुदी भट्टोजी दीक्षित

इससे यह स्पष्ट विदित होता है कि मत्र और उनके उच्चारण का फलाफल से सम्बन्ध है। यह भी प्रकट होता है कि मत्र का उच्चारण महत्त्वपूर्ण है। इन बातो से सम्भवत यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मत्रो का पठन-पाठन करते-करते उनके प्रति मोह ने यह रूप ग्रहण कर लिया कि ऐसे शब्दो मे स्वय कोई प्रभाव आ जाता है। आदिम-मानस के तत्त्व पर दृष्टि डाले तो यह भावना स्वाभाविक है। जिस प्रकार से नाम और नामी अभिन्न है, उसी प्रकार अश और अशी भी अभिन्न है। मत्र, शब्द के रूप मे, परम्परा से प्राप्त हुआ है, इस प्रकार 'शब्द' के अशरूप मे हम उसके अशी, अपने पूर्वजो की परम्परा को प्राप्त करते है। अशुद्ध उच्चारण वर्जन या टैबू है। अशुद्ध उच्चारण से समस्त क्रिया ही भ्रष्ट हो जाती है, और वह पूर्वज-प्राप्ति नही हो सकती है, जो हमे सुरक्षित रखती है, फलत नाश अवश्यम्भावी है। किन्तु यह व्याख्या ठीक नही। वेदो का यज्ञ से घनिष्ठ सम्बन्ध है। समस्त वेद-मत्र साकार अनुष्ठान से सम्बन्ध रखते है, वे रिचुएलिस्टिक है। दूसरे शब्दो मे, मत्रो के साथ यह टोने[२] की भावना लगी हुई है कि यदि इनका उच्चारण हम सविधि करेंगे तो उनसे हमे आवश्यक फल मिलेगा। इसीलिए वैदिक कर्मकाण्ड मे विधि पर बहुत बल दिया गया है। वैदिक यज्ञ, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के लिए किये जाते थे। इस प्रकार मूलत मत्र, अनुष्ठान-टोने के एक आवश्यक अग थे। यह अनिवार्य सम्बन्ध धीरे-धीरे शिथिल हुआ। आरण्यक मे जब यज्ञ का समस्त अनुष्ठान मानसिक हो चला तो मत्र भी अनुष्ठान से पृथक् सत्ता रखने लगे। अब तक जो मत्र अनुष्ठान के अग होने के कारण फलप्रद थे, अब वे स्वय शब्दो के रूप मे प्रभाव ग्रहण करने लगे। इस प्रभाव के बढने से एक और स्थिति उपस्थित हुई। यज्ञ के साथ इन मत्रो के अर्थ का भी सम्बन्ध था। यज्ञ के स्थूल स्वरूप से विलग होने पर शब्दो के साथ अर्थ तो रहा पर अर्थ का अर्थ्य से सम्बन्ध विच्छेद हो गया। शब्द है, उनमे अर्थ भी है, पर वह अर्थ क्या है? किसके लिए है? क्यो है?—ये बातें महत्त्वहीन हो चली। फलत अर्थ भी शब्दो के लिए गौण हो चला।

'मत्र' वैदिक कर्मकाडियो के लिए टोने के रूप मे एक शक्ति का काम करते थे। मन्त्र-अभिसिंचन से विघ्न-बाधाएँ दूर हो जाती थी। धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष चारो पदार्थों की उपलब्धि भी हो जाती थी।

---

१ "In the Sanskrit, as also in the Hebrew and all other alphabets every letter has its occult meaning and its rationale, is a cause and an effect of a preceding cause, and a combination of these, very often produces the most magical effect The vowels, especially, contain the most occult and formidable potencies The Mantras (esoterically, magical rather than religious) are chanted by the Brahmins and so are the Vedas and other Scriptures" pp 94 'The Secret Doctrine' by Blavatsky

मत्र शिव

वैदिको के विरुद्ध लौकिक प्रतिक्रिया ने अपनी सिद्धि को वैदिको से भी आगे बढाकर दिखाया। इस लौकिक शक्ति ने शब्द और अर्थ के उस दुबल सूत्र को भी विच्छिन्न कर दिया। सिद्ध पुरुष जैसे भी शब्द का उच्चारण कर देगा, वही मत्र है। लोकवार्ता-परम्परा इस उद्भावना का सम्बन्ध 'शिव' से करती है। शिव जी के मुख से विशेष क्षणो मे कुछ शब्द निकल पडे जो अनर्गल थे—वे मत्र हो गये। यो तो यह प्रतीत होता है कि ये मत्र शिव से यो ही जोड दिये गये है। पर आधुनिक ऐतिहासिक शोधो से यह सिद्ध हुआ है कि 'शिव' का अस्तित्व वहुत प्राचीन है। मोहनजोदडो-हडप्पा मे योगी शिव के अस्तित्व का पता चलता है। उस समय की लिपि का अभी पूरी तरह उद्घाटन नही हो सका है। सभावना ऐसी विदित होती है कि शिव द्वारा प्रलापित 'ह्रीं', 'क्लीं' आदि निरर्थक शब्द मोहनजोदडो और हडप्पा की भाषा के शब्द हैं जो शिव की योगी-सिद्ध सस्कृति के पुनरोदय के रूप मे अथवा अन्तरधारा के रूप मे भारत मे सदा प्रचलित रहे हैं। यह बात विशेषत ध्यान आकर्षित करती है कि मत्र, योग, सिद्धि का परस्पर सम्बन्ध है तथा योगी और सिद्ध का प्राय एक जैसा रूप देखा जाता है। यह रूप 'शिव' के रूप से मिलता-जुलता होता है। मोहन-जोदडो के योगी का और शिव का साम्य दिखायी पडता है। मत्रयान के एक देवता हयग्रीव मे भी हमे उस रूप के दर्शन होते हैं। यह हयग्रीव कभी-कभी सर्प धारण किये हुए होता है, कभी मुण्डमाल भी। तिब्बत मे दण्डमणि हयग्रीव का रूप कुछ ऐसा ही है, एक सिर, दो भुजाएँ, सीधे हाथ मे दण्ड-करण, मुद्रा-युक्त, बायाँ हाथ छाती पर, पाश लिये हुए, शरीर रक्तवर्ण, बालो मे से हरे घोडे का सिर निकला हुआ, व्याघ्र-चर्म धारण किये हुए, मनुष्य के मुण्डो की माला से विभूषित, एक हरा साँप लिपटा हुआ, पैरो के नीचे दुष्टात्माएँ कुचली हुई आदि। यह हयग्रीव का बौद्ध धर्म के मत्र-यान मे ग्रहीत रूप है, जो शिव से कितना मिलता है। जापान मे हयग्रीव विषयक धर्मग्रथ मे आरम्भ मे हयग्रीव की स्तुति करते हुए उसे मार द्वारा प्रस्तुत किये गये विघ्नो का नाश करने वाला, सूर्य के रूप मे परिणित होकर समस्त विश्व को ही नही वरन् योगाभ्यासी को भी प्रकाश प्रदान कर सिद्धि प्राप्ति के योग्य बनाने वाला, कहा गया है। मत्रयान मे दीक्षित करने के लिए ऐसे शिष्य चुनने का नियम बताया है जिसे महायान मे श्रद्धा हो और योग-सिद्धान्त के लिए आतुर हो और बोधिसत्व के आचार का पालन करने की क्षमता रखता हो आदि, आदि। मत्र, योग, सिद्धि का सम्बन्ध इन उल्लेखो से पुष्ट होता है। इनका मूल देवता शिव के से रूपवाला ही प्रतीत होने लगता है, यद्यपि ये ह्रीं, क्लीं शब्द इन्द्रसस्कृति के आवेश मे अपने अर्थ खो बैठे है।

इस प्रकार अब एक विशिष्ट व्यक्तित्व से सम्बद्ध होकर निरर्थक शब्द भी मत्र का काम करने लगे। शिव परम सिद्ध हैं। अत उनकी वाणी स्वय 'सिद्धि' है। फलत मत्र शब्द 'सिद्ध-मत्र' हो गया। अब मत्र अनुष्ठान का अग नही रहा, पर

सिद्धि के लिए कुछ अनुष्ठान, मत्र के लिए भी, आवश्यक अवश्य हो गया। वैदिक भूमि त्यागकर मत्रो ने सिद्धो की भूमि ग्रहण की, फिर नाथो से इनका सम्बन्ध हुआ। अब मत्र शुद्ध टोने के रूप मे है। पढकर मत्र मारिये कार्य सिद्ध होगा। मत्र सिद्धि की प्रतियोगिताएँ भी होने लगी। कौन कितना पहुँचा हुआ सिद्ध है, इसकी परीक्षा होने लगी। जोगियो की ऐसी मत्र-सिद्धि की होड बहुधा देखने को मिल जाती है। पहले एक जोगी दूसरे जोगी की बीन बन्द कर देगा, फिर ततैया लगा देगा, जिससे वह तडपने लगेगा आदि। इन मत्रो का कोई न कोई सिद्ध पुरुष चार-पाँच गाँवों के बीच मिल जायगा। यह ब्रज के क्षेत्र मे 'स्याना' कहलाता है, ओझा भी कहलाता है। इसका काम है कि मत्रो मे झाड-फूँककर भूत-प्रेत के रूप मे आयी बीमारी को दूर करे। फलत मन्त्रो मे सिद्ध शक्ति ही महत्त्वपूर्ण है, उनके अर्थ का कोई मूल्य नहीं। वस्तुत मन्त्रो का उच्चारणकर्ता उन मन्त्रो के शब्दो मे ही परिचित होता है, अर्थ वह नही जानता और मन्त्रो पर दृष्टि डालने मे यह भी विदित होता है कि उनमे 'अर्थ' जैसी कोई वस्तु नही होती। साधारणत मन्त्र जैसे किसी योगी, सिद्ध या पीर की आन के रूप मे होते है।

मन्त्र और टोना

मन्त्रो की इस विवेचना से स्पष्ट हो जाता है कि 'मन्त्र' का और टोने का घनिष्ठ सम्बन्ध है। टोने अथवा मन्त्र का आन्तरिक सिद्धान्त यह है कि समस्त प्रपच किन्ही निर्वैयक्तिक शक्तियो से सचालित होता है, जो नियमो से बँधकर चलती हैं। जो इन रहस्यो से परिचित है वे अनुष्ठानो और जन्त्रो-मन्त्रो से उस शक्ति या उन शक्तियो को विवश करके अपने मनोनुकूल फल प्राप्त कर सकते हैं। यह भावना उस भावना के विरुद्ध है जो धर्म (रिलीजन) मे पायी जाती है। इसीलिए फ्रेजर महोदय ने 'स्तुति' (प्रेयर) और मन्त्र (स्पैल) दो अलग-अलग बातें मानी हैं। 'स्तुति' के द्वारा श्लाघापूर्वक हम देवताओ को फुसलाते हैं कि वे कृपा करके स्तुतिवाचक का अभीष्ट पूर्ण करें। किन्तु 'मन्त्र' अपनी शक्ति से विवश करके उस शक्ति से अभीष्ट पूर्ण कराता है। धर्म का सम्बन्ध स्तुति से है, मन्त्र का टोने (मैजिक) से।

फ्रेजर महोदय के शब्द ध्यान देने योग्य हैं —The distinction between the two conflicting views of the Universe turns on their answer to the crucial question, are the forces which govern the world conscious and personal or unconscious and impersonal ? [विश्व के सम्बन्ध मे दो भिन्न मतो का अन्तर अन्त मे इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न के उत्तर पर निर्भर करता है कि क्या इस विश्व का नियमन करने वाली शक्तियाँ चेतन और व्यक्तित्वसम्पन्न हैं या अचेतन और निर्वैयक्तिक]। फ्रेजर महोदय की युक्ति है कि चेतन व्यक्तित्व तो प्रार्थना और स्तुति से फुसलाया जा सकता है किन्तु अचेतन निर्वैयक्तिक शक्ति को तो विवश ही किया जा सकता है। अत 'मन्त्र' का सिद्धान्त इसी अन्तिम तथ्य को स्वीकार करता है। पर फ्रेजर महोदय इस बात से भी अपरिचित नही कि मन्त्र से तो भूत-प्रेत अथवा

छोटे-मोटे दई-देवता भी वश मे किये जा सकते है। इसमे से कितनो ने यह नही सुना होगा कि अमुक स्याने को देवी सिद्ध हैं, या जिन्न सिद्ध हैं, या हनूमान जी सिद्ध हैं, और वह मनचाही बात करा लेता है। इसीलिए फ्रेजर ने आगे लिखा—"It is true that magic often deals with spirits, which are personal agents of the kind assumed by religion, but whenever it does so in its proper form, it treats them exactly in the same fashion as it treats inanimate agents, that is, it constrains or coerces instead of conciliating or propitiating them as religion would do Thus it assumes that all personal, beings whether human or divine are in the last resort subject to those impersonal forces which control all things, but which nevertheless can be turned to account by anyone who knows how to manipulate them by appropriate ceremonies and spells" [यह सच है कि टोने का प्रयोग अक्सर आत्माओ पर होता है जो उसी तरह की व्यक्तित्व-सम्पन्न कारक शक्तियाँ होती हैं, जिस तरह की धर्म द्वारा अनुमित है। पर जब कभी अपने वास्तविक रूप मे टोना इस प्रकार प्रयुक्त होता है तो यह उन शक्तियो को उसी रूप मे ग्रहीत करता है जिस रूप मे जड निमित्तो को अर्थात यह उनको बाँधता और विवश करता है, उनकी स्तुति या विनय नही करता, जैसा कि धर्म द्वारा किया जायगा। इस प्रकार यह इस बात को मान लेता है कि सभी व्यक्तित्व-सम्पन्न सत्ताएँ, चाहे वे मानवी हो चाहे दैवी-अन्तत उन निर्वैयक्तिक शक्तियो के वश मे हैं जो सभी का नियमन करती है, पर फिर भी जो स्वय विवशता के साथ उपयोग मे घसीटी जा सकती है, यदि कोई उन्हे समुचित चर्याओ और टोनो से वश मे करना जानता हो।] ईजिप्ट (मिश्र) के स्याने देवताओ को नाश तक की धमकी देकर अपना अभीष्ट सिद्ध कराते थे। तब फ्रेजर भारत के सम्बन्ध में लिखते हैं —"Similarly in India at the present day the great Hindoo Trinity itself of Brahma, Vishnu and Siva is subject to the sorcerers, who by means of their spells, exercise such an ascendancy over the mightiest deities, that these are bound submissively to execute on earth below, or in heaven above, whatever commands their masters, the magicians, may please to issue There is a saying everywhere current in India—'The whole universe is subject to the gods, the gods are subject to the spells (mantras), the spells to the Brahmans, therefore the Brahmans are our gods'" (Golden Bough, p 52) [इसी प्रकार आधुनिक भारत मे ब्रह्मा, विष्णु और महेश की महत्त्रयी भी जादूगरो के वश मे है। वे अपने टोनो से इन सर्वातिशयी शक्ति से सम्पन्न देवताओ को भी इस प्रकार विवश कर सकते हैं कि नीचे पृथ्वी पर और ऊपर स्वर्ग मे वे वही कार्य करें, जिसकी आज्ञा उनके ये स्वामी जादूगर उन्हे दें। एक यह लोकोक्ति सारे भारत मे प्रचलित है कि सारा विश्व देवताओ के वशीभूत है, देवता मन्त्रो के वशीभूत हैं, मन्त्र ब्राह्मणो के वश मे हैं, अत ब्राह्मण हमारे देवता हैं।]

पुरोहित तथा स्याने

धर्म और टोने का यह सैद्धान्तिक विरोध व्यावहारिक विरोध मे परिणत हो गया। पुरोहित तथा स्याने पृथक्-पृथक् अपनी शक्तियो का चमत्कार दिखाते रहे हैं। आज भी यह भेद विद्यमान दिखायी देता है। फ्रेजर महोदय का कहना है कि आरम्भ मे मूलत सैद्धान्तिक विरोध होते हुए भी ये दोनो अनुष्ठान साथ-साथ चलते रहे थे—

"अपने अभीष्ट को सिद्ध करने के लिए मनुष्य एक ओर तो देवताओ और आत्माओ को स्तुति और यज्ञ-बलि से रिझाकर उनकी कृपा चाहता रहा, उधर दूसरी ओर वह ऐसे अनुष्ठानो और शब्द-रूपो का आश्रय लेता रहा जिससे उसे आशा थी कि बिना देव अथवा दानव की सहायता के ही अभीष्ट सिद्ध हो सकेगा। सक्षेप मे वह धार्मिक और टोने के अनुष्ठानो को साथ-साथ करता रहा। • टोने के धर्म मे घुलमिल जाने अथवा गडबडझाले के उदाहरण हमे मेलेनेशियावासियो तथा अन्य जातियो के आचारो मे अभी मिल चुके हैं।" (वही, पृ० ५३)

टोना

आगे यह विरोध तीव्र हुआ, और दोनो अलग-अलग हो गये। फ्रेजर ने आस्ट्रेलिया के आदिम मानवो का उदाहरण देकर यह बताया है कि उनमे स्याने तो हैं पुरोहित नही। प्रत्येक व्यक्ति स्याना है, जो टोने से अपना अभीष्ट पूरा करा सकता है। इस उदाहरण से यह सिद्ध होता है कि सर्वप्रथम मानव ने टोने को ही प्रधानता दी थी। इसी तथ्य को उन्होने तर्क परम्परा से भी सिद्ध किया है। "टोना है क्या ? टोना मस्तिष्क की अत्यन्त सीधी-सादी और अत्यन्त प्रारम्भिक प्रक्रियाओ का भ्रामक उपयोग ही तो है। दूसरे शब्दो मे सादृश्य और सम्बद्धता के सहारे विचारो की सगति विषयक मानसिक प्रक्रिया का भ्रामक उपयोग टोने मे दिखायी पडता है। दूसरी ओर धर्म मानता है उन चेतन और वैयक्तिक कर्ताओ को जो प्रकृति के दृश्य आवरण के पीछे रहते हैं और जो मनुष्य से ऊँचे होते हैं।" (वही, पृ० ५४) "यह अधिक सम्भव प्रतीत होता है कि हमारी जाति के विकास मे टोने का उदय धर्म से पहले हुआ, तथा मनुष्य ने मात्र मन्त्रो और वशीकरणो की शक्ति मात्र से ही प्रकृति को अपनी अभिलाषापूर्ति के लिए झुकाने की पहले चेष्टा की, तब बाद मे उसने स्तुति और यज्ञ के कोमल फुसलावो से एक काइयाँ, स्पृही और तामसी देवता की खुशामद करने और सन्तुष्ट करने की चेष्टा की।" (पृ० ५५)

इसमे कोई सन्देह नही हो सकता कि 'मन्त्र' की आदिम भूमि उन समस्त तत्वो से विनिर्मित है जिन्हें हमने लोक-मानस के लिए आवश्यक माना है।

दो प्रकार

फ्रेजर ने रिजेम्बलेंस=तुल्यता (सादृश्य) और काण्टिगुइटी=सम्बद्धता के आधार पर दो प्रकार के टोने स्वीकार किये हैं—

१ होम्योपैथिक मैजिक—जो तुल्य अथवा सदृश वस्तु के द्वारा तुलनीय

पर प्रभाव डालते हैं। शत्रु को मारने के लिए उसका पुतला बनाकर उसमें पिन चुभाना या उसे जलाना आदि।

२ कान्टेगुअस मैजिक—जो अभी वे अग मे प्रभाव डालती है—जैसे नाखून के टुकडे, बालो के गुच्छे, मल, नाम, पद-चिह्न आदि म टोना किया जाता है।

इसके अतिरिक्त टोनों को पॉजिटिव (Positive) और नेगेटिव (Negative) मे भी बाँटा जाता है। 'विधि विन्यासी टोना' किसी अभीष्ट को सम्पन्न करने के लिए उपयोग मे आता है। 'निषेध विन्यासी' (Negative) किसी प्रभाव या घटना को रोकने के काम आता है।

मैजिक या टोने के दो भेद और किये जाते हैं—ब्लैक मैजिक (काले टोने) जो अहितकर शक्तियों का आह्वान कर दुष्कृत्य कराने के उपयोग मे आते हैं—मूठ चलाना आदि। ह्वाइट (श्वेत) मैजिक—भले कार्यों के लिए।

मन का सिद्धान्त

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि टोने का जन्म आदिम मानस की देन है और वस्तुत मूल मे यह उस सिद्धान्त का परिणाम है जो 'मन' शक्ति मे विश्वास करता है। 'मन' मे विश्वास का कारण आदिम-मानस की यह वृत्ति है जिसे विद्वानो ने 'फेण्टैसी-थिंकिंग' परिप्रकल्पनीय विचारणा नाम दिया है—जिसमे 'यथार्थ और कल्पित' मे भेद करने की बुद्धि नही रहती। ऐसी स्थिति मे आदिम मानव ने प्रकृति के व्यापारो मे जो विशेषता देखी उसे एक शक्ति के यथार्थरूप मे उसने समझा, जैसे स्वप्न देखकर उसने अपने अस्तित्व के एक दूसरे रूप मे यथार्थ विश्वास किया, वैसे ही उसने सृष्टि की घटनात्मक स्थिति मे पदार्थो की जडता के अतिरिक्त शक्ति की यथार्थता मे विश्वास किया जो किसी घटना के घटित कराने मे समर्थ होती है। इस भाव विचारणा के तीन रूप हुए—एक ऐसी शक्ति की सर्वत्र विद्यमानता—'मन' की स्थिति। दूसरी ऐसी शक्ति से अप्राणि पदार्थो मे एक प्राणित्व की भाव स्थिति—जिसे ऐनिमेटिज्म (Animatism) 'प्राणिभावकता' नाम दिया गया है। ये दोनो स्थितियाँ इसी 'परिप्रकल्पनीय' विचारणा का परिणाम है, और इसी के क्षेत्र की है। इसका आगे विकास होकर 'अप्राणि आत्मवाद' (Animism) का जन्म होता है जो 'अप्राणि आत्मीय विचारणा' (Animistic thinking) का परिणाम है।

'मन' की इसी शक्ति को जब कोई व्यक्ति टोने से या किसी क्रिया से सक्रिय करके अपने अभीष्ट को पूर्ण करा सकता है तो वह टोने या मैजिक का उपयोग करता है। ऐसी शक्ति का उपार्जन सिद्धि कहा गया और उसका साधन तथा माध्यम 'मन्त्र' कहा जायगा। मन्त्र के द्वारा शक्ति का उपार्जन भी होगा, और उसका उपयोग भी।

मन तथा शब्द

किन्तु यही यह प्रश्न प्रस्तुत होता है कि उस मन-शक्ति को प्राप्त करने के

स्थिति को छोडकर व्यक्तिपरक हो गया। उसमे सामयिक तत्त्वो का समावेश हो गया।

मन्त्रों के रूप

परम्परागत मन्त्र शब्दो ने मन्त्रो का एक निश्चित रूप धारण कर लिया और वे विशेष साधना (तान्त्रिक) के आधार तत्त्व बन गये। ह्री, क्ली, आदि एकाक्षरी अर्थशून्य शब्द-मन्त्रो का ऐसा ही रूप है। दूसरा रूप मन्त्रो का वह खडा हुआ जो व्यक्तिपरक था और जिसमे किसी सिद्ध या देवता की दुहाई और आन का उपयोग है। ऐसे मन्त्र साधना से उतना सम्बन्ध नही रखते। ये तो वे नुस्खे हैं जो सिद्धो से प्राप्त हुए हैं। इन्हे कोई भी जानकार विधि से काम मे लाकर लाभ उठा सकता है।

तीसरे मन्त्रो का वह विशिष्ट प्रकार है जो उच्चवर्ग मे परम्परा को बनाये हुए चले आ रहे हैं। जैसे वेद-मन्त्र।

प्रथम कोटि के मन्त्र विशिष्ट साधनाओ की परिपाटियो से सम्बन्धित हैं। ये विशेषत तान्त्रिक और सिद्धिप्रद माने गये हैं। इनकी साधना अत्यन्त गुह्य रूप मे की जाती है। इन मन्त्रो की सख्या और रूप निश्चित है। इनसे प्राप्त सिद्धि लाभ-प्राप्ति और दोष तथा दृष्टि-हानि (नजर) निवारण और चमत्कार-प्रदर्शन जैसे सभी क्षेत्रो मे काम आ सकती है। दूसरे प्रकार के मन्त्रो के दो रूप है—एक तो स्वय सिद्ध पुरुष द्वारा कहे गये शब्द। ये शब्द भिन्न-भिन्न सिद्ध पुरुषो के साथ भिन्न-भिन्न हो सकते हैं, इनमे अर्थ का नितान्त अभाव हो सकता है। ये मन्त्र तो सिद्ध पुरुष के मुख से निकलते ही अपना कार्य करके समाप्त हो जाते है। एक अन्य प्रकार के मन्त्र वे हैं जो स्वय शक्तिवान् हैं। कोई भी व्यक्ति विधि से उन्हें काम मे लाकर इष्ट साधन कर सकता है। ये पेटेण्टेड नुस्खो की तरह हो जाते हैं। इन मन्त्रो मे बहुधा शब्द-गौरव ही रहता है। कोई गम्भीर अर्थ अथवा चमत्कारी अर्थ नही मिलता। बहुधा गुरु की आन और गुरु के आदेश का उल्लेख रहता है। स्पष्ट ही इन मन्त्रो मे 'कन्टीन्युअस मैजिक' 'अगागी टोने' का सिद्धान्त कार्य करता होता है, इसी लोक-मानस की प्रधानवृत्ति के कारण ये विश्वसनीय माने जाते हैं। यहाँ ब्रज के मन्त्रो के उदाहरण से इस तथ्य को पुष्ट किया जा सकता है।

ब्रज के मन्त्र

प्राय प्रत्येक मन्त्र के पीछे ये शब्द रहते हैं—

सत गुरु
नाम आदेस
सबद सांचा
पिंड काचा
फरो (फुरो) मन्त्र ईसुरो वाचा

उनमें 'सत गुरु का आदेस' का उल्लेख है। यह 'आदेस' शब्द ही हमे प्रकृत मन्त्र का रूप देता है 'सबद साँचा' यह स्पष्ट करता है कि 'शब्द' के सत्य पर

—

विश्वास है, और उस स्थिति का सूचक है जब यह विश्वास दृढ था कि 'शब्द' स्वयं शक्ति है। 'ईसुरो वाचा'—'शिव वाक्य' का अवशेष है। यह अंश यहाँ आन की भाँति है।

उक्त मन्त्र की उद्भावना का सम्बन्ध 'नाथ सम्प्रदाय' से है इसमे कोई सन्देह नही किया जा सकता। इस मन्त्र मे आये प्राय प्रत्येक महत्त्वपूर्ण शब्द का प्रयोग गोरखनाथ की वाणी मे मिल जाता है। देखिए—

"स्वामी कौण मिथ्या कौण सु साँच
कौण सि खरा कौंण सि काच
अवधू माया मिथ्या ब्रह्म सु साचा
सवद सो खरा प्यड सो काचा"

'आन' का एक ऐसा उल्लेख भी है जिसमे गोरखनाथ जी का नाम स्पष्टत आया है—

"काली काली महाकाली
× × ×
मेरी चलाई चलि। मेरे गुरु उस्ताद की चलाई चलि
मेरी चलाई न चलैगी
तो गुरु गोरखनाथ के रौरे मे अस्नान करैगी।"

गुरु गोरखनाथ के रक्त मे स्नान करने का उल्लेख 'आन' के लिए ही हुआ है। 'हनुमान की दुहाई' बिच्छू उतारने के मन्त्र मे आती है—इस मन्त्र का अन्तिम अश है—

लका सौ कोट समुद्र सी खाई
उतरि उतरि कै बीछू
तोकूँ हनुवत वीर की दुहाई।

चाकू या उस्तरा आदि की धार बाँधने के मन्त्र मे हनुमान जी की आन दी गयी है—

धार धार अवर धार
धार बाँधू सात बार
अनी बाँधू इक्कीस बार
कटै न चामर फटै न चीर
धार बाधौ हनुमत वीर
आदेश गुरु कू विद्या मोकू
आन बीर हनुमत की।

—पीढा बाँधने के मन्त्र मे भी हनुमान जी की आन विद्यमान है—

अवर चढता बंदरू बाँधू सेमर चढता सूआ
सात सहेलिनु चरखा बाँधूं पीढा बाँधूं

सौं पनिहारिनु कूआ
वाँधू तेरे मात पिता कू
जानें तू है जाई
वाँधू तेरे सास ससुर कू जाक तू ऐ व्याही।
आदेस गुरु कू, विद्या मोकू
आनि वीर हनुमत की।

—किसी किसी मे वीर हनुमत के 'हकारने' का ही उल्लेख है—

'हकारे हनमत'

इस प्रकार गुरु गोरखनाथ, कभी-कभी गुरु मछन्दरनाथ (राजा रे मछदर जी की आन) हनुमन्त, भीम, नरसिंह, मसान, सीता माता, भैरोनाथ, लक्ष्मण, रामचन्द्र, मुहम्मद, पीर, भमानी, आदि के 'आदेश' और आन विषयक उल्लेख मिलते है। एक मन्त्र मे सरस्वती, कृष्ण, वलराम तथा मुहम्मद का उल्लेख साथ मिलता है। वह इस प्रकार है—

सुरसुती मात तू जगदैनी
हस चढै लटकावै वैनी
तेरे चेला लाखि सै साठि
विद्या मागैं हाथ पसार
खेती करै न वज कू जाइँ
विद्या के वल वैठे खाइँ
अहो कि विद्या महा कमाई
कृसन मेरे भाई, जैस वल के राई
झरना झरै विसु मक्के गाई
दुहाई मुहम्मदे दीन की।

उक्त मन्त्रो और उनमे आये उल्लेखो से स्पष्ट है कि इन मन्त्रो मे आन और आदेश का ही महत्त्व है। इन मन्त्रो का प्रयोक्ता अपनी इष्ट सिद्धि के लिए सीधे-सादे शब्दो मे आन और आदेश देकर काम चलाता है। वस्तुत मन्त्र के शब्दो मे उसके अर्थों का नही आन का महत्त्व है। आन के अतिरिक्त अन्य अर्थ तो वहुत कम रहता है।

मंत्र आभास

ऐसे ही, मन्त्रो में एक और सामान्य कोटि मानी जा सकती है जिसका प्रयोग स्यानो-ओझाओ के द्वारा नही होता, और जो रोग को दूर करने, खोर को हटाने या चमत्कार के लिए उपयोग मे नही लाये जाते वरन् जो विघ्नकारी 'दई-देवताओं' को वर्जन करने वाले हैं, और जिनका प्रयोग घरेलू रूप मे किसी विशेष मगलकारी सस्कार के अवसर पर होता है। ऐसे अवसर पर काम मे आने वाले शब्दों को 'मन्त्र' नाम तो नही दिया जाता, पर उनसे काम वही लिया जाता है और यह मन्त्रोच्चार घर के

स्त्रियो द्वारा ही होता है। विवाह, पुत्र-जन्म तथा अन्य ऐसे ही गम्भीर अवसरो पर प्रत्येक घर मे एक विशेष प्रकार का वातावरण बन जाता है। समस्त कार्य विशेष प्रणाली से होने लगते हैं, और प्रत्येक कृत्य के साथ 'शुभाशुभ' का भाव सलग्न हो जाता है। इसी वातावरण मे हम पाते हैं कि स्त्रियाँ कुछ विचित्र अनुष्ठान करती हैं, वे विविध विघ्न करने वाली शक्तियो को बाँध देती हैं—इसे 'वायबध' कहा जाता है। विघ्न व्याधियाँ 'वायु' रूप मे ही अदृश्य होकर अपना आतक फैलाती है—अत उन्हे एक विशिष्ट अनुष्ठान के साथ कुछ समय तक के लिए बाँध दिया जाता है। ऐसे ही कितने ही आभिचारिक कृत्य किये जाते है, इनके साथ स्त्रियाँ कुछ गाती जाती हैं—यह भी मत्र का काम करता है।

भारतीय मत्रशास्त्र

भारत मे 'मन्त्र-शास्त्र' अत्यन्त प्राचीनकाल से ही महत्त्वपूर्ण माना गया है। इस शास्त्र पर भारत मे इतना विशद दार्शनिक विचार किया गया है कि देखकर आश्चर्य होता है। यह दार्शनिक विमर्श बहुत जटिल है और उसके पूर्ण स्वरूप को समझना सरल नहीं, पर उसका कुछ ज्ञान प्राप्त करना तो आवश्यक ही है। यहाँ बहुत सक्षेप में उसका उल्लेख किया जाता है —

यो तो ईसाइयो के वेद मे भी कहा गया है "In the beginning was the Word and Word was with God and Word was God" (आरम्भ मे शब्द था, शब्द ईश्वर के पास था और शब्द ही ईश्वर था)। 'न्यू टेस्टामेण्ट' के इस 'लोगॉस' (Logos) सिद्धान्त से बहुत पूर्व मिस्र मे भी कुछ ऐसा ही विश्वास था। सात सौ ई० पू० के मिस्री फरोह (Pharaoh) ने एक शिलालेख पर मेम्फिस धर्म का रूप अकित कराया। वह इस फरोह के भी पूर्व से चला आ रहा था। इसमे 'प्त' को शब्द ब्रह्म माना है। यह लेख यो आरम्भ होता है—"प्त परम एक, वह देवताओ के ऐन्नीड का हृदय (अर्थ) और जिह्वा (शब्द) है इसने देवता उत्पन्न किये—हृदय मे वह (कुछ या कोई भाव) आया, वह जिह्वा पर आया, 'अतुम' के रूप मे।" जिह्वा 'शब्द' की वाचक है। शब्द से सृष्टि हुई। किन्तु भारतीय वेदो मे इसी सत्य को यो प्रकट किया गया है —

प्रजापतिर् वै इदम आसीत्	आरम्भ मे प्रजापति थे।
तस्य वाग् द्वितीया आसीत्	और उसकी द्वितीय वाक् (शब्द) थी।
वाग् वै परम ब्रह्म	वाक् परम ब्रह्म है।

इस प्रकार यह 'शब्द' ही प्रजापति अथवा मूल पुरुष है। इसी शब्द से समस्त सृष्टि उद्भावित हुई। मूल रूप मे यह शब्द 'पराशब्द' था। 'पराशब्द' वह स्थिति है जिसे 'सकल परमेश्वर' कहा जायगा। इसमें कल=कला=शक्ति सहित परमेश्वर=परमशिव अभेद भाव से अद्वैत रूप मे विद्यमान रहते हैं। इस स्थिति मे 'शब्द+अर्थ+प्रत्यय' तीनो ही 'एकमेक' रहते हैं। फलत यहाँ 'शब्द=अर्थ=प्रत्यय'—यही सत्ता का रूप होता है। इस सकल परमेश्वर मे शक्ति का उद्भव होता है। शक्ति को

'इच्छा-शक्ति' भी कहा जा सकता है। यह निस्पद सकल परमेश्वर मे क्रिया अथवा स्पदन की सृष्टि का ही दूसरा नाम है। इससे नाद उत्पन्न होता है। नाद को शिव-शक्ति सयोग कहा जाता है शिव-शक्ति को मैथुन। इम स्थिति मे 'शिव-शक्ति' शिव और शक्ति के रूप मे अपनी वैयक्तिक सत्ता प्राप्त करने लगते हैं। इस नाद से विन्दु उत्पन्न होता है। यह विन्दु मूल सत्ता का वह रूप है जो आकार मे अभिव्यक्त होने के लिए तत्पर प्रतीत होता है। इसलिए इसे शक्ति की घनावस्था माना गया है और इसे चिद्घन भी कहा गया है। 'प्रपचसार तत्र' मे कहा गया है कि शक्ति सृजन की इच्छा से युक्त होने पर 'घनीभूत' हो जाती है जैसे नवनीत या दही वनने के लिए दूध घनीभूत हो जाता है। इस विन्दु मे महाप्रलय द्वारा सृष्टि-प्रपच विन्दु मे ही समा जाता है और सृष्टि-इच्छा से इसी मे से फिर प्रादुर्भूत होता है। 'शारदातिलक' ने इस समस्त स्थिति को इस श्लोक से स्पष्ट किया है —

सच्चिदानन्द-विभवात् सकलात् परमेश्वरात्,
आसीच्छक्तिस् ततो नादो नादाद् बिन्दु-समुद्भव ।

इस विन्दु से बीज प्रकट होते हैं। यो यहाँ तक परमतत्त्व की स्थिति को परा-स्थिति मे ही माना जाता है, और इस पराबिन्दु से कार्य-विन्दु और उससे बीज की उत्पत्ति मानी गयी है। इस विन्दु के सम्बन्ध मे Todala तन्त्र मे कहा गया है कि विन्दु शून्य भी है और गुण भी। शून्य इसलिए कि यह परम ब्रह्म है और गुण इसलिए कि यही शक्ति का वह रूप है जिसका परिणाम पुरुप और प्रकृति इन दो तत्त्वो मे होता है। प्रकृति तो सगुण होती ही है। यह विन्दु शक्ति ही है जो नाम+रूप-आत्मक जगत् का कारण है। नाम+रूप=शब्द+अर्थ। यह कारण, विन्दु ही कार्य-बिन्दु-नाद और बीज को जन्म देता है। 'प्रपचसार तन्त्र' मे इस कारण-विन्दु से उत्पत्ति की क्रिया बतायी गयी है। यह कारण-विन्दु या परा-विन्दु दो भागो मे विभक्त हो जाता है—दक्षिण भाग और वाम भाग। दक्षिण भाग पुरुष है अथवा 'ह' है, वाम भाग विसर्ग है, स्त्रीलिंग, अथवा प्रकृति या 'स' जिससे सम्पूर्णता 'हस' कह-लाती है। 'ह' पुरुप और प्रकृति का सयोग है 'स' विसर्ग होने से दो विन्दु युक्त है। एक विन्दु 'ह' का इससे 'त्रिविन्दु' की स्थापना होती है, ये त्रिविन्दु ही समस्त सृष्टि के रहस्य है—ये तीन विन्दु सूर्य, चन्द्र और अग्नि हैं, ये इच्छा, ज्ञान, क्रिया नाम की शक्तियाँ है जिनका सम्वन्ध सत, रज, तम गुणो से है। इनसे तीन देवियो का प्रादुर्भाव हुआ जिनके नाम हैं रौद्रा, ज्येष्ठा और वामा और इन्ही से त्रिमूर्ति रुद्र, ब्रह्म और विष्णु प्रकट हुए हैं। इन तीन विन्दुओ को सितविन्दु (श्वेत), शोणविन्दु (लाल) और मिश्रविन्दु माना जाता है। इन तीन विन्दुओ मे ही श्रुतियो के 'त्रिविक्रम' का अर्थ समाया है, जो विष्णु के तीन पग माने गये हैं और चौथा इन तीनो से ऊपर रहस्यमय है। सृष्टि क्रम मे इस त्रैत का अर्थ स्पष्ट है। अद्वैत सृजन के लिए द्वैत होता है और इन दो तत्त्वो का सम्वन्ध भी एक मत्ता मे प्रकट हो जायगा। अत द्वैत के साथ ही यह त्रैत से 'शब्द-ब्रह्म' पैदा होता है। इस शब्द-ब्रह्म से अभिव्यक्ति के वे स्थूल स्वरूप

निकलते हैं जो भाषा के 'शब्द' और 'अर्थ' और 'प्रत्यय' कहलाते हैं यह 'शब्द ब्रह्म' ही 'शब्द' अथवा 'मन्त्र' की नित्य मूल कारणात्मक स्थिति है। यह स्थूल और प्रकट शब्द का 'परा' रूप शब्द है, जिसे 'परा शब्द' भी कह सकते हैं। वह 'परा' शब्द वास्तव में शक्ति की वह स्पन्दनशीलता है, जो प्रकृति की साम्यावस्था में क्षोभ पैदा कर देती है अथवा सामान्य स्पन्दन प्रस्तुत कर देती है, जिससे यह अभिव्यक्त 'शब्द' अथवा अपराशब्द प्रकट हो जाता है जो अनेक नाम-रूप धारण कर लेता है। इस नाम-रूप से वैविध्य धारण करने वाले शब्द-अर्थ का मूल अभिव्यक्त रूप महाबीज प्रणव 'ओम' है। यही समस्त मन्त्रो का जनक है। नामरूपात्मक वैविध्ययुक्त शब्द के चार प्रकार सम्भव होते हैं —१ प्रकृत ध्वनि, २ प्रकृत नि ध्वनि, ३ कृत ध्वनि, ४ कृत नि ध्वनि। प्रकृत ध्वनि के अन्तर्गत ही वैदिक शब्द और बीजमन्त्र आते हैं। ये वैदिक शब्द और बीजमन्त्र पराशब्द की शब्द तन्मात्राओ से सम्बन्धित हैं। शब्दमात्रा मे ध्वनि का ध्वनि रूप ही नही सम्मिलित है, इनमे सामान्य और विशेष ध्वनियाँ भी सम्मिलित रहती हैं। यह प्रकृत ध्वनि 'प्रकृत नाम' अथवा 'प्रकृत सज्ञा' से सम्बद्ध होती हैं। "Natural name in its purest sense may therefore be defined as the sound produced by the generating stress (shakti) or constituting force of things not as apprehended by this ear or that (which apprehends within limits and subject to conditions) but by what may be called the supreme and Infinite Ear, which apprehends unconditionally a sound, which is sound as it is"

"अत अपने शुद्ध अर्थ मे 'प्रकृत-नाम' की परिभाषा करते हुए कहा जा सकता है कि यह प्रकृत-नाम वह ध्वनि है जो निर्माण-शक्ति के द्वारा अथवा वस्तु की विधायक शक्ति द्वारा उत्पन्न है। यह चर्मकर्णो द्वारा नही गोचर होता है, यह गोचर होता है उस श्रवण द्वारा जिसे परम अथवा अनन्त श्रवण कहा जा सकता है और जो किसी भी ध्वनि को निरुपाधि अवस्था मे शब्द के रूप मे सुनता है।"

इस समस्त 'विचार-सरणि' की आधारभूत निम्न बातें हैं —

१ प्रत्येक सृजन क्रिया के साथ सहज शब्द होता है।

२ सृजन की क्रिया से उद्भूत यह सहज शब्द चर्मश्रवणो से नही सुना जा सकता। यह मूल शब्द पराशक्ति ही सुन सकती है।

३ यह शब्द प्रत्येक पदार्थ के सृजन के साथ होता है, अत यही उनका 'प्रकृत नाम' है। यह प्रकृत नाम प्रत्येक पदार्थ का होता है।

अब प्रश्न यह है कि फिर इन शब्दो का, प्रकृत सज्ञाओ और नामो का, ज्ञान कैसे होता है। यह ज्ञान उस योगी को होता है जो अपनी साधना से उस 'परा'-स्थिति को प्राप्त कर लेता है। वह उस ज्ञान को चर्म-श्रवणो से ग्राह्य, यथासम्भव सदृश्य, शब्द या ध्वनि के द्वारा प्रकट करता है। ये प्रकृत-सदृश्य नाम या सज्ञाएँ ही 'बीज मन्त्र' हैं। सृष्टि के मूल आरम्भ में जो प्रथम स्पन्दन पर ध्वनि हुई वह 'ओम्' थी अत यही महाबीज मन्त्र है। इसी से फिर सृष्टि की क्रियाओं के विस्तार के साथ

पैदा होने वाली ध्वनियां पैदा हुई । यह महाबीज मन्त्र ही बीज मन्त्रो का-जनक है। यह मूल मन्त्र परा, पश्यन्ती, मध्यमा के मार्ग से वैखरी रूप धारण करता है। इसी रूप मे इसे चर्मकर्ण सुन सकते हैं ।

वुड्रफ ने लिखा है —"ध्वनि रूप मे सभी अक्षर शक्ति के रूप है। जिस शक्ति के ये उद्भास हैं वह, वह सजीवित शक्तिका (energy) है जो विश्वरूप मे अपना विस्तार कर देती है। देवता का मन्त्र स्वय वही देवता है। (इसके उच्चारण से उत्पन्न) ध्वनि के लययुक्त स्पन्दन साधन के कोषो के चचल (अनियमित) स्पन्दनो को ही व्यवस्थित नही करते (जिससे वह साधक स्वय परिणत हो जाता है) वरन् साधक की साधनाशक्ति के द्वारा स्वय मन्त्र के देवता का रूप प्रत्यक्ष हो जाता है।"

इस प्रकार मन्त्र शब्दमात्र नही, वह स्वय देवता है। उनके उच्चारण से देवता प्रत्यक्ष होता है। उनका शक्ति से सम्बन्ध ही नही वे स्वय शक्ति हैं। पचभूतो के देवता अथवा बीज ये हैं

"ह, य, र, ल, व, चन्द्र विन्दु (ँ) के साथ। चन्द्र बिन्दु मे चन्द्र नाद का द्योतक है और विन्दु तो विन्दु है ही। प्रमुख बीज मन्त्र ये हैं—

हौँ, दुँ, क्रीँ, ह्लीँ श्रीँ, एँ, क्लीँ हूँ, गँ, ग्लौँ, क्ष्रौँ, स्त्रीँ ॥

इस विवेचन से स्पष्ट है कि शब्द की ध्वनि ध्वनि-मात्र नही यह किसी पदार्थ का प्रकृत-नाम है। पदार्थ और प्रकृत-नाम एक ही वस्तु हैं। नाम और मन्त्र और उसके देवता एक हैं। देवता, नाम और पदार्थ एक हैं। मन्त्र पर शासन है तो पदार्थ पर भी, मन्त्र से देवता का साक्षात्कार किया जा सकता है। मन्त्र ही तो देवता है। यह अधिकार टोना शक्ति से प्राप्त होता है। यहाँ वस्तुत टोना ही है।

मन्त्रयान

मन्त्रो के सम्बन्ध मे राहुलजी ने गगापुरातत्त्वाक, पृ० २१४ मे 'मन्त्रयान' पर लिखते हुए बताया है कि—

"मन्त्र कोई नयी चीज नही है। मन्त्र से मतलव उन शब्दो से है जिनमे लोग मारण, मोहन, उच्चाटन आदि की अद्भुत शक्ति मानते है। यह हम वेदो मे भी पाते हैं। ओ वौषट्, श्रौषट् आदि शब्द ऐसे ही है, जिनका प्रयोग यज्ञो मे आवश्यक माना जाता है। मन्त्रो का इतिहास ढूँढिये तो आप इन्हे मनुष्य की सभ्यता पर पैर रखने के साथ-साथ, तरक्की करते पायेंगे, बावुल (बेबीलोन), असुर, मिस्र आदि देशो मे भी मन्त्र का अच्छा जोर था। फलत मन्त्रयान वौद्धो का कोई नया आविष्कार नही है। प्रश्न यह है कि वौद्धो मे इसका आरम्भ कैसे हुआ और उसमे प्रेरक शक्ति क्या थी ? पाली के 'ब्रह्मजाल सुत्त' से मालूम होता है कि वुद्ध के समय मे ऐसे शान्ति सौभाग्य लाने वाले पूजाप्रकार या काव्य प्रचलित थे। गन्धारीविद्या या आवर्तनी-विद्या पर भी लोग विश्वास रखते थे। वुद्ध ने इन सवको मिथ्याजीव (झूठा-व्यवसाय) कहकर मना किया, तो भी इससे उनके शिष्य इन विद्याओ मे पडने से न रुक सके। वुद्ध के निर्वाण को जितना ही अधिक समय वीतता जाता था उतने ही लोगो की नजर से, उनके

मनुष्य गुण भी ओझल होते जाते थे। वहाँ अलौकिक गुणो वाले बुद्ध की सृष्टि का उपक्रम बढता जाता था जब लोगों ने बुद्ध की अलौकिक लीलाओं को अधिक प्रभावशाली देखा, तब इधर जुट पड़े। उनकी कथा से लोगों को वर्तमान में क्या लाभ ? • तब बुद्ध की अलौकिक शक्तियों का वर्तमान में भी उपयोग होने के लिए, बुद्ध के वचनो के पारायण मात्र मे पुण्य माना जाने लगा। उनके उच्चारण मात्र से रोग, भय आदि का नाश समझा जाने लगा ? उस समय भूत-प्रेत आज से बहुत अधिक थे। बुद्ध लोगो को इन भूतो की बहुत फिक्र रहती थी। इसलिए उन्हें वश मे करने के लिए भी कुछ सूत्रो की रचना होने लगी। स्थविरवादियो ने (जो कि मानुप बुद्ध के बहुत पक्षपाती थे) ही 'आटानाटीय-सुत्त'[1] से इसका आरम्भ किया।" फिर क्या था, रास्ता खुल गया •

उक्त क्रम से पहले अठारह प्राचीन बौद्ध सम्प्रदायो ने सूत्रो मे ही अद्भुत शक्तियाँ माननी शुरू की और कुछ खास सूत्र भी इसके लिए बनाये। फिर वैपुल्य-वादियो ने, लम्बे-लम्बे सूत्रो के पाठ मे विलम्ब देखकर, कुछ पक्तियो की छोटी-छोटी धारणियाँ बनायी अन्त में दूसरे लोग पैदा हुए जिन्होने लम्बी धारणियो को रटने मे तकलीफ उठाती जनता पर, अपार कृपा करते हुए, "ओ मुने मुने महा मुने स्वाहा", "ओ आ हुँ", "ओ तारे तुत्तारे तुरे स्वाहा" आदि मन्त्रो की सृष्टि की। अब अक्षरो का मूल्य बढ चला। फिर लोगो को, एक-एक मन्त्राक्षर की खोज मे भटकते देख, उन्होने 'मञ्जु श्रीनामसगीति" के कहे अनुसार सभी स्वर और व्यजन वर्णो को मन्त्र करार दिया। और अब 'ओ' और 'स्वाहा' लगाकर चाहे जो भी मन्त्र बनाया जा सकता था, बशर्ते कि उसके कुछ अनुयायी हो। • सक्षेप मे, भारत मे बौद्ध मन्त्र-शाखा के विकास का यही ढग रहा है। इस मन्त्रकाल को, यदि हम निम्नक्रम से मान ले, तो वास्तविकता से बहुत दूर न रहेगे—सूत्र रूप मे मन्त्र—ई०पू० ४००–१००, धारणी मन्त्र—ई०पू० १००–४०० ईस्वी, मन्त्र—ई० ४००–१२०० ई०।

इस प्रकार मन्त्र, हठयोग और मैथुन—ये तीनो तत्त्व क्रमश बौद्धधर्म मे प्रविष्ट हो गये। इसी बौद्धधर्म को मन्त्रयान कहते है। इसको हम निम्न मार्गो मे विभक्त कर सकते हैं—(१) मन्त्रयान (नाम) ई० ४००–७००, (२) वज्रयान (नाम) ई० ८००–१२००। (गगा-पुरातत्त्वाक)।

मन्त्रयान के सम्बन्ध मे डा० आर० ऐच० वान गुलिक का अभिमत

"Mantra means magic incantation or formula and as such has been defined "power in the form of sound" Yana (litl vehicle) is a means of crossing the sea of rebirths and attaining to salvation, it is

[1] 'दीर्घ निकाय' का एक सुत्त, जिसमे यक्षो और देवताओ का बुद्ध से सवाद वर्णित है। इसमे यक्षो और देवताओ के प्रतिनिधियो ने प्रतिज्ञाएँ की हैं, जिनके दोहराने से आज भी उनके वशज-देवताओ को, अपने पूर्वजो की प्रतिज्ञा याद आ जाती है और वे सताने से बाज आ जाते हैं।

the usual term employed to denote a certain trend of Buddhism Hence Mantrayan is the method through which one can reach salvation by muttering certain words and phrases The roots of this curious system may be traced back to very old, probably even pre-Indo-Aryan days The belief in the power of the magic formulae plainly evinces itself in many cantos of the Atharvaveda such as Abhicarakani curses and incantations against demons, sorcerers and enemies generally This belief seems to be particularly rooted in the propensity towards magic existing among the ancient aboriginal tribes of India Many of these ancient conceptions were adopted by the Indo-Aryan conquerors and made an integral part of their own conceptions In different parts of India, however, situated outside the centre of Indo-Aryan culture, where the aboriginal population was better able to preserve its own character, the native usages of magic and witchcraft maintained themselves in a form more closely resembling the pristine ''

और इस ८वी सदी के बीच जब महायान इन क्षेत्रो मे भी बढा तो समस्त विदेशी तत्त्व को सोखकर परास्त करने का ढग उसने अपनाया। इससे उस क्षेत्र मे प्रचलित जादू-टोने के आदिम भाव भी इसमे समा गये। बाद मे उन्हें सम्प्रदाय की बौद्धिकता के अनुकूल दार्शनिक स्तर और व्याख्या प्रदान की गयी।

मन्त्रयान मे बुद्धत्व प्राप्ति के लिए किसी तपस्या की आवश्यकता नही, केवल मन्त्रो के उच्चारण से यह बुद्धत्व सहज ही प्राप्त हो जाता है।

यही लेखक आगे पृष्ठ ५०-५१ पर लिखता है—

"A special form of the mantra to which I should like to direct the attention here in a few words is the mystic syllable, its shortest and perhaps oldest form

Most of the magic formulae are introduced by means of the very ancient Indian holy sound Om At the end one generally finds the syllables 'hum' and 'phat' Hum symbolises strength, with special relation to the destroying of evil powers A similar meaning is attached to the syllable *phat' which means to split, to break In sound it also* conveys the idea of destroying A formula usually closes with Svaha 'Hail'

Many syllables, moreover, are mystic germs (S bija, chin चुग त्जु chung-Tzu) *i e* sounds in which the essence of a deity is contained *By the meditation over this sound (introspection)* one may evoke in oneself the image of a deity So tne germ birth represents the essence of the Bodhisattva Avalokites, vara The germ of Hayagriva is "ham," which is analysed as ha, the initial syllable of his name, with the addition of the nasal (anusvara) m, the symbol of the universe

Sometimes we find also mentioned as his germ the germ Kham explained as the first syllable of Khada "devour", a part of the special mantra of Hayagriva, again with the nasal sound added Finally the syllable vam, the germ of the god Vairocana, is repeatedly met with in 'Mantrayan' texts

Some other less usual magic sounds are explained in footnotes to the texts

इसी लेख का यह कथन भी ध्यान देने योग्य है—

"Southern as well as Northern Buddhism has taken over and confirmed the cult of these magic formulae अर्थात् मन्त्र। In the Hinayana they were preserved under the name of Paritta The doctrine of the magic word, however, reached its apex in the Mahayan Here a new term was coined for the magic formula, namely dharani, derived from the root dhr, "to hold, to carry" The dharani is the holder, the carrier of magic power Next to this term also the word mantra remained in current use in the Mahayana If one will make distinction between mantras and dharani, then one can say in general that the dharani is longer than the mantras A dharani, as a rule, is composed of a collection of mantras p 25

मंत्र

ई गगन मण्डल वीच कुण्डल तारा
जाकूँ हाँकि गुरु हमारा
तमे का कोट वजर का तारा
तोमे पैठे पिंड प्रान हमारा
पेक जाय घोरी घारी
जाने छाँडि सीव हमारी
एक जाय गोरी घोरी
जिनऊ छाँडी सीव हमारी
हाँक हनवत
फछार भीम गररी
सरनि जो पर हमारी सीव
ई राजा दधीच जिन के चारि पुत्र
स्याम का राम का
चारिलु सराफ दियौ काम धेनु कूँ
मधू करा सुनि हरा
भागि भागि रे रोग
माधी का सबद साँचा

पिंड काचा
फरो ईश्वरी वाचा

जब गाय-भैंसो मे कोई रोग फैल जाता है तो इस मन्त्र को स्याने लोग उच्चारण करते हैं। इससे उनका रोग भाग जाता है।

(पडा क्षेम किशोर जी के यहाँ से। नसीठी, माँट, मथुरा)।

चमत्कार वाले मत्र

इस मन्त्र को पढकर तेल लगाने से मोहन शक्ति उत्पन्न हो जाती है, ऐसा विश्वास है। इसे लगाकर पच लोग पचायतो मे जाया करते हैं।

ई तिली तेल मदन तेल या तेल मोरा
मस्तिक चढि कारी छेरी
या बन मे आई
बस की डार आई
नरसिंह की मोहनी रही सभा मे छाय
सबद साँचा पिंड काचा
फुरो मन्त्र ईश्वरो बाचा।
(प० क्षेमकिशोर जी के यहाँ से। नसीठी, माँट, मथुरा)।

चाकू, उस्तरा आदि के बाँधने का मन्त्र

धार धार अधर धार
धार बाँधूं सात बार
अनी बाँधूं इक्कीस बार
कटै न चामर फटै न चीर
धार बाँधौ हनुमन्त वीर
आदेश गुरु कूं विद्या मोकूं
आनि वीर हनुमन्त की ॥
(रामचन्द्र आँधरे से लोहबन। माँट, मथुरा)।

पीढा बाँधने का मन्त्र

अम्वर चढता बँदरू बाँधूं सेमर चढता सूआ
सात सहेलिनु चरखा बाँधूं पीढा बाँधूं
सो पनिहारिनु कूआ
बाँधूं तेरे मात पिता कूं जाने तू ऐ जाई
बाँधूं तेरे सास ससुर कूं जाने तू ऐ व्याही।
आदेश गुरू कूं विद्या मोकूं
आनि बीर हनुमन्त की।

बैन बाँधने का मन्त्र

करई बेलि की तूमरी करए तेरे पात
मारूँ मूंठि मसान की टूक टूक है जात
मारूँ फूंक बजै नहि पाती
खेंचि के बन्द दै गुरु गोरखनाथ
भक्त मेरी शक्ति गुरू कूँ
फुरो मन्त्र ईसुर वाचा मेरो गुरु करूँ सबदु साँचा
आदेस गुरू कू
(मोहनलाल सुनार से प्राप्त। लोहवन माँट, मथुरा)

टीढी बाँधने का मन्त्र

पच्छिम देस ग्वालिया कूआ
जहाँ भैवल का जनम न हूआ
घारा मल्ला या का देस
सब भैवल कूँ लैजा घेर
गगन तीर गोरख का गाम
आवै भैबल मारूँ बान
मेरी केली ऊपर रहै
बैदली बाचा टर
राजा र मचदर जी की आन
सीता माता की आन।
(यह प० रामचन्द्र जी जो अन्धे है, उनसे लिया गया है। लोहवन, जिला मथुरा, तहसील माँट)

ओरे का मन्त्र

ई सरवर ओरे निजजै भीया बैठी पारि
जेते ओरे नीपजै जेती डारूँ गारि
हकारे हनुमन्त बसे बकारे बसे भीम
जो ओरेज पुरें हमारी सीख
मेरी भगति
गुरु की सकति
पिंड काचा
सबद साचा
फुरो मन्त्र ईसुरी वाचा

ओरे का दूसरा मन्त्र

ई जल बँधी जले स्वर बँधी
अम्बर आस्तारग बँधी

परवत परवत चाल्यौ
जा हनमन्त बीर धकारे
जा फुरो मन्त्र ईसुरो वाँचा
(प० क्षेमकिशोर जी से प्राप्त । नसीठी, माँट मथुरा)

ततैया लगाने का मन्त्र खून दिलाने का मन्त्र

अगिमि दिसा की धुनि करी पच्छिम दिसा कौ वानु
खेंचि "कें मार्‍यौ बलिया वीरु मसान"
नक्की कौ वलु छोडि रे वलिया वीर मसान
नक्की तोर नाहर सीगु घर तोरे हनुमन्त
पैलू भैरो नाथ मार करूँ भसमन्त
सन्त नाम आदेस गुरु कूँ
(मोहनलाल सुनार से प्राप्त । लोहवन, माँट, मथुरा)

इस मन्त्र के पढने से ऐसा विश्वास है कि गर्भ-स्तम्भन हो जाता है ।

ऊँ कील कील महाकील
और देव का कीला षूट
नरसिंह देवा कीलान षूट
तौ जिमी असमान कौ कौल टूटै
सबद साँचा
पिंड काँचा
फुरो मन्त्र ईस्वरो वाचा

मन्त्र प्रसूती को

श्री मुक्ता पार विमुक्ता श्वमुक्ता श्रयेण रस्मय
मुक्ता सर्वभप्सअर्मो रापि हिमाचिर श्वहा
या मन्त्र सू जल वार ७ मन्त्र इस्त्री पिवावै तत्काल प्रसूती होय ।

जन्त्र प्रसूती

या जन्त्र ने भस्त्री देखे तो ततकाल प्रसूती होय ।

१६	६	८
२	१०	१८
१२	१४	४

भोज पत्र पर लिख बाँधै तो भूत प्रेत मिटे गले बाँधै
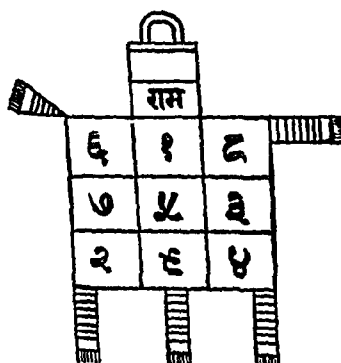
विशेष

यहाँ तक हमने मन्त्र के स्वरूप पर विचार किया है। कुछ मन्त्र भी उदाहरणार्थ ब्रज के क्षेत्र से लेकर दिये हैं। इससे एक बात तो यह स्पष्ट है कि मन्त्रो का आज जो स्वरूप हमें प्राप्त है उसे दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है
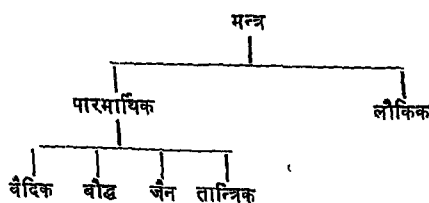
एक प्रकार के मन्त्र पारमार्थिक कहे जा सकते हैं। इनका उद्देश्य परमार्थ विषयक होता है। इनमे सामान्य लोक कल्याण की भावना रहती है। साथ ही इनका सम्बन्ध घनिष्ठ रूपेण धर्म से होता है। ये धर्म की बहुत उच्च भूमि पर प्रतिष्ठित होते हैं। सामान्यत इनसे जगत के विशिष्ट रोग दोषो में सहायता नही ली जाती। पर कभी-कभी इनको भी लौकिक चिकित्सा मे ले लिया जाता है। वेद के गायत्री मन्त्र से जल को फूंककर कई प्रकार की बाधाओ मे शरीर पर छिड़का जाता है।

ये मन्त्र लोक-साहित्य के क्षेत्र मे नही लिये जायेंगे, यद्यपि इनमे भी पूर्णत वही लोक-मानस है जो और मन्त्रो मे है। अन्तर केवल यह है कि इनका उपयोग और अभिप्राय लोक मानसिक नही। इनकी अभिव्यक्ति भी प्राय देव भाषा में होती है, लोक भाषा मे नही।

लौकिक मन्त्रयान एक प्रकार से लोक चिकित्सा और लोक सम्भरण के लिए होता है। इसका उपयोग दैनिक आवश्यकताओ के लिए होता है। भूतो-प्रेतो को झाडने-फूंकने, चोर को हटाने के लिए किसी को वश मे करने, किसी को हानि पहुँचाने आदि के लिए, विष उतारने के लिए, रोगो को दूर करने के लिए, पुत्र प्राप्ति के लिए, किसी को पीडा पहुँचाने या मारने के लिए आदि। फलत इसे यो विभाजित किया जा सकता है
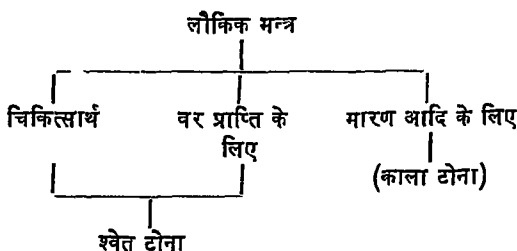
प्रणाली

मन्त्र के अध्ययन के लिए सवसे पहली वात तो मन्त्र सकलन है। कुछ मन्त्र अत्यन्त गुह्य रखे जाते हैं। कुछ विशिष्ट वर्ग के पास ही होते हैं। कुछ मन्त्र सामान्यत प्रचलित मिल जाते हैं। अत मन्त्रो के साथ मन्त्र वाले स्याने, ओझा, वाइगी आदि का परिचय प्राप्त करना होगा। उसकी रहन-सहन और व्यक्तित्व का वैशिष्ट्य भी देखना होगा।

मन्त्र की साधना को विस्तारपूर्वक समझना होगा। समय, पूजा-सामग्री, अनुष्ठानो के चरण तथा अन्य उपादानो का ठीक-ठीक उल्लेख करना चाहिए।

मन्त्र का सम्बन्ध किसी न किसी देवता से होता है, किसी न किसी इष्ट से होता है, किसी न किसी पीर-फकीर तथा महात्मा से होता है।

इन सभी का साहित्य-ज्ञान और इतिहास भी अपेक्षित है। मन्त्रो के प्रयोग की प्रणाली की भी उपेक्षा नही की जा सकती, मन्त्र मे आयी शब्दावली, उसमे आन का स्वरूप, उसमे दुहाई आदि सभी का ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अध्ययन करना होगा।

मन्त्र मे शब्द-सयोजना का भी महत्त्व होता है, और ध्वनि का उत्कर्ष-विकर्ष भी कुछ विशेषता रखता है। ध्वनि के यन्त्रो की सहायता से इनका लिप्यकन कर लेना चाहिए।

मन्त्रो मे प्रयुक्त शब्दो की निरुक्ति और व्युत्पत्ति को भी ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान तथा लोक निरुक्ति से खोजना होगा।

वस्तुत मन्त्र के साथ लोक-मानसिकता के साथ एक और भी विशिष्ट मनोवैज्ञानिक तत्त्व सलग्न रहता है। वह होता है मन्त्र शब्दावली मे शैलीगत एक रहस्य के द्वारा मानसिक आतक को प्रस्तुत करना। इस दृष्टि से मनोविज्ञान के प्रकाश मे

लोक मन्त्रों की शैली को विशेष अध्ययन का विषय बनाया जा सकता है। लोक भाषा में लिखे मन्त्रो के हस्तलिखित ग्रन्थ भी बहुत-से मिलते हैं और कुछ प्रकाशित भी हुए है। मौखिक मन्त्रो का भौगोलिक अध्ययन क्षेत्र के क्रम से रूपान्तरो की तुलना पूर्वक किया जा सकता है। ग्रन्थो के सहारे तुलना करके ऐतिहासिक क्रम मे रखकर अध्ययन भी सम्भव है।

ऐसे अध्ययनो के साथ मन्त्रो मे नृविज्ञान, सास्कृतिक तत्त्व आदि भी देखे जा सकते हैं।

मन्त्रो के साथ जन्त्रो को भी लेना होगा। इन सबके साथ इसके अनुष्ठानतन्त्र को भी दृष्टि मे रखना होगा।

पन्द्रहवाँ अध्याय

लोक-निरुक्ति

लोक-निरुक्ति (Folk etymology) का सम्बन्ध शब्द-विषयक अध्ययन से है, लोक-शब्दो के इस अध्ययन की दो दिशाएँ होती हैं। एक तो लोक की शब्द-निर्माण प्रवृत्ति का तथा लोक-शब्दो की व्युत्पत्ति का अध्ययन, दूसरे लोक-शब्दो की पहचान और तद्विषक पृष्ठभूमि।

लोक निरुक्ति के लोक-व्युत्पत्ति विषयक अग मे हम उन नियमो का अध्ययन करते है जो विविध शब्दो के निर्माण मे और उनमे आवश्यकतानुरूप विकार पैदा करने मे काम करते हैं। यो यदि यह देखा जाय तो शास्त्रीय प्रवृत्ति तो शब्दो के सस्कार और सुरक्षा-सरक्षण से सम्बन्धित होती है। वह एक परिनिष्ठित रूप प्रतिष्ठित कर लेती है। फिर उसका आग्रह होता है कि वही रूप मान्य समझा जाय और वही रूप सुरक्षित रहे। लोक-प्रवृत्ति इसके विरुद्ध सहज-प्रवृत्ति होती है, इसमे शब्दो को मानवा-विभावानुकूल देश की अवस्था के अनुरूप ही नही मनुष्य की निजी भावभूमियो के परिवर्तनो के अनुकूल भी ढालते रहने की परम्परा विद्यमान रहती है। इस प्रवृत्ति के अधीन अद्‌भुत-अद्‌भुत विकार उत्पन्न होते हैं, कुछ अत्यन्त अस्थायी होते हैं। वे तत्क्षण तो देखे और अनुभव किये जा सकते है, पर दूसरे ही क्षण विस्मृत हो जाते हैं, पर कुछ विकार अपनी परम्परा बना लेते है। एक शब्द को लें, जैसे

वत्स, बच्चा, बच्चू, बच्चटा, बच्चा-फच्चा, बच्चन,

इनमे से वत्स तो सस्कृत और परिनिष्ठित रूप है, जो लोक-भाषा मे आपको मिलेगा ही नही। शेष शब्दो के प्रयोग देखिए—

यह बच्चा किसका है। = लडके के सामान्य अर्थ का द्योतक

तू तो निरा गधे का बच्चा निकला। गाली तो है, पर बच्चा यहाँ सन्तान के अर्थ मे आया है।

बच्चे! यहाँ तो आना—सबोधन होते हुए भी कुछ प्रेम के भाव का सम्पर्क है।

बच्चू! कल मिलोगे तो देख लूँगा—इसमे एक आह्वान या चैलेंज का भाव है, उसी के अनुसार बच्चा शब्द बच्चू बन गया है।

वह है न, मोहन का बच्चटा!—हेय और हीनता को द्योतन करने के लिए बच्चा 'बच्चटा' मे परिणत कर लिया गया।

होगा किसी का बच्चा फच्चा
मैं नही जानता— उपेक्षा के भाव को अभिव्यक्त करने के लिए यह पद्धति अपनायी गयी है।

बच्चन, देखें तो क्या लाये हो—किंचित लाड का उद्‌गार इसमे निहित है।

इसी प्रकार और भी अनेक अद्‌भुत परिवर्तन लोक-प्रवृत्ति मे शब्दो मे परिलक्षित होते है। इसी प्रकार के 'प्रयोग-स्वातत्र्य' के कारण वस्तुत नयी भाषाओ अथवा बोलियो का विकास 'लोक-धारा' मे से ही होता है और भारतीय भाषाओ का विकास इस बात का एक प्रमाण है कि एक ही समय मे भाषा के दो रूप 'परिनिष्ठित' और 'लोक-रूप' साथ-साथ मिलते रहे हैं। परिनिष्ठित रूप सस्कृत, सभ्य और साहित्यिको द्वारा अपनाया गया, और उसमे एक स्थिरता आ गयी वह एक छोटे वर्ग मे ही ग्रहीत रहा। लोक रूप प्रवाहमान रहा उससे नया भाषा रूप ढाला, और वह शेष समग्र विशाल लोक-समूह द्वारा ग्रहीत हुआ। सस्कृत>प्राकृत>अपभ्रश>देशी भाषाएँ यह विकास क्रम लोक-निरुक्त से ही हुआ है।

ऊपर जो 'बच्चा' शब्द का उदाहरण दिया गया है, उससे यह प्रतीत होगा कि यह 'वत्स' शब्द का रूपान्तर है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से कहा जा सकेगा कि 'लोक' के 'बच्चा' आदि शब्द 'वत्स' से व्युत्पन्न हैं। पर भारतीय वैयाकरणो ने शब्दो के तीन रूप माने है जिन्हे 'तत्सम', 'तदभव' तथा 'देशज' कहा गया। 'देशज' शब्द उन्हे माना गया, जिनकी व्युत्पत्ति किसी 'सस्कृत' शब्द से सिद्ध न हो सके। इनके सम्बन्ध मे यह धारणा थी कि ये शब्द स्थानीय जन-समूह ने स्वय निर्मित किये हैं। इसी दृष्टि से हमे भारतीय भाषाओ में देशी नाममालाओ के निर्माण के प्रयत्न मिलते हैं। इन देशी नाममालाओ मे विद्वानों ने उन शब्दो का सकलन करने का प्रयत्न किया जो उनके ज्ञानानुसार 'देशज' हैं, जिन्हे किसी सस्कृत शब्द से सहज व्युत्पन्न नहीं माना जा सकता। हेमचन्द्राचार्य की देशी नाममाला प्रसिद्ध ही है। यद्यपि आज हमे उसमे कितने ही शब्द ऐसे मिलते हैं जिनके सस्कृत रूप सिद्ध किये जा सकते हैं, किन्तु हेमचन्द्राचार्य के समय मे उन्हे देशी शब्द ही माना जाता था। आचार्य ने प्राय वही शब्द दिये हैं जो देशी होते हुए भी साहित्य मे प्रयोग मे आ उठे थे।

उधर सस्कृत की परिनिष्ठित शब्दावली के कोषो पर दृष्टि डालने से यह भी सिद्ध होता है कि उसने स्वय समय-समय पर ऐसे अनेको शब्दो को प्राय ज्यो का त्यो या कुछ सस्कार के साथ ग्रहण कर लिया है जो उस काल मे देशज थे, और जो सस्कृत की अपनी जातीय परम्परा मे नही आते थे। इस प्रकार लोक-निरुक्ति का यह अग हमे साहित्य मे अथवा परिनिष्ठित भाषा मे प्रयुक्त लोक-शब्दो के अध्ययन की ओर भी प्रवृत्त करता है।

साथ ही यह बात भी ध्यान मे रखने की है कि देशी 'नाम-माला' जैसे कोषो मे केवल वही शब्द लिये गये हैं जो समय-समय पर परिनिष्ठित भाषा के साहित्य मे पैठ गये हैं पर लोक-निरुक्ति केवल उन्ही शब्दो के अध्ययन तक नही सीमित रहती है।

वह तो लोक-भापा के वर्तमान स्वरूप मे देशज शब्दो का अध्ययन भी करती है और उस प्रवृत्ति मे शब्द निर्माणक तत्त्वो का उद्घाटन भी कराती है।

लोक-व्युत्पत्ति का विपय निश्चय ही बहुत रोचक है। कभी-कभी तो इसमे लालबुझक्कडी प्रवृत्ति दिखायी पडती है। अनेक शब्दो की व्युत्पत्ति ऐसे अद्भुत रूप से बतायी जाती है कि वैज्ञानिक मानस को स्तम्भित रह जाना पडता है। विविध व्यक्तिवाचक नामो और स्थानो के नामो के सम्बन्ध मे यह बहुधा होता है। उदाहरणार्थ, मथुरा मे यमुना के एक घाट का नाम 'विश्रात या विश्राम' घाट है। उसके सामान्य इतिहास पर दृष्टि डालने से तो यह विदित होता है कि यह श्मशान घाट होगा, जिसे अनन्त विश्रान्ति या विश्राम के अर्थ मे विश्रान्त घाट या विश्राम घाट कहा गया। पर कृष्ण-भूमि के धार्मिक वातावरण ने इसकी लोक-व्युत्पत्ति प्रस्तुत की कि यहाँ कृष्ण ने कस को मारकर विश्राम किया था, अत यह विश्राम या विश्रान्त घाट कहलाता है। 'कामर' का नाम कामर इसलिए है कि यहाँ कृष्ण का कम्बल चोरी चला गया था। ऐसी समस्त व्युत्पत्तिपरक लोकवार्ताओ का अध्ययन इसी अग के अन्तर्गत आता है। लोक मे व्युत्पत्ति की प्रवृत्तियो को भली प्रकार समझ लेने से भाषा के विकास के सिद्धान्तो का अच्छी तरह उद्घाटन हो सकता है, और अनेक भाषातात्विक गुत्थियाँ सुलझायी जा सकती हैं। इसीलिए भाषातत्वविद् लोकवार्ता को अपना एक परम सहायक शास्त्र मानते है।

अत यह स्पष्ट है कि लोक-निरुक्ति के अन्तर्गत लोक-शब्दो का सकलन उनके स्रोतो का और उनकी लोकवार्ता तथा पृष्ठभूमि का अनुसन्धान तथा उन शब्दो का प्रयोग वैशिष्ट्य तो आता ही है उन नियमो का अनुसन्धान भी आता है जिनसे शब्दो मे विकार तथा विकास होता है।

नियमों का अनुसन्धान

नियमो का अनुसन्धान शब्दो के अध्ययन से ही होता है। यहाँ कुछ प्रयत्न दिये जाते हैं, जिनसे नियमानुसन्धान की प्रक्रिया मानी जा सकती है।

ब्रज मे एक शब्द है 'सन्नाटौ'। सन्नाटौ एक सामान्य शब्द 'सन्नाटा' का ही रूपान्तर है। सन्नाटा=(१) घोर निश्शब्दता। जैसे उस मकान मे सन्नाटा था। झीगुर तक की झनकार नही थीं।

=(२) सन्न करने वाला। सन्न=जैसे उस समाचार को सुनकर तो वह सन्न रह गया। अर्थात एकदम सनसनाहट हुई और फिर जडता आयी। अत अब एक विचित्र लोक-प्रयोग इस शब्द का ब्रज मे होने लगा सन्नाटौ=रायता। सामान्य रायता नही, वह रायता जिसमे बहुत मिर्चें पडी हुई हो। अब बहुत-सी जगह दावतो मे रायते के लिए इसी शब्द का उपयोग होता है।

अत' शब्द ने सामान्य अर्थ से विशेप अर्थ की ओर प्रवृत्ति दिखायी फिर उसने एक विशेप क्षेत्र मे एक विशेप अर्थ से सम्बद्धता प्राप्त की।

हमबटन ब्रिज

एक पुल का नाम है तामिल क्षेत्र है।
मूल मे 'हमबटन' 'हैमिल्टन' का अपभ्रश रूप है। हैमिल्टन एक अग्रेज का नाम। जिसके सम्मान मे यह पुल हैमिल्टन ब्रिज कहलाया।
लोक मे हैमिल्टन उच्चारण की प्रकृति से 'हमबटन' हो गया।
यहाँ शब्द साम्य की ओर झुकाव के नियम ने काम किया है। हैमिल्टन लोक के लिए अपरिचित शब्द। वह 'हम वटन' से परिचित। फलत 'हम लटन' मे पहले स्वरलोप हुआ, फिर 'साम्य' से ल 'व' मे परिणत हुआ। फलितार्थ था हमबटन। तामिल मे हमबटन=नाई। अब हमबटन ब्रिज हो गया 'नाई का पुल'।

अत शब्द ने अपरिचित के स्थान पर परिचित शब्द से स्थान बदला और उसी का अर्थ ग्रहण किया।

टन्नाकेदार

=टन्न=किसी धातु को बजाने पर निकलने वाली आवाज=गुण
टन्नाका=टन्न की आवाज निकलना=गुण की क्रिया
टन्नाकेदार=टन्नाके युक्त वस्तु=रुपया असली धातु का
अथवा खरा सिक्का=गुण क्रिया-द्रव्य
टन्नाकेदार=खरा=कोई भी खरी असली वस्तु=द्रव्य विशेष से सामान्यीकरण

जोडी या जोडा

जोड से जोडी=ऐसी दो वस्तुएँ जो एक-दूसरे के जोड की हो। तब 'जोडी जूती' शब्द प्रयोग मे आया। आगे 'जूती' शब्द लोप हो गया। अब जोडी=जूती।

लोक शब्दावली

इसी प्रकार लोक-शब्दावली का सकलन तथा अध्ययन किया जायगा। ऐसे कई अध्ययन प्रस्तुत किये गये हैं। एक डा० हरिहर प्रसाद गुप्त का पी-एच० डी० का निबन्ध है। दूसरा है डा० अम्बा प्रसाद सुमन का पी-एच० डी० का निबन्ध जिसका शीर्षक है व्रज की कृषि विषयक शब्दावली।

इस सम्बन्ध मे डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के पृथ्वीपुत्र मे बहुत उपयोगी तथा प्रेरणाप्रद सामग्री जहाँ-तहाँ है। उन्होने कितने ही क्षेत्रो से कितने ही लोक-शब्दो को लेकर उन पर विचार प्रस्तुत किये हैं। डा० ग्रियर्सन का एक आदेश कार्य है 'पैजेन्ट लायफ न विहार'।[1] श्री ईलियट आदि ने भी ऐसे कुछ सग्रह अपने ग्रन्थ

---

[1] इसका कुछ उदाहरण इस पुस्तक के पृ० १६३ पर दिया हुआ है।

'द मैमोयर्स ऑन द हिस्ट्री, फोकलोर, एण्ड डिस्ट्रीब्यूशन ऑव द रेसेज ऑव द नार्थ-वैस्टर्न प्राविन्श ऑव इण्डिया' मे दिया है।

इन अध्ययनो से हमे ऐसे शब्दो का पता चलता है जो पारिभाषिक कहे जा सकते है।

इनसे कुछ ऐसे शब्दो का भी पता चलता है, जिनमे कही अत्यन्त प्राचीन नाम सुरक्षित हैं। जैसे हिन्दी का शब्द युग्म 'अलाइ-बलाइ' है। आज इसमे कोई सन्देह नही कि यह शब्द युग्म 'आलिगी-वालिगी' नामक दो असुरो के नामो का रूपान्तर है। ये अभारतीय असुर हैं जो इन शब्दो मे अपने नामो के रूप मे जीवित हैं। इस प्रकार शब्दो मे इतिहास भी मिलता है।

स्थान-नाम पुरुष-स्त्री नाम आदि

स्थान के नामो का सकलन और अध्ययन भी लोकवार्ता के क्षेत्र मे आयेगा। उन नामो के सम्बन्ध की वार्ता भी एकत्र करनी होती है, उनकी व्युत्पत्ति भी देखनी होती है। यह व्युत्पत्ति लोक-निरुक्ति की प्रणाली पर भी देखनी होगी और भाषा वैज्ञानिक प्रणाली से भी।

ऐसे शब्दो का अध्ययन भी भौगोलिक और ऐतिहासिक विधियो से करना होगा। बहुत-से स्थान नाम ऐसे हैं जो अपने एक ही रूप मे, अथवा कुछ सशोधित रूप मे एक बडे विशाल भू-भाग मे मिलते हैं। उन नामो के किस क्षेत्र मे क्या अर्थ हैं यह भी भौगोलिक तुलना से देखना होगा। फिर इतिहास मे भी ढूंढना होगा।

अनेक स्थान नाम ऐसे मिलेंगे जो विविध ऐतिहासिक जातियो और सस्कृतियो के अवशेष होगे। ऐसे नामो का अध्ययन इतिहास के लिए भी सहायक है, और इसमे तो सन्देह नही कि इतिहास तो इनको समझाने मे सहायक होता ही है।

स्थान नामो की भाँति ही पुरुष और स्त्रियो के नाम भी अध्ययन की वस्तु होते हैं। इन नामो के साथ लोकवार्ता भी लगी रहती है। उदाहरणार्थ, आपको कोई नाम मिला छीतरिया, छीतरमल या छीतरसिंह। ये शब्द 'छीतरी' से व्युत्पन्न हैं। 'छीतरी' के सम्बन्ध मे लोकवार्ता और लोक विश्वास है। 'छीतरी' एक डलिया होती है। जिन स्त्रियो के बच्चे पैदा होकर मर जाते हैं, उनके यहाँ किसी बच्चे को पैदा होते ही 'छीतरी' मे डालकर विशेष अनुष्ठान से घसीटते हैं। इससे यह विश्वास किया जाता है कि अब यह बालक जीवित रहेगा। उसका नाम भी 'छीतरिया' रख दिया जाता है। उसकी 'छीतरी' भी जन्म दिवस पर पूजी जाती है। 'छीतरी' के अनुष्ठान का लोकवार्ता विषयक अनुसन्धान भी आवश्यक है।

ऐसे नामो के अध्ययन और सकलन मे उन नामो पर भी ध्यान देना होगा जो किसी लोकवार्ता के विश्वास के कारण बोलने के नामो से भिन्न दिये जाते है। ये 'डाक नाम' बगाल मे बहुत प्रचलित हैं पर ये और क्षेत्रो मे भी हैं। राशि नाम जिसे

पडित निकालते हैं वह प्राय भिन्न होता है, और घर मे बोलने का नाम कुछ और होता है। इन बोलने के नामो के भी दो रूप होते है—एक शुद्ध, एक लाड का। उदाहरणार्थ, एक का राशिनाम निकला 'भ' से 'भगवानदास'। घर के लोगो को यह पसन्द नही आया। उन्होने उसका अपना नाम रखा 'चन्द्र भूषण', पर लाड मे उसे कहा गया 'चन्दू'। ये लाड के नाम कभी-कभी अन्य अभिप्रायो से भी रख लिये जाते है। मुन्ना-मुन्नी, बेबी (अग्रेजी baby से), मँझले-मझा, छुट्टा (छोटा होने के कारण), बटी (बडी बेटी या बती का रूपान्तर), कुछ नामो मे बोलने वालो द्वारा ऐसा विकार होता है कि उससे मूल नाम की कल्पना नही हो सकती। जैसे 'हप्पो' यह लाड का नाम 'हरिप्यारी' से बना है। इन नामो की व्युत्पत्ति या विकार के सिद्धान्तो का अध्ययन भी लोक निरुक्ति का विषय होगा।

ऐसे अध्ययनो से नामो की निरुक्तियाँ या निरुक्ति को भी प्रस्तुत करने की आवश्यकता है, तब इन निरुक्ति कोषो से नृतत्वादि, इतिहास-शास्त्री, मनोविज्ञान-विशारद, समाजशास्त्री अपने-अपने निष्कर्ष निकाल सकते हैं। लोकवार्ताकार के अपने निष्कर्ष भी अत्यन्त महत्त्व के माने जायँगे।

ऐसे शब्दो को पहले चिटो पर लिख डालना चाहिए। इन चिटो से फिर अपने मनोनुकूल विधियो से उन्हे क्रम से बिठाया जा सकता है।

बँगला के 'डाक' नामो पर एक अध्ययन हम यहाँ उद्धृत कर रहे हैं, 'भारतीय साहित्य' से। यह अध्ययन श्री श्रीनारायण पाडेय[1] द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

'डाक नाम' (पुकारे जाने वाले नाम) और उनमे लोक-विश्वास

बगाल में दो तरह के नामो को रखने की प्रथा है। एक तरह का नाम, जिसको स्कूलो, सरकारी कागजातो आदि मे व्यवहार किया जाता है, उसे 'भालो नाम' (अच्छा नाम) कहा जाता है। दूसरे तरह का नाम वह है, जिसकी चर्चा यहाँ की जा रही है। इसको 'डाक नाम'[2] कहा जाता है। परिवार के लोग या अन्यान्य परिमित लोग इस नाम का व्यवहार करते हैं। 'डाक नाम' कई तरह के होते हैं। मोटे तौर पर इनको दो भागो मे बाँटा जा सकता है—

१ वे 'डाक नाम' जो अच्छे नाम के ही एक अश को लेकर रख लिये जाते हैं।

२ वे 'डाक नाम' जो अच्छे नाम के किसी अश पर आधारित न होकर बिलकुल स्वतन्त्र होते हैं।

---

[1] इनका वर्तमान पता है—
अध्यापक प्रवीणचन्द्र विद्यापीठ, वहरामपुर।

[2] पुकारने का नाम

पहली तरह के नामो का उदाहरण—

पुरुषो के नाम		स्त्रियो के नाम	
शकरकुमार	शक्कू	अलका	आलो
विप्लवकान्ति	विप्लव	अजली	अजू
तरुणकुमार	तरुण	मृदुला	मृदू
निताईचाँद	निताई	शान्ता	शानू
कातिकचन्द	कातिक	तन्द्रा	तनू
मधुसूदन	मधू	सुचरिता	सुचि
समीरकुमार	समीर	आभा	अइभि
सौमित्री	सोमू	काननवाला	कानू
अजितकुमार	अजित	नीलिमा	निली
निरजन	रजन	जयश्री	जया
विभूति	विभू	डालिमा	डली
दिलीपकुमार	दिलू	शिबानी,	शिवी
निर्मलकुमार	निर्मल	अनिता	ओनू
विश्वनाथ	विशू	जूथिका	जूथी
काशीनाथ	काशू	तपती	तपू
		सुप्रीति	सपू

लोक विश्वासो की दृष्टि से इन नामो का विशेष महत्त्व नही है। ये मूल नाम के एक ही छोटे अश को लेकर पुकारे जाते हैं। इस प्रकार के नाम हिन्दी भाषी प्रान्तो मे खूब प्रचलित हैं। जैसे विजयशकर—विजयी, रमाशकर—रमा, कैलाशनाथ—कैलास, गिरिजाशकर—गिरजा इत्यादि।

दूसरी तरह के नामो को फिर से कई भागो मे बाँटा जा सकता है—

(अ) ऐसे नाम जिनकी कोई व्याख्या नही की जा सकती।

(ब) ऐसे नाम जो स्वभाव के आधार पर रख दिये जाते हैं।

(स) जो किसी दिन विशेष को जन्म लेने के कारण रखे जाते हैं।

(द) जो विभिन्न सामाजिक स्थितियो को सूचित करते हैं।

(य) जो किसी लोक विश्वास पर आधारित होते हैं।

(अ)

पुरुषो के नाम		स्त्रियो के नाम	
अनिलकुमार	मानिक	कृष्ण	आनू
अनूपकुमार	बच्चू	सुमित्रा	छवि
सुभाष	मणि	वन्दना	तूलिका
मनोव्रत	कानू	कमला	डली
मदनमोहन	बुल्लू	भारती	ब्रुलू
विधानकुमार	खोकन	सुनदा	शुक्ला
विप्लवकुमार	जयदेव	माया	शिखा
अभिजित	गोरा	बलाका	बाबू
सुरजित	पल्टन	अनिन्दिता	अलोका
सुबीर	बाबूराम	ईला	लूशी
अजनी	गोबा	अणिमा	बेबी
अरुणकुमार	गौतम	सुमिता	शीला
ज्योतिकुमार	घुन्टू	गौरी	दुलाली

ये नाम इतने व्यक्तिगत होते हैं कि इनकी व्याख्या करना कठिन होता है।

(ब) स्वभाव के आधार पर—बचपन मे बच्चो का स्वभाव देखकर ऐसे नाम रखे जाते हैं।

शिलाजीत—दुष्टू नन्दिला—शान्ति
प्रदीप —भीतू शुक्ला—चचला

बचपन मे छोटे बच्चो को शरारती देखकर दुष्टू, शान्त देखकर शान्ति, चचल देखकर चचला तथा डरपोक देखकर भीतू नामकरण भी किया जाता है।

(स) जो किसी दिन या समय विशेष पर जन्म लेने के कारण रखे जाते हैं।[1]

समरेन्द्र	रवि	अणिमा	सर्वाणी
दिपेन्द्र	दुर्गा	नन्दिला	सरस्वती
श्यामल	कातिक	सुब्रता	लक्ष्मी
चन्दन	कन्ट्रोल	गायत्री	न्यू
अजित	सूको (सूखा)	हेममाया	जापानी
मदन	डकैत	मिनती	वासन्ती

[1] किन्तु आवश्यक नही है कि मूल नाम के साथ उनका कोई सम्बन्ध हो ही।

पहली तरह के नामो का उदाहरण—

पुरुषो के नाम		स्त्रियो के नाम	
शकरकुमार	शक्कू	अलका	आलो
विप्लवकान्ति	विप्लव	अजली	अजू
तरुणकुमार	तरुण	मृदुला	मृदू
निताईचाँद	निताई	शान्ता	शान्तू
कार्तिकचन्द	कार्तिक	तन्द्रा	तनू
मधुसूदन	मधू	सुचरिता	सुचि
समीरकुमार	समीर	आभा	अइभि
सौमित्री	सोमू	काननवाला	कानू
अजितकुमार	अजित	नीलिमा	निली
निरजन	रजन	जयश्री	जया
विभूति	विभू	डालिमा	डली
दिलीपकुमार	दिलू	शिवानी,	शिवी
निर्मलकुमार	निर्मल	अनिता	ओनू
विश्वनाथ	विशू	जूथिका	जूथी
काशीनाथ	काशू	तपती	तपू
		सुप्रीति	सपू

लोक विश्वासो की दृष्टि से इन नामो का विशेष महत्त्व नही है। ये मूल नाम के एक ही छोटे अश को लेकर पुकारे जाते हैं। इस प्रकार के नाम हिन्दी भाषी प्रान्तो मे खूब प्रचलित हैं। जैसे विजयशकर—विजयी, रमाशकर—रमा, कैलाशनाथ—कैलास, गिरिजाशकर—गिरजा इत्यादि।

दूसरी तरह के नामो को फिर से कई भागो मे बाँटा जा सकता है—

(अ) ऐसे नाम जिनकी कोई व्याख्या नही की जा सकती।

(ब) ऐसे नाम जो स्वभाव के आधार पर रख दिये जाते हैं।

(स) जो किसी दिन विशेष को जन्म लेने के कारण रखे जाते हैं।

(द) जो विभिन्न सामाजिक स्थितियो को सूचित करते हैं।

(य) जो किसी लोक विश्वास पर आधारित होते हैं।

(अ)

पुरुषो के नाम		स्त्रियो के नाम	
अनिलकुमार	मानिक	कृष्ण	आनू
अनूपकुमार	वच्चू	सुमित्रा	छवि
सुभाष	मणि	बन्दना	तूलिका
मनोव्रत	कानू	कमला	डली
मदनमोहन	बुल्लू	भारती	बुलू
विधानकुमार	खोकन	सुनदा	शुक्ला
विप्लवकुमार	जयदेव	माया	शिखा
अभिजित	गोरा	वलाका	वाबू
सुरजित	पल्टन	अनिन्दिता	अलोका
सुबीर	वाबूराम	ईला	लूशी
अजनी	गोबा	अणिमा	बेबी
अरुणकुमार	गौतम	सुमिता	शीला
ज्योतिकुमार	घुन्टू	गौरी	दुलाली

ये नाम इतने व्यक्तिगत होते है कि इनकी व्याख्या करना कठिन होता है।

(ब) स्वभाव के आधार पर—बचपन मे बच्चो का स्वभाव देखकर ऐसे नाम रखे जाते हैं।

शिलाजीत—दुष्टू नन्दिता—शान्ति
प्रदीप —भीतू शुक्ला—चचला

बचपन मे छोटे बच्चो को शरारती देखकर दुष्टू, शान्त देखकर शान्ति, चचल देखकर चचला तथा डरपोक देखकर भीतू नामकरण भी किया जाता है।

(स) जो किसी दिन या समय विशेष पर जन्म लेने के कारण रखे जाते हैं।[1]

समरेन्द्र	रवि	अणिमा	सर्वाणी
दिपेन्द्र	दुर्गा	नन्दिता	सरस्वती
श्यामल	कार्तिक	सुब्रता	लक्ष्मी
चन्दन	कन्ट्रोल	गायत्री	न्यू
अजित	सूकी (सूखा)	हेममाया	जापानी
मदन	डकैत	मिनती	वासन्ती

[1] किन्तु आवश्यक नही है कि मूल नाम के साथ उनका कोई सम्बन्ध हो ही।

द्वितीय युद्ध के समय जन्म लेने के कारण 'जापानी' न्यूइयर्स के कारण 'न्यू', वसन्त पचमी के कारण 'वासन्ती', दुर्गापूजा के दिन के कारण 'दुर्गा', रविवार के दिन के कारण रवि, सूखा मे जन्म लेने के कारण 'सूको' आदि नाम रखे गये हैं।

(द) जो विभिन्न सामाजिक स्थितियो को सूचित करते है—ये नाम लडकियो के ही होते हैं।

स्त्रियो के नाम

अमिता	इति	मिनती	मुक्ति
श्रीपणी	माना	छन्दा	जाजा
कविता	चाईना	श्यामा	आन्नाकाली

बगाल मे लडकियाँ एक समस्या है। अधिक लडकियो के होने से लोगो को अधिक दहेज देना पडता है। इस आर्थिक दबाव के कारण लोग अधिक लडकियो का होना पसन्द नही करते। अत जब अधिक लडकियाँ हो जाती हैं, तो और न हो इसके मनोभाव को सूचित करने वाले ये नाम हैं—इति (यही तक अन्त), माना (माँ और नही), चाईना (और नही चाहिए) मुक्ति (अब मुक्ति मिले), जाजा (जाओ जाओ) आन्नाकाली (काली और नही)।

(य) लोक विश्वासो को सूचित करने वाले नाम—

केशव	केना	सुशील	खुदू
निरजन	बेंचा	मनोरजन	पथकूडो
विमल	तीन कौडी	हलधर	कुडोराम
हेदू	पाँच कौडी	अनूप	पाँचू
सुनीति	दो कौडी	प्रभात	कानीकूडो
आशीष	हरधन	पकजकरणी	कुरुनी } स्त्रियों के नाम
		सरूपा	पाँचो }

हमने ऊपर जितनी तरह के नामो का उल्लेख किया है, यही सही वर्गीकरण है ऐसा दावा नहीं किया जा सकता। अत इसका अध्ययन और भी विभिन्न विधियों से किया जा सकता है।

यहाँ पर जितने तरह के नामो का उल्लेख हुआ है, उसमे (य) के अन्तर्गत हमे लोक-विश्वासो से सम्बन्धित सामग्री मिलती है। अत हम अपने को इसी तक सीमित रख रहे हैं।

(य) के अन्तर्गत जितने तरह के नामो का उल्लेख किया गया है, उन सबके पीछे एक ही विश्वास काम कर रहा है। इस तरह के नामकरण करने के साथ एक तरह का टोटका जुडा हुआ है। जिन लोगो की सन्तानें बार-बार मर जाया करती

हैं, वे इस तरह का टोटका करते हैं और विश्वास करते है कि इस टोटके के करने से अब सन्तान बच जायगी ।

केना-वेंचा—केना का अर्थ खरीदना और वेंचा का विक्री करना है । सन्तान होने के साथ-साथ उसको किसी अन्य व्यक्ति के हाथ वेंच दिया जाता है, और पुन उसको खरीद लिया जाता है । इस बेंचने और खरीदने के आधार पर केना-वेंचा नामकरण होता है । इसमें यह विश्वास है कि हमारे भाग्य मे सन्तान नही लिखी है, इस टोटके से सन्तान दूसरे की हो गयी, और अब नही मरेगी ।

तीन कौडी, पाँच कौडी, दो कौडी—तालिका (य) मे केवल इन नामो का ही उल्लेख है, किन्तु सात कौड़ी, नौ कौडी, एक कौडी नाम भी पाये जाते है । इस तरह का टोटका भी जब सन्तान पैदा होती है उसी समय किया जाता है । इन विभिन्न संख्या वाली कौडियो को देकर कोई अन्य व्यक्ति सन्तान को खरीद लेता है ।

कानिकूडो-पथकूडो—कानि का अर्थ है—पुराने कपडे का टुकडा—इन टुकडो को देकर सन्तान खरीद ली जाती है । पथकूडो—रास्ते पर सद्यजात सन्तान को ले जाकर वेंचने का टोटका किया जाता है, इससे कानिकूडो तथा पथकूडो नाम रखे जाते हैं ।

हरधन-कूडोराम—कई सन्तानो के मर जाने पर जो सन्तान होती है, उसे हरधन कहकर पुकराते हैं (हरा हुआ धन) । इसी तरह बहुत कष्ट के पश्चात् जब कोई सन्तान जन्म ग्रहण करती है तो कूडोराम नाम दिया जाता है । इसी तरह लडकी का नाम 'कुरुनी' होता है ।

खुदी—खुद[1] बगला मे चावल की किनकी को कहते है । सन्तान पैदा होने पर इसी किनकी से उसे खरीद लिया जाता है । इस तरह के टोटके से खुदी-खुदू नाम रखा जाता है ।

पाँचू-पाँची—पाँचू नाम लडको का और पाँची लडकियो का रखा जाता है । किसी देवता की सेवा करने के बाद जो सन्तान उत्पन्न होती है उसका नाम उस देवता के नाम के आधार पर रखा जाता है जैसे पाँचू गोपाल देवता—से पाँचू-पाँची ।

हमने ऊपर बगाल मे होने वाले जिन टोटको का उल्लेख किया है, उसी तरह के टोटके उत्तर प्रदेश मे भी पाये जाते हैं । जैसे देखा जाता है कि कभी-कभी सन्तान जब पैदा होती है तो उसको तराजू पर तौल लिया जाता है, ऐसी सन्तान का नाम 'जोखू' रखा जाता है । इसी तरह कभी-कभी जन्म लेने के साथ-साथ नाक छेद दी जाती है, इनका नाम 'नकछेद' रख दिया जाता है ।

ये सभी नाम एक खास तरह के विश्वास पर आधारित टोटको से सम्बन्ध रखते हैं । इनका चलन कब से हुआ, इसके सम्बन्ध में हम अभी कोई प्रामाणिक बात

---

[1] खुद्दी, भोजपुरी, चावल का टूटन या किनकी ।

नहीं कह सकते। हमारी समझ से सामूहिक अनुसधान ही इस प्रश्न का उत्तर दे सकता है।

इसके अतिरिक्त जो दूसरी समस्या है वह यह कि 'डाकनाम' रखे क्यो जाते हैं ? क्या इनका सम्बन्ध उस समय विशेष से तो नही है, जब जादू (Magic) का खूब चलन था, किसी का नाम, किसी का बाल, किसी का कोई वस्त्र, लेकर जिन दिनो उस पर टोटके किये जाते थे, और विश्वास किया जाता था कि इससे उस मनुष्य का अनिष्ट होगा। अत मूल नाम को छिपाकर रखने के लिए ही तो 'डाक नामो' की उत्पत्ति नही हुई है ? विशेष रूप से बगाल मे जो अपने जादू टोनो के लिए विशेष प्रसिद्ध था।[१]

---

१ इन नामो को हमने बहरमपुर (मुर्शिदाबाद) मे सकलित किया है

सोलहवाँ अध्याय

अन्य लोक-साहित्य

प्रासगिक

यहाँ तक कुछ अत्यन्त प्रमुख रूपो के सम्बन्ध मे आवश्यक चर्चा की गयी है। किन्तु इनके अतिरिक्त भी कुछ ऐसे रूप हैं जिनकी चर्चा करनी आवश्यक है। इनमे से पहले हम 'लोक रगमच' को ले सकते हैं।

लोक रगमच तथा लोक नाट्य

प्रश्न यह है कि क्या लोक रगमच तथा लोक नाट्य भी हमारे क्षेत्र मे आते हैं। रगमच और नाटक को शास्त्रों ने शताब्दियो पूर्व से अपना प्रतिपाद्य बना लिया है। अत प्रतीत यह होता है कि रगमच और नाटक लोक-क्षेत्र की वस्तु नही।

पर यह भ्रम ही माना जायगा, भारत मे स्पष्टत लोक रगमच एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है, और इसकी तो दीर्घ परम्परा भी है। इसी के साथ लोक रगमच के निर्माण, अभिनय तथा नाट्य-वस्तु का मूल विधान लोक वार्तापरक तथा लोक मानसिक होता है।

लोक रगमच लोक की अपनी वस्तु है, यह व्यवसायार्थ नहीं होता। इसके अखाडे अवश्य होते हैं। ये अखाडे समस्त रगमच के अनुष्ठान को गुरु-शिष्य की गाँठ मे बँधकर खडे होते है। प्राय सभी मे एक धार्मिक धुरी भी रहती है। कुछ विधि तथा निषेध रहते हैं। ये विधि-निषेध लोक-मानस के तत्त्व से युक्त होते हैं। 'क्यो' का उत्तर इनके सम्बन्ध मे नहीं पूछा जा सकता।

लोक रगमच का नाट्य सगीतात्मक होता है। गेयता की इसमे प्रधानता रहती है। इस गेयता का रूप शास्त्रीय नही होता है। यह सहज लोक-सगीत के तत्त्वो से युक्त होते हैं। नगाडे जैसे लोकवाद्य का इनमे उपयोग होता है। वेशभूषा मे लोकप्रियता का ध्यान रखा जाता है।

नाट्य वस्तु के अभिप्राय और प्रयोग रूप लोक-कथा क्षेत्र से तथा लोकवार्ता क्षेत्र से लिये जाते है। फलत लोक रगमच तथा लोक नाट्य को लोकवार्ता क्षेत्र का लोक-साहित्य मानना होगा।

हाँ, एक बात यह अवश्य है कि लोक नाट्य विरचित होते हैं, किसी विशेष व्यक्ति कवि द्वारा। पर यह रचना सभी लोक-क्षेत्रों के उपादानो से बनी होती है।

लोक नाट्य के विविध अग

लोकवार्ता के अध्येता के लिए यह आवश्यक है कि वह रगमच और जमूम के सभी तन्तुओ पर दृष्टि डाले ।

इन रगमचो और इनके नाट्यो मे प्राय ये तन्तु मिलते है

१—अखाडा

क—गुरू या उस्ताद
ख—मुख्य प्रबन्धक या खलीफा
ग—गायक शिष्य वर्ग
घ—सागीत रचयिता
ङ—वादित्र

२—अ

क—शिष्यत्व का अनुष्ठान
ख—खेल या नाट्य के अभ्यासारभ का अनुष्ठान
ग—शिक्षा की प्रक्रिया तथा परिपाटी
घ—पात्र चयन
ङ—अभ्यास-काल मे अन्य बातें

३—सांगीत

क—सागीत की वस्तु
ख—वस्तु मे सगीत नियोजन
ग—भाषा-विधान
घ—अलकार तथा रस-विधान
ङ—अभिप्राय तथा सदेश
च—सागीत सशोधन प्रणाली
छ—नये प्रयोगो का प्रयत्न
ज—नाटकीयता का समावेश

४—

क—स्थापन का अनुष्ठान
ख—रगमच का स्वरूप
ग—नैपथ्य का स्वरूप
घ—रगमच की सज्जा
ङ—प्रकाश विधान
च—वादित्र
छ—अभिनय प्रकार
ज—भूल मार्जन के साधन (प्राम्प्टर)

झ—आरंभ और उसकी शैली

ञ—अन्त और उसकी शैली

५—विज्ञापना-प्रकार

६—प्रबन्धादि।

उन सभी तन्तुओ से सम्बन्धित सामग्री विविध अखाडो से एक विशेष प्रश्न-माला बनाकर एकत्र की जानी चाहिए। सागीत ग्रन्थ लिखे हुए रहते हैं, उन्हे अखाडो के उस्तादो या खलीफाओ से प्राप्त किया जा सकता है।

लोकनाट्य के प्रकार

लोकनाट्य के कई प्रकार प्राप्त होते हैं।

१ नृत्य प्रधान

'आइने अकबरी' मे जिन कीर्तनियो का उल्लेख हुआ है, वे आजकल 'रास' के रूप मे मिलते हैं। रास मे रास-नाट्य की प्रधानता है, पात्र या अभिनेता गाते नही, गाने का कार्य प्राय साथ की सयोजक सगीत मडली करती है। सगीत का समस्त स्वरूप प्राय शास्त्रीय होता है।

२ नाट्य-हास्य प्रधान

भाड व्युत्पन्न मति वाले पेशेवर नाट्य कर्ताओ का वशगत व्यवसाय है। इनका अस्तित्व भी अकबर के समय मे था। प्रतीत होता है कि ये सस्कृत रूपको के 'भाण' नामक भेद के रूपान्तर हैं। इनमें हास्य-व्यग की प्रधानता रहती है।

३ सगीत-प्रधान कथाबद्ध

इन नाट्यो में प्रधानता सगीतबद्ध सवादो की होती है। ये कथाबद्ध होते हैं। नौटकी, भगत, माच इसी के भेद हैं।

४ नाट्य-वार्ता प्रधान

इनमे नाट्य और सामान्य रूप मे बातचीत रहती है। सगीत का उपयोग यदाकदा ही होता है।

अध्ययन में दृष्टिकोण

लोकनाट्य सम्बन्धी सामग्री को एकत्र कर उसके विश्लेषणपूर्वक अध्ययन में न केवल वस्तु, कथा आदि के स्रोतों की छानबीन ही अपेक्षित है, वरन् उन तत्त्वो का अनुसधान भी अपेक्षित है जिनसे इनमे वह लोकप्रियता आती है कि हजारो मनुष्य बिना ऊबे सुनते रहते हैं। इनमे लोकवार्ता के तत्त्वो का कवि के द्वारा किस प्रकार प्रयोग किया गया है, यह अनुसधान भी अपेक्षित है।

उन तकनीकों और युक्तियो तथा साधनो का भी उद्घाटन करना होगा जिनसे लोकनाट्य पद-पद पर सहारा लेता है।

सामयिक प्रवृत्ति तथा सामाजिक तत्त्वो की भी अवहेलना हम नही कर सकते।

पाठ्य गीत लघु-छन्द-कहानी
(Drolls and accumulative drolls)

अब पाठ्य गीत या लघु छन्द कहानी या क्रम-सवृद्ध कहानी पर भी दृष्टि डालना अपेक्षित है ।

ये पाठ्य गीत है, गेय नही, लोक-साहित्य मे इनका अपना महत्त्व है । ये ऐसी कहानियाँ हैं जो कहानियाँ तो है पर अपनी कुछ विशेषता रखती है । इन कहानियो का वृत्त लघु होता है । उसमे दुहरावट भी होती है । बहुधा कहानी का प्रभावपूर्ण अश छन्द-बद्ध होता है । इन कहानियो मे एक सहज सरलता रहती है, जिससे ये बाल-मनोवृत्ति को सन्तुष्ट करने वाली हो जाती है । कौतूहल का भाव इतना प्रबल नही रहता, जितना एक बात को छोटे प्रभविष्णु शब्दो मे कहने का । इन लघु-छन्द-कहानियो (Drolls) के दो भेद होते हैं एक साधारण, दूसरा क्रम-सम्वर्द्धित ।

साधारण प्रकार मे हमे प्राय आठ लघु-छन्द-कहानियाँ मिली है ।

एक 'चम्पा और नीबरी' की कहानी है । चम्पा की नीबरी से मित्रता थी । चम्पा के पाँच भाई थे । वे जब आते थे तो यह कहते थे

"चम्पा चम्पा खोल किवार
पाँचो सेल खडे पिछवार"

यह सुनकर चम्पा किवाड खोल देती थी । चम्पा पर एक नाहर की दृष्टि पडी । वह भी पीछे आकर पाँचो भाइयो की भाँति ही उन साकेतिक शब्दो को दुहराता । चम्पा किवाड खोलने चलती, पर नीबरी उसे वास्तविक बात बताकर रोक देती थी । नाहर पहले उसे तोड गया । टूटी नीबरी भी बोली । उसे जला गया । जली हुई राख बोली । उसे कुएं मे डाल गया । कुछ खा गया, तो उसका मल ही बोला । उसे भी कुएँ मे डाल गया । अब तो चम्पा नाहर के धोखे मे फँस ही गयी । वह उसे ले गया और पेड पर बैठा दिया । पाँचो भाइयो ने ढूँढकर शेर मार डाला, और बहन को घर ले आये ।

इसमे नीबरी के कारण एक शृङ्खला बनी है, उसे तोडा गया, जलाया गया, राख को कुएँ मे फेंका गया, खाया गया है ।

ऐसी ही एक कहानी बकरी की है । उसके चार बालक थे—चैंऊ, मैंऊ, आले और बाले । जब वह चरकर आती तो यह कहती थी

चैंऊ खोल टटिया
मैंऊ खोल टटिया
आले खोल टटिया
बाले खोल टटिया

बच्चे टटिया खोल देते । एक सिरकटे अथवा भेडिये ने यह भेद जान लिया । पीछे आकर टटिया खुलवा ली और बच्चों को खा गया । तब बकरी लुहार या बढ़ई

के पास जाकर सीग पैने करा आयी, तेली से तेल चुपडवा आयी—जाकर सिरकटे या भेडिये का पेट फाड दिया, बच्चे निकल आये।

कही-कही इस अन्तिम कहानी के आरम्भ मे एक और स्वतन्त्र कहानी जोड-कर दो की एक कहानी बना दी जाती है। वह कहानी गीदड की है।

एक पानी के तालाब के किनारे एक मिट्टी के मदूलने को अच्छी प्रकार लीप-कर गीदड राजा बैठ गये। कानो मे मेढकी या लीतरे (फटे जूते) पहन लिये। जो पानी पीने आये उसी से यह कहने को विवश करते—

सोने कौ चबूतरा
चन्दन लीपौ है
कान मे द्वै कुडल पहिरैं
राजा बैठौ है

तब पानी पीने दे। लोमडी आयी। लोमडी ने पहले पानी पी लिया, और तब कुछ दूर जाकर कहा

माटी कौ मदूलना
गोबर लीपौ है
कानन मे द्वै मेढकी (लीतरे)
गीदड बैठौ है।

इसमे शृखला बनती है पानी पीने के लिए आने वाले विविध पशुओ से जो गीदड के कथन को दुहराते जाते हैं।

जहाँ इस कहानी को ऊपर की कहानी के साथ मिलाया गया है, वहाँ यह गीदड स्पष्ट कथन की धृष्टता से रुष्ट होकर बकरी के भेद को जानकर चारो बच्चो को खा गया।

'पिल्ला और राजा' की कहानी मे गप्प का आनन्द है। पिल्ला राजा की बेटी से विवाह करने चला। "राजा की बेटी ब्याहिबे"।

घ्यौ बूरौ खाइवे—

मार्ग मे नदी, बघेर, लिरिया, चीटी मिले। उन सबको पिल्ले ने अपने कान मे बैठा लिया। राजा के यहाँ पहुँचे। पिल्ले के प्रस्ताव से रुष्ट होकर राजा ने उसे आग मे डलवाया—नदी ने आग बुझा दी, मारने आदमी भेजा उसे बघेर ने मारा। मेढा भेजा, लिरिया ने मारा। हाथी भेजा चीटी ने मारा। अन्तत राजा हारा, पिल्ले से राजकुमारी का विवाह हुआ।

'धतूरा और चिरैया' की कहानी मे धतूरा ने ज्वार बोई, चिडिया आती और उसे खा जाती। उसे पकडकर ज्वार से बाँध दिया। अब घोडे वाला आया, चिडिया ने उससे कहा

घोडा के घुडमानियाँ रग चूँ चूँ चूँ
परवत पै मेरौ चीगुला रग चूँ चूँ चूँ

प्यासे ही मरि जायँगे रग चूँ चूँ चूँ
मेह परे वहि जायँगे रग चूँ चूँ चूँ

जब घोडे वाला सहायता करने के लिए चलता तो धतूरा कहता

चल चल्ले गमार
मेरी सिगरी ज्वार खाइ लई

इसी प्रकार ऊँट वाले से और हाथी वाले से कहा

'झिगुली टोपी वाली चिडिया' की कहानी कुछ लम्बी है। चिडिया को एक कपास का टैंट मिल गया। उसे लेकर

ओटने वाले के पास गयी

"ओटा ओटी कर दै, जाकी ओटा ओटी कर दै।"

धुनियाँ के पास गयी

"धुन्ना धुन्नी कर दै, जाकी धुन्ना धुन्नी कर दै।"

कातने वाले के पास गयी

"काता कूती कर दै, जाकी काता कूती कर दै।"

कोरिया के पास गयी

"बुन्ना बुन्नी कर दै, जाकी बुन्ना बुन्नी कर दै।"

दरजी के पास गयी

"मेरी झिगुली टोपी सी दै रे मेरी झिगुली टोपी सी दै।"

रगरेज के पास गयी

"मेरी लाल टोपी रँग दै रे मेरी लाल टोपी रँग दै"

टोपी पहनकर सडक पर आ बैठी। राजा की सवारी निकली। चिडिया ने कहा—

"जो हम पै सौ राजा हू पै नायँ
जो हम पै सौ राजा हू पै नायँ"

राजा ने टोपी छीन ली तो कहा—

"हम पै हती तौ राजा ने छीनी
राजा ऐसौ कजूस मेरी टोपी छीन ली"

टोपी दे दी गयी, कहा—

"राजा ऐसौ डरपोक मेरी टोपी दै दई"

चिडिया हाथी के नीचे डाली गयी तो कहा—

"आजु तौ खूबुई देह दवाई
आजु तौ खूबुई देह दवाई"

काटो मे फेंक दी गयी तो कहा—

"हमारे कुच कुच कान छिदाये"

कुँए मे फेंक दिया गया तो कहा—

"राजा ने खूबुई गगा न्हवाये"

किनारे पर डाल दिया गया। सूख जाने पर उड गयी।

'पिडकुलिया और कौऐ की माझे की खेती' भी कुछ लम्बी है। जिस प्रकार ऊपर की कहानी मे कपडे तैयार करने की विविध अवस्थाओ और क्रियाओ का उल्लेख हुआ है, उसी प्रकार इस कहानी मे 'खेती' की प्रत्येक विधि का उल्लेख हुआ है। पिडकुलिया खेती का प्रत्येक काम करती जाती है, हर बात के लिए वह कौऐ को साथ लेने आती है, हर वार कौआ उसे यह कहकर टाल देता है

अट्ठुली गढावता हूँ
पट्ठुली गढावता हूँ
सोने चोच मढावता हूँ
चिलम तमाखू पीता हूँ
तू चल तौजूँ मैं आता हूँ

इस प्रकार अकेली पिडकुलिया ने खेती के सब कार्य कर डाले। बांट के समय कौआ तुरन्त चला गया। अन्न स्वय लिया, भुस पिडकुलिया को दिया। पिडकुलिया को भुस मे भी आराम मिला। कौआ अन्न पाकर भी सुखी नही हुआ।

इन सब मे यह द्रष्टव्य है कि एक शृङ्खला मिलती है। इस शृखला को प्रस्तुत करने की प्रणालियाँ पृथक्-पृथक् है। इन शृखलाओ के सूत्र सभी मे स्पष्ट है।

ये 'लघु-छन्द-कहानियाँ' उन ड्रालो (Drolls) से भिन्न हैं जो बर्न महोदया ने भारोपीय लोक-कहानियो के मूल रूपो मे दी हैं। बर्न महोदया ने साधारण ड्रालो मे केवल एक यह रूप दिया है

(१) सज्जन की एक लडकी से सगाई हो गयी, वह लडकी कोई मूर्खता का काम कर बैठी।

(२) सज्जन ने यह प्रतिज्ञा की कि जब तक उसे इतनी ही कुछ और मूर्खाएँ नही मिल जाती वह विवाह नहीं करेगा।

(३) उसे तीन महामूर्खाएँ (noodles) मिल गयी, वह लौटा और विवाह कर लिया।

बर्न महोदया ने क्रम सवृद्ध[1] कहानी के कई रूप दिये हैं। ब्रज की क्रम सवृद्ध कहानियो के कुछ उदाहरण दिये जाते है।

---

[1] क्रम सवृद्ध कहानी की परिभाषा श्री शरतचन्द्र मित्र ने यह की है

"क्रम-सम्वृद्ध लघु छन्द कहानियाँ है जिनमें कथावृत्त लघु और सन्तुलित वाक्यो से आगे बढता है, और, जिसके प्रत्येक चरण पर तत्सम्बन्धी पूर्व के सभी चरण दुहराये जाते हैं, यहाँ तक कि अन्त तक पहुँचने पर समस्त चरणो की]

एक कहानी 'दौल वाले कौए' की है। कहानी का आरम्भ तो सीधी-सादी भाषा मे होता है, पर तुरन्त ही वह पद्य का रूप धारण कर लेती है। उसके रूप को ठीक-ठीक 'पद्य' भी नही कहा जा सकता। पद्य के कितने ही गुण इसमे नही मिलेंगे। मात्रा और अक्षरो का सन्तुलन उतना नपा-तुला नही, पद की तुलना मे पद भी एक से वजन के नही, चरणो की सीमा कुछ है ही नही। प्रति पद पर कम से कम एक चरण बढता जाता है। पद्य नही तो, 'गीत' उससे भी कम है। सगीतात्मकता उसमे कथा के ढग की विलक्षणता के कारण बिलकुल ही नही मानी जा सकती। हर बार कहानी का पूर्व कथित अश दुहराया जाता है और तब उसी प्रवाह मे उसमे आरम्भ मे कुछ चरण जोड दिये जाते हैं—कुछ क्या, एक ही। इस प्रकार परम्परा बनाती हुई क्रमश कहानी अपने अन्तिम चरण पर पहुँचती है। वही तक पद्यात्मकता रहती है, फिर उलटे क्रम से लौट पडती है। यह सब लौट साधारण भाषा मे—गद्य मे होती है।

वह कहानी यो है

एक कौआ कँऊँ ते एक दौल लै आऔ। एक ठूँठ पै बैठिकें जैसँई बानै खाइवे कौ मनु करौ, कै बु दौल बाकी चौच मे ते निकरि कें ठूँठ मे समाइ गयौ। बानै भौतु कोसिस करी, बडौ मूँड मारौ, परि बु दौल न निकरयौ। तब बु बढई पै गयौ और कही कै—

"बढई-बढई, ठूँठ उखारि। ठूँठ चन्ना देई नाँ। मैं चब्बूँ का ?"

बढई नैं कही चल हट, मैं जरूर तेरे एक चना के लै वा ठूँठए उखारिवे जाग्गो। कौआ तब राजा पै गऔ, और कही कै—

राजा-राजा, बढई डाँड। बढई ठूँठ उखारै नायँ।

ठूँठ चन्ना देई नाँ, मैं चब्बूँ का ?

राजाऊ नें कौआ भजाय दऔ। तब बु रानी पै गऔ—

रानी-रानी, राजा रूठि। राजा बढई डाडँ नायँ, बढई ठूँठ उखारै नाँय, ठूँठ चन्ना देई नाँय। मैं चब्बं का ?

रानी कौआ के एक दौल के लै राजा तें चौं रूठै। तब कौआ ने चूहेन ते फरियाद करी—

मूसे-मूसे कपडे फाड। रानी राजा रूठै नाँय राजा बढई डाँडै नाँय, बढई ठूँठ उखारै नाँय, ठूँठ चन्ना देई नाइ। मैं चब्बूँ का ?

पुनरावृत्ति हो जाती है।" देखिए इसी लेखक का 'आन द सिंहालीज एक्यूमुलेशन ड्राल्स' [एक्यूमुलेशन ड्राल्स और क्यूमुलेटिव फौकटेल्स आर स्टोरीज इन विच द नैरेटिव गोज आन वाई मीन्स आँव शार्ट एण्ड पिथी सेण्टैंसेज, एण्ड, ऐट ऐवरी स्टेप आँव विच आँल द प्रीवियस स्टेप्स देअर आँव आर रिपीटेड, टिल ऐट लास्ट दी होल सीरीज आँव स्टेप्स देअर आँव आर रिकैपीच्युलेटैड"]

मुसेन्नेंऊ रानी के जा माल-टाल मिल्तए, वे चौं कपडा फात्ते। कौआ बिल्लो पै गऔ—

बिल्ली-बिल्ली, मूसे मारि। मूसे कपडा फारै नाँय, रानी राजा रूठै नाँय, राजा बढई डाडै नाँय, बढई ठूंठ उखारै नाँय, ठूंठ चन्ना देइ नाँय। मैं चब्बूं का ?

बिल्ली ई ऐ कहा परी, कै चूहेन्नुनें मारती। कौआ नें कुत्ता ने कही—कुत्ता-कुत्ता बिलई मारि बिलई मूसे मारै नाँय, मूसे कपडा फारै नाँय, रानी राजा रूठै नाँय, राजा बढई डाडै नाँय, बढई ठूंठ उखारै नाँय, ठूंठ चन्ना देइ नाँय। मैं चब्बूं का ?

कुत्तऊ जि गऔ, वु गऔ। तब कौआ ने लठिया ते कही कि—

लठिआ-लठिआ कुत्ता मारि। कुत्ता बिलई मारै नाँय, बिलई मूसे खावै नाँय, मूसे कपडा फारै नाँय, रानी राजा रूठै नाँय, राजा बढई डाडै नाँय, बढई ठूंठ उखारै नाँय, ठूठ चन्ना देइ नाँय। मैं चब्बूं का ?

जब लठिआऊ टस ते मस न भई, तौ वु आँच पै गऔ—

आँच-आँच लठिआ बारि। लठिआ कुत्ता मारै नाँय, कुत्ता बिलई दौरै नाँय, बिलई मूसे खावै नाँय, मूसे कपडा फारै नाँय, रानी-राजा रूठै नाँय, राजा बढई डाडै नाँय, बढई ठूंठ उखारै नाँय, ठूंठ चन्ना देइ नाँय। मैं चब्बू का ?

जब आँचऊ मठिआइ रही, तौ नदी पै गऔ—

नदिया-नदिया आँच बुझाइ, आँच लाठी जारै नाँय, लाठी कुत्ता मारै नाँय, कुत्ता बिलई दौरै नाँय, बिलई मूसे खावै नाँय, मूसे कपडा फारै नाँय, रानी राजा रूठै नाँय, राजा बढई डाडै नाँय, बढई ठूंठ उखारै नाँय, ठूंठ चन्ना देइ नाँय। मैं चब्बूं का ?

नदी तौ बही जाइ रही, सो वहती ही गई। कौआ की कही नेंकऊ कान न दई। तब कौआ हाथी पै प्हौंचौ—

हाथी-हाथी नदिया सोख। नदिया आँच बुझावै नाँय, आँच लाठी जारै नाँय, लाठी कुत्ता मारै नाँय, कुत्ता बिलई दौरै नाँय, बिलई मूसे खावै नाँय, मूसे कपडा फारै नाँय, रानी राजा रूठै नाँय, राजा बढई डाडै नाँय, बढई ठूंठ उखारै नाँय, ठूंठ चन्ना देई नाँय। मैं चब्बूं का ?

हाथीऊ चुप्प। हारि कै कौआ चैंटी पै गऔ—

चैंटी-चैंटी हाथी पछारि। हाथी नदिया सोखै नाँय, नदिया आँच बुझावै नाँय, आँच लाठी जारै नाँय, लाठी कुत्ता मारै नाँय, कुत्ता बिलई दौरै नाँय, बिलई मूसे खावै नाँय, मूसे कपडा फारै नाँय, रानी राजा रूठै नाँय, राजा बढई डाडै नाँय, बढई ठूंठ उखारै नाँय, ठूंठ चन्ना देइ नाँय। मैं चब्बूं का ?

चैंटी झट्ट तय्यार है गई। चलि, मेरौ का बिगत्तु ऐ, तेरौ काम बनौ चहिएँ। वु हाथी पै आइ कै बोली घुसित्यूं सूंडि मे। हाथी नें कही—नाँय, मैं अभाल नदिआऐ सोख तू। नदिया नें कही, मोइ चौं सोखतु ऐ, मै अभाल आँचै बुझाएँ देतिऊँ। आँच

ने कही, मोइ चौं बुझावतुऐ, मैं लाठीऐ जराऐं डात्तिऊं। लाठी नें कही, मैंने का बिगारौऐ, कुत्ताऐ मारिवे मे मोइ का लगतुऐ। कुत्ता नें कही, रहैन देउ, मैंने जि बिल्ली खाई। बिल्ली नें कही, मैं जि चली चूहेन्नुएं खात्यूं। चूहेन्नें कही हमे चौ खाति औ, हम रानी के सब कपडा कुतरें डारतै। रानी ने कही, कपडा मत कुतरौ, मैं राजा ते रूठी जातिऊं। राजा नें कही, रूठिवे ते कहा होइगौ वढई ऐ डाडं देतुऊं। वढई ने कही, नही महाराज, ठूंठ उखारिवे मे का लगतु ऐ। वु चलौ, और एक बसूला मे ठूंठ के द्वै टूक कदृए। दौल निकरि आऔ, कौआ वाइ लै कै उडि गऔ।

निर्माण तत्त्व

इस कहानी के निर्माण तत्त्वो पर ध्यान देने से निम्नलिखित बातो का पता चलता है —

१—नायक इसका कौआ है। उसको विविध उद्योग करने पडते हैं।

२—नायक किसी प्राप्त वस्तु को खो देता है, और उसी को प्राप्त करने के लिए उसे वे उद्योग करने पडते हैं।

३—पाई हुई वस्तु जो खो दी गयी है कोई भोजनीय पदार्थ है।

४—उसे पाने के लिए उसके उद्योगो का रूप प्रार्थना करना, या फरियाद करना है।

५—यह फरियाद वह मनुष्य, पशु तथा पदार्थों तक से करता है। सभी बोलते है।

६—फरियाद में वह एक के बाद एक असफल होता चला जाता है। निराश हताश, फिर भी हारता नही, और अन्त मे एक बहुत क्षुद्र प्राणी उसकी सहायता को तैयार होता है। यही से क्रम पलट जाता है। यह स्थल कहानी का चरम है।

७—फरियाद मे भय-प्रतिहिंसा का आश्रय है। एक के मना करने पर वह ऐसे व्यक्ति के पास प्रार्थना करने पहुँचता है, जो उसे पहले मना करने वाले को किसी न किसी प्रकार की हानि पहुँचाने की क्षमता रखता है।

८—कहानी सुखान्त है। नायक अपना अभीष्ट प्राप्त कर लेता है। कहानी की निर्माण भूमि गाँव है, क्योकि कौआ चने का दौल लाता है, और खूंटे पर बैठकर खाता है। हमने यहाँ पाठ में ठूंठ दिया है, ठूंठ गेहूं, जौ आदि के उस हिस्से को कहते हैं जो खेत कट जाने पर जमीन मे चार-पाँच अगुल ऊपर उठा हुआ रह जाता है। यह पोला होता है, पर इसमे गिरे हुए दौल के लिए किसान की खुरपी ही पर्याप्त होती, वढई और उसके बसूले की आवश्यकता नही पडती। इसलिए ठूंठ का अर्थ पशुओ को बाँधने का 'खूटा', जमीन मे गाडा हुआ डडा होगा।

कहानीकार ने जितने भी पात्रो का समावेश किया है वे प्राय सभी अतिज्ञात हैं। वढई, राजा, रानी, चूहे, बिल्ली, कुत्ता, लाठी, आँच, नदी, हाथी और चोटी, मे से वढई गाँव का प्रधान कारीगर है। गाँव-निवासी के प्राय सभी व्यवसाय और उद्योगो के साधनो मे वढई की अपेक्षा होती है। राजा और रानी, यो तो सबके

प्रत्यक्ष-ज्ञान मे नही आते, पर उनकी सत्ता प्रत्यक्ष से भी अधिक साधारण कहानियो आदि के द्वारा ग्रामवासियो के अनुभव मे आती है। चूहे, बिल्ली, कुत्ता, लाठी, आच और चीटी प्रतिदिन ही सबके देखने मे आते हैं। नदी और हाथी ये दो पात्र ऐसे हैं, जो साधारण अनुभव मे नही आते। इनका समावेश पात्रो की पारस्परिक शत्रुता के भाव से हुआ है, फिर भी ग्रामीण प्रतिभा इस प्रकार की बाल-कहानियो मे ऐसे पदार्थो को नही लायेगी, जो उसके सुकुमार मति श्रोताओ के अनुभव मे न आयी हो। इससे यह कहानी अवश्य ही किसी ऐसे प्रदेश मे निर्मित हुई है, जिसमे पास ही नदी और हाथी हो, किन्तु इतने उल्लेखमात्र से ही निश्चयपूर्वक कहानी के निर्माण स्थल की कल्पना नही की जा सकती है।

इस कहानी मे मनुष्य-पशु सभी का सहायता देने से इकार करते जाना, और अन्त मे चींटी जैसे क्षुद्र जीव का सहायता के लिए तैयार होना, एक ऐसा वृत्त है, जो बुद्ध की जातक कथाओ के आन्तरिक उद्देश्य से मिलता है। उन कथाओ मे पशु-पक्षियो का उल्लेख तो होता ही है, उनमे से शेष सबकी अनुदारता चित्रित होती है, और भगवान बुद्ध जिस रूप मे वहाँ होते हैं वह उदार और परोपकारी होता है। यदि यह मान लिया जाय कि किसी जन्म में भगवान बुद्ध चीटी थे, एक अच्छा 'चीटी जातक' बन जाय। हो सकता है, यह कहानी बौद्ध-जातको के आदर्श पर ही बनायी गयी हो।

पर इस अनुमान से भी कुछ अधिक प्रबल अनुमान यह विदित होता है कि इसी प्रकार की अन्य प्रचलित कहानियो मे कहानीकार ने अपनी रुचि के अनुसार सशोधन कर लिया है, अत कहानी का निर्माण-बीज तो बहुत पुराना है, पर यह रूप अपेक्षाकृत नया है।

इस कहानी की तुलना यदि बगाल से प्राप्त दूसरी श्रेणी की 'परम्पराक्रमवृद्ध ग्रामकहानी' से करें तो कई बातें देखने को मिलें। शरतचन्द्र मित्र ने इस दूसरी श्रेणी की ग्रामकहानियो के आधार-तत्त्व ये माने हैं—

१—नायक किसी पशु, पदार्थ अथवा मनुष्य से सहायता की याचना करता है। वह सहायता देने को तत्पर हो जाता है, पर साथ ही एक शर्त लगा देता है, जिसके पूरा हो जाने पर ही वह सहायता देगा।

[हम देखते हैं हमारी कहानी मे इस नियम का पहला भाग तो प्रस्तुत है, सहायता-याचना। पर यहाँ शत कुछ भी नही लगायी जाती, साफ इकार है।]

२—इस शर्त को पूरा करने के लिए वह दूसरे पशु, मनुष्य या पदार्थ की शरण जाता है, जहाँ सहायता देने के लिए एक और शर्त लगा दी जाती है।

[अपनी कहानी मे शर्त को पूरा करने के लिए नही, वरन् एक से सहायता न मिलने के कारण दूसरे पर जाता है।]

३—सहायता माँगना और शर्त रखना, उस शर्त के लिए दूसरे से सहायता माँगना, उसकी शर्त के लिए दूसरे के पास जाना यही क्रम चलता चला जाता है।

[क्रम यहाँ भी चलता चला जाता है, पर शर्त के लिए नही, सहायता न मिलने के कारण ।]

४—अन्त मे या तो अपना अभीष्ट पा जाता है, या मर जाता है ।

[इस कहानी मे अन्त मे उसको अपना अभीष्ट मिल गया है ।]

इस वर्णन से यह बात तो स्पष्ट होती है कि शैली मे समानता होते हुए कहानियो के स्वभाव मे अन्तर है । एक कहानी शर्त के आधार पर आगे बढती है, व्रज की यह कहानी सहायता देने की अस्वीकृति पर आगे बढती है । अत इन दो प्रदेशो की कहानियो मे दो भिन्न मनोस्थितियो का पता चलता है । व्रज की कहानी मे सभी पात्रो मे अनुदार वृत्ति है । सभी निस्सकोच रूखा दो टूक जवाब दे देते हैं । इससे भी आगे, जब वे अपने लिए किसी हानि की आशका देखते हैं, खुशामदी की भाँति उसी काम को करने के लिए तुरन्त सन्नद्ध हो जाते हैं ।

इस मनोवृत्ति के कारण पर दृष्टि डाली जाय तो विदित होगा कि जब बहुत अधिक शासन का आतक कही होता है, और प्रति पद पर शक्ति का सभ्रम मनुष्य को घेरे रहता है, तभी ऐसी सकुचित मनोवृत्ति हो सकती है । दरिद्रता की अधिकता से भी सकोच आता है, और बिना लाभ के प्रलोभन या हानि के भय के किसी कार्य के लिए प्रवृत्ति शेष नही रह जाती । यथार्थत शासन, भय और दरिद्रता एक साथ चलते हैं । समस्त गीत असमृद्धि का चित्र उपस्थित करता है । राजा रानी को जिस रूप मे लाया गया है, वह भी विशेष दृष्टव्य है । यह कहानी उस युग मे लिखी गयी प्रतीत होती है, जिसमे राजा के न्याय मे साधारण जन मे विश्वास नही रह गया होगा, राजा और रानी को केवल अपनी स्वार्थ-दृष्टि को ही प्रधान मानने वाला दिखाया है । जब बढई ने कौआ की उचित फरियाद नही सुनी तो कौआ सीधा ही राजा के पास पहुँचा । राजा ने उसको कोई महत्त्व ही नही दिया ।

ऐसी मनोवृत्ति का किंचित भी आभास बगाल की इस दूसरी श्रेणी की तीनो कहानियो मे नही मिलता । उन तीनो कहानियो की साधारण रूपरेखा इस प्रकार है—

पहली—

१—तालाव के किनारे एक गौरैया धूप खा रही थी ।*

२—एक भूखे कौए ने उसे खाने का विचार किया तो गौरैया ने कहा कि चौंच गगाजल मे धो आओ तो खा लेना ।

३—कौए ने गगा से जल माँगा । गगा ने कहा वर्तन लाओ ।

४—वह कुम्हार के पास गया । कुम्हार ने कहा—हिरन का सीग लाओ, मिट्टी खोदकर वर्तन बना दूँ ।

---

* गौरैया और कौआ—यह एक अलग ही रूप श्री मित्र महोदय ने माना है । यह 'दी ओल्डवोमन एण्ड दी पिग टाइप' से भिन्न है ।

५—वह हिरन के पास गया। उसने खाने को घास माँगी। तभी वह सींग देगा।

६—वह घसियारे पर गया उसने हँसिया माँगा।

७—वह लुहार पर हँसिया लेने गया। उसने आग माँगी जिससे लोहा गरम कर हँसिया बनाये।

८—आग पर गया, वह तैयार हो गयी। जब कौआ आग लेकर चला तो जलकर मर गया।

दूसरा—

१—गृहस्थ भाई, आग दो।

२—आग से हँसिया बनाऊँगा, उससे प्याज काटूँगा।

३—गाय खायेगी, दूध देगी।

४—दूध हिरन पियेगा, तो युद्ध कर सकेगा।

५—तभी उसका सींग टूटेगा, उससे मिट्टी खोदूँगा।

६—मिट्टी का बर्तन बनाऊँगा, उसमे जल लाऊँगा।

७—उससे हाथ धोऊँगा।

८—तब भात चढाऊँगा।

तीसरी—

१—एक बार एक चिडिया और एक कौआ साथ रहते थे। दोनो ने शर्त बदी कि आँगन मे मिर्च और धान मे से यदि कौआ मिर्च चिडिया से जल्दी खाले तो वह चिडिया की छाती का खून पीले। यदि चिडिया धान को कौए से जल्दी खाले तो चिडिया कौए की छाती का खून पीले। कौए ने मिर्च चिडिया से जल्दी खाली। चिडिया ने कहा तुम मेरा खून पीयो, पर अपनी चोंच गगाजी मे धोलो।

२—कौआ गगाजी पर गया। गगाजी ने कहा—बर्तन लाओ।

३—वह कुम्हार पर गया, कुम्हार ने कहा—मिट्टी लाओ।

४—वह भैंस पर गया, अपना सींग दो, मिट्टी खोदूँ। भैंस ने कौए को भगा दिया।

५—वह कुत्ते पर गया कि भैंस को मारो।

६—कुत्ते ने कहा कि दूध लाओ, जिससे मारने लायक बनूँ।

७—वह गाय के पास गया। गाय ने घास माँगी।

८—वह चरागाह के पास गया, चरागाह ने कहा—हँसिया ले आओ।

९—कौआ लुहार पर गया, लुहार ने कहा—आग लाओ तो बना दूँ।

१०—कौआ गृहस्थ पर गया, गृहस्थ ने पूछा—आग कहाँ दूँ। कौए ने पख फैलाकर कहा कि इस पर रख दो। कौआ जल गया।

इनमे सबसे पहली बात तो यह मिलती है कि केवल तीसरी कहानी मे एक भैंस आयी है, जो कौए पर क्रोध करती है उसे भगा देती है। इसमे भी कहानी

[क्रम यहाँ भी चलता चला जाता है, पर शर्त के लिए नही, सहायता न मिलने के कारण ।]

४—अन्त मे या तो अपना अभीष्ट पा जाता है, या मर जाता है ।

[इस कहानी मे अन्त मे उसको अपना अभीष्ट मिल गया है ।]

इस वर्णन से यह बात तो स्पष्ट होती है कि शैली मे समानता होते हुए कहानियो के स्वभाव मे अन्तर है । एक कहानी शर्त के आधार पर आगे बढती है, व्रज की यह कहानी सहायता देने की अस्वीकृति पर आगे बढती है । अत इन दो प्रदेशो की कहानियो मे दो भिन्न मनोस्थितियो का पता चलता है । व्रज की कहानी मे सभी पात्रो मे अनुदार वृत्ति है । सभी निस्सकोच रूखा दो टूंक जवाब दे देते हैं । इससे भी आगे, जब वे अपने लिए किसी हानि की आशका देखते हैं, खुशामदी की भाँति उसी काम को करने के लिए तुरन्त सन्नद्ध हो जाते हैं ।

इस मनोवृत्ति के कारण पर दृष्टि डाली जाय तो विदित होगा कि जब बहुत अधिक शासन का आतक कही होता है, और प्रति पद पर शक्ति का सभ्रम मनुष्य को घेरे रहता है, तभी ऐसी सकुचित मनोवृत्ति हो सकती है । दरिद्रता की अधिकता से भी सकोच आता है, और बिना लाभ के प्रलोभन या हानि के भय के किसी कार्य के लिए प्रवृत्ति शेष नही रह जाती । यथार्थत शासन, भय और दरिद्रता एक साथ चलते हैं । समस्त गीत असमृद्धि का चित्र उपस्थित करता है । राजा रानी को जिस रूप मे लाया गया है, वह भी विशेष दृष्टव्य है । यह कहानी उस युग मे लिखी गयी प्रतीत होती है, जिसमे राजा के न्याय मे साधारण जन मे विश्वास नही रह गया होगा, राजा और रानी को केवल अपनी स्वार्थ-दृष्टि को ही प्रधान मानने वाला दिखाया है । जब बढई ने कौआ की उचित फरियाद नही सुनी तो कौआ सीधा ही राजा के पास पहुँचा । राजा ने उसको कोई महत्त्व ही नही दिया ।

ऐसी मनोवृत्ति का किंचित भी आभास बगाल की इस दूसरी श्रेणी की तीनो कहानियो मे नही मिलता । उन तीनो कहानियो की साधारण रूपरेखा इस प्रकार है—

पहली—

१—तालाब के किनारे एक गौरैया धूप खा रही थी ।*

२—एक भूखे कौए ने उसे खाने का विचार किया तो गौरैया ने कहा कि चौंच गगाजल मे धो आओ तो खा लेना ।

३—कौए ने गगा से जल माँगा । गगा ने कहा बर्तन लाओ ।

४—वह कुम्हार के पास गया । कुम्हार ने कहा—हिरन का सीग लाओ, मिट्टी खोदकर बर्तन बना दूं ।

---

* गौरैया और कौआ—यह एक अलग ही रूप श्री मित्र महोदय ने माना है । यह 'दी ओल्डवोमन एण्ड दी पिग टाइप' से भिन्न है ।

५—वह हिरन के पास गया। उसने खाने को घास माँगी। तभी वह सींग देगा।

६—वह घसियारे पर गया उसने हँसिया माँगा।

७—वह लुहार पर हँसिया लेने गया। उसने आग माँगी जिससे लोहा गरम कर हँसिया बनाये।

८—आग पर गया, वह तैयार हो गयी। जब कौआ आग लेकर चला तो जलकर मर गया।

दूसरा—

१—गृहस्थ भाई, आग दो।

२—आग से हँसिया बनाऊँगा, उससे घ्याज काटूँगा।

३—गाय खायेगी, दूध देगी।

४—दूध हिरन पियेगा, तो युद्ध कर सकेगा।

५—तभी उसका सीग टूटेगा, उससे मिट्टी खोदूँगा।

६—मिट्टी का बर्तन बनाऊँगा, उसमे जल लाऊँगा।

७—उससे हाथ धोऊँगा।

८—तब भात चढ़ाऊँगा।

तीसरी—

१—एक बार एक चिडिया और एक कौआ साथ रहते थे। दोनो ने शर्त बदी कि आँगन मे मिर्च और धान मे से यदि कौआ मिच चिडिया से जल्दी खाले तो वह चिडिया की छाती का खून पीले। यदि चिडिया धान को कौए से जल्दी खाले तो चिडिया कौए की छाती का खून पीले। कौए ने मिर्च चिडिया से जल्दी खाली। चिडिया ने कहा तुम मेरा खून पीयो, पर अपनी चोंच गगाजी मे धोलो।

२—कौआ गगाजी पर गया। गगाजी ने कहा—बर्तन लाओ।

३—वह कुम्हार पर गया, कुम्हार ने कहा—मिट्टी लाओ।

४—वह भैंस पर गया, अपना सीग दो, मिट्टी खोदूँ। भैंस ने कौए को भगा दिया।

५—वह कुत्ते पर गया कि भैंस को मारो।

६—कुत्ते ने कहा कि दूध लाओ, जिससे मारने लायक बनूँ।

७—वह गाय के पास गया। गाय ने घास माँगी।

८—वह चरागाह के पास गया, चरागाह ने कहा—हँसिया ले आओ।

९—कौआ लुहार पर गया, लुहार ने कहा—आग लाओ तो बना दूँ।

१०—कौआ गृहस्थ पर गया, गृहस्थ ने पूछा—आग कहाँ दूँ। कौए ने पख फैलाकर कहा कि इस पर रख दो। कौआ जल गया।

इनमे सबसे पहली बात तो यह मिलती है कि केवल तीसरी कहानी मे एक भैंस आयी है, जो कौए पर क्रोध करती है उसे भगा देती है। इसमे भी कहानी

पूर्वापर प्रसग से भैंस का क्रोध अनुदारता और सकोच के कारण नही माना जा सकता, वरन् वास्तविक सहानुभूति के कारण ही माना जायगा। वह अपना सीग इसलिए दे कि धूर्त्त कौआ एक निरीह पक्षी का खून पीये। फिर भी यही तीसरी कहानी है जिसमे दो चरण ऐसे हैं जिनकी टेकनीक ठीक व्रजभाषा की उपरोक्त कहानी के जैसी है। भैंस से निराश होने पर वह कुत्ते के पास इसलिए जाता है कि वह भैंस को मार डाले जिससे वह भैंस का सीग ले सके।

श्री मित्र महोदय ने यह सिद्ध किया है कि पहली और तीसरी कहानी दूसरी से पुरानी है और उसमे मिट्टी खोदने के लिए हिरन के सीग का उल्लेख यह सिद्ध करता है कि कहानी का जन्म उस युग मे हुआ जबकि (१) मनुष्य लोहे का उपयोग आरम्भ ही कर रहे होगे, और (२) जब पृथ्वी को माँ, प्रत्यक्ष माँ माना जाता होगा, जिसमे लोहे से मिट्टी का खोदना, हृदय को चोट पहुँचाता होगा अत ये कहानियाँ पाषाण युग मे बनी होगी।

इसके अतिरिक्त तीसरी कहानी मे हृदय चीरकर रक्त पीने की बात भी साधारण कहानी के लिए आवश्यक नही। इसमे भी नृ-विज्ञान के इतिहास की सम्भावना है।

पहली दृष्टि मे व्रज की यह कहानी उपरोक्त बगाली प्रकार की कहानियो से बनी हुई प्रतीत होती है, जिसमे व्रज के वैष्णव ने रक्त पीने के लिए समस्त उद्योग को उचित न समझकर उसे एक दौल के लिए कर दिया है। पर समस्त कहानी-विधान अवैष्णव है।

पर, बगाली की तीसरी कहानी मे भैंस और कुत्ते का एक विशेष रूप मे—व्रज की कहानी की शैली के रूप मे उल्लेख यह प्रकट करता है कि व्रज की कहानी की शैली मे उस समय प्रचलित रही होगी। इसी शैली का प्रभाव बगाली कहानी मे मिलता है। कारण स्पष्ट है। कुत्ते के द्वारा भैंस को मारने की कल्पना मे दुर्बलता है, वह इतनी स्वाभाविक नही, जितनी कुत्ते के द्वारा बिल्ली को मारने की कल्पना। अत स्वाभाविक स्थल से बगाली कहानी मे इस शैली को लिया गया होगा।

बगाली कहानियाँ जितना ग्राम-जीवन का विस्तृत वातावरण देती हैं, उतना व्रज की कहानी नही। व्रज की कहानी की भूमि तो गाँव है, पर शेष कहानी का घटना-क्रम उतना ग्रामीण तत्त्वो को लिये हुए नहीं है।

बर्न[1] ने भारोपीय कहानियो के जो विविध प्रकार दिये हैं, उनमे उनहत्तरवाँ प्रकार 'ओल्ड वोमन एण्ड पिग टाइप' है। उसकी रूपरेखा यह है—

(१) एक बुढिया के कहने पर भी घेंटा (शूकर-शावक) सीढी चढने को तैयार नही होता। वह कुत्ते, डडे, आग, पानी, बैल, कसाई, रस्सी, चूहे, बिल्ली से सहायता के लिए अभ्यर्थना करती है।

---

१ देखिए—'The Hand Book of Folklore'—Burne

(२) एक शर्त लगाकर बिल्ली सहायता के लिए सन्नद्ध होती है और सभी को बाध्य कर देती है, यहाँ तक कि अन्त मे घँटा सीढी पर कूद ही जाता है। यह कहानी भी परम्पराक्रमबद्ध गीति-कहानी है। इससे सिद्ध है कि इस कहानी का प्रयोग बडा व्यापक है।

बर्न द्वारा दी गयी कहानी मे नायक का कार्य स्त्री को सौपा गया है। यह कहानी के शेष सविधान से मेल नही खाता। जिन-जिनके पास वह बुढिया गयी है, वे प्राय सभी पशु तथा जड पदार्थ हैं। मनुष्य तो एक कसाई ही है, जैसे ब्रज कहानी मे भी एक मनुष्य 'बढई', और दो राजा-रानी आये हैं। फलत बुढिया के स्थान पर कोई पक्षी या पशु होना अधिक उचित प्रतीत होता है। बुढिया होते हुए भी उसमे इतनी असामर्थ्य नही पायी जा सकती कि वह लडकी या पानी की भी खुशामद करती फिरे या उन जैसा भी काम स्वय न कर सके।

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यथार्थत क्रमबद्ध कहानी के दो प्रकार हैं—इनमे से पहले वर्ग या प्रकार के कथा-तन्तु ये हैं

१—नायक सहायता याचना करने किसी मनुष्य, किसी पशु या पदार्थ के पास जाता है। ये स्पष्ट मना कर देते हैं।

२—वह क्रमश दूसरो के पास जाता है कि पहले को दड दिया जाय, वह भी मना कर देते हैं।

३—अन्त मे कोई दड देने को सन्नद्ध होता है, और तभी, एक के बाद दूसरे सन्नद्ध होते हैं और नायक का कार्य पूरा हो जाता है।

इस प्रकार के रूप मे श्री मित्र महोदय ने ये कहानियाँ और बढायी है—

१—तोता और मुर्गी के बच्चे की कहानी (बिहार से)

२—तुनतुनी पक्षी और नाई की कहानी (पूर्वी बगाल से)

३—बटेरी की कहानी (उत्तर-पश्चिमी सीलोन से)

बिहारी कहानी यह है—

१—तोते ने छोटी मुर्गी के लिए रानी से कहा। रानी ने मना किया तो वह—

२—साप के गया, रानी को काटे, साँप ने भी स्वीकार नहीं किया।

३—लाठी के पास गया कि साप को मारे, उसने भी मना कर दिया।

४—आग के पास गया कि लाठी को जला दे—उसने भी मना कर दिया।

५—नदी के पास गया कि आग को बुझा दे—उसने भी मना कर दिया।

६—समुद्र के पास गया कि नदी को सोख ले—समुद्र तैयार हो गया तो फिर एक के बाद दूसरा तैयार होता गया।

पूर्व बगाल की कहानी मे तुनतुनी पक्षी याचना के लिए राजा के पास गया है। फिर चूहे के पास कि राजा के पेट की चर्बी मे छेद कर दे, तब बिल्ली के पास, फिर लाठी के पास, फिर आग के पास, फिर समुद्र के पास, फिर हाथी के पास, अन्त

मे मच्छर के पास गया कि वह हाथी के डक मारे। मच्छर तैयार हो गया फिर सभी तैयार होने लगे।

सिंहली कहानी मे एक बटेरी के अडे एक चट्टान मे बन्द हो गये। वह राज (मकान बनाने का काम करने वाले) के पास गयी, गाँव के मुखिया के पास गयी, शूकर-शावक के पास गयी कि मुखिया के धान के खेत खा जाय, वेढा शिकारी के पास गयी, तिवूल की वेल के पास गयी कि काँटो से शिकारी को बेध दे, आग के पास गयी, जलपात्र के पास गयी, हाथी के पास गयी, चूहे के पास गयी कि हाथी के कान मे घुस जाय, बिल्ली के पास गयी कि पानी को गँदला कर दे। बिल्ली तैयार हो गयी, फिर सब तैयार होते गये। इसी के जैसी एक और कहानी मे वह राज, शूकर, शिकारी, हाथी, छिपकली (हाथी की सूँड मे होकर मस्तिष्क मे घुस जाय), जगली मुर्ग, और एक गीदड के पास गयी है। गीदड तैयार हुआ है, तब क्रम पलटा है।

ब्रज की ऊपर दी हुई कहानी प्रथम श्रेणी की है। इस कहानी का रूप भी दक्षिण से उत्तर तक प्रचलित रहा है। इसमे कोई सन्देह नहीं कि यह ब्रज की कहानी पूर्वी वगाल की 'तुनतुनी पक्षी' की कहानी से बहुत मिलती है। वगाली कहानी मे अन्त मे मच्छड आया है, निश्चय ही हाथी को भयभीत करने के लिए चींटी मच्छड से अधिक उपयुक्त साधन है।

दूसरी श्रेणी के रूपो के तन्तुओ का उल्लेख हो चुका है। दूसरी श्रेणी की कहानी मे शर्त का प्राधान्य रहता है और बहुधा नायक मर जाता है। यह दूसरी श्रेणी मथुरा मे तो प्राय हमे उद्योग करने पर भी नही मिली, पर वह ब्रज मे प्रचलित अवश्य है, क्योकि ब्रज मे, मथुरा से अतिरिक्त प्रदेश मे, यह अवश्य मिल जाती है, और इसका रूप यह है—

"एक चिडिया के बच्चे को देखकर कौवे का मन चला कि वह उसे खाये। कौवे ने चिडिया से प्रस्ताव रखा। चिडिया ने कहा—खा लेना, पर मुँह धो आओ।"

कौआ कुम्हार के पास गया और उससे कहा

"कुम्हार! कुम्हार! तुम कुम्हरराज
हम काग राज।
तुम देउ घडुल्ला। धोवें मढ ल्ला।
मटका मे चिडी को चेंटुल्ला।"

कुम्हार ने कहा मिट्टी ले आ।

मिट्टी ने कहा, हिरन का सीग ले आ।

हिरन ने कहा, कुत्ते को बुला ला, वह मुझे मार डाले। तब सीग ले जाना।

कुत्ते ने कहा, भूखा हूँ, दूध ला। जिसे पीकर हिरन से लडने योग्य बनूँ।

गाय के पास गया दूध दो।

गाय ने कहा, घास ला ।

घास के पास गया दूव दो ।

दूव ने कहा—खुरपी ले आ, खोद ले जा ।

लुहार के पास गया खुरपी दो ।

लुहार ने कहा अभी वनाये देता हूँ । उसने वना दी । कौआ गरम खुरपी लेकर उडा, और जलकर मर गया ।

अन्तिम व्यक्ति लुहार है । लुहार से उसने जो कहा है उसमे सम्पूर्ण कथन आ जाता है । वह इस प्रकार है

लुहार ! लुहार ! तुम लुहार राज
हम कागराज !
देउ खुरपिया, खोदें दुबकिया ।
चरैं गवल्ला, देय दुधिल्ला ।
पियें कुतिल्ला, मारें हिन्नल्ला
देंय सिंगुल्ला, खोदें मटुल्ला,
वनें घड़ुल्ला, धोवें मढ़ुल्ला
मटका मे चिडी कौ चैटुल्ला ।

बगाल की दूसरी श्रेणी की तीनो कहानियो से इस कहानी का मूल रूप तैयार हो जाता है । इस कहानी मे 'गगाजल' का उल्लेख नही । बगाल की दूसरी कहानी मे भी गगाजल का उल्लेख नही । हिरन को मारने के लिए, इसमे कुत्ते के पास पहुँचा गया है । बगाल की तीसरी कहानी मे भैस को मारने के लिए भी ऐसा किया गया है । बगाल की तीसरी कहानी मे हिरन के स्थान पर भैस का सीग माँगा है । कौए का समस्त उद्योग चिडिया के बच्चो को खाने के लिए हुआ है । यही वात बगाल की पहली कहानी मे मिल जाती है । वहाँ चिडिया के बच्चे के स्थान पर स्वय चिडिया है । बगाल की कहानियो मे 'आग लाने या मँगाने' का उल्लेख अवश्य है । व्रज की कहानी मे कौए से आग नही मँगायी जाती । वह गर्म खुरपी लेकर चल पड़ा है और जलकर मर गया है ।

इस दूसरी श्रेणी की कहानी से यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि एक श्रेणी दूसरी से नितान्त पृथक् है और व्रज मे भी इसके दोनो रूप प्रचलित हैं ।

इन लघु कहानियो मे मनोरजन के साथ किसी न किसी वस्तु या व्यवसाय की सभी अवस्थाओ का ज्ञान कराने का उद्देश्य भी निहित मिलता है ऊपर हमने जो कहानियाँ दी हैं उनमे वस्त्र बनाने और खेती करने की विविध क्रियाओ का स्थूल परिचय दे दिया गया है । 'कौए और दौल' वाली कहानी मे विविध पशु और वस्तुओ के स्वभाव और धर्म का ज्ञान हो जाता है । ये कहानियाँ आज भी बालको के लिए बहुत उपयोगी हो सकती हैं । इनमें वाल मनोवृत्ति के अनुकूल कथावस्तु को उपस्थित किया गया है । स्मरणशक्ति के लिए सुविधार्थ इसमे पद्यवद्ध चरणो का समावेश है ।

क्रम-सवर्द्धन से और भी स्मरणशक्ति को सहायता मिलती है, और कुछ काल तक एक ही विधि के सतुलित वाक्य प्रभाव को अधिक करते हैं।

मनोरजन

लोक-साहित्य और लोकवार्ता के जिन रूपो पर अभी तक विचार हो चुका है, मनोरजन का भाव तो उनमे भी विद्यमान है। पर कुछ खेल या खेल के लिए प्रस्तुत पद्य या गीत तथा कुछ अन्य प्रकार भी लोक मे प्रचलित मिलते हैं। इनका सकलन-सग्रह कर इनका भी अध्ययन लोकवार्ताविद् के क्षेत्र मे आता है।

मनोरजन मानव-जीवन की एक बहुत बडी आवश्यकता है। लोक-जीवन मे यह और भी अधिक आवश्यक है। ग्रामीण-जन का जीवन निरन्तर परिश्रम का जीवन है। परिश्रम की क्षमता और कुशलता उसे मनोरजन के साधनो से प्राप्त होती है। लोक-जीवन परिश्रम और मनोरजन के ताने-बाने से बुना हुआ है। कही-कही तो मनोरजन और परिश्रम इतना घुला-मिला है कि उनको अलग-अलग करना कठिन है। ग्रामीण-जन घोर परिश्रम कर रहा है—पसीने से लथपथ, सूर्य की गर्मी मे। पर, वह कुछ गुनगुना रहा है, गा रहा है। यदि वह अकेला नही है, तो मनोरजन की एक मिली-जुली व्यवस्था चल रही है। छुट्टी के समय मनोरजन की गति और तीव्र हो जाती है। पुरुष ही नही, स्त्री वर्ग भी काम करते समय मनोरजन से खाली नही है। चक्की चल रही है और चक्की की घोर मे गीत गूँज रहे हैं।[1] लोक-त्यौहारो पर, मेलो पर, पर्वों पर, घर मे, चौपाल पर, बाहर वनो मे, उपवनो मे, खेतो मे, खलिहानो मे किसी न किसी प्रकार मनोरजन की आयोजना कर लेता है। बालको का तो प्रत्येक कार्य ही मनोरजन के लिए होता है।

मनोरजनो के प्रकारो मे से कुछ तो ऐसे होते हैं जो एक परम्परा से चले आ रहे होते है। कुछ नवीन प्रकार भी होते हैं। मनोरजनो को दो भागो मे बाँटा जा सकता है क्रीडात्मक और कलात्मक। क्रीडात्मक मनोरजनो मे खेल-कूदो को रखा जा सकता है और कलात्मको मे नाटक, सगीत, पहेली, काव्य आदि आते हैं। छोटे दूध पीते बच्चो को खिलाया जाता है या यो कहिये उनका मनोरजन किया जाता है। छोटे बच्चो के मनोरजनो मे लोरियाँ आती है। बच्चे के बहलाने या उसका रोना बन्द करने के लिए माता या अन्य कुटुम्बी छोटे-छोटे छन्दो का प्रयोग करते हैं। कुछ खेल भी रहता है।[2] उदाहरण के लिए, इस प्रकार के खेलो मे ब्रज के 'झू-झू पामू', 'चन्दा मामा', 'अटकन-बटकन', 'कानावाती', 'चेंऊ-मेऊ', 'धपरी-धपरा', 'गाय गुरु खाय', आदि खेल आते हैं। 'झू-झू के पामू के' खेल मे झुलाने वाला दोनो पैरो को सिकोडकर जोड लेता है। फिर जुडी हुई थपियो पर बालक को हिलाता है। साथ ही एक छन्द चलता है—

---

१ ऐसे गीत श्रमगीत कहलाते हैं।

२ अग्रेजी मे इन्हें नर्सरी साँग या नर्सरी रहायत कहते हैं।

झू झू के, पामू के
अटरियन के बटरियन के
नीम बिटिया नीम चाली
नीम ते निबौरी लाई
काची काची आप कूं
पाकी पाकी जेठु कूं
जेठु गयौ चोरी
लायौ सात कटोरी
एक कटोरी फूटी
सासुलि की टाँग टूटी
आरे मे स्यांपु टिपारे मे बीछू
डुकरिया वासन कूसन सम्हारि
राजा की भीति गिरित्यै ।

यह कहकर झुलाने वाला पाँव उठाकर नीचे गिरा देता है। फिर झुलाने वाला बुढिया की ओर से कहता है—

ए पूत मेरौ चकला रहि गयौ ।
ए पूत मेरौ बेलनु रहि गयौ ॥

पर अब क्या होता है, रह गया, सो रह गया ।

ऐसे पद्यो या तुक्को से युक्त खेलो को विविध क्षेत्रो से एकत्र किया जाना चाहिए। ये खेल प्रौढ़ द्वारा बालक को खिलाने के लिए किये जाते है। इसमे प्रधान भाग प्रौढ का होता है। बालक पैरो पर झूलने का आनन्द लेता है।

दूसरे प्रकार के ऐसे खेल भी होते हैं जिनमे खिलाने वाला और खेलने वाला दोनो नाटकीयता से एक सम्वादात्मक छन्द बोलते है। इस प्रकार के खेलो मे ब्रज मे 'बाबा बाबा आम देउ', 'हाँ भैया खँगारके', 'ढुक-ढुक-मिच्चा' 'ढुक' 'कह री मछली कित्ता पानी' आदि प्रसिद्ध हैं। आम का खेल इस प्रकार बालक अपनी-अपनी मुट्ठी बाँधकर तराऊपर रखते चलते हैं। जिसकी मुट्ठियाँ सबसे ऊपर रहती हैं, वह बोलता है, फिर अन्य बालक भी कहते हैं —

बालक—बाबा बाबा आम देउ
खिलानेवाला—आम हैं सरकार के
बालक—हम भी तौ दरबार के
खिलानेवाला—अच्छा लै लै एक आम
बालक—बाबा जि आम तौ खट्टौ निकर्‌य्यौ
खिलानेवाला—अच्छा दूसरो लै लै ।

फिर वह बालक अपनी दोनो मुट्ठियो को आम की तरह चूसता हुआ कहता जाता है, 'हमारे दोऊ आम मीठे' ।

बालको के इन जैसे गीतो का सकलन करके भौगोलिक पद्धति से इनके विस्तार-क्षेत्र का भी निर्धारण करना ठीक होगा। जैसे व्रज का एक वाल क्रीडा गीत है "आटे वाटे, दही चटाके, वरफूले, वगाली फूले—सामन मास करेला फूले। वावा लाये सात कटोरी एक कटोरी फूटी। मामा की वहू रूठी।" यह गीत सामान्य रूपान्तर से मालवा मे भी मिलता है। ऐसे गीतो मे जो चरण-आवृत्तियाँ होती हैं, उनका भी तुलनात्मक अध्ययन होना चाहिए।

● ● विशेप क्रीडा प्रधान खेलो का विवरण अलग लेना चाहिए। इनमे से भी कुछ खेलो मे वाणी-विलास रहता है। वाणी-विलास वाले खेलो का विशेप रूप से सग्रह अपेक्षित है। क्योकि वाणी-विलास से सम्वद्ध खेलो के अध्ययन मे एक नही कई तत्त्व आ जाते हैं, जिनका अध्ययन कई प्रकार से उपयोगी होता है। मात्र खेल तो सस्कृति के अग है, पर उनसे सयुक्त शब्द-विधान लोकवार्ता और लोक-साहित्य के अन्तर्गत विशेषत परिगणनीय हैं। व्रज से उदाहरण लें तो कवड्डी, गिल्ली-डडा, उलक डडा, गेंद-वच्ची, लई-लमचा, चील-झपट्टा, कोडा-जमालशाही, किलकिलकाटियाँ आदि आते है। इनमे भी कोई न कोई छोटा-वडा छन्द रहता है। कवड्डी हो रही है। एक दल का खिलाडी कवड्डी दे रहा है, वह ललकार रहा है—

कवड्डी तीनि तारे
हनूमान ललकारे
वच्चा वीनि वीनि मारे
वेटा तोई से पछारे

और यदि दूसरी ओर का कोई खिलाडी पिट गया, तो उस दल का एक खिलाडी इस प्रकार कवड्डी देगा—

मेरौ यारु मरिगौ कोई लाकडी न देइ।
चन्दन कौ पेड् कोई काटन न देइ॥

तव दूसरे दल वाला यह कहकर कवड्डी देगा —

मरे कू मरि जाँन दै।
घी की चुपडी खाँन दै।

'किलकिल-कॉटियाँ' मे दो दल होते हैं। एक दल वाले गुप्त स्थानो पर कुछ निशान (लकीरें) वना देते हैं। दूसरे दल वाले उनकी खोज करते हैं। यह खेल मनोरजन के साथ-साथ वालक की निरीक्षण-शक्ति और गिनती करने की शक्ति को वढाता है।

● ● विशेप मानसिक मनोरजनो मे आज पहेलियो का तो स्थान है ही, उनका उल्लेख पहले हो चुका है। गणित सम्वन्धी 'पटकैं' भी आती हैं। इनमे गणित का कोई प्रश्न छन्द-वद्ध होता है। उसे पूछा जाता है। एक पटक सुनिए—

सौ मन कौ लक्कड्
वापै वैठ्यौ मक्कड्

रत्ती रत्ती रोज खाइ
तौ कितने दिनन मे खाय लेगौ ?

इसमे १०० मन की रत्तियाँ बनानी हैं। ऐसे प्रश्न अनेको मिलते हैं। इन्हे पहेलियाँ नही कहा जा सकता, इसीलिए इन्हे 'पटक' से पटकें कहा जाता है। ये मनुष्य को पटक देती हैं, उसका ज्ञानाभिमान चूर हो जाता है।

● ● इस प्रकार के मनोरजक तथा बुद्धि-विलास के फुटकर पद्यो के अतिरिक्त अनेक प्रकार के भजन व्रज मे विशेष अवसरो पर गाये जाते हैं, जैसे जिकडी के भजन और सवादी भजन। जिकडी के भजनो की प्रतियोगिता होली के अवसर पर विशेष रूप से होती है। एक गुड की भेली या साफा पुरस्कार के रूप मे रखा जाता है। गायको के पास इलायची भेज दी जाती है और बडी-बडी चोटें चलती है। यद्यपि इनका उद्देश्य मनोरजन ही होता है। ज्ञान की भी वृद्धि इनसे होती है। कुछ भजन केवल मनोरजन के उद्देश्य से गाये जाते हैं। एक भजनीक का पड्डा मर गया। उसने अन्य भजनीक को इस प्रकार पत्र लिखा—

मुकुत नाथ गए जूझि फकीरी धावन कीनी।
झूँठी नाँएँ तनक, अहो चिट्ठी लिखि दीनी ॥
मेरे है गये गैर हवाल।
मुकुतनाथ के मरें ते, मेरे होत करेजा मे साल ॥
अपुते नाँय मरे, नाँएँ मारे, इनको पेट्ठ पीठि, ते लगि गयौ,
सुत लघिन करि माडारे ॥
जापै ज्वाबु नारि नें दीयौ।
ऐसे बखत पिरान तजे, हतु एकु अधेला भारी ऐ।
सौमन धीड लगे ठिक मे जब बन्ति रसोई बारी ऐ।
भैया वन्दि कुटम के ऊकें, बिगरे उजन हमारे।
फिरिऊ ज्वाबु नारि नें दीयौ।
कच्चौ दूध अधौअलि पीऔ, ज्वानीपन मे खरि खैयौ।
खेलौ सारि गद्दी के ऊपर, मति कहूँ नाथ डिगुलि जैयौ ॥
नाही करी एक नांइ मानी, घन बादर फाडारे।
औरु सुनौ आगे की चरचा।
लै जाते बिसराति घाट, कछु मन्दिर बीच धर्यो नाऔ।
रूरि परे रैदास इकिटठे, हम पै ज्वाबु बन्यो नाऔ।
लै गये हाल झालि मे धरिकें, परें पेट फाडारे।

इसमें मुकुतनाथ जी पड्डा ही हैं। कही-कही आपस मे बहस यहाँ तक बढ जाती है कि लाठी चलने लगती है। ख्याल, लामनी, नसीरा, सोरगा आदि की प्रतियोगिताएँ भी मनोरजक होती हैं। प्रवन्ध गीतो मे ढोला, आल्हा और रांझा व्रज के प्रसिद्ध गीत हैं। सैकडो ग्रामीण एक स्थान पर इकट्ठे होकर इन प्रसिद्ध रागो का

वालको के इन जैसे गीतो का सकलन करके भौगोलिक पद्धति से इनके विस्तार-क्षेत्र का भी निर्धारण करना ठीक होगा। जैसे व्रज का एक वाल क्रीडा गीत है "आटे वाटे, दही चटाके, वरफूले, वगाली फूले—सामन मास करेला फूले। वावा लाये सात कटोरी एक कटोरी फूटी। मामा की वहू रूठी।" यह गीत सामान्य रूपान्तर से मालवा मे भी मिलता है। ऐसे गीतो मे जो चरण-आवृत्तियाँ होती हैं, उनका भी तुलनात्मक अध्ययन होना चाहिए।

● ● विशेप क्रीडा प्रधान खेलो का विवरण अलग लेना चाहिए। इनमे से भी कुछ खेलो मे वाणी-विलास रहता है। वाणी-विलास वाले खेलो का विशेप रूप से सग्रह अपेक्षित है। क्योकि वाणी-विलास से सम्वद्ध खेलो के अध्ययन मे एक नही कई तत्त्व आ जाते हैं, जिनका अध्ययन कई प्रकार से उपयोगी होता है। मात्र खेल तो सस्कृति के अग हैं, पर उनसे सयुक्त शब्द-विधान लोकवार्ता और लोक-साहित्य के अन्तर्गत विशेषत परिगणनीय हैं। व्रज से उदाहरण लें तो कवड्डी, गिल्ली-डडा, उलक डडा, गेंद-वच्ची, लई-लमचा, चील-झपट्टा, कोडा-जमालशाही, किलकिलकाटियाँ आदि आते है। इनमे भी कोई न कोई छोटा वडा छन्द रहता है। कवड्डी हो रही है। एक दल का खिलाडी कवड्डी दे रहा है, वह ललकार रहा है—

कवड्डी तीनि तारे
हनूमान ललकारे
वच्चा वीनि वीनि मारे
वेटा तोई से पछारे

और यदि दूसरी ओर का कोई खिलाडी पिट गया, तो उस दल का एक खिलाडी इस प्रकार कवड्डी देगा—

मेरौ यारु मरिगौ कोई लाकडी न देइ।
चन्दन कौ पेड़ु कोई काटन न देइ॥

तव दूसरे दल वाला यह कहकर कवड्डी देगा —

मरे कू मरि जाँन दै।
घी की चुपडी खाँन दै।

'किलकिल-काँटियाँ' मे दो दल होते हैं। एक दल वाले गुप्त स्थानो पर कुछ निशान (लकीरें) वना देते हैं। दूसरे दल वाले उनकी खोज करते हैं। यह खेल मनोरजन के साथ-साथ वालक की निरीक्षण-शक्ति और गिनती करने की शक्ति को वढाता है।

● ● विशेष मानसिक मनोरजनो मे आज पहेलियो का तो स्थान है ही, उनका उल्लेख पहले हो चुका है। गणित सम्वन्धी 'पटकें' भी आती हैं। इनमे गणित का कोई प्रश्न छन्द-वद्ध होता है। उसे पूछा जाता है। एक पटक सुनिए—

सौ मन कौ लक्कडु
वापै वैठ्यौ मक्कडु

रत्ती रत्ती रोज खाइ
तौ कितने दिनन मे खाय लेगो ?

इसमे १०० मन की रत्तियाँ बनानी हैं। ऐसे प्रश्न अनेको मिलते हैं। इन्हे पहेलियाँ नही कहा जा सकता, इसीलिए इन्हे 'पटक' से पटकें कहा जाता है। ये मनुष्य को पटक देती हैं, उसका ज्ञानाभिमान चूर हो जाता है।

● ● इस प्रकार के मनोरंजक तथा बुद्धि-विलास के फुटकर पद्यो के अतिरिक्त अनेक प्रकार के भजन ब्रज मे विशेष अवसरो पर गाये जाते है, जैसे जिकडी के भजन और सवादी भजन। जिकडी के भजनो की प्रतियोगिता होली के अवसर पर विशेष रूप से होती है। एक गुड की भेली या साफा पुरस्कार के रूप मे रखा जाता है। गायको के पास इलायची भेज दी जाती है और वडी-वडी चोटें चलती हैं। यद्यपि इनका उद्देश्य मनोरजन ही होता है। ज्ञान की भी वृद्धि इनसे होती है। कुछ भजन केवल मनोरजन के उद्देश्य मे गाये जाते हैं। एक भजनीक का पड्डा मर गया। उसने अन्य भजनीक को इस प्रकार पत्र लिखा—

मुकुत नाथ गए जूझि फकीरी धावन कीनी।
झूंठी नाँएँ तनक, अहो चिट्ठी लिखि दीनी॥
मेरे है गये गैर हवाल।
मुकुतनाथ के मरें ते, मेरे होत करेजा मे साल॥
अपुते नाँथ मरे, नाँएँ मारे, इनको पेट्ठु पीठि, ते लगि गयौ,
सुत लघिन करि माडारे॥

जापै ज्वाबु नारि नें दीयौ।
ऐसे बखत पिरान तजे, हतु एकु अधेला भारी ऐ।
सौमन धीड लगे ठिक मे जब बन्ति रसोई बारी ऐ।
भैया वन्दि कुटम के ऊकें, बिगरे उजन हमारे।
फिरिऊ ज्वाबु नारि नें दीयौ।
कच्चौ दूध अधौअलि पीओ, ज्वानीपन मे खरि खैयौ।
खेलौ सारि गढी के ऊपर, मति कहूँ नाथ डिगुलि जैयौ॥
नाही करी एक नाँइ मानी, घन बादर फाडारे।
औरु सुनौ आगे की चरचा।
लै जाते बिसराति घाट, कछु मन्दिर बीच धर्यौ नाऔ।
रूरि परे रैंदास इकिटठे, हम पै ज्वाबु बन्यौ नाऔ।
लै गये हाल झालि मे धरिकें, परं पेट फाडारे।

इसमे मुकुतनाथ जी पड्डा ही है। कही-कही आपस मे बहस यहाँ तक बढ जाती है कि लाठी चलने लगती है। ख्याल, लामनी, नसीरा, सोरगा आदि की प्रतियोगिताएँ भी मनोरजक होती है। प्रबन्ध गीतो में ढोला, आल्हा और राझा ब्रज के प्रसिद्ध गीत हैं। सैकडो ग्रामीण एक स्थान पर इकट्ठे होकर इन प्रसिद्ध रागो का

आनन्द लेते हैं। इन गीतो के बीच-बीच मे अनेक सुन्दर स्थल आते हैं जो फुटकर रूप से भी प्रचलित होकर मनोरजन करते है। ढोला और मारू मे बातें चल रही है। मारू ढोला की सूझबूझ की परीक्षा करने के लिए कहती है—

"रातौ सौ गाह्यौ केसरिया वलमा मैं कहूँ।
जाइ मोरिकै लगाइ दै मेरे अग।
लाख दुहाई बुध बाबुल की, रथु जोरिकैं चलुगी तेरे सग।"

इस पर ढोला उक्ति करता है—

रातेई राते इक दिन की मुंदनी पै बादरा।
औरु रातोई सैमर फूल।
ऐकु रातो मोइ रखलु ऐ, तेरी माँगन भर्यौ सिन्दूर
जाऊऐ न मानै तौ, तेरी नथ मे, राती लालरी ॥

सगीत के अतिरिक्त नाटक भी ब्रज का प्रमुख मनोरजन है। रास, भगति, नौटकी, स्वाग आदि पुरुषो के नाटक है। ये खुले रग-मच पर होते है। नगाडे की चोटो पर चौबोलो की बहार उडती है। आगरा, मथुरा, हाथरस प्रधान केन्द्र हैं। विवाह के अवसर पर, बरात के चले जाने पर स्त्रियाँ खोइया करती हैं। नृत्य स्त्री-पुरुप दोनो समाजो मे है। निम्न जातियो के विवाहो पर 'नौंके' होती है। इनका उद्देश्य मनोरजन होता है। हास्य उत्पन्न करके वह लघु अभिनय समाप्त हो जाता है। एक 'नौंक' देखिए—एक आदमी इस प्रकार सुसज्जित होकर आया—सिर पर पगडी, अग मे अचकन डाटे, नीचे लहँगा और आधी मूँछें लप्पेदार और आधी नदारद्। सभी लोग उसकी वेश-भूषा को देखकर हँस रहे थे। उसने कहा—'मैं कोहूँ रे लाला।' एक दूसरा आया, 'उसने पूछा तू कोऐ रे', उसने उत्तर दिया 'तोइ मेरौ लँहगा नाँय दीखतु का सो 'रे' कहँतु ऐ। फिर उसने पूछा—'तू को ऐ री।' फिर उसने बिगड-कर कहा—'मेरी अचकन नाँइ दीखत का सो 'री' कहँतु ऐ। फिर उसने पूछा—अच्छा तु ही वताइ तू को ऐ। उसने उत्तर दिया मेरौ नामु ऐ—रामप्यारी सीगु। भगति, स्वाग आदि सभी सगीतमय नाटक हैं। ब्रज के नृत्यो मे सबसे प्रसिद्ध चरकला नृत्य है। चरकला नृत्य मे इतनी शक्ति की आवश्यकता पडती है कि आज वह नृत्य समाप्त-सा हो रहा है।

● होली, दिवाली या दशहरे के अवसर पर गोवर्द्धन, राधाकुण्ड आदि स्थानो पर स्वाग निकाले जाते हैं। उन स्वागो मे कुछ विचित्र रूप भी धरते है और गायन के साथ नृत्य भी चलता है। उन गायनो मे बहुधा सामयिक विषय रहते हैं। स्थानीय पचायत, टाउन एरिया या चुगी के कार्यों की आलोचना प्रमुख रूप से रहती है। एक दल समस्या दे जाता है। दूसरे दल उसकी पूर्ति करके दूसरे दिन गाने आते हैं। भगति और नौटकी मे सवाद चौबोला, लामनी बहरतवील आदि मे रहते हैं। बिना एक कुशल नर्तकी के भगति जमती नही है। नगाडे का बजाने वाला भी बहुत कुशल

होना चाहिए। डण्डे शाही मथुरा का प्रमुख मनोरजन है। इसमे गायन रहता है और ताल डण्डो पर पडती है। डडे वाले सोने से लदे रहते हैं।

● ● गोटो के खेलो मे छ गोटी, नौ गोटी और सोलह गोटी प्रसिद्ध हैं। चौपड का भी खूब प्रचलन है। शक्ति-वर्द्धक मनोरजनो मे पटेबाजी, गदका और तलवार के हाथ दिखाना आदि है। इनमे भी अखाडे जमते है।

● ● ● अनेक खेल और मनोरजन अब व्रज से समाप्त हो चले हैं। पहले कठपुतली के खेल प्रत्येक गाँव मे होते थे। सारे गाँव मे से उसके लिए चन्दा उगाहा जाता था। ये खेल अब तो कभी कभी ही देखने को मिलता है। नटो की कला का प्रदर्शन तो नियमित था। नट व्रज की एक जाति है। गाँव इन्होने बाँट लिये है। एक निश्चित गाँव मे नट अपने डेरे डाल देता है। महीने दो महीने उसी गाँव मे अपनी गुजर करता है। फिर उसके खेल के लिए एक दिन नियत किया जाता है। नट शारीरिक कलाएँ दिखाते हैं। सारा गाँव उन्हे इनाम देता है। नटिनियाँ ऊँचे दर्जे की नर्तकी और गायिकाएँ होती है। गाँव के स्त्री समाज का वे मनोरजन करती हैं और इनाम पाती हैं। नटो के खेल तो व्रज मे अभी चल रहे हैं। पतगो का शौक पहले व्रज मे बहुत था। उनके पेचो के भी दगल होते थे। अनेक इस शौक मे अपने मकान तक बेच डालते थे। ये कहानी बडे-बूढो से अभी भी सुनने को मिल जाती है। अब वह शौक कम हो गया है। सावन के महीने मे तैराकी का मेला होता है। अनेक तैराक अपनी तैरने की कला का प्रदर्शन करते हैं। यमुना के पुल पर देखने वालो का मेला-सा लग जाता है। आइरेखेडे गाँव मे होली के अवसर पर घोडो और बैल-गाडियो की दौड देखने लायक होती है। मथुरा मे भैंसों और मेढो की कुश्तियाँ सैकडो रुपये रखकर होती हैं। तीतर, बटेर और कबूतरो की झडपें होती हैं। तीतर को इनके लिए बडी खुराक दी जाती है। दोनो तीतर जब अखाडे मे आ जाते है तब दोनो ओर की तीतरियाँ अपने तीतर को बढावा देती हैं। जो तीतर अखाडे से भाग जाता है, वह हारा हुआ समझा जाता है। वह तीतर जीतने वाले तीतर के मालिक को दे दिया जाता है और शर्त के रुपये भी। चकई-भौंरे का खेल अब केवल बच्चो तक सीमित रह गया है। किन्तु कुछ खेल तो ऐसे लुप्त हो गये हैं जिनकी रूपरेखा का पता ही नही चलता। व्रज का गीत है—"सबु-सबु खेले खेल, बलम मैंने ढेमचरा नहिं खेल्यौ।" आज ढेमचरा का कोई पता नही। सामन मे स्त्रियाँ झूला और सगीत से मनोरजन करती है। चौपालों, अगिहानो और पचायतो के अवसरो पर लोककथा के द्वारा मनोरजन होता है। कही पर सोकले चलते है, कही बुझौअल। इस प्रकार व्रज-लोक जीवन मे मनोरजन के अनेक साधन और मार्ग हैं। इनका सक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा सका है।

व्रज का यह वर्णन तो एक उदाहरण है। लोकवार्ता के अध्येता को क्षेत्र बाँटकर इनका सकलन करना होगा और तब इनका तुलनात्मक अध्ययन करके निष्कर्ष निकालना होगा।

खेल तथा मनोरजन के अध्ययन के लिए सामग्री-सकलन करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि—

१ प्राथमिकता उन खेलो को दी जानी चाहिए जिनके साथ कोई वाणी-विलास लगा हुआ हो।

२ प्रत्येक खेल या मनोरजन के सम्बन्ध मे यह सूचना भी प्राप्त कर लेनी चाहिए कि वह क्या किसी विशेष अवसर पर होता है ? क्या कुछ विशिष्ट लोग ही करते है ? क्या उसके सम्बन्ध मे कुछ विशेष विश्वास प्रचलित हैं ? जैसे कही चौपड के खेल को चौपट करने वाला माना जाता है। क्या उस खेल के सम्बन्ध मे कुछ वर्जन (Taboos) है ? क्या उसके लिए पहले से कुछ तैयारी अपेक्षित है ?

३ प्रत्येक खेल या मनोरजन के विन्यास-विधान का विस्तार और उसके अन्य नियम भी लिख लेने होगे।

४ उससे जुडी हुई शब्दावली को लिख लिया जाय।

५ सग्रहीत सामग्री का वर्गीकरण वैज्ञानिक विधि से किया जाय। यह वर्गीकरण कुछ इस रूप मे किया जा सकता है।
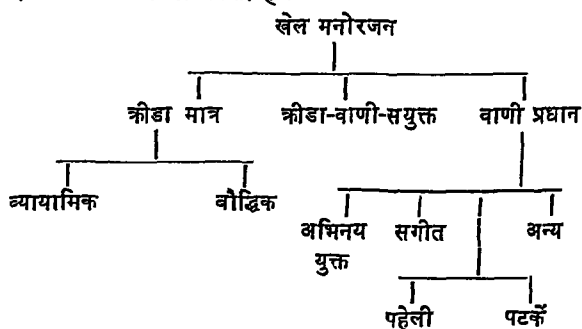
६ आवश्यक रेखा-चित्रो से इन टीपो को सजा लेना चाहिए।

७ इनके भौगोलिक तथा ऐतिहासिक विस्तार-प्रमाणो को भी प्रस्तुत करना चाहिए।

८ शब्दावली का शैलीतात्विक महत्त्व भी देखना होता है।

९ विविध चरणो की भौगोलिक तथा ऐतिहासिक आवृत्तियो पर भी ध्यान देना होगा।

लोकवार्ता तथा लोक-साहित्य मे जिन और कुछ विषयों का अध्ययन करना होता है उन पर भी यहाँ अत्यन्त सक्षेप मे कुछ टिप्पणियाँ दी जा रही हैं।

१ **धार्मिक विश्वास**—लोक-धर्म और लोक-विश्वास परस्पर घनिष्ठ रूप मे सम्बन्धित हैं। प्रत्येक प्रकार के लोक-विश्वासो का सग्रह करना अपेक्षित है। ये विश्वास प्रत्येक क्षेत्र मे प्रचलित हैं। इन्हे 'अभिप्रायानुक्रमणिका' (मोटिफ इण्डेक्स) के

रूप मे वर्गीकृत करने की आवश्यकता है। इन्हें मोटे रूप से निम्न क्षेत्रो मे बाँटकर वर्गीकरण के लिए प्रस्तुत कर सकते हैं—

१ देवी-देवता विषयक विश्वास
२ वस्तुओ के जन्म तथा निर्माण विषयक
३ वस्तुओ के नाश विषयक
४ तिथिमास विषयक
५ मानव शरीर विषयक तिल, भौरो आदि के
६ मानव शरीर की क्रिया विशेष के—नाक के, सुर के, छीक के आदि के
७ वस्तुओ के उपयोग सम्बन्धी
८ शकुन-अपशकुन
९ पशु-पक्षी विषयक—बिल्ली मारने से शाप लगता है, प्रायश्चित्त करना होता है, आदि
१० जाति सम्बन्धी
११ स्थान, नाम विषयक—ऐसे ही और भी। इन्हे पहले चिटो पर लिखकर, फिर पुस्तकालय के संग्रह के रूप की योजना बनाकर प्रत्येक कार्ड पर वैसी सख्या देकर, इन्हे वर्गीकृत किया जाना चाहिए।

२ **सामाजिक आचार-विचार**—इस अध्ययन के लिए उस लोकवार्ता को एकत्र करना होगा जो किसी समाज के विशिष्ट आचारो के सम्बन्ध मे कही-सुनी जाती हैं। उस आचार का उल्लेख करके और उसके सम्बन्ध की आवश्यक जानकारी देकर तद्विषयक प्रचलित लोकवार्ता देनी चाहिए।

३ **विविध अनुष्ठान, व्रत-मेले आदि**—इनकी वार्ता का भी पूरा-पूरा सकलन होना चाहिए।

अनुष्ठान, व्रत, उत्सव, मेले, तीर्थ, मन्दिर, धर्म स्थानो के सम्बन्ध मे विविध लोकवार्ताएँ प्रचलित रहती हैं। उन्हे एकत्र करके उनका अध्ययन अपेक्षित है।

४ **वर्जन (Taboos)**—वर्जन विश्व लोकवार्ता मे आदिम मनोविज्ञान के अशो के अच्छे प्रमाण हैं। जैसे किसी-किसी कुटुम्ब मे विवाह तथा शुभ अवसरो पर घर में मूँग या अन्य दाल की वडी रखना वर्जित है। ऐसे वर्जनो का लोकवार्ता कोश बनना चाहिए। इन वर्जनो के साथ जो विश्वास लगे हुए हैं वे तो सख्या १ मे जायेंगे। यहाँ तो केवल वर्जन का रूप, प्रकार, समय, उपयोग आदि ही देखना होगा। 'वर्जन' के अभिप्राय पर अनेक कहानियाँ भी बनी हैं—उन्हे भी लेना होगा। जैसे दक्षिण दिशा मे जाने का वर्जन आदि।

५ **तत्वम या टोटेम**—लोकवार्ता तथा नृविज्ञान मे यह एक अनिश्चितार्थी शब्द है। सामान्यत टोटेम वे वस्तुएँ हैं जिनका किसी जाति या समुदाय विशेष से

एक विशेष प्रकार का विश्वासगत सम्बन्ध होता है। किसी-किसी बर्बर जाति के लोगो मे किसी वस्तु-विशेष के सम्बन्ध मे उसके खाने, काटने, मारने के वर्जन रहते है। ऐसे पदार्थों को ऐसी जातियाँ अपना जन्मदाता मानती हैं। तत्वम के साथ वर्जन प्राय रहता है। लोकवार्ताकार को ऐसे तत्वमो पर भी ध्यान रखना होता है।

यो तत्वमवाद फ्रेजर के बाद महत्त्वहीन होता चला गया है। गोल्डन बीजर के अध्ययनो के परिणामस्वरूप इस सिद्धान्त को पूर्णत अपदस्थ हो जाना पडा है। पर यह सब नृविज्ञानविदो के लिए है। लोकवार्ताकार के लिए तत्वम विषयक लोकवार्ता तो अध्ययन की वस्तु रहेगी ही।

६ **शकुन-अपशकुन**—शकुन शुभ परिणाम द्योतक होते हैं। अपशकुन अशुभ परिणाम द्योतक। ये वस्तु व्यापारो द्वारा मिलने वाली भविष्यवाणियाँ हैं।

७ **विविध पूजापाठ**— इन्ही के साथ दई-देवता भी आते हैं। इनके साथ एक पूर्ण चक्र प्रस्तुत होता है। इस समस्त चक्र विषयक ज्ञान अपेक्षित है। वह चक्र यो है।

देवता इष्ट	पूजा विधान	पूजा सामग्री	पुजारी	भोग	प्रासाद	पूजा तिथि समय	थान
यथा-शिव	उपवास दीपदान पुष्प चढाना जलदान	कनेर पुष्प दीपक	शैव			शिवरात्री सोमवार त्रयोदशी आदि	

देवताओ तथा इष्टो की लोकवार्ता का भी स्थान इसी शीर्षक के अन्तगत होगा। विविध ग्रामदेवता, भूत-प्रेत, सर्प, वृक्ष आदि के देवत्व या इष्टत्व की लोकवार्ता समस्त अनुष्ठान थान या स्याने सहित एकत्र करनी चाहिए।

८ **लोक कलाएँ**—लोक मूर्तियाँ, लोक चित्रकारी जैसे आलोपना, थापे, लोक-नृत्य, लोकनाट्य आदि। गोदने या tatooing आदि।

९ **जादू टोना**

१० **लोक चिकित्सा**—इसके अन्तर्गत स्याने-भगतो-ओझो-सँपेरो की झाड-फूँक, ढाँक आदि भी आते हैं और लोक प्रचलित टोटके तथा औषध भी। तिजारी बुखार हो तो आक पौधे को बिरा आना एक चिकित्सा है। जत्र भी चिकित्सा का रूप है।

११ खेतो की तथा अन्य व्यवसायो और उद्योग-धन्धो की लोकवार्ता।

१२ व्यक्तिवाचक नामो (स्थान, व्यक्ति आदि) की लोकवार्ता।

१३ लोकवार्ता मे यौन तत्त्व।

१४ लोकवार्ता पक्षियो, पशुओ, वृक्षो, आदि की।

अध्ययनकर्ता और अनुसधानकर्ता इन सभी के अनुकूल अपने लिए वैज्ञानिक प्रश्नावली निर्धारित कर सकता है। आवश्यकता यह है कि वह लोकवार्ता के मर्म को समझ गया हो और उसके लिए अपेक्षित वैज्ञानिक प्रक्रिया और क्षेत्रीय अभ्यास के सिद्धान्तो से अवगत हो चुका हो।

परिशिष्ट

(१)

लोक-जीवन और सस्कृति

साधारण जीवन—लोक-जीवन—ग्राम्य-जीवन बहुत कुछ पर्यायवाची है। लोक-जीवन की सबसे बडी विशेषता उसकी स्वाभाविकता है। इसके असली रूप को जानने के लिए हमे लोक-जीवन के अध्ययन की महती आवश्यकता है। यह लोक-जीवन किसी भी जाति की पृष्ठभूमि और मूल-प्रेरणा-स्थल है। यही अवचेतन मानस की भाँति जाति और समाज के समस्त जीवन को सचालित करता है। तो क्या यह आश्चर्य की बात नही कि विशेष जीवन के द्वारा हम अपने को सस्कार किया हुआ यानी सभ्य पाते हैं और लोक-जीवन को हम असस्कारो, रूढियो और अन्धविश्वासो मे पडा हुआ गर्हित-जीवन समझते हैं। किन्तु वस्तु-स्थिति ऐसी ही है। आज हमे इसके रहस्य को खोलना होगा। जिन्हे हम अन्धविश्वास और रूढियाँ मानते हैं उनका अध्ययन हम वैज्ञानिक आधार पर कर सकते हैं। हम ऐसी प्रत्येक रूढि और विश्वास को लेकर उसके इतिहास पर दृष्टिपात करते हुए उसके 'मूल' को जान सकते हैं। जैसे इतिहास से हम देखते हैं कि १० वर्ष पूर्व अमुक स्थान का क्या रूप रहा, उसके १०० वर्ष पूव के उसके क्या चिह्न मिलते हैं, और उससे भी पूर्व वह क्या था, यो हम यह भी जानने की चेष्टा करते हैं कि उसकी मूल जड क्या है? इस प्रकार के अध्ययन मे हमारे इतिहास का अध्ययन भी शामिल हो जाता है। उदाहरण के लिए लोक-जीवन के अध्ययन मे 'सकट-चौथ' की वार्ता को ले सकते है। उसमे कही-कही 'तिलकुटे' की एक मनुष्य जैसी आकृति बनायी जाती है। मुख पर घी और गुड रख दिया जाता है। घर का कोई बालक या पुरुष, बालिका या स्त्री नही, एक चाकू से उसका सिर धड से अलग काट देता है। काटते समय उससे कहा जाता है कि वह "मैं ऐं ऐं" करे। कटा हुआ सिर गुड और घी के साथ काटने वाले को मिलता है। इस प्रथा मे कितनी बातें छिपी दीखती हैं। स्पष्ट ही 'सकट-चौथ' का यह 'तिलकुटा' बलि किसी समय की मानव बलि की स्मृति है। प्राचीन काल मे आदिम-मानव मनुष्य-बलि देता होगा। अधिक सभ्य होने पर मनुष्य-बलि बन्द कर दी गयी होगी और देवता के सन्तोष के लिए 'बकरी' की बलि दी जाने लगी होगी। ऐसा सशोधन कितने ही स्थानो पर किया गया है। झाँसी मे 'सनीचरा पहाड' पर शनिश्चर देवता को पहले मनुष्य बलि पर्वत पर से ढकेलकर दी जाती थी ऐसा कहा जाता है। अब किसी पशु की बलि दी जाती है। यही स्थिति सकट-चौथ की बलि के सम्बन्ध मे हुई होगी। 'मैं ऐं ऐं' की ध्वनि मे बकरी का भाव है। फिर तीसरे प्रभाव मे अहिंसा वाली भावधारा ने बकरी

एक विशेष प्रकार का विश्वासगत सम्बन्ध होता है। किसी-किसी बर्बर जाति के लोगो मे किसी वस्तु-विशेष के सम्बन्ध मे उसके खाने, काटने, मारने के वर्जन रहते है। ऐसे पदार्थों को ऐसी जातियाँ अपना जन्मदाता मानती हैं। तत्वम के साथ वर्जन प्राय रहता है। लोकवार्ताकार को ऐसे तत्वमो पर भी ध्यान रखना होता है।

यो तत्वमवाद फ्रेजर के बाद महत्त्वहीन होता चला गया है। गोल्डन वीजर के अध्ययनो के परिणामस्वरूप इस सिद्धान्त को पूर्णत अपदस्थ हो जाना पडा है। पर यह सब नृविज्ञानविदो के लिए है। लोकवार्ताकार के लिए तत्वम विषयक लोकवार्ता तो अध्ययन की वस्तु रहेगी ही।

६ **शकुन-अपशकुन**—शकुन शुभ परिणाम द्योतक होते हैं। अपशकुन अशुभ परिणाम द्योतक। ये वस्तु व्यापारो द्वारा मिलने वाली भविष्यवाणियाँ हैं।

७ **विविध पूजापाठ**— इन्ही के साथ दई-देवता भी आते हैं। इनके साथ एक पूर्ण चक्र प्रस्तुत होता है। इस समस्त चक्र विषयक ज्ञान अपेक्षित है। वह चक्र यो है।

देवता इष्ट	पूजा विधान	पूजा सामग्री	पुजारी	भोग	प्रासाद	पूजा तिथि समय	थान
यथा-शिव	उपवास दीपदान पुष्प चढाना जलदान	कनेर पुष्प दीपक	शैव			शिवरात्री सोमवार त्रयोदशी आदि	

देवताओ तथा इष्टो की लोकवार्ता का भी स्थान इसी शीर्षक के अन्तर्गत होगा। विविध ग्रामदेवता, भूत-प्रेत, सर्प, वृक्ष आदि के देवत्व या इष्टत्व की लोकवार्ता समस्त अनुष्ठान थान या स्थाने सहित एकत्र करनी चाहिए।

८ **लोक कलाएँ**—लोक मूर्तियाँ, लोक चित्रकारी जैसे आलोपना, थापे, लोक-नृत्य, लोकनाट्य आदि। गोदने या tatooing आदि।

९ **जादू टोना**

१० **लोक चिकित्सा**—इसके अन्तर्गत स्याने-भगतो-ओझो-सँपेरो की झाड-फूंक, ढाँक आदि भी आते है और लोक प्रचलित टोटके तथा औषध भी। तिजारी बुखार हो तो आक पौधे को बिरा आना एक चिकित्सा है। जन्त्र भी चिकित्सा का रूप है।

११ खेतो की तथा अन्य व्यवसायो और उद्योग-धन्धो की लोकवार्ता।

१२ व्यक्तिवाचक नामो (स्थान, व्यक्ति आदि) की लोकवार्ता।

१३ लोकवार्ता मे यौन तत्त्व।

१४ लोकवार्ता पक्षियो, पशुओ, वृक्षो, आदि की।

अध्ययनकर्ता और अनुसधानकर्ता इन सभी के अनुकूल अपने लिए वैज्ञानिक प्रश्नावली निर्धारित कर सकता है। आवश्यकता यह है कि वह लोकवार्ता के मर्म को समझ गया हो और उसके लिए अपेक्षित वैज्ञानिक प्रक्रिया और क्षेत्रीय अभ्यास के सिद्धान्तो से अवगत हो चुका हो।

परिशिष्ट

(१)

लोक-जीवन और सस्कृति

साधारण जीवन—लोक-जीवन—ग्राम्य-जीवन वहुत कुछ पर्यायवाची है। लोक-जीवन की सबसे बडी विशेषता उसकी स्वाभाविकता है। इसके असली रूप को जानने के लिए हमे लोक-जीवन के अध्ययन की महती आवश्यकता है। यह लोक-जीवन किसी भी जाति की पृष्ठभूमि और मूल-प्रेरणा-स्थल है। यही अवचेतन मानस की भाँति जाति और समाज के समस्त जीवन को सचालित करता है। तो क्या यह आश्चर्य की बात नही कि विशेष जीवन के द्वारा हम अपने को सस्कार किया हुआ यानी सभ्य पाते हैं और लोक-जीवन को हम असस्कारो, रूढियो और अन्धविश्वासो मे पडा हुआ गर्हित-जीवन समझते हैं। किन्तु वस्तु-स्थिति ऐसी ही है। आज हमे इसके रहस्य को खोलना होगा। जिन्हे हम अन्धविश्वास और रूढियाँ मानते हैं उनका अध्ययन हम वैज्ञानिक आधार पर कर सकते हैं। हम ऐसी प्रत्येक रूढि और विश्वास को लेकर उसके इतिहास पर दृष्टिपात करते हुए उसके 'मूल' को जान सकते हैं। जैसे इतिहास से हम देखते हैं कि १० वर्ष पूव अमुक स्थान का क्या रूप रहा, उसके १०० वर्ष पूर्व के उसके क्या चिह्न मिलते है, और उससे भी पूर्व वह क्या था, यो हम यह भी जानने की चेष्टा करते हैं कि उसकी मूल जड क्या है? इस प्रकार के अध्ययन मे हमारे इतिहास का अध्ययन भी शामिल हो जाता है। उदाहरण के लिए लोक-जीवन के अध्ययन मे 'सकट-चौथ' की वार्ता को ले सकते है। उसमे कही-कही 'तिलकुटे' की एक मनुष्य जैसी आकृति बनायी जाती है। मुख पर घी और गुड रख दिया जाता है। घर का कोई बालक या पुरुष, बालिका या स्त्री नही, एक चाकू से उसका सिर धड से अलग काट देता है। काटते समय उससे कहा जाता है कि वह "मैं एँ एँ" करे। कटा हुआ सिर गुड और घी के साथ काटने वाले को मिलता है। इस प्रथा मे कितनी बातें छिपी दीखती हैं। स्पष्ट ही 'सकट-चौथ' का यह 'तिलकुटा' बलि किसी समय की मानव बलि की स्मृति है। प्राचीन काल मे आदिम-मानव मनुष्य-बलि देता होगा। अधिक सभ्य होने पर मनुष्य-बलि बन्द कर दी गयी होगी और देवता के सन्तोष के लिए 'बकरी' की बलि दी जाने लगी होगी। ऐसा सशोधन कितने ही स्थानो पर किया गया है। झाँसी मे 'सनीचरा पहाड' पर शनिश्चर देवता को पहले मनुष्य बलि पर्वत पर से ढकेलकर दी जाती थी ऐसा कहा जाता है। अब किसी पशु की बलि दी जाती है। यही स्थिति सकट-चौथ की बलि के सम्बन्ध मे हुई होगी। 'मैं एँ एँ' की ध्वनि में बकरी का भाव है। फिर तीसरे प्रभाव मे अहिंसा वाली भावधारा ने बकरी

के स्थान पर खाने योग्य किसी पदार्थ की मूर्ति से काम चलाने का सुझाव दिया होगा। यह चौथ मकर सक्रान्ति के निकट पडती है। इस अवसर पर तिलो का महत्त्व है। अत तिल की मूर्ति बनायी जाने लगी। मानव-बलि असभ्य वन्यजातियो मे अभी कुछ समय पूर्व तक थी, विशेषकर खोडो मे। मानव-बलि का कुछ सकेत मोहनजोदडो से मिले ठप्पो से भी मिलता है। उनमे एक उभार मे एक वृक्ष की दो फाँको मे भिंची हुई एक मानवीय मूर्ति है। खोडो मे मनुष्य-बलि मे यही प्रकार प्रचलित था। एक वृक्ष के फटे हिस्से मे बलि-पात्र को भीच दिया जाता था। मनुष्य-बलि वैदिक-काल मे प्रचलित थी यह हमे शुन शेप के कथानक से विदित होता है। खोडो के पुरोहित बलि करते समय बलि-पात्र से जो बातें कहते है, यह देखकर आश्चर्य होता है कि खोडो के पुरोहित की उन बातो के भाव वैदिक बलि देने वाले के भावो से टक्कर लेते हैं। वे जो मन्त्र पढते हैं उनमे भी बलि के इतिहास की बात कहते हैं। हरिश्चन्द्र और विश्वामित्र की कथा मे हमे बलि का उल्लेख मिलता है। वेदो मे जब लोक-जीवन आदिम अवस्था मे था उस समय भी बलि का वर्णन मिलता है। इस तरह बलि के इतिहास से हमे मोहनजोदडो और हडप्पा की लोकवार्ता के समझने मे सहायता मिलती है। इस तरह रूढियो और अन्धविश्वास की चीजो से हम इतिहास जान सकते है। 'सकट' की बलि मे कितना पुराना इतिहास टूट-फूटकर बचा हुआ है। इस तरह तुलना करके लोक-जीवन के अध्ययन करने की बडी आवश्यकता है क्योकि रूढियाँ और अन्धविश्वास हमे लोक-सस्कृति का मूल बताते हैं। मानवीय उपयोग के लिए इनके अध्ययन की बडी आवश्यकता है। यह अध्ययन विधिपूर्वक किया जाना चाहिए।

फ्रेजर महोदय ने लोक-जीवन सम्बन्धी समस्त रीति-रिवाजो का एक सग्रह किया है जिसका नाम 'स्वर्णिम शाखा' (गोल्डन बॉउ) है। इस सग्रह ने विविध देशो की लोकवार्ता की तुलना प्रस्तुत कर दी है। भारत मे भी इस प्रकार का कार्य करने की महती आवश्यकता है। भारत एक विशाल देश है। ज्ञान की साधना के लिए हम अपने क्षेत्र मे ही काम करें। लोकवार्ता मे दो प्रकार की सामग्री होती है उसका बहुत बडा अश तो ऐसा होता है जो व्यापक होता है। कुछ अश केवल स्थानीय। अत यदि एक स्थान अथवा क्षेत्र का भी लोक-अध्ययन विधिवत् कर लिया जाय तो समस्त क्षेत्र के अध्ययन मे सुविधा हो जाय। ब्रज-साहित्य-मण्डल जैसी सस्थाओ को इस दिशा मे महत्त्वपूर्ण कदम उठाना है। उन्हे इस लोक-अध्ययन की वैज्ञानिक-प्रणाली का साधारण रूप प्रस्तुत कर देना होगा। उससे विशेप वैज्ञानिक अध्ययन की नीव पड जायगी। इस क्षेत्र मे इसी के लिए हमे लोकवार्ताओ का सग्रह करने की अत्यन्त आवश्यकता है। इस प्रकार सग्रह के लिए हम विद्वान पुरुषो से एक प्रश्नमाला तैयार करायें और फिर उसका उत्तर लिखें।

वह प्रश्न तालिका कुछ इस प्रकार की हो सकती है

(१) गाँव का इतिहास, वहाँ कौन देवी-देवता पूजे जाते हैं ?

(२) (१) नाम गोत्र और जन्म के बोलने का नाम ? (२) पूज्यो, मृतको का नाम कब नही लिया जाता ? (३) क्यो नही लिया जाता ? (४) अशौच और अन्तिम अवस्था मे क्यो नही लिया जाता ? (५) कुछ काल के लिए कुछ नाम लिया जाना है ? (६) किसी ऐसे निषिद्ध नाम को लेने पर क्या होता है ? (७) विविध अवसरो और अवस्थाओ मे वे नाम बदले जाते है ? (८) बच्चो की उत्पत्ति पर नाम कुछ होता है ? पुकारने का नाम कुछ होता है ? (९) इस प्रकार के निषेध के क्या कारण होते हैं ?

(३) कुछ जातियाँ कुछ वर्गों से किन्ही कारणो से वैवाहिक सम्बन्ध नही रखतीं ? ऐसी जातियो और उनके वैवाहिक सम्बन्ध न होने वाले वर्गों का विवरण लिखिए।

[इन कारणो मे कही कही तो स्थान विशेष का विचार रहता है, और कही-कही पैतृक एकता इन सम्बन्धो मे बाधक होती है ।]

(४) उन वर्गों का उल्लेख कीजिए जिनसे बाहर कोई जाति वैवाहिक सम्बन्ध रखती ही नही हो।

(५) कुछ वर्ग ऐसे होते हैं जिनमे स्त्री या तो उसी वर्ग मे किसी पुरुष से विवाह करे अथवा अपने से ऊँचे वर्ग के पुरुष से और साथ ही पुरुष उसी वर्ग मे अपना विवाह करे अथवा अपने से नीचे वर्ग मे भी कर सकता है। ऐसे वर्गों का विवरण दीजिए।

(६) उन सीमाओ का उल्लेख कीजिए जो किसी यथार्थ अथवा कल्पित सम-गोत्रता के सिद्धान्त के आधार पर बनी हो और जो उस वर्ग मे अथवा उससे बाहर होने वाले विवाहो को रोकती हो।

(७) किसी जाति की उत्पत्ति, किसी पीढी पर जाकर उनके पूवजो की एकता, उनके पहले निवास स्थान, उनके स्थान-परिवतन का समय और उनके स्थान-परिवर्तन के सम्बन्ध की किसी घटना अथवा कारण से सम्बन्ध रखने वाले प्रचलित विश्वासो का उल्लेख कीजिए।

[ऐसे विश्वास प्राय सभी जातियो मे मिलते हैं। सभी का उल्लेख होना आवश्यक है]

(८) जाति स्थायी है अथवा घूमने-फिरने वाली ? प्रान्त मे क्या कोई उसका निश्चित स्थान है ? यदि वह घूमने-फिरने वाली है तो उसके घूमने-फिरने का प्रधान-प्रदेश कौन-सा है ? उसके स्थान परिवतन की अवधि निश्चित है अथवा अनिश्चित । उनके रहने का ढग और उनकी सम्पत्ति क्या है ?

(९) क्या ऐसी जाति अपने मे किसी अन्य जातिवालो को मिलाते है ? यदि हाँ तो किन जातियो को मिलाते हैं ? किस रूप मे मिलाते हैं ? उनके मिलाने की शर्तें क्या हैं ?

(१०) (अ) बाल-विवाह प्रचलित है अथवा प्रौढ-विवाह ? यदि बाल-विवाह है तो लडकी का किस अवस्था तक विवाह हो जाना चाहिए ? यदि उस निश्चित अवस्था तक लडकी का विवाह नहीं होता है तो उस परिवर्तन के लिए कौन-कौन से सामाजिक दण्ड है ? उस अवस्था को पार करने के पश्चात् क्या उसके विवाह होने के कुछ साधन हैं ? इन जातियो के वैवाहिक सस्कारो का भी विवरण दीजिए।

(आ) क्या लडकियो का विवाह, पतियो के अभाव मे वृक्षो, तलवारो आदि से होता है और क्या बाद मे वे किसी मन्दिर मे भेंट स्वरूप दे दी जाती हैं ?

(इ) बाल-विवाह वाली लडकी अपने पति के घर तत्काल ही भेज दी जाती है अथवा कुछ समय बाद ? यदि अपने मायके मे रहती है तो किस अवस्था तक ? इस विदाई के समय क्या-क्या सस्कार होते हैं ? क्या कुछ सामाजिक दण्ड-विधान उन परिवारो के लिए है जिनकी लडकियो को पति के घर जाने से पूर्व ही मासिक होने लगता है ?

(ई) समागम के लिए कोई समय निश्चित है अथवा विवाह के पश्चात ही समागम आरम्भ हो जाता है ? बाल-विवाह किसी अमुक जाति मे अभी प्रचलित हुआ है अथवा बहुत पहले से चला आता है ? यदि पहले का है तो यह कब प्रचलित हुई ?

(११) क्या एक ही साथ अनेक पत्नी अथवा अनेक पति रखने की प्रथा है ? यदि हो तो किन शर्तो पर और किन सीमाओ तक ? क्या अनेक पति भाई हो सकते हैं, या ऐसे भी हो सकते है जो भाई न हो ?

[ऐसी प्रथा भी होती है कि एक परिवार मे जो उम्र मे सबसे बडा हो उसी का विवाह सर्वप्रथम होगा। ऐसा भी देखा जाता है कि बाल-पति की प्रौढ पत्नी होती है और पति का पिता उससे सम्बन्ध स्थापित कर लेता है।]

(१२) सामान्यत वैवाहिक सस्कार क्या है ? उनका सक्षिप्त विवरण दीजिए ?

(१३) क्या विधवा-विवाह समाज-सम्मत है ? क्या ऐसी दशा मे पति के बडे या छोटे भाई से ही विवाह होना आवश्यक है ? यदि ऐसा नही है तो विधवा-विवाह की अन्य शर्तें क्या हैं ? किस प्रकार के विवाह-सस्कार है ? उनका अत्यावश्यक अश कौनसा है ?

(१४) तलाक किन परिस्थितियो मे मान्य होता है ? क्या तलाक के बाद स्त्री विवाह कर सकती है ? इस अवस्था मे विवाह का क्या रूप होगा ? क्या इस दशा मे मोल लेने की भी प्रथा है ?

(१५) किसी अमुक जाति के सदस्य पैतृक सम्पत्ति के अधिकार के सम्बन्ध मे हिन्दू नियमो को मानते हैं अथवा मुस्लिम नियमो को ? क्या शुद्ध अधिकारी की जाँच करने का कोई सामाजिक विधान है ? यदि हो तो उसका विवरण दीजिए।

(१६) किस धर्म अथवा सम्प्रदाय से वह जाति सम्बन्ध रखती है ? यदि वह हिन्दू है तो किन धार्मिक देवताओ की पूजा को महत्त्व देते हैं और क्यो ? यदि वह

प्रकृतिपूजक (Animist) है तो उसके धार्मिक विश्वास, उसकी रीति-रिवाजो का वर्णन दीजिए ? क्या जादू-टोने (Magic) मे उनका विश्वास है ? पूरा विवरण दीजिए।

(१७) उस जाति के निम्न देवताओ (Minor gods) के नामो का उल्लेख कीजिए। उनको क्या भेंट दी जाती है ? सप्ताह के किस दिन उनकी पूजा होती है और क्यो ? किस वर्ग के लोग उस भेंट को स्वीकार करने के अधिकारी समझे जाते हैं ? क्या किसी देवता या पीर की पूजा स्त्रियो और बच्चो तक ही सीमित है ? क्या पूजा बिना पुरोहित के भी हो सकती है ? पूजा के स्थलो (वृक्ष, पत्थर, पर्वत) का भी विवरण दीजिए ? क्या बलि की प्रथा है ?

(१८) क्या वह जाति धार्मिक कृत्यो के लिए ब्राह्मणो को आमन्त्रित करती है ? क्या इस प्रकार के ब्राह्मणो तथा अन्य ब्राह्मणो मे अन्तर है ? यदि ब्राह्मण यह कृत्य नही कराते तो और कौनसी जाति कराती है ?

(१९) अन्त्येष्टि क्रिया का पूरा विवरण दीजिए। मृत गाडा जाता है या जलाया जाता है ? यदि गाडा जाता है तो किस प्रकार ? मृत के फूल (ashes) कहाँ बहाये जाते हैं अथवा गाडे जाते हैं ? मृत्यु शोक मनाने की अवधि कब तक है ? बच्चे, प्रौढ़ और वृद्ध सबके विषय में लिखिए।

(२०) क्या कोई ऐसे धार्मिक कृत्य हैं जो पूर्वजो अथवा निपुत्री पूर्वजो की तृप्ति के लिए किये जाते हो अथवा उनके लिए जिनकी मृत्यु आकस्मिक हुई है ? यदि हाँ तो किस प्रकार के कृत्य हैं और किस ऋतु मे किये जाते हैं ? श्राद्ध होते हैं क्या ? स्त्री-पूर्वजो की पूजा के विषय मे क्या है ?

(२१) वह जाति अपने आदि व्यवसायो के विषय मे क्या विश्वास रखती है ? किस सीमा तक उसने अन्य व्यवसायों को अपनाया है ? क्या पहले व्यवसाय को छोडने का कारण है ? उनकी कार्य-प्रणाली पर भी एक दृष्टि डालिए।

(२२) यदि वे किसान हैं तो कृषि-विधान की किस स्थिति मे है ? जमीदार आदि।

(२३) (अ) यदि वे कारीगर हैं तो उनका उद्योग धन्धा क्या है ?

(आ) क्या शिकारी हैं ?

(इ) क्या मछुए हैं ? यदि हाँ तो कछुए और घडियाल भी पकडते हैं क्या ?

(ई) यदि भगी हैं तो पाखाना साफ करते हैं कि नही ?

(२४) भोजन सामग्री क्या है ? गोश्त, शराब, बन्दर, चर्बी, आदि खाते-पीते हैं क्या ?

(२५) वह सबसे छोटी जाति कौनसी है जिसके हाथो से जाति पक्का, कच्चा खाना खा सकती हो, पानी पी सकती हो और चिलम दे सकती हो ?

(२६) पोशाक सम्बन्धी कोई विश्वास है क्या ? क्या कोई गहने अथवा हथियार ऐसे हैं जो उस जाति मे विशेष रूप मे सम्बद्ध हैं ? क्या कोई गण्डा या जनेऊ (Sacred thread) बाँधा जाता है ?

(२७) और भी कुछ ज्ञातव्य बातें हैं क्या ?

(यह प्रश्न-तालिका श्री एच० एच० रिजले, डाइरेक्टर ऑव ऐथनाग्रॉफी फौर इण्डिया, द्वारा प्रकाशित, 'मैन्युअल ऑव ऐथनाग्राफी फौर इण्डिया' के आधार पर है)

(२)

लोक-साहित्य-सग्रहालय

श्री श्रीनारायण पाण्डेय मणीन्द्रचन्द्र विद्यापीठ, बहरमपुर (मुर्शिदाबाद)

कोई भी ऐसा विषय, जिसके अन्तर्गत मौखिक और भौतिक दोनो तरह की सामग्री का अध्ययन किया जाता हो, उस विषय की सामग्री को सुरक्षित रखने की व्यवस्था भी आवश्यक है। लोक-साहित्य एक विज्ञान है, और उसके अन्तर्गत उक्त दोनो तरह की सामग्री पायी जाती है। जिस प्रकार नृविज्ञान, पुरातत्त्व आदि का अध्ययन केवल मौखिक सामग्री के आधार पर ही न करके, उसके भौतिक रूप—प्राचीन हड्डियाँ, प्राचीनकाल के गहने, प्राचीन सिक्के और मूर्तियो के माध्यम से भी किया जाता है, उसी प्रकार लोक-साहित्य का अध्ययन केवल कहानियाँ, गीत, मुहावरे आदि रूपो तक ही सीमित नही है। अपितु, उसके अन्तर्गत आनुष्ठानिक कार्य भी आते हैं, जो इन मौखिक रूपो की व्याख्या करते हैं। हर देश मे पुरातत्त्व की सामग्री के लिए बडे-बडे सग्रहालय बनाये गये हैं, किन्तु लोक-साहित्य के सग्रहालयो की ओर लोगो का ध्यान अभी नही गया है। इस दिशा मे थोडा-सा प्रयास कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी हिन्दी-विद्यापीठ (आगरा) मे किया गया है। जिसमे उन्होंने कुछ सामग्री एकत्रकर सग्रहालय का एक रूप दिया है। हम आशा करते हैं कि भविष्य मे यह सग्रहालय और भी बडा होगा।

इतना स्वीकार कर लेने के पश्चात कि लोक-साहित्य भी अपने विषय की व्यापकता मे सग्रहालय की अपेक्षा रखता है, प्रश्न यह उठता है कि इस सग्रहालय का रूप क्या हो ? यह आवश्यक नही है कि पुरातत्व की ही भाँति इसके भी सग्रहालय हो। लोक-साहित्य का क्षेत्र बहुत व्यापक है, अत इन सग्रहालयो का गठन अन्तर-राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय दो पैमाने पर किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय सग्रहालयो को प्रान्तीय सग्रहालय, प्रान्तीय सग्रहालयो को जिला सग्रहालय तथा जिला सग्रहालय को पचायत-सग्रहालयो मे बाँटा जा सकता है। बडे प्रान्तो मे इनका सगठन बोलियो के आधार पर भी किया जा सकता है। जैसे, हिन्दीभाषी प्रान्त मे, अवधी, भोजपुरी, ब्रजभाषा आदि के आधार पर। किन्तु, इन विभिन्न प्रान्तीय इकाइयो का सम्बन्ध एक-दूसरे से, तथा राष्ट्रीय पैमाने पर भारतीय लोक-सग्रहालय से अन्तरराष्ट्रीय पैमाने पर विश्वलोक-सग्रहालय से होना चाहिए।

सग्रहालयो का यह वाहरी रूप-विधान देख लेने के पश्चात उसके आन्तरिक गठन का प्रश्न भी सहज ही सामने आ जाता है। किसी भी सग्रहालय का महत्त्व इसलिए नही होता कि उसमे सामग्री अधिक सख्या मे रख दी गयी है, महत्त्वपूर्ण तत्व होता है कि सामग्री कितने व्यवस्थित ढग से रखी गयी है। अगर सामग्री को व्यवस्थित रूप से नही रखा गया है, तो उसका उपयोग नही किया जा सकेगा। व्यवस्थित ढग से रखने का काम तब तक सम्भव नही है, जब तक सामग्री को ठीक से वर्गीकृत न किया जाय।

लोक-साहित्य मे तीन तरह की सामग्री पायी जाती है—(१) पहली तरह की सामग्री वह है, जिसको हम सुनकर कागज पर लिखकर रख सकते हैं या टेप पर रिकार्ड करके, जैसे—कहानियाँ, गीत, मुहावरे आदि।

(२) दूसरी तरह की सामग्री वह हो सकती है, जिसको हम कागज पर लिखकर नही रख सकते, उनका या तो चित्र वनाना पडेगा, या फोटो लेना पडेगा। जैसे—कोहबर का चित्र, विभिन्न अनुष्ठानो पर किये जाने वाले कृत्य और नृत्य। कभी-कभी कुछ लोग अनुष्ठानो मे से लोक-कथा या वार्ता-तत्त्व को लेकर लोक-साहित्य के अध्ययन को पूरा मान लेते हैं, किन्तु देखा यह जाता है कि जब तक इन आनुष्ठानिक क्रियाओ को भी सामने न रखा जाय, लोकवार्ता का अर्थ स्पष्ट नही होता। जैसे—भैयादूज का किस्सा, या ललही छठ का गीत और किस्सा।

(३) तीसरी तरह की सामग्री वह हो सकती है, जिसे हमने भौतिक नाम दिया है। इसमे विभिन्न अनुष्ठानो मे काम मे लाये जाने वाले औजार, मिट्टी के बरतन, मूर्तियाँ, कपडे आदि वस्तुएँ होती है।

हमारे कहने का मतलब यह नही है कि केवल इन्ही तीन खानो मे सारी सामग्री को रखा जा सकता है। काम के दौरान मे हम और भी तरह के वर्गीकरण कर सकेंगे।

हमारे सग्रहालय का कार्य यही समाप्त नही हो जायगा, उसके पश्चात् हमे विभिन्न विभागों का भी वर्गीकरण करना पडेगा। जैसे, लिखित या फीते (टेप) पर अकित सामग्री का सूचीकरण और वर्गीकरण। इसमे हम विभिन्न देशो मे होने वाले कार्यों से भी सहायता ले सकते हैं। इन टेपो तथा लेखो (लिपिबद्ध मौखिक गीत-कहानी आदि) को पुस्तकालय की पुस्तको की भाँति वर्गीकृत और सूचीबद्ध करना होगा।

इस प्रकार की सामग्री को सकलित करके आयरलैण्ड के सग्राहक अपने सग्रहालय मे भेजते हैं। यह सामग्री प्रति सप्ताह करीब १००० पृष्ठ के आसपास होती है। वहाँ पर इस सामग्री को जिल्दो मे बाँधा गया है। इस तरह वहाँ पर इस समय (१९५४) करीब १५०० वँधी चमडे की जिल्दें हैं और हरएक की पृष्ठ-सख्या ६०० से ८०० के वीच है। प्रश्नो को वे अलग से बाँधते हैं, किन्तु यह भी उनके वृहत् सीरीज के ही अग है। पूर्णकालिक सग्रहकर्ताओ द्वारा भेजी गयी

सामग्री, जो प्रति सप्ताह करीव १०० पृष्ठ की होती है, उनको अलग सीरीज मे रखते है। इसी प्रकार, स्कूलो के विद्यार्थियो द्वारा जो सामग्री आती है, उसे भी ये लोग अलग वँधवाकर रखते हैं।

स्वीडन की प्रथा अन्य है। वहाँ पर एक लिफाफे मे एक कागज (Single sheets) भेजा जाता है, और वापस आने पर उसे उसी रूप मे रख दिया जाता है। इसको वाहर भेजने तथा अलग-अलग रखने मे सुविधा होती है। यहाँ पर डायरियो को वँधवाने की चेष्टा की गयी है। इन डायरियो मे सग्रहकर्ताओ द्वारा सग्रह करने का तथा सग्रह स्थल का और व्यक्ति का दिन-दिन का विवरण रहता है। प्रत्येक वात का उल्लेख इसमे रहता है जिससे सग्रहीत साहित्य पर प्रकाश पडता है।

इसी प्रकार, अन्यान्य विभागो का भी वर्गीकरण किया जा सकता है। यदि इस प्रकार का प्रयास भारतवर्ष मे भी किया जाय, तो लोक-सग्रहालयो का सघटन किया जा सकता है। ऐसा करने से अनेक स्थानीय व्यक्तियो मे लोक-साहित्य के अध्ययन की रुचि पैदा की जा सकती है, तथा सकलन का कार्य भी वडे पैमाने पर किया जा सकता है। आगे चलकर यही सग्रहालय लोक-साहित्य को वैज्ञानिक अध्ययन मे सामग्री प्रदान करेंगे।

(३)
सस्कृति और लोकवार्ता

सस्कृति शब्द कितनी ही जटिल वातो और अर्थो का द्योतक है। हम जीवन के सोलह सस्कारो को जानते है। इन सस्कारो से युक्त व्यक्ति सस्कृत कहलाता है, और सस्कृत रूप युक्त तत्त्व है सस्कृति।

हम यह भी कहते हैं कि यह वात हमारे सस्कार मे है। अथवा उसके सस्कार ही ऐसे हैं, कोई क्या करे। इन्ही सस्कारो की परिणति किसी रूप में जब एक स्थायित्व प्राप्त कर लेती है तो वह भी सस्कृति कही जाती है।

उधर एक शब्द सस्कार, सस्कृत, सस्कृति से और आगे "सास्कृतिक" वनकर प्रयोग मे आता है। सास्कृतिक कार्यक्रमो मे हमे वहुधा नृत्य-गीत आदि देखने को मिलते हैं। इसमे भी सस्कार का अर्थ तो विद्यमान है—ऐसी कलाएँ जो हमारे विविध कलात्मक सस्कारो से उत्पन्न होती हैं, या जो हमारी ऐसी प्रवृत्तियो का और आगे सस्कार करती हैं—वे भी 'सास्कृतिक' कही जाती है।

पुरातत्वविद् प्राचीन ऐतिहासिक शोध मे प्राप्त सभी वस्तुओ और प्रसाधनो तथा उपादानो मे सस्कृति के तात्कालिक रूप को अवगत करते हैं। मिट्टी के खिलौने, आभूषण, पूजा-पाठ की वस्तुएँ, मन्दिर तथा भवन निर्माण के रूप-रग, दीवालो-पत्थरो पर खिंची रेखाएँ, भग्न वस्त्रो के अश, सिक्के, आदि-आदि सभी पदार्थ, जो उन्हे किसी प्राचीन ऐतिहासिक खुदाई मे प्राप्त होते हैं, उनके लिए सस्कृति निरूपण के माध्यम बन जाते हैं। स्पष्ट हैं कि वे यह मानते हैं कि उन सब मे सस्कृति की छाप या तत्त्व

विद्यमान हैं। उनके आधार पर वे उनके निर्माताओ के मनोजगत को प्रतिफलित देखते हैं, और उनके विश्वासो का उद्घाटन करते है जिन्हे वे तत्कालीन सस्कृति का अग मानते हैं।

प्रत्येक प्रकार का उत्पादन, प्रजनन, धर्म, अर्थोपार्जन के साधन और विधियो, जादू-टोने, तत्र-मत्र-जत्र, जीवनचर्या के प्रसाधन, विलास वस्तुएँ तथा प्रणालियाँ, कला-कौशल—सभी का सम्बन्ध सस्कृति से है। फलत (एक) सस्कृति मानव की जीवनचर्या की प्रणालियो, उसके साधनो और व्यवहारो से घनिष्ठ सम्बन्ध रखती है, (दो) यह भी स्पष्ट है कि वह एक विशेष काल या विशेष समूह मे सामान्यत सर्वत्र मान्य होती है। वह मात्र किसी एक व्यक्ति की अर्चना या प्रतिभा से सम्बन्धित नही होती। (तीन) यह भी प्रतीत होता है कि सस्कृति समाज मे इस प्रकार व्याप्त होकर एक परम्परा भी स्थापित करती है, क्योकि कारणत भी यही सिद्ध होगा कि सामान्यत समस्त समाज मे एक जीवन प्रणाली के रूप मे ग्राह्य होने के लिए यह अपेक्षित है कि वह (सस्कृति) अपनी परम्परा बनाये। निश्चय ही सस्कृति किसी मानव समाज की दीर्घ साधना की पदार्थ माध्यम से स्थूल परिणति है, जो एक प्रकार से समाज गत मानव की द्वितीय प्रकृति का स्थान ग्रहण कर लेती है और परम्परा के पर्त्त उस पर जमे चले जाते है। मानव के विकास की सीढियाँ इन पर्तों मे निहित रहती हैं। सभ्यता के विकास में ये ऐतिहासिक परम्पराओ के अवशेष अपना अस्तित्व तो बनाये रखते हैं, पर अपना अर्थ खोने लगते हैं। जैसा मानव विज्ञान के अन्य तत्त्वो के साथ होता है, सस्कृति के अवशेष तत्त्व अपना अर्थ भी बदलने लगते हैं। दूसरे अर्थ को ग्रहण करते-करते तदनुरूप कुछ रूप भी बदलने लगते है। इस मानव विकास मे सस्कृति दो प्रवृत्तियो से युक्त होकर चलती है पहली मूल परम्परा के मर्म को सुरक्षित रखने की प्रवृत्ति। दूसरी परम्परा मे सशोधन-सवर्द्धन की प्रवृत्ति। ये दोनो ही परस्पर विरोधी प्रवृत्तियाँ प्रतीत होती हैं। पर लोक मे हमे समन्वय की एक विशेष प्रक्रिया दिखायी पडती है। उस प्रक्रिया का अभी तक पूरी तरह विश्लेपण तो नही हो सका है पर यह सुनिश्चित है कि गरम और ठण्डे बिजली के तारो के साथ-साथ चलते रहने पर वे जब कभी एक-दूसरे का नगा स्पर्श कर लेते है, तो एक चिनगारी या प्रकाश मे परिणत हो जाते हैं, सस्कृति के उन तारो मे एक प्रकार से विविध परम्पराओ के मर्म की विद्युत प्रवाहित है, और वे कभी परस्पर टकरा गये तो वह विद्युत प्रवाह प्रकाश रूपी एक नये परिणाम के रूप मे रूपान्तरित हो जाता है। पर सास्कृतिक तत्त्वो की विशेषता यह है कि प्रत्येक धारा अपने-अपने मर्म को उस नवीन अन्विति मे भी पूर्णत लुप्त नही होने देती।

हमारी आज की भारतीय सस्कृति का इतिहास ऐसे उदाहरणो से परिपूर्ण है। हमारी सस्कृति के आधुनिक जटिल तत्त्व ऐसी शतश धाराओं और परम्पराओ के गुम्फन का परिणाम है। बगाल मे एक व्याघ्र देवता 'दक्षिणराय' की धर्मकथा (मिथ) में दो धाराओं के सघर्प और समन्वय का अद्भुत वृत्त मिलता है। दक्षिणराय

का एक भक्त एक ऐसे स्थान पर पहुँचा जहाँ उसने देखा कि एक तो वडे (गाजी) मियाँ की समाधि वनी हुई है, और उसके पास ही दक्षिणराय का सिर स्थापित है। लोग दोनो की पूजा करते हैं। पूछने पर उन्हे विदित हुआ कि इस भूमि पर अधिकार के सम्वन्ध मे वडे मियाँ और 'दक्षिणराय' मे भयानक सघर्ष छिडा। ऐसा भीषण युद्ध हुआ दोनो मे कि वस प्रलय ही हो चली थी। तभी भगवान प्रकट हुए। ये भगवान आधे रूप मे मुहम्मद थे, आधे रूप मे मोरपख धारी कृष्ण। उन्होने युद्ध रोका, और कहा अव से वडे मियाँ की समाधि के साथ दक्षिणराय के सिर की स्थापना इस क्षेत्र मे हुआ करेगी और लोग दोनो की पूजा करेंगे। इस वृत्त मे दो धाराओ का सघर्ष भी है और उनके समन्वय की प्रक्रिया भी। गुजरात से राजस्थान तक जिस जाहर-पीर या गोगाजी की पूजा होती है उसमे यक्ष, नाग, सिद्ध, नाथ, राजपूत वीर-पूजा तथा मुसलमानी पचपीर परम्परा का एक अच्छा समीकरण मिलता है। जादू के मन्त्रो मे इसी प्रकार मुहम्मद, हनुमान, पीर और गोरखनाथ आदि साथ-साथ आते हैं। अनेक वौद्ध देवी-देवताओ ने मूल प्रेरणा से विच्छिन्न होकर हिन्दू खोल अपने ऊपर चढा रखा है। धामी सम्प्रदाय मे, सहजिया सम्प्रदाय मे तथा ऐसे ही अनेक सम्प्रदायो मे स्पष्टत और कुछ मे अप्रत्यक्षत ऐसे सास्कृतिक समीकरण मिल जाते हैं।

यही दशा उन कलाओ की भी है जिनमे व्यक्ति प्रतिभा को प्रधानता दी जाती है। हमे प्रतीत यह होता है कि कोई कलावैशिष्ट्य जो उक्त प्रतिभाशाली कवि या चित्रकार की देन है, यह वस्तुत उसके व्यक्तित्व का प्रतिफलन है। वडी-वडी अद्भुत अनोखी सूझें उदाहरण रूप मे हमारे सामने आती हैं और हम चमत्कृत होकर उन सूझो के लिए उस कलाकार को श्रद्धापूर्वक नमन करते है।

अभी कुछ दशाब्दियो पूर्व कलाकार की प्रतिभा की इस भव्य देनो को एक मनोविश्लेषणशास्त्री ने कुण्ठा का परिणाम वताया था, इस प्रकार जो कलाकृति आज से पहले प्रतिभा का प्रसाद समझी जाकर पूजित थी, आज उसी के चमत्कार मे हमे मानव के कुण्ठित मन के नृत्य दिखायी पडते हैं। "सब्लिमेशन" या भव्यता की प्रक्रिया से कीचड ही कमल मे परिवर्तित दिखायी पडती है। पर यह व्यक्तिनिष्ठ मनोविश्लेषण है। लोक-मानसिकता का अस्तित्व भी आज स्वीकार किया जाता है, यह भी मानव के अचेतन मानस का सम्भवत दाय मे प्राप्त रूप मे निचला और सवसे पहला स्तर है। इसकी प्रक्रिया हमे इतिहास और पुरातत्व के तथा धर्मगाथाओ के पुरातन से पुरातन और अधुनातन कृतित्व मे होती मिल जाती है। इसके परिणाम-स्वरूप ही सस्कृति की धाराओ का मर्म सुरक्षित रहता है। वह मर्म नये-नये आवरण तथा नये-नये तत्त्वो से अभिमण्डित होता जाता है। यह प्रतिस्थानापन्नता (सवस्टी-ट्यूशन) की प्रक्रिया सस्कृति के सभी क्षेत्रो मे कार्य करती है, यह मर्म के रूप मे प्राय नामान्तर किया करती है। एक उदाहरण लें—

"एक सिद्ध पुरुष (क) एक व्यक्ति (ख) के घर अतिथि हुए। अतिथि ने भोजन (ग) के लिए उस व्यक्ति के पुत्र (च) के माँस की माँग की। आतिथेय ने पुत्र (छ)

मारकर भोजन तैयार किया। उस माँस-भोजन (च) को खाते क्षण सिद्ध पुरुष ने उस पुत्र को आवाज दी। धूल धूसरित वह पुत्र आ खडा हुआ (छ)।"

इस कथा के उस मूल स्थपित (आर्चटाइप) मे क्या-क्या रूपान्तर या प्रति-स्थानापन्नताएँ हुई हैं। इन्हे अगले पृष्ठ द्वारा समझा जा सकता है —

इन तीनो रूपो मे तीन धर्मो ने एक ही कथा को नाम बदलकर ग्रहण कर लिया है। पर अप्रत्यक्ष रूपेण धर्मठाकुर कथा मे वैदिक-पुराण कथा के हरिश्चन्द्र नाम से ही नही वरन् मर्म से भी विद्यमान है। धर्मठाकुर वरुण के रूपान्तर हैं। पुत्र रोहित या रोहिताश्व है। अन्तिम अभिप्रायो मे परिवर्तन स्पष्टत अन्य प्रभावो के आगम के द्योतक है।

कथा मे ये तत्त्व स्पष्ट दीखते है, तत्वविद् ऐसी ही प्रतिस्थानापन्नताएँ सशोधन तथा सम्वर्द्धन किसी भी कला मे देख सकते है। यही प्रक्रिया समस्त कला कृतियो मे देखी जा सकती है। इस प्रक्रिया से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक कलाकृति मे सस्कृति की दाय प्राप्त मानसिकता (इनहैरिटेड साइक) इन दोनो रूपो मे व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत की जाती है। "परम्परा का मर्म>परिवर्तित नाम-स्थान-पात्र>कुछ लोप-कुछ आगम>उद्देश्य विभिन्नता", यह कुछ उस प्रक्रिया का रूप है जो किसी भी सास्कृतिक कला-कृति के विकास मे कार्य करती रहती है। यह भी स्पष्ट है कि यह समस्त प्रक्रिया कला के अभिप्राय-निबन्धन अथवा स्थूल उपादानो मे होती है कला-कृतियो में स्थूल-उपादानो अथवा मोटिफो (अभिप्रायो) के ग्रथन के अतिरिक्त दो आवरण और होते हैं। एक आवरण बौद्धिक वस्तु का होता है, दूसरा सौन्दर्यानुभूति का होता है। इन दोनो का योगदान व्यक्ति-विशेष की प्रतिभा से होता है, पर वह प्रतिभा क्या है? उस प्रतिभा की प्रेरणा का स्रोत प्रकृति-पुरुष (जड-चेतन) की वह रसायन होती है जो उस काल मे जनसाधारण मे पकती प्रतीत होती है।

'जनसाधारण' का विश्लेषण यह सिद्ध करता है कि वह असख्य मानवो का ऐसा समूह है

(१) जो उच्चतम प्रतिभावान् व्यक्ति से लेकर बुद्धिहीन जन तक की रसायन को वहन करता है,

(२) जो अनुदार से अनुदार प्रतिक्रियावादी व्यक्ति से लेकर, परम्परा की जडता से चिपके व्यक्ति से लेकर—घोर उदार और प्रगतिशील व्यक्ति का समीकरण होता है। इससे ही ऐतिहासिक अवशेष जनसाधारण मे सुरक्षित रहते है, और

(३) जो इसके साथ ही समुद्र की भाँति होता है, जिसमे निरन्तर तरगें उठती-गिरती रहती हैं और एक-दूसरे से मिल-जुलकर स्पदित होती रहती हैं—और देश-काल पर फैलती है।

स्पष्ट है कि यह जनसाधारण इन तीनो प्रकृतियो के कारण एक ऐसी रसायन पैदा करता है जिसमे वह शक्ति रहती है जो कला और प्रतिभा के लिए सामग्री

हिन्दू-कथा	सिख-पुराण कथा	धर्म ठाकुर सम्प्रदाय (बगाल का)
(क) भगवान कृष्ण साधु वेश मे ।	(क) गुरुनानक	(क) धर्म ठाकुर (ब्राह्मण रूप मे)
(ख) राजा मोरध्वज	(ख) राजा सिंहलद्वीप	(ख) राजा हरिश्चन्द्र
(ग) कृष्ण ने अपने साथी सिंह के लिए भोजन माँगा	(ग) अपने लिए	(ग) ब्राह्मण ने अपने लिए भोजन माँगा
(घ) पुत्र का कच्चा मांस (सिंह के लिए)	(घ) पुत्र का मांस राधा हुआ	(घ) पुत्र का मांस राधा हुआ
(ङ) राजा रानी दोनो ने आरे से पुत्र को चीरकर सिंह को भोजन दिया (प्रसन्नतापूर्वक)	(ङ) रानी अपने हाथो से काटकर पुत्र को राधती है । (प्रसन्नतापूर्वक)	(ङ) रानी पुत्र का मांस बनाती है
(च) (छ) वही	(च) (छ) वही	(च) (छ) वही
उद्देश्य—परीक्षार्थ (अर्जुन को सन्देह कि उस जैसा भक्त दूसरा नही)	भक्ति की गरिमा की परीक्षा के अर्थ	वचन भग की पूर्ति मे (धर्म) ठाकुर ने राजा रानी को पुत्र का वर दिया इस शर्त पर कि वे उसकी बलि उसे चढा देंगे । राजा वचन भूल गया । अत धर्म ठाकुर आये और पुत्र की बलि इस रूप मे ली ।

भी जुटाती है, प्रेरणा भी प्रदान करती है, और उसको उच्चतर उत्थान के लिए स्तर प्रदान करती है तथा अवकाश का सहारा भी देती है।

यहाँ हमारे पास अभी इतना स्थान नही कि कलाओ और प्रतिभाओ के उदाहरण लेकर उनके विश्लेषण से यह दिखा सकें कि उनमे यह जनसाधारण की तात्विकता किस प्रकार उन तत्त्वो को उभार सकी जो उनकी ही विशिष्ट देन माने जाते हैं। पर यह सत्य है कि उस समस्त विशिष्टता का प्रत्येक तन्तु जनसाधारण की उक्त रसायन का ही परिणाम है। जिस प्रकार किसी भी वृक्ष की उच्चतम उठान तथा उसके निजी स्वाद से युक्त फल भूमि, बीज और वातावरण का ही परिणाम है, उसी प्रकार उच्चतम कलाकृतियाँ भी जनसाधारण के उक्त तीन तत्त्वो की रसायन का परिणाम है। फलत सस्कृति का रूप जनसाधारण से उद्रेकित ऐसे ही व्यक्तित्व से निर्मित होता है, और किसी युग के वे निर्माण के उच्च शिखर आगे चलकर जनसाधारण की सामान्य भूमि बन जाते है, उस पर से पुन नये व्यक्तियो से नये निर्माण के शिखर खडे हो जाते हैं। यदि प्रक्रिया सस्कृति मे निरन्तर विद्यमान रहती है, और सस्कृतियाँ अपनी समस्त जडता के साथ निरन्तर चेतनावान् गति से भी युक्त होकर विकास करती चलती हैं।

(४)

क्षेत्रीय अभ्यास और अध्ययन

एक लोकोत्सव के लोकवार्ता विषयक अनुसन्धान को भी यहाँ श्री परेशचन्द्र शर्मा नाम के एक विद्यार्थी की क्षेत्रीय अनुसन्धान सम्बन्धी पुस्तिका से उदाहरणार्थ उद्धृत किया जा रहा है

एक लोक उत्सव—माघ बिहु

शीर्षक— असम का एक लोक-उत्सव 'माघ बिहु'

स्थान— असम प्रदेश के कामरूप जिलान्तर्गत सोण कुरिहा गाँव।

तारीख— १४-१-६१।

उद्देश्य— लोक उत्सव के अध्ययन।

तैयारी— अपने अध्यापक से अनुमति प्राप्त करके बडे दिन की छुट्टी मे असम गया। माघ बिहु के सम्बन्ध मे आवश्यकीय पठन सामग्री भी इकट्ठी कर ली। बिहु के दो-तीन दिन पहले से ही बिहु स्थल को देखा। जाते वक्त कैमरा, नोटबुक, और पैंसिल साथ ले लिया था।

विवरण— अपने गाँव सोण कुरिहा गाँव से प्राप्त सामग्री — माघ बिहु असम का एक जातीय उत्सव है। पौष और माघ महीने की सक्रान्ति के दिन यह उत्सव मनाया जाता है। यह उत्सव तीन दिनो तक मनाया जाता है। सक्रान्ति से एक दिन पहले से और एक दिन वाद तक। लेकिन इस उत्सव की तैयारी सप्ताहो पहले से होती है। सक्रान्ति के एक-डेढ सप्ताह पहले से

ही गाँव के सभी लोग मिलकर वाँस-फूस (धान के), और पेडो की टहनियाँ किसी एक जगह पर इकट्ठा करते है और सक्रान्ति के दिन सुवह जलाने के लिए मठ (इसे मेजि, पुजी आदि भी कहते हैं) वनाते हैं। वीच मे एक या दो वाँस गाडते हैं (जिसे 'मस्तूल' कहते हैं)। चारो तरफ (कुछ दूर-दूर पर) वर्तुलाकार वाँस का घेरा वना देते हैं और ऊपर की तरफ इसे छोटा कर 'मस्तूल' मे वाँध देते हैं। इसके अन्दर फूस (जिसे 'नारा' कहते है) और टहनियाँ और वाँस की आगेली से भर देते है (आवाज होने के लिए ही आगेली विशेष रूप से देते हैं)। इसके ऊपर 'नरा' से अथवा कदली की सूखी पत्तियो से सुन्दर रूप से इसे ढक देते हैं। इस तरह के तीन से अधिक 'मठ' वनाते हैं। ये छोटे-वडे (लम्वाई मे) भिन्न-भिन्न आकार के होते हैं।

इसके अतिरिक्त सक्रान्ति की पहली रात को रहने के लिए और खाना खाने के लिए वाँस-फूस से एक घर भी वनाते हैं जिसे 'मेलाघर' कहते हैं। उस दिन रात को गाँव के सब लोग मिलकर एक साथ खाना खाते हैं। इसे 'दालभात' या 'लगभात' कहते है। किसी-किसी गाँव में लडके, बूढे और स्त्रियाँ पृथक्-पृथक् 'दालभात' खाते हैं। आज यह प्रथा लुप्त-सी होती जा रही है। हर जिले की जनजाति के लोग धान काटने से पहले ही अर्थात अगहन महीने के शुरू मे ही इस 'मेलाघर' को वनाते हैं। इस काम को पूरा करने के बाद ही धान काटने जाते हैं।

सक्रान्ति के दिन सब लोग नहा धोकर 'मठ' मे आग लगा देते हैं। मठ जलाने के बाद उरद, तिल और चावल अग्नि मे डालकर प्रणाम करते है। ब्राह्मण लोग निम्न प्रकार मन्त्र पढते हैं—

'अग्नि प्रज्ज्वलित बन्दे चातृर्व्वण्य हुताशन।
सुवर्ण वर्णममल ज्योति रूपाय तेनम ॥

इस मठ से जले हुए बाँस के एक-एक खण्ड ले जाकर अपने-अपने खेतो मे रखते हैं। लोगो मे यह विश्वास है कि इस तरह रखने से खेतो की उपज ज्यादा होती है और जिस नारियल का पेड फल नही दे रहा हो, वह पेड इससे ठोकर पाकर फल-वान हो जाता है। 'मठ' की जगह पर 'अण्डे का खेल' भी होता है। [illegible] को इस जगह नामकीर्तन करते हैं। इसके बाद सभी पूज्य व्यक्ति [illegible] खाना खाते हैं। उस दिन लोग 'भात' नही खाते हैं। [illegible] आदि खाते हैं। शाम को निरामिष भोजन करते हैं। [illegible] पर मठ जलाते हैं और खाने-पीने का कार्यक्रम तो माघ [illegible] है। इसलिए इस विहु को 'भोगाली विहु' कहते हैं।

'विहु' शब्द की उत्पत्ति के सम्वन्ध मे आज भी पडित सस्कृतज्ञ लोग इसे ज्योतिविज्ञान से सम्बन्धित मानते है और [illegible]

इसका सम्बन्ध स्थापित करना चाहते है। लेकिन दूसरे लोग इसे ओष्ट्रो एशियाटिक या बडी गोष्ठी का शब्द मानते हैं—आर्य गोष्ठी का नही। इस उत्सव की कार्य पद्धति और जन जाति लोगो के साथ सम्बन्ध देखते हुए हम दूसरे दल के साथ एक-मत होना चाहते हैं।

इम्पीरियल गजेंटियर मे माघ बिहु को 'हारवेस्ट होमे' कहा है। खेत के शस्य आदि इकट्ठा करने के बाद माघ बिहु उत्सव का अनुष्ठान होता है—शायद इसलिए अंग्रेज लेखक इसे 'हारवेस्ट होम' कहते हैं।

Harvest Home के सम्बन्ध मे The Oxford English Dictionary (Vol V H—K, page 103) मे तीन बातें कही गयी है—

1 The fact, occasion or time of bringing home the cant of harvest, the close of harvesting

2 A sort of song of rejoicing on that occasion

3 The festival or merry-making to celebrate the successful homing of the cer

इसके बारे मे Sir J Frazer का कथन निम्न प्रकार है—

An old harvest celebration still observed in some parts of rural England, participated in by one and all who have helped with the harvest and observed on the last day of bringing the harvest home It was frequently also called the Ingathering or Inning and in Scotland was known as the 'Kern'

The last load of Rye, beans or other crop is decked with rubbous, flowers or green boughs and accompanied by men, women and children all singing and shouting The harvest home song sung en route goes something like this—

Harvest home ! Harvest home !
We've ploughed, we've sowed
We've reaped, We've mowed
And brought same home
Every load

The Harvest Queen is either carried home on the wagon or is carried high on a pole by one of the harvesters The load as it enters the farm gate is often met with a volly of apples, and the Harvest Queen and the reaper carrying her are drenched with buckets of water At the feast which ends the day, the head reaper is crowned with a garland and the evening continues with eating, drinking and all kinds of merry-making dance and song This is one of the harvest thanks-giving celebration observed all over the world

(Extracts from The Standard Dictionary of Folklore—Vol I, Page 484)

ही गाँव के सभी लोग मिलकर बाँस-फूस (धान के), और पेडो की टहनियाँ किसी एक जगह पर इकट्ठा करते है और सक्रान्ति के दिन सुबह जलाने के लिए मठ (इसे मेजि, पुजी आदि भी कहते हैं) बनाते है। बीच मे एक या दो बाँस गाडते हैं (जिसे 'मस्तूल' कहते हैं)। चारो तरफ (कुछ दूर-दूर पर) वर्तुलाकार बाँस का घेरा बना देते है और ऊपर की तरफ इसे छोटा कर 'मस्तूल' मे बाँध देते है। इसके अन्दर फूस (जिसे 'नारा' कहते है) और टहनियाँ और बाँस की आगेली से भर देते है (आवाज होने के लिए ही आगेली विशेष रूप से देते है)। इसके ऊपर 'नरा' से अथवा कदली की सूखी पत्तियो से सुन्दर रूप से इसे ढक देते हैं। इस तरह के तीन से अधिक 'मठ' बनाते हैं। ये छोटे-बडे (लम्बाई मे) भिन्न-भिन्न आकार के होते हैं।

इसके अतिरिक्त सक्रान्ति की पहली रात को रहने के लिए और खाना खाने के लिए बाँस-फूस से एक घर भी बनाते है जिसे 'मेलाघर' कहते हैं। उस दिन रात को गाँव के सब लोग मिलकर एक साथ खाना खाते हैं। इसे 'दालभात' या 'लगभात' कहते है। किसी-किसी गाँव मे लडके, बूढ़े और स्त्रियाँ पृथक्-पृथक् 'दालभात' खाते हैं। आज यह प्रथा लुप्त-सी होती जा रही है। हर जिले की जनजाति के लोग धान काटने से पहले ही अर्थात अगहन महीने के शुरू मे ही इस 'मेलाघर' को बनाते हैं। इस काम को पूरा करने के बाद ही धान काटने जाते हैं।

सक्रान्ति के दिन सब लोग नहा धोकर 'मठ' मे आग लगा देते है। मठ जलाने के बाद उरद, तिल और चावल अग्नि मे डालकर प्रणाम करते हैं। ब्राह्मण लोग निम्न प्रकार मन्त्र पढते है—

'अग्नि प्रज्ज्वलित बन्दे चातृर्व्वेष्य हुताशन।
सुवर्ण वर्णममल ज्योति रूपाय तेनम ॥

इस मठ से जले हुए बाँस के एक-एक खण्ड ले जाकर अपने-अपने खेतो मे रखते हैं। लोगो मे यह विश्वास है कि इस तरह रखने से खेतो की उपज ज्यादा होती है और जिस नारियल का पेड फल नही दे रहा हो, वह पेड इसमे ठोकर पाकर फल-वान हो जाता है। 'मठ' की जगह पर 'अण्डे का खेल' भी होता है। दोपहर को इस जगह नामकीर्तन करते हैं। इसके बाद सभी पूज्य व्यक्तियो को प्रणाम आदि करके खाना खाते हैं। उस दिन लोग 'भात' नही खाते हैं। 'चिरा', विविध प्रकार के 'पिठा' आदि खाते हैं। शाम को निरामिष भोजन करते हैं। दूसरे दिन किसी-किसी जगह पर मठ जलाते हैं और खाने-पीने का कार्यक्रम तो माघ के पूरे महीने तक ही चलता है। इसलिए इस विहु को 'भोगाली विहु' कहते हैं।

'विहु' शब्द की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे आज भी पडित लोग एकमत नही हैं। सस्कृतज्ञ लोग इसे ज्योतिविज्ञान से सम्बन्धित मानते हैं और 'विषुवत् रेखा' के साथ

इसका सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं। लेकिन दूसरे लोग इसे ओस्ट्रो एशियाटिक या बड़ी गोष्ठी का शब्द मानते हैं—आर्य गोष्ठी का नही। इस उत्सव की कार्य पद्धति और जन जाति लोगो के साथ सम्वन्ध देखते हुए हम दूसरे दल के साथ एक-मत होना चाहते हैं।

इम्पीरियल गर्जेटियर मे माघ विहु को 'हारवेस्ट होमे' कहा है। खेत के शस्य आदि इकट्ठा करने के बाद माघ विहु उत्सव का अनुष्ठान होता है—शायद इसलिए अग्रेज लेखक इसे 'हारवेस्ट होम' कहते हैं।

Harvest Home के सम्बन्ध मे The Oxford English Dictionary (Vol V H—K, page 103) मे तीन बातें कही गयी है—

1 The fact, occasion or time of bringing home the cant of harvest, the close of harvesting

2 A sort of song of rejoicing on that occasion

3 The festival or merry-making to celebrate the successful homing of the cer

इसके बारे मे Sir J Frazer का कथन निम्न प्रकार है—

An old harvest celebration still observed in some parts of rural England, participated in by one and all who have helped with the harvest and observed on the last day of bringing the harvest home It was frequently also called the Ingathering or Inning and in Scotland was known as the 'Kern'

The last load of Rye, beans or other crop is decked with rubbous, flowers or green boughs and accompanied by men, women and children all singing and shouting The harvest home song sung en route goes something like this—

Harvest home ! Harvest home !
We've ploughed, we've sowed
We've reaped, We've mowed
And brought same home
Every load

The Harvest Queen is either carried home on the wagon or is carried high on a pole by one of the harvesters The load as it enters the farm gate is often met with a volly of apples, and the Harvest Queen and the reaper carrying her are drenched with buckets of water At the feast which ends the day, the head reaper is crowned with a garland and the evening continues with eating, drinking and all kinds of merry-making dance and song This is one of the harvest thanks-giving celebration observed all over the world

(Extracts from The Standard Dictionary of Folklore—Vol I, Page 484)

इस तरह देखा जाता है कि असम का माघ विहु 'हारवेस्ट होम' की तरह ही एक उत्सव है। इसका भी कृषि के साथ सम्बन्ध है। असम के किसान माघ महीने से पहले ही खेत की चीजो को इकट्ठा करते हैं और दो महीने के लिए इन्हे आराम मिलता है। मन मे कोई बन्धन नही रहता है। इसलिए कवि भी गा उठता है—

'माघत मुकलि मन, पिठा खोवा दिन'

(माघ महीने मन मुक्त है,—'पिठा' खाने का ही समय है)

लेकिन इस उत्सव का महत्त्व और एक दृष्टि से भी है। अग्नि पूजा के साथ भी इसका सम्बन्ध है।

इसके सम्बन्ध मे अध्यक्ष हेम बरूवा (एम० पी०) का कथन है—प्रज्ज्वलित अग्नि उपासना—आर्य सस्कृति का अवशेष है। सामाजिक जीवन मे अग्नि का इतिहास खोजने के लिए हमे प्राचीन युग मे लौट जाना पडेगा। आदिम समाज मे अग्नि का एक विशेष स्थान था। इसका व्यावहारिक मूल्य भी था। अग्नि को केन्द्र करके पालित माघ विहु को इस दृष्टिकोण से देखा जा सकता है।

आदिम समाज मे कृषि को स्थान मिलने से पहले वन्य पशु शिकार ही मनुष्यो का एकमात्र उपाय और अवलम्वन था। मनुष्य ने तब प्रकृति के अन्तस्तल मे शस्य सीचकर जीविका अवलम्वन करने का पथ साफ नही किया था अर्थात मानव इतिहास मे तव तक कृषि युग या अर्थनीति का अभ्युत्थान नही हुआ था। शिकार युग की तुलना मे कृषियुग की सस्कृति का स्वरूप पृथक् होना स्वाभाविक है। उदाहरण के रूप से हम विहु उत्सव को ले सकते हैं। हमारा वहाग विहु की तरह 'यामा' निकोवर द्वीप पुज के बसन्तोत्सव कृषि युग की देन है। मनुष्य के व्यावहारिक जीवन की अभिज्ञता ही सस्कृति को गढ देती है। यह जिस तरह सामाजिक जीवन मे सस्कार को जन्म देता है उसी तरह सामाजिक आर्ट पद्धति को भी जन्म देता है। कृषि युग की सस्कृति शिकार युग की सस्कृति से पृथक् होने पर भी दूसरे प्रकार के दो एक निदर्शन प्रथम प्रकार मे अनजाने से रह जाना अस्वाभाविक नही है। माघ विहु के ऐतिह्य का विश्लेपण करने से इसकी सत्यता मालूम होगी। 'मेजि' की सामूहिक आग ही इसकी साक्षी है। शिकार युग मे जीविका का सम्वल दो ही थे—(१) शिकार के लिए विविध अस्त्र, (२) एक सामूहिक अग्निस्थली। उस समय समाज क्षुद्र यूनिट मे बँटा हुआ था। एक-एक वश के लोग मिलकर ही एक समाज स्थापन करते थे। साधारण व्यावहारिक उद्देश्य के अतिरिक्त 'आग' के दो सामूहिक उपयोग भी थे—और दोनो आत्मरक्षामूलक थे। (१) ठण्ड से सभी की आत्मरक्षा, (२) उस समय वसे हुए वृहत् जन्तुओं से अपने को वचाना। इसलिए ही इस अग्नि को केन्द्र करके आदिम सस्कृति अकुरित होने के लिए वाध्य थी। नृत्य गीत, ललित कला आदि सस्कृति के सभी अगो का जन्म इस अग्निस्थली से ही हुआ।

असम के पहाडी जनजाति समाज मे आज भी 'जुइशाल' (जहाँ स्थायी रूप से आग रखी जाती है) का स्थान बहुत ऊँचा है। उदाहरण के रूप मे 'आवर' जन-

जाति समाज को ले सकते हैं। आवर ममाज मे मण्टाघर नाम मे एक सामूहिक अनुष्ठान है। हरएक मण्टाघर मे कम मे कम सोलह-सत्रह 'जुइशाल' रहने के प्रमाण मिलते हैं। ये 'जुइशाल' उन लोगों के सामाजिक जीवन के अग माने जाते हैं। आज भी वे उनके लोकजीवन के केन्द्रस्थल हैं। प्राचीनकाल मे पहाड और समतल की सस्कृति का आपस मे आदान-प्रदान होता था। आज की 'मेजी' की आग उस आदान-प्रदान का अन्तिम स्मृति चिह्न है। आदिम शिकारी जीवन मे प्रचलित यह सामूहिक अग्निस्तूप के कृषिजीवन मे प्रवर्तित यह स्फुलिंग है। यहाँ हम वेद उपनिषद् युग मे प्रचलित उन्नत आर्य समाज की अग्नि उपासना की बात भी ले सकते हैं। आर्य समाज के मुख्य सम्पद, होम, याग यज्ञ इत्यादि अग्नि को केन्द्र करके ही सजीवित होते थे। दूसरी तरफ समाजतत्व के पण्डितो ने यह प्रमाणित कर दिया है कि गीत, कविता, नृत्य कला आदि सस्कृति के सभी अग उपाग आदिम युग मे अग्नि को लेकर ही गढ लिये जाते थे। इसी तरह हम कह सकते हैं कि आदिम वन्य समाज मे अग्निस्तूप को मन्त्र ध्वनि से सशोधित कर आर्य समाज ने उच्च पर्याय के सास्कृतिक स्तर तक रूपान्तरित किया था।

माघ बिहु के 'मेजि' हैं अतीत के सरल, सहज, कृषि जीवनेर उल्लेखनीय प्रकाश। हो सकता है इस प्रकाश मे आर्य समाज के आध्यात्मिक जीवन का अधिक सम्मोहन न रहा हो। न होना अस्वाभाविक नही कह सकते हैं। इस पार्थक्य के मूल को अगर हम भूल जायें तो बहुत बडी गलती होगी। एक मे है उपासना का गाभीर्य और दूसरे मे उत्सव की मादकता।

(४) इस तरह के कथन के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि—

(१) वर्तमान असम का जातीय उत्सव माघ बिहु आर्य और प्राक्आर्य सस्कृति के समन्वित सम्पद है। इसमे दोनो का समन्वय हुआ है।

(२) चावल आदि देकर नहा धोकर 'मेजि' को प्रणाम करना, आर्य अर्चना पद्धति की चीज है।

(३) रात को जागकर 'मेजि' के पास 'मेला घर' मे खाना खाकर आमोद-प्रमोद करना—जनजातीय युग की बात है।

(४) 'मेला घर' और 'दालभात'—दोनो असम के समाज मे ऐक्य के बन्धन को दृढ करते हैं।

भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तो मे इसे विभिन्न प्रकार से मनाया जाता है।

तुलनात्मक अध्ययन

(१) असम के सीमा प्रान्त बगदेश मे 'मकर सक्रान्ति' को 'पौष पार्वण' के रूप मे मानते हैं। प्रात स्नान के बाद 'वास्तु पूजा' और 'हेतु पूजा' (सूर्य पूजा)—इस दिन की दो आनुष्ठानिक क्रियाएँ हैं। इसके अतिरिक्त उस दिन गो पूजा भी करते हैं। असम मे गो पूजा वैशाख के सक्रान्ति के दिन करते हैं। उस दिन गायो

को 'पिठा' खिलाते हैं और पिसा हुआ चावल घोलकर सीलम अथवा उस तरह की किसी चीज से गायो के शरीर मे 'छाउ' लगाते है। इससे गायो का मगल होता है। यह जन विश्वास है। असमीयाओ की तरह वे भी दिन मे भात नही खाते है। 'पिठा' आदि मिठाइयाँ खाकर ही विताते है। 'तील पिठा' खाना जरूरी है। रात को जगह-जगह पर कीर्तन भजन होते हैं।

(२) विहार मे सामूहिक रूप से अनुष्ठान नही करने पर भी समर्थ लोगो मे प्रात स्नान के वाद ब्राह्मणो को निमन्त्रित करके पूजा-पाठ और तिल, चावल, घी से होम करवाते हैं। पूजा के अन्त मे तिल के लड्डू के अन्दर गुप्त रूप से सोना, रुपया, पैसा देकर वह लड्डू पुरोहित को दान करते हैं। इसे गुप्तदान कहते हैं। शाम को मन्दिर मे खिचरी पकाकर विग्रह को अर्पित करते है। उसके वाद सभी उसे खाते हैं। दिन मे वे लोग भी 'भात' या रोटी नही खाते हैं।

(३) बिहार वासियो की तरह राजस्थान मे भी इस दिन को मानते हैं। विहार वासियो के कार्यो के अतिरिक्त उस दिन गाय-भैंस के सीग मे रग लगाते और मोरपख बाँध देते है। असम वर्ग की तरह उस दिन वे भी खाना नही खाते हैं। असमिया के 'माघी पता' माघ महीने मे वासी भात पानी मे रखकर खाया जाता है—कहावत है—माघर पन्ता, वाघर वल अर्थात माघ महीने मे पहता (पानी दिया भात) खाने से शेर के समान बलवान हो जाता है। वहाँ की तरह राजस्थान के लोग भी बाली सटी परठा खाने की प्रथा है। पजाव वाले भी प्रात स्नान के वाद पूजा कीर्तन और सभवस्थल मे दान-दक्षिणा भी करते हैं। छोटे लोगो द्वारा बडो की सेवा करने की प्रथा यहाँ तो आज लुप्त होने जा रही है। असम की तरह मेला घर या मेजि नही जलाने पर भी रात को लकडी जलाते हैं। कुछ लोग चर्खे को जलाते हैं, कुछ लोग अग्नि मे होम भी देते हैं।

(४) उत्तर प्रदेश, माद्राज और केरल मे प्रात स्नान के वाद देव-मन्दिर मे पूजा-पाठ, नाम-कीर्तन आदि करते हैं। उत्तर प्रदेश मे माघ महीने मे मकर सक्रान्ति को अग्नि मे तिल की आहुति दी जाती है और यह कहावत है कि 'तिल चटके जाडे सटके'। तिल के लड्डुओ का दान तथा खिचडी का दान किया जाता है। खिचडी ही खायी जाती है।

(५) मालावार मे उस दिन प्रात स्नान के वाद फूल चन्दन देखने से पुण्य और मगल होता है—ऐसा विश्वास है। पूजा-पाठ, नाम-कीर्तन, दक्षिणा आदि का भी प्रचलन है।

(६) नेपाली लोग गगासागर के सगम मे मकर स्नान करते हैं। प्रात स्नान के वाद देव-पूजा, हरि नाम और होम आदि भी करते हैं। कुछ लोग ब्राह्मण को 'गोदान' भी करते हैं। प्रणाम करने की प्रथा यहाँ भी है। ये दिन मे उपवास करते हैं और रात को दही चूडा आदि खाते हैं।

—

इस तरह देखा जाता है कि माघ विहु एक धर्म केन्द्रिक अनुष्ठान है। फिर भी अग्नि पूजा के साथ इसके सम्बन्ध मे हम 'ना' नही कर सकते है। उत्तर प्रदेश मे होली के दिन लकडी जलाने की प्रथा के साथ भी इसका कोई सम्बन्ध रहा होगा। तुलनात्मक अध्ययन से इस पर प्रकाश पड सकता है।

लोक उत्सव

जनजीवन मे सजीवनी शक्ति सचार हेतु विभिन्न उत्सव मनाये जाते हैं। इन उत्सवो के पृष्ठाधार लोक विश्वास ही हैं। सस्कारो के साथ उत्सव तो मनाया ही जाता है इसके अतिरिक्त विभिन्न ऋतुओ मे विभिन्न व्यक्ति के मृत्यु दिवस पर या जन्म दिवस पर भी उत्सव मनाया जाता है। सामान्य तौर पर हम लोकोत्सव के निम्न प्रकार से भेद कर सकते है—
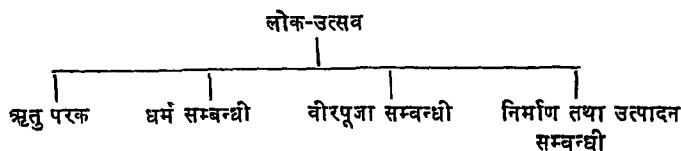
(१) ऋतुपरक उत्सवो के अन्तर्गत 'वसन्तोत्सव' आदि उत्सव आयेंगे। विभिन्न ऋतुओ मे उत्सव मनाने की प्रथा आदिम युग से चली आ रही है। लेकिन इसका भी सम्बन्ध दूसरे प्रकार के उत्सवो के साथ है (जैसे उत्पादन उत्सव के साथ)।

(२) धर्म सम्बन्धी उत्सवो के अन्तर्गत देवी देवताओ की पूजा के समय के उत्सव, वृक्ष-पूजा आदि के उत्सव और सस्कार आदि के उत्सव आयेंगे।

(३) वीर पूजा सम्बन्धी उत्सव किसी वीर की मृत्यु, वार्षिकी या जन्म जयन्ती के अवसर पर मनाया जाता है। जैसे जाहरपीर का उत्सव।

(४) कृषि उत्पादन के सम्बन्ध मे अर्थात बीज बपन और उपज के सग्रह के समय मे भी उत्सव मनाया जाता है। इसके अतिरिक्त दूसरे प्रकार के निर्माण और उत्पादन के समय के उत्सव भी इसके अन्तर्गत आयेंगे।

माघबिहु कियदेश मे धार्मिक उत्सव है और कियदेश मे उत्पादन सम्बन्धी उत्सव है।

(५)
लोकवार्ता विषयक साहित्य

लोक कहानियों पर

अब तक लोक-साहित्य पर क्या-क्या कार्य हो चुका है, अध्ययनकर्ता और अनुसधित्सु को इसका ज्ञान भी होना चाहिए। इस अध्ययन का उपयोग भी वह स्वय कर सकता है। हिन्दी मे अब तक ऐसे दो ग्रथ प्रकाशित हो चुके हैं जिनमे ऐसे ग्रथो की काफी बडी और उपयोगी सूची दी गयी है। एक है डा० श्याम परमार का 'भारतीय लोक साहित्य' और दूसरा है डा० कृष्णदेव उपाध्याय का ग्रथ 'लोक साहित्य

की भूमिका'। हम यहाँ तो डब्ल्यू, नारमन ब्राउन के 'हिन्दू लोक-कहानियो का साहित्य' शीर्षक निबन्ध ज्यो का त्यो दे रहे हैं। यह १९१९ तक का साहित्य है। हमारा उद्देश्य एक तो यह है कि १९१९ तक के लोक कथा विषयक साहित्य का पूर्ण परिचय मिल जाय, दूसरे यह भी कि पाठको को प्रेरणा मिले कि वे इसी प्रकार की एक पूर्ण सूची १९१९ के बाद आज तक की प्रस्तुत कर सकें। 'सम्मेलन पत्रिका' के एक अक मे डा० महादेव साहा ने 'बगाल' के लोक साहित्य पर एक पूर्ण सूची प्रस्तुत की थी। वह भी एक आदर्श कार्य है।

दूसरी सूची हमने अपने एक विद्यार्थी से तैयार करायी है उसे दे रहे हैं। उसे पूर्ण नही कहा जा सकता है, पर विविध पत्रो से उसे प्रस्तुत किया गया है, और उससे भी किसी पाठक को प्रेरणा मिल सकती है कि वह पत्र-पत्रिकाओ से भी एक अनुसधानोपयोगी पूर्ण सूची तैयार करे।

(क)

जरनल ऑव अमेरिकन ओरियटल सोसायटी
खण्ड ३९ वर्ष १९१९ से उद्धृत
हिन्दू लोक कहानियो का साहित्य
१९१९ ई० तक

लेखक

डब्ल्यू० नारमन ब्राउन

पेन्सिल्वेनिया विश्वविद्यालय

1 ALWIS, C Sinhalese Folklore Orientalist 1, p 62

2 ANDERSON, J D A collection of Kacha-ri folk-tales and rhymes, intended to be a supplement to the Rev S Endle's kacha-ri Grammar, Shillong Assam Secretarial Printing Office 1895 16 stories

3 ARACCI, A K Katha-lankar-ya (50 tales) mentioned by F W de Silwa Orientalist 2, p 181 (literary in character)

4 BACON, T The Oriental Annual, Tales, Legends, His Romance, Vols 2, London C Tilt & Philadelphia, Carey and Hart 1840, contains a few folk-stories

5 BANERJI, K N Popular Tales of Bengal Herald Printing Works, 1905 14 stories

6 BARLOW See M'Nair and Barlow

7 BARNES, A M The Red Miriok with Span folklore stories collected by W C Griggs Philadelphia American Baptist Publications Society 1903

8 BEAMES, J Lake legend of Central Provinces, Indian Antiquary, 1 p 190

9 BENNETT, W C A legend of Balrampur, Indian Antiquary, 1 p 143

10. BODDING, O See Bompas, C H

11 BOMPAS, C H Folklore of the Santal Parganas Collected by Rw O Bodding and tr by C H Bompas London, D Natt 1909 (185 Santal stories, appendix also with 22 stories from Kolhan) Most valuable Indian collection

12 BURGERS, J A legend of Snakeworship from Bhavnagar Kathiawad Indian Antiquary I p 6 in A legend of Ketu-r In Ant 9, p 80

13 BUTTERWORTH, H Zig Zag Journeys in India, or the Autipodes of the Far East A collection of Zenana Tales Boston Estes and Lauriat, 1887, 10 tales collected by the author, also 2 from Frer's Old Deccan Days, on Vikramacharita's frame story

14 CAMPBELL, A Santal Folktales Pakhuria, Bengal Santal Mission Press 1891, 23 tales

15 CHILLI, SHARK, Folktales of Hindustan Allahabad Panins Office, 1st ed 1908, 2nd ed 1913 11 stories

16 CHITTANAT, M A Folktales of Central Provinces, In Ant 35, p 212 Version of the Legend of the Clever Builder, Ind Ant 40, p 182

17 CHRISTIAB, J Behar Proverbs—Classified and arranged according to subject matter, translated into English with notes and giving Tales and Folklore on which they are founded London, Kegan Paul, Trench, Tribner and Co 1891, 16 stories

18 CLOUGH, E R While sewing Sandals Tales of a Telugu Pariah Tribe, New York E H Revell Co 1899, 10 legends

19 COCHRANE, W W See Milne, Mrs L, and

20 COLE, F T Santali Folklore Indi Ant 4, p 10, 257 2 stories

21 COREA A E R Sinhalese Folklore Orientalist 2 p 102

22 CROOKE, W Folk-Tales of Hindustan Indian Ant 21, pp 185, 277, 341, 22, p 21, 75, 289, 321, 23, p 78, 24, p 272 11 stories
An Indian Ghost Story Folklore 13, p 280 A version of the Guga Legend Ind Ant 24 p 49
Folktales of Northern India Ind Ant 35 pp 142, 179, 23 Fables and Fairy Tales See also M'Nair and Barlow See also Rouse, W H D

23 DAMANT, G H Bengali Folklore Ind Ant 1 pp 115, 170, 218, 285, 344, 2 pp 271 357, 3 pp 9, 320, 342, 4 pp 54, 260, 6 p 219, 9 p 1 22 Fables and Fairy Tales

24 DAMES, M L Balochi Tales, Folklore 3, p 517, 4 pp 195, 285, 518, 8, pp 77 20 stories Popular Poetry of the Baloches 2 vols vol 1 Trans vol 2 Text being vols 9 and 10 of the Royal Asiatic Society's Monographs, London 1907 65 Legends of all sorts

25 DAVIDSON, J Folklore of Chitral Ind Ant 29 p 246 10 Fables, Text and Translation

26 DAY L B Folk-Tales of Bengal, London, Macmillan & Co Ist ed 1883, 2nd ed 1912, 22 stories

27 DEVI, S The Orient Pearls , Indian Folklore, London, Macmillan & Co , 1915 28 stories

28 DONALD, D Some Pushtu Folk-Tales J A S of Bengal, new series, 3 pp 471-473

29 D'PENHA, G F Folklore of Salsette Indian Ant 16 p 327, 17 pp 13, 50, 104 , 19 p 314 , 20 pp 29, 80, 111, 142, 183, 192, 332 , 21 pp 23, 45, 312, 374 , 22 pp 53, 243, 276 , 306, 23 p 134 , 26 p 337 , 27 pp 54, 82, 304 21 stories of native Christians

30 DRACOTT, A E Simla Village Tales, or Folk-Tales from Himalayas London John Murray's 1906 57 anecdotes and Tales etc

31 DUBOIS, ABBE J A Moeurs, institutions et Ceremonies des peuples del Inde, Paris, 1825—most stories from Panchtantra, taken from some book

32 ELLIOTT, A C & Rose H A The Chulies or Rat children of Punjab and Shah Daulat Ind Ant 38, p 27

33 ENDLE, S The Kacharis, London, MacMillan & Co 1911, 7 stories

34 FLEESON, N K Laos Folklore of Farther India New York Fleming H Revell Co 1899, 48 stories

35 FOLKLORE from Central India and Rajputana Allahabad 1897 An unverified title

36 FRANCKE, A H The Paladins of the Kesar-saga Sagas from lower Ladakh J A S B New series 2, pp 467-490, 3 pp 67, 261

37 FRERE, M Old Deccan Days, or Hindoo Fairy Legends, current in Southern India, London John Murray, Ist ed 1868, 2nd ed 1870, 3rd ed 1881 24 tales etc

A Danish tr made by L Matlake Hinduiske Eventyr Copenhagen, 1868

A German tr by A Passow—Ma rchen aus der indischen vergan-genheit Jena, H Costemoble No date

38 GOONETILLEKE, J A Sinhalese Folklore Orientalist 1 pp 117, 230 Two stories

39 GOONETILLEKE, S J Sinhalese Folklore, Orientalist 1 pp 39, 136 , 2 p 150, 3 stories

40 GOONETILLEKE, W Sinhalese Folklore Orientalist 1 pp 35, 56, 86, 121, 131, 180, 190, 2 p 41 8 stories
Tamil Folklore Orientalist 2, p 22

41 GORDON, E M Indian Folktales (vii life in Bilaspur Central Prov), London E Stock 1st ed 1908, 2nd ed 1909 only 7 short stories Title misnomer

42 GRIERSON G A Two versions of the Song of Gopi Chand J A S B 54, p 35

43 GRIGGS, See Barnes A M

44 GURDON, P R T The Khasis London D Natt 1907 15 legends

45 HAHN, F Kurukh Folklore in the Original Calcutta Bengal Secretariat Book Depot 1905
Blicke in die Geisteswelt der heidnischen Kols, Sammlung von Sagen, Ma rchen und Liedern der Oraon in Chota-Nagpur Gu terslok C Bertelsmann 1906 A tr of the preceding containing 52 stories

46 HAUGHTON, H L Sport and Folklore in the Himalayas London E Arnold 1913, 15 stories

47 HOWKES, H P An Indian Legend Madras Journal of Literature and Sciences 20, p 274

48 HADSON, T C The Naga Tribes of Manipur London MacMillan and Co, 1911 5 short stories

49 HOUGHTON, B Folktales, Ind Ant 22, pp 78, 98, 284, 23, p 26 10 stories

50 HOWELL, E B Border Ballads of the North-West Frontier J R A S 1907 pp 791-814

51 HUTTON, J H Folktales of thè Anga-mi Nagas of Assam Folklore 25, p 476, 26, p 82 28 stories

52 JACOBS, J Indian Fairy Tales London D Natt 1892 29 stories—from Folk-collections, Panchtantra, Jatakee & Katha Saritsega

53 JAMES, K Sinhalese story in J R A S Ceylon Branch, re-published by J P Lewis Orientalist 1 p 190

54 JETHABHAI, G Indian Folklore Liwdi Jaswatsingh ji Press, 1903

55 KINCAID C. A Deccan Nursary Tales, or Fairy Tales from the South London MacMillan & Co 1914 20 Tales
The Tale of Tulasi Plant and other stories revised Ed Bombay 1916 An unverified Title

56 KINGSCOTE, Mrs H and PANDIT NATESA SASTRI Tales of the Sun, London W H Allen 1890 26 stories

57 KNOWLES, J H A Dictionary of Kashmiri Proverbs and Sayings Bombay, Fducation Society's Press Calcutta, Thacker Spink and Co London
Tribner and Co 1885 91 fables etc
Folktales of Kashmir London Tribner & Co 1st ed 1888, 2nd ed 1893 64 anecdotes etc Out of these 9

appeared ın Indı Ant 14, pp 26, 239, 15, pp 74, 96, 157, 299, 328, 16 pp 66, 185, 219
Kashmır Storıes Orıentalıst 1, pp 560, 284

58 KULASEKHARAM R Tales of Raja Bırbal Madras G A Natesan & Co no date, but ın press at present 24 storıes

59 LANG A The Olıve Faıry Book, London Longmans, Green & Co 1907 10 storıes of these from Indıa mostly Panjabı

60 LEITNER, C W Dardu Legends Ind Antı, 1 p 84

61 LEWIN, T H Progressıve Exercıses ın Lushaı Grammar Calcutta 1891 (contaıns some tales also)
The Wıld Races of South-Eastern Indıa London W H Allen & Co 1870 3 legends & 1 faıry Tale

62 LEWIS A Bılochı storıes Allahabad 1885 An unverıfied Tıtle

63 LEWIS, J P Sınhalese storıes Orıentalıst 2, p 149 2 storıes

64 MACULIFFE, M Legend of Mıra-Ba-ı, the Rajput Poetess *Indıa Antı 32, p 329*

65 MACKENZIE, D A Indıan Faıry Storıes, London Blackıe 1915 23 storıes Worthless for folklore students no source mentıoned, and storıes changed by edıtor

66 MAHESH CHANDRA DATTA Folklore ın Bengal Calcutta 1893, An unverıfied Tıtle

67 MALYON, F H Some Current Pustu Folkstorıes, Memoırs of A S B Vol 3, Calcutta, 1913, An unverıfied tıtle

68 MANWARING, A Marathı Proverbs Oxford Clarendon Press 1899 1910 proverbs wıth 26 storıes

69 MARTINENGO—CESARESCO, CONATESS, E A story of the Koh-ı-Nur Folklore Journal 4, p 252

70 MASSON, C Legends of the Afghan Countrıes, ın verse, London J Madden 1848 An unverıfied tıtle

71 MAXWELL, G In Malaya Forests London Blackwood, *1907*, sıx storıes

72 MAXWELL, W E Raja Donan, a Malay Faıry Tale Folklore Journal 6, p 134, *reprınted from* J R A S Straıts Branch

73 M'CULLOGH W Bengalı Household Tales, London and New York, Hodder Stoughten & Co 1912 28 tales wıth reference to parallels

74 MILNE, Mrs L and COCHRANE, W W The Shans at Home London Murrey, 1910 26 storıes

75 M'NAIR MAJ, F and BARLOW, T L Folktales from the Indus Valley, edıted by W Crooke Bombay 1902 18 short tales, first publıshed ın Indı Antı 29, pp 356, 390, 399
Oral Tradıtıon from the Indus Brıghton R *Gosden 1908*, A republıcatıon of the above

76 MUKHARJI R S Indian Folklore Calcutta Bharat Mihir Press, 25 Rey Bagan st 1904 21 fables etc

77 MUKHOPADHYAYA RAM SATYA Indian Folklore Calcutta, R K Dass, 1906 An unverified Title

78 NARASIMMIYENDOR, V N The Legend of Rishya Sringas Indi Anti 2, p 140

Legend relating to Grey Pumpkins Indi Anti 3 p 28

79 NATESA SASTRI PANDIT S M Folkore in Southern India Ind Anti Vols 13 14 15 16, 17 18, 19, 20, 23 24, 25, 26, 27 Some of these tales published as Folklore in Southern India, compiled and tr by Pandit Natesa Sastri 4 parts Bombay, Education Society Press 1884—1893 24 of these in Kingscote's Tales of the Sun Authenticity as oral Tales is however doubtful

Indian Folktales, Madras Guardian Press 1908

Tales of Teunali Raman

80 NEOGI, D N Tales, sacred and secular Calcutta Mukhopadhyaya and Sons, 46, Bechu Chatterji St 1912 First half has 20 folkstories

81 NORTH INDIAN NOTES and QUERIES Periodical Many stories

82 O'CONNOR, W F T Folktales from Tibet London Hurst and Blackett 1907 22 Fables and Fairy Tales

83 ORIENTALIST This periodical in 4 volumes

84 PANABOKKE, T B Sinhalese Folklore Orientalist 2 p 174, 2 stories

85 PANTALU, G R Subramiah Notes on the Folklore of the Telugu Ind Ant 26 pp 25 55, 109, 137, 167, 223, 252, 304, 28, p 155, 32 p 275, 43 Tables some literary prototype

Folklore of the Telugus Madras G A Natesan and Co Esplanede 1905 Collection of above

86 PARKER, H Village Folktales of Ceylon 3 vols London Luzac and Co 1910—1914 266 stories with varicents, best collection of Indian folk-Tales Sinhalese Folklore Orientalist 2 pp 26, 53 (These included in above)

87 PEDLOW M R Folklore of Central Provinces, Indi Anti 28 p 302

88 PERERA, A A Sinhalese Folktales and Legends Indi Anti 33 pp 229, 232, 17 Legends & Stories

89 PHILLIPS, J L Folklore of the Santals Orientalist 1 p 261, 2, p 24, 3 stories

90 PIERIS, H A Sinhalese Folklore, Orientalist 1 pp 134, 213, 2 stories

91 PLAYLAIR, A L The Goros, London, D, Nutt, 1909, 7 stories

92 PASTANS, Mrs M Cutch London, Smith, Elder & Co 1839 *9 stories*

93 RAMABHAI (under initials R D M) Four religious Legends, Indi Anti 16 pp 154, 261 288, 291

94 RAMASWAMI RAJU, P V Indian Fables, London S Sounenschein & Co 1st ed 1887, 2nd ed 1901, 106 fables
The tales of the sixty Mandarius London and New York Cassele & Co no date, but about 1886 60 stories from Nay lands, 11 from India

95 RAO C HAYAVADANA Tales of Kamati Wit and Wisdom Madras G A Natesan & Co, 1907 24 stories New Indian Tales Madras, G A Natesai & Co. 1910 19 stories
Tales of Mariada Maman Madras G A Natesai & Co An unverified Title
The son-in-law Abroad and other Indian folktales Madras G A Natesai & Co An unverified Title

96 ROSAIRO, A de Tamil Folklore Orientalist 2 p 183

97 ROSE, H A Legends of Mohan Bari Ind Anti 37 p 110
Mohiye ki Har or Bar , , 37 p 299, 38 p 40, 69
Ballod of the Haklas of Gujrat in the Panjab, Ind Anti 37 p 209
Legend of the Khan Khwas & Sher Shah, the Changalla (Mughal) at Delhi, Ind Anti 38 p 113
See also Elliott and Rose

98 ROSE, H A and TEMPLE, R G See Temple R C *Legends* of the Panjab

99 ROUSE, W H D The Talking Thomsh, and other Tales from India, collection by W Crooke and retold by W H D Rouse, London, J M Dent & Co Ist ed 1899 2nd ed 1902, 43 beast fables, first appeared in North Indian Notes and Queries

100 ROY, S C The Mundas and their Country Calcutta, City Book Co, Thacker Spink & Co 1912 Appendix has 2 Cosumgonical & Hist Legends of Mundas

101 SAUKUNNI Folklore in Malabar Calicut 1902 An unverified title

102 SARMA, PANDIT, B D *A folktale from Kumaon, folklore 8,* p 181

103 SENANAYAKA, A M A collection of Sinhalese Proverbs, Maxims Fables etc found in the 'Atita-Vakya-Dipaniya' tr into English Reviewed by H White in the Orientalist 1, p 236 and listed in Folklore Record 4, p 201

104 SHAKESPEAR J Folktales of the Lushais and their Neighbours, Folklore 20 p 388 14 stories

105 SHIPP, J The K'hawni Kineh-walla, London 1832 An unverified title

106 SINHALESE Folklore 2 unsigned stories under this title from Literary supplement to the Examiner Orientalist 2, p 147

107 SIVA SANKARAM, T Telugu Folklore, Ind Ant 35, p 31

108 SKEAT W W Malay Magic, New York & London Mac-Millan & Co , 1901, 50 stories
Fables and Folk-tales from an Eastern Forest Cambridge University, Pass 1901 26 stories

109 SMEATON, D M The Loyal Kareus of Burmah London, Kegan Paul, Trench & Co 1887, 1 story of a cheat, 8 fables, 2 legends

110 SRIKANTALIYAR, K Folktale about the Komattis, Ind Ant 21, p 93

111 STEEL, F A & TEMPLE, R C Panjabi Stories Ind Anti 8, pp 205, 280 302, 10 pp 40, 80, 147, 228, 331, 347, 11 pp 37, 73, 163, 226, 12 pp 103, 175, 21 fables etc
Kashmir Stories Ind Anti 11 pp 230, 259, 282, 319, 340, 9 stories
Wide-Awake stories Bombay, Education Society's Press, London, Trubner & Co , 1884, 43 Fable etc
The peculiar value of the book lies in the survey of the incidents at the end of it This is a fairly good tabulation of the incidents in Wide awake Stories, M Stoke's Indian Fairy Tales M Frere's Old Deccan Days, L B Day's Folktales of Bengal, R C Temple's Legends of the Panjab, Vol I and G H Damant's Bengal Tales, published in Ind Anti Tales of the Punjab, London & New York, Mac-Millan & Co , 1894

112 STEEL, T Kusa Jatakaya, a Buddhistic Legend, London, Trubner & Co , 1871 Appendix has 14 Sinhalese folktales

113 STOKES, M Indian Fairy Tales, Calcutta, Privately printed 1879, 2nd Ed London Ellis & White, 1820, 30 Fables and Fairy Tales

114 SUNDARAM, T M Tales of Raya and Appaji Madras, Natesan and Co An unverified title

115 SWYNNERTON C Indian Night's Entertainment, London, E Stoke 1892 The Adventures of the Punjab Hero Raja Rasatu and other folktales of the Punjab Calcutta, W Newman & Co , 1884 These stories included in the better known book following
Romantic Tales from the Punjab, London, A Coustable & Co 1903 Romantic Tales from the Punjab, with Indian Night's Entertainment London A Coustable & Co , 1908 One volume of the above books 97 andoic etc A few of these appeared in the J Asiatic Society of Bengal 52 p 81 and 4 of the Rasahe Legends in the Folklore Journal 1, p 119

116 TAGLIABUE, C Proverbı dettı and legende ındostanı Roma Casa, edıt, Ist (R Inst Or ın Napolı, Pubbı, Scı V 4) 1899 An unverıfied title

117 TALEYARKAN, D A Legend of Vellur, Ind Ant 2, p 172

118 TAW SEIN KO Burmese Folklore, Ind Ant 18, p 275, 19, p 427, 32 p 159, 3 stories

119 TAYLOR, S M Indian Folk-tales Folklore 6 p 399 , 7 p 83, 13 stories from Bhopal

120 TEMPLE, R C Legends of the Punjab—3 Vols Bombay, Education Society's Press, London, Trübner & Co Vol 1, 1884, Vol 3, 1900 50 legends etc See also Steel and Tample Temple, R C and Rose, H A —Legends from Punjab, Ind Ant 35 p 300, 37 p 149, 38 pp 81, 311, 39 p 1, 4 legends

121 THORBURN, S S Bannu, or Our Afghan Troutier, London, Trübner, 1876, 50 stories

122 THORNBILL, M Indian Fairy Tales, London, Hatchard's 1889, 26 Fairy Stories

123 UPRATI, G D Proverbs and Folklore of Kumayun and Garhwal, Lodiana, Lodiana Mission Press, 1894 125 stories

124 VANDYOPADHYAYA, EASINDRANATHA Popular Tales of Bengal Calcutta Hereld Printing Works 1905 An unverified title

125 VENKATSWAMI, M N Folktales of Central Provinces Ind Ant 24 p 244, 25 p 109, 26 pp 54 104 133, 165, 195, 280, 28 p 193 , 30 pp 31, 110, 200 , 31 p 447, 32 p 97, 23 fables

Folklore from Dakshina Desh Ind Ant 94 p 210, 2 Stories Puli Raja, or the Tiger Prince (a South Indian story) Folklore, 13 p 79

126 VENKETAMI, See Venkataswami

127 VISUANATHAPILLAI, N Tamil Folklore Orientalist 2 p 245

128 WODDELL, L A Folklore in Tibet, Ind Ant 25, p 805

129 WADIO, P T H Folklore in Western India, Ind Anti vide 14, 15, 16, 17, 18, 19, 20, 21, 22, & 23 20 stories

130 WATSON, J W Story of Ram Pingals, Ind Anti 2 p 215 Legend of the Ram Tunk Ind Ant 2 p 339

131 WILLISTON T P Hindu Tales Retold Chicago Rand, Mc Nally & Co 1917, for school use

132 WOOD, A In and out of Chanda Edinborough Foreign Mission Board, 1906 Part II has 5 tales, 4 paraphoses from Tulinawals (or Hindi Tota Kehani) other a translation of Vaitalpancavimgti story of Senkhaclued & Jimmitevihan

(ख)
लोक साहित्य-विषय सामग्री

सर्वं श्री अगरचन्द नाहटा—	लोक कथा सम्वन्धी जैन साहित्य—	ना० प्र० पत्रिका भाग ५२, स० २००४
,,	गुजरात मे लोक कथा मम्वन्धी कार्य—	आजकल मई १९५४
,,	राजस्थानी फागु साहित्य की परम्परा और विशिष्टता	सम्मेलन पत्रिका अपाढ २०११
,,	गूढाओ के सकेत	मरु भारती जन० १९५६' (राजस्थान)
भँवरलाल नाहटा—	प्रिय मेलक तीर्थं एक प्राचीन लोक कथा	—do—
,,	राजस्थानी भाषा की व्रत कथाएं	देवनागर—भाद्रपद २०११
,,	राजस्थानी लोक गीत का सग्रह एव प्रकाशन कार्यं	परम्परा—चैत्र २०१३ (जोधपुर)
,,	राजस्थान का एक प्राचीन व प्रसिद्ध लोक काव्य बगडावत	मरुभारती जुलाई १९५७
,,	वाग्विलास—लघु कथा सग्रह	वरदा (जनवरी १९५८, बिसाऊ राज०)
अनत लाल गोस्वामी—	भारतीय सस्कृति मे लोक जीवन	सम्मेलन—पत्रिका, लोक सस्कृति अक २०१०
अनवर आगेवान	सौराष्ट्र के लोक नृत्य	सम्मेलन पत्रिका पूष २०११
अनुसूया प्रसाद पाठक—	उडिया लोककथाएं	आजकल—मई १९५४
,,	उत्कल के लोकगीत	सम्मेलन पत्रिका, लोक सस्कृति अक २०१०
अनूप	मालवी लोरियाँ	आजकल जुलाई १९५४
,,	मालवा के लोकगीत एव नृत्य-गीत	सम्मेलन पत्रिका, लोक सस्कृति अक २०१०
अमर वहादुर सिंह—	लोक-साहित्य	साहित्य सन्देश जनवरी १९५५
,,	लोक साहित्य और जीवन	साहित्य सन्देश १९५५
अमृता प्रीतम	पजाव दी आवाज	दिल्ली १९५२
,,	पजाव लोक गीतो मे समय के पद	सम्मेलन पत्रिका लोक सस्कृति अक २०१०
अरुण—	भूत भाग गया	आत्माराम एण्ड सस दिल्ली १९५५

आई० एस० चौधरी — ग्राम गीत — सप्तसिंधु फरवरी १९५४

आदर्श कुमारी — ब्रज की लोककथाएँ — आत्माराम एण्ड सस, दिल्ली

यशपाल— लखटकिया (ब्रज की एक लोक कथा) — आजकल जून १९५४

„ ब्रज की लोक कहानी "दिल्लगी वाज" — ब्रज भारती आश्विन २००८

„ नट को तमासो — ब्रजभारती चैत्र २००९

„ पुण्य की जड हरी — सस्ता साहित्य मडल दिल्ली २०१४

„ कौडिया गुलाम — ब्रजभारती वर्ष १०, अक ३

इन्द्र दत्त चक्रवर्ती— छडा एक अध्ययन — आजकल जुलाई १९५४

इ० एस० ओकने एव तारा चन्द्र गैरोला— हिमालय की लोक कथा — सरस्वती सदन किताव महल इलाहाबाद

उदय नारायण तिवारी — भोजपुरी लोकोक्तियाँ — हिन्दुस्तानी अप्रैल १९३९

„ —do— — —do— जुलाई १९३९

„ भोजपुरी मुहावरे — —do— अप्रैल १९४०

„ भोजपुरी पहेलियाँ — —do— अक्टूबर १९४२

उदयवीर शर्मा — राजस्थानी व्रत कथाएँ — वरदा जनवरी १९५८

„ —do— — —do— अप्रैल १९५८

„ —do— — —do— जुलाई १९५८

उषा मलहोत्रा — पवाडे का स्वरूप — मरु भारती अप्रैल १९५६

„ राजस्थान और ब्रज मे ढोला मारू — —do— जुलाई १९५६

„ पवाडा शब्द की व्युत्पत्ति — —do— अक्टूबर १९५६

„ पवाडो का उद्भव — —do— जनवरी १९५७

„ नानडिये का पवाडा — —do— जुलाई १९५७

„ पुरन्दर कुमार की कथा — —do— —do—

„ चौपड का पवाडा — —do— जनवरी १९५८

ए० चन्द्रहासन — मलयालम की लोककथाएँ — आजकल मई १९५४

ओम् प्रकाश — काँगडे के दो लोकगीत — प्रतिभा जून १९५४

ओंकार नाथ ठाकुर — भारतीय लोक सगीत की आत्मा — सम्मेलन पत्रिका लोक सस्कृति अक २०१०

कन्हैयालाल मिडा	नेपाली लोकगीतो द्वारा सुन्दर की सृष्टि	सम्मेलन पत्रिका लोक संस्कृति अंक २०१०
कन्हैयालाल मिश्र—	बोलना उनसे सीखिए जो पढ़े-लिखे नही हैं	—do—
कन्हैयालाल सहल	लोक-साहित्य का महत्त्व	राजस्थानी शोध पत्रिका चैत्र २०१४
"	कहावत की परिभाषा	साहित्य अप्रैल १९५५
"	एक राजस्थानी हरजस	मरुभारती अक्टूबर १९५५
"	वीर गाथाएँ	—do—
"	—do—	—do— जनवरी १९५६
"	अधूरा पूरा तथा कहावती पद्य	—do— —do—
"	वीर गाथा हालो झालो का युद्ध	—do— अप्रैल १९५२
"	वीरगाथाएँ	—do— जुलाई १९५५
"	राजस्थान की वर्षा विषयक कहावतें	—do— —do—
"	राजस्थानी साहित्य मे कहावतें	—do— —do—
"	कहावतो का तुलनात्मक अध्ययन	साहित्य —do—
कन्हैयालाल सहल	एक कहावती लोक कथा	मरुभारती अक्टूबर १९५६
	राजस्थानी लोक गीतो मे शिशु भावना	सम्मेलन पत्रिका लोक संस्कृति अंक २०१०
"	एक वीर गाथा	मरुभारती जुलाई १९५७
"	लालजी पेमजी तथा खीनै बीजेरी बात	—do— अक्टूबर १९५७
"	राजस्थानी लोक कथाओ मे सांस्कृतिक चित्रण	—do— —do—
"	कहावती गाथाएँ	—do— जनवरी १९५८
"	राजस्थानी कहावतो में पशु-पक्षी, क्षुद्र जन्तु, तथा पेड़-पौधे	—do— ?
"	राजस्थानी कहावतें	? ?
"	लोक-कथाओ के मूल अभिप्राय	आजकल सितम्बर १९५८
कमल नारायण	असम के लोक नृत्य	हिन्दुस्तानी जनवरी १९४४
कमल कुमार श्रीवास्तव	होली के छत्तीसगढ़ी के लोक गीत	प्रतिभा मार्च १९५४ (नाग)
कमला भम्भानी	सिन्धु देश का लोक-साहित्य	साहित्य सन्देश सित० १९३८

आई० एस० चौधरी	ग्राम गीत	सप्तसिंधु फरवरी १९५४
आदर्श कुमारी यशपाल—	ब्रज की लोककथाएँ	आत्माराम एण्ड सस, दिल्ली
	लपटकिया (ब्रज की एक लोक कथा)	आजकल जून १९५४
,,	ब्रज की लोक कहानी "दिल्लगी बाज"	ब्रज भारती आश्विन २००८
,,	नट को तमासो	ब्रजभारती चैत्र २००९
,,	पुण्य की जड हरी	सस्ता साहित्य मडल दिल्ली २०१४
,,	कौडिया गुलाम	ब्रजभारती वर्ष १०, अक ३
इन्द्र दत्त चक्र-वर्ती—	छडा एक अध्ययन	आजकल जुलाई १९५४
इ० एस० ओकले एव तारा चन्द्र गैरोला—	हिमालय की लोक कथा	सरस्वती सदन किताब महल इलाहाबाद
उदय नारा-यण तिवारी	भोजपुरी लोकोक्तियाँ	हिन्दुस्तानी अप्रैल १९३९
,,	—do—	—do— जुलाई १९३९
,,	भोजपुरी मुहावरे	—do— अप्रैल १९४०
,,	भोजपुरी पहेलियाँ	—do— अक्टूबर १९४२
उदयवीर शर्मा	राजस्थानी व्रत कथाएँ	वरदा जनवरी १९५८
,,	—do—	—do— अप्रैल १९५८
,,	—do—	—do— जुलाई १९५८
उषा मलहोत्रा	पवाडे का स्वरूप	मरु भारती अप्रैल १९५६
,,	राजस्थान और ब्रज मे ढोला मारू	—do— जुलाई १९५६
,,	पवाडा शब्द की व्युत्पत्ति	—do— अक्टूबर १९५६
,,	पवाडो का उद्भव	—do— जनवरी १९५७
,,	नानडिये का पवाडा	—do— जुलाई १९५७
,,	पुरन्दर कुमार की कथा	—do— —do—
,,	चौपड का पवाडा	—do— जनवरी १९५८
ए० चन्द्रहासन	मलयालम की लोककथाएँ	आजकल मई १९५४
ओम् प्रकाश	कांगडे के दो लोकगीत	प्रतिभा जून १९५४
ओकार नाथ ठाकुर	भारतीय लोक सगीत की आत्मा	सम्मेलन पत्रिका लोक सस्कृति अक २०१०

कन्हैयालाल मिडा	नेपाली लोकगीतो द्वारा सुन्दर की सृष्टि	सम्मेलन पत्रिका लोक सस्कृति अक २०१०
कन्हैयालाल मिश्र—	बोलना उनसे सीखिए जो पढ़े-लिखे नही हैं	—do—
कन्हैयालाल सहल	लोक-साहित्य का महत्व	राजस्थानी शोध पत्रिका चैत्र २०१४
,,	कहावत की परिभाषा	साहित्य अप्रैल १९५५
,,	एक राजस्थानी हरजस	मरुभारती अक्टूबर १९५५
,,	वीर गाथाएँ	—do—
,,	—do—	—do— जनवरी १९५६
,,	अधूरा पूरा तथा कहावती पद्य	—do— —do—
,,	वीर गाथा हालो झालो का युद्ध	—do— अप्रैल १९५२
,,	वीरगाथाएँ	—do— जुलाई १९५५
,,	राजस्थान की वर्षा विषयक कहावतें	—do— —do—
,,	राजस्थानी साहित्य मे कहावतें	—do— —do—
,,	कहावतो का तुलनात्मक अध्ययन	साहित्य —do—
कन्हैयालाल सहल	एक कहावती लोक कथा	मरुभारती अक्टूबर १९५६
	राजस्थानी लोक गीतो मे शिशु भावना	सम्मेलन पत्रिका लोक सस्कृति अक २०१०
,,	एक वीर गाथा	मरुभारती जुलाई १९५७
,,	लालजी पेमजी तथा खीनै बीजेंरी बात	—do— अक्टूबर १९५७
,,	राजस्थानी लोक कथाओ मे सास्कृतिक चित्रण	—do— —do—
,,	कहावती गाथाएँ	—do— जनवरी १९५८
,,	राजस्थानी कहावतो मे पशु-पक्षी, क्षुद्र जन्तु, तथा पेड-पौधे	—do— ?
,,	राजस्थानी कहावतें	? ?
,,	लोक-कथाओ के मूल अभिप्राय	आजकल सितम्बर १९५८
कमल नारायण	असम के लोक नृत्य	हिन्दुस्तानी जनवरी १९४४
कमल कुमार श्रीवास्तव	होली के छत्तीसगढी के लोक गीत	प्रतिभा मार्च १९५४ (नाग)
कमला मम्भानी	सिन्धु देश का लोक-साहित्य	साहित्य सन्देश सित० १९३८

कर्णराज शेष गिरिराव	आन्ध्र देश की लोरियाँ	आजकल मार्च १९५४
,,	आन्ध्र देश के यक्षगान	सम्मेलन पत्रिका पौष २०१०
,,	आन्ध्र गीतो मे नारी भावना	सम्मेलन पत्रिका आश्विन २०१४
कागाल हरिनाथ	हिन्दुस्तानी लोक गीत	?
,,	हिन्दुस्तानी ग्राम गीत	?
कालिदास कपूर	लोक सस्कृति की रक्षा	सम्मेलन पत्रिका लोक सस्कृति अक २०१०
किशनचन्द भोगा	असली रग-बिरगे गीत	अमृतसर १९४६
कृष्णदत्त वाजपेयी	व्रज का लोक सगीत	सम्मेलन पत्रिका लोक सस्कृति अक २०१०
कृष्णदास	लोक गीतो की सामाजिक व्यारया	साहित्य भवन लिमिटेड इलाहाबाद २०१३ वि०
कृष्णदेव उपाध्याय	भोजपुरी ग्रामगीत, भाग २	हि० सा० सम्मेलन प्रयाग स० २०००
,,	भोजपुरी लोकगीतो मे काव्य	हिन्दुस्तानी अक्टूबर १९४७
,,	भोजपुरी लोकगीतो मे दिव्य की प्रथा	सम्मेलन पत्रिका लोक सस्कृति अक २०१०
,,	भोजपुरी लोक गीतो मे कला	सम्मेलन पत्रिका कला अक चैत्र १९५८
,,	अवधी लोक गीत भाग १	?
,,	भोजपुरी लोक-साहित्य का अध्ययन	हिन्दी प्रचार पुस्तकालय, काशी
,,	भोजपुरी लोक सस्कृति का अध्ययन	?
कृष्णनन्दन वर्मा	विहार के आदिवासियो मे गीत	आजकल अगस्त १९५४
कृष्णानन्द गुप्त	ईसुरी की फागें भाग १	लोकवार्ता परिषद टीकमगढ
,,	लोक कथाओ मे समानता	आजकल मई १९५४
कुमार गधर्व	भारतीय सस्कृति का मूलाधार लोक सगीत	सम्मेलन पत्रिका लोक सस्कृति अक २०१०
कुसुम पाल	काठियावाड और गुजरात के गरवे	—do—
कुशेश्वर लाल	मैथिली लोक गीतो मे कन्या जीवन की अभिव्यक्ति	सम्मेलन पत्रिका चैत्र २०११
के० एस० रामस्वामी शास्त्री	भारतीय शास्त्रीय और लोक कला का मूल	सम्मेलन पत्रिका लोक स० अक २०१०

केशव कोठारी	धार्मिक मान्यताएँ और शकुन	परम्परा चैत्र २०१५, (जोधपुर)	
कैलाश चन्द्र भाटिया	लोक निरुक्ति	साहित्य सन्देश जुलाई १९५७	
कोमलसिंह सोलकी	लोक सस्कृति की आत्मा	सम्मेलन पत्रिका लोक सस्कृति अक २०१०	
कोमल कोठारी	लोक गीत और साज	परम्परा चैत्र २०१३	
,,	लोक-साहित्य और उसके अध्ययन का महत्त्व	—do—	—do—
,,	लोक गीत और सगीत	—do—	—do—
,,	ससुराल	—do—	—do—
,,	पीहर	—do—	—do—
,,	पति-पत्नी	—do—	—do—
,,	भाई-बहिन	—do—	—do—
खग बहादुर मानन	सुधा बूंदा	बाँकीपुर १८८४ ई०	
खेताराम माली	मारवाडी गीत सग्रह	?	
गगा प्रसाद कमठान	साहित्य मे लोकवार्ता की यथार्थ-वादी परम्परा	साहित्य सन्देश मई, ५४	
गणपति चन्द्र भण्डारी	उत्सव, त्योहार और मेले	परम्परा चैत्र २०१३	
गणपति स्वामी	मानाँ गूजरी को पवाडो	मरुभारती जनवरी १९५७	
गणेश चौबे	भोजपुरी लोक गाथाएँ	आजकल मई १९५४	
,,	भोजपुरी के पावस गीत	साहित्य जुलाई १९५६	
गोपालदत्त	ब्रज का लोक गायक हरफूला	ब्रजभारती ज्येष्ठ २०११	
गोपालबाबू शर्मा	लोक गीतो में भाई-बहन का स्नेह	साप्ताहिक हिन्दुस्तान ९ फरवरी ५८	
गोपाल प्रसाद व्यास	कहावतो द्वारा मानव जीवन की अभिव्यक्ति	ब्रजभारती स० २०००	
,,	ब्रज साहित्य और लोक जीवन	साहित्य सन्देश अगस्त १९३९	
गोपाल कृष्ण कौल	अवध की लोक कथा	आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली १९५४	
गोपाल शास्त्री	वेदकाल का सामाजिक जीवन	सम्मेलन पत्रिका लोक सस्कृति अक २०१०	
गोपीनाथ कविराज	भारतीय लोक सस्कृति मे लोक जीवन की अभिव्यक्ति	—do—	
गोवर्द्धन शर्मा	लोकवार्ता और साहित्य	साहित्य सन्देश अक्टूबर १९५३	
गोवर्द्धन शर्मा	लोकवार्ता और काव्य रीति	साहित्य सन्देश अक्टूबर १९५४	

गोविन्द चातक	गढवाल की लोककथाएँ	आजकल जून १९५४
,,	गढवाली बुझौवल	सम्मेलन पत्रिका आश्विन २०१२
,,	गढवाली लोक गीतो मे पक्षी और फूल	—do— चैत्र २०१२
,,	गढवाली लोक गीतो मे समाज कल्याणकारी भावना	—do— पौष शक स० १८७६
,,	गढवाली लोकगीत	जुगल किशोर एण्ड क० सन् १९५६
,,	चला भायो देखी औला गाधी की पल्टन दा	साप्ताहिक हिन्दुस्तान ६ फरवरी १९५८
,,	गढवाल के चरवाहे गीत वाजू वन्द	सम्मेलन पत्रिका लोक स० अक २०१०
,,	नेपाल की लोककथाएँ	आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली ?
गौरापत	कुमाऊँ के ग्राम देवता	आजकल जुलाई १९५८
गौरीशकर द्विवेदी शकर	बुन्देली लोक गीतो मे नेत्र वर्णन	व्रजभारती आश्विन २००८
,,	शक्ति साधना के भडार हमारे लोक गीत	प्रतिभा अप्रैल १९५४
,,	तीर्थयात्रा सम्वन्धी सरस लोक गीत	—do— जुलाई १९५४
गौरीशकर भट्ट	जन सस्कृति के प्रहरी लोक गीत	समाज जुलाई १९५६ (काशी)
ज्ञानेन्द्र कुमार भटनागर	केरल की लोककथाएँ	आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली १९५८ ई०
घनश्याम सेठी	डोगरी लोककथाएँ	आजकल जून १९५४
चन्द्र कुमार	महाकोशलीय लोककथा	प्रतिभा सितम्वर १९५४
	छत्तीसगढी की लोककथाएँ	आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली, १९५५
,,	छत्तीसगढी के दो लोकगीत	प्रतिभा अप्रैल १९५५
चन्द्रभान 'राधे-राधे'	व्रज के ग्रामदेवता और उनका साहित्य	व्रजभारती आश्विन २००४
,,	व्रज मे मन्त्रोपचार	—do— चैत्र २००५
,,	व्रज के ग्रामदेवता और उनका साहित्य	—do— चैत्र २००५
,,	वामनी	—do— फागुन २०१३

चिन्तामणि उपाध्याय	भदावरी लोकगीतो मे फाग	—do— फागुन २००६
”	—do—	—do— —do— २०११
चिरजीत	एक था राजा एक थी रानी	आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली, १६५५
चिरजीलाल उपाध्याय	चाक पूजने का कारण	व्रजभारती चैत्र २००६
जगदीश चन्द्र माथुर	लोक रगमच का रूप और सगठन	सम्मेलन पत्रिका लोक स० अ० २०१०
जगदीश त्रिगुणायत	मुडा लोककथाएँ	आजकल मई १६५४
जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी	व्रज की सास्कृतिक परम्परा का अनुसन्धान	व्रजभारती फागुन २००६
”	हिन्दी मे लोककथा साहित्य	आजकल मई १६५४
जगदीश सिंह गहलोत	मारवाडी ग्रामगीत	?
”	मारवाड के ग्रामगीत	?
जगन्नाथ शर्मा	अरब की लोक कथाएँ	आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली
जगन्नाथ प्रभाकर	काजल रेखा	नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली
जनार्दन मुक्ति दूत	लोक जीवन मे टोने और टोटके की मान्यता	सम्मेलन पत्रिका लोक स० अक २०१०
जयदेव शर्मा	वैदिक लोक सस्कृति के आदर्श	सम्मेलन पत्रिका अषाढ २०११
जयन्ती देवी पन्त	यो आयो चैत को महीना	आजकल जुलाई १६५४
जानकी प्रसाद पुरोहित	राजस्थानी हरजस मे ध्रुव चरित्र	मरुभारती जनवरी १६५६
जोधसिंह मेहता	आदिवासी भील	साहित्य सस्थान उदयपुर १६५५
झावरमल्ल शर्मा	राजस्थान के लोकदेवता	मरुभारती अक्टूबर १६५५
डब्ल्यू० जे और सकटा प्रसाद	भोजपुरी ग्राम गीत	?
डी० मजुलता	नव वधू चली सुसराल	भारती फरवरी १६५८ (बम्बई)
डोमन साहु समीर	सन्थाली लोक कथाएँ	आजकल मई १६५४
ताराचन्द ओझा	मारवाडी गीत सग्रह	?
तारा पाडेय	कुमाऊँ की महिलाओ की कलात्मक प्रवृत्ति	सम्मेलन पत्रिका लोक स० अक २०१०
त्रिलोकी नारायण दीक्षित	सन्तों के लोक गीत	—do—

त्रिवेणी प्रसाद मिश्र	लोक-साहित्य एव शिक्षित साहित्य	सरस्वती सम्वाद अप्रैल १९५५ आगरा
,,	लोक-साहित्य पर जीवन का प्रतिबिम्ब	—do— जनवरी १९५५
,,	लोक-साहित्य एव शिक्षित साहित्य	साहित्य सन्देश जनवरी १९५६
दक्षिण रजन मित्र मजूमदार	ग्रामगीति (सग्रह)	?
दशरथ शर्मा	कुछ प्राचीन राजस्थानी कहावतें	मरुभारती अक्टूबर १९५६
दशरथ शर्मा	वठर गुरु गीत	मरुभारती जनवरी १९५७
दीनदयाल ओझा	राजस्थानी व्रत कथाएँ— बारस और गणेशरी कथा	मरुभारती अक्टूबर १९५६
दीनमुहम्मद कुश्ता	पजाब दे हीरे	?
दुर्गाप्रसाद सिंह	भोजपुरी ग्रामगीतो मे गोरी का स्थान	ना० प्र० पत्रिका भाग १४ स० १९९०
दुर्गाशकर प्रसाद सिह	कुँवरसिंह का पँवारा	नईधारा अप्रैल १९५५
,,	भोजपुरी लोक गीतो मे करुणरस	हि० सा० सम्मे० प्रयाग १९५० ई०
दुर्गा भागवत	महाराष्ट्री लोक साहित्य	
देवकी नन्दन प्रसाद सिह	सराय केला के लोक गीत	आजकल १९५४ ई०
,,	सराय केला सरसावाँ के ग्राम गीत	न्यूयार पुर पटना १९५४ ई०
,,	नाधरे आँखि जल आँखि पाते	—do— —do—
देवाना प्रिय	काश्मीरी लोककथाएँ	आजकल मई १९५४
देवी प्रसाद सिह	छत्तीस गढी के सास्कृतिक गीत	प्रतिभा फरवरी १९५४
देवीलाल सामर	राजस्थान के प्रतिभाशाली चित्रण	राजस्थानभारती अप्रैल १९५०
देवेन्द्र सत्यार्थी	उडिया ग्राम साहित्य मे रामचरित्र	ना० प्र० पत्रिका भाग १५, स० १९९१
,,	दीवा बले सारी रात	१९५१
,,	मैं हूँ खाना बदोश	१९५१
,,	गाए जा हिन्दुस्तान	१९४६
,,	चट्टान से पूछ लो	?
,,	धीरे बहो गगा	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
,,	धरती गाती है	—do—
देवेन्द्र सत्यार्थी	बेला फूले आधी रात	राजहस प्रकाशन, दिल्ली

देवेन्द्र सत्यार्थी	बाजत आवे ढोल	एशिया प्रकाशन, दिल्ली
"	गिद्धा	?
"	लोक साहित्य की यथार्थवादी परम्परा	आलोचना १९५२
"	उर्मिला की नींद एक आन्ध्र लोक गीत	हिन्दुस्तानी जनवरी १९४०
"	ब्रजभारती एक मौखिक परम्परा	ब्रज लोक संस्कृति मथुरा २००५
"	क्या गोरी क्या सावरी	चेतना प्रकाशन—आबिदरोड, हैदराबाद २००६ वि०
"	हिन्दी साहित्य पर लोक साहित्य का प्रभाव	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली जनवरी १९५३
"	भारतीय लोक कथाएँ	आजकल मई १९५४
धर्मदेव शास्त्री	बहुपति प्रथा	सम्मेलन पत्रिका लोक संस्कृति अंक २०१०
नगेन्द्रनाथ गुप्त	होली के गीत	(संग्रह)—?
नन्दलाल	कश्मीर की लोक कथाएँ	१९५१ ई०
"	—do—	१९५२ ई०
"	—do—	आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली १९५३
"	केशर क्यारी	नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली १९५८
नरदेव शास्त्री	लोक संस्कृति का निर्माण	सम्मे० पत्रि० लोक सं० अंक २०१०
नर्मदेश्वर चतुर्वेदी	लोक संस्कृति की आत्मा	—do—
नर्मदेश्वर उपाध्याय	हमारा प्रचलित ग्राम साहित्य	सम्मेलन पत्रिका चैत्र २०११
"	धरती की उसाँस	सम्मेलन पत्रिका लोक सं० अंक २०१०
नरोत्तम स्वामी	राजस्थान रा दूहा	१९३५ ई०
"	राजस्थानी लोक गीत—वियोग शृंगार के गीत	राज० भारती जुलाई १९४६
"	पाबूजी रा पवाडा-सोढीजी रो पवाडो	राजस्थान भारती जनवरी १९५१
"	—do—	राजस्थान भारती जुलाई १९५३
"	राजस्थानी कहावताँ	राजस्थानी साहित्य परिषद् ?

त्रिवेणी प्रसाद मिश्र	लोक-साहित्य एव शिक्षित साहित्य	सरस्वती सम्वाद आगरा	अप्रैल १६५५
,,	लोक-साहित्य पर जीवन का प्रतिबिम्ब	—do—	जनवरी १६५५
,,	लोक-साहित्य एव शिक्षित साहित्य	साहित्य सन्देश	जनवरी १६५६
दक्षिण रजन मित्र मजूमदार	ग्रामगीति (सग्रह)	?	
दशरथ शर्मा	कुछ प्राचीन राजस्थानी कहावतें	मरुभारती	अक्टूबर १६५६
दशरथ शर्मा	वठर गुरु गीत	मरुभारती	जनवरी १६५७
दीनदयाल ओझा	राजस्थानी व्रत कथाएँ— बारस और गणेशरी कथा	मरुभारती	अक्टूबर १६५६
दीनमुहम्मद कुश्ता	पजाब दे हीरे	?	
दुर्गाप्रसाद सिंह	भोजपुरी ग्रामगीतो मे गोरी का स्थान	ना० प्र० पत्रिका भाग १४	स० १६६०
दुर्गाशकर प्रसाद सिंह	कुँवरसिंह का पँवारा	नईधारा	अप्रैल १६५५
,,	भोजपुरी लोक गीतो मे करुण रस	हि० सा० सम्मे० प्रयाग	१६५० ई०
दुर्गा भागवत	महाराष्ट्री लोक साहित्य		
देवकी नन्दन प्रसाद सिंह	सराय केला के लोक गीत	आजकल	१६५४ ई०
,,	सराय केला सरसावाँ के ग्राम गीत	न्यूयार पुर पटना	१६५४ ई०
,,	नाधरे आँखि जल आँखि पाते	—do—	—do—
देवाना प्रिय	काश्मीरी लोककथाएँ	आजकल	मई १६५४
देवी प्रसाद सिंह	छत्तीस गढी के सास्कृतिक गीत	प्रतिभा	फरवरी १६५४
देवीलाल सामर	राजस्थान के प्रतिभाशाली चित्रण	राजस्थानभारती	अप्रैल १६५०
देवेन्द्र सत्यार्थी	उडिया ग्राम साहित्य मे रामचरित्र	ना० प्र० पत्रिका भाग १५,	स० १६६१
,,	दीवा वले सारी रात		१६५१
,,	मैं हूँ खाना बदोश		१६५१
,,	गाए जा हिन्दुस्तान		१६४६
,,	चट्टान से पूछ लो		?
,,	धीरे वहो गगा	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	
,,	धरती गाती है	—do—	
देवेन्द्र सत्यार्थी	वेला फूले आधी रात	राजहस प्रकाशन, दिल्ली	

देवेन्द्र सत्यार्थी	वाजत आवे ढोल	एशिया प्रकाशन, दिल्ली
"	गिद्धा	?
"	लोक साहित्य की यथार्थवादी परम्परा	आलोचना १६५२
"	उर्मिला की नींद एक आन्ध्र लोक गीत	हिन्दुस्तानी जनवरी १६४०
"	ब्रजभारती एक मौखिक परम्परा	ब्रज लोक सम्कृति मथुरा २००५
"	क्या गोरी क्या सावरी	चेतना प्रकाशन—आबिदरोड, हैदराबाद २००६ वि०
"	हिन्दी साहित्य पर लोक साहित्य का प्रभाव	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली जनवरी १६५३
"	भारतीय लोक कथाएँ	आजकल मई १६५४
धर्मदेव शास्त्री	बहुपति प्रथा	सम्मेलन पत्रिका लोक सस्कृति अक २०१०
नगेन्द्रनाथ गुप्त	होली के गीत	(सग्रह)—?
नन्दलाल	कश्मीर की लोक कथाएँ	१६५१ ई०
"	—do—	१६५२ ई०
"	—do—	आत्माराम एण्ड सस, दिल्ली १६५३
"	केशर क्यारी	नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली १६५८
नरदेव शास्त्री	लोक सस्कृति का निर्माण	सम्मे० पत्रि० लोक स० अक २०१०
नर्मदेश्वर चतुर्वेदी	लोक सस्कृति की आत्मा	—do—
नर्मदेश्वर उपाध्याय	हमारा प्रचलित ग्राम साहित्य	सम्मेलन पत्रिका चैत्र २०११
"	धरती की उसाँस	सम्मेलन पत्रिका लोक स० अक २०१०
नरोत्तम स्वामी	राजस्थान रा दूहा	१६३५ ई०
"	राजस्थानी लोक गीत—वियोग श्रृगार के गीत	राज० भारती जुलाई १६४६
"	पाबूजी रा पवाडा-सोढीजी रो पवाडो	राजस्थान भारती जनवरी १६५१
"	—do—	राजस्थान भारती जुलाई १६५३
"	राजस्थानी कहावताँ	राजस्थानी साहित्य परिषद् ?

नरेन्द्र धीर	पजाबी लोककथाएं	आजकल मई १६५४ ई०
नवनीत लाल नागर	गोवन पूजा	व्रजभारती आश्विन २००६
नारायण शास्त्री खिस्ते	लोक सस्कृति का आगम मार्ग	सम्मेलन पत्रिका लोक स० अक २०१०
नारायणसिंह भाटी	परम्परा लोकगीत अक	परम्परा चैत्र २०१३
,,	लोकगीतो का समाजशास्त्रीय अध्ययन	परम्परा चैत्र २०१५
निर्मला मिश्र	चार समस्याएँ	आजकल जुलाई १६५८
निहालचन्द वर्मा	मारवाडी गीत	१६५२
नील कमल	असमियाँ लोककथाएँ	आजकल मई १६५४
नेमीचन्द जैन	भीली महीने और मान्यताएँ	सम्मे० पत्रि० लोक स० अक २०१०
पन्नेचन्द सिंधवी एव इन्द्रराज सिंह	राजस्थानी लोकगीतो मे विरहिणी	से० जी० वी० पोद्दार कालिज मैगजीन १६५७-५८
'विप्लव' परदेशी	गुजराती लोक कथाएँ	आजकल मई १६५४
परमेश्वरीलाल गुप्त	गगा घाटी मे मिट्टी के खिलौने	सम्मे० पत्रि० लोक स० अक २०१०
पातीराम	हास्य रस की लोक-कहानी	व्रजभारती चैत्र २००८
,,	दो ग्रामीण चुटकुले	—do— चैत्र २००६
पृथ्वीनाथ पुष्प	कश्मीरी लोकगीतों मे लोक जीवन की व्याख्या	सम्मे० पत्रि० लोक स० अक २०१०
पृथ्वीनाथ चतुर्वेदी और हीरालाल मन्त	हमारे लोकगीत	फर्रुखाबाद १६५४
पुरुषोत्तम लाल मेनारिया	राजस्थानी लोककथाएँ	आजकल मई १६५४
,,	राजस्थान की लोककथाएँ	आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली १६५५
,,	राजस्थानी वार्ता	स्टूडेण्ट्स बुक क०, जोधपुर १६५५
पूर्णसोम सुन्दरम	तमिल लोक कथाएँ	आजकल मई १६५४
प्यारेलाल गुप्त	छत्तीसगढी के ग्राम जीवन मे रसधारा	सम्मे० पत्रि० लोक स० अक
प्यारेलाल	सिन्ध की लोककथाएँ	आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली १६५६

प्यारेलाल	विदर्भ देश की लोककथाएँ	—do— १६५७
प्यारेलाल वेदिल	उज्जैन की लोक कथाएँ	—do— ?
प्रतीप पछी ? (प्रीतमसिंह पछी)	पजाब की लोक कथाएँ	—do— १६५४
प्रभुदयाल मीतल	व्रज के उत्सवो और त्योहारो के लोकगीत	सम्मे० पत्रि० लोक स० अक
प्रयागराज मेहता	श्रम और गीत	परम्परा चैत्र २०१३
प्रवेश वनर्जी	मणिपुरी नृत्य	सम्मे० पत्रि० लोक स० अक
प्रसन्नकुमार आचार्य	पाली का लोकसाहित्य	सम्मे० पत्रि० आपाढ २०१३
प्रेम कपूर	लोकनृत्य	सम्मे०पत्रि० लोक स० अक
फूलजी भाई भील (मीणा)	राजस्थानी भीलो के गीत	राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर १६५५
बद्रीप्रसाद परमार	मालव लोकसाहित्य—एक अध्ययन	आगरा वि० वि० शोध प्रवन्ध १६५७
व्रजकिशोर पाठक तथा सत्यवती जैतली	दो लोक कहानी	व्रजभारती भाद्रपद २००४
बालमुकुन्द अर्श पलशयानी	मुहावरे और कहावतें	विद्या प्रकाशन, दिल्ली १६५७
वालकृष्ण एम० ए०	फूलमदे पाटम दे	?
,,	वग्घ राज और वच्छराज	नेशनल पब्लिशिग हाऊस, दिल्ली १६५८
,,	काग उडानी	—do—
,,	सोने के डण्डे	—do—
,,	माँ वाप गए वाराणसी	—do—
,,	खूँटी हार निगल गई	—do—
वालमुकुन्द भारद्वाज	व्रज की होली	व्रजभारती फागुन २०११
वालशौरि रेड्डी	तेलुगु लोक कथाएँ	आजकल मई १६५४
विपिन विहारी वाजपेयी	मेवाड की कहावतें	?
वी० राजेन्द्र ऋषि	रूसी लोकसाहित्य मे जादू और टोना	प्रतिभा फरवरी १६५४
वेनीप्रसाद वाजपेयी	पूर्वी वगाल के ग्रामगीतो मे रागात्मक अनुभूति	सम्मे० पत्रि० लोक स० अक

नरेन्द्र धीर	पजावी लोककथाएँ	आजकल मई १९५४ ई०
नवनीत लाल नागर	गोधन पूजा	व्रजभारती आश्विन २००६
नारायण शास्त्री खिस्ते	लोक सस्कृति का आगम मार्ग	सम्मेलन पत्रिका लोक स० अक २०१०
नारायणसिंह भाटी	परम्परा लोकगीत अक	परम्परा चैत्र २०१३
,,	लोकगीतो का समाजशास्त्रीय अध्ययन	परम्परा चैत्र २०१५
निर्मला मित्र	चार समस्याएँ	आजकल जुलाई १९५८
निहालचन्द वर्मा	मारवाडी गीत	१९५२
नील कमल	असमियाँ लोककथाएँ	आजकल मई १९५४
नेमीचन्द जैन	भीली महीने और मान्यताएँ	सम्मे० पत्रि० लोक स० अक २०१०
पन्नेचन्द सिंघवी एव इन्द्रराज सिंह	राजस्थानी लोकगीतो मे विरहिणी	से० जी० बी० पोद्दार कालिज मैगजीन १९५७-५८
'विप्लव' परदेशी	गुजराती लोक कथाएँ	आजकल मई १९५४
परमेश्वरीलाल गुप्त	गगा घाटी मे मिट्टी के खिलौने	सम्मे० पत्रि० लोक स० अक २०१०
पातीराम	हास्य रस की लोक-कहानी	व्रजभारती चैत्र २००८
,,	दो ग्रामीण चुटकुले	—do— चैत्र २००९
पृथ्वीनाथ पुष्प	कश्मीरी लोकगीतो मे लोक जीवन की व्याख्या	सम्मे० पत्रि० लोक स० अक २०१०
पृथ्वीनाथ चतुर्वेदी और हीरालाल सन्त	हमारे लोकगीत	फर्रुखाबाद १९५४
पुरुषोत्तम लाल मेनारिया	राजस्थानी लोककथाएँ	आजकल मई १९५४
,,	राजस्थान की लोककथाएँ	आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली १९५५
,,	राजस्थानी बातां	स्टूडेण्ट्स बुक क०, जोधपुर १९५५
पूर्णसोम सुन्दरम	तमिल लोक कथाएँ	आजकल मई १९५४
प्यारेलाल गुप्त	छत्तीसगढी के ग्राम जीवन मे रसधारा	सम्मे० पत्रि० लोक स० अक
प्यारेलाल	सिन्ध की लोककथाएँ	आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली १९५६

प्यारेलाल	विदर्भ देश की लोककथाएँ	—do—	१६५७
प्यारेलाल वेदिल	उज्जैन की लोक कथाएँ	—do—	?
प्रतीप पछी ? (प्रीतमसिंह पछी)	पजाब की लोक कथाएँ	—do—	१६५४
प्रभुदयाल मीतल	व्रज के उत्सवो और त्योहारो के लोकगीत	सम्मे० पत्रि० लोक स० अक	
प्रयागराज मेहता	श्रम और गीत	परम्परा चैत्र	२०१३
प्रवेश वनर्जी	मणिपुरी नृत्य	सम्मे० पत्रि० लोक स० अक	
प्रसन्नकुमार आचार्य	पाली का लोकसाहित्य	सम्मे० पत्रि० आषाढ	२०१३
प्रेम कपूर	लोकनृत्य	सम्मे०पत्रि० लोक स० अक	
फूलजी भाई भील (मीणा)	राजस्थानी भीलो के गीत	राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर	१९५५
वद्रीप्रसाद परमार	मालव लोकसाहित्य—एक अध्ययन	आगरा वि० वि० शोध प्रबन्ध	१९५७
व्रजकिशोर पाठक तथा सत्यवती जैतली	दो लोक कहानी	व्रजभारती भाद्रपद	२००४
बालमुकुन्द अर्श पलशयानी	मुहावरे और कहावतें	विद्या प्रकाशन, दिल्ली	१९५७
बालकृष्ण एम० ए०	फूलमदे पाटम दे	?	
,,	वग्घ राज और वच्छराज	नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली	१९५८
,,	काग उडानी	—do—	
,,	सोने के डण्डे	—do—	
,,	माँ बाप गए वाराणसी	—do—	
,,	खूँटी हार निगल गई	—do—	
बालमुकुन्द भारद्वाज	व्रज की होली	व्रजभारती फागुन	२०११
वालशौरि रेड्डी	तेलुगु लोक कथाएँ	आजकल मई	१९५४
विपिन विहारी वाजपेयी	मेवाड की कहावतें	?	
वी० राजेन्द्र ऋषि	रूसी लोकसाहित्य मे जादू और टोना	प्रतिभा फरवरी	१९५४
वेनीप्रसाद वाजपेयी	पूर्वी बगाल के ग्रामगीतो मे रागात्मक अनुभूति	सम्मे० पत्रि० लोक स० अक	

वैजनाथसिंह 'विनोद'	भोजपुरी लोकगीतो मे समाज	समाज अप्रैल १६५७ (काशी)
,,	लोक कहानियो मे सामाजिक तत्त्व	समाज अक्टूबर १६५६
भँवर लाल नाहटा	मानतुंग मानवती की लोक कथा	मरु भारती अक्टूबर १६५७
भगवान चन्द्रगुप्त विनोद	मुण्डा लोकगीत	आजकल अप्रैल १६५४
भरतसिंह उपाध्याय	बुद्धकालीन लोक जीवन	सम्मेलन पत्रि० लोक स० अक २०१०
,,	भिक्षुणियो के लोकगीत	हिन्दुस्तानी अप्रैल १६४७
भीष्म साहनी	चीन की लोककथाएँ	आजकल मई १६५४
भोलानाथ तिवारी	लोकायन और लोकसाहित्य	सम्मेलन पत्रिका लोक स० अक
,,	हिन्दी साहित्य की अन्तर्कथाएँ	किताब महल इलाहाबाद ?
मगलदेव शास्त्री	हिन्दू समाज के सस्कार, पर्व और त्योहार	समाज अप्रैल १६५६
मदन गोपाल	रूसी लोककथाएँ	आजकल मई १६५४
मदनलाल वैश्य	मारवाडी गीत माला	?
मन्मथनाथ गुप्त	बगाल की लोककथाएँ	आत्माराम एण्ड सस, दिल्ली १६५४
,,	रवीन्द्र और लोकसाहित्य	सम्मेलन पत्रि० लोक स० अक २०१०
मन्मथराय	हमारे कुछ प्राचीन लोकोत्सव	साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद १६५३
मन्मथराय गुप्त	आदमी का जन्म	आत्माराम एण्ड सस, दिल्ली १६५५
मनोहर शर्मा	राजस्थानी लोकगीतो मे शिव पार्वती	मरुभारती अप्रैल १६५६
,,	राजस्थानी लोकगीतो मे गगा	—do— अक्टूबर १६५६
,,	राजस्थानी लोकगीतो मे विशिष्ट नारियाँ	—do— जुलाई १६५७
,,	राजस्थानी लोक गीतो मे गोगा चौहान	मरुभारती जनवरी १६५७
,,	राजस्थानी लोकगीतो मे नारी चरित्र	—do— अक्टूबर १६५५
,,	रूपाँदे का जीवन सगीत	—do— अक्टूबर १६५७
,,	राजस्थानी पहेलियाँ	सम्मेलन पत्रिका आश्विन २०१३
,,	राजस्थानी मुहावरे	मरुभारती जुलाई १६५८

माया गुप्त	बगाल की लोककथाएँ	आजकल मई १९५४
महादेव साहा	लोक साहित्य सम्बन्धी भारतीय साहित्य की एक सक्षिप्त सूची	सम्मेलन पत्रिका पौष २०१०
महावीरप्रसाद पोद्दार	कहावतो की कहानियाँ	सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली १९५६
महेन्द्र मित्तल	ग्राम्य लोककथाएँ	आत्माराम एण्ड सस १९५७
महेन्द्र राजा और मोहिनी शर्मा	सावन के गीत	प्रतिभा अगस्त १९५४
महेश नारायण सक्सेना	व्रज के लोक सगीत	सम्मेलन पत्रि० लोक स० अक २०१०
मार्कण्डेय	लोककथा का उदय	
मार्कण्डेय सिंह	हिन्दी सन्त काव्य मे लोक तत्त्व (१४५०—१७००)	डी० फिल० को शोध प्रवन्ध
"	लोककथा और लोक जीवन	सम्मे० पत्रि० चैत्र २०१२
माधव	स्वर्ग पर चढाई	नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली ?
माया गुप्त	छोटा नागपुर के लोक गीतो मे जन जीवन का प्रतिफलन	सम्मे० पत्रि० लोक स० अक २०१०
"	बगाल की लोककला	सम्मे० पत्रि० कला अक चैत्र सन् १९५८
मुरलीधर व्यास	राजस्थानी कहावतें	राजस्थान भारती जुलाई १९४६
मुरली मनोहर प्रसाद सिंह	नई कविता पर लोकगीतो का प्रभाव	साहित्यसन्देश १९५५–५६ ई०
मेनारिया	राजस्थानी भीलो की कहावतें	?
मोतीचन्द	प्राचीन भारतीय कला मे लोक जीवन की व्याख्या	सम्मे० पत्रि० लोक स० अक
मोहनलाल ओझा	राजस्थान का एक झरोखा-विरह गीत	मरुभारती — ?
मोहन सिंह सेंगर	लोक स० की एकरूपता	सम्मे० पत्रि० लोक स० अक
रगनाथ रामचन्द्र दिवाकर	धार्मिक लोक सस्कृति के कतिपय स्रोत	—do—
रतन प्रभा	सावन आयो मगडो उमायो	नई धारा अगस्त १९५८
रतनलाल मेहता	मालवी कहावतें	राजस्थान शोध सस्थान उदयपुर, १९५२
रत्नचन्द अग्रवाल	घूमर और उसके लोक गीत	वरदा जनवरी १९५८
रमानाथ शास्त्री	द्विगर्त प्रदेश का कलात्मक जीवन	सम्मे०पत्रि० लोक स० अक
रमापति शुक्ल	राजस्थान के ग्रामगीत	ना० प्र० पत्रि० वर्ष ४७ स० १९९९

रमेशचन्द्र प्रेम	विश्व की लोककथाएँ	भारती साहित्य मन्दिर दिल्ली १९५८
रमेश जोशी	कुमाऊँ का लोक जीवन	सम्मे० पत्रि० लोक स० अक
राजवहादुर	सुन्दर कहानियाँ	आत्माराम एण्ड सस, दिल्ली १९५४
राधाकमल मुकर्जी	भारतवासियो के इतिहास और सस्कृति मे भौगोलिक वैषम्य	सम्मे०पत्रि० लोक स० अक २०१०
राधा व सुधा	मूंग और मौठ	नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली १९५८
,,	वोल वोल बाँसुरी भिक्षा मिलेगी	—do— —do—
राधेश्याम द्विवेदी	व्रज साहित्य मे लोककथा	व्रजभारती फागुन २०११
राम इकवाल सिंह राकेश	मैथिली लोकगीत	हि० सा० सम्मे० प्रयाग स० १९९९
रामकिशोरी श्रीवास्तव	हिन्दी लोकगीत	—do— सन् १९४६
रामकिशोरी	छत्तीसगढी लोकगीतो का परिचय	ना० प्र० पत्रि० वर्ष ४७, स० १९९९
रामकुमार	फ्रास की लोक कथाएँ	आजकल मई १९५४
रामकुमार भ्रमर	जब वधू चली सुसराल	भारती १९ जनवरी, १९५८
रामाज्ञा द्विवेदी 'समीर'	अवधी लोकसाहित्य	आजकल मई १९५४
रामगोपाल विजयवर्गीय	लोक जीवन मे कला की विविध अभिव्यक्तियाँ	सम्मे० पत्रि० लोक स० अक २०१०
रामचन्द्र गौड	वैदिक लोक जीवन के मन्तव्य	सम्मे० पत्रि० आषाढ २०११
रामचन्द्र वर्मा	टेसू, एक लोकोत्सव	आजकल अप्रेल १९५४
रामचन्द्र नागोडा	दक्षिण की लोककथाएँ	हिन्दी साहित्य समिति प्रका० वेलगाँव १९५२ ई०
रामजीदास	मैं कैसे आऊँ वैंदुली	साप्ताहिक हिन्दुस्तान, १४ सितम्बर, १९५८
,,	भदावर मे होली गायन	मध्यप्रदेश सन्देश मार्च १९५८
रामदत्त भारद्वाज	त्यौहारो की कहानियाँ	ज्ञानमन्दिर कासगज सन् १९५४
रामनरेश त्रिपाठी	सोहर	हिन्दी मन्दिर प्रयाग ?
,,	कविता कौमुदी (५ भाग)	हिन्दी मन्दिर प्रयाग स० १९८६
,,	हमारा ग्राम साहित्य भाग १, २, ३,	आत्माराम एण्ड सस, दिल्ली १९४०

रामनरेश त्रिपाठी	हिन्दी मुहावरे	—do— ?
„	खेतो की ओर	साहित्य सन्देश, अक ४, १९३७
रामनारायण उपाध्याय	निमाडी लोकगीत	हिन्दी सा० सम्मे० जबलपुर १९४९
„	निमाडी लोककथाएं	आजकल, जून १९५४
„	खुल गई सडक भैया	—do— जनवरी १९५४
„	लोककथाओ की शैली और स्वरूप	प्रतिभा जून १९५४
„	निमाडी लोक कहावतें और उनका सौन्दर्य	सम्मे० पत्रि० पौष २०१०
„	एक बाल लोक कथा की अन्त प्रान्तीय यात्रा	मरुभारती, अक्टूबर १९५६
रामनारायण माथुर	सूरज भगवान की काणी	राजस्थान भारती अप्रैल १९५०
„	रामबाई और राजबाई की काणी	—do— —do—
„	कातीरी कॉणिया, भाग २ अक ३	
„	तिलक महाराज की कॉणी	—do— —do—
रामनारायण मिश्र	लोक सस्कृति क्या है ?	सम्मे० पत्रि० लोक स० अक २०१०
रामप्रताप त्रिपाठी	व्रज सस्कृति का महत्त्व और व्याख्या	व्रजभारती चैत्र २००६
„	उपनिषद और ब्राह्मण कालिक जीवन	सम्मे० पत्रि० लोक स० अक
रामपालसिह	घाघ की सूक्तियाँ	आजकल जन० १९५४
रामफूलसिह	व्रज की कुछ कहावतें	व्रजभारती फागुन २०१४
रामर्मूति मेहरोत्रा	भइया दूज	—do— फागुन २००६
रामरतन भटनागर	पद्मावत की कथा का लोकरूप	आलोचना नवम्बर १९५५
रामराजेन्द्र सिंह वर्मा	मेरठ के मुहाविरे	ना० प्र० पत्रिका भाग १७, स० १९९३
रामलाल	भारतीय लोक सस्कृति की अध्यात्मभूमि	सम्मे० पत्रि० लोक स० अक २०१०
रामशरण	पजाब के गीत	लाहौर
रामसिह पारीक तथा नरोत्तम स्वामी	ढोला मारू रादूहा	काशी ना० प्र० सभा स० १९९१
रामसिह सूर्य-करण पारीक, नरोत्तम स्वामी	राजस्थानी लोकगीत	राजस्थान रिसर्च सोसाइटी कलकत्ता १९३८
रामस्वरूप	जिंदगी बोलती है	शतदल प्रकाशन, कलकत्ता ७, १९५५
रामस्वरूप शर्मा	ग्राम पहेलियाँ	व्रजभारती फागुन २००९

रावत सारस्वत	राजस्थानी वात साहित्य	राजस्थान भारती जून १९५१
राहुल साकृत्यायन	हिमालय परिचय	?
,,	किन्नर देश मे	
,,	आदि हिन्दी की कहानियाँ और गीत	पटना १९५२
,,	थापे	सम्मे० पत्रि० लोक स० अ० २०१०
रिछपाल सिंह सेखावत	दुर्गा सम्बन्धी लोक गीत	मरुभारती जुलाई १९५७
लखन जोशी	मेवाड की कहावतें	उदयपुर
लखन प्रताप उरगेश	बाघेली लोक गीत (प्रथम भाग)	कटिया माधवगढ १९५४
ल० प्र० उरगेश	बाघेली लोककथाएँ	आजकल जून १९५४
ललित प्रसाद विद्यार्थी	खडिया लोकगीत की पृष्ठभूमि	नई धारा मार्च १९५५
ललिता प्रसाद सुकुल	लोक धर्म और भक्ति साधना	सरस्वती सम्वाद अक्टूबर १९५२
लक्ष्मीकात वर्मा	लोक-गीतो मे काव्यगत सौन्दर्य	सम्मे० पत्रि० लोक स० अक २०१०
लक्ष्मीधर बाजपेयी	भारतीय लोक सस्कृति का आधार	—do—
लक्ष्मी मेहरोत्रा	लोकगीतो मे रामकथा का साधारणीकरण	सम्मे० पत्रि० चैत्र २०१३
लालजी सिंह	भोजपुरी सस्कृत	हिन्दुस्तानी अप्रेल, जून, १९४६
,,	—do—	—do जुला० सित० १९४६
लीला दुबे	छत्तीसगढ की लोककथाएँ	आजकल जून १९५४
लौकीराम	राजस्थान के लोकगीत	फ्रेटर्निटी समाज विज्ञान विद्यापीठ आगरा पत्रिका, १९५७
वारणासि राममूर्ति रेणु	किन्नेर सानिगीत	सम्मे० पत्रि० चैत्र २००९
वासुदेव शरण अग्रवाल	लोककथाएँ और उनका सग्रह कार्य	आजकल मई १९५४
,,	जनपदीय अध्ययन की आँख	व्रज लोक सस्कृति स० २००५
,,	भारतीय सस्कृति और लोक तत्त्व	वरदा जन० १९५८
,,	पृथिवी पुत्र	दिल्ली १९४९
,,	लोक का प्रत्यक्ष दर्शन	सम्मे० पत्रि० लोक स० अक २०१०
वासुदेव उपाध्याय	भारतीय कला मे लोक सस्कृति का प्रदर्शन	सम्मे० पत्रि० लोक स० अक २०१०

विजयदान देथा	खेत, वृक्ष और हरियाली,	परम्परा चैत्र २०१३
,,	वायु, वरसात और बादल	—do—
,,	पशु और पक्षी	—do—
,,	सूरज, चाँद और तारे	—do—
,,	लोकगीत और कविता	—do—
विनयमोहन शर्मा	वस्तर के वनो मे	सम्मे० पत्रि० लोक स० अक २०१०
विद्यावती कोकिल	सुहाग गीत	प्रयाग १६५३
विद्यानिधि सिद्धालकार	शिवालक की घाटियो मे	आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, १६५३
विद्याधर शर्मा	एक निमाडी लोककथा	मरुभारती जुलाई १६५७
विश्वनाथ भटेले	इटावा के लोकगीत	दीक्षित प्रेस इटावा सन् १६५८
विश्वम्भर सहाय प्रेमी	कुरुप्रदेश के लोकगीत	सम्मे० पत्रि० लोक स० अक २०१०
वीर राजेन्द्र सिंह ऋषि	रूसी लोक साहित्य	आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली १६५६
वीरेन्द्र मोहन रतूडी	गढवाल के लोक गीत	सम्मे० पत्रि० लोक स० अक २०१०
श्रीकान्त व्यास	गुजरात की लोककथा गुजरात के	आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली,
,,	लोकगीत	आजकल जुलाई १६५४
,,	गुजराती लोकगीतो मे विरह दर्शन	सम्मे० पत्रि० लोक स० अक २०१०
एस० श्रीकठ स्वामी	तेरहवी शताब्दी का दाशनिक सगीत	—do—
श्रीकृष्णदत्त बाजपेयी	ब्रज मे शकुन विचार	ब्रजभारती फागुन २०१४
श्रीचन्द जैन	विन्ध्य प्रदेश के लोक गीत	आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली १६५३
श्रीचन्द जैन व अम्बाप्रसाद श्रीवास्तव	विन्ध्य भूमि की लोक कथाएँ	—do— १६५४ ई०
श्रीचन्द जैन	मनोरजक लोक कथाएँ (भाग ४)	साहित्य प्रका० मन्दिर ग्वालियर १६५७
श्रीधर मिश्र	भोजपुरी लोक गीतो मे बापू का महाप्रयाण	साप्ताहिक हिन्दुस्तान ६ फरवरी १६५८
श्रीनाथ दुबे	लोक गीतो मे नारी जीवन	रसवन्ती अवद्व० १६५७
श्रीनिवासाचार्य	दक्षिण भारत की लोक कथाएँ	आजकल मई १६५४
श्रीपाद जोशी	मराठी लोक कथाएँ	आजकल मई १६५४
श्रीमन्नारायण	हिन्दी साहित्य और लोक जीवन	साहित्य सन्देश अक ३, १६३७

श्रीलाल मिश्र	राजस्थानी की कुछ कहावती लोककथाएँ	मरुभारती जन० १९५७
,,	राजस्थानी की कुछ कहावती गाथाएँ	मरुभारती जुलाई १९५८
शकुन्तला	पच तत्र की कहानियाँ भाग ३	राजकमल प्रका० दि० १९५७
शकरदेव विद्यालकार	प्रान्तीय लोकगीत	साहित्य सन्देश अक, १९३८
शम्भुप्रसाद वहुगुणा	लोक साहित्य मे लोक जीवन की व्यापक अनुभूति	सम्मे० पत्रि० लोक स० अक
शालिग्राम वैष्णव	गढवाली भाषा के पखाडा (कहावतें)	ना० प्र० पत्रि०, १८ वाँ भाग स० १९९४
शान्ती अवस्थी	लोकनृत्य और लोकवाद्यो मे लोक जीवन की व्याख्या	सम्मे० पत्रि० लोक स० अक
श्याम परमार	लोक परक सन्त साहित्य	वरदा जुलाई १९५८
,,	मालवी लोककथाएँ	आजकल मई १९५४
,,	भारतीय लोक साहित्य	राजकमल प्रकाशन दिल्ली १९५४
,,	अमरीका के ओभार्की लोक गीत	नई धारा नवम्बर १९५४
श्याम परमार	लोकोक्ति साहित्य	साहित्य सन्देश १९५४-५५
,,	मालवी लोक गीत	इन्दौर स० २००६
,,	मालवा की लोक कथाएँ	दिल्ली १९५४
,,	नौका डूबी	आजकल मार्च १९५४
,,	लोकोक्ति साहित्य	साहित्यसन्देश जून १९५५
श्यामलाल चतुर्वेदी	छत्तीसगढी कहावतो और पहेलियो पर एक दृष्टि	प्रतिभा अक्टू० १९५४
,,	भारतीय लोक कथाओ मे एकात्मकता	वसुधा सित० १९५६
श्यामू सन्यासी	रूसी लोक कथाएँ (२ भाग)	? १९४९
श्यामाचरण दुवे	छत्तीसगढी लोकगीतो का परिचय	१९४०
,,	लोककथाओ का वैज्ञानिक अध्ययन	आजकल मई १९५४
शिवमूर्तिसिह वत्स	भोजपुर की लोककथाएँ	आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली १९५१
,,	अवध की लोक कथाएँ	आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली १९४७
शिवसहाय चतुर्वेदी	बुन्देलखण्ड की ग्राम कहानियाँ	
,,	बुन्देलखण्ड की लोककथाएँ	आजकल मई १९५४
,,	गौने की विदा (बुन्देलखण्ड की लोककथाएँ)	पटना १९५४
,,		

शिवसहाय चतुर्वेदी	हमारी लोककथाएँ	सस्ता साहित्य मण्डल,	दिल्ली १९५६
"	बुन्देलखण्ड की ग्राम्य कहानियाँ		
शिवसिंह चोयल	राजस्थानी कहावतां नै मुहावरा	राजस्थान भारती	अप्रैल १९५०
"	राजस्थानी कहावतें भाग २, अक २,	?	
"	राजस्थान की ग्राम महिलाओ का भक्ति काव्य	राजस्थान भारती	जुलाई १९५२
शिवसिंह शाडिल्य	फारस की लोककथाएँ	आत्माराम एण्ड सस,	दिल्ली
शिवशेखर मिश्र	भारतीय लोक सस्कृति मे लोकगीतो की अभिव्यक्ति	सम्मे० पत्रि० लोक स० अक	
शिवचन्द्र नागर	गुजराती लोकोक्तियाँ और उनका हिन्दी रूपान्तर	सम्मे० पत्रि० आश्विन	२००८
सतीशचन्द्र शर्मा	व्रज के बाल लोक गीत	ब्रजभारती फागुन	२०१४
सत्यव्रत अवस्थी	अवधी लोकगीनो मे सास्कृतिक तत्त्व	सम्मे० पत्रि० लोक स० अक	
सत्या गुप्त	खडी बोली का लोक साहित्य	डी० फिल० शोध-प्रवन्ध	
सत्येन्द्र	व्रज के ग्रामगीत और ग्राम कहानियाँ	साहित्य सदेश अक	१९३७
"	व्रज की एक गीति कहानी	व्रजभारती मार्गशीर्ष	२००३
"	गाँवो का सास्कृतिक निर्माण	—do— पौष	२००३
"	यारु होइ तौ ऐसौ होइ (कुछ विचार)	—do— चैत्र	२००३
"	व्रज की लोक कहानियाँ	?	१९४७
"	व्रज लोक साहित्य का अध्ययन	साहित्य रत्न भण्डार	आगरा १९५०
"	लोक जीवन और सस्कृति	व्रज लोक सस्कृति स०	२००५
"	व्रज मे लोक कहानी के भारोपीय रूप	व्रजभारती आश्विन	२००५
"	लोकवार्ता और लोकगीत	व्रज लोक सस्कृति स०	२००५
"	लाँगुर कौन ?	व्रजभारती भाद्रपद	२००९
"	लोक साहित्य के सरक्षण की आवश्यकता	साहित्य सन्देश अगस्त	१९५०
"	लोक कहानियो का उदय	—do— जनवरी	१९५३
"	व्रज की लोककथाएँ	आजकल मई	१९५४
	बुद्धिमान अहीर-व्रज की एक लोककथा	प्रतिभा अक्टूबर	१९५४
"	व्रज की ३१ लोककथाएँ	पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ	१९५४
"	लोक साहित्य परिभाषा	साहित्य सन्देश जून	१९५६

सत्येन्द्र	जाहरपीर गुरु गुग्गा	भारतीय साहित्य अप्रैल १९५६
,,	लोकवार्ता के तत्त्व तथा लोक मानस	भारतीय साहित्य अक्टूबर १९५६
,,	जाहरपीर गुरु गुग्गा	हिन्दी विद्यापीठ आगरा दिस० १९५६
,,	हिन्दी साहित्य मे लोक तत्त्व की परम्परा और कबीर	भारतीय साहित्य जुलाई १९५६
सत्यव्रत सिन्हा	भोजपुरी लोकगाथा	हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयाग १९५८
सदाशिव कृष्ण फडके	मराठी लोकगीत	सम्मे० पत्रि० लोक स० अक
सन्तराम	पजाबी गीत	
,,	पजाब की कहानियाँ (३ भाग)	हिन्दी भवन जालधर एव इलाहाबाद १९५२
सन्तराम वत्स्य	हिमाचल की लोककथाएँ	आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली ?
,,	बाहर कहाँ खोजे बन्दे	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली १९५८
सन्तराम अनिल	कनउजी लोकगीत	लखनऊ वि० वि० हिन्दी प्रका० १९५८
सन्तलाल वत्स	हिमाचल की लोक कथाएँ	आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली १९५५
सम्पूर्णानन्द	भारतीय सस्कृति का प्राण	सम्मे० पत्रि० लोक स० अक २०१०
सरस्वती कुमार	वर्षा सम्बन्धी कहावतें	राजस्थानी पत्रिका दूसरा भाग
कुमारी सरोज	लोकगीतो मे नारी जीवन की अभिव्यक्ति	सम्मे० पत्रि० लोक स० अक
सर्वेश्वर दयाल	प्रगतिवादी काव्य मे लोक जीवन की अभिव्यक्ति	सम्मे० पत्रि० लोक स० अक
श्रीमती सप्तम गुप्त	कौरवी लोकगीतो मे सामाजिक तत्त्व	सम्मे० पत्रि० अषाढ २०१२
सावित्री वर्मा	भारत की लोक कथाएँ	प्रकाशन विभाग भारत सरकार १९५५
,,	उत्तर भारत की लोक कथाएँ (३ भाग)	आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली १९५५
सुकुमार पगारे	सन्त सिंगा जी	खडवा १९४६
सीतादेवी प्रभाकर आदि	ग्राम्य गीतो मे करुण रस	युगान्तर प्रकाशन, दिल्ली ?
सीताराम लालस	गाने वाली जातियाँ	परम्परा चैत्र २०१३

सीताराम बी० ए० दमयन्ती बी० ए०	धूल धूसरित मणियाँ	नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली १९५८
सुरेन्द्रनाथ दास	लोक साहित्य सग्रह	युगान्तर दैनिक १४-२-१९५२
सूर्यकरण परीक एव गणपति स्वामी	राजस्थान के ग्रामगीत, भाग १	दिल्ली स० १९९७
,,	राजस्थानी लोकगीत	प्रयाग स० १९९९
,,	राजस्थान के लोकगीत भाग १, २	कलकत्ता ?
सूर्यनारायण एव गणपति स्वामी	राजस्थानी वार्ता	कलकत्ता ?
सूर्य नारायण व्यास	मानव सस्कृति की वैदिक और पौराणिक पुरातन परम्परा	सम्मे० पत्रि० लोक स० अक
स्वर्णलता अग्रवाल	राजस्थानी लोक गीतो मे सगीत	मरु भारती अक्टू० १९५७
हस राज रहबर	रूस की लोककथाएँ	आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली १९५५
,,	जापान की कथाएँ	—do— १९५६
हजारी प्रसाद द्विवेदी	लोककथाएँ क्या बताती हैं	आजकल मई १९५४
हरगोविन्द गुप्त	बुन्देलखण्डी लोककथाएँ	आजकल जुलाई १९५४
हरप्रसाद शर्मा	बुन्देलखण्डी लोक गीत	?
हरभजन गियानी	पजाब दे गीत	अमृतसर ?
हरिचरण लाल	विश्व का प्रथम कलाकार	सम्मे० पत्रि० लोक स० अक
हरिदत्त भट्ट 'शैलेश'	गढवाल के लोक गीतो मे (क्रान्ति दूत) गाँधी, नेहरू, सुभाष	विशाल भारत फरवरी १९५८
हरिशकर उपाध्याय	भोजपुरी लोकगीतो मे राष्ट्रीयता	साहित्य सन्देश अप्रैल १९५५
हनुमान प्रसाद पोद्दार	लोक धम	सम्मे० पत्रि० लोक स० अक २०१०

(ग)

लोक साहित्य सम्बन्धी अन्य सामग्री

मारवाडी गीत सग्रह	हिन्दी पुस्तक एजेन्सी	
मारवाडी गीत सग्रह	बम्बई पुस्तक एजेन्सी	
राजस्थानी गीतो का चुनाव	(परिशिष्ट) परम्परा	चैत्र २०१३
आछो गोरा हटजा (लोक गीत)	परम्परा	चैत्र २०१३
वाणियावाली गोचर गाय (लोक गीत)	परम्परा	अगस्त १९५६
ढोल वाजै-थाली वाजै (लोक गीत)	परम्परा	अगस्त १९५६
डूंगरजी जवार री पड (लोक काव्य)	परम्परा	अगस्त १९५६
म्हणा रतन राणा (लोक गीत)	—do—	

जनदेवता द्वारा जन नाट्य का आविष्कार	सम्पादकीय-सम्मेलन पत्रि० आश्विन २०१४
देश-विदेश की लोक कथाएँ	पब्लिकेशन्स डिवीजन भारत सरकार १९५४
राजस्थानी लोक साहित्य (दाम्पत्य प्रेम के गीत)	(राजस्थानी भाग २) कलकत्ता
राजाचन्द की वात (सकलन)	व्रजभारती भाद्रपद २००३
लोक कथाओ का एक मूल अभिप्राय "प्राण-प्रतीक"	मरुभारती— जुलाई १९५८
प्राचीन राजस्थानी गीत (६ भाग)	विश्वविद्यापीठ—उदयपुर
बधावा गीत	वरदा जनवरी १९५८
लोक गीत (सकलन)	पीलीभीत का साहित्यिक इतिहास १९५७ पीलीभीत
दो लोक गीतो का भावार्थ	रसवन्ती अक्टू० १९५७
सन्त साहित्य और लोक पक्ष	१ नवम्बर, १९५७

(गीता आश्रम मथुरा—४५—४७ अपोलो स्ट्रीट फोर्ट बम्बई १)

हिन्दी साहित्य के विकास क्रम मे लोकवार्ता की पृष्ठभूमि	आलोचना
एक था राजा (सम्पादकीय)	आजकल मई १९५४

अनुसन्धान

रीतिकालीन हिन्दी काव्य मे लोक जीवन	लखनऊ वि० वि०
कुरु प्रदेश का लोक साहित्य	—do—
हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य	—do—
हर्डौती का लोक साहित्य	राजस्थान वि० वि०
खडी बोली के लोक गीत	अलीगढ विश्व वि०
निमाडी का लोक साहित्य	नागपुर वि० वि०
छत्तीसगढी लोक साहित्य का अध्ययन	—do—
बुन्देलखण्डी लोक साहित्य	—do—
खडी बोली प्रान्त का लोक साहित्य	आगरा वि० वि०
कन्नौजी लोकवार्ता साहित्य	—do—
गढवाली बोली की रावल्टी उपबोली, उसके लोक गीत और उसमे अभिव्यक्त लोक सस्कृति	आगरा वि० वि० १९५७
निमाडी और उसका लोक साहित्य	नागपुर वि० वि० १९५७